2.1

इतिहास
एक अध्ययन

रायल इंस्टिट्यूट आव इंटरनेशनल अफेयर्स गैर-सरकारी तथा अ-राजनीतिक संस्था है। यह सन् १९२० में अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के वैज्ञानिक अध्ययन को सुविधाजनक बनाने तथा प्रोत्साहित करने के लिए स्थापित की गयी थी।

ऐसा होने के कारण इंस्टिट्यूट किसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पर नियमतः अपना मत नहीं दे सकती। इस पुस्तक में जो मत व्यक्त किये गये हैं वे व्यक्तिगत हैं।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
शिक्षा-मन्त्रालय, भारत सरकार की मानक ग्रन्थ
योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

न्दी समिति ग्रन्थमाला—१३५

इतिहास : एक अध्ययन

लेखक

आरनाल्ड जे० ट्वायनबी

आनरेरी डी० लिट्० अक्सफोर्ड तथा वरमिंघम
आनरेरी एल० एल० डी० प्रिंसटन, एफ० बी० ए०
अध्ययन के निदेशक रायल इंस्टिटयूट आव इंटरनेशनल अफेयर्स
अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास के रिसर्च प्रोफ़ेसर, लंदन विश्वविद्यालय
[दोनों सर डैनियल स्टिवेनसन की आय (फाउन्डेशन) पर]

संक्षेपकर्ता

डी० सी० सोमरवेल

अनुवादक

कृष्णदेव प्रसाद गौड़, एम०ए० (अंग्रेजी तथा राजनीति)
अवसरप्राप्त प्रिंसिपल, डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी

हिन्दी समिति
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६६ .

[Hindi Translation of A STUDY OF HISTORY by ARNOLD J. TOYNBEE, D. Litt. Issued under the auspices of the Royal Institute of International Affairs, OXFORD UNIVERSITY PRESS, London, New York, Toronto, 1946.]

मूल्य
१२.००
बारह रुपये

मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, ६६५१–२३

प्रथम खण्ड

पुस्तक की योजना

(यह खण्ड १–५ भाग का संक्षेप है)

१. विषय-प्रवेश
२. सभ्यताओं की उत्पत्ति
३. सभ्यताओं का विकास
४. सभ्यताओं का विनाश
५. सभ्यताओं का विघटन

(भाग ६ से १३ तक का संक्षेप दूसरे खण्ड में है)

६. सार्वभौम राज्य
७. सार्वभौम धर्मतन्त्र
८. वीर काल
९. देश (स्पेस) में सभ्यताओं का सम्पर्क
१०. काल में सभ्यताओं का सम्पर्क
११. सभ्यताओं के इतिहास में लय
१२. पश्चिमी सभ्यता का भविष्य
१३. इतिहासकारों की प्रेरणा

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ अधिक-से-अधिक संख्या में तैयार किये जायँ। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनायी है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रन्थों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रन्थ भी लिखाये जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारम्भ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नये साहित्य में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

'इतिहास : एक अध्ययन' नामक पुस्तक हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक आरनाल्ड जे० ट्वायनबी, डी० लिट्० और अनुवादक श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ एम० ए०, अवसरप्राप्त प्रिंसिपल, डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी, हैं। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रन्थों के प्रकाशन सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

निहालकरण सेठी

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दादली आयोग।

प्रकाशकीय

उत्थान-पतन, ह्रास और विकास का चक्र प्रकृति में सदैव चलता रहता है। मानव जगत् भी उससे अलग नहीं है। सभ्यताएँ बनती और बिगड़ती हैं। पुरानी सभ्यता का कोई गुण जब किसी नयी सभ्यता में प्रकट होता है, तो उसे इतिहास की पुनरावृत्ति कहा जाता है। ज्ञात सभ्यताओं की इसी पृष्ठभूमि को लेकर सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० ट्वायनबी ने ऐतिहासिक तथ्यों का अनुसंधान किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उनके गम्भीर एवं विवेकपूर्ण अध्ययन का परिणाम है।

अंग्रेजी में इस महान् ग्रन्थ का संक्षिप्तीकरण श्री सोमरवेल द्वारा दो खण्डों में किया गया है, जिनको भारत सरकार ने अपनी मानक ग्रन्थ योजना में लेकर हिन्दी समिति से राष्ट्रभाषा में प्रकाशित करने का अनुरोध किया था। अतएव इसके प्रथम खण्ड का हिन्दी रूपान्तर वाराणसी के सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ से और दूसरे खण्ड का हिन्दी अनुवाद इलाहाबाद के प्रतिष्ठित विद्वान् श्री रामनाथ 'सुमन' द्वारा सम्पन्न कराया गया है। हिन्दी समिति इन दोनों विद्वानों के प्रति आभारी है, जिनके सत्प्रयास से अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के मर्मज्ञ ट्वायनबी-जैसे इतिहासकार की कृति की अवतारणा हिन्दी में सुलभ हुई। हमें विश्वास है, विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं का इस प्रकाशन से यथेष्ट लाभ होगा।

रमेशचन्द्र पंत
सचिव, हिन्दी समिति।

अनुवादक की भूमिका

एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करना बहुत कठिन होता है। ट्वायनबी की भाषा बड़ी लच्छेदार, साहित्यिक और स्थल-स्थल पर सन्दर्भों से भरी हुई है। पुस्तक पढ़ने वालों को पता चलेगा कि वह इतिहास के ही एक प्रकाण्ड विद्वान् नहीं हैं, साहित्य के कुशल कलाकार भी हैं। ऐसी अवस्था में अनुवाद का कार्य और भी कठिन हो गया। हिन्दी की प्रकृति की रक्षा करते हुए जहाँ तक सम्भव हुआ है लेखक के भाव तथा अर्थ को अनुवाद में लाने की चेष्टा की गयी है। तकनीकी शब्दों का अर्थ भारत सरकार के पारिभाषिक शब्द-संग्रह से लिया गया है।

पुस्तक के सम्बन्ध में कहना अनावश्यक है। इस महान् ग्रन्थ का प्रकाशन करके हिन्दी समिति ने हिन्दी को गौरवान्वित किया है।

पुस्तक पहले ही प्रकाशित हो जाती किन्तु अस्वस्थता के कारण इसमें विलम्ब हुआ। हिन्दी समिति ने मुझे समय देने में उदारता दिखायी, इसके लिए मैं समिति के अधिकारियों का आभारी हूँ।

—अनुवादक

लेखक की भूमिका

आगे के नोट में श्री डी० सी० सोमरवेल ने बताया है कि उन्होंने किस प्रकार मेरी पुस्तक के छः खण्डों का संक्षेप किया है। इसके पहले कि मुझे इसकी कुछ जानकारी हो मुझ से कई स्थानों से विशेषतः संयुक्त राज्य से यह पूछा गया कि जितने खण्ड छप गये हैं उनके संक्षिप्त संस्करण की कोई सम्भावना है, इसके पहले कि कि पूरे खण्ड प्रकाशित हों क्योंकि युद्ध के कारण अनिवार्य रूप से उनका छपना स्थगित हो गया था। इस माँग की शक्ति का अनुभव तो कर रहा था किन्तु समझ नहीं पा रहा था कि किस प्रकार यह कार्य हो। मैं युद्ध के कामों में फँसा हुआ था। यकायक एक पत्र पाने पर यह समस्या सुलझ गयी। श्री सोमरवेल ने मुझे लिखा कि एक संक्षेप मेरे पास तैयार है।

जब श्री सोमरवेल ने पाण्डुलिपि मेरे पास भेजी ४–६ खण्डों को प्रकाशित हुए चार साल बीत चुके थे। और १–३ खण्ड को प्रकाशित हुए नौ वर्ष। मेरा खयाल है कि लेखक के लिए जो चीज प्रकाशन के पहले उसकी निजी होती है, प्रकाशन के बाद दूसरे की हो जाती है। और इस अवस्था में तो १९३९–४५ का युद्ध भी बीच में आ गया। उसके साथ वातावरण तथा मेरा कार्य भी बदल गया। ये भी मेरे तथा मेरी पुस्तक के बीच आ गये। ४–६ खण्ड युद्ध आरम्भ होने के इकतालीस दिन पहले प्रकाशित हुए थे। इस कारण जब मैंने श्री सोमरवेल का संक्षेप पढ़ा तो यद्यपि उन्होंने मेरे ही शब्द रखे हैं मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं कोई नयी पुस्तक पढ़ रहा हूँ, जो किसी दूसरे की लिखी है। मैंने जहाँ-तहाँ—श्री सोमरवेवल की सहमति से—भाषा में परिवर्तन किया है ज्यों-ज्यों मैं पढ़ता गया हूँ; किन्तु मैंने भूल से तुलना नहीं की है। मैंने ऐसा कोई अंश नहीं रखा है जिसे सोमरवेल ने छोड़ दिया हो, क्योंकि लेखक ही इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है कि कौन अंश पुस्तक के लिए आवश्यक है।

चतुराई से किया हुआ संक्षेप लेखक की बड़ी सेवा करता है जिसे लेखक स्वयं नहीं कर सकता और इस खण्ड के पाठक जिन्होंने मूल पुस्तक भी पढ़ी है वह मुझसे सहमत होंगे कि श्री सोमरवेल ने अच्छी साहित्यिक कला का परिचय दिया है। उन्होंने पुस्तक के विषय की रक्षा की है और अधिकांश मेरे ही शब्दों को रखा है। साथ-ही-साथ छः खण्डों को एक खण्ड में कर दिया है। यदि यह कार्य मैंने किया होता तो सन्देह है कि मैं उसे कर पाता।

यद्यपि श्री सोमरवेल ने संक्षेप करके मेरा काम बहुत हल्का कर दिया परन्तु इसे दोहराने में मुझे दो साल और लग गये। हफ्तों बिना स्पर्श किये यह मेरे सिरहाने पड़ा रहता था। यह विलम्ब युद्ध की आवश्यक बातों के कारण हुआ। शेष पुस्तकों के नोट मैंने ज्यों-के-त्यों न्यूयार्क के विदेशी सम्पर्क विभाग की कौंसिल के पास सुरक्षित रखने के लिए भेज दिये। मैंने म्यूनिख सप्ताह में कौंसिल के मन्त्री श्री मेलोरी के पास भेज दिया और उन्होंने कृपा करके उसकी सुरक्षा

का भार लिया और जब तक जीवन है यह आशा की जा सकती है कि कार्य समाप्त हो जायगा। श्री सोमरवेल के संक्षेपीकरण के लिए मैं एक कारण से और भी आभारी हूँ कि मैं अपना ध्यान आगे के खण्डों के लिखने में लगा सका।

मेरे लिए यह भी प्रसन्नता की बात है कि पूरी पुस्तक की भाँति यह संक्षेप भी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस प्रकाशित कर रहा है। इसका इन्डेक्स कुमारी वी० एम० बोलटर ने बनाया है जिनके प्रति पाठक इसलिए आभारी हैं कि उन्होंने खण्ड १–३ तथा खण्ड ४–६ तक इंडेक्स भी बनाया है।

१९४६

—आरनाल्ड जे० ट्वायनबी

नोट

संक्षेपकर्ता के संपादक का

श्री ट्वायनबी के 'इतिहास का अध्ययन' मानव-जाति की ऐतिहासिक अनुभूति के रूप तथा प्रकृति का क्रमबद्ध विषय है। यह उस समय से आरम्भ होता है जब इस जाति ने, इस समाज ने, जिसे सभ्यता कहते हैं पृथ्वी पर जन्म लिया। इस विषय की जहाँ तक सामग्री उपलब्ध है, तथा जहाँ तक आज तक मानव इतिहास की जानकारी है प्रत्येक स्थल पर पर्याप्त उदाहरणों से 'प्रमाणित' किया गया है। कुछ उदाहरण बहुत ब्योरे से दिये गये हैं। पुस्तक के इस रूप के होने के कारण संक्षेप करने वाले सम्पादक का कार्य मूलतः सरल हो गया है। सारे विषयों को ज्यों-का-त्यों रखा गया है यद्यपि संक्षेप में। कुछ सीमा तक उदाहरणों की संख्या कम कर दी गयी है, और ब्योरे में कुछ अधिक कमी की गयी है।

मेरी समझ में इस खण्ड द्वारा श्री ट्वायनबी के ऐतिहासिक दर्शन का समुचित निरूपण हो जाता है जैसा कि उन्होंने अपने छः खण्डों में किया है यद्यपि अभी सम्पूर्ण कार्य समाप्त नहीं हुआ है। यदि ऐसा न होता तो श्री ट्वायनबी इसके प्रकाशन की आज्ञा न देते। किन्तु मुझे दुख होगा यदि इसे मूल पुस्तक का प्रतिरूप मान लिया जायगा। काम चलाने के लिए यह प्रतिरूप हो सकता है किन्तु आनन्द के लिए नहीं; क्योंकि मूल पुस्तक का सौंदर्य उसके आनन्ददायक उदाहरणों में है। विषय की महत्ता की दृष्टि से मूल पुस्तकें ही समुचित हैं। मैंने मूल पुस्तक के ही वाक्य तथा अनुच्छेद रखे हैं और मुझे इस बात की आशंका नहीं है कि वे नीरस होंगे। किन्तु साथ ही मेरा यह भी मत है कि मूल पुस्तकें अधिक आनन्द देंगी।

मैंने यह संक्षेप अपने मनोरंजन के लिए किया था। श्री ट्वायनबी को इसका पता न था और प्रकाशित करने की दृष्टि भी न थी। समय काटने के लिए मुझे यह अच्छा व्यसन मिल गया था। पूरा होने पर ही मैंने श्री ट्वायनबी को बताया और उनको दे दिया कि यदि उनकी इच्छा हो तो इसका उपयोग करें। इस पुस्तक का इस प्रकार जन्म हुआ, इसलिए मैंने कहीं-कहीं अपनी ओर से भी उदाहरण दे दिये हैं जो मूल पुस्तक में नहीं हैं। कहा भी गया है कि कि "उस बैल का मुँह नहीं बन्द करना चाहिए जो अपने मालिक का अनाज खा रहा हो।" मैंने जो उदाहरण दिये हैं वे बहुत कम हैं और उनका महत्त्व भी कम है। मेरी पाण्डुलिपि को श्री ट्वायनबी ने दोहरा दिया है और उनकी स्वीकृति भी मिल गयी है। उनका विवरण यहाँ अथवा पाद-टिप्पणी में देना आवश्यक नहीं है। यहाँ उसको बता देना इसलिए आवश्यक था कि यदि कोई मूल से तुलना करे तो यह न समझे कि संक्षेप करने में ईमानदारी नहीं बर्ती गयी है। मूल पुस्तक के प्रकाशित होने तथा इसके प्रकाशन के बीच कुछ घटनाएँ ऐसी हो गयी हैं जिनके कारण मैंने अथवा श्री ट्वायनबी ने कहीं-कहीं एकाध वाक्य इसमें जोड़ दिये हैं। किन्तु यह देखते हुए

कि पहले तीन खण्ड सन् १९३३ में प्रकाशित हुए थे और शेष १९३९ में, फिर भी इसकी आवश्यकता बहुत ही कम पड़ी।

परिशिष्ट में जो अनुक्रमणिका दी गयी है वह एक प्रकार से संक्षेप का संक्षेप है। इस पुस्तक में मूल पुस्तक के ३,००० पृष्ठों का ५६५ पृष्ठों में संक्षेप किया गया है और उसी को अनुक्रमणिका में २५ पृष्ठों में संक्षिप्त किया गया है। यदि उसी को पढ़ा जाय तो वह निहायत नीरस और निरर्थक जान पड़ेगा। किन्तु सन्दर्भ जानने के लिए वह उपयोगी होगा। वास्तव में वह एक प्रकार से विषय सूची है। उसे आरम्भ में न रखने का कारण केवल यही है कि चित्र के सामने वह भद्दी वस्तु-सी लगेगी।

जो पाठक मूल पुस्तक से इसका सम्बन्ध जानना चाहेंगे उनकी सुविधा के लिए नीचे का समीकरण दिया जाता है जो उपादेय होगा।

पृष्ठ	१	से पृष्ठ	६६ तक	मूल पुस्तक का खण्ड १
पृष्ठ	६७	से पृष्ठ	१३७ तक	मूल पुस्तक का खण्ड २
पृष्ठ	१३८	से पृष्ठ	२०३ तक	मूल पुस्तक का खण्ड ३
पृष्ठ	२०४	से पृष्ठ	२९९ तक	मूल पुस्तक का खण्ड ४
पृष्ठ	३००	से पृष्ठ	४१४ तक	मूल पुस्तक का खण्ड ५
पृष्ठ	४१४ (६)	से पृष्ठ	४७७ तक	मूल पुस्तक का खण्ड ६

—डी० सी० सोमरवेल

विषय सूची

१ विषय-प्रवेश

१. ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई १
२. सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन १०
३. समाज की तुलना
  (१) सभ्यताएँ और आदिम समाज २९
  (२) सभ्यता की अन्विति का भ्रम २९
  (३) सभ्यताओं के सादृश्य (कम्पेरेबिलिटी) का दावा ३५
  (४) इतिहास, विज्ञान और कल्पना साहित्य (फिकशन) ३६

२ सभ्यताओं की उत्पत्ति

४. समस्या और उसका न सुलझाना
  (१) समस्या रूप ४०
  (२) प्रजाति (रेस) ४२
  (३) वातावरण ४५
५. चुनौती और उनका सामना (चैलेन्ज एण्ड रेसपान्स)
  (१) पौराणिक संकेत (माइथालाजिकल क्लू) ५०
  (२) पौराणिक कथा के आधार पर समस्या ५६
६. विपत्ति के गुण ६७
७. वातावरण की चुनौती
  (१) कठोर देशों की प्रेरणा ७४
  (२) नयी भूमि द्वारा प्रेरणा ८३
  (३) आघात से प्रेरणा ९१
  (४) दबाव द्वारा प्रेरणा ९४
  (५) दण्डात्मक दबाव की प्रेरणा १०६
८. सुनहला मध्यम मार्ग
  (१) पर्याप्त और आवश्यकता से अधिक ११८
  (२) तीन स्थितियों की तुलना १२२
  (३) दो अकाल-प्रसूत (अबार्टिव) सभ्यताएँ १२९
  (४) ईसाई जगत् पर इस्लाम का आघात १३४

३ सभ्यताओं का विकास

९. अविकसित सभ्यताएँ
    (१) पोलिनेशियाई, एसकिमो और खानाबदोश १३८
    (२) उसमानली वंश १४४
    (३) स्पार्टन १५०
    (४) साधारण विशेषताएँ १५३
  नोट : भाषा के वाहक सागर तथा स्टेप १५६
१०. सभ्यताओं के विकास की प्रकृति
    (१) दो भ्रामक संकेत १५८
    (२) आत्मनिर्णय की ओर प्रगति १६६
११. विकास का विश्लेषण
    (१) समाज और व्यक्ति १७६
    (२) अलग होना और लौटना : व्यक्ति १८३
    (३) अलग होना और लौटना : सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग १९४
१२. विकास द्वारा विभिन्नता २०२

४ सभ्यताओं का विनाश

१३. समस्या का रूप २०४
१४. नियतिवादी समाधान (डिटरमिनिस्टिक सोल्युशन) २०६
१५. वातावरण पर से नियन्त्रण का लोप होना
    (१) भौतिक वातावरण २१३
    (२) मानवी वातावरण २१७
    (३) नकारात्मक अभिमत (वरडिक्ट) २२६
१६. आत्मनिर्णय की असफलता
    (१) अनुकरण की यान्त्रिकता (द मेकेनिकलनेस आव माइमेसिस) २२८
    (२) पुरानी बोतल में नयी शराब २३१
    (३) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी अपनत्व को आदर्श बनाना २५४
    (४) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी संस्था की भक्ति २६२
    (५) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी तकनीक पर अन्धविश्वास २७०
    (६) सैनिकवाद की आत्मघाती प्रवृत्ति २७९
    (७) विजय का मद २९०

५ सभ्यताओं का विघटन

१७. विघटन का स्वरूप
    (१) साधारण सर्वेक्षण ३००
    (२) भेद और पुनर्जीवन ३०७

१८. सामाजिक जीवन में भेद
(१) शक्तिशाली अल्पसंख्यक ३०९
(२) आन्तरिक सर्वहारा ३१३
(३) पश्चिमी संसार के आन्तरिक सर्वहारा ३२८
(४) वाहरी सर्वहारा ३३८
(५) पश्चिमी संसार के बाहरी सर्वहारा ३४६
(६) विदेशी तथा देशी प्रेरणाएँ ३५३

१९. सामाजिक जीवन में आत्मा का भेद
(१) आचरण, भावना और जीवन का विकल्प ३६०
(२) 'त्याग' और आत्मनिग्रह ३६९
(३) पलायन तथा प्राणोत्सर्ग ३७०
(४) विचलन का भाव तथा पाप का भाव ३७२
(५) असामंजस्य की भावना
(अ) व्यवहार में बर्बरता तथा अभद्रता ३८२
(ब) कला में अभद्रता तथा बर्बरता ३९०
(स) सामान्य भाषा (लिंगुआ फ्रान्का) ३९२
(द) धर्म में संहतिवाद ३९७
(च) शासक धर्म का निर्णय करता है ४०४
(६) एकता की भावना ४१४
(७) पुरातनवाद (आरकेइज्म) ४२४
(८) भविष्यवाद ४३२
(९) भविष्यवाद की निजी अनुभवातीतता
(द सेल्फ ट्रान्सेन्डेन्स आव फ्यूचरिज्म) ४३६
(१०) विराग और रूपान्तरण (डिटैचमेन्ट एण्ड ट्रान्सफिगरेशन) ४४१
(११) पुनर्जन्म—पुनरागमन ४४५

२०. विघटन होने वाले समाज और व्यक्तियों का सम्बन्ध
(१) सर्जनात्मक प्रतिभा त्राता के रूप में ४४७
(२) तलवार से सज्जित त्राता ४४८
(३) समय-मशीन के लिए त्राता ४५१
(४) राजा के आवरण में दार्शनिक ४५२
(५) मानव में ईश्वरत्व ४५६
२१. विघटन का लयात्मक रूप ४६०
२२. विघटन द्वारा मानकीकरण ४६६
सम्पादकीय नोट तथा १–५ सारणी ४६९
अनुक्रमणिका ४८५

इतिहास : एक अध्ययन

प्रथम खण्ड

१

विषय-प्रवेश

१. ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई

इतिहासकार जिस समाज में रहते हैं और काम करते हैं उस समाज के विचारों का परिष्कार नहीं करते, अपितु उसी को अपने सिद्धान्तों के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इधर कुछ शतियों में, विशेषतः कुछ पीढ़ियों में, आत्मनिर्भर होने वाले स्वतन्त्र राष्ट्रों में जो विकास हुआ है उसके आधार पर इतिहासकारों ने राष्ट्रों को ही ऐतिहासिक अध्ययन के लिए चुना है। किन्तु यूरोप के किसी राष्ट्र अथवा राष्ट्रीय राज्य (नेशनल स्टेट) का इतिहास ऐसा नहीं है जिसके द्वारा उसके इतिहास की व्याख्या की जा सके। यदि कोई ऐसा राज्य हो सकता तो वह ग्रेट ब्रिटेन होता। यदि ग्रेट ब्रिटेन (और आरम्भिक कालों में इंग्लैंड) में अपने में ही ऐतिहासिक अध्ययन का समुचित क्षेत्र नहीं मिलता तो हम अच्छी तरह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि कोई वर्तमान यूरोपीय राष्ट्रीय राज्य इस अध्ययन के उपयुक्त नहीं है।

क्या इंग्लैंड मात्र के इतिहास के अध्ययन से वहाँ का इतिहास स्पष्ट हो सकता है? क्या वहाँ के और बाहर के देशों के सम्बन्ध में हम वहाँ का आन्तरिक इतिहास पा सकते हैं। यदि यह सम्भव है तब क्या बाहरी देशों के सम्बन्ध का महत्त्व कम है? और जब हम इसका विश्लेषण करेंगे तब क्या हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि इंग्लैंड पर विदेशी प्रभाव कम है और इंग्लैंड का विदेशों पर अधिक प्रभाव पड़ा है? यदि इन प्रश्नों का उत्तर हाँ में है, तो हमारा यह निष्कर्ष ठीक होगा कि इंग्लैंड का इतिहास पढ़े बिना दूसरे देशों के इतिहास को समझना सम्भव न होगा, किन्तु दूसरे देशों के इतिहास को पढ़े बिना इंग्लैंड का इतिहास प्रायः समझा जा सकता है। इन प्रश्नों पर भली-भाँति विचार करने के लिए हमको इंग्लैंड के इतिहास की प्रमुख घटनाओं पर उलटे क्रम से ध्यान देना चाहिए। इस उलटे क्रम से मुख्य अध्याय इस प्रकार हो सकते हैं:—

(क) औद्योगिक प्रणाली पर आर्थिक व्यवस्था की स्थापना
(अठारहवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश से)

(ख) उत्तरदायी संसदीय शासन की स्थापना
(सत्रहवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश से)

(ग) विदेशों में विस्तार
(सोलहवीं शती के तीसरे चतुर्थांश में समुद्री डकैती से आरम्भ होकर उसका विश्वव्यापी विदेशी व्यापार में विकास, उष्ण कटिबन्ध के देशों का ग्रहण और शीतोष्ण जलवायु के प्रदेशों में अंग्रेजी बोलने वाली जातियों के नये समुदायों की स्थापना।)

(घ) धार्मिक सुधार (रिफार्मेशन)
(सोलहवीं शती के दूसरे चतुर्थांश से)

(च) पुनर्जागरण—(रेनेसां)—आन्दोलन के राजनीतिक, आर्थिक, कलात्मक तथा बौद्धिक सभी पहलू (पन्द्रहवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश से)

(छ) सामन्ती तन्त्र की स्थापना। (ग्यारहवीं शती से)

(ज) तथाकथित वीरकालीन धर्म से अंग्रेजों का पश्चिम से चले ईसाई धर्म में परिवर्तन (छठीं शती के अन्तिम वर्षों से)

साधारणतः अंग्रेजी इतिहास को जब हम आज से पीछे की ओर देखते हैं तब हमें जान पड़ता है कि जितना ही पहले जाते हैं उतना ही आत्मनिर्भरता अथवा सबसे अलग रहने का कम प्रमाण मिलता है। वास्तव में धार्मिक परिवर्तन काल से अंग्रेजी इतिहास का सब कुछ आरम्भ होता है। यह धर्म-परिवर्तन आत्म-निर्भरता के बिलकुल विपरीत था। इसके कारण लगभग आधे दर्जन बर्बर समुदाय नवजात पश्चिमी समाज में मिल गये जिनमें उनका सामान्य कल्याण था। जहाँ तक सामन्ती तन्त्र की बात है 'विनो ग्रेडाफ़' ने सुन्दर ढंग से बता दिया है कि नारमन विजय के पहले इंग्लैंड की धरती पर उसका बीज उग चुका था। फिर भी इस अंकुर को पनपने में शक्ति मिली बाहरी कारणों से, और वह थी डैनिश चढ़ाई। ये चढ़ाइयाँ स्कैंडिनेविया की जनरेला (फोलकर वन डुरंग) का अंश थीं जिसके परिणामस्वरूप उसी समय फ्रांस में भी सामन्ती तन्त्र पनप रहा था। नारमन विजय ने इस तन्त्र को पूर्ण रूप से स्थापित कर दिया। पुनर्जागरण के बारे में सभी स्वीकार करते हैं कि उसका सांस्कृतिक तथा राजनीतिक, दोनों ही रूप, उत्तरी इटली के प्राण का उच्छ्वास था। यदि मानवतावाद (ह्युमैनिज्म) निरंकुशतावाद (ऐब्सोल्युटिज्म) तथा शक्ति-सन्तुलन (बैलेंस आव पावर) बाग में रोपे गये अंकुर के समान छोटे रूप में उत्तरी इटली में १२७५ से १४७५ के बीच दो शतियों में न उगाये गये होते तो १४७५ के बाद आल्प्स के उत्तर में वे न जम पाते। एक बात और। धर्म-सुधार विशेषतः इंग्लैंड की घटना न थी। वह सारे उत्तर-पश्चिमी यूरोप का आन्दोलन था जिसका अभिप्राय दक्षिण यूरोप के प्रभाव से अपने को मुक्त करना था क्योंकि इसकी दृष्टि भूमध्य सागर के उन पश्चिमी देशों की ओर थी जो समाप्त हो चुके थे। धर्म-सुधार आन्दोलन में इंग्लैंड का नेतृत्व नहीं था। यूरोप के अतलान्तक तट के राष्ट्रों में विदेशों को विजय करने की जो होड़ चल रही थी उसमें भी इंग्लैंड अगुआ नहीं था। जो शक्तियाँ पहले से मैदान में थीं, उनसे लड़कर बाद में उसने विजय प्राप्त की।

अब दो अन्तिम प्रकरणों पर विचार करना है। संसदीय व्यवस्था और औद्योगिक व्यवस्था की उत्पत्ति जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इनका जन्म और विकास इंग्लैंड में हुआ और यहीं से संसार के दूसरे देशों में ये गयीं। विद्वान् इस मत का समर्थन नहीं करते। संसदीय व्यवस्था के सम्बन्ध में लार्ड ऐक्टन का कहना है—'साधारण इतिहास उन कारणों का परिणाम नहीं है जो राष्ट्रीय हैं। इनका कारण बहुत व्यापक है। फ्रांस में जो वर्तमान राजत्व व्यवस्था है (किंगशिप) वह इंग्लैंड के उसी प्रकार के आन्दोलन का अंग है। बूरबन और स्टुअर्ट परिवार एक ही सिद्धान्त के अनुगामी थे, यद्यपि उस सिद्धान्त के परिणाम भिन्न थे।' दूसरे शब्दों में इंग्लैंड में जो संसदीय व्यवस्था आयी वह उन शक्तियों का परिणाम थी जो केवल इंग्लैंड में ही नहीं कार्य कर रही थीं, इंग्लैंड और फ्रांस में साथ-साथ काम कर रही थीं।

इंग्लैंड औद्योगिक क्रान्ति के जन्म के बारे में 'हैमंड' दम्पति से बढ़कर और दूसरे विद्वान् के मत लिखने की आवश्यकता नहीं है । 'द राइज़ आव मार्डन इंडस्ट्री' की भूमिका में उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति के आविर्भाव का कारण ढूंढ़ने के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह देखनी है कि अठारहरवीं शती में अतलान्तक में उसकी भौगोलिक स्थिति अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में क्या थी तथा यूरोप के शक्ति-सन्तुलन में उसका क्या स्थान था ? देखने से यह जान पड़ता है कि ब्रिटेन के इतिहास का बौद्धिक अध्ययन उसे अलग रख कर नहीं किया जा सकता । और यदि यह ग्रेट ब्रिटेन के लिए सत्य है तो निर्णयात्मक ढंग से अन्य राष्ट्रीय राज्यों के लिए भी सत्य है ।

इंग्लैंड के इतिहास की संक्षेप में जो परीक्षा हमने की है, उसका परिणाम तो नकारात्मक है, किन्तु उससे एक बात का पता चला । इंग्लैंड के इतिहास में जिन अध्यायों का हमने विलोम ढंग से अध्ययन किया वे किसी-न-किसी कथा के सत्य रूप थे । किन्तु वे कथाएँ ऐसे समाज की थीं जिसमें इंग्लैंड का योगदान आंशिक था । इन कृत्यों में ग्रेट ब्रिटेन के अतिरिक्त और राष्ट्रों का योगदान भी था । इस विषय के बौद्धिक अध्ययन के लिए इंग्लैंड के ही समान और समुदायों का अध्ययन करना ठीक होगा । अर्थात् इंग्लैंड ही नहीं, फ्रांस और स्पेन, नेदरलैंड तथा स्कैंडिनेविया के देशों का भी । लार्ड एक्टन की पुस्तक का जो अंश उद्धृत किया गया है उससे सम्पूर्ण इतिहास तथा उसके अंशों का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है ।

इतिहास में जो शक्तियाँ कार्य करती हैं वे राष्ट्रीय ही नहीं हैं । परिणामों के कारण और भी व्यापक हैं । प्रत्येक अंश पर जो प्रभाव पड़ते हैं वे एक अंश के परिणाम से समझ में नहीं आ सकते । इसे जानने के लिए समाज के सभी अंशों का व्यापक अध्ययन आवश्यक है । एक ही कारण का परिणाम विभिन्न भागों पर भिन्न-भिन्न होता है । एक ही प्रकार की शक्ति की प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है और उसका परिणाम भी भिन्न होता है । समाज को अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । समाज का प्रत्येक सदस्य जो सबसे अच्छा ढंग समझता है, उस ढंग से उसे सुलझाता है । ये समस्याएँ अग्नि-परीक्षा के रूप में लगातार आती रहती हैं । जिस प्रकार समाज के विभिन्न समुदाय इस अग्नि-परीक्षा का सामना करते हैं उसी के अनुसार क्रमशः समुदाय एक दूसरे से भिन्न होते जाते हैं । किसी विशेष देश का किसी विशेष परिस्थिति में कैसा आचरण होता है, हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम यह भी न देखें कि उसके साथी देश का उसी परिस्थिति में कैसा—उसी के समान या भिन्न आचरण होता है । साथ ही समाज के समस्त जीवन में उन अग्नि-परीक्षाओं को भी देखना होगा ।

ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या का यह रूप समझने के लिए ठोस उदाहरण ठीक होगा । यह उदाहरण हम प्राचीन यूनान के चार सौ वर्षों के इतिहास अर्थात् ईसा के पूर्व ७२५ से ३२५ का इतिहास ले सकते हैं ।

इस काल के आरम्भ में ही अनेक राज्यों की, जो इस समाज के सदस्य थे, आबादी बढ़ जाने से खाद्य की समस्या उपस्थित हुई । उस समय के हेलेनी[१] लोगों ने अपने क्षेत्रों में अनेक प्रकार

---

[१] हेलेनिक ।

के अन्न उपजा कर इसे पूरा किया । जब संकट काल आया तब विभिन्न राज्यों ने विभिन्न ढंगों से प्रयास किया ।

कुछ राज्यों ने जैसे कारिन्थ और कालसिस ने सिसिली, दक्षिण इटली, थ्रेस तथा और खेतिहर प्रदेशों को जीत कर उन्हें अपना उपनिवेश बना कर बढ़ी जनसंख्या को वहाँ भेज दिया । इस प्रकार जो यूनानी उपनिवेश बने उससे केवल हेलेनी समाज का भौगोलिक विस्तार हुआ, समाज के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । दूसरी ओर कुछ राज्य ऐसे थे जिनके जीवन में तबदीली हुई ।

उदाहरण के लिए, स्पार्टा ने अपने नागरिकों की भूख की शान्ति के लिए अपने निकटतम यूनानी पड़ोसियों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की । परिणामस्वरूप वह अपने ही समान जीवट के लोगों से बरांबर और कठिन युद्ध करके अधिक धरती प्राप्त कर सका । इस स्थिति के कारण स्पार्टा के राजनीतिज्ञों को अपने देशवासियों का आरम्भ से अन्त तक सैनिक जीवन बनाने के लिए विवश होना पड़ा । इसके लिए उन्हें कुछ आदिम सामाजिक व्यवस्थाओं को अपनाना और पुनरुज्जीवित करना पड़ा जो स्पार्टा से तथा और दूसरे यूनानी समुदायों से लोप हो चली थीं ।

एथेंस ने जनसंख्या के प्रश्न को दूसरे ढंग से सुलझाया । इसने अपनी कृषि की उपज को, विशेषत: निर्यात के योग्य बनाया । निर्माण के लिए वस्तुएँ भी तैयार करनी आरम्भ की और फिर राजनीतिक संस्थाओं का ऐसा विकास किया कि उन वर्गों को उचित अधिकार दिया जाय जो इन नयी आर्थिक व्यवस्थाओं के कारण उत्पन्न हो गये थे । दूसरे शब्दों में एथेंस के राजनीतिज्ञों ने आर्थिक तथा राजनीतिक क्रान्ति लाकर सामाजिक क्रान्ति से देश को बचा लिया । अपनी समस्या के समाधान के लिए व्यवस्था खोजने के साथ ही साथ उन्होंने सारे हेलेनी समाज की प्रगति के लिए नयी राह निकाल दी । पेरिक्लीज़ ने, जब अपने नगर की भौतिक सम्पत्ति के संकट के समय यह कहा था, कि यह यूनान की पाठशाला है, उसका यही अभिप्राय था ।

इस दृष्टि से, जिससे एथेंस या स्पार्टा या कारिंथ या कालसिस ही नहीं, सारे यूनानी समाज को देखा जाय तो, हम ७२५-३२५ ई० पू० के अनेक समुदायों के इतिहास को समझ पाते हैं और इस संक्रमण काल के पश्चात् आने वाले युग के इतिहास के महत्त्व को भी समझ सकते हैं । इस प्रकार हम अनेक प्रश्नों का उत्तर पा जाते हैं जो केवल कालसिस, कारिंथ, स्पार्टा अथवा एथेंस के इतिहास के अध्ययन से नहीं पा सकते । इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि कुल अर्थों में कालसिस अथवा कोरिंथ का इतिहास सामान्य था, किन्तु स्पार्टा तथा एथेंस का इतिहास अनेक दिशाओं में सामान्य से भिन्न हो गया था । यह कहना सम्भव नहीं है कि यह विभिन्नता किस प्रकार आ गयी । इतिहासकारों का यही संकेत था कि स्पार्टा और एथेंस के निवासियों में हेलेनी इतिहास के आरम्भिक काल से ही कुछ जन्मजात विशेष गुण थे । एथेंस और स्पार्टा के विकास का कारण इस प्रकार बताने का अर्थ यही निकला कि यह मान लिया कि इन प्रदेशों का विकास हुआ ही नहीं और ये दोनों जातियाँ जैसी इतिहास के आरम्भ काल में थीं वैसी ही बाद में भी रहीं । किन्तु यह कल्पना तथ्यों के विपरीत है । उदाहरण के लिए, 'ब्रिटिश आरकियोलोजिकल स्कूल' की ओर से स्पार्टा में जो खुदाई हुई है उसमें इस बात का आश्चर्यजनक प्रमाण मिला है कि ईसा पूर्व छठीं शती के मध्य तक स्पार्टा के तथा दूसरे यूनानी समुदायों के जीवन में विशेष अन्तर नहीं था । एथेंस की भी विशेषताएँ, जो उसने यूनानी काल (हेलेनेस्टिक एज) में यूनानी संसार

(हेलेनिक वर्ल्ड) को प्रदान कीं, अर्जित विशेषताएँ थीं। उनकी उत्पत्ति साधारण दृष्टि से समझ में आ सकती है। स्पार्टा का हाल बिलकुल उलटा था। वह मानो अँधेरी गली में चला गया था। यही अन्तर वेनिस, मिलन और जेनोआ में पाया तथा उत्तरी इटली के और नगरों के बीच तथाकथित मध्य युग में था। और ऐसा ही अन्तर फ्रांस, स्पेन, नेदरलैंड, ग्रेट ब्रिटेन में और पश्चिम के दूसरे राज्यों में आजकल है। अंश को समझने के लिए पूर्ण पर हमें ध्यान देना होगा क्योंकि पूर्ण का ही अध्ययन अपने में स्पष्ट है।

मगर यह 'पूर्ण' जिसका अध्ययन अपने में स्पष्ट है, है क्या ? और उसकी स्थानिक तथा भौतिक सीमाओं का पता कैसे लगेगा। हमें फिर इंग्लैंड के इतिहास के अध्यायों के संक्षेप को देखना होगा कि वह कौन बोधगम्य बड़ा 'पूर्ण' क्षेत्र है इंग्लैंड का इतिहास जिसका एक अंश है।

यदि हम अपने अन्तिम अध्ययन, औद्योगिक व्यवस्था के संस्थापन से अध्ययन आरम्भ करें तो हमको ज्ञात होगा कि इस क्षेत्र के अध्ययन की सीमा विश्वव्यापी है। इंग्लैंड की राजनीतिक क्रान्ति को समझने के लिए पश्चिमी यूरोप की आर्थिक परिस्थिति को ही नहीं देखना पड़ेगा हमें उष्ण कटिबन्ध के देश, अफ्रीका, अमेरीका, रूस, भारत तथा सुदूरपूर्व पर भी दृष्टि डालनी होगी। किन्तु जब हम संसदीय व्यवस्था को देखते हैं और औद्योगिक व्यवस्था से राजनीतिक व्यवस्था की ओर मुड़ते हैं तब हमारी सीमा संकुचित हो जाती है। लार्ड एक्टन के शब्दों में जिन कानूनों पर फ्रांस और इंग्लैंड में बूरबन और स्टुअर्ट चलते थे वे रूस के रोमानोफों, तुर्की के उसमानलियों, भारत के तैमूरियों, चीन के मंचुओं और जापान के तोकूगानों में नहीं माने जाते थे। इन देशों के राजनीतिक इतिहास की व्याख्या समान रूप में नहीं हो सकती। यहाँ हमारे सामने रुकावट आ जाती है। जिन 'कानूनों' के अनुसार बूरबन और स्टुअर्ट कार्य करते थे वे यूरोप के अन्य पश्चिमी देशों में चलते थे और पश्चिमी यूरोप के देशों ने जो समुद्र-पार उपनिवेश स्थापित किये थे उनमें चलते थे। किन्तु रूस और तुर्की की पश्चिमी सीमा के आगे उनका प्रभाव नहीं था। इस सीमा के पूरब दूसरी विधि और नियम का चलन था और उनका परिणाम भी दूसरा था।

यदि हम इंग्लैंड के इतिहास के अपने प्रारम्भिक अध्यायों की ओर ध्यान दें तो केवल पश्चिमी यूरोप का फैलाव विदेशों में नहीं हो रहा था। अतलान्तक तट के जितने राज्य थे सभी इस कार्य में संलग्न थे। 'धार्मिक सुधार' और पुनर्जागरण का अध्ययन करते समय हम रूस और तुर्की के धार्मिक तथा सांस्कृतिक विकास की उपेक्षा करें तो कोई हानि नहीं होगी। पश्चिमी यूरोप की सामन्तवादी व्यवस्था का बैजन्तिया (बाइज़ेंटाइन) और इस्लामी सम्प्रदायों के सामन्तवाद से कोई सम्बन्ध नहीं था।

अन्त में इंग्लैंड ने जब पश्चिमी ईसाई मत स्वीकार कर लिया तब उसने एक समाज में प्रवेश दिया और परिणामतः उसे दूसरे समाजों से अलग रहना पड़ा। सन् ६६४ ई० के ह्विटबी की धर्म-परिषद् (साइना आव ह्विटबी) तक सम्भवतः अंग्रेज लोग केलटिक जातियों के सुदूर पश्चिमी ईसाई मत को स्वीकार लेते और यदि आगस्टीन का मिशन अन्त में असफल होता तो वे सम्भवतः रोम से अलग होकर वेल्श और आयरिश लोगों के साथ भिन्न ईसाई धर्म की संस्थापना करते। जिस प्रकार ईसाई-जगत् की पूर्वी सीमा पर नेस्टोरी थे। बाद में जब अरब के मुसलमान अतलांतक के किनारे पहुँचे, ब्रिटिश द्वीप के ईसाइयों का सम्पर्क यूरोपीय महाद्वीप के ईसाइयों

से छूट गया जैसे अबीसीनिया अथवा मध्य ऐशिया के ईसाइयों का छूट गया। वे शायद मुसलमान हो जाते जैसे 'मोनोफाइसाइटों' अथवा 'नेस्टोरियों' ने अरब शासन के समय किया। ये काल्पनिक विकल्प विचित्र मालूम हो सकते हैं, किन्तु इन पर ध्यान देने से हमें यह स्मरण होता है कि सन् ५९७ ई० में धर्म-परिवर्तन के कारण इंग्लैंड पश्चिमी ईसाई-जगत् के साथ तो एक हो गया किन्तु विश्व के साथ एक नहीं हुआ। अपितु दूसरे धार्मिक समुदायों में और इसमें गहरा भेद भी हो गया।

इंग्लैंड के इतिहास के अध्यायों के इस निरीक्षण द्वारा हमें विभिन्न कालों में यहाँ के इतिहास के बौद्धिक अध्ययन का विभिन्न अवस्थाओं में अवसर मिलता है। (यह निरीक्षण क्षेत्रीय क्षितिजों के आधार पर किया जाना चाहिए। इस क्षेत्रीय अध्ययन में सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपों का अन्तर समझना होगा। जैसे आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक। क्योंकि क्षेत्रीय दृष्टि से प्रत्येक पहलू में बहुत अन्तर है। हम जिस पहलू पर विचार करेंगे वह दूसरे से भिन्न होगा।) आर्थिक पहलू ग्रेट ब्रिटेन और सारे जगत् का समान-सा है। राजनीतिक स्वरूप भी लगभग एक-सा है। सांस्कृतिक पहलू की ओर जब हम ध्यान देते हैं तब देखते हैं कि इस क्षेत्र में ग्रेट ब्रिटेन का विस्तार बहुत कम है। इसकी सांस्कृतिक आत्मीयता पश्चिमी यूरोप के तथा अमरीका और दक्षिणी महाद्वीपों के कैथोलिक तथा प्रोटेसटंट प्रदेशों से है। यद्यपि इस समाज पर कुछ विदेशी प्रभाव पड़ा है जैसे रूसी साहित्य का, चीनी चित्रकारी का और भारतीय धर्म का और यद्यपि इससे भी अधिक इस पश्चिमी समाज का प्रभाव दूसरे समाजों पर पड़ा है जैसे पूर्वी और परम्परावादी ईसाइयों पर, मुसलमानों पर, हिन्दुओं पर और सुदूर पूर्व देश की जातियों पर, फिर भी यह सत्य है कि पश्चिमी यूरोप का संसार इन सबसे अलग है।

इससे भी पहले के काल का, इन्हीं तीनों दृष्टियों से, हम क्षेत्रों के अनुसार अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि भौगोलिक सीमा क्रमशः संकुचित होती जाती है। सन् १६७५ के लगभग का यदि इस क्षेत्रीय टुकड़े का अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि आर्थिक स्तर पर यदि हम केवल व्यापार का विस्तार देखें तो यह सीमा अधिक कम नहीं हुई है। उसकी मात्रा और किन वस्तुओं का व्यापार होता था छोड़ दें। राजनीतिक क्षेत्र की सीमा संकुचित होकर उतनी ही रह जाती है जितनी इस समय सांस्कृतिक प्रभाव की सीमा है। और आगे यदि सन् १४७५ ई० का क्षेत्रीय अध्ययन करें तो तीनों दृष्टियों से विदेशी भाग लोप हो जाते हैं। आर्थिक स्तर पर भी सीमाएँ संकुचित होकर आज के सांस्कृतिक प्रभाव की सीमा तक रह जाती हैं अर्थात् पश्चिमी और मध्य यूरोप के देशों तक। हाँ, मध्य सागर के पूरब के भी कुछ छोटे-मोटे स्थल थे जो अब शीघ्रता से अलग होते चले जा रहे हैं। यदि हम प्राचीन काल का, सन् ७७५ ई० के लगभग का क्षेत्रीय इतिहास देखें तो सीमाएँ तीनों दृष्टियों से और भी अधिक संकुचित हो जाती हैं। उस समय इस समाज का क्षेत्र इतना ही था जितना शार्लमान का राज्य था और साथ में ब्रिटेन में जो रोमन साम्राज्य के टुकड़े थे। आरबीरी प्रायद्वीप इस क्षेत्र के बाहर अरब के मुसलिम खलीफाओं के शासन में था, उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी यूरोप असभ्य बर्बरों के साथ में था। अंग्रेजी द्वीप के उत्तर-पूर्वी किनारे 'सुदूर पश्चिमी ईसाइयों' के हाथ में थे और दक्षिण इटली बैजन्तियों के हाथ में थी।

जिस समाज के क्षेत्र का वर्णन ऊपर किया गया है उसे हम पश्चिमी ईसाई-जगत् कहेंगे। इस नाम को ध्यान में रखते हुए यदि हम क्षेत्र की कल्पना करेंगे तो उस समय की दुनिया में उसी के

साथ-साथ उसके प्रतिरूप क्षेत्र भी दिखाई देंगे, विशेषतः सांस्कृतिक स्तर की समानता के। आज के युग में हम उस सांस्कृतिक स्तर के कम से कम चार सजीव समाज संसार में देखते हैं।

(१) दक्षिण-पूर्व यूरोप तथा सबका पूर्वी परम्परावादी ईसाई मत का समाज (आरथोडाक्स क्रिशचियानिटी)।

(२) इस्लामी समाज जिसका केन्द्र मरुभूमि में है और जो वहाँ से तिरछे उत्तरी अफ्रीका तक और मध्य पूर्व से चीन की दीवार के बाहरी किनारे तक फैला है।

(३) हिन्दू समाज जो उष्ण प्रदेश में भारत के उप-महाद्वीप में है।

(४) सुदूर पूर्वी समाज जो मरुभूमि और प्रशान्त महासागर के बीच उप-उष्ण कटिबन्ध तथा सम-शीतोष्ण कटिबन्ध में है।

ध्यान से देखने पर दो और समाजों को हम पाते हैं। जो इसी प्रकार के समाज के जीवाश्म (फसिल) चिह्न हैं। एक तो आरमीनिया, मेसोपोटामिया, मिस्र और अबीसीनिया के 'मोनोफाइसाइटी' ईसाई और कुर्दिस्तीन के 'नेस्टोरी' ईसाई तथा मलावार के पूर्व-नेस्टोरी ईसाई और यहूदी और पारसी दूसरे तिब्बत तथा मंगोलिया के महायान बौद्ध और श्रीलंका, बर्मा, श्याम तथा कम्बोडिया के हीनयान बौद्ध और भारत के जैन।

मजेदार बात यह है कि सन् ७७५ ई० के क्षेत्रीय टुकड़ों का जब हम अध्ययन करते हैं तब संसार में उतने ही समाज मिलते हैं जितने आज। पश्चिमी समाज की उत्पत्ति के समय से आज तक ये समाज उतने ही हैं। जीवन संघर्ष में पश्चिम ने अपनी समसामयिक जातियों को पराजित करके विवश कर दिया है और उन्हें आर्थिक जाल तथा राजनीतिक दाव-पेंच में फँसा रखा है, किन्तु उन्हें उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता से अलग नहीं कर सके। उनकी अवस्था निरीह है, किन्तु वे अपनी आत्मा को अब भी अपनी कह सकते हैं।

जो विवेचना अभी तक हमने की है उसका अभिप्राय यह है कि दो प्रकार के सम्बन्धों का भेद हमें अच्छी तरह समझना चाहिए। उन समुदायों के बीच का समुदाय जो एक ही समाज के अन्तर्गत है और उनके बीच के जो भिन्न-भिन्न समाजों में हैं।

देश (स्पेस) की दृष्टि से हमने पश्चिमी समाज पर कुछ विचार किया है अब काल की दृष्टि से थोड़ा विवेचन करना चाहिए। यह तो हम तुरन्त ही समझ सकते हैं कि हम भविष्य के बारे में कुछ नहीं जान सकते। इस रुकावट के कारण इस समाज या किसी समाज का अध्ययन बहुत सीमित हो जाता है। हमें पश्चिमी समाज के आरम्भ काल के विवेचन से ही सन्तोष करना होगा।

सन् ८४३ ई० में वरदून की सन्धि के अनुसार जब शार्लमान का राज्य उसके तीन पौत्रों में बँटा तब उसके ज्येष्ठ पौत्र लोथेयर ने अपने दादा की दो राजधानियों—आकेन और रोम—पर अपना अधिकार जमाया। उसका राज अखंड रहे इसलिए उसे वह भाग मिला जो 'टाइबर' और 'पो' के मुहाने से 'राइन' के मुहाने तक फैला था। लोथेयर का यह टुकड़ा ऐतिहासिक भूगोल में विलक्षण बात समझी जाती है। फिर भी तीनों भाई समझते थे कि पश्चिमी संसार में इनका महत्त्व है। भविष्य जो भी हो, इसका भूत महान् था।

लोथेयर और उसके दादा रोमन सम्राट् के नाम से 'आकेन' से 'रोम' तक राज करते थे। यह भाग, रोम से आल्प्स पर्वत होते हुए आकेन तक और बाद में आकेन से इंग्लिश चैनल के पार

रोमन दीवार (इंग्लैंड में) तक, जो उस समय के विलुप्त रोमन साम्राज्य का एक प्रकार प्राचीर का काम दे रहा था। रोम से आल्प्स होते हुए उत्तर-पश्चिम तक संचार की सुविधा करके, राईन के बाँये तट पर सैनिक सीमा स्थापित करके और दक्षिणी ब्रिटेन को अपने राज्य में मिलाकर, रोमनों ने यूरोप के आल्प्स के पार के देशों को अपने साम्राज्य में मिला लिया था। यद्यपि यह साम्राज्य इस विशेष भाग को छोड़ कर विशेषतः मध्य सागर के क्षेत्र में ही थी। इस प्रकार लोथेयर के पहले ही लोथेरिंजिया की सीमा रोमन साम्राज्य के संगठन में सम्मिलित हो गयी थी और उसके पश्चात् पश्चिमी समाज में। किन्तु रोमन साम्राज्य में और बाद के पश्चिमी समाज में इस क्षेत्र के कार्य भिन्न-भिन्न थे। रोमन साम्राज्य में यह सीमा मात्र था। पश्चिमी समाज में यह दोनों ओर विस्तार की रेखा थी। सन् ३७५—६७५ के सुषुप्त काल में जब रोमन साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और अव्यवस्थित दशा से पश्चिमी यूरोप का क्रमशः विकास हुआ, पुराने समाज का ही एक अंश निकाल कर उसी मानव का नये समाज के रूप में निर्माण हुआ।

७७५ वर्ष के पहले के पश्चिमी समाज के जीवन का इतिहास विलोम ढंग से देखने से स्पष्ट है कि वह जीवन पश्चिमी समाज का नहीं, अपितु रोमन साम्राज्य में जिस प्रकार का समाज था, उसका था। हम यह भी प्रमाणित कर सकते हैं कि पश्चिमी समाज के इतिहास का कोई तत्त्व यदि पहले के समाज में था तो उसका कृत्य दोनों समाजों में अलग-अलग था।

लोथेयर वाला भाग पश्चिमी समाज का आधार था क्योंकि ईसाई धर्म के अनुयायी रोमन सीमा की ओर बढ़े चले आ रहे थे और उनकी इसी सीमा पर बर्बर जातियों से मुठभेड़ हुई जो अवान्तर भूमि से आ रहे थे। इस मिलन से नये समाज का जन्म हुआ। इसलिए पश्चिमी समाज का इतिहासकार यदि इस काल से पूर्व समय तक का इस समाज के मूल का इतिहास खोजेगा तो उसे ईसाई धर्म और बर्बरों के इतिहास का अध्ययन करना होगा। और वह इस इतिहास की शृंखला २०० ई० पू० तक जो सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तन होते रहे उनमें पायेगा। जिस काल में हेनिबल के युद्धों के आघात से ग्रीक-रोमन समाज नष्ट हो गया, रोम ने उत्तर-पश्चिम की अपनी लंम्बी भुजा क्यों फैलायी और आल्प्स के आगे के यूरोप का भाग अपने साम्राज्य में क्यों मिलाया? क्योंकि उसी ओर उसे कारथेज वालों से जीवन-मरण का युद्ध करना पड़ा। आल्प्स पार करने के पश्चात् वह राइन पर ही क्यों रुक गया? क्योंकि आगस्टीन के काल में दो शतियों के थका देने वाले युद्ध तथा क्रान्तियों के कारण उसकी जीवनी शक्ति समाप्त हो गयी थी। अन्त में बर्बर क्यों विजयी हुए? क्योंकि जब ऊँची और कम साधना वालों में संघर्ष होता है और कोई एक दूसरे की सीमा पर पूर्ण विजय नहीं प्राप्त कर पाता तब ऐसा नहीं होता कि दोनों की सभ्यता का बराबर अंश समाज में आये। बल्कि समय के साथ-साथ पिछड़ी सभ्यता की ओर समाज झुक जाता है। जब बर्बरों ने सीमा तोड़ी तो धार्मिक समुदाय से उनका सामना क्यों हुआ? इसका मुख्य कारण यह था हैनिबली युद्ध के परिणामस्वरूप जो आर्थिक और सामाजिक क्रान्तियाँ हुईं और पश्चिम के क्षेत्र उजाड़ हो गये उन पर कार्य करने के लिए पूरब से दासों का समूह लाया गया। इस प्रकार जबरदस्ती जो मजदूर आये उसके कारण शान्तिपूर्ण पूर्वी धर्मों का प्रवेश ग्रीक-रोमन समाज में हुआ। इन धर्मों में परलोक में मुक्ति की जो भावना थी उसके कारण उन प्रबल अल्प संख्यकों की आत्मा की ऊसर भूमि में उसे बीज बोने का अच्छा अवसर मिला जो ग्रीक-रोमन समाज के कल्याण की रक्षा इस लोक में नहीं पा सकी।

ग्रीक-रोमन इतिहास के विद्यार्थी के लिए, ईसाई तथा बर्बर दोनों विदेशी तत्त्व जान पड़ेंगे। उन्हें वह ग्रीक-रोमन अथवा और अच्छे शब्द में 'हेलेनी' समाज की अन्तिम अवस्था का देशी तथा विदेशी सर्वहारा[१] कह सकते हैं। वह विद्यार्थी कहेगा कि हेलेनी संस्कृति के जो महान् मुखिया थे, यहाँ तक कि मारकस आरीलियस ने भी इस पर ध्यान नहीं दिया। वह यही वतायेगा कि ईसाई धर्मावलम्वी और बर्बर योद्धा दोनों ही विकृत मनःस्थिति वाले थे और हेलेनी समाज में उनका प्रवेश उसी समय हुआ जब यह समाज हैनिवली युद्ध के कारण जर्जर हो गया था।

इस खोज से पश्चिमी समाज के पूर्व काल के सम्बन्ध में हम एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। यद्यपि इस समाज का जीवन-काल इसी समाज के अन्य राष्ट्रों से अधिक था, फिर भी उतना अधिक नहीं था जितना उतने ही काल में उस समाज के और उपवर्गों का था। इस समाज के उद्‌भव के इतिहास का अध्ययन करते समय हमें एक दूसरे समाज की अन्तिम अवस्था का पता चलता है। इस दूसरे समाज का आरम्भ स्पष्टतः और भी पहले था। यह जो कहा जाता है कि इतिहास का सूत्र अविच्छिन्न होता है, वह व्यक्ति के जीवन के समान अविच्छिन्न नहीं होता। यह सूत्र अनेक पीढ़ियों के जीवन से बना होता है। यह उसी प्रकार का कहा जा सकता है जैसी अविच्छिन्नता पिता और पुत्र की होती है।

इस अध्याय में जो तर्क उपस्थित किये गये हैं यदि वे मान्य हैं तो यह मानना होगा कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोध इकाई राष्ट्र-राज्य अथवा मानव जाति नहीं हो सकती, अपितु मानव जाति का वह समूह हो सकता है जिसे हम समाज कहते हैं। आज ऐसे पाँच समाजों का पता है और कुछ समाजों का भी जो निर्जीव और समाप्त हो गये हैं। इनमें से एक समाज का अर्थात् अपने (पश्चिम यूरोप) समाज के मूल की खोज में हमें ऐसे महत्त्वपूर्ण समाज की मृत्यु का भी पता चला है जिसका हमारा समाज सन्तानस्वरूप है। जिससे हमारा पैतृक सम्बन्ध है। दूसरे अध्याय में हम ऐसे कुछ समाजों की सूची उपस्थित करने की चेष्टा करेंगे जो इस धरती पर रही है, और उनका परस्पर क्या सम्वन्ध है।

---

[१] सर्वहारा शब्द यहाँ और आगे भी उस समाज या समूह के लिए प्रयोग किया गया है जो किसी समाज के इतिहास के किसी काल में समाज के अन्दर है, किन्तु उस समाज का नहीं है। —लेखक।

२. सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन

हमने अभी देखा है कि पश्चिमी समाज (यूरोप का) अथवा सभ्यता पूर्ववर्ती सभ्यता से सम्बन्धित है। इसी प्रकार आगे अनुसन्धान करने के लिए यह देखना होगा कि एक ही जाति (स्पीसीज़) जो समाज में है अर्थात् पूर्वी ईसाई समाज (आरथोडाक्स क्रिश्चियन), इस्लामी समाज, हिन्दू समाज और सुदूर पूर्वी समाज (फार ईस्टर्न), उनके भी कोई पूर्वज हैं क्या? किन्तु इसके पहले कि हम उनकी खोज करें हमारे मन में स्पष्ट होना चाहिए कि हम क्या खोज रहे हैं। अर्थात् वे कौन चिह्न हैं जिन्हें हम इस 'पैतृक' सम्बन्ध का उचित प्रमाण मान सकते हैं। इस प्रकार के सम्बन्ध का कौन संकेत हमें अपने पश्चिमी समाज तथा हेलेनी समाज का मिला है?

पहली बात तो यह मिलती है कि रोमन साम्राज्य का एक सार्वभौम राज्य था जिसमें हेलेनी इतिहास की अन्तिम अवस्था में सारा हेलेनी समाज एक राजनीतिक समुदाय था। यह बात महत्त्व की है क्योंकि रोमन साम्राज्य के पहले हेलेनी समाज अनेक छोटे राज्यों में विभक्त था और उसके बाद आज भी पश्चिमी समाज अनेक राज्यों में विभाजित हैं। हमने यह भी देखा कि रोमन साम्राज्य स्थापित होने के ठीक पहले 'उपद्रव का काल' था जो हैनिबलीय युद्ध से आरम्भ हुआ। इस समय हेलेनी समाज में सर्जनात्मक शक्ति नहीं रह गयी थी, बल्कि वह पतनोन्मुख था। इस ह्रास को रोमन साम्राज्य ने कुछ समय तक तो रोका, किन्तु अन्त में यह असाध्य रोग निकला। इसने हेलेनी समाज और साथ ही रोमन साम्राज्य को भी नष्ट कर दिया। रोमन साम्राज्य के विनाश के बाद हेलेनी समाज के लोप हो जाने और पश्चिमी समाज के प्रकट होने के बीच एक मध्यवर्ती काल था।

इस मध्यवर्ती काल में दो संस्थाएँ बहुत क्रियाशील थीं। एक तो ईसाई धर्म जो रोमन साम्राज्य में स्थापित हुआ था और अब तक बच गया था और दूसरे वे छोटे-छोटे तथा सामयिक राज्य जो रोमन साम्राज्य में से उन बर्बर जातियों ने बना लिये थे जो साम्राज्य की सीमा के बाहर से जन-रेला में आयी थीं। इन दोनों शक्तियों को हमने हैलेनी समाज के दो स्वरूप बताये हैं। यह है आन्तरिक सर्वहारा वर्ग और बाह्य सर्वहारा वर्ग। इन दोनों वर्गों में भेद तो अनेक थे, किन्तु एक बात में ये समान थे। हेलेनी समाज के प्रमुख अल्पसंख्यक वर्ग के दोनों विरोधी थे। यह अल्पसंख्यक वर्ग प्रमुख था, किन्तु इसमें नेतृत्व की शक्ति नहीं रह गयी थी। साम्राज्य तो नष्ट हो गया, परन्तु ईसाई समुदाय बच गया क्योंकि इस समुदाय ने नेतृत्व ग्रहण किया और लोग इसके भक्त भी थे। साम्राज्य दो में से एक भी न स्थापित कर सका। ईसाई समुदाय मरते समाज का अवशेष था, इसी ने नये समाज को जन्म दिया।

इस बीच के काल की जो दूसरी विशेषता थी, जनरेला, उसका क्या प्रभाव हमारे समाज पर पड़ा? इस जनरेला में पुराने समाज की सीमा के बाहर से सर्वहारा दल झुंड का झुंड आया। उत्तरी यूरोप के जंगलों से जरमन और स्लाव आये, यूरेशियाई स्टेप से सरमाशियन और हूण

आये, अरब से मुसलमान (सारासिक) आये और एटलस तथा सहारा प्रदेश से बर्बर आये। इन जातियों के उत्तराधिकारियों द्वारा जो अल्पकालिक राज्य स्थापित हुए उनका ईसाइयों के साथ बीच के काल में जिसे 'वीर काल' भी कहते हैं, ऐतिहासिक रंगमंच पर अभिनय होता रहा। ईसाइयों की तुलना में इनकी देन नगण्य और शून्य थी। बीच के काल की समाप्ति के पहले ही बलपूर्वक सब नष्ट कर दिये गये। रोमन साम्राज्य पर जो हमले हुए उन्हीं के द्वारा वंडाल और आस्ट्रोगथ पराजित हो गये। साम्राज्य की अन्तिम झिलमिलाती लौ इन्हें राख कर देने के लिए पर्याप्त थी। दूसरे आपसी लड़ाइयों से नष्ट हो गये। उदाहरण के लिए, विसिगोथों पर पहले फ्रांकों ने आक्रमण किया और अन्त में अरबों ने उन्हें समाप्त कर दिया। इन लड़ाकू जातियों में से जो बचे-खुचे रह गये थे उनका पतन होता गया और वे कुछ दिनों तक अकर्मण्य रूप से जीवित रहीं और अन्त में नयी राजनीतिक शक्तियों द्वारा, जिनमें रचनात्मक बल था, इनका विनाश हो गया। इस प्रकार मेरोविंजियन तथा लोम्बार्ड वंश शार्लमान के साम्राज्य के निर्माताओं द्वारा समाप्त कर दिये गये। रोमन साम्राज्य के इन बर्बर उत्तराधिकारी राज्यों में दो ही ऐसे बच गये हैं जिनका वर्तमान यूरोप के राष्ट्रीय राज्यों से कुछ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। एक शार्लमान का 'फ्रांकिश आस्ट्रेशिया' और दूसरा आल्फ्रेड का 'वैसेक्स'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनरेला और उसके अल्पकालिक राज्य ईसाई सम्प्रदाय और रोमन साम्राज्य के समान पश्चिमी समाज के हेलेनी समाज के सम्बन्ध के चिह्न मात्र हैं। साम्राज्य के समान और ईसाई सम्प्रदाय से भिन्न वह केवल प्रतीक ही है और कुछ नहीं। लक्षणों का अध्ययन छोड़ कर जब हम कारणों का अध्ययन करते हैं तब हमको मालूम होता है कि ईसाई सम्प्रदाय भूतकाल में था और भविष्य में भी उसकी सम्भावना थी। परन्तु बर्बर उत्तराधिकारी राज्य तथा रोमन साम्राज्य भूतकाल के ही धरोहर थे। उनका उत्कर्ष साम्राज्य के पतन का एक पहलू था और साम्राज्य का पतन उनके पतन का पूर्वाभास था।

हमारे पश्चिमी समाज को बर्बरों की देन इतनी महत्त्वहीन जानकर कुछ पश्चिमी इतिहासकारों (जैसे फ्रीमैन) को ठेस लगी होगी। वह समझते थे कि उत्तरदायी संसदीय शासन उनके एक प्रकार के स्वायत शासन (सेल्फ गवर्नमेंट) का विकास था जो टयूटानिक कबीले अवांतर प्रदेश से अपने साथ लाये थे। किन्तु ये आदिम टयूटानिक संस्थाएँ, यदि सचमुच रहीं हों तो आदिम मनुष्यों के आचार के समान सब जगह और सब समय नितान्त प्रारम्भिक रही होंगी और वह जनरेला के साथ ही समाप्त हो गयी होंगी। बर्बर जत्थों के नेता साहसी योद्धा मात्र थे और इनके उत्तराधिकारी राज्य उस समय के रोमन राज्य के समान निरंकुश थे जिनमें बीच-बीच में क्रान्तियाँ होती रहती थीं। आज जिसे हम संसदीय संस्थाएँ कहते हैं उस नयी कल्पना के शतियों पहले बर्बरों का अन्तिम राज्य समाप्त हो चुका था।

पश्चिमी समाज के जीवन में बर्बरों की देन का बखान जो आज बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता है उसका कारण एक और मिथ्या धारणा है कि सामाजिक उन्नति में जातियों के कुछ जन्मजात गुण सन्निहित होते हैं। भौतिक विज्ञान द्वारा जो घटना घटती है उसी के मिथ्या साम्य के आधार पर पिछली पीढ़ी के इतिहासकार जातियों को रासायनिक 'तत्त्व' समझने लगे, और जाति-मिश्रण को रासायनिक प्रतिक्रिया, जिससे गुप्त शक्तियाँ प्रकट होती हैं और जिसके कारण अचलता और निश्चेष्टता के स्थान पर परिवर्तन और स्फूर्ति उत्पन्न होती है। इतिहासकारों ने भ्रमवश यह

मान लिया है कि बर्बरों के मिलने से जो जातीय प्रभाव पड़ा, जिसे वे नये रक्त का संचार कहते थे, उसी के परिणामस्वरूप इतिहास में हम पश्चिमी सामाजिक जीवन और विकास पाते हैं। यह संकेत किया गया कि बर्बर विजेताओं का रक्त विशुद्ध था, उसमें शक्ति थी और इसके कारण उनके तथाकथित वंश उन्नतिशील हुए।

सच बात यह है कि बर्बर लोग हमारी आत्मिक उन्नति के स्रष्टा नहीं थे। असल में वे हैलेनी समाज के मरणकाल में आये। किन्तु इस समाज के नाश का श्रेय उन्हें नहीं है। जिस समय ये आये हेलेनी समाज शतियों पहले के अपने ही किये घावों से मरणासन्न था। वीरकाल हेलेनी इतिहास का उपसंहार था, हमारे इतिहास की भूमिका नहीं।

(पुराने समाज से नये समाज के परिवर्तन के तीन कारण हैं। पुराने समाज का अन्तिम रूप अर्थात् सार्वभौम राज्य, पुराने समाज में विकसित ईसाई धार्मिक समुदाय जिसके द्वारा नये समाज का जन्म हुआ, और बर्बर वीरकाल की अव्यवस्था। इनमें दूसरा सबसे अधिक और तीसरा सबसे कम महत्त्व का है।)

दूसरे नवजात समाजों की खोज के पहले हमें हेलेनी तथा पश्चिमी समाज द्वारा उत्पन्न समाज के एक लक्षण की ओर ध्यान देना चाहिए। वह यह है कि नये समाज का जन्मस्थान वही नहीं रह गया जो उसके पूर्ववर्ती समाज का था। न यह समाज का केन्द्र बना जो पुराने समाज की सीमा थी।

परम्परावादी ईसाई ससाज

इस समाज की उत्पत्ति के अध्ययन से किसी नये वर्ग का पता नहीं चलेगा क्योंकि यह और हमारा पश्चिमी समाज हेलेनी समाज के जुड़वाँ बच्चे हैं। केवल उत्तर-पश्चिम जाने के बजाय यह उत्तर-पूरब की ओर गये। इनका मूल स्थान बैजन्तिया में अनेतोलिया था। शतियों तक यह इस्लामी समाज के विस्तार के कारण दबा हुआ था। अन्त में इसे रूस तथा साइबीरिया में से उत्तर तथा पूरब में बढ़ने का अवसर मिला। इस्लामी जगत् को पीछे छोड़ते यह सुदूर पूर्व की ओर बढ़ गया। पश्चिमी और परम्परावादी ईसाई समाज दो कैसे हो गये? इसका कारण यह है कि एक ही मूल कैथोलिक धर्मतन्त्र (चर्च) से दो शाखाएँ उत्पन्न हुईं। रोमन कैथोलिक धर्मतन्त्र (रोमन कैथोलिक चर्च) और परम्परावादी धर्मतन्त्र (आरथोडाक्स चर्च) दोनों के अलग-अलग स्वरूप होने में तीन शतियाँ लगीं। (आठवीं शती के मूर्तिपूजा विरोधी मतभेद से आरम्भ होकर सन् १०५४ में धार्मिक विवाद पर यह भेद पूर्ण रूप से स्थापित हो गया। इसी बीच दोनों सम्प्रदायों की राजनीतिक धारणाएँ भी भिन्न हो गयीं।) पश्चिम के कैथोलिक सम्प्रदाय ने माध्यमिक युग के पोप के शासन में स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त कर ली और परम्परावादी सम्प्रदाय बैजन्तिया राज्य का छोटा विभाग मात्र बन गया।

ईरानी और अरबी समाज तथा सीरियाई समाज

जिस दूसरे सजीवन समाज को हमें देखना है वह है इस्लामी समाज। जब हम इस्लामी समाज के विकास की पृष्ठभूमि की छानबीन करते हैं तब हमें पता लगता है कि वहाँ सार्वदेशिक धार्मिक समाज था। वहाँ भी जनरेला था यद्यपि वह पश्चिमी और परम्परावादी ईसाई समाज वाला न था, किन्तु उससे मिलता-जुलता था। इस्लामी सार्वभौम राज्य बगदाद की अब्बासी

खिलाफत (कैलिफेट) का था ।[1] सारा मुसलिम समाज ही इस्लाम है । जो जनरेला खिलाफत के पतन के समय आया और उसने खलीफा के राज्य को तहस-नहस कर दिया । वह यूरेशिया के स्टेप के तुर्की और मंगोल खानाबदोशों का, उत्तरी अफ्रीका के बर्बर खानाबदोशों का तथा अरब प्रायद्वीप के खानाबदोशों का था । इन खानाबदोशों का प्रभाव लगभग तीन सौ साल तक अर्थात् सन् ९७५ ई० से १२७५ ई० रहा । आज जिस रूप में इस्लामी समाज है उसका आरम्भ इसी अन्तिम तिथि से समझना चाहिए ।

यहाँ तक तो सब स्पष्ट है । किन्तु और खोज करने से परिस्थिति जटिल हो जाती है । पहली बात यह है कि इस्लामी समाज के पूर्वज (जिसका अभी पता नहीं है) एक सन्तान के नहीं, बल्कि दो जुड़वाँ सन्तानों के जनक थे और इस रूप में वे बिलकुल हेलेनी समाज के समान थे । इन जुड़वाँ सन्तानों का आचरण समान नहीं था । पश्चिमी समाज और परम्परावादी ईसाई समाज हज़ार वर्ष से ऊपर साथ-साथ रहे । जनक समाज की एक सन्तान जिसका पता लगाने की हम चेष्टा कर रहे हैं दूसरी सन्तान को निगल गयी और उसने उसे अपने में मिला लिया । इन दोनों मुसलिम समाजों को हम ईरानी और अरबी के नाम से पुकारेंगे ।

जिस प्रकार हेलेनी समाज की सन्तानों में धार्मिक अन्तर था उस प्रकार का अन्तर इस अज्ञात इस्लामी समाज की दोनों सन्तानों में नहीं था । यद्यपि इस्लाम में भी शिया और सुन्नी दो फिरके हो गये थे, जैसे ईसाई समाज में कैथोलिक और परम्परावादी ईसाई समाज हो गया था, किन्तु यह धार्मिक अन्तर अभी ईरानी-इस्लामी और अरबी-इस्लामी समाजों के अन्तर के रूप में नहीं था । यद्यपि सत्रहवीं शती के पहले चतुर्थांश में जब फारस में शिया सम्प्रदाय का बाहुल्य हुआ तब ईरानी-इस्लामी समाज छिन्न-भिन्न होने लगा । और शिया सम्प्रदाय ईरानी-इस्लामी समाज की मुख्य धुरी का (जो अफगानिस्तान से अनातोलिया तक फैली हुई है) केन्द्र बन गया और सुन्नी सम्प्रदाय ईरानी जगत् की दोनों सीमाओं पर तथा दक्षिण और पश्चिम में अरबी प्रदेशों में रह गया ।

जब हम इस्लाम के दोनों समाजों और ईसाई धर्म के दोनों समाजों की तुलना करते हैं तब हम देखते हैं कि ईरानी प्रदेश (जिसे हम फारसी-तुर्की भी कह सकते हैं) और पश्चिमी समाज में कुछ समानता है । और अरबी प्रदेश के इस्लामी और परम्परावादी ईसाई समाज में कुछ समानता है । उदाहरण के लिए, बगदाद की खिलाफत की छाया, जिसे तेरहवीं शताब्दी में, जब कैरों के ममलूकों ने बगदाद के खलीफों के भूत को फिर से सजीव करने की चेष्टा की थी, उसी प्रकार थी जैसी आठवीं शती में कस्तुनतुनिया में सीरिया के लियो ने रोमन साम्राज्य के भूत को सजीव करने की चेष्टा की थी । ममलूकों का राजनीतिक संगठन लियो के संगठन के समान सरल था, जो निकट के ही ईरानी प्रदेश की तुलना में स्थिर और प्रभावशाली था । पड़ोस के ईरानी प्रदेश का तैमूर का साम्राज्य विस्तृत और अस्पष्ट और अस्थिर था जो पश्चिम के शार्लमन के साम्राज्य की भाँति था जो बनता और बिगड़ता रहा । अरब प्रदेश में उनकी संस्कृति की क्लासिकल भाषा

---

[1] बाद के कैरो के अब्बासी खलीफे बगदाद के खलीफों के छाया मात्र थे । अर्थात् 'पूर्वी रोमन साम्राज्य' और 'पावन रोमन साम्राज्य' की ही भाँति थे । तीनों अवस्थाओं में ऐसा समाज बना जो पुराने समाज की छाया मात्र रह गया ।

अरबी थी जो बगदाद के अब्बासी खलीफों की संस्कृति की भाषा थी । ईरानी प्रदेश में फारसी नाम की भाषा का जन्म हुआ जो अरबी भाषा पर कलम लगाकर बनी थी, जैसे लैटिन ग्रीक पर कलम लगा कर बनी थी । सोलहवीं शताब्दी में ईरानी प्रदेश के इस्लामी समाज ने अरव प्रदेश के इस्लामी समाज पर विजय प्राप्त की और उसका समावेश कर लिया यह उसी प्रकार था, जैसे क्रुसेड[१] के समय पश्चिमी ईसाई समाज ने परम्परावादी ईसाई समाज के साथ किया था । सन् १२०४ ई० में यह संग्राम समाप्त हुआ और चौथा क्रुसेड कुस्तुनतुनिया के विरुद्ध आरम्भ हुआ। तब इस्लामी समाज ने थोड़ी देर के लिए सोचा कि परम्परावादी ईसाई समाज सदा के लिए पराजित हो जायेगा और पश्चिमी ईसाई समाज में उसका लय हो जायेगा । तीन सौ साल के बाद यही बात अरब समाज के साथ हुई जब ममलूक की शक्ति का विनाश हुआ और सन् १५१७ में उस्मानिया बादशाह सलीम प्रथम ने कैरों के अब्बासी खलीफे को नष्ट कर दिया ।

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि वह कौन अज्ञात समाज था जो बगदाद के अब्बासी खिलाफत का अन्तिम रूप हुआ, जैसे हेलेनी समाज का रोम साम्राज्य । यदि हम अब्बासी खलीफों के इतिहास के पीछे की ओर चलें तो क्या हमें वैसी ही घटना मिलेगी जो हेलेनी समाज के अन्तिम समय मिलती है ?

इसका उत्तर नकारात्मक है । बगदाद के अब्बासी खलीफों के पीछे दमिश्क के उम्मैया खलीफे मिलते हैं और उसके पहले सहस्रों वर्षों तक हेलेनी लोगों का प्रवेश मिलता है जो ईसा के पहले चौदहवीं शती के अन्तिम पचास वर्षों में हुआ था जब मकदूनिया के सिकन्दर का जीवन आरम्भ होता है । और जिसके पश्चात् सीरिया में यूनानी सेल्यूकस के वंश का राज्य था । और फिर पाम्पे के आक्रमण हुए, रोमनों की विजय हुई और अन्त में ईसा की सातवीं शती में पूर्व की ओर से बदले के रूप में मुसलमानों का आक्रमण हुआ । आदिम मुसलिम अरबों की जो घनघोर विजय थी वह सिकन्दर की घनघोर विजय का मानो जवाब था । पाँच-छः वर्षों में इन्होंने दुनिया की सूरत बदल दी, किन्तु सिकन्दर की विजय ने ऐसा परिवर्तन किया कि विजेता देशों का स्वरूप एकदम बदल गया और उसका यूनानी रूप हो गया । किन्तु अरबों की विजय ने परिवर्तन करके उनका फिर पहला-सा स्वरूप कर दिया । जिस प्रकार मकदूनिया ने अकामीनिया के साम्राज्य (खुसरो तथा उसके उत्तराधिकारियों का फारसी साम्राज्य) को ध्वस्त करके यूनानी संस्कृति (हेलिनिज्म) का बीजारोपण किया उसी प्रकार अरबी विजय ने उम्मैयों के लिए दरवाजा खोल दिया और उनके वाद अब्बासियों के लिए सार्वभौम राज्य वनाने के लिए राह तैयार कर दी जो अकामीनियों के साम्राज्य के समान था । यदि हम दोनों साम्राज्यों के नकशों को एक के ऊपर दूसरे को रख दें तो दोनों की सीमा लगभग एक ही पर पड़ती है । यह अनुरूपता केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि शासन में और सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवन में भी समान मिलती है । अब्बासी खलीफों का ऐतिहासिक कार्य अकामीनिया के साम्राज्य को फिर से स्थापित करना और पुनरुज्जीवित करना था । इसके राजनीतिक स्वरूप को बाहरी आक्रमणों ने छिन्न-भिन्न कर दिया था सामाजिक जीवन को भी विदेशी आक्रमणों ने अवरुद्ध कर दिया था । अब्बासी खिलाफत उस

---

[१] ईसाइयों और मुसलमानों का धार्मिक युद्ध ।

सार्वभौम राज्य का नया रूप था जो उस अज्ञात समाज का अन्तिम स्वरूप था जिसका पता अभी हम लोगों को नहीं मिला है। और जिसे हजारों वर्ष पहले हमें ढूँढ़ना होगा।

अब हम अकामीनियाई साम्राज्य के ठीक पहले के समाज की खोज करेंगे जिससे हमें उन घटनाओं का पता लगे जो हमें अब्बासी खिलाफत के पहले के समाज में नहीं मिल सकीं। अर्थात् वह संकट काल जो हेलेनी इतिहास में रोमन साम्राज्य की स्थापना के पहले था।

अकामीनियाई साम्राज्य तथा रोमन साम्राज्य की उत्पत्ति की साधारण समानता स्पष्ट है। सूक्ष्मता से देखने में मुख्य अन्तर यह है कि हेलेनी सार्वभौम राज्य उसी राज्य से उत्पन्न हुआ जिस राज्य ने संकट के समय उसका विनाश किया था। अकामीनियाई साम्राज्य की उत्पत्ति अनेक राज्यों के रचनात्मक तथा विध्वंसात्मक कार्यों का परिणाम थी। विध्वंस का कार्य असीरियों ने किया, किन्तु जब असीरिया उस समाज में सार्वभौम राज्य स्थापित करने को हुआ, जिसका उसने विनाश किया था, तब अपने ही सैनिकवाद की गुरुता से उसने अपना ही विनाश कर डाला। ज्यों ही वह अपना महान् कार्य समाप्त करने वाला था उसके ऊपर नाटकीय ढंग से गहरा प्रहार हुआ (ईसा के पूर्व ६००) और एक ऐसा अभिनेता मंच पर आ गया जिसकी भूमिका अभी तक बहुत छोटी थी। जो बीज असीरियों ने बोया था उसकी फसल को अकामीनियों ने काटा। एक अभिनेता की जगह दूसरा अवश्य आ गया, किन्तु कथानक नहीं बदला।

इन उपद्रवों को ध्यान में रखकर हम उस समाज का पता लगा सकते हैं जिसकी हम खोज कर रहे हैं। नकारात्मक ढंग से हम यह कह सकते हैं कि यह समाज असीरियों का समाज नहीं था। यूनानियों के समान असीरियाई भी इस लम्बे और जटिल इतिहास के अन्तिम काल में आक्रमणकारियों के समान आये और चले गये। इस अज्ञात समाज में, जिसकी एकता अकामीनियाई साम्राज्य में स्थापित हुई हम उस प्रतिक्रिया को देख सकते हैं जिसके द्वारा संस्कृति के उन तत्त्वों का शान्तिमय ढंग से उन्मूलन किया गया जिसे असीरियों ने घुसा दिया था। अर्थात् अक्कादी भाषा और कीलाक्षर लिपि (क्युनिफार्म) के स्थान पर अरामी भाषा और वर्णों की स्थापना की गयी।

असीरियों ने स्वयं अपने अन्तिम दिनों में अपनी प्राचीन कीलाक्षर लिपि के साथ-साथ अरामी लिपि में चर्म-पत्रों पर लिखना आरम्भ कर दिया था। मिट्टी के फलक पर अथवा पत्थर पर वह कीलाक्षरों का प्रयोग करते रहे। जब उन्होंने अरामी लिपि का प्रयोग किया तब सम्भवतः अरामी भाषा का भी प्रयोग वह करते रहे होंगे। असीरी राज्य के विनाश के बाद और उसके पश्चात् के अल्पकालिक नये बैबिलोनी साम्राज्य (नबूकदनजर का साम्राज्य) के विनाश के बाद से अरामी भाषा का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता गया। ईसा के पहले अन्तिम शताब्दी में कीलाक्षर लिपि अपनी जन्मभूमि मेसोपोटामिया से लोप हो गयी।

इसी प्रकार का परिवर्तन ईरानी भाषा के इतिहास में भी देखा जा सकता है जो अरामी साम्राज्य के शासकों की अर्थात् मीडियों और फारस वालों की भाषा थी और जिसे अन्धकार से निकाला गया। जब ईरानी अर्थात् पुरानी फारसी में लिखने की आवश्यकता पड़ी तब इसकी अपनी कोई लिपि नहीं थी। फारस वालों ने पत्थर पर अंकित करने के लिए कीलाक्षर और चर्म-पत्रों पर लिखने के लिए अरामी लिपि अपनायी। अरामी लिपि ही फारसी भाषा की लिपि रह गयी।

वास्तव में संस्कृति के दो तत्त्व, एक सीरिया से एक ईरान से, साथ ही साथ एक-दूसरे के सम्पर्क में भी आ रहे थे और अपना-अपना प्रभुत्व भी जमा रहे थे । अकामीनी साम्राज्य के स्थापित होने के पहले तो संकट-काल था । उसके अन्तिम समय में अरामी लोग अपने असीरी विजेताओं को पराजित करने लगे थे । और यह प्रतिक्रिया चलती रही । यदि हम इसके पहले की घटनाओं को जानना चाहें तो हमको धर्म के आड़ में देखना होगा । हम देखेंगे कि उसी संकट-काल ने ईरान में जरथुष्ट्र को प्रेरणा प्रदान की और इसराइल तथा जूडा के पैगम्बरों को भी जन्म दिया । सचमुच देखा जाय तो ईरानी की तुलना में अरामी अथवा सीरियाई तत्त्व का गहरा प्रभाव था और यदि हम संकट काल के और पीछे देखें तो ईरानी तत्त्व लोप हो जाता है और सीरिया में हम ऐसे समाज की झलक पाते हैं जब सम्राट् सुलेमान और उनके समकालीन सम्राट् हिरम का शासन काल था । यह समाज अतलान्तक तथा हिन्द महासागर की खोज कर रहा था और इसने लिपियों का पता लगा लिया था । यहाँ उस समाज का हमने पता लगा लिया जिससे दो इस्लामी समाज उत्पन्न हुए थे और जो बाद में एक हो गये । इन्हें हम सीरियाई समाज कहेंगे ।

इस आलोक की दृष्टि में यदि हम इस्लाम की ओर देखें तो वह ऐसा सार्वभौम धार्मिक संघ है जिसके माध्यम से सीरियाई समाज का सम्बन्ध ईरानी और अरबी समाजों से स्थापित होता है । इस्लाम और ईसाई धर्म के विकास में हम अब मनोरंजक अन्तर देख सकते हैं । हमने देखा है कि ईसाई धर्म में जो सर्जनात्मक शक्ति का बीज है वह हेलेनी नहीं, किन्तु विदेशी है (वास्तव में उसका मूल सीरियाई है) । इसी के साथ तुलना करने से हम यह देखते हैं कि इस्लाम की सर्जनात्मक शक्ति विदेशी नहीं है, सीरियाई समाज से ही निकली है । इस्लाम के प्रवर्त्तक मोहम्मद साहब को यहूदी धर्म से प्रेरणा मिली जो विशुद्ध सीरियाई धर्म था और फिर नेस्टोरी सम्प्रदाय से प्रेरणा मिली जो ईसाई धर्म का एक रूप था और जिनमें हेलेनी से अधिक सीरियाई तत्त्व था । सच बात तो यह है कि कोई सार्वभौम धार्मिक संघ केवल एक समाज से नहीं उत्पन्न होता । हम जानते हैं कि ईसाई धर्म में हेलेनी तत्त्व हैं जो हेलेनी रहस्यवादी धर्म से और हेलेनी दर्शन से लिये गये हैं । उसी प्रकार इस्लाम पर भी हेलेनी प्रभाव पड़ा है, यद्यपि बहुत कम मात्रा में । साधारणतः हम कह सकते हैं कि ईसाई धर्म वह सार्वभौम धर्म है जिसकी उत्पत्ति का बीज विदेशी है और इस्लाम की उत्पत्ति का बीज उसी के अपने देश का है ।

अब हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि ईरानी और अरबी समाजों का उनके मूल निवास स्थानों से कहाँ तक स्थानान्तरण हुआ और सीरियाई समाज के मूल निवास स्थान से इनका कहाँ तक स्थानान्तरण हुआ । ईरानी-इस्लामी समाज अनातोलिया से भारत तक फैला हुआ है । अर्थात् इसका काफी स्थानान्तरण हुआ है । दूसरी ओर अरबी-इस्लामी समाज केवल सीरिया और मिस्र में फैला है जिसका अर्थ है स्थानान्तरण अपेक्षाकृत कम हुआ ।

भारतीय समाज

जिस दूसरे सजीव समाज का अध्ययन हम करना चाहते हैं वह हिन्दू समाज है । इसकी पृष्ठभूमि में भी हमें इससे पहले के समाज की ओर देखना पड़ेगा । इस समाज का सार्वभौम राज्य गुप्त साम्राज्य है (३७५-४७५ ई०) सार्वभौम धर्म हिन्दू धर्म है जो गुप्तकाल में चरम शक्ति को पहुँच गया । इसने इसी देश में उत्पन्न बौद्ध धर्म को निष्कासित किया जो ७०० साल तक यहाँ

जमा रहा। गुप्त साम्राज्य के पतन के समय यूरेशिया के स्टेप से हूणों का रेला आया। इसी समय हूण लोग रोमन साम्राज्य पर भी आक्रमण कर रहे थे। गुप्त साम्राज्य के उत्तराधिकारियों और हूणों का कार्यकलाप लगभग ३०० साल तक अर्थात् ४७५–७७५ ई० तक चलता रहा। इसके बाद जो हिन्दू समाज उभरा वह आजतक जीवित है। हिन्दू-दर्शन के प्रवर्तक शंकर ८०० ई० के लभगभग वर्तमान थे।

यदि हम उस पुरातन समाज की खोज करने के लिए और पीछे जायँ जिससे हिन्दू समाज निकला था तो हमको छोटे पैमाने में वही सब बातें मिलेंगी जो सीरियाई समाज के खोजने में प्राप्त हुई थीं अर्थात् हेलेनी प्रवेश। भारत में हेलेनी प्रवेश सिकन्दर के आक्रमण के साथ नहीं आरम्भ हुआ। इस समय इसका प्रभाव भारतीय संस्कृति पर नहीं के बराबर था। भारतवर्ष में हेलेनी प्रवेश बैकट्रिया के यूनानी बादशाह डिमिट्रियस के आक्रमण से आरम्भ होता है जो लगभग १८३–१८२ ई० के पूर्व हुआ था। और इसकी समाप्ति ३९० ई० के लगभग हुई जब अन्तिम हेलेनी आक्रमणकारी नष्ट कर दिये गये। इसी समय गुप्त साम्राज्य का भी आरम्भ हुआ था। जिस प्रकार दक्षिण-पश्चिम एशिया में हमने सीरियाई समाज की उत्पत्ति का अध्ययन किया था उसी प्रकार भारत में हेलेनी प्रवेश के पूर्व के उस सार्वभौम समाज की खोज करें जिसके परिणाम-स्वरूप गुप्त साम्राज्य का आविर्भाव हुआ तो हमें मौर्यों का साम्राज्य मिलता है जिसकी स्थापना ईसा के ३२३ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त ने की थी। सम्राट् अशोक ने इस साम्राज्य को महत्ता प्रदान की और ईसा के पूर्व सन् १८५ में पुष्यमित्र ने इसका ध्वंस किया। इस साम्राज्य के पहले संकट-काल था जब स्थानीय राज्य आपस में लड़ते रहे। यही समय था जब गौतम बुद्ध पैदा हुए और उन्होंने अपने धर्म का प्रचार किया। गौतम का जीवन और जीवन की ओर उनकी भावना उनके काल की जो प्रवृत्ति थी उसका सबसे अच्छा प्रमाण है। जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर के जो बुद्ध के समकालीन थे, जीवन से भी इस प्रमाण का समर्थन होता है। उस युग के और लोग भी संसार के इस जीवन से मुख मोड़कर तपस्या के द्वारा दूसरे संसार की राह खोज रहे थे। इन सबके पीछे, संकट-काल के भी पीछे, एक समाज का पता चलता है जिसका वर्णन वेदों में मिलता है। इस प्रकार हमने ऐसे समाज का पता लगा लिया जो हिन्दू समाज के पहले था। उसे हम भारतीय समाज कहेंगे। भारतीय समाज का आदिम स्थान गंगा की पश्चिमी घाटी थी। और यहीं से वह सारे देश में फैला। इस समाज का भौगोलिक स्थान वही था जो इनके उत्तराधिकारियों का हुआ।

चीनी समाज

अब एक जीवित समाज रह गया है जिसका निवास स्थान सुदूर पूर्व है जिसकी पृष्ठभूमि की खोज करनी है। यहाँ का सार्वभौम वह राज्य साम्राज्य है जिसकी स्थापना २२१ ई० पूर्व त्सिन तथा हेन वंशों द्वारा हुई थी। यहाँ का सार्वभौम धर्म महायान था। बौद्ध धर्म की इस शाखा का प्रवेश हेन साम्राज्य के समय हुआ था। और यह आज के सुदूर उत्तर पूर्वी समाज की प्रारम्भिक अवस्था थी। इस सार्व भौमराज्य का पतन उस समय हुआ जब सन् ३००ई० के लगभग यूरेशिया के स्टेप के खानाबदोशों का रेला आया और उसने हेन साम्राज्य को नष्ट किया। यद्यपि १०० वर्ष पहले से ही हेन साम्राज्य तितर-वितर होने लगा था। हेन साम्राज्य के पहले की घटनाओं

को जब हम देखते हैं तब हमें स्पष्ट रूप से संकट-काल मिलता है जिसे चीनी इतिहास में 'चान क्वो' कहते हैं। इसका अर्थ है राज्यों के संघर्ष का काल। यह समय कनफूशियस की मृत्यु (४७९ ई० पू०) से २५० साल बाद तक था। इस काल की दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं। आत्मघातक राजनीति और व्यावहारिक जीवन के प्रति शक्तिशाली बौद्धिक दर्शन। यह समय हेलेनी इतिहास के उस समय की याद दिलाता है जब वैराग्य (स्टोइसिज्म) के प्रवर्त्तक जीनो का समय था और जब (ऐकटियम) का युद्ध हुआ था जिससे हेलेनी काल संकट-काल का अन्त हुआ। इन दोनों कालों में उपद्रवों की अन्तिम शतियों में जो अव्यवस्था बहुत पहले आरम्भ हो गयी थी उसी का अन्त हुआ। कनफूशियस के बाद जो सैनिक वाद अपनी ही अग्नि में जलकर भस्म हो गया वह अग्नि उसी समय प्रज्वलित हो चुकी थी जब कनफूशियस मानव समाज के जीवन के सिद्धान्त बना रहा था। इस दार्शनिक का सांसारिक दर्शन और इसके समकालीन दार्शनिक लाओत्से का शान्तिवादी दर्शन परलोक सम्बन्धी था, दोनों इस बात के प्रमाण हैं कि इन्होंने अनुभव किया कि हमारे समाज में विकास का काल पहले जा चुका है। उस समाज का नाम हम क्या रखें जिसके भूतकाल की ओर कनफूशियस सम्मान की दृष्टि से देखता था, और लाओत्से जिसकी ओर से मुख मोड़ रहा था। इस समाज का नाम हम सुविधा के लिए 'चीनी समाज' रखेंगे।

महायान बौद्ध धर्म की वह शाखा है जिस रूप में चीनी समाज आज के उत्तर-पूर्व समाज के रूप में आया है। ईसाई धर्म से इस बात में यह मिलता-जुलता है कि यह उसी देश के समाज का नहीं है, बल्कि बाहर से आया। इस्लाम और हिन्दू धर्म उसी देश में उत्पन्न हुए जहाँ वह प्रचलित है, इसलिए चीनी समाज का धर्म इससे भिन्न है। महायान धर्म सम्भवतः भारत के उन प्रदेशों में पैदा हुआ जिनमें बैकट्रिया के यूनानी राजाओं और उनके अर्ध-हेलेनी उत्तराधिकारी कुषाणों का शासन था। निस्सन्देह महायान ने कुषाण प्रान्त तारिम के बेसिन में जड़ जमा लिया था। जहाँ हेन वंश के पश्चात् कुषाणों का शासन था और जिन्हें हरा कर हेन वंशियों ने फिर से शासन किया। इसी दरवाजे से चीनी संसार में महायान ने प्रवेश किया और चीनी जनता ने उसे अपने अनुकूल बना लिया।

चीनी समाज का मूल स्थान हांगहो नदी का बेसिन था। यहाँ से वह यांगत्सी नदी के बेसिन तक फैला। सुदूर पूर्व समाज का मूल स्थान इन दोनों नदियों का बेसिन था। यहाँ से ये लोग दक्षिण-पश्चिम की ओर फैले और फिर चीनी तट तक पहुँचे और फिर उत्तर-पूर्व की ओर कोरिया और जापान तक इनका विस्तार हुआ।

जीवाश्म चिह्न (फासिल)

अभी तक जो तथ्य हमें ज्ञात हुए हैं वे सजीव समाजों के सम्बन्धों में है। इन्हीं के द्वारा हम उन मृत समाजों को भी ढूंढ़ निकालेंगे और यह भी पता लगायेंगे कि किन लुप्त समाजों से उनका सम्बन्ध था। यहूदी और पारसी उस सीरियाई समाज के जीवाश्म हैं जो सीरियाई समाज हेलेनी आक्रमण के पहले था। मोनोफाइसाइट तथा नेस्टोरी ईसाई समाज उस समाज और उस समय के चिह्न हैं जब सीरियाई समाज में हेलेनी आक्रमण की प्रतिक्रिया हुई थी। इस समय सीरियाई समाज में जो हेलेनी परिवर्तन हो रहे थे उनका घोर प्रतिवाद तथा विरोध उस समाज द्वारा हो रहा था। भारत के जैनी और लंका, बर्मा, श्याम और कम्बोडिया के हीनयानी बौद्ध उस समय

के अवशिष्ट चिह्न हैं, जब मौर्य साम्राज्य था और भारत पर यूनानियों का हमला नहीं हुआ था। तिब्वत और मंगोलिया का लामा वाला महायान बौद्ध धर्म नेस्टोरियों के समान है। यह उस असफल प्रयत्न का परिणाम है जो भारतीय बौद्ध धर्म के विरुद्ध महायान रूप के परिवर्तन में हो रहा था। इनके परिवर्तन में हेलेनी तथा सीरियाई प्रभाव था और अन्त में चीनी समाज ने यह परिवर्तित रूप ग्रहण किया।

इन अवशिष्ट समाजों से दूसरे समाजों का कुछ पता नहीं लगता। किन्तु हमारे साधन समाप्त नहीं हो गये। हम और पीछे जायेंगे और उन समाजों के पूर्वजों का पता लगायेंगे जो स्वयं आज के जीवित समाजों के पूर्वज हैं।

मिनोई समाज (मिनोअन सोसाइटी)

हेलेनी समाज के पूर्व एक और समाज के होने का स्पष्ट संकेत मिलता है। यह सार्वभौम राज्य समुद्री राज्य था जिसका शासन एजियन सागर के क्रीट अड्डे से होता था। यूनानी परम्परा में 'थैलोसोक्रेसी' नाम अब भी चला आता है जिसका अर्थ है समुद्री शक्ति। इसका सम्बन्ध मिनोस से ही है। हाल में 'क्नोसोस' और 'फीस्टस' में जो अभी खुदाई हुई है उससे तथा उसके महलों के ऊपरी सतह से भी इसका प्रमाण मिलता है। इस सार्वभौम राज्य पर जो जनरेला हुआ था उसका कुछ आभास प्राचीन साहित्य 'इलियड' और 'ओडेसी' में मिलता है और कुछ पता उस समय के अर्थात् मिस्र के अठारहवें-उन्नीसवें तथा बीसवें राज्य-वंश के सरकारी अभिलेखों में मिलता है। यह जनरेला यूरोपीय पृष्ठभूमि में एकियाई तथा इसी प्रकार की और बर्बर जातियों को पराजित करते हुए समुद्र तक पहुँचा और क्रीट के समुद्री राज्य को उसी के घर में परास्त किया। क्रीट के महलों के विध्वंस का प्रमाण पुरातत्त्व की खोज में मिलता है। यह वही युग है जिसको पुरातत्त्व वाले द्वितीय मिनोआ का अन्तिम काल कहते हैं। यह रेला मानवी हिमस्राव के समान था जो एजीयन लोगों पर टूट पड़ा और विजयी तथा पराजित दोनों ने अनातोलिया के खत्ती साम्राज्य को नष्ट किया तथा मिस्र के 'नये साम्राज्य' पर आक्रमण किया, किन्तु उसे हरा न सके। विद्वान् लोग क्नोसोस के विनाश का काल १४०० ई० पू० मानते हैं। मिस्र के अभिलेखों से पता चलता है कि 'मानवी हिमस्राव' का समय १२३० से ११९० ई० पू० था। इसलिए हम यह युग १४२५–११२५ ई० पू० मान सकते हैं।

इस पुरातन समाज का इतिहास जब हम देखने लगते हैं तब कठिनाई यह पड़ती है कि क्रीटी लिपि हम नहीं पढ़ सकते, किन्तु पुरातत्त्व के प्रमाण से ऐसा जान पड़ता है कि क्रीट की विकसित भौतिक सभ्यता एजियन सागर के पार ई० पू० सातवीं शती में आरगोलिड में पहुँची थी और यहाँ से धीरे-धीरे यूनान देश के प्रत्येक भाग में दो सौ साल में फैली थी। यह भी प्रमाण मिलता है कि क्रीट की सभ्यता पीछे नव पाषाण युग तक फैली थी। इस समाज को हम मिनोई समाज कह सकते हैं।

किन्तु क्या हम मिनोई और हेलेनी समाजों में वही सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं जो हेलेनी तथा पश्चिम के उन समाजों में हमने स्थापित किया है, जिनका पता हमने लगाया है। अन्तिम दोनों समाजों की बीच की लड़ी वह सार्वभौम धार्मिक स्वरूप था जिसे पुराने समाज की आन्तरिक जनता ने जन्म दिया था। और जो नये समाज का उद्गम बन गया। मिनोई समाज में भी हेलेनी

ग्राम-देवता की पूजा ओलिम्पी मन्दिरों में नहीं होती थी । इस प्रकार की भावना मिनोई समाज में नहीं थी । इस देव-कुल को होमर के महाकाव्यों द्वारा क्लासिकी महत्ता प्राप्त हुई । मिनोई समाज में जो देवता थे वे उन बर्बरों की मूर्तियों के अनुरूप थे, जो वर्बर जनरेला में उनके ऊपर चढ़ आये थे और जिन्होंने विनाश किया था । जीयुस एकियाई युद्ध देवता है यह ओलिम्पस पर्वत पर राज्य करता था । इसने अपने पूर्व के शासक क्रोनस को जवरदस्ती हटाकर अधिकार जमा लिया था और विश्व की लूट की सम्पत्ति को बाँट लिया । जल और थल को उसने अपने भाइयों पोसाइडन और हैड्स को दिया और आकाश अपने पास रखा । देवताओं का यह स्वरूप एकियाई है और मिनोई समाज के बिलकुल बाद का है । हटाये गये देवताओं में मिनोई धर्म की छाया भी नहीं है । क्रोनस और टाइसन उसी प्रकार के हैं जैसे जीयूस और उनके साथी । इस पर हमें टयुटनी बर्बरों के धर्म की याद आती है । उनमें से अधिकांश ने रोमन साम्राज्य पर धावा बोलने से पहले अपने धर्म को छोड़ दिया था । उनके सम्बन्धियों ने इसी धर्म को कायम रखा और उसका परिष्कार किया और जब इन्होंने छः सौ साल के बाद स्वयं धावा बोला (नार्थमैनों का धावा) तब उस धर्म को छोड़ दिया । यदि मिनोई समाज में किसी प्रकार का सार्वभौम धर्म उस समय था जब बर्बरों का धावा उस पर हुआ था तो वह यूनानी धर्म से उतना ही भिन्न रहा होगा जितना ईसाई धर्म ओडिन तथा थार की पूजा से था ।

क्या ऐसी बात थी ? इस विषय के सबसे बड़े विशेषज्ञ के कथन से मालूम होता है कि ऐसा था।

"जहाँतक प्राचीन क्रीटी धर्मके अध्ययन से ज्ञात होता है हम उसमें आत्मिक भावना ही नहीं पाते, बल्कि पूर्व के ईरानी, ईसाई तथा इस्लामी धर्मों में विगत दो हजार वर्षों में जो श्रद्धा थी उसी के समान श्रद्धा भी पाते हैं । इस भावना में एक प्रकार की कट्टरता थी जो हेलेनी दृष्टिकोण में नहीं थी । साधारण रूप से कहा जा सकता है कि प्राचीन यूनानियों के धर्म की तुलना में इसमें आत्मिक तत्त्व अधिक था । दूसरी दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि इसमें व्यक्तिगत भाव अधिक था । 'नेस्टर के वलय' में (रिंग आव नेस्टर) देवी के सिर के ऊपर तितली तथा उसके कोष (क्राइसेलिस) के रूप में पुनरुज्जीवन का जो प्रतीक बनाया गया है उसका अभिप्राय है कि देवी द्वारा उसके उपासकों को मृत्यु के बाद भी जीवन प्राप्त होता है । वह अपने पूजकों के बहुत निकट है ।....मृत्यु के बाद भी वह अपने बच्चों की रक्षा करती है । ....यूनानी धर्म में भी रहस्य की बातें हैं । किन्तु पुरुष और स्त्री दोनों प्रकार के यूनानी देवताओं में, जिनकी शक्ति प्रायः समान है, इस प्रकार का निकट का व्यक्तिगत सम्वन्ध नहीं पाया जाता जैसा मिनोई देवताओं में । यूनानी देवताओं में झगड़े और मतभेद बहुत हैं और उनके रूप तथा गुण भी अनेक हैं । इसके विपरीत मिनोई संसार में बार-बार वे ही देवियाँ जाती हैं ।...इस कारण हम इस प्रमाण पर पहुँचते हैं कि इनका धर्म अधिकांश रूप में एकेश्वरवादी था और देवी का ही प्रमुख स्थान था ।"[१]

---

[१] सर आर्थर इवेन्स : दि आॅलियर रिलिजन आव ग्रीस इन द लाइट आव क्रीटन डिसकवरीज, पृ० ३७–४१ ।

हेलेनी परम्परा में भी इस विषय के कुछ प्रमाण मिलते हैं। यूनानियों ने क्रीट में जीयूस की कथा को सुरक्षित रखा, किन्तु यह वही देवता नहीं था जो ओलिम्पस का देवता था। क्रीट का जीयूस वह सेनानी नहीं था जो हथियारों से लैस होकर बलपूर्वक राज्य को छीन लेता है। वह नवजात शिशु है। सम्भवतः वह उस शिशु के समान है जिसे मिनोई कला में इस प्रकार दिखाया गया है जिसे दिव्य माता पूजा के लिए उठाये हुए है। यह शिशु जन्म लेता है और मर भी जाता है। उसका जन्म और मृत्यु थ्रेस के देवता डायनिसस के जन्म और मृत्यु में सम्भवतः पुनःस्थापित किया गया था और जो 'इल्युसीनी रहस्य' (इल्युसीनियन मिस्ट्रीज़) के ईश्वर के समान था। क्लासिकी रहस्य वर्तमान यूरोप के जादू-टोना के समान तो नहीं हैं जो एक लुप्त समाज के धर्म के अवशेष हैं?

यदि ईसाई जगत् वाइकिंगों से पराजित हो जाता अर्थात् उनके शासन में हो जाता और उन्हें धर्म में परिवर्तित कर पाता तो हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि शतियों तक एक नये समाज में ईसाई धर्म का पालन होता रहा हो जब कि प्रचलित धर्म 'ईसर' की पूजा रही हो। हम कल्पना कर सकते हैं कि जब यह नया समाज प्रौढ़ होने पर स्कैण्डिनेविया के बर्बरों के धर्म से सन्तुष्ट न होता तब उसी देश के धर्म को अपनाता जिस देश में यह समाज स्थापित हो गया था। ऐसी धार्मिक भूख के समय इसके बजाय कि पुराना धर्म नष्ट कर दिया जाता, जिस प्रकार पश्चिमी समाज ने जादूगरी का विनाश किया, पुराने ही धर्म को फिर से स्थापित किया जाता जैसे कोई गड़े हुए धन को खोज कर उसका उपभोग करता है। और ऐसे समय कोई धार्मिक नेता निकल आता जो लुप्तप्राय ईसाई धर्म के संस्कारों को बर्बरों के धार्मिक कृत्यों से, जो 'फिन्नों' और 'मगयरों' द्वारा ले आये गये थे, मिला कर एक नये धर्म की स्थापना करता।

इसी उदाहरण के अनुसार हेलेनी जगत् के वास्तविक धार्मिक इतिहास की हम फिर से रचना कर सकते हैं। यहाँ पुराने और परम्परागत 'इल्युसिस' के रहस्य कृत्यों को 'आरफियुज' के नये संस्कारों को मिला कर नये धर्म की उत्पत्ति की गयी। 'निलसन' के अनुसार किसी बौद्धिक प्रतिभा ने इस चिन्तनशील धर्म की स्थापना की होगी और थ्रेस के डायोनाइसस के आमोद-प्रमोद और मिनोई क्रीट के जीयूस के जन्म और मृत्यु के रहस्यवाद को मिला कर यह धर्म बना होगा। क्लासिकी युग में हेलेनी समाज की आत्मिक आवश्यकताओं को इल्युसिनी रहस्यवाद आरफियुजी धर्म ने पूरा किया क्योंकि ओलिम्पियाई देवताओं से वह पूरा नहीं पड़ता था। उसके लिए ऐसे देवता की आवश्यकता थी जो कष्ट के समय सहायक हो सके। क्योंकि किसी समाज में जब जनता का पतन होने लगता है तब ऐसे ही धर्म और देवता का आविष्कार होता है। इसी समानता के आधार पर इल्युसिनी रहस्यवाद और आरफियुजी धर्म में मिनोई सार्वदेशिक धर्म की छाया की कल्पना करना असंगत न होगा। यह कल्पना यदि सत्य भी हो (आगे चलकर जहाँ इस पुस्तक में आरफियुजी धर्म की उत्पत्ति पर विचार किया गया है इस सचाई पर शंका की गयी है) तब भी यह कहना बिलकुल ठीक न होगा कि हेलेनी समाज अपने पूर्व के समाज से सचमुच सम्बन्धित है। हेलेनी समाज का यह धर्म यदि मरा न होता तो उसके जी उठने की बात कहाँ से आती और उसके हत्यारे उन बर्बरों के सिवा और कौन होंगे जिन्होंने मिनोई समाज को रौंद डाला। इन्हीं एकियाई हत्यारों और नगर-ध्वंसकों के देवताओं को हेलेनी समाज ने अपनाया और इन्हीं हत्यारों को अपना पूर्वज चुना। जब तक हेलेनी समाज एकियाइयों की

हत्याओं को अपने सिर पर न ओढ़ता, वह मिनोई समाज से अपना सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता था ।

अब हम यदि सीरियाई समाज के पूर्व इतिहास को देखें तो वही अवस्था मिलेगी जो हेलेनी समाज के पूर्व के इतिहास में मिलती है । अर्थात् वैसा ही सार्वभौम राज्य जैसा मिनोई इतिहास के अन्तिम अध्यायों में हम पाते हैं । मिनोई रेला के बाद जो अन्तिम उपद्रव हुआ वह उन लोगों के द्वारा हुआ जो मानवी हिमस्राव की भाँति नये निवास की खोज में अव्यवस्थित ढंग से आये और जिनको उत्तर के लोगों ने जिन्हें 'डोरियन' कहा जाता है निकाल बाहर कर दिया था। मिस्र से भगाये जाने पर ये मिस्री साम्राज्य के उत्तर पूर्वी तट पर बस गये और वही पुराने बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेण्ट) में वर्णित फिलिस्तीन है । यहाँ मिनोई जगत् के फिलिस्तीनी आगन्तुकों से और उन हिब्रू खानाबदोशों से मुठभेड़ हुई जो अरब के उन भागों से, जहाँ किसी का शासन नहीं था, मिस्र के सीरियाई अधीन राज्यों में घूमते-फिरते पहुँचे गये थे । इसके और उत्तर लेबनान के पहाड़ों के कारण अरबों का आना रुक गया था और इन्हीं पहाड़ों में फिनीशी बस गये जो फिलिस्तीनियों के आक्रमण से बच गये थे । जब उपद्रव शान्त हुआ तब इन्हीं तत्त्वों में से सीरियाई समाज का जन्म हुआ ।

जितना सीरियाई समाज मिनोई समाज से सम्बन्धित था उतना ही हेलेनी समाज भी मिनोई समाज से । इसमें कमी-बेशी बिलकुल नहीं थी । मिनोई समाज से सीरियाई समाज को वर्णमाला शायद मिली हो (किन्तु यह अनिश्चित है) । दूसरी बात शायद समुद्र यात्रा का प्रेम मिला हो ।

एकाएक हमें आश्चर्य होता है कि सीरियाई समाज मिनोई समाज से उत्पन्न हुआ है। सम्भवतः लोग यह आशा करते रहे होंगे कि सीरियाई समाज की पृष्ठभूमि में मिस्र का 'नया साम्राज्य' होगा और यहूदियों का एकेश्वरवाद 'इखनेतन' के एकेश्वरवाद का पुनरुज्जीवन है, किन्तु प्रमाण इसके विरुद्ध है । न इसका कोई प्रमाण है कि सीरियाई समाज का सम्बन्ध अनातोलिया के खत्ती समाज (हिटाइट) से है या इसका समाज 'उर' के सुमेरी वंश से है या उसका सम्बन्ध बैबिलन के ऊमरी वंश से है । इन समाजों का अब हम अध्ययन करेंगे ।

सुमेरी समाज

जब हम भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हैं तब पहली बात जो हमें मिलती है वह वेदों का धर्म है । ओलिम्पिाई धर्म के समान इसकी भी उत्पत्ति बर्बरों के जनरेला में हुआ था । इसमें धर्म के कोई ऐसे लक्षण नहीं मिलते कि संकट-काल में किसी समाज के पतन के काल में उस समाज की जनता द्वारा इसकी उत्पत्ति हुई हो ।

इस स्थिति में बर्बर लोग जो भारतीय इतिहास के आरम्भ में उत्तर-पश्चिम भारत में उसी प्रकार आये जिस प्रकार हेलेनी इतिहास में एजीमन सागर में एकियाई लोग आये । जिस प्रकार हेलेनी समाज का सम्बन्ध मिनोई समाज से था उसी प्रकार भारतीय समाज की पृष्ठभूमि की यदि हम खोज करें तो हमको इसकी सीमा के पार कोई ऐसा सार्वभौम राज्य और अस्तव्यस्त प्रदेश मिलना चाहिए जहाँ आर्यों के पूर्वज विदेशी जनता के समान रहते थे और जब सार्वभौम राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तब वे भारत भूमि की ओर चले आये । क्या हम उस सार्वभौम राज्य और अस्तव्यस्त प्रदेश का पता लगा सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर दो और प्रश्न पूछने पर शायद

मिल जाय । भारत में आर्य किस ओर से आये । एक ही केन्द्र से चलने पर इनमें से कोई किसी और जगह तो नहीं पहुँचा ।

आर्य लोग इण्डो-यूरोपियन भाषा बोलते थे । इसकी एक शाखा यूरोप में बोली जाती थी और दूसरी भारत और ईरान में । इन भाषाओं के विस्तार से यह पता चलता है कि आर्य लोग यूरेशियाई स्टेप से भारत में उसी रास्ते से आये होंगे जिस रास्ते से बाद में तुर्की आक्रमणकारी. आये और जिस रास्ते से ग्यारहवीं शतीमें महमूद गजनी और सोलहवीं शती में मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर आये । तुर्क लोगों में से कुछ तो दक्षिण-पूर्व की ओर भारत में आये और कुछ दक्षिण-पश्चिम की ओर अनातोलिया और सीरिया में गये । महमूद गजनी के ही समय में सलजुकी तुर्कों ने जो आक्रमण किया उसी के परिणामस्वरूप पश्चिमी समाज ने धार्मिक युद्ध आरम्भ किया । प्राचीन मिस्र के अभिलेखों से पता चलता है कि २०००–१५००ई० पू० में यूरेशियाई स्टेप से आर्य लोग उन स्थानों में फैले जिन स्थानों में तीन हजार साल बाद तुर्क फैले । भारतीय प्रमाणों से पता चलता है कि कुछ आर्य भारत आये और कुछ ईरान, इराक, सीरिया और मिस्र में फैले । मिस्र में इहोंने ईसा के पूर्व सातवीं शती में शासन स्थापित किया । मिस्र के इतिहास में बर्बर 'हाइक्सो' लड़ाकुओं के नाम से विख्यात हैं ।

आर्यों का रेला क्यों आया ? इसका उत्तर इस प्रश्न से हम दे सकते हैं कि तुर्कों का जनरेला क्यों आया ? अन्तिम प्रश्न का उत्तर ऐतिहासिक अभिलेखों से मिलेगा । अब्बासी खिलाफत का जब विघटन हुआ तब अपने देश में तथा सिन्धु घाटी में इन पर आक्रमण होने लगा और ये दोनों तरफ फैले । इससे क्या आर्यों के विस्तार का कारण मालूम होता है? हाँ । जब हम २०००–१९०० ई० पू० के समय का दक्षिण-पश्चिमी एशिया का राजनीतिक नकशा देखते हैं तब हमें पता चलता है कि बगदाद के खिलाफत के समान यहाँ भी एक सार्वभौम राज्य था जिसकी राजधानी ईराक में थी और इसी केन्द्र से दोनों ओर के प्रदेशों में (जहाँ पहले खलीफा का राज्य था) इनका भी शासन होता था ।

यह सार्वभौम राज्य सुमेर और अक्काद का साम्राज्य था जिसे ऊर के सुमेरी ऊर-ऐंगूर ने लगभग २१४३ या २०७९ ई० पू० में स्थापित किया था । और जिसे लगभग १७५४ या १६९० ई० पू० में अमोरी हम्मूरबी ने पुनःस्थापित किया था । हम्मूरबी की मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और आर्यों के जनरेला का युग आरम्भ हुआ । ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता कि सुमेर और अक्काद का साम्राज्य भारत तक फैला था । किन्तु इसकी सम्भावना का संकेत इससे मिलता है कि सिन्धु घाटी में जो खुदाई हुई है उसकी संस्कृति (पहले जो खुदाई हुई उसका काल सम्भवतः २५०० से १५०० ई० पू० तक का है) का निकट सम्बन्ध ईराक की सुमेरी सभ्यता से है ।

क्या हम उस समाज को निर्धारित कर सकते हैं जिसके इतिहास में सुमेर और अक्काद का सार्वभौम राज्य था ? इस साम्राज्य का पूर्व इतिहास देखने से इस बात का प्रमाण मिलता है कि एक बार संकट-काल में अक्कादी लड़ाकू अगादें का सरगोंन विख्यात नेता था । उसके पहले भी विकास और सर्जन का युग था । पूर्व में जो इधर खुदाई हुई है उससे यह बात प्रकाश में आयी है । यह युग ईसा के चार हजार वर्ष पहले था या उससे भी पहले था कहा नहीं जा सकता। जिस समाज का हमने निर्धारण किया है उसे सुमेरी समाज कह सकते हैं ।

खत्ती (हिताइत) और बैबिलन के समाज

सुमेरी समाज को जान लेने के पश्चात् हम इसके बाद के दो समाजों का निर्धारण करेंगे।

सुमेरी सभ्यता अनातोलिया प्रायद्वीप के पूर्वी भाग में फैली हुई थी । इस प्रदेश का नाम बाद में 'कैपेडोशिया' पड़ा । पुरातत्त्व वेत्ताओं ने कैपेडोशिया में जो मिट्टी के फलक पाये हैं, जिनमें कील वाले अक्षरों में व्यापारिक लेखों के छाप हैं, इस बात के प्रमाण हैं । हम्मूरबी की मृत्यु के बाद जब सुमेरी सार्वदेशिक राज्य नष्ट हो गया तब उत्तर-पश्चिम के बर्बरों ने कैपेडोशिया प्रदेश पर अधिकार कर लिया । और १५९५ अथवा १५३१ ई० पू० के लगभग खत्ती के राजा मुरसिल प्रथम ने बैबिलन पर आक्रमण किया और उसको नष्ट कर डाला । लुटेरे लूट का माल लेकर लौट गये और ईरान से दूसरे बर्बर 'कसाइतों' ने ईराक पर अपना राज्य स्थापित किया जो छः सौ साल तक था । खत्ती साम्राज्य (हिताइत) समाज का केन्द्र बन गया। इसका थोड़ा-बहुत ज्ञान हमें मिस्र के अभिलेखों से मिलता है क्योंकि मिस्र के तोतमीज़ तृतीय (१४९०–१४३६ ई० पू०) ने जब सीरिया तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया उसके बाद के हिताइतों से बराबर युद्ध होता रहा । हिताइत साम्राज्य का विनाश उसी जनरेला द्वारा हुआ जिसने क्रीटी साम्राज्य का विनाश किया । भविष्यवाणी की प्रथा की सुमेरी प्रणाली को हिताइतों ने भी अपना लिया था, परन्तु उनका धर्म अपना अलग था और उनकी लिपि भी चित्र लिपि थी जिसमें कम से कम पाँच हिताइती भाषाएँ लिखी मिलती हैं ।

दूसरे समाज का पता जिसका सम्बन्ध सुमेरियों से है सुमेरी समाज के निवास स्थान बैबिलन में मिलता है । इसका वर्णन पन्द्रहवीं शती ई० पू० के मिस्र के अभिलेखों में मिलता है । यहाँ बारहवीं शती ई० पू० तक कसाइतों का शासन चलता रहा है । इस युग में बैबिलोनिया का नाम असीरिया और एसाम हो गया था । सुमेरी प्रदेश में जो पीछे वाला समाज बना उसका पूर्व-सुमेरी समाज से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि यह नहीं समझ में आता कि उसे नया समाज काहा जाय अथवा सुमेरी समाज का उपसंहार कहा जाय । संदेह लाभ निवारण करने के लिए हम उसे बैबिलनी समाज कहेंगे । उसके अन्तिम काल में, अर्थात् सातवीं शती ई० पू० में अपने ही प्रदेश में सौ वर्ष तक उसे घनघोर युद्ध करना पड़ा । यह युद्ध असीरिया के लड़ाकुओं और बैबिलोनी निवासियों में होता रहा । असीरिया के विनाश के बाद सत्तर वर्षों तक बैबिलोनी समाज जीवित रहा और अन्त में खुसरो (साइरस) के एकेमीनी समाज का सार्वभौम राज्य उसे निगल गया । इन सत्तर वर्षों में नबुकदनजार का राज्य था और यहूदियों पर इस युग में बहुत संताप था । जिन्होंने खुसरो को ईश्वर-प्रदत्त त्राता समझा था ।

मिस्री समाज

इस विख्यात समाज का प्रादुर्भाव चार हजार वर्ष ई० पू० हुआ । और ईसा के बाद पाँचवीं शती में इसकी समाप्ति हुई । हमारा पश्चिमी समाज आज तक जितने काल तक जीवित है उसके तिगुने काल तक यह समाज रहा । इसके न तो पूर्वज थे, न उत्तराधिकारी । आज का कोई समाज भी इसे अपना पूर्वज कहने का दावा नहीं कर सकता । इसकी एक और भी विजय है कि पत्थरों में इसने अपने को अमर बनाया है । इसकी पूर्ण सम्भावना है कि पिरामिड जो पाँच हजार वर्षों तक अपने निर्माताओं के जीवन को प्रमाणित करते रहे हैं वे अभी लाखों वर्षों तक मौजूद

रहेंगे। यह असम्भव नहीं है कि ये उस समय भी रहें जब पृथ्वी पर उनका संदेश पढ़ने वाला कोई मनुष्य न रह जाय और तब भी वे यह कहते रहें 'इब्राहीम' (अब्राहम) के पहले से मैं भी हूँ।

ये जो पिरामिड के रूप में बड़ी-बड़ी कब्रें हैं इनसे कई रूपों में मिस्री समाज के इतिहास का पता लगता है। हमने ऊपर कहा है कि यह समाज लगभग चार हजार वर्षों तक बना रहा। किन्तु इसके आधे काल तक मिस्री समाज का अस्तित्व तो था, परन्तु उसी प्रकार जैसे कोई जन्तु मर गया हो, किन्तु दफन न किया गया हो। मिस्री इतिहास का आधे से अधिक भाग किसी घटना के महान् उपसंहार के समान है।

यदि हम इस इतिहास पर ध्यान दें तो इसका चौथाई भाग विकास का काल था। इस काल में अपने वातावरण की भौतिक कठिनाइयों पर मिस्री लोगों ने विजय प्राप्त की। नील नदी के डेल्टा और उसकी निचली घाटी के निर्जन स्थानों को उन्होंने साफ किया, उसका पानी निकाला और वहाँ खेती आरम्भ की। और तब तथाकथित पूर्व डाइनास्टिक युग के अन्त में मिस्री संसार में अभूतपूर्व एकता स्थापित की और जिसने चौथी पीढ़ी में महान् भौतिक कार्यों को सम्पन्न किया। इस पीढ़ी में मिस्री समाज अपने कार्यों की कुशलता में उच्चतम शिखर पर पहुँचा। इसी समय बड़े-बड़े इंजीनियरी के कार्य सम्पन्न हुए, जैसे दलदलों को कृषि योग्य बनाया गया और पिरामिडों का निर्माण हुआ। राजनीतिक शासन और कला का भी उच्चतम विकास हुआ। इसी युग में ऐसे धर्म का भी, जो सामान्यतः कष्ट और दुख के समय प्रकट होता है, प्रादुर्भाव हुआ। इसकी पहली मंजिल वह थी जब दो धार्मिक आन्दोलनों में संघर्ष हुआ अर्थात् सूर्य और 'ओसाइरिस' का संघर्ष। और यह पूर्णता पर उस समय पहुँचा जब मिस्री समाज का ह्रास हुआ।

उत्कर्ष का काल समाप्त हो गया और पाँचवीं पीढ़ी तक लगभग २३५० ई० पू० में पतन आरम्भ हो गया। और इस समय हम पतन के वही चिह्न देखने लगते हैं जो हमें दूसरे समाजों के इतिहास में मिलते हैं। मिस्री साम्राज्य टूट कर छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया और हमें संकट काल स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। संकट काल के बाद २०५२ ई० पू० के लगभग एक सार्वभौम राज्य स्थापित हुआ जिसकी नींव थीबीज के एक स्थानीय वंश ने डाली और बारहवीं पीढ़ी अर्थात् १९५१–१७८६ ई० पू० के लगभग उसे मजबूत किया। बारहवीं पीढ़ी के बाद यह सार्वभौम राज्य विघटित होने लगा और इसी समय हाइक्सो लोगों का जनरेला आरम्भ हुआ।

इस जगह शायद हम समझें कि इस समाज का अन्त है। यदि हम अपनी खोज की साधारण प्रणाली को अपनायें और ईसा की पाँचवीं शती से पीछे की ओर देखें तो हम इस स्थान पर कहेंगे कि हमने मिस्री इतिहास के भूतकाल का अध्ययन कर लिया और इक्कीस शतियों के बाद ईसा की पाँचवीं शती में उस इतिहास का अन्त देख लिया और यह भी देखा कि एक सार्वभौम राज्य के बाद जनरेला आरम्भ हुआ। मिस्री समाज के उद्गम तक हमने देखा और हमें पता चला कि मिस्री समाज के आरम्भ के पूर्व एक और समाज का अन्त है जिसे हम 'नाइलोटिक' समाज कहेंगे।

किन्तु हम इस ढंग को नहीं अपनायेंगे। क्योंकि यदि हम आगे की खोज करें तो हमें नया समाज नहीं मिलेगा, बल्कि कुछ भिन्न परिस्थिति मिलेगी। बर्बर 'उत्तराधिकारी राज्य' पराजित

हो जाता है, हाइक्सो लोग देश से निकाल दिये जाते हैं और निश्चित तथा आयोजित ढंग से सार्वभौम राज्य की फिर से स्थापना होती है जिसकी राजधानी थीबीज बनती है ।

हमारी दृष्टि से ई० पू० छठीं शती से पाँचवीं शती ई० तक के बीच (इखनातन की विफल क्रान्ति को छोड़ कर) थीबीज के राज्य का पुनःस्थापन ही एक महत्त्वपूर्ण घटना थी । यह सार्वभौम राज्य दो हजार वर्षों तक था । इस बीच कभी वह ध्वंस होता, कभी पुनरुज्जीवित होता था । परन्तु कोई नया समाज नहीं बना ।(अगर हम मिस्री समाज के धार्मिक इतिहास का अध्ययन करें तो संकट काल के बाद जो धर्म प्रचलित था वह पतन काल पहले के सबल अल्पसंख्यकों से लिया गया था । किन्तु यह धर्म बिना संघर्ष के प्रचलित नहीं हुआ । इसे उस सार्वभौम धर्म से समझौता करना पड़ा जो मिस्र की देशी जनता ने ओसाइरिस वाले धर्म से उस समय स्थापित किया था जो पतन के पहले का युग था ।)

ओसाइरिस का धर्म नील के डेल्टा में उत्पन्न हुआ । यह दक्षिणी मिस्र से नहीं आया जहाँ मिस्री समाज का निर्माण हुआ था । मिस्र का धार्मिक इतिहास दो देवताओं के द्वन्द्व का परिणाम है । एक पृथ्वी और पृथ्वी का पाताल का देवता जिसमें यह भाव निहित है कि वनस्पति जगत् भूमि के ऊपर प्रकट होता है और फिर पृथ्वी के नीचे लय हो जाता है और दूसरा आकाश का देवता सूर्य ।(यह धार्मिक भावना समाज के दो अंगों के राजनीतिक और सामाजिक संघर्षों की अभिव्यक्ति है । इन्हीं दोनों समाजों में अलग-अलग एक देवता की पूजा आरम्भ हुई । सूर्य देवता 'री' था । इसका नियंत्रण हीलियोपोलिस के पुजारी करते थे । फेरो री का प्रतिमूर्ति था । ओसाइरिस सार्वजनिक देवता था । यह संघर्ष राज्य द्वारा स्थापित धर्म में और सार्वजनिक धर्म में था, जिसमें व्यक्तिगत विचारों की स्वतन्त्रता थी ।)

दोनों धर्मों के मूल रूप में मुख्य अन्तर यह था कि मृत्यु के बाद किस धर्म के मानने वाले को क्या लाभ होता है । ओसाइरिस का शासन पाताल के अंधकारमय संसार में लाखों—करोड़ों मुर्दों पर था । री कुछ पूजा के बदले मृत्यु के पश्चात् अपने भक्तों को जीवति करके ऊपर स्वर्ग में पहुँचाता था । किन्तु यह स्वर्गीकरण उन्हीं लोगों के लिए सुरक्षित था जो अच्छी भेंट चढ़ा सकते थे । इस पूजा का मूल्य बराबर बढ़ता गया, यहाँ तक कि यह अमरता फेरो और उसके उन दरबारियों का एकाधिपत्य हो गयी जो अपनी अमरता के लिए अधिक से अधिक साज-सज्जा प्रदान कर सकते थे । महान् पिरामिड की विशालता में इसी अमरता के प्रयत्न की सुरक्षा की गयी है ।

किन्तु ओसाइरिस का धर्म बढ़ता गया । इसके द्वारा जो अमरता मिलती थी वह स्वर्ग में जो री की पूजा से स्थान मिलता था उसकी तुलना में बहुत हेय थी, किन्तु जीवन में जो कठोर यातना मिलती थी उसके कारण यही सन्तोष उनके लिए पर्याप्त था । मिस्री समाज इस समय दो टुकड़ों में विभाजित हो गया था । एक अधिकार प्राप्त अल्प संख्यक और दूसरा आन्तरिक जनता । इस खतरे का सामना करने के लिए ही लियोपोलिस के पुजारियों ने ओसाइरिस की शक्ति समाप्त करने के लिए ओसाइरिस को अपना लिया, किन्तु इस कार्य से ओसाइरिस की शक्ति घटने के बजाय बढ़ गयी । जब ओसाइरिस का सम्बन्ध फेरो के सूर्य वाले धर्म से हो गया तब ओसाइरिस का प्रभाव ऐसा हो गया कि सूर्य की पूजा सभी मनुष्यों के लिए हो गयी । इस

धार्मिक संयोजन की स्मृति 'मानव की अमरता का पथ-प्रदर्शक'[१] नाम की पुस्तक में है। मिस्री समाज के अन्तिम दो हजार वर्षों में इसी पुस्तक का प्रभाव वहाँ के धार्मिक जीवन में था। यह भावना प्रबल रही कि री पिरामिड के बजाय सत्य आचरण चाहता है और ओसाइरिस पाताल का न्यायाधीश बनकर बैठा जो मनुष्य के मरती पर किये गये कर्मों के अनुसार उसे पुरस्कार या दण्ड देता था।

यहाँ मिस्री सार्वभौम राज्य में हमको ऐसे सार्वभौम धर्म का आभास मिलता है जिसका आन्तरिक सर्वहारा ने निर्माण किया था। यदि मिस्री सार्वभौम राज्य का पुनरुज्जीवन न हुआ होता तब ओसाइरी धर्म का भविष्य क्या होता? क्या वह नये समाज का जन्मदाता होता? हम शायद यह आशा करते कि वह हाइक्सो लोगों को पराजित करता जिस प्रकार ईसाई धर्म ने बर्बरों को पराजित किया। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। हाइक्सो लोगों के प्रति जो घृणा थी उसके कारण ओसाइरी धर्म और प्रबल अल्प संख्यकों के धर्म के अस्वाभाविक मिलाप के कारण ओसाइरी धर्म विकृत और पतित हो गया। अमरता फिर बिकने लगी, किन्तु इस बार इसका मूल्य पिरामिड नहीं था, बल्कि पेंपाइरस के पुलिन्दों पर कुछ लेख थे। हम कल्पना कर सकते हैं कि इस सस्ती वस्तु के बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण उत्पादक को मुनाफा बहुत होता होगा। इस प्रकार सोलहवीं शती ई० पू० में मिस्री सार्वभौम राज्य केवल पुनरुज्जीवित ही नहीं हुआ, पुनःस्थापित भी हुआ। यह जीवित ओसाइरी धर्म और मृतप्राय मिस्री समाज का एक संकरण था। मानो एक सामाजिक कांक्रीट था जिसे नष्ट होने में दो हजार वर्ष लगे।

मिस्री समाज के मृत होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि एक बार उसे जगाने की चेष्टा की गयी, किन्तु सफलता नहीं मिली। इस बार फेरो इखनातन ने नया धर्म स्थापित करने की चेष्टा की जिस प्रकार शतियों पहले आन्तरिक सर्वहारा वाले ओसाइरी धर्म ने विफल प्रयत्न किया था। इखनातन ने ईश्वर और मनुष्य, जीवन और प्रकृति के सम्बन्ध में नयी कल्पना उपस्थित की और इसे नयी कला और कविता द्वारा व्यक्त किया। किन्तु मरा समाज इस प्रकार जीवित नहीं हो सकता। उसकी असफलता इस बात का प्रमाण है कि सोलहवीं शती ई० पू० के बाद से मिस्री इतिहास की सामाजिक परिस्थितियों का जो वर्णन किया गया है वह ठीक है अर्थात् उस समय के मिस्री समाज का इतिहास किसी नये समाज के इतिहास का आरम्भ से अन्त नहीं है, बल्कि उपसंहार है।

ऐण्डी, यूकारी, मेक्सिकी तथा मायासमाज

स्पेनियों के आने के पहले ये चार समाज अमरीका में थे। ऐण्डी समाज सार्वभौम राज्य की स्थिति को पहुँच चुका था और 'इनका' साम्राज्य बन चुका था जिसे १५३० ई० में पिजारों ने ध्वंस किया। मैक्सिकी समाज में भी एजहेक साम्राज्य बन चुका था और उसकी भी गति वही हो रही थी जो इनका की थी। जिस समय कारटेज का अभियान हुआ उस समय 'ट्लैक्सकाला' ही ऐसा स्वतन्त्र राज्य था जिसका कुछ महत्त्व था। परिणामस्वरूप ट्लैक्सकाला वालों ने कारटेज की सहायता की। यूकेटन के यूकेटी समाज को चार सौ साल पहले मैक्सिकी समाज ने अपने

---

[१] ऐन एवरी मैन्स गाइड टु इम्मोरटैलिटी।

में मिला लिया था । मैक्सिकी तथा यूकेटी समाज दोनों एक पहले के समाज के वंशज थे जिसका नाम माया समाज था । इसकी सभ्यता अपने दोनों वंशजों से बहुत ऊँची थी । सातवीं ई० में बहुत शीघ्र और रहस्यपूर्ण ढंग से इसका अन्त हो गया । अब उसके चिह्न यूकेटा के जंगलों में खण्डहरों के रूप में मिलते हैं । माया समाज ज्योतिष और गणित की गणनाओं में बहुत कुशल था । कारटेज मैक्सिको में जो भयंकर धार्मिक कृतियों की खोज की गयी वह माया समाज के धर्म का बर्बर रूप था ।

हमारी खोज ने उन समाजों का पता लगा लिया जो किसी के पितामह थे अथवा किसी के वंशज थे । इनकी नामावली इस प्रकार है :—पश्चिमी, परम्परावादी ईसाई धर्म वाले, ईरानी, अरबी (यह अन्तिम दोनों मिल कर अब इस्लामी समाज बन गये), हिन्दू, सुदूरपूर्वी, हेलेनी, सीरियाई, भारती, चीनी, मिनोई, सिन्धु घाटी वाले, सुमेरी, हिताइती, बैबिलोनी, मिस्री, ऐंडी, मैक्सिकी, यूकेटी तथा माया । हमने इस बात पर सन्देह प्रकट किया है कि बैबिलोनी और सुमेरी समाज अलग-अलग थे । सम्भव है कि मिस्री समाज के समान और भी दो-दो समाज किसी एक समाज के उपसंहार रहे हों । किन्तु हम उन्हें अलग-अलग समाज ही मानेंगे जब तक कोई अच्छा प्रमाण उनको अलग न मानने के लिए न मिल जाय । शायद यह ठीक हो कि परम्परावादी ईसाई समाज के दो भाग हों अर्थात् एक परम्परावादी बैजन्तिया समाज और दूसरा परम्परावादी रूसी समाज । और इसी प्रकार सुदूर पूर्वी को एक चीनी समाज दूसरा कोरिया—जापानी समाज । इस प्रकार इनकी संख्या बाईस हो जाती है । यह पुस्तक लिखने के बाद एक तीसरे समाज का पता चला है जो हांग हो की घाटी में चीनी सभ्यता के पहले था जिसे शांग सभ्यता कहते हैं । इस सम्बन्ध में और विवेचन अगले अध्याय में किया जायेगा ।

३. समाज की तुलना

(१) सभ्यताएँ और आदिम समाज

इसके पहले कि हम इक्कीसों समाजों की विधिवत् तुलना करें, जो इस पुस्तक का अभिप्राय है, हम कुछ आपत्तियों का उत्तर देना चाहते हैं, जो उठायी जा सकती हैं। जिस पद्धति का अनुसरण हम करने जा रहे हैं उसके विरुद्ध पहला तर्क यह हो सकता है :—'इन समाजों में इसके अतिरिक्त कोई सामाजिक गुण नहीं है कि वह 'अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र' हैं। किन्तु यह गुण इतना अस्पष्ट और साधारण है कि अध्ययन में उससे कोई व्यावहारिक सहायता नहीं मिल सकती।'

इसका उत्तर यह है कि जो समाज 'अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र' हैं वे वंश (जीनस) हैं, और इसके अन्दर हमारे इक्कीस प्रतिनिधि विशेष जातियाँ (स्पीसीज) हैं। इन जातियों के समाज को ही साधारणतः सभ्य समाज कहते हैं इनसे भिन्न आदिम समाज भी हैं। ये भी 'अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र' हैं। और इसी वंश के अन्दर दूसरी जातियाँ हैं। हमारे इक्कीस समाजों में, इसलिए, एक विशेष गुण सबमें पाया जाता है कि वे ही सभ्यता की राह पर हैं।

दोनों जातियों में एक और अन्तर अपने-आप स्पष्ट हो जाता है। जिन आदिम समाजों का हमें ज्ञान है उनकी संख्या बहुत अधिक है। सन् १९१५ ई० में पश्चिम के तीन नृतत्व-शास्त्रियों (एन्थ्रोपोलोजिस्ट) ने आदिम समाजों का तुलनात्मक अध्ययन किया। जो कुछ सूचनाएँ प्राप्त थीं, केवल उन्हीं को उन्होंने अपना आधार माना। और ६५० ऐसे समाज उन्हें मिले जो जीवित हैं। इस बात की कल्पना नहीं हो सकती कि जबसे मनुष्य मानव हुआ, शायद आज ३००,००० वर्ष बीते होंगे, तब से आज तक कितने आदिम समाज जन्में होंगे और मर गये होंगे। किन्तु इतना स्पष्ट है कि उनकी संख्या हमारे सभ्य समाजों से कहीं अधिक है।

जहाँ तक व्यक्तिगत विस्तार का सम्बन्ध है सभ्य समाजों का बाहुल्य आदिम समाजों से अधिक है। आदिम समाज असंख्य है, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से उनका जीवन काल थोड़ा है। और सभ्य समाजों की तुलना में उनके क्षेत्र की सीमा भी कम है और सभ्य समाजों की तुलना में उनमें लोगों की संख्या भी कम है। यदि आज जो पाँच सभ्य समाज जीवित हैं उनकी जन-गणना की जाय तो जितनी थोड़ी शतियों में ये जीवित चले आ रहे हैं, उनकी एक-एक की संख्या उन सब आदिम समाजों की संख्या, जो मानव जाति के आरम्भ से आज तक चले आ रहे हैं, सभ्य समाजों की संख्या से अधिक होगी। किन्तु हम व्यक्तियों का नहीं, समाजों का अध्ययन कर रहे हैं। हमारे लिए महत्त्व की बात यह है कि सभ्यता के क्रम में जो समाजों का विकास हुआ उनकी संख्या तुलनात्मक दृष्टि से कम है।

(२) 'सभ्यता की अन्विति का भ्रम'

इक्कीस समाजों की तुलना करने के विरोध में जो दूसरा तर्क है वह पहले का विरोधी है।

वह यह है कि ये इक्कीस भिन्न प्रतिनिधि समाज की जातियों के नहीं हैं, बल्कि केवल एक ही सभ्यता है—वह हमारी है ।

समाजों की सभ्यता एक है (यूनिटी) यह भ्रम है । पश्चिम के इतिहासकारों ने अपने वातावरण के प्रभाव के कारण यह दावा किया है । इस भ्रम का कारण यह है कि वर्तमान युग में पश्चिमी सभ्यता ने अपनी आर्थिक प्रणाली का जाल विश्व भर में फैला रखा है । यह आर्थिक एकता पश्चिम के आधार पर है । इसी के परिणामस्वरूप राजनीतिक एकता भी उतनी ही हो गयी है । क्योंकि पश्चिम की सेनाओं ने तथा सरकारों ने उतनी विस्तृत और उतनी पूर्ण विजय नहीं प्राप्त की जितनी पश्चिम के कारखाने वालों और शिल्पियों ने (टेकनीशियन) । फिर भी यह तथ्य है कि आज के युग के संसार के सारे राज्य एक ही राज्य प्रणाली के अंग हैं जिसका आरम्भ पश्चिम में हुआ है ।

ये तथ्य जोरदार हैं, किन्तु इन्हें सभ्यता की एकता का प्रमाण मान लेना केवल सक्कीपन होगा। विश्व के राज्यों का आर्थिक और राजनीतिक नकशा पश्चिमीय हो गया है, परन्तु उनका सांस्कृतिक नकशा वही है जो आर्थिक और राजनीतिक विजय के पहले था । जिन लोगों को आँखें हैं वे देख सकते हैं कि सांस्कृतिक धरातल पर चारों जीवित अ-पश्चिमीय (नान-वेस्टर्न) सभ्यताएँ स्पष्ट हैं । किन्तु बहुत लोगों के पास ऐसी आँखें नहीं हैं और उनकी दृष्टि का उदाहरण अंग्रेजी शब्द 'नेटिव' (देसी) अथवा इसी प्रकार के पश्चिम की भाषाओं में और शब्द है ।

जब हम पश्चिमी लोग 'नेटिव' शब्द का प्रयोग करते तब हम लोग उनकी संस्कृति का ध्यान नहीं करते । हम लोग जिस देश में जाते हैं वहाँ उन्हें जंगली जानवरों की भाँति समझते हैं जो उस देश में फैले हुए हैं । जिस प्रकार हम वहाँ के पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को देखते हैं वैसे ही उन्हें भी समझते हैं । यह नहीं समझते कि हमारी ही तरह उनमें भी आवेग (पैशन्स) होते हैं । जब तक हम उन्हें 'नेटिव' समझते हैं हम उनका विनाश कर सकते हैं या उन्हें सभ्य बना सकते हैं या शायद ईमानदारी से उनके वंश की उन्नति कर सकते हैं । (शायद इसमें सचाई भी हो)। किन्तु उन्हें समझने की चेष्टा नहीं करते

विश्व भर में पश्चिमी सभ्यता की भौतिक विजय के भ्रम के अतिरिक्त 'इतिहास की एकता' की यह मिथ्या धारणा है कि सभ्यता की एक ही सरिता है जो हमारी है और शेष सब या तो उसकी सहायक है या मरुभूमि में खो गयी हैं । इस भ्रान्ति के तीन कारण हैं । एक अहंवादी (एगोसेण्ट्रिक) भ्रम; दूसरा यह भ्रम कि पूर्व के देश अ-परिवर्तनशील हैं, और तीसरा यह भ्रम कि उन्नति की गति सीधी रेखा में होती है ।

अहंवादी भ्रम स्वाभाविक होता है और इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हम पश्चिम वाले ही इसके शिकार नहीं हैं । यहूदियों को यही भ्रम नहीं रहा कि हम 'विशेष लोक-समुदाय, (पीपुल) हैं, बल्कि हमीं विशेष लोक समुदाय हैं । जैसे हम 'नेटिव' शब्द का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार वह 'जेण्टाइल' (गैर यहूदी, नास्तिक) का प्रयोग करते थे । अहंवादी सनक का सबसे अच्छा उदाहरण वह पत्र है जो चीन के दार्शनिक सम्राट् चिएन लंग ने सन् १७९३ ई० में अंग्रेजी राजदूत को अपने मालिक सम्राट् तृतीय जार्ज को देने के लिए दिया था ।

"ए सम्राट् ! आप अनेक सागरों के पार रहते हैं । फिर भी अपनी विनीत इच्छा से प्रेरित होकर कि हमारी सभ्यता से आप लाभ उठाने के लिए आपने एक शिष्ट-मण्डल भेजा है जो आपका

आदरयुक्त स्मृति-पत्र (मेमोरियल) लाया है। मैंने आपका स्मृति-पत्र पढ़ा। जिस उत्साहपूर्ण भाषा में यह लिखा गया है उससे आपकी सम्मानपूर्ण विनम्रता प्रकट होती है जो बहुत प्रशंसा-जनक है।

"आपकी यह प्रार्थना कि आपके राष्ट्र का एक प्रतिनिधि मेरे स्वर्ग समान दरबार में रहे और चीन तथा आपके देश के बीच के व्यापार का नियन्त्रण करे, नहीं स्वीकार हो सकती क्योंकि यह मेरे वंश की परम्परा के विरुद्ध है। यदि आपका आग्रह है कि हमारे दिव्य वंश के प्रति आपका सम्मान हो और आप हमारी सभ्यता को ग्रहण करना चाहते हैं तो हमारे रीति-रिवाज और हमारे कानून और नियम आपके रीति-रिवाज और कानून से इतने भिन्न हैं कि यदि आपके प्रतिनिधि उसका प्रारम्भिक ज्ञान भी प्राप्त कर लें तो हमारे आचार-व्यवहार, रस्मो-रिवाज आपकी उस विदेशी धरती पर पनप नहीं सकते। इसलिए आपका प्रतिनिधि कितना भी पटु हो जाय कोई लाभ नहीं हो सकता

"इस विशाल संसार पर शासन करते हुए मेरा एक ही लक्ष है कि मेरा शासन कुशल हो और मैं राज्य के कार्यों का ठीक निर्वाह कर सकूँ। विचित्र और मूल्यवान् वस्तुओं के प्रति मुझे आकर्षण नहीं है। आपने जो उपहार नजर के रूप में भेजे हैं उन्हें स्वीकार करने की आज्ञा, ए राजा, मैंने इसलिए दे दी कि आपने जिस भावना से उन्हें इतनी दूर भेजा है उसका मैंने आदर किया। हमारे वंश के महान् गुण आकाश के नीचे प्रत्येक देश में समाविष्ट हो गये हैं और सभी राष्ट्रों के राजाओं ने जल और थल के मार्गों से अपनी बहुमूल्य भेंटे मेरे पास भेजी हैं। आपके प्रतिनिधि देख सकते हैं कि हमारे पास सब कुछ है। विचित्र तथा विलक्षण वस्तुओं का मेरे सामने कोई मूल्य नहीं है। आपके देश की बनी वस्तुओं की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है।"[१]

इस पत्र के भेजने के बाद की ही शती में चिएन लंग के देशवासियों की अनेक पराजय हुई। कहा भी गया है कि घमण्ड का यही परिणाम होता है।

'अपरिवर्तनशील पूर्व' इतना प्रचलित भ्रम है और गम्भीर अध्ययन के लिए इतना निराधार है कि उसका कारण ढूँढ़ने में कोई महत्त्व या रुचि नहीं हो सकती। सम्भवतः इसका कारण यह है कि इस सन्दर्भ में 'पूरब' से अभिप्राय कोई भी स्थान मिस्र से चीन तक हो सकता है। किसी समय यह पश्चिम से कहीं आगे था और अब बहुत पीछे रह गया है। अतएव जब हम लोग गतिशील थे यह निश्चल रहा होगा। विशेषतः हमें याद रखना चाहिए कि साधारण पश्चिम वालों को 'पूरब' के प्राचीन इतिहास की जानकारी पुराने बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेण्ट) की कथाओं से ही प्राप्त हुई है। पश्चिम के यात्रियों ने आज जब आश्चर्य और आनन्द से यह देखा कि अरब के रेगिस्तान की सीमा पर ट्रांसजार्डीनिया में आज भी लोगों का जीवन वैसा ही है जैसा उत्पत्ति की पुस्तक (बुक आव जनेसिस) में सरदारों (पेट्रिआर्क) के बारे में लिखा है, तब पूरब की अप्रगतिशीलता प्रमाणित हो गयी। किन्तु इन यात्रियों ने 'अपरिवर्तनशील पूरब' को नहीं देखा, अपरिवर्तनशील अरब के स्टेप को देखा। स्टेप पर भौतिक वातावरण मनुष्यों के लिए उतना कठोर है कि उसके अनुकूल बना लेने की सीमा बहुत संकुचित है। सभी

---

[१] ए० फ० ह्वाइट: चाइना एण्ड फारेन पावर्स, पृ० ४१।

कालों में उन लोगों का, जिनका इस कठिन वातावरण में रहने का साहस था जीवन अपरिव शील और कठोर हो गया। 'अपरिवर्तनशील पूरब' के लिए ऐसा प्रमाण लचर है। उदाह के लिए, पश्चिमी जगत् में आल्प्स की घाटियों में जहाँ नवयुग के यात्रियों का धावा नहीं हुआ ऐसे निवासी हैं जो उसी प्रकार रहते हैं जैसे उनके पूर्वज अब्राहम के युग में रहते थे। यह तर्क उत ही युक्ति-संगत होगा कि 'पश्चिम अपरिवर्तनशील' है।

उन्नति का यह भ्रम कि वह कोई ऐसी चीज है जिसकी गति सीधी रेखा में होती है ऐ प्रवृत्ति का उदाहरण है कि मनुष्य का मन (माइण्ड) सदा सब कार्यों को सरलतम बनाना चाह है। हमारे इतिहासकार सीधे एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक सिलसिले में समय विभाजन कर देते हैं, जैसे बाँस के पोर लगातार एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक होते हैं, या जैसे चिम साफ करने के नवीन डण्डे के टुकड़े होते हैं जिसके सिरे पर ब्रश लगा होता है और जि चिमनी साफ करने वाला एक के बाद एक बढ़ाता जाता है। हमारे इतिहासकारों को जो ब का हैंडिल्ल उत्तराधिकार में मिला है मूल में उसकी दो ही गाँठें थीं। प्राचीन और वर्तमान ठीक-ठीक तो नहीं, किन्तु ये प्रायः नयी और पुरानी बाइबिल के समान हैं और ईसा के पहले यु और ग्रीक के बाद के युग को लक्षित करता है। यह द्वि-वर्गीकरण (डाइकोटोमी) हेलेनी समाज की आन्तरिक जनता के दृष्टिकोण की यादगार है जिसने इस प्रकार हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यकों से अपना अलगाव व्यक्त किया था और इस प्रकार पुराने हेलेनी विमुक्ति (डिसपेंसेशन) और ईसाई धर्म समाज से पूर्ण विरोध प्रकट किया था। और इस प्रकार इस अहंवादी भ्रम के वे शिकार हुए कि हमारे इक्कीस समाजों में एक दूसरे में संक्रमण हुआ और इसी से इतिहास में परिवर्तन हुआ। (उनके लिए यह क्षम्य है क्योंकि उनका ज्ञान हमसे कम था।)

समय की गति के साथ-साथ हमारे इतिहासकारों ने अपनी सुविधा के लिए एक और गाँ जोड़ दी और उसे 'मध्यकाल' कहा क्योंकि वह दोनों के बीच था। 'प्राचीन' और वर्तमान का का विभाजन हेलेनी और पश्चिमी इतिहास के व्यवधान के कारण था, 'मध्यकाल' और 'वर्तमान काल' पश्चिमी इतिहास के एक अध्याय से दूसरे अध्याय का केवल संक्रमण है। यह फारमूला—प्राचीन काल, मध्यकाल, वर्तमान काल अनुपयुक्त है। यह यों होना चाहिए, हेलेनी + पश्चिमी (मध्य + वर्तमान) किन्तु इससे काम नहीं चलेगा। क्योंकि यदि हम पश्चिमी इतिहास के एक अध्याय-विभाजन को अलग 'काल' मानते हैं तो दूसरों के लिए यही मानना उचित होगा। यदि हम कोई विभाजन सन् १४७५ के आस-पास करते हैं तो सन् १०७५ के आस-पास क्यों नहीं। और इस बात के पक्ष में भी समुचित तर्क है कि अभी हम लोगों ने एक नया अध्याय आरम्भ किया है जिसका आदि काल हम सन् १८७५ के आस-पास रख सकते हैं। इस प्रकार यह विभाजन होगा :-

पश्चिमी १ (अंधकार युग, डार्क एज) ६७५–१०७५
पश्चिमी २ (मध्यकाल) १०७५–१४७५
पश्चिमी ३ (वर्तमान) १४७५–१८७५
पश्चिमी ४ (उत्तर वर्तमान, पोस्ट-माडर्न) १८७५–?

किन्तु हम अपने विषय से दूर चले गये। विषय यह है कि हेलेनी और पश्चिमी इतिहास का, उसे चाहे प्राचीन और वर्तमान कह लीजिए, समीकरण (इक्वेशन), केवल संकीर्णता और धृष्टता

है। यह इसी प्रकार है कि भूगोलवेत्ता 'संसार के भूगोल' पर पुस्तक लिखे और देखने पर पता चले कि पुस्तक केवल भूमध्यसागर के बेसिन और यूरोप पर है।

इतिहास की अन्विति की एक दूसरी और भिन्न धारणा है जो उस प्रचलित और परम्परागत भ्रम से मिलती है जिसपर विचार किया गया है और जो इस पुस्तक की स्थापना के विरुद्ध है। हम किसी बाजारू खिलौने की बात नहीं कर रहे हैं, बल्कि नृशास्त्र के सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप जो बातें लिखी गयी हैं उनपर हम उस विसरण (डिफ्यूज़न) के सिद्धान्त की बात कर रहे हैं जो जी० ईलियट स्मिथ के 'द ऐंशेंट इजिपशियन्स एण्ड दि ओरिजिन आव सिविलिजेशन' और डब्लू० एच० पेरी के 'द चिल्ड्रन आव द सन : ए स्टडी इन द अर्ली हिस्ट्री आव सिविलिजेशन' में लिखा गया है। ये लेखक 'सभ्यता की एकता' को विशेष रूप में जानते हैं। इन लेखकों का विश्वास इतिहास की एकता में विशेष ढंग का है। ये इस तथ्य पर विश्वास नहीं करते कि निकट भविष्य में या निकट भूतकाल में एकमात्र पश्चिमी सभ्यता के विश्व भर में विस्तार से सभ्यता की एकता स्थापित हुई है। बल्कि वह उसे तथ्य मानते हैं जो हजारों वर्ष पहले मिस्री सभ्यता के प्रसार से पूरा हुआ, जो उन मरी हुई सभ्यताओं में हमने माना है जिसका कोई उत्तराधिकारी नहीं है। उनका विश्वास है कि मिस्री सभ्यता ही एक मात्र ऐसी सभ्यता है जिसका जन्म बिना किसी बाहरी सहायता के, स्वतन्त्र रूप से हुआ। उनके अनुसार सब जगह सभ्यता यहीं से फूली, अमेरिका में भी इसका प्रभाव पड़ा जहाँ यह हवाई द्वीप तथा पूर्वी द्वीप से होते हुए पहुँची होगी।

यह ठीक है कि प्रसार भी एक माध्यम है जिसके द्वारा तकनीक, कुशलता, संस्थाएँ, विचार-धाराएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचती हैं। वर्णमाला से लेकर सिंगर की सीने की मशीन तक एक समाज से दूसरे समाज को मिली है। प्रसार से ही सुदूर पूरब की चाय, अरब का पेय काफी, मध्य अमेरिका का पेय कोको, अमेज़न प्रान्त का रबड़, मध्य अमेरिका का तम्बाकू, गणित की सुमेरी द्वादश द्वीप (डुओडेसियल) पद्धति जो हमारी शिलिंग से प्रकट होती है और तथाकथित अरबी अंक जो सम्भवत: हिन्दुस्तान से आया, सर्वव्यापी हुए हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। यह बात कि राइफिल का किसी एक स्थान में ही आविष्कार हुआ और एक ही केन्द्र से चारों ओर फैली इस बात का प्रमाण नहीं है कि तीर कमान का भी एक ही स्थान में आविष्कार हुआ और वहीं से वह विश्व भर में फैली। यह भी तर्क ठीक नहीं है कि शक्ति से चलने वाले करघे मेंचेस्टर से सब संसार में फैले तो धातु गलाने का तकनीक भी एक ही केन्द्र से प्रसारित हुआ होगा। बल्कि इस सम्बन्ध में प्रमाण उलटा है।

भौतिक सभ्यता के भ्रष्ट विचारों के बावजूद सभ्यता की नींव ऐसी ईटों पर नहीं पड़ी है। सीने की मशीनों, बन्दूकों और तम्बाकू पर सभ्यता का निर्माण नहीं होता। वर्णमाला और अंकों पर भी नहीं। आज के व्यावसायिक जगत् में पश्चिमी तकनीक का दूसरे देशों में पहुँचना सरल है। किन्तु पश्चिमी कवि अथवा सन्त का अपने उन विचारों का जिनका प्रकाश उनके अपने देश में फैला है, दूसरे देशों में पहुँचाना इससे कहीं अधिक कठिन है। प्रसारवादी सिद्धान्त का जितना औचित्य है उसे मान लेने पर भी मानव के इतिहास में आरम्भिक सर्जन का जो योगदान हुआ है उसके महत्त्व पर जोर देना आवश्यक है और हमें स्मरण रखना चाहिए कि आरम्भिक सर्जन का बीज अथवा उसकी चिनगारी जीवन की किसी अभिव्यक्ति में फूल अथवा लौ में फूट सकती है क्योंकि प्रकृति की एकता का सिद्धान्त निश्चित है। हम यहाँ तक कह सकते हैं कि

मनुष्य की कोई उपलब्धि प्रसार के कारण है अथवा नहीं, इसके प्रमाण का भार प्रसारवादियों के ऊपर होना चाहिए।

सन् १८७३ में फ्रीमैन ने लिखा था—"इसमें सन्देह नहीं कि सभ्यता के विकास में ऐसा समय आया कि किसी देश अथवा जाति को किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ी तो उन्हीं-उन्हीं वस्तुओं का आविष्कार विभिन्न देशों और विभिन्न युगो में बार-बार हुआ है। जैसे मुद्रण कला का आविष्कार स्वतन्त्र रूप से चीन में हुआ और मध्ययुगीन यूरोप में भी। यह भी अच्छी तरह मालूम है कि इसी प्रकार की कुछ क्रिया प्राचीन रोम में भी अनेक कार्यों के लिए की जाती थी। यद्यपि इस प्रणाली का प्रयोग पुस्तक प्रकाशन के काम में नहीं किया जाता था, किन्तु दूसरे तुच्छ कामों में इसका प्रयोग होता था। जैसे छपाई की बात है उसी प्रकार लेखन कला की भी है। दूसरी कला का भी उदाहरण हम दे सकते हैं। मिस्र, यूनान, इटली तथा ब्रिटिश टापुओं के पुराने भवनों के खँड़हरों तथा मध्य अमरीका के ध्वस्त नगरों की तुलना करने से हमें पता चलता है कि तोरण (आर्च) और कलश (डोम) का आविष्कार मानव कला के इतिहास में अनेक बार हो चुका है। हमें इसमें भी सन्देह नहीं है कि सभ्य जीवन की अनेक आवश्यक कलाओं का, जैसे आटा पीसने की चक्की का, तीर-कमान का, घोड़े पालने का, डोंगी (कैनो) बनाने इत्यादि का आविष्कार अनेक युगों में अनेक देशों में हुआ है। यही बात राजनीतिक संस्थाओं की भी है। एक ही प्रकार की संस्था भिन्न-भिन्न देशों और कालों में दिखाई देती हैं। इसका कारण यही है कि समय-समय पर अलग-अलग देशों में ऐसी परिस्थितियाँ हुईं कि उनका जन्म हुआ।"[१]

एक वर्तमान नृतत्त्व-शास्त्री ने यही विचार प्रकट किया है :—

✓ "मनुष्य के आचार और विचार की समानता इस कारण है कि सब जगह मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट एक-सी है, और इस प्रकार उसका स्वभाव भी वैसा ही है। मानव के इतिहास की जहाँ तक जानकारी है उसकी प्रत्येक मंजिल पर मनुष्य के भौतिक अवयव की बनावट में और उसकी स्नायविक क्रियाएँ एक ही प्रकार की रही हैं, इसलिए मन की विशेषताएँ, शक्तियाँ और कार्यप्रणाली भी एक-सी रही हैं। मस्तिष्क कैसे एक ही ढंग से काम करता है इसका उदाहरण उन्नीसवीं शती के विचारक डारविन तथा रसेल वैलेस की रचनाओं में मिलता है। इन्होंने समाज सामग्री (डेटा) के आधार पर कार्य करते हुए एक साथ ही विकास सिद्धान्त का पता लगाया और इसी युग में अनेक लोगों ने एक ही आविष्कार (इनवेंशन) और खोज (डिसकवरी) के लिए दावा किया कि मैंने पहले पता लगाया है। इसी प्रकार की और भी क्रियाएँ मानव प्रजातियों (रेस) में समान रूप से पायी जाती हैं, जैसे टोटेमवाद (टोटेमिज्म), गोत्रान्तर विवाह (एक्सोगेमी) तथा अनेक परिष्कारात्मक संस्कार जो संसार की विभिन्न जातियों और देशों में पाये जाते हैं, जो एक-दूसरे से बहुत दूर है। यद्यपि इन बातों की सामग्री अपूर्ण है, इनकी शक्ति अविकसित है और परिणाम अस्पष्ट है।"[२]

---

[१] ई० ए० फ्रीमैन : कम्परेटिव पालिटिक्स, पृ० ३१–२।

[२] जे० मरफ़ी : प्रिमिटिव मैन : हिज़ एसेंशल क्वेस्ट, पृ० ८–९।

(३) सभ्यताओं के सादृश्य (कम्पेरेबिलिटी) का दवा

हमने अपने तुलनात्मक अध्ययन की योजना की दो विरोधी आपत्तियों का उत्तर दिया है। एक तो यह कि हमारे इक्कीस समाजों में इसके सिवाय और कोई समानता नहीं है कि वे सभी 'ऐतिहासिक अध्ययन के सुबोध क्षेत्र' हैं, दूसरे यह कि 'सभ्यता की एकता' के फलस्वरूप देखने में जो अनेक सभ्यताएँ हैं, वे असल में एक हैं। फिर भी हमारे आलोचक इन आपत्तियों के हमारे उत्तर को मान भी लें तो यह तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि इन इक्कीस सभ्यताओं की तुलना नहीं हो सकती क्योंकि वे समकालीन नहीं हैं। इनमें सात अभी जीवित हैं, चौदह लोप हो गयीं जिनमें से कम से कम तीन––मिस्री, सुमेरी और मिनौसी––का अस्तित्व 'इतिहास के प्रभात' में था। इन तीनों में और सम्भवतः औरों में भी तथा जीवित सभ्यताओं में एक दूसरे से पूरे 'ऐतिहासिक युग' (हिस्टारिकल टाइम) का अन्तर है।

इसका उत्तर यह है कि काल सापेक्ष (रेलेटिव) है। और छः हजार साल से कम की जो छोटी अवधि प्राचीनतम सभ्यता के आविर्भाव और वर्तमान काल के बीच है उसे हमें अध्ययन की दृष्टि से उचित समय मान (टाइम-स्केल) के हिसाब से नापना होगा। अर्थात् सभ्यताओं के बीच के काल-विस्तार (टाइम-स्पेन) की इकाइयों द्वारा नापना होगा। समय के सम्बन्ध से सभ्यताओं के सर्वेक्षण में अधिक से अधिक जो क्रमागत पीढ़ियाँ हमें मिली हैं उनकी संख्या तीन है। तीन-तीन पीढ़ियों की प्रत्येक सभ्यता छः हजार वर्षों से अधिक अवधि की है। और प्रत्येक क्रम की अन्तिम अवधि (टर्म) वह सभ्यता है जो जीवित है।

तथ्य की बात यह है सभ्यताओं के सर्वेक्षण में हमने यह देखा कि किसी सभ्यता में क्रमागत पीढ़ियाँ तीन से अधिक नहीं हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि यह जाति (स्पीसीज) अपने ही काल-मान के अनुसार बहुत नयी है। दूसरी बात यह है कि इसकी अद्यतन निरपेक्ष आयु प्रारम्भिक समाज की सहोदरा जातियों की तुलना में कम है क्योंकि ये मानव के समवयस्क हैं और इसलिए औसत अनुमान से तीन लाख वर्ष से हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि बहुत-सी सभ्यताओं का आरम्भ 'इतिहास के प्रभात' से है क्योंकि जिसे हम इतिहास कहते हैं वह मनुष्य का इतिहास सभ्य समाज आरम्भ होने के इतिहास से है। यदि हमारा अभिप्राय इतिहास से जब से मनुष्य पृथ्वी पर पैदा हुआ तब से है तो हमें ज्ञात होगा कि सभ्यता का इतिहास तथा मनुष्य का इतिहास समवयस्क नहीं है। सभ्यता का इतिहास केवल दो प्रतिशत है, मानव जीवन के इतिहास का केवल एक बटे पचासवाँ भाग। इसलिए हमारे अभिप्राय के लिए हमारी सभ्यताएँ प्रायः समकालीन ही हैं।

हमारे आलोचक काल-विस्तार का तर्क छोड़कर यह कह सकते हैं कि इन सभ्यताओं के मूल्यों (वेल्यू) में अन्तर है, इसलिए इनकी तुलना नहीं हो सकती। क्या बहुत-सी कही जाने वाली सभ्यताएँ प्रायः मूल्यहीन नहीं हैं। वास्तव में वे इतनी 'असभ्य हैं कि उनकी और वास्तविक' सभ्यताओं (जैसी कि हमारी मानी जाती है) के जीवन से तुलना करना मानसिक शक्ति का विनाश करना है। इस विषय पर पाठकों को अपने निर्णय को तब तक के लिए रोक रखना चाहिए जब तक वे यह न देख लें कि हम जिस प्रकार के मानसिक परिश्रम की अपेक्षा करते हैं उसका परिणाम क्या होता है। साथ ही पाठकों को यह भी जानना चाहिए कि काल के समान

मूल्य भी सापेक्ष संकल्पना (कान्सेप्ट) है, और यदि प्राचीन समाजों से तुलना की जाय तो हमा इक्कीस समाजों की बहुत उपलब्धियाँ हैं और यदि किसी आदर्श मानक से इनको नापा जाय तो ये इतनी पायी जायँगी कि इनमें कोई एक दूसरे पर उँगली न उठा सकेगा।

सच पूछिए तो हमारा निश्चित मत है कि यह अनुमान कर के चलना चाहिए कि दार्शनि दृष्टि से हमारे इक्कीस समाज समकालीन हैं और समान हैं।

और अन्त में हम यह मान भी लें कि हमारे आलोचक यहाँ तक हमसे सहमत हैं तो वे य कहेंगे कि सभ्यताओं के इतिहास और कुछ नहीं हैं, केवल घटनाओं की लड़ी हैं और प्रत्येक ऐतिहासि घटना वास्तव में अकेली है तथा इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होती।

इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक घटना, प्रत्येक व्यक्ति की भाँति अलग है और इस कारण कि उन्हीं बातों में इनकी आपस में तुलना नहीं हो सकती, किन्तु और बातों में वह एक वर्ग का सदस हो सकती है और जहाँ तक एक ही वर्गीकरण में आते हैं उसी वर्ग के एक दूसरे सदस्य की तुलना हो सकती है। कोई दो जीवित प्राणी चाहे जन्तु हों या वनस्पति हो, बिलकुल समान नहीं होता तो इससे क्रिया-विज्ञान (फिजियालोजी) जीव-विज्ञान (बायलोजी) वनस्पति-विज्ञान (बौटनी) जन्तु-विज्ञान (जुआलोजी) और मानवजाति विज्ञान (एनीलोजी) अमान्य हीं हो सकते। मनुष्य का मान तो और भी मायावी और भिन्न है, किन्तु हमें मनोविज्ञान का अस्तित्व मान्य है और चाहे आज तक की उसकी उपलब्धियों के सम्बन्ध में हमारा मतैक्य न हो उसके प्रभाव को हम मानते हैं। इसी प्रकार आदिम समाजों का तुलनात्मक अध्ययन हम मानव-विज्ञान के नाम से करते हैं। जो कार्य मानव-विज्ञान आदिम जातियों का कर रहा है वही हम समाज की 'सभ्य' जातियों के सम्बन्ध में करना चाहते हैं।

हमारी स्थिति इस अध्याय के अन्तिम परिच्छेद में स्पष्ट हो जायेगी।

(४) इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य (फिकशन)

अपने विचारों की अनुभूति और उनकी अभिव्यक्ति तथा उनमें जीवन की घटनाओं की अनुभूति और अभिव्यक्ति के तीन प्रकार हैं। पहला तो यह है कि तथ्यों की खोज की जाय और उन्हें लेखबद्ध किया जाय, दूसरा यह कि तथ्यों के तुलनात्मक अध्ययन से सामान्य नियम बना कर उनका स्पष्टीकरण किया जाय, तीसरा यह कि उन तथ्यों के आधार पर पुनः कलात्मक सर्जन किया जाय जो कल्पना-साहित्य होता है। साधारणतः यह माना जाता है कि तथ्यों की खोज और उनका अभिलेखन इतिहास का तकनीक (टेकनीक) है और इस तकनीक के क्षेत्र में सभ्यताओं की सामाजिक घटनाओं का समावेश रहता है, सामान्य नियमों का बनाना और उनका स्पष्टीकरण विज्ञान का तकनीक है। मानव-जीवन के इस प्रकार अध्ययन के विज्ञान को मानव-विज्ञान (एन्थ्रोपालोजी) कहा गया हैं। और आदिम समाज की सामाजिक घटनाएँ इस वैज्ञानिक तकनीक के क्षेत्र में आती हैं। नाटक और उपन्यास का तकनीक कल्पना-साहित्य है। इसका क्षेत्र है मनुष्य का व्यक्तिगत सम्बन्ध। अरस्तु की पुस्तकों में ये सब बातें मूलरूप में पायी जाती हैं।

इन तीनों विभागों के तीनों तकनीकों के विस्तार में जितना अन्तर समझा जाता है उतना है नहीं। उदाहरण के लिए, इतिहास में मानव-जीवन के सभी तथ्यों का उल्लेख नहीं होता।

आदिम समाज के सामाजिक जीवन के तथ्य उसमें नहीं सम्मिलित होते । इन तथ्यों से मानव-विज्ञान की विधियाँ (लाज़) बनती हैं । व्यक्तिगत जीवन के तथ्य जीवन चरित (बायोग्राफी) में चले आते हैं । यद्यपि ऐसे व्यक्तिगत जीवन जो इस योग्य होते हैं जिन्हें लेखबद्ध किया जाय, आदिम समाज में नहीं पाये जाते, उन समाजों में पाये जाते हैं जो सभ्यता की राह पर हैं और ये परम्परा के अनुसार इतिहास के क्षेत्र में आ जाते हैं । इस प्रकार इतिहास में मानव जीवन के कुछ तथ्य आते हैं, सब नहीं । इतिहास कल्पना-साहित्य से भी सहायता लेता है और विधियों से भी ।

नाटक और उपन्यास के समान इतिहास का आरम्भ भी पुराणों से हुआ है । ये मनुष्य के ज्ञान तथा अभिव्यक्ति के आदिम स्वरूप हैं, जैसे परियों की कहानियाँ होती हैं जिन्हें बच्चे सुनते हैं अथवा जैसे दुनियादार युवक सपने देखा करते हैं जिनमें कल्पना और तथ्य का अन्तर नहीं होता । उदाहरण के लिए, कहा जाता है अगर 'ईलियड' कोई इतिहास के रूप में पढ़ना चाहे तो उसे वह हानियों से भरा मिलेगा और यदि कोई कथा के रूप में पढ़ना आरम्भ करे तो उसमें उसे इतिहास ही इतिहास मिलेगा । सभी इतिहास इस रूप में ईलियड के समान हैं कि कल्पना के तत्त्व को वे विलकुल निकाल नहीं सकते । तथ्यों का चुनाव, उनका विन्यास और उपस्थापन कल्पना-साहित्य के क्षेत्र के तकनीक हैं और यह लोकमत ठीक है कि कोई इतिहासकार तब तक 'महान्' नहीं हो सकता जब तक वह महान् कलाकार भी न हो । उनका कहना है कि गिबन और मेकाले के समान इतिहासकार उन नीरस इतिहासकारों से अधिक महान् हैं जो अपने साथी इतिहासकारों के तथ्यों की भूलों की उपेक्षा कर गये हैं । जो कुछ हो, ऐसे काल्पनिक प्रतिरूपों (फिकटिशस परसानिफिकेशन्स) के प्रयोग किये विना, जैसे 'इंग्लैंड', 'फ्रांस', 'द कन्जर्वेटिव पार्टी' 'द चर्च', 'द प्रेस' (पत्र) अथवा 'जनमत' । थ्युसिडाइड्स ने ऐतिहासिक व्यक्तियों के द्वारा काल्पनिक भाषणों और संवादों को कहला कर नाटकीय ढंग से इतिहास लिखा है । लेकिन उसकी सीधी-सादी वाणी अधिक सजीव है और उन आधुनिक लेखकों से अधिक काल्पनिक नहीं है जो घुमा-फिरा कर जनमत का मिला-जुला चित्रण करते हैं ।

दूसरी ओर इतिहास में अनेक सहायक विज्ञानों का समावेश होता है जिनके द्वारा सामान्य विधियां बनती हैं जो आदिम समाजों के नहीं सभ्य समाजों के होते हैं । जैसे अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान और समाज-विज्ञान-(सोशियालोजी)

यद्यपि यह तर्क देने की आवश्यकता नहीं है फिर भी हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य के तकनीकों से अछूता नहीं रहता उसी प्रकार विज्ञान और कल्पना-साहित्य केवल अपने तकनीकों में ही सीमित नहीं रहते । सभी विज्ञानों को ऐसी मंजिल से गुजरना होता है जिनमें उनका काम केवल तथ्यों का खोजना और उनका लेखन रहता है । और मानव विज्ञान अभी इस अवस्था से गुजर रहा है । अन्त में यह भी बता देना है कि नाटक और उपन्यास में मानव सम्बन्ध का चित्रण कोरी कल्पना ही नहीं होती । यदि ऐसा होता तो इन कृतियों को अरस्तू की वह प्रशंसा प्राप्त न होती जो उसने कहा कि ये इतिहास और दर्शन से अधिक सच्ची होती हैं । और ये केवल ऊटपटाँग और गप नहीं होते । साहित्य की किसी कृति को जब हम कल्पना-साहित्य कहते हैं तब उसका यही अभिप्राय होता है कि इनके पात्रों का किसी ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं है जो कभी जीवित रहा हो, न घटनाओं को किसी ऐसी घटना से मिला सकते हैं जो सचमुच घटी हों । सचमुच हमारा यह अभिप्राय होता है कि इन पात्रों की पृष्ठभूमि

काल्पनिक है और यदि हम इसका जिक्र नहीं करते कि इनका आधार वास्तविक सामाजिक तथ्यों पर है तो इसका यही कारण है कि उन्हें हम मान लेते हैं कि वे स्वयं सिद्ध और स्पष्ट हैं । जब ह किसी कल्पना-साहित्य के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह जीवन का सच्चा चित्रण है और लेखक मानव स्वभाव का गम्भीर अध्ययन किया है तब हम उसकी वास्तविक प्रशंसा करते हैं । उदाहर के लिए, यदि किसी उपन्यास में यार्कशायर के ऊनी कारीगरों के काल्पनिक परिवार का वर्ण है तो हम लेखक की प्रशंसा यों कर सकते हैं कि वेस्ट-राइडिंग के कल-कारखाने वाले नगरों क उसे पूरा-पूरा ज्ञान है ।

फिर भी इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य के तकनीकों में जो अन्तर अरस्तू ने बतलाया है वह साधारणतः ठीक है और यदि हम इन तकनीकों पर फिर से विचार करें तो पता चलेगा कि ऐसा क्यों है । हमको अन्तर यह मिलेगा कि ये अपनी दी हुई सामग्री की भिन्न-भिन्न मात्राओं का भिन्न ढंग से प्रयोग करते हैं । जहाँ सामग्री कम है उस क्षेत्र का अध्ययन केवल विशेष तथ्यों को खोजकर और उन्हें लिपिबद्ध करके हो सकता है । जहाँ सामग्री इतनी अधिक है कि उनकी सारणी बनायी जा सके, किन्तु इतनी अधिक नहीं है कि उनका सर्वेक्षण किया जा सके वहाँ यह सम्भव है और आवश्यक भी है कि विधि बनायी जाय और उन्हें स्पष्ट किया जाय । जहाँ सामग्री अत्यधिक है वहीं कल्पना साहित्य के तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है जिसमें कलात्मक सर्जन तथा अभिव्यक्ति काम में लायी जाती है । तीनों तकनीकों में इसमें सबसे अधिक मात्रा का अन्तर होता है । भिन्न-भिन्न मात्राओं की सामग्रियों के प्रयोग में तकनीकों की उपयोगिता में भी अन्तर है । क्या इसी प्रकार का अन्तर हमें उन सामग्रियों की मात्राओं में मिल सकता है जिन्हें हमने अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाया है ।

पहले हम व्यक्तिगत सम्बन्धों को ले लें जिन्हें हम कल्पना-साहित्य कहते हैं । हमको तुर पता लग जायेगा कि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिनका वैयक्तिक सम्बन्ध इतने महत्त्व का और इतना मनोरंजक है कि उनके कारनामों को लिखा जाये या उनके जीवन का ऐसा विषय है जिसे हम उस रूप में लिखें जिसे जीवन-चरित कहते हैं । इन अपवादों को छोड़कर मानव जीवन के व्यक्तिगत सम्बन्धों के क्षेत्र के अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के सामने असंख्यों उदाहरण ऐसे आयेंगे जिनकी अनुभूतियाँ समान है । उन सबकी सूची बनाने का विचार ही हास्यास्पद है । इनकी अनुभूतियों के आधार पर कोई 'विधि' बनाना नितान्त निरर्थक और बिलकुल भद्दा होगा। इस परिस्थिति में सामग्रियों का ठीक-ठीक उपयोग बिना किसी ऐसे माध्यम के नहीं हो सकता जिससे हमें असीम का ससीम भावों में ज्ञान हो । कल्पना-साहित्य ही वह माध्यम है ।

हमें मात्रा की दृष्टि से इतना पता चला कि कम से कम आंशिक सत्य यह है कि वैयक्तिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए कल्पना-साहित्य का प्रयोग किया जाता । अब हमें इसी भाँति यह देखना चाहिए कि क्या आदिम समाजों के अध्ययन के लिए विधि-निर्माण की तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है और सभ्यताओं के अध्ययन के लिए तथ्यों की खोज की तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है ।

पहली बात यह देखने की है कि अन्तिम दोनों अध्ययन मनुष्य के सम्बन्ध से तो हैं, लेकिन वह सम्बन्ध उस प्रकार का निजी नहीं है जो प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के जीवन में प्रतिदिन प्रत्यक्ष रूप से होता है । मनुष्यों के सामाजिक जीवन के सम्बन्ध निजी सम्बन्धों से और अधिक

विस्तृत होते हैं, जो अवैयक्तिक होते हैं। इन अवैयक्तिक सम्बन्धों का जिन सामाजिक तन्त्रों द्वारा निर्वाह होता है उन्हें संस्था कहते हैं। संस्था बिना समाज का अस्तित्व नहीं हो सकता। सच पूछिए तो समाज सबसे ऊँची संस्था है। चाहे समाज का अध्ययन किया जाय चाहे संस्थाओं के सम्बन्ध का, बात एक ही है।

हमें तुरत पता चल जायेगा कि संस्थाओं में मनुष्यों के जो सम्बन्ध हैं उन्हें अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को सामग्री की मात्रा कम मिलेगी और लोगों के व्यक्तिगत सम्बन्ध के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को कहीं अधिक सामग्री मिलेगी। हम यह भी देखते हैं कि आदिम समाजों के समुचित अध्ययन करने के लिए संस्थागत सम्बन्धों की जो लिखित सामग्री मिलती है वह उस सामग्री से कहीं अधिक है जो सभ्य समाजों के उचित अध्ययन के लिए मिलती है क्योंकि जो ज्ञात आदिम समाज हैं उनकी संख्या ६५० से भी अधिक है। और जो समाज उन्नति के पथ पर हैं उनकी संख्या इक्कीस से अधिक नहीं है। ६५० समाजों के उदाहरण से कल्पना-साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता। उनके द्वारा विद्यार्थी विधियों के बनाने का कार्य केवल आरम्भ कर सकता है। जिस समाज में एक या दो दर्जन उदाहरण मिलते हैं उसमें तथ्यों के सारणीकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं सम्भव है। हमने देखा है कि इसी सीमा तक इतिहास अभी पहुँचा है।

पहले हमें यह विरोधाभास-सा मालूम होगा कि सभ्यताओं के अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के पास सामग्री की मात्रा बहुत कम है जबकि आधुनिक इतिहासकार यह शिकायत करते हैं कि हमारे पास इतनी सामग्री है कि हम घबड़ा जाते हैं। किन्तु सत्य यह है कि ऊँचे प्रकार के तथ्य 'अध्ययन के सुबोध क्षेत्र' इतिहास की तुलनात्मक इकाइयाँ वैज्ञानिक तकनीक द्वारा अध्ययन करने के लिए और विधियों को बनाने और स्पष्ट करने के लिए बहुत कम है। फिर भी अपने लिए खतरा उठाकर भी हम इस प्रकार के अध्ययन का साहस करते हैं और हम जिस परिणाम पर पहुँचे हैं वह आगे इस पुस्तक में मिलेगा।

२

सभ्यताओं की उत्पत्ति

४. समस्या और उसका न सुलझाना

(१) समस्या का रूप

जब हमारे सामने यह समस्या आती है कि जो समाज सभ्यता के पथ पर हैं वे क्यों और कैसे उत्पन्न हो गये तब हम देखते हैं कि जहाँ तक इन समस्याओं का सम्बन्ध है जिन इक्कीस समाजों का हमने वर्णन किया है उनके दो वर्ग हैं। इनमें से पन्द्रह के पूर्वज एक ही जाति के हैं। इनमें से कुछ का सम्बन्ध तो इतना निकट है कि उनके अलग व्यक्तित्व की बात केवल विवाद का विषय हो सकता है। कुछ का सम्बन्ध इतना ढीला-ढाला है कि उसे सम्बन्ध कहना बहुत ठीक न होगा। किन्तु इस प्रश्न को छोड़िए। ये पन्द्रह समाज कम या वेश उन छः समाजों से अलग हैं जो हमारे विचार से सीधे आदिम जीवन से निकले हैं। सम्प्रति हम इन्हीं के सम्बन्ध में विचार करेंगे। वे हैं—मिस्री, सुमेरी, मिनोई, चीनी, माया और एंडियाई (एंडीज़)।

आदिम तथा विकसित समाजों में क्या अन्तर है? यह अन्तर इस बात में नहीं है कि उनमें संस्थाएँ हैं या उनका अभाव है। क्योंकि संस्थाएँ व्यक्तियों के अवैयक्तिक सम्बन्धों की माध्यम हैं। और सभी समाजों में उनका अस्तित्व है। व्यक्तियों का जो आपसी सीधा सम्बन्ध होता है उसका दायरा छोटा होता है और छोटे से छोटे आदिम समाज का विस्तार उससे बड़ा होता है। संस्थाएँ सारे समाज के वंशों (जीनस) में पायी जाती हैं। इसलिए समाज की दोनों जातियों (स्पीसीज़) में समान रूप से वे मौजूद हैं। आदिम समाजों की भी अपनी संस्थाएँ हैं—जैसे कृषि सम्बन्धी वार्षिक धार्मिक पूजा, टोटेमवाद[१] और विजातीय विवाह (एक्सेगेमी); निषेध, संस्कार और अवस्था के अनुसार वर्ग-विभाजन (एज-क्लासेस); विशेष वय तक दोनों सेक्सों को अलग-अलग सामुदायिक संघटनों में रखना इस प्रकार की कितनी ही संस्थाएँ हैं जिनकी कार्य-प्रणाली उतनी ही विस्तृत और सूक्ष्म है जैसी सभ्य समाजों में।

सभ्य समाजों और आदिम समाजों का अन्तर श्रम विभाजन के आधार पर भी नहीं माना जा सकता क्योंकि आदिम समाजों के जीवन में भी श्रम विभाजन के अंकुर पाये जाते हैं। राजा, जादूगर, लोहार, गायक सभी का अपना-अपना विशेष स्थान है। यद्यपि हेलेनी आख्यान का लोहार 'हिफीस्टस' लँगड़ा है, और हेलेनी कथा का कवि होमर अन्धा है। इससे यह ध्वनि निकली है कि आदिम समाज के विशेषज्ञ असामान्य लोग होते थे जिनमें सब कार्य करने की क्षमता नहीं होती थी, जो हरफन मौला नहीं होते थे। सभ्य तथा आदिम समाजों का अन्तर यह है कि उनकी अनुकरण की शक्ति किस दिशा में है। अनुकरण सामाजिक जीवन का विशेष गुण है। सभी सामाजिक कार्यों में आदिम समाजों में भी यह क्रिया हमें देखने को मिलती है। आज की

---

[१] गणचिह्नवाद। उत्तर अमरीका के प्राचीन एंडियनों में प्रतीकों की पूजा।

फिल्म तारिकाओं से लेकर पहले की साधारण महिलाओं तक में यह बात पायी जाती है । किन्तु दोनों समाजों में इनकी दिशाएँ भिन्न हैं । जितनी हमें जानकारी है उसके अनुसार अनुकरण की दिशा पहले की पीढ़ी की ओर तथा मरे हुए पूर्वजों की ओर होती है जो दिखाई तो नहीं देते, किन्तु उनकी अनुभूति होती रहती है और जिनका प्रभाव जीवित बुजुर्गों पर पड़ता है । ऐसे समाज में जहाँ अनुकरण पीछे की ओर और भूतकाल की ओर होता है उसमें रूढ़ि आचार का शासन रहता है और समाज गतिहीन रहता है । इसके विपरीत जो समाज सभ्यता की ओर बढ़ रहे हैं उनमें अनुकरण की प्रवृत्ति समाज के सर्जनशील व्यक्तियों की ओर होती है जिनके पीछे बहुत-से लोग चला करते हैं क्योंकि वे अगुआ होते हैं । ऐसे समाज में, जैसा कि वाल्टर बेजहाट ने अपनी पुस्तक 'फिजिक्स एण्ड पोलिटिक्स' में लिखा है 'रूढ़ियों की रोटी (केक)' तोड़ दी जाती है और समाज परिवर्तन तथा विकास की ओर गतिशील रहता है ।

किन्तु यदि हम अपने से यह सवाल करें कि यह अन्तर आदिम तथा सभ्य समाजों के बीच स्थायी और मौलिक है तो हमारा उत्तर होगा, नहीं । क्योंकि आदिम समाजों की अवस्था हमें गतिहीन इसलिए मालूम पड़ती है कि उनका प्रत्यक्ष ज्ञान हमें उनके इतिहास की अन्तिमअ वस्था से प्राप्त होता है । यद्यपि प्रयत्क्ष ज्ञान नहीं है, फिर भी तर्क से यह पता चलता है कि आदिम समाजों में भी ऐसा समय अवश्य रहा होगा जब उनकी गति तीव्र रही होगी जितनी किसी सभ्य समाज की अब तक नहीं हुई । हमने पहले कहा है कि आदिम समाज उतना ही पुराना है जितनी मनुष्य जाति, मगर हमें कहना चाहिए था कि वह उससे भी पुराना है । मनुष्य के अतिरिक्त और जो विकसित स्तनधारी जीव हैं उनमें भी एक प्रकार का सामाजिक और संस्थात्मक जीवन होता है और यह स्पष्ट है कि मनुष्य बिना सामाजिक वातावरण के मानव नहीं बन सकता था । जिन परिस्थितियों में अव मानव (सब-मैन) से मान में परिवर्तन हुआ उसका कोई आलेखन हमारे पास नहीं है । आदिम समाज की छत्रछाया में जो परिवर्तन हुआ वह महान् था और विकास में बहुत बड़ा कदम था । सभ्यता की छत्रछाया में अभी तक ऐसी कोई उन्नति नहीं हुई है ।

प्रत्यक्ष ज्ञान से आदिम समाजों को जो हमने पाया है उसकी तुलना ऐसे लोगों से की जा सकती है जो पहाड़ के एक कगार पर चुपचाप पड़े हुए हैं और उस कगार के नीचे खड्डा है और ऊपर चट्टान है । सभ्यता की तुलना इन पड़े हुए लोगों के उन साथियों से की जा सकती है जो अभी उठ खड़े हुए हैं और ऊपर चट्टान की ओर चढ़ना आरम्भ कर रहे हैं और हम लोग दर्शक हैं जो अभी-अभी आये हैं, जिनकी दृष्टि की सीमा कगार तथा ऊपर वाली चट्टान के निचले भाग तक सीमित है और जो इन्हें भिन्न-भिन्न स्थितियों में देख रहे हैं । एकाएक हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि चढ़ने वाले पहलवान हैं और जो पड़े हुए हैं उनके अंग लकवा से शिथिल हैं, किन्तु अधिक सोचने पर हमें अपना निर्णय रोक लेना अधिक बुद्धिमत्ता होगी ।

सच पूछिए तो जो लोग पड़े हुए हैं वह लकवा के रोगी नहीं हो सकते । कगार पर वह पैदा नहीं हुए होंगे और खड्डे से इतनी ऊपर स्वयं आये होंगे, कोई दूसरा उन्हें लाया न होगा । उनके दूसरे साथी जो अभी चढ़ रहे हैं उन्होंने अभी इस कगार को छोड़ा है और ऊपर की चट्टान की ओर जा रहे हैं । ऊपर का कगार दिखाई नहीं दे रहा है. इसलिए हम नहीं कह सकते कि वह कितना ऊँचा है और उस तक चढ़ाई कितनी कठिन होगी । हम इतना जानते हैं कि दूसरे कगार तक पहुँचे बिना न वे ठहर सकते हैं; न आराम कर सकते हैं । चाहें जहाँ हों वहाँ पहुँचना

होगा। हम प्रत्येक चढ़ने वाले की शक्ति, कौशल और साहस जान भी लें तब भी हम यह नहीं कह सकते कि ऊपर के कगार पर, जहाँ तक पहुँचने की चेष्टा वे कर रहे हैं, सब पहुँच जायेंगे हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उनमें से कुछ कभी नहीं पहुँचेंगे। हम यह कह सकते कि एक-एक व्यक्ति जो परिश्रम से चढ़ रहा है उसकी दूनी संख्या (हमारी नष्ट सभ्यताएं थक कर और हार कर नीचे के कगार पर गिर पड़ी हैं।

अभी हम जिस बात की खोज कर रहे थे उसमें हमें सफलता नहीं मिली कि आदिम समाजों सभ्य समाजों में स्थायी तथा मौलिक अन्तर क्या है, किन्तु हमें इस बात का कुछ आभास मिला सभ्यताओं की उत्पत्ति तथा प्रकृति क्या है। यही हमारे अनुसंधान का मुख्य विषय है। आदि समाज का सभ्य समाज में कैसे परिवर्तन हुआ। यहाँ से आरम्भ करते हुए हमको पता चला कि परिवर्तन इस बात में है कि गतिहीन अवस्था से गतिशील अवस्था में समाज पहुँचा। हम दे कि यही सिद्धान्त सभ्यताओं के विकास में भी लागू होता है। अर्थात् आन्तरिक सर्वहारा वर्ग पहले की सभ्यताओं के शक्तिशाली अल्पसंख्यकों से अलग हो गया जिनकी सर्जनात्मक श समाप्त हो गयी थी। ये शक्तिशाली अल्पसंख्यक वर्ग हमारी परिभाषा के अनुसार गतिही हैं। क्योंकि यह कहना कि उन्नतिशील सभ्यता की सर्जनशील अल्पसंख्या पतित या भ्रष्ट होक छिन्न-भिन्न होती हुई सभ्यता की शक्तिशाली अल्पसंख्या हो गयी का अर्थ यही है कि जिस समा का वर्णन हो रहा है वह गतिशील से गतिहीन अवस्था में आ गयी। इस गतिहीन अवस्था सर्वहारा वर्ग का अलग होना गतिशील प्रतिक्रिया है। इस दृष्टि से हम देखेंगे कि शक्तिशा अल्पसंख्या से सर्वहारा का पृथक् होना एक नयी सभ्यता की उत्पत्ति है जिसका परिवर्तन गतिहीनत से गतिशीलता की ओर होता है। यह उसी प्रकार है जैसे आदिम समाज से सभ्य समाज में परिवर्त होता है। चाहे सभ्यताएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हों या न हों, सबकी उत्पत्ति समान है। औ जेनरल स्मटस के शब्दों में 'मानवता एक बार फिर गतिमान् है।'

स्थैतिकता और गतिशीलता, चाल, विश्राम और फिर चलना यह लयपूर्ण अदल-बदल वि की मौलिक प्रकृति है, संसार के अनेक विद्वानों ने अनेक समय में ऐसा कहा है। चीनी समा के विद्वानों ने अपनी सुन्दर भाषा में कहा है कि यह अदल-बदल 'यिन' और 'यांग' का है। 'यिन गतिहीन और 'यांग' गतिशील। चीनी लिपि में यिन इस प्रकार लिखा जाता है कि अक्षर बीच काले बादल सूर्य के चारों ओर फैल कर उसे ढक रहे हैं और 'यान' इस प्रकार लिखा जात है कि निर्मल सूर्य से चारों ओर किरणें फैल रही हैं। चीनी वर्णमाला में 'यिन' पहले आता है। हम उसमें देखते हैं कि तीन लाख वर्ष पहले आदिम मनुष्य उस कगार पर पहुँच गया है और यांग सभ्यता में प्रवेश करने के पहले मनुष्य इस काल के अट्ठानबे प्रतिशत समय तक आराम करता रहा। आगे हमें उस स्पष्ट तत्त्व को खोजना है जिससे मानव समाज में फिर गति आयी और पहले हम उन दो राहों में प्रवेश करेंगे जो बन्द गली निकलेंगी।

(२) प्रजाति (रेस)

यह स्पष्ट और निश्चित तथ्य है कि 'यिन' के रूप में, जो मनुष्य का आदिम समाज था, व गत ६००० वर्षों में यांग के सभ्य समाज के ऊपर चट्टान पर चढ़ा तो उसके कारण यही हो सक हैं कि जिन लोगों में गति हुई उन मनुष्यों में विशेष गुण थे अथवा जिस वातावरण में उन्होंने उन्न की उसमें कोई विशेषता थी अथवा दोनों के घात-प्रतिघात में कोई विशेष बात थी। हम पह

यह विचार करेंगे कि जिन बातों की खोज हम कर रहे हैं वे इनमें से किसी में मिल जायें। क्या यह सम्भव है कि सभ्यता की उत्पत्ति इस कारण हुई हो कि किसी जाति या प्रजातियों में विशेष गुण रहे हों ?

प्रजाति मानव समाज के उस विशेष वर्ग को कहते हैं जिसमें कोई विशेष गुण हो और वह वंशानुगत हो। प्रजाति के जिन गुणों की हम कल्पना करते हैं वे मानसिक अथवा आत्मिक हैं और वे कुछ समाजों में जन्मजात होते हैं। किन्तु मनोविज्ञान, और विशेषतः सामाजिक मनोविज्ञान अभी बाल्यकाल में है। जब हम सभ्यता की प्रगति में प्रजाति को एक कारण मानते हैं तब हम यह स्वीकार करते हैं कि विशेष मानसिक गुणों और भौतिक विशेषताओं में परस्पर सम्बन्ध है।

प्रजाति सिद्धान्त के पश्चिमी देश के हिमायती जिस भौतिक गुण पर साधारणतः जोर दिया करते हैं वह रंग है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आत्मिक और मानसिक श्रेष्ठता और खाल का रंगीन न होना एक दूसरे से सम्बन्धित है। यद्यपि जीवन-विज्ञान की दृष्टि से ऐसा सम्भव नहीं मालूम होता। सभ्यता के प्रजाति वाले सिद्धान्तों में सबसे प्रसिद्ध वह है जिसमें सफेद चमड़े वाले, पीले बाल वाले (जनथ्रोटिकस) नीली-भूरी आँख वाले (ग्लाकोपियन) और लम्बे सिर वाले (डालिकोसिफ्रासिस) मनुष्यों को सबसे ऊँचा माना जाता है जिन्हें कुछ लोग नार्डिक मानव कहते हैं और जिन्हें निट्शे ने 'स्वर्णकेश वाला पशु' (द ब्लांड बीस्ट) कहा है। ट्यूटानिक बाजार में इस मूर्ति का मूल्य जाँचना उचित होगा।

सबसे पहले नार्डिक मानव की उच्चता फ्रांस के एक रईस काम्टे डि गोबिनो ने उन्नीसवीं शती के आरम्भ में प्रकट की थी। इस 'स्वर्णकेश वाले पशु' की उच्चता फ्रांस की क्रान्ति के समय के विवाद की एक घटना के कारण सामने आयी थी। जब फ्रांस के रईसों की जागीरें छीनी जा रही थीं और उन्हें देश से निकाला जा रहा था या फाँसी दी जा रही थी तब क्रान्तिकारी दल के पण्डितों को तब तक चैन नहीं मिलता था जब तक वे उस समय की घटनाओं को शास्त्रीय रूप नहीं दे देते थे। उन्होंने घोषणा की कि 'गाल' लोग जो चौदह शतियों तक पराधीनता में रहे हैं अब अपने फ्रांस विजेताओं को राइन के पीछे अंधकार में खदेड़ रहे हैं जहाँ से वे जनरेला के समय आये थे और इन बर्बरों के जबरदस्ती अधिकार के बावजूद गाल की धरती पर अपना अधिकार जमा रहे हैं जो सदा से अपनी ही रही।

इस ऊलजलूल बात का गोबिनों ने और भी अधिक ऊलजलूल उत्तर दिया। उसने कहा "मैं आप की बात स्वीकार करता हूँ। मैं यह मान लेता हूँ कि फ्रांस की जनता गआल की वंशज है और फ्रांस के रईस फ्रांकों के वंशज हैं और दोनों के शारीरिक तथा मानसिक विशेषताओं में सम्बन्ध भी है। तो क्या आप सचमुच यह समझते हैं कि गआल सभ्यता के प्रतीक हैं और फ्रांक बर्बरता के ? गआल की सभ्यता कहाँ से आयी ? रोम से। रोम कैसे महान् बना ? उसी नार्डिक रक्त के आरम्भ से जिस फ्रांकी रक्त ने हमारे शरीर में प्रवेश किया। प्रारम्भिक रोमन लोग और उसी प्रकार प्रारम्भिक यूनानी—वे एकीयन जिनका वर्णन होमर ने किया है—वे पीले बाल वाले विजेता थे जो उत्तर के शक्तिशाली लोगों के वंशज थे और जिन्होंने दुर्बल कर देने वाले मध्य सागर के किनारे के कमजोर निवासियों पर अपना प्रभुत्व जमाया। कुछ दिनों के बाद उनके रक्त में मिश्रण हुआ और उनकी नस्ल दुर्बल हो गयी और उनकी शक्ति और वैभव

का ह्रास हो गया। फिर वह समय आया कि उत्तर से पीले बाल वाले विजेताओं का दल उन रक्षा के लिए आया और उसने सभ्यता को फिर से जीवित किया। ये फ्रांक लोग थे।"

यह उन तथ्यों की श्रृंखलाओं का मजेदार वर्णन है जिसका हमने पहले हेलेनी और फि पश्चिमी सभ्यता की उत्पत्ति का दूसरे ढंग से किया है। उसका चतुराई से भरा राजनीतिक मजा इसलिए जँचा कि उस समय एक खोज हुई थी और गोबिनों ने उससे लाभ उठाया। खोज यह कि सारे यूरोप की सभी जीवित भाषाएँ तथा ग्रीक और लैटिन और ईरान और उत्तरी भारत सभी जीवित भाषाएँ तथा क्लासिकी ईरानी और क्लासिकी संस्कृत एक दूसरे से सम्बन्धित और एक बड़े भाषा-परिवार के सब अंग हैं। यह ठीक ही परिणाम निकाला गया था कि आरम में कोई एक मौलिक भाषा रही होगी जैसे 'आर्य' या 'इण्डोयूरोपियन' और उसी भाषा से स भाषाएँ निकली होंगी। इसका गलत परिणाम यह निकाला गया कि जिन लोगों में ये भाषा प्रचलित थीं उनका भौतिक सम्बन्ध भी उतना ही है जितना इन भाषाओं का और वे लोग कि आदि 'आर्य' अथवा 'इण्डो यूरोपियन' जाति के वंशज हैं जो अपने आदि निवास स्थान से पू पश्चिम, उत्तर-दक्खिन विजय करते हुए फैल गये और यह जाति वह थी जिसने जरथुष्ट और बुद्ध जैसी धार्मिक प्रतिभाएँ उत्पन्न कीं, और जिसने यूनान की कलात्मक प्रतिभाओं को तथा रोम की राजनीतिक प्रतिभाओं को जन्म दिया और जिसने हम लोगों के समान महान् जातियों को जन्म दिया। इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि मानव सभ्यता की प्रायः सभी उपलब्धियां इसी जाति के द्वारा हुईं।

इस मनमौजी फ्रांसीसी ने जो खरहा दौड़ाया उससे जर्मनों की मजबूत टाँगे बाजी मार ले गयीं। जर्मन शब्द-शास्त्रियों ने इण्डो-यूरोपियन शब्द के स्थान पर इण्डो-जर्मन शब्द बैठाया और इस कल्पित जाति का निवास प्रशा का राज्य-क्षेत्र निर्धारित किया। १९१४–१८ के युद्ध के कुछ पहले एक अंग्रेज हाउस्टन स्टुवर्ट चैम्बरलेन ने जिनका प्रेम जर्मनी से हो गया था एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था—'द फाउण्डेशन्स आव द नाइनटीन्थ सेंचुरी' जिसमें इण्डो-जर्मन लोगों में उसने दान्ते और ईसामसीह का भी नाम रखा।

अमेरिकनों ने भी इस 'नार्डिक मानव' का उपयोग किया। १९१४ के पहले पच्चीस वर्षों में बहुत-से दक्षिण यूरोप निवासी अमेरिका में प्रवास कर गये। कुछ समय मैडिसन ग्रांट तथा लाथाप स्टाडर्ड ऐसे लेखकों ने कहा कि इस प्रकार का प्रवास रोकना चाहिए जिससे सामाजिक मान्यताओं की शुद्धता अक्षुण्ण रहे। वे यह शुद्धता अमरीकी सामाजिक मान्यताओं की नहीं, बल्कि नार्डिक जाति की अमरीकी शाखा की चाहते थे।

ब्रिटेन का इसरायलवाद का सिद्धान्त भी इसी प्रकार का था। केवल भाषा दूसरी थी और इसमें काल्पनिक इतिहास का एक विचित्र धर्म-दर्शन से समर्थन किया गया था।

विचित्र बात यह है कि हमारी सभ्यता के प्रजातिवाद के प्रचारक इस बात पर जोर देते हैं कि गोरा चमड़ा आध्यात्मिक महत्ता का चिह्न है और दूसरी प्रजातियों से यूरोपीय प्रजाति महान् है तथा नार्डिक प्रजाति दूसरी यूरोपीय प्रजातियों से महान् है, किन्तु जापानी दूसरा भौतिक प्रमाण उपस्थित करते हैं। जापानियों के शरीर पर बाल नहीं होते उनके पड़ोसी उत्तरी द्वीप में एक आदिम जाति रहती है जो दूसरे प्रकार की है। वह प्रायः सामान्य यूरोपियनों के समान होती है जिन्हें 'बाल वाले ऐनू' कहते हैं। इसलिए स्वभावतः बाल का न होना वे आध्यात्मिक

महत्ता का चिह्न मानते हैं। यद्यपि उनका दावा भी उतना ही निराधार है जितना हमारा गोरे चमड़े वाला दावा फिर भी, हम कह सकते हैं कि ऊपरी ढंग से उनका दावा ठीक जान पड़ता है क्योंकि जहाँ तक बाल का सम्बन्ध है बिना बाल वाला आदमी अपने भाई बन्दरों से बहुत दूर है।

मानव-जाति के इतिहासकारों ने (एथनोलोजिस्ट) सफेद रंग के मनुष्यों को शारीरिक गुणों के अनुसार विभाजित किया है। ये हैं, जैसे लम्बे सिर या गोल सिर वाले, गोरे चमड़े या काले चमड़े वाले तथा इसी प्रकार और। उन्होंने सफेद 'प्रजातियों' के तीन प्रकार बताये हैं, नार्डिक, आल्पीय तथा मध्यसागरी। इस कथा का जो भी मूल्य हो हम इस बात पर विचार करेंगे कि इन जातियों ने सभ्यता के निर्माण में क्या योगदान किया है। नार्डिक प्रजातियों ने चार या सम्भवतः पाँच सभ्यताओं का निर्माण किया है। वे हैं भारतीय (इंडिक), हेलेनी, पश्चिमी, रूसी परम्परावादी ईसाई और सम्भवतः हिताइत। आल्पीय जातियों ने सात सभ्याताओं का अथवा सम्भवतः नौ का निर्माण किया है—सुमेरी, हिताइत, हेलेनी, पश्चिमी परम्परावादी ईसाई तथा उसकी रूस की दोनों शाखाएँ, ईरानी और सम्भवतः मिस्री और मिनोई। मध्यसागरी प्रजाति ने दस सभ्यताओं का निर्माण किया है—मिस्री, सुमेरी, मिनोई, हेलेनी, पश्चिमी परम्परावादी ईसाई समाज का मूल रूप, ईरानी, अरबी और बैबिलोनी। मानव जाति के भूरे वर्ग ने (ब्राउन)—जिसमें भारत की द्रविड़ और इण्डोनेसिया की मलय प्रजातियाँ शामिल हैं—दो सभ्याताओं का निर्माण किया है—भारतीय और हिन्दू। पीली प्रजाति ने तीन सभ्यताओं का निर्माण किया है—चीनी और सुदूर पूर्व की चीनी और जापानी सभ्याताएँ। अमरीका की रक्त वर्ण की प्रजाति ने चार अमरीकी सभ्यताओं का निर्माण किया है। केवल काली जातियों ने अभी तक किसी सभ्यता का निर्माण नहीं किया है। सफेद प्रजातियाँ इस विषय में अगुआ हैं, किन्तु यह याद रखना चाहिए कि बहुत-सी सफेद जातियाँ ऐसी हैं जिन्होंने काली जातियों के समान ही सभ्यता के निर्माण में कोई योगदान नहीं किया है। यह जो विभाजन किया गया है उससे यदि कोई तथ्य की बात निकलती है तो यह कि हमारी आधी सभ्यताओं के निर्माण में एक से अधिक प्रजातियों का हाथ है। पश्चिमी और हेलेनी प्रजातियों में प्रत्येक ने तीन-तीन सभ्यताओं का निर्माण किया है। यदि सफेद प्रजाति के नार्डिक, आल्पीय और मध्यसागरी उपजातियों के समान पीली, भूरी और लाल प्रजातियों का भी उप-जातियों में विभाजन किया जाय तो हमें पता लगेगा कि इन्होंने भी एक से अधिक सभ्यताओं का निर्माण किया है। इन उप-विभाजनों का क्या महत्त्व है अथवा ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से कभी वे विशिष्ट प्रजातियाँ थीं, कहा नहीं जा सकता। और यह सारा विषय अन्धकार में है।

किन्तु पर्याप्त रूप से कहा जा चुका है जिससे यह सिद्ध होता है कि कोई एक विशिष्ट प्रजाति थी जिसके द्वारा 'यिन' से 'यांग' तक अर्थात् गतिहीनता से गतिशीलता की ओर छः हजार वर्ष पहले सभ्यता का विकास संसार के एक भाग से दूसरे भाग की ओर हुआ है।

(३) वातावरण

विगत चार शतियों में हमारे पश्चिमी समाज का जैसा विस्तार हुआ है उसके कारण आधुनिक पश्चिमी विद्वान् इतिहास में प्रजातीय तथ्य को बहुत अधिक महत्त्व देने लगे हैं। इस विस्तार के कारण पश्चिम के लोग संसार की ऐसी प्रजातियों के सम्पर्क में आये हैं जो इनसे संस्कृति में ही नहीं, शारीरिक गठन में भी भिन्न थे। यह सम्पर्क बहुधा अमित्रता का था।

ऐसे सम्पर्कों का परिणाम यह हुआ कि शारीरिक उत्पत्ति के आधार पर ऊँची और नीची प्रजातियों की भावना उत्पन्न हुई। उन्नीसवीं शती में जब चार्ल्स डारविन तथा और वैज्ञानिक अन्वेषकों ने खोज की तब उसके आधार पर पश्चिम के लोगों में जीव-विज्ञान के अनुसार जातियों के बड़े-छोटे होने की भावना जाग उठी थी।

प्राचीन यूनानी भी व्यापार के लिए और उपनिवेश बनाने के लिए संसार में फैले, कि उस समय का संसार छोटा था। उसमें संस्कृतियाँ तो अधिक थीं, किन्तु शारीरिक दृष्टि प्रजातियाँ इतनी अधिक नहीं थीं। यूनानियों की दृष्टि में (जैसे हेरोडोटस) मिस्री और सीथि याइयों में बहुत अन्तर रहा हो और उनके आचार-विचार भिन्न रहे हों, किन्तु शारीरिक दृ से वे यूनानियों से उतने भिन्न नहीं थे जितना पश्चिम अफ्रीका का नेग्रो और अमरीका रक्त वर्ण का मनुष्य यूरोपियनों से है। इसलिए यह स्वाभाविक था कि यूनानियों ने जो सांस्कृति अन्तर इन लोगों में पाया उसका आधार शारीरिक और भौतिक उत्पत्ति अर्थात् जातिगत आधा नहीं माना। उन्होंने इस अन्तर का आधार भौगोलिक आवास, धरती और जलवायु का समझा।

एक पुस्तक है 'इन्फ्लुएन्सेज आव एटमास्फ़ियर, वाटर एण्ड सिचुऐशन', जो ईसा के पूर्व पाँचवीं शती में लिखी गयी थी और जो बोकराती (हिपोक्रिटीज) परम्परा की औषधियों की पुस्तकों के संग्रह में है। इससे इस विषय पर यूनानियों का मत व्यक्त होता है। उदाहरण के लिए, उसमें हम पढ़ते हैं 'मानव आकृति-विज्ञान का इस प्रकार विभाजन हो सकता है—'जंगल और जल से भरा हुआ पहाड़ी वर्ग, जलहीन और क्षीण मिट्टी के प्रदेश के रहने वाले, दलदली घास वाले क्षेत्र के रहने वाले, और उस प्रदेश के रहनेवाले जहाँ जंगल नहीं है और पानी का निकास अच्छा है. . . . ।उस प्रदेश के रहने वाले जो शैलमय (राकी) धरती और ऊँचाई पर हैं, जहाँ पानी भी खूब है, और जहाँ जलवायु के परिवर्तन का अन्तर अधिक है, बड़े डील-डौल वाले होते हैं। उनका शरीर कष्टों को सहने वाला और साहसी कार्य के उपयुक्त होता है. . .। उन देशों के रहने वाले जो निचला होता है जहाँ दलदली घास होती है, उमस होती है, जहाँ ठण्डी के बजाय गर्म हवा अधिक बहती है, उष्ण पानी पीने को मिलता है, उतने ऊँचे और पतले दुबले नहीं होते बल्कि मोटे, गठे, ठिगने और काले बाल वाले होते हैं और उनका रंग भी काला होता है और उनके शरीर में बलगम कम और पित अधिक होता है। साहस और सहनशीलता उनके स्वभाव में उतनी नहीं होती, किन्तु संस्थाओं के सहयोग से उनमें यह गुण उत्पन्न हो सकते हैं. . । अधिक ऊँचाई के रहने वालों का, जहाँ तेज हवाएँ चलती हैं, जल की अधिकता है और ऊँचाई-नीचाई है गठन भारी भरकम होती है। उनमें व्यक्तित्व (परसनाल्टी) की कमी होती है और उनके चरित्र में कायरता और भीरूता होती है. . .। अधिकांश अवस्थाओं में मनुष्य का शरीर और उसका चरित्र देश की भौतिक परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं।'[२]

---

[१] इस सम्बन्ध में बर्नर्ड शा यूनानियों से सहमत हैं। जिन्होंने 'जान बुल्स अदर आइलैंड' की भूमिका पढ़ी है उन्हें याद होगा कि 'केल्टिक जाति' की कल्पना को वे तिरस्कार से टाल देते हैं और उनका कहना है कि अंग्रेज और आइरिश में जो अन्तर है वह दोनों द्वीपों की आबोहवा के कारण है।

[२] हिपोक्रेटीज़ : इन्फ्लुएन्सेज़ आव एटमास्फियर, वाटर एण्ड सिचुएशन—अनुवादक, ए० जे० ट्वायनबी, अध्याय १३ और २४ : ग्रीक हिस्टारिकल थाट फ्राम होमर टू दि एज आव हेराक्लियस—पृ० १६७–८।

किन्तु 'वातावरण का सिद्धान्त' का हेलेनी उदाहरण दो प्रदेशों की तुलना से लिया गया था। एक नील की निचली घाटी के जलवायु का प्रभाव मिस्रियों के शरीर, चरित्र और संस्थाओं पर, दूसरा यूरेशियाई स्टेप के जलवायु का प्रभाव सीथियनों के शरीर, चरित्र और संस्थाओं पर। मानव समाज के विभिन्न भागों में जो मानसिक (बौद्धिक तथा आत्मिक) अन्तर पाया गया है उनके सम्बन्ध में यह बताने की चेष्टा की जाती है कि उनके कारण प्रजाति सिद्धान्त और वातावरण सिद्धान्त दोनों हैं। यह मान लिया जाता है कि यह मानसिक अन्तर प्रकृति के भौतिक अन्तर से स्थायी रूप से कारण और कार्य की भाँति सम्बन्धित है। मनुष्य के शरीर की गठन के अनुसार जाति-सिद्धान्त बनाया गया और विभिन्न जलवायु तथा भौगोलिक परिस्थितियों में जो समाज रहते हैं उनके अनुसार वातावरण सिद्धान्त बनाया गया। दोनों सिद्धान्तों का सार दो परिवर्तनशील सम्बन्धों पर बनाया गया है। एक में शरीर और चरित्र और दूसरे में वातावरण और चरित्र। यदि इन सिद्धान्तों को स्थापित करना है तो यह प्रमाणित करना होगा कि यह सम्बन्ध स्थायी और अचल है। हमने ऊपर देखा है कि इस परीक्षा में प्रजाति-सिद्धान्त नहीं ठहरता और अब हम देखेंगे कि वातावरण-सिद्धान्त यद्यपि उतना असंगत नहीं है, फिर भी प्रमाणित न हो सकेगा। हेलेनी सिद्धान्त की परीक्षा हम दो उदाहरणों द्वारा यूरेशियाई स्टेप तथा नील घाटी से करेंगे। हम पृथ्वी पर और भी क्षेत्र ढूँढ़ेंगे जो जलवायु तथा भौगोलिक दृष्टि से इनके समान हैं। यद्रि हम यह देखेंगे कि वहाँ की जनता का चरित्र और उनकी संस्थाएँ भी सीथियन तथा मिस्री लोगों के समान हैं तो वातावरण-सिद्धान्त प्रमाणित होगा, नहीं तो वह कट जायेगा।

पहले हम यूरेशियाई स्टेप को लें। यह वह विस्तृत क्षेत्र है जिसके केवल दक्षिणी-पश्चिमी भाग से यूनानी परिचित थे। इसके साथ हम अफ्रेशिया (एफ्रेशियन) स्टेप का मिलान करें जो अरब से उत्तरी अफ्रीका तक फैला हुआ है। एशियाई और अफ्रेशियाई समानता के साथ-साथ क्या वे मानव समाज भी समान हैं जो इन दोनों क्षेत्रों में पैदा हुए हैं? उत्तर मिलता है—हाँ। दोनों क्षेत्रों में खानाबदोश समाज उत्पन्न हुए। दोनों क्षेत्रों में जो समानताएँ और अन्तर हैं उसी के समान उनमें समाजों में भी समानताएँ और अन्तर हैं। अन्तर, जैसे पशुओं के पालने में है। अधिक परीक्षा में यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। क्योंकि संसार के इस प्रकार के दूसरे प्रदेशों में जैसे उत्तरी अमरीका के 'प्रेयरी', वेनेजुअला के 'लानो', अरजेंटिना के 'पम्पा' और आस्ट्रेलिया की गोचर भूमि में खानाबदोश समाजों का वातावरण है, किन्तु वहाँ उनके निजी खानाबदोश समाज नहीं उत्पन्न हुए। इन क्षेत्रों की समता में सन्देह नहीं क्योंकि आधुनिक काल में पश्चिमी समाज ने अपने उद्यम से इससे लाभ उठाया है। पश्चिमी पशुपालकों (स्टाक-मैन) के अग्रगामियों ने, जैसे उत्तरी अमरीका के ग्वाले (काउ-ब्वायज़) दक्षिणी अमरीका के 'गाचो' (अमरीका के मूलवासी और यूरोपियनों की सम्मिलित नस्ल) और आस्ट्रेलिया के पशुपालक (कैट्लमैन), इन निर्जन प्रदेशों पर कई पीढ़ियों तक दखल जामये रखा जब नये हल और नयी चक्कियाँ नहीं चली थीं। सीथियनों, अरबों और तातारों की भाँति उनकी ओर भी मानव समाज आकृष्ट हुआ था। अमरीकी और आस्ट्रेलियाई स्टेपों में अवश्य ही शक्तिशाली क्षमता होती, यदि कुछ ही पीढ़ियों के लिए समाज के इन अगुओं को, जिनके पास कोई खानाबदोशी परम्परा नहीं थी और जो आरम्भ से ही खेती और निर्माण (मैनुफैक्चर) के सहारे जीवन-यापन करते थे, खानाबदोश बना लेते। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पश्चिमी गवेषकों (एक्सप्लोरर)

को इन प्रदेशों में जो लोग मिले वे इन खानाबदोशों के स्वर्ग में खानाबदोशी का जीवन नहीं थे, बल्कि शिकार की वृत्ति से जीवन-निर्वाह करते थे ।

यदि हम नील नदी की निचली धारा की भी इसी प्रकार की परीक्षा कर दें तो यही होगा ।

अफ्रेशियाई भू-दृश्य (लैंडस्केप) में निचली नील की घाटी 'विडंबना है, । मिस्र का उतनी ही गर्म है जितना उसके चारों ओर के विशाल क्षेत्रों का । केवल एक सुन्दर अपवाद इस महान् नदी द्वारा लाया हुआ अक्षय जल भण्डार और कछारी मिट्टी (अल्यूवियम) नदी स्टेप के बाहर ले जाती है जहाँ अपार वर्षा होती है । मिस्री सभ्यता के निर्माताओं ने सम्पत्ति को ऐसे समाज के निर्माण में उपयोग किया जो इस घाटी की दोनों ओर के खाना शियों से भिन्न थी । तो क्या मिस्र में नील के कारण जो विशेष वातावरण बन गया है उस प्रभाव से मिस्री सभ्यता की उत्पत्ति हुई है । इस दावे को प्रमाणित करने के लिए हमें यह दे होगा कि जहाँ नील के प्रदेश में ऐसा वातावरण है वहाँ-वहाँ ऐसी ही सभ्यता का निर्माण हुआ

यह सिद्धान्त पड़ोस के क्षेत्र में अर्थात् दजला (यूफ्रेटीज) और फरात (टाइग्रिस) की निच घाटी में, जहाँ वैसी ही परिस्थितियाँ हैं, ठीक उतरता है । यहाँ वैसा ही भौतिक वातावर और वैसे ही समाज, सुमेरी का विकास हुआ है । किन्तु यह सिद्धान्त उसी प्रकार की किन्तु छोटी जार्डन की घाटी में ठीक नहीं उतरता । यह घाटी कभी किसी सभ्यता का केन्द्र नहीं है । अगर हमारी यह बात ठीक है कि सिन्ध घाटी की सभ्यता सुमेरी लाये तो यह सिद्धान्त घाटी के लिए भी ठीक नहीं उतरता । गंगा की निचली घाटी इस परीक्षा में नहीं सम्मिलि की जा सकती क्योंकि वहाँ का जलवायु बहुत नम और उष्ण है । यांग्त्सी और मिसिसिपी निचली घाटियाँ भी सम्मिलित नहीं की जा सकतीं क्योंकि वहाँ की आबोहवा बहुत नम शीतोष्ण है । किन्तु बहुत छिद्रान्वेषी आलोचक भी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि भौगोलिक वातावरण मिस्र और मिसोपोटामियाँ में है वही यूनाइटेड स्टेट्स की कोलोरेडो की घाटी में और रायोग्रेण्डे की घाटी में है । आधुनिक यूरोपीय उपनिवेशियों के हाथों, जि पास यूरोपीय साधन थे, अमरीका की इन नदियों द्वारा वही चमत्कार हुए जो नील और फरात मिस्री और सुमेरी इन्जीनियरों द्वारा हुए थे । किन्तु यह चमत्कार कोलोरेडो और रायोग्रेण्डे उन लोगों को नहीं दिखाया जिन्होंने कहीं और से पहले से यह चतुराई सीखी नहीं थी ।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 'नदी वाली' सभ्यता वातावरण के कारण नहीं उत्पन्न हु और यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि उसी प्रकार के वातावरणों में एक जगह सभ्यता विकसि हुई और दूसरी जगह नहीं तो हमारा यह कथन पुष्ट हो जायेगा ।

एण्डियाई सभ्यता ऊँचे पठार पर उत्पन्न हुई । इसकी उपलब्धियाँ अमेजन की तराई लोगों की उपलब्धियों से भिन्न थीं क्योंकि ये लोग असभ्य थे । तो क्या पठार इसका कारण जिससे एण्डियाई सभ्यता अपने असभ्य पड़ोसियों से आगे बढ़ गयी । इस विचार को ठीक मान से पहले हमें अफ्रीका के विषुवत् रेखा के निकट के उन अक्षांशों की ओर देखना चाहिए जो पू अफ्रीका, कांगों बेसिन के जंगलों की बगल में है । यहाँ हमको पता चलेगा कि न तो अफ्री के पठार पर किसी सभ्यता का विकास हुआ और न पास की नदी के हरे-भरे जंगलों में ।

उसी प्रकार हम देखते हैं कि मिनोई सभ्यता थल से घिरे हुए सागर में कुछ द्वीपों के स

में उत्पन्न हुई जहाँ मध्यसागरी जलवायु था। किन्तु उसी प्रकार का वातावरण होते हुए जापान के अन्तर्देशीय सागर में उस प्रकार की द्वीप वाली सभ्यता नहीं उत्पन्न हुई। जापान में कभी किसी स्वतन्त्र सभ्यता का जन्म नहीं हुआ। वहाँ की सभ्यता चीन की सभ्यता द्वारा उत्पन्न हुई है।

कभी-कभी कहा जाता है कि चीन की सभ्यता ह्वांगहो की घाटी के कारण उत्पन्न हुई क्योंकि उसी प्रदेश में इसका जन्म हुआ, किन्तु वही जलवायु, मिट्टी, मैदान और पहाड़ होते हुए डेन्यूब नदी की घाटी में उस प्रकार की सभ्यता नहीं पैदा हुई।

गाटेमाला तथा ब्रिटिश हाण्ड्युराज में जहाँ उष्ण कटिवन्धीय वर्षा होती है और जो बहुत हरा-भरा है माया सभ्यता का जन्म हुआ। किन्तु वैसी ही परिस्थिति में अमेजन तथा कांगों नदियों की घाटियों में किसी सभ्यता का जन्म नहीं हुआ। यह ठीक है कि ये दोनों नदियाँ विषुवत् रेखा के इधर और उधर बहती हैं और माया सभ्यता का विकास विषुवत् रेखा के पन्द्रह अंश उत्तर हुआ है। अगर हम पन्द्रहवें अक्षांश के साथ-साथ चलें तो संसार की दूसरी ओर अंगकोर वाट के खण्डहर मिलेंगे जो कम्बोडिया के उष्ण कटिबन्धीय जलवायु और हरियाली के क्षेत्र में है। अवश्य ही माया के कोपन और इक्सुकन नगरों से इनकी तुलना हो सकती है। किन्तु पुरातत्त्व के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यह सभ्यता कम्वोडिया की नहीं थी, बल्कि हिन्दू सभ्यता की एक शाखा थी जिसका जन्म भारत में हुआ।

इस पर और भी विवेचन किया जा सकता है, किन्तु हम समझते हैं कि इतना कहा जा चुका है कि पाठकों को विश्वास हो जायेगा कि अलग-अलग न तो प्रजाति, न तो वातावरण ने गत छः हजार वर्षों में ऐसा प्रभाव डाला है कि मानव के गतिहीन आदिम समाज को ऐसी प्रेरणा मिली हो कि सभ्यता के संकटपूर्ण मार्ग की खोज में वह चला हो। जो भी हो अभी तक जितना देखा गया है उससे न तो प्रजाति न तो वातावरण से यह रहस्य खुलता है कि मनुष्य के इतिहास में यह परिवर्तन क्यों किसी विशेष प्रदेश में ही हुआ, बल्कि विशेष युग में भी हुआ।

५. चुनौती और उसका सामना

(१) पौराणिक संकेत (माइथोलोजिकल क्लू)

अभी तक जो हमने सभ्यता की उत्पत्ति के मूल तत्त्व खोजने का प्रयास किया है उसमें हमने आधुनिक भौतिक विज्ञान की क्लासिकी शैली का प्रयोग किया है। हम अमूर्त भाषा में विचार कर रहे थे और प्रजाति तथा वातावरण की निर्जीव शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे, किन्तु इस प्रणाली से कोई लाभ नहीं हुआ। हम जरा इस बात पर विचार करें कि हमारी असफलता इस कारण तो नहीं है कि हमारी प्रणाली में कोई दोष रहा है। विगत काल के मायावी प्रभाव के कारण शायद हम उस भावना के शिकार हो गये जिसे हम असंवेदाभास (अ-पैथेटिक फ़ैलेसी) कह सकते हैं। रसकिन ने हमें चेतावनी दी थी कि हमें निर्जीव पदार्थों को सजीव मानने की कल्पना के 'संवेदाभास' (पैथेटिक फैलेसी) से बचना चाहिए, किन्तु हमारे लिए यह भी इतना ही आवश्यक है कि हम इसकी विपरीत भावना की भूल से भी बचें और ऐतिहासिक विचारों में उसका प्रयोग न करें। क्योंकि इसमें सजीव लोगों का अध्ययन है और यह निर्जीव पदार्थों के अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली नहीं है। अब इस समस्या को हल करने के लिए हमें दूसरे ढंग का अनुसरण करना चाहिए जिसे प्लेटो ने बताया है। विज्ञान के सूत्र की ओर से एक क्षण के लिए हम आँखें मूंद लें और अपने कान पुराण की भाषा के लिए खोलें।

यह स्पष्ट है कि यदि सभ्यताओं की उत्पत्ति विज्ञानीय तथा वातावरण तत्त्वों के अलग-अलग प्रभाव के कारण नहीं हैं तो दोनों की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया उसका कारण होगी। दूसरे शब्दों में जिस तत्त्व को हम खोज रहे हैं वह एक नहीं है अनेक हैं, वह अलग एक सत्ता नहीं है, बल्कि एक से अधिक का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को चाहे हम दो अमानवीय (इनह्यूमन) शक्तियों का घात-प्रतिघात समझें या दो अतिमानव व्यक्तित्व का। अन्तिम वाली बात पर आइए हम विचार करें। सम्भव है इससे हमें प्रकाश मिले।

दो अतिमानव व्यक्तित्वों के संघर्ष की बुनियाद पर मनुष्य की कल्पना ने कुछ महान् नाटकों की वस्तु (प्लाट) तैयार की है। जेहोवा और सर्प का संघर्ष इंजील की पहली पुस्तक (बुक आव जेनेसिस) में मनुष्य के पतन का कथानक है। इन्हीं दोनों विरोधियों के संघर्ष से उन्नतिशील सीरियाई लोगों को एक और वस्तु (प्लाट) मिली जिसके आधार पर नये बाइबिल (न्यू टेस्टामेंट) में मोक्ष (रिडेम्पशन) वाली कथा है। 'जाब के पुस्तक' (बुक आव जाब) का कथा-विन्यास ईश्वर और शैतान की लड़ाई है। गोएटे के फाउस्ट का कथा-विन्यास ईश्वर और मेथिस्टोफिलीज का संघर्ष है। स्कैंडिनेवियाई 'वोलुस्पा' का कथा-विन्यास ईश्वर और दैत्यों का संघर्ष है और युरिपीडीज के टिपोलिटस की कथा आर्टिमीज़ और अफ़्रोडाइट का संघर्ष है।

इसी कथा का दूसरा रूप उस सर्वव्यापक और बार-बार सुनी जाने वाली कहानी, जिसे हम आदि कहानी कह सकते हैं—यदि कोई आदि कहानी हो सकती है—कुमारी और उसकी संतान के पिता के बीच का संघर्ष है। इस पौराणिक कथा को भिन्न-भिन्न नामों से हजारों स्थान पर हम पाते हैं। जैसे डैनी और सोने की बौछार, यूरोपा और बैल, घायल धरती समेले और

आकाश, जीयूस जो बिजली से धरती पर प्रहार करता है, युरिपिडीज के 'आयन' में क्र्यूसा और अपोलो, मन (साइक) और काम, ग्रेचेन और फाउस्ट। आधुनिक काल में यह अति परिवर्तनशील कथा पश्चिम में दूसरे रूप में प्रकट हुई है। हमारे ज्योतिषियों ने ग्रह-निकाय (प्लेनेटरी सिस्टम) की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है जिसमें धर्म का कितना विश्वास है :—

"हमारा विश्वास है कि लगभग बीस अरब साल हुए एक दूसरा तारा अन्तरिक्ष में इधर-उधर घूम रहा था। वह सूर्य के बहुत निकट आ गया। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के कारण ज्वार उठता है उसी प्रकार सूर्य के धरातल पर भी ज्वार आ गया होगा। किन्तु जितना छोटा ज्वार छोटे से चाँद के कारण हमारे सागरों में उठता है उससे वह भिन्न रहा होगा। इस ज्वार के कारण विशाल ज्वार की लहर सूर्य के चारों ओर फैली होगी। और वह अन्त में उत्तुंग पर्वत बन गया होगा। ज्यों-ज्यों यह तारा सूर्य के निकट आता रहा होगा यह ज्वार का पर्वत ऊँचा उठता जाता होगा। इसके पहले कि यह दूसरा तारा लौटने लगें, उसके ज्वार का खिंचाव इतना प्रबल हो गया होगा कि उस पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो गये होंगे। और जिस प्रकार तरंगों के ऊपर से पानी की बूँदे इधर-उधर छहर जाती हैं ये टुकड़े अन्तरिक्ष में छितरा गये होंगे। ये टुकड़े अपने पिता के चारों ओर तब से चक्कर लगा रहे हैं। यही छोटे-बड़े ग्रह हैं जिनमें हमारी पृथ्वी भी है।"[१]

इस प्रकार जटिल गणनाओं को पूरा करने के बाद गणितज्ञ ज्योतिषी के मुख से एक बार वही कथा इस रूप में निकली कि सूर्य की देवी और उसपर बलात्कार करने वाले में संघर्ष हुआ। इसी कथा को अपढ़ लोग पुराने ढंग से कहते आये हैं। जिन सभ्यताओं का हम अध्ययन कर रहे हैं उनकी उत्पत्ति में यह द्वैत शक्ति वर्तमान है। इसे पश्चिम के एक आधुनिक पुरातत्त्व वेत्ता नें स्वीकार किया है और उन्होंने वातावरण के प्रभाव से आरम्भ किया है और अन्त में जीवन के रहस्य की अन्तःप्रज्ञा पर बल दिया है—

"संस्कृति के निर्माण का कुल कारण वातावरण ही नहीं है—निश्चय ही यह एक प्रमुख तत्त्व है...किन्तु एक और भी तथ्य है जो अनिश्चित है और जिसे हम 'एक्स' कह सकते हं जो अज्ञात राशि है जिसके स्वरूप का आभास मनोवैज्ञानिक है....'एक्स' सबसे स्पष्ट तत्त्व इस विषय में न भी हो तो भी सबसे महत्त्व का है और सबसे अधिक प्रभावशाली है।"[२]

इतिहास के इस अध्ययन में अतिमानव का यह संघर्ष बार-बार आता है और हमने इसका प्रभाव देखा। आरम्भ में हमने देखा कि 'किसी समाज के जीवन में अनेक समस्याएँ एक के बाद एक आती रहती हैं। और 'प्रत्येक समस्या किसी अग्नि-परीक्षा की चुनौती होती है।'

इस कथा अथवा नाटक का कथा-विन्यास जो अनेक रूपीं और अनेक सन्दर्भों में बार-बार आया है, हमें उसका विश्लेषण करने की चेष्टा करनी चाहिए।

हम दो साधारण लक्षणों से आरम्भ कर सकते हैं : संघर्ष असाधारण और कभी-कभी विशिष्ट घटना माना जाता है। प्रकृति की स्वाभाविक गति में इसके कारण जो बड़ा व्यवधान पड़ जाता है उसी के अनुसार इस संघर्ष का परिणाम भी बहुत बड़ा होता है।

---

१. सर जेम्स जीन्स : द मिस्टीरियस युनिवर्स, पृ० १ तथा २।

२. पी० ए० मीन्स : एन्शेंट सिविलिज़ेन्श आव द एण्डीज़, पृ० २५—६।

हेलेनी पुराण के सरल संसार में देवता लोग मनुष्यों की सुन्दर कन्याओं को देखते थे और उनसे स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार करते थे । इन विपद्ग्रस्तों की संख्या इतनी है कि काव्यों में उनकी सूचियाँ प्रस्तुत हैं । ऐसी घटनाएँ सनसनीपूर्ण समझी जाती थीं और इनके फलस्वरूप वीरों का जन्म होता था । इन कथाओं में जहाँ दोनों ओर अतिमानव का संघर्ष हुआ है घटना की असाधारणता और उसका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है । जाव की पुस्तक में 'जिस दिन ईश्वर के पुत्र ईश्वर के सम्मुख आये शैतान भी उनके साथ आया ।' इस घटना की असाधारण रूप में कल्पना की गयी है । इसी प्रकार गोएटे के फाउस्ट में 'स्वर्ग में प्रस्तावना' में ईश्वर और मेफिसटोफिलीज का जो संघर्ष आया है, वह इसी प्रकार का है । अवश्य ही इस कथा की कल्पना जाव की पुस्तक के आरम्भिक भाग से ली गयी है । इन दोनों नाटकों में स्वर्ग में जो संघर्ष हुआ है उसका परिणाम पृथ्वी पर महत्त्वपूर्ण है । कल्पना की भाषा में जाव और फाउस्ट की जो व्यक्तिगत कठोर परीक्षाएँ हुई हैं वे मानवता की कठोर परीक्षाओं की रूपक हैं । धर्म की भाषा में यही महान् परिणाम जो अतिमानव के संघर्षों से उत्पन्न हुए उत्पत्ति की पुस्तक (बुक आव जेनेसिस) और नयी बाइबिल में चित्रित किया गया है । जेहोवा और सर्प के संघर्ष के फलस्वरूप आदम और हौवा का अदन के बाग से निकाला जाना मनुष्य के पतन का ही चित्र है । तभी बाइबिल में ईसा की यन्त्रणा मानवता के उद्धार का रूपक है । दो सूर्यों के संघर्ष से हमारे ग्रह-निकाय की उत्पत्ति जिसकी कल्पना हमारे आधुनिक ज्योतिषी ने की है उस सम्बन्ध में भी उसका कहना है कि 'यह अद्भुत और असाधारण घटना है ।"

प्रत्येक कथा का आरम्भ पूरी यिन अवस्था अर्थात् समाज के गतिहीन रूप से होता है। फाउस्ट का ज्ञान पूर्ण है, जाव आनन्द और भलाई में पूर्ण है, आदम और हौवा आनन्द और अबोधता का जीवन बिताते हैं; ग्रेचेन और डेवी तथा और कुमारियाँ पूर्ण रूप से सुन्दर और पवित्र हैं। ज्योतिषी के विश्व में सूर्य भी पूर्ण पिण्ड है और अपने वृत्त में एक ढंग से बराबर चलता रहता है। जब 'यिन' की स्थिति पूरी हो गयी तब 'यांग' की ओर गति होती है । किन्तु इस गति का प्रेरक कौन है । जब कोई स्थिति अपने ढंग से पूर्ण है तब उसमें परिवर्तन किसी बाहरी प्रेरणा अथवा शक्ति से ही सम्भव है । यदि भौतिक सन्तुलन की स्थिति है तो दूसरे तारे की आवश्यकता पड़ती है । यदि मानसिक मोक्ष अथवा निर्वाण की स्थिति है तो मंच पर दूसरे अभिनेता को आना पड़ता है जो संशय का वातावरण उपस्थित करने मन में नये विचारों को उत्पन्न करता है और जो असन्तोष, कष्ट, भय अथवा विरोध के भाव उत्पन्न करके हृदय में नये भावों को प्रेरित करता है । बाइबिल की उत्पत्ति की पुस्तक (जेनेसिस) में सर्प की यही भूमिका है । जाव की पुस्तक में शैतान की, फाउस्ट में मेफिस्टोफिलीस की, स्कैण्डीनेवियाई भूमिकाएँ इसी प्रकार की हैं । कुमारी कन्या की कथाओं में ईश्वरीय प्रेमियों की भी कथा इसी प्रकार है ।

विज्ञान की भाषा में हम यह कह सकते हैं कि आक्रमणकारी तत्त्व गतिहीन तत्त्व को इस प्रकार शक्ति उत्पन्न करने को प्रेरित करता है जिससे शक्तिशाली सर्जनात्मक परिवर्तन हो सके । पुराण और धर्म के रूप में जो शक्ति यिन स्थिति से यांग स्थिति में परिवर्तन करती है वह ईश्वर के विश्व में शैतान का आक्रमण है । पुराणों में इस प्रकार की कथाएँ बहुत अच्छी तरह से बनायी जा सकती हैं क्योंकि तर्क द्वारा जो असंगति उत्पन्न होती है उसकी ऐसी कथाओं में गुंजाइश नहीं है । तर्क के आधार पर देखा जाय तो यदि ईश्वर का विश्व पूर्ण है तो शैतान उसके हरबा

कैसे रह सकता है और यदि शैतान का अस्तित्व है तो जिस पूर्णता को वह नष्ट करने आता है वह पूर्ण कहाँ से हुई। इस प्रकार का विरोध जो तर्क की कसौटी पर नहीं ठहर सकता कवि और ईश-दूतों (प्रोफेट) की कल्पनाओं से इन तर्कों से मुक्त हो जाता है और वह ईश्वर को इतना सर्वशक्तिमान् बनाता है कि वह दो महत्त्वपूर्ण सीमाओं में बँध जाता है।

पहली सीमा यह है कि जिसका ईश्वर ने निर्माण किया वह पूर्ण हो गया अब उसके आगे कोई सर्जनात्मक शक्ति की गुंजाइश नहीं रह गयी। यदि ईश्वर अति उत्कृष्ट गुणों से युक्त है तो उसकी सृष्टि सर्वश्रेष्ठ है फिर श्रेष्ठता से श्रेष्ठता की ओर कैसे जा सकता है। दूसरी सीमा ईश्वर की उस शक्ति में है कि जब बाहर से नयी सृष्टि का अवसर आता है तो वह उसे स्वीकार करने के लिए विवश होता है। जब शैतान उसे चुनौती देता है तब उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। ईश्वर को यह विकट परिस्थिति स्वीकार करनी पड़ती है क्योंकि यदि वह उसका सामना न करे तो वह ईश्वर नहीं रह जाता।

यदि तर्क के अनुसार इस प्रकार ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो क्या पौराणिक दृष्टि से भी यह अजेय है? यदि वह शैतान की चुनौती स्वीकार करता है तो क्या यह आवश्यक है कि वह संग्राम में विजयी भी होगा। युरिपिडीज के हिपोलाइट्स नाटक में जहाँ आरटिमिस ईश्वर की भूमिका में है और अफ्रोडाइट शैतान की भूमिका में है, आरटिमिस लड़ने से इनकार नहीं करता, किन्तु उसकी पराजय निश्चित है। ओलिम्पियन देवताओं के सम्बन्ध क्रान्तिकारी हैं। उपसंहार में आरटिमिस इसी बात पर सन्तोष करती है कि अफ्रोडाइट के स्थान पर एक दिन वह स्वयं शैतान की भूमिका में आयेगी। इस स्थिति में परिणाम सर्जन नहीं, विनाश है। स्कैण्डेनेवियाई संस्करण में 'रागनेरोक' में भी विनाश ही परिणाम हुआ जब देवता और दैत्यों ने एक दूसरे का संहार कर दिया। यद्यपि वोलसपा के लेखक की अद्वितीय प्रतिभा द्वारा यह दिखाया गया है कि सिविल अन्धकार को विच्छेद कर उसके पार नया प्रकाश देखती है। यह कथा एक दूसरे रूप में यह है कि चुनौती के बाद जो संग्राम होता है उसमें शैतान विजयी नहीं होता और वह स्वयं हार जाता है। जिस क्लासिकी पुस्तक से यह दाँव वाला विषय लिया गया है वह जाब भी पुस्तक और गोएटे का फाउस्ट है।

गोएटे के नाटक में यह बात स्पष्ट है। स्वर्ग में जब ईश्वर ने मेफिसटोफिलीस की चुनौती स्वीकार कर ली तब पृथ्वी पर मेफिसटोफिलीस और फाउस्ट से आपस में इस प्रकार शर्त तय हुई—

"फाउस्ट—शान्त हो, और चुप रहो! यह सब
मेरे लिए नहीं है—मैं न उन्हें माँगता हूँ न खोजता हूँ
यदि मैं कभी आलस्य की शय्या पर—
लेटूँ और आराम करूँ—तब मेरे लिए
वह समय आये कि सदा के लिए सो जाऊँ
तुम मुझे झूठ और चाटुकारिता से—
आत्मतुष्टि की मुसकान से धोखा नहीं दे सकते,
तुम मुझे शान्ति की प्रवंचना से छल नहीं सकते
इसलिए आओ, इस जीवन के आज अन्तिम दिवस पर
तुम्हारा स्वागत करता हूँ

तो आओ बाजी लग जाय ।
मेफिसटोफिलीस––स्वीकार है
फाउस्ट––मैं भी स्वीकार करता हूँ, सौदा पक्का हो गया
यदि मैं कभी शान्ति से बैठूँ
और शान्ति की सुखद विस्मृति में सोऊँ
और ऐसे आनन्दमय अवसर का स्वागत करूँ
और उस सुख में अपना समय बिताऊँ
तो मैं अपनी इच्छा से
अपना विनाश स्वीकार करता हूँ ।

सभ्यता की उत्पत्ति की समस्या का इस पौराणिक कथा से इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है कि फाउस्ट जब दाँव स्वीकार करता है तब वह उस चट्टान पर सोने वालों के समान है और जो बहुत दिनों तक अकर्मण्य रहे हैं और अब चट्टान पर से उठे हैं और ऊपरी चट्टान की ओर चढ़ रहे हैं । हमने जो उपमा दी है उसकी भाषा में फाउस्ट यह कह रहा है, 'मैंने यह चट्टान छोड़ने का निश्चय कर लिया है और ऊपर नयी चट्टान की खोज में चढ़ रहा हूँ । मैं जानता हूँ कि इस प्रयत्न में वह स्थान छोड़ रहा हूँ जहाँ सुरक्षित रहा फिर भी सफलता की सम्भावना में गिर पड़ने और नष्ट हो जाने का खतरा उठाऊँगा ।'

गोएटे वाली कथा में साहसी चढ़ने वाला अनेक खतरों और विफलताओं की कठिनाइयां झेलता हुआ ऊपर की चट्टान पर चढ़ने में सफल होता है । नयी बाइबिल में भी उसी प्रकार का परिणाम है, जिसमें दोनों विरोधी दूसरी बार संघर्ष करते हैं । उत्पत्ति की पुस्तक (जेनेसिस) के मूल रूप में सर्प और जेहोवा के संघर्ष का वही परिणाम है जो हिपोलाइट्स में आर्टिमिस और अफ्रोडाइट के संघर्ष का परिणाम होता है ।

जाब की पुस्तक, फाउस्ट और नयी बाइबिल में स्पष्ट रूप से दिखलाया गया है कि शैतान विजयी नहीं हो सकता । जब शैतान ईश्वर के काम में विघ्न डालता है तब वह ईश्वर के कार्य को विफल नहीं करता, बल्कि उसके कार्य में सहायक होता है । ईश्वर परिस्थिति का मालिक रहता है और शैतान को लम्बी रस्सी प्रदान करता है जिससे वह स्वयं फाँसी लगा लेता है । तो क्या शैतान को धोखा दिया जाय ? क्या ईश्वर ने ऐसी बाजी स्वीकार की जिसे वह जानता था कि हारूँगा नहीं ? यदि ऐसा है तो यह अनुचित बात होगी और सारा मामला पाखण्ड होगा। ऐसा संघर्ष जो वास्तव में संघर्ष नहीं है उससे संघर्ष का फल नहीं निकल सकता क्योंकि इसी संघर्ष द्वारा सृष्टि में परिवर्तन होता है और यिन से यांग की ओर प्रगति होती है । सम्भवतः इसकी व्याख्या यह होगी कि शैतान जो चुनौती देता है और जिसे ईश्वर स्वीकार करता है उसमें सृष्टि का केवल एक अंश ही संकट में पड़ता है, सारी सृष्टि नहीं । यद्यपि केवल एक अंश की बाजी है और सारी सृष्टि की नहीं फिर भी जिस अंश में परिवर्तन होगा और जिस पर विपत्ति आयेगी उसका प्रभाव पूर्ण सृष्टि पर पड़े बिना नहीं रह सकता । पौराणिक भाषा में, जब ईश्वर की एक सृष्टि वस्तु शैतान के फन्दे में आ जाती है तो ईश्वर स्वयं ऐसा अवसर प्राप्त करता है कि संसार का फिर से निर्माण करें । शैतान के विघ्न डालने के कारण, जिसमें वह सफल हो या असफल—क्योंकि दोनों सम्भव है—वह यिन से यांग परिस्थिति उत्पन्न कर देता है, जिसके लिए ईश्वर इच्छा करता है ।

जहाँ तक मानवी अभिनेता का प्रश्न है प्रत्येक नाटक का मूल कष्ट ही है चाहे अभिनेता ईसामसीह हों या जाब या फाउस्ट या आदम और हौवा । अदन के बाग में आदम और हौवा का जो चित्रण है वह इन अवस्था की यादगार है जब आदिम मानव फल एकत्र करने वाली सामाजिक व्यवस्था में पहुँचा था । यह अवस्था उस समय आयी जब मनुष्य ने पृथ्वी के पशु तथा वनस्पति जगत् पर विजय प्राप्त कर ली थी । ज्ञान के वृक्ष से अच्छाई और बुराई का फल खाने से जो पतन हुआ वह उस चुनौती के स्वीकार करने का प्रतीक है जिसमें इस संगठन को छोड़कर विघटन की चुनौती स्वीकार की गयी जिसके फलस्वरूप नया संगठन हो या न हो आदम का वाग से निकाला जाना और ऐसे वैरपूर्ण जगत् में आना जहाँ कष्ट सहकर स्त्री सन्तान उत्पन्न करें और पुरुष परिश्रम द्वारा अपना भोजन उत्पन्न करें, वह अग्नि-परीक्षा है जिसे सर्प की चुनौती के कारण स्वीकार करना पड़ा । इसके वाद आदम और हौवा का शारीरिक संभोग सामाजिक सृष्टि के लिए था । परिणाम-स्वरूप दो पुत्र उत्पन्न हुए जो दो नवजात सभ्यताओं के स्वरूप हैं : एबेल-भेड़ पालने वालों की और कैन-खेत जोतने वालों की ।

हमारे ही युग में एक विद्वान्, जिन्होंने मानवीय जीवन पर भौतिक वातावरण के प्रभाव का बहुत गहरा अध्ययन किया है, यही बात अपने ढंग से कहते हैं :—

“युगों पहले नंगे गृह-विहीन और आग का ज्ञान न रखने वाले असभ्यों का एक झुंड ऊष्ण-कटिबन्ध के अपने गर्म निवास को छोड़कर उत्तर की ओर वसन्त ऋतु से लेकर ग्रीष्म ऋतु तक वरावर चलता गया । इस झुंड के लोगों ने यह अनुमान नहीं किया था कि हम निरन्तर गर्म रहने वाले प्रदेश को छोड़ रहे हैं । इस बात का अनुभव उन्हें तब हुआ जब सितम्बर की रात में उन्हें कष्ट दायक ठंड का सामना करना पड़ा । यह कष्ट दिन प्रतिदिन बढ़ता गया । इस कष्ट का कारण उन्हें मालूम न था । इसलिए अपनी रक्षा के लिए वे इधर-उधर गये । कुछ दक्षिण की ओर चले गये, मगर बहुत थोड़े अपने पुराने निवास स्थान पर पहुँच सके । वहाँ उन्होंने वही पुराने ढंग का जीवन आरम्भ किया और उनके वंशज आज भी अपढ़ और असभ्य हैं । जो लोग दूसरी दिशाओं में गये उनमें से एक समूह को छोड़कर शेष सब नष्ट हो गये । यह जानकर कि कठोर ठंडी हवा से हम बच नहीं सकते इस समूह के लोगों ने मनुष्य के दिमाग की सबसे ऊँची शक्ति, आविष्कार की शक्ति, का प्रयोग किया । कुछ धरती को खोदकर उसके नीचे रहने लगे । कुछ ने टहनियों और पत्तियों को एकत्र किया और उनसे झोपड़े और गर्म विस्तर बनाये और कुछ ने अपने को उन पशुओं कि खाल से लपेटा जिन्हें उन्होंने मारा था । इन असभ्य लोगों ने सभ्यता की ओर अनेक कदम उठाये । जो नंगे थे उनके तन ढक गये, जो घर-विहीन थे उनको आश्रय मिला, जो असावधान थे उन्होंने मांस को और फलों को सुखाना और उसे सुरक्षिंत रखना सीखा और अन्त में अपने को गरम रखने के लिए आग जलाने का आविष्कार उन्होंने किया । इस प्रकार जहाँ वे समझते थे कि हम नष्ट हो जायेंगे वे सुरक्षित हो गये । कठोर वातावरण से सामंजस्य स्थापित करते-करते उन्होंने विशाल प्रगति की और ऊष्ण-कटिबन्ध में रहने वाले मनुष्यों को बहुत पीछे छोड़ दिया ।”[१]

---

[१] एल्सवर्थ हंटिंगटन : सिविलिज़ेसन एण्ड क्लाइमेट, पृ० ४०५–६ ।

इसी कथा को एक क्लासिकी विद्वान् ने आज के युग की वैज्ञानिक भाषा में इस प्रका लिखा है :—

"प्रगति का एक विरोधाभास यह है कि यदि आवश्यकता आविष्कार की जननी है तो कठोर पिता है अर्थात् यह दृढ़ता कि हम प्रतिकूल वातावरण में जीवन व्यतीत करते रहेंगे बजाय इसके मुसीबतों को कम करेंगे और ऐसे स्थान पर चले जायेंगे जहाँ जीवन-यापन सरल होगा। यह केव संयोग नहीं है जिस सभ्यता का हमें ज्ञान है उसका जन्म चार हिमकालों के जलवायु, जीव त वनस्पति के वातावरण में हुआ। वे अगुआ जो अभी उस स्थिति से थोड़ा-सा ही बाहर हुए थे वृक्षवासी जीवन (आरबोरियल कंडिशन) शिथिल हो रहा था, प्रकृति के नियमों के दासों तो अगुआ बने रहे, किन्तु प्रकृति पर विजय उन्होंने नहीं प्राप्त की। दूसरे जिन्होंने प्रकृति विजय प्राप्त की वे मनुष्य हुए। उन्होंने जहाँ बैठने के लिए वृक्ष नहीं थे, रहने का स्थान बनाय जब खाने के लिए पके फल नहीं मिलते थे मांस खाने का प्रबन्ध किया। उन्होंने धूप का भरो नहीं किया, आग और कपड़ों का निर्माण किया, उन्होंने अपनी गुफाओं को सुरक्षित किया, अं बच्चों को प्रशिक्षित किया और उस संसार को बुद्धियुक्त बनाया जो पहले अविवेकी जान पड़ता था।"[१]

मानव नेता की परीक्षा की पहली मंजिल यिन से यांग तक वह परिवर्तन है जो गत्यात्मक शक्ति द्वारा हुआ है। ईश्वर की सृष्टि मानव द्वारा अपने विरोधी के प्रलोभन से संघर्ष करने से, जिसके परिणामस्वरूप ईश्वर स्वयं अपने सर्जन के कार्य में सशक्त होता है, बनी है। फिर अनेक परिवर्तनों के बाद पीड़ित विजयी नेता बन जाता है। ईश्वरीय नाटक में मानवी नेता ईश्वर की इसी प्रकार सेवा नहीं करता कि वह उसे अपनी सृष्टि के पुनः निर्माण की शक्ति प्रदान करता है वह मनुष्यों की भी सेवा इस प्रकार करता है कि वह उन्हें आगे बढ़ने के लिए रास्ता दिखाता है।

(२) पौराणिक कथा के आधार पर समस्या

अदृष्ट तत्त्व

पौराणिक कथा के प्रकाश में संघर्ष और उसकी प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान प्रा हुआ है। हमने देखा कि सर्जन (क्रिएशन), संघर्ष (एन्काउण्टर) का परिणाम है, और उत्पा (जेनेसिस) अन्योन्यक्रिया (इण्टर एक्शन) की। अब हम उस बात की ओर ध्यान दें जिसकी खोज हमें इस समय करनी है। उस निश्चयात्मक तथ्य की खोज करनी है जिसने विगत छः हजार वर्षों में मानव को 'प्रथाओं के एकीकरण' (इण्टेग्रेशन आव कस्टम्स) को छिन्न-भिन्न करके 'सभ्यता की मित्रता' की ओर मोड़ा है। हम अपनी इक्कीस सभ्याताओं के आरम्भ को क्रमबद्ध रूप में देखें और आनुभविक (एंपिरिक्ल) परीक्षा से समझें कि संघर्ष और प्रतिक्रिया की संकल्पना से जो हम खोज रहे हैं उसका कुछ अधिक सन्तोषजनक उत्तर मिलता है, कि कुल और वातावरण की प्राक्कल्पना (हाइपोथेसिस) से, जिसकी परीक्षा हमने की और जो ठीक नहीं उतरी।

इस नये सर्वेक्षण में हम कुल और वातावरण का विवेचन करेंगे, किन्तु नयी दृष्टि से। हम सभ्यता की उत्पत्ति के किसी ऐसे सरल कारण की खोज नहीं करेंगे जिसके फलस्वरूप, सब सम और सब स्थानों में एक ही परिणाम निकलता है। हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहि

---

[१] जे० एल० मायर्स : हू वेयर द ग्रीक्स, पृ० २७७–७८।

यदि सभ्यताओं की उत्पत्ति में समान प्रजाति या समान वातावरण से एक जगह नयी सभ्यता की उत्पत्ति होती है और दूसरी जगह नहीं होती । हम अब प्रकृति की समानता की वैज्ञानिक अभिधारणा (पोस्चुलेट) को आधार नहीं मानेंगे । अभी तक हमने इस सिद्धान्त को माना है क्योंकि हम वैज्ञानिक दृष्टि से इस समस्या पर विचार करते रहे कि सभ्यताओं की उत्पत्ति निर्जीव शक्तियों की गति की क्रिया है । हम इस बात को स्वीकार करने के लिए अब तैयार हैं कि यदि प्रजातीय तथा वातावरण सम्बन्धी तथा और सभी वैज्ञानिक सामग्री का ज्ञान भी हमें हो तब भी हम यह भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि इन सामग्रियों के घात-प्रतिघात का परिणाम क्या होगा । जिस प्रकार कोई सैनिक विशेषज्ञ किसी युद्ध का परिणाम नहीं बता सकता चाहे उसे दोनों सेनाओं के सेनापतियों की प्रवृत्ति तथा साधनों के बारे में 'आन्तरिक ज्ञान' भी हो । अथवा जिस प्रकार ब्रिज का विशेषज्ञ नहीं बता सकता कि परिणाम क्या होगा चाहे उसे सबके हाथों के ताशों का पता हो ।

इन दोनों उदाहरणों में जानकार 'आन्तरिक ज्ञान' ठीक-ठीक परिणाम निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि 'आन्तरिक ज्ञान' और सम्पूर्ण ज्ञान एक ही बात नहीं है । उत्तम से उत्तम जानकार के लिए यह अज्ञात है क्योंकि सैनिक अथवा खेलाड़ी स्वयं उस बात को नहीं जानता । और यह अज्ञात तथ्य इस समस्या को सुलझाने के लिए बहुत आवश्यक है । यह अज्ञात राशि (क्वांटिटी) यह है कि जब अभिनेताओं के सामने कठिनाइयाँ आयेंगी तब उनपर क्या प्रतिक्रिया होगी । ये मनोवैज्ञानिक क्षण स्वभावतः नापे-तौले नहीं जा सकते और इसलिए पहले से इनके सम्बन्ध में कुछ कहना असम्भव होता है । और इन्हीं पर संघर्ष का परिणाम निर्भर रहता है । इसी कारण बड़े से बड़े सेनापतियों ने अपनी सफलता के कारणों में इस अज्ञात तत्त्व को स्वीकार किया है । यदि वे क्रामवेल की भाँति धार्मिक हैं तो उन्होंने ईश्वर को सफलता का कारण बताया है, और नैपोलियन की तरह अंधविश्वासी है तो 'ग्रहों' को ।

मिस्री सभ्यता का जन्म

इसके पहले के अध्याय में हमने यह कल्पना की थी कि वातावरण गतिहीन तथ्य है, वातावरण सिद्धान्त के मानने वाले हेलेनी प्रणेताओं का भी यही विचार था । विशेषतः 'ऐतिहासिक' काल में अफ्रेशियन स्टेप तथा नील की घाटी की भौतिक स्थिति सदा एक समान रही है । अर्थात् आज भी वह वैसी है जैसी चौबीस शती पहले जब यूनानियोंने इस सिद्धान्त को बनाया, किन्तु वास्तविक बात यह है कि ऐसा नहीं है । "जब उत्तरी यूरोप हार्ज़ पर्वत तक बर्फ से ढका था और आल्प्स तथा पिरेनीज़ ग्लेशियर से ढका था, आर्कटिक प्रदेश के भारी दबाव के कारण अतलान्तिक का वर्षा-तूफान दक्षिण की ओर मुड़ गया । जो चक्रवात (साइक्लोन) मध्य यूरोप में बहता था और लेवानन होते हुए, जहाँ उसके जल का निपात नहीं होता था, मोसोपोटामिया होते हुए, अरब पार करते हुए फारस और भारत में पहुँचता था । शुष्क सहारा में उन दिनों बराबर वृष्टि होती थी । उससे और पूरब यही नहीं कि आज से अधिक पानी बरसता था, बल्कि और जाड़े में ही नहीं वर्ष भर वर्षा होती थी ।

उन दिनों उत्तरी अफ्रीका, अरब, फ़ारस और सिन्ध की घाटी में हरे-भरे घास के मैदान थे जैसा कि आज भूमध्यसागर के उत्तर में है । उस समय फ्रांस और दक्षिणी इंग्लैंड में मैमथ,

बाल वाले गैंडे और बारह सिंहे विचरते थे। उत्तरी अफ्रीका में वैसे जन्तु पाये जाते थे औ इस समय रोडेसिया में जंबेसी के किनारे पाये जाते हैं।

उत्तरी अफ्रीका और दक्षिणी एशिया के घास के मैदानों में मनुष्यों की उतनी ही घ आबादी थी जितनी यूरोप के बर्फीले स्टेप पर। यह आशा करना उचित होगा कि ऐसे अनुकू तथा स्फूर्तिप्रद वातावरण में मनुष्य अधिक उन्नति करेगा बजाय बर्फीले उत्तर के प्रदेश के।

किन्तु हिमकाल के बाद अफ्रेशियन क्षेत्र में महान् भौतिक परिवर्तन होने लगा और सूखने लगा। और दो या अधिक सभ्यताओं ने इस क्षेत्र में साथ-साथ जन्म लिया, जिस क्षे में, पहले, संसार के अन्य बसे हुए क्षेत्रों के समान पुरापाषाणिक (पैलियेलिथिक) काल का आदि समाज था। हमारे पुरातत्त्ववेत्ता कहते हैं कि अफ्रेशिया का यह सूखना एक प्रकार की चुनौ थी जिसका परिणाम इन सभ्यताओं का जन्म था। अब हम क्रान्ति के द्वार पर हैं और शीघ्र हमको ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो पशुओं को पालकर और अनाज बोकर अपना भोजन स्वयं उत्पा करेंगे। इस क्रान्ति का और उस भौतिक परिवर्तन का सम्बन्ध निश्चित है जब उत्तरी ग्लेशियर गल गये और उसके फलस्वरूप यूरोप पर आर्कटिक का उच्च दबाव कम होने लगा और अतलान्तिक का बर्फ-तूफान दक्षिणी भूमध्यसागरी प्रदेश से मध्य यूरोप की ओर मुड़ गया, जैसा इस समय है।

'इस प्रकार की घटना से पहले के घास के मैदान के रहने वालों की बुद्धि को बहुत परिश्रम करना पड़ता.....'

"जैसे-जैसे यूरोपीय हिम-नदी छोटी होती गयी और अतलान्तिक चक्रवात की पेटी उत्तर की ओर मुड़ती गयी और इसके फलस्वरूप यह प्रदेश धीरे-धीरे सूखता गया, यहाँ की शिकारी जनता के सामने तीन विकल्प थे। जिस जलवायु के वे अभ्यस्त थे उसके अनुसार अपने शिकार के साथ-साथ वे भी उत्तर या दक्षिण चले जाते, अपने पुराने निवास में ही रहते और जो कुछ शिकार सूखे को बरदाश्त करके रह जाता उसी पर सन्तोष करके दयनीय जीवन बिताते, या इसी पुराने निवास स्थान में ही रह कर वातावरण पर विजय प्राप्त करते और पशुओं को पाल तथा खेती करते।"[२]

जिन लोगों ने न तो निवास स्थान छोड़ा, न रहन-सहन का ढंग बदला, वे सूखी परिस्थि का सामना नहीं कर सके और नष्ट हो गये। जिन लोगों ने निवास नहीं छोड़ा और रहन-सहन का ढंग बदल लिया और शिकारी से गड़ेरिये हो गये वही अफ्रेशियाई स्टेप के खानाबदोश हो गये। उनके कार्य और उपलब्धियों के सम्बन्ध में इस पुस्तक के अन्य भाग में विचार किया जायेगा। जिन लोगों ने रहन-सहन नहीं बदला और निवास बदल दिया, और सूखे का सामना न करके चक्रवात की पेटी के साथ-साथ उत्तर की ओर चले गये उन्हें अनजाने नयी परिस्थि का सामना करना पड़ा। अर्थात् उन्हें उत्तर की मौसमी ठण्ड का, और जो लोग इस ठण्ड को बरदाश्त कर गये उन्होंने नये ढंग से जीवन आरम्भ किया। जिन लोगों ने यह सूखा प्रदे

---

[१] वी० जी० चाइल्ड : द मोस्ट एँशेन्ट ईस्ट—अध्याय २।

[२] वी० जी० चाइल्ड : द मोस्ट एँन्शेन्ट ईस्ट—अध्याय ३।

छोड़ा और दक्षिण के मानसूनी प्रदेश की ओर आये वे ऊष्ण-कटिबन्ध के प्रभाव में आ गये और वहाँ की सदा एक समान रहने वाले जलवायु में जीवन बिताने लगे । पाँचवें ढंग के कुछ और लोग थे जिन्होंने सूखी परिस्थिति का सामना किया, इस प्रकार सामना किया कि निवास भी बदला और रहन-सहन का ढंग भी बदला । यह दोहरा कार्य बहुत शक्तिशाली था और इसी के कारण उन आदिम समाजों से, जो लोप होने वाले अफ्रेशियाई घास के मैदानों में रहने वाले थे, मिस्री तथा सुमेरी सभ्यताओं का जन्म हुआ ।

इन सर्जनशील समाजों के रहन-सहन में पूरा परिवर्तन हो गया । खाद्य-सामग्री एकत्र करने और शिकार करने के स्थान पर वे खेतिहर हो गये । यद्यपि उनके निवास की दूरी में बहुत परिवर्तन नहीं हुए तथापि जो घास का मैदान वे छोड़ आये थे और जिस नये भौतिक वातावरण में उन्होंने नया निवास स्थान बनाया था अन्तर बहुत था । जब नील नदी की निचली घाटी के निकट का मैदान लीबियन मरुस्थल में परिर्तन हो गया और दजला और फरात की निचली घाटी के निकट का घास का मैदान रब्बुल खाली और दश्तेलूत में परिवर्तित हुआ ये साहसी अगुआ लोग—साहस से अथवा विवशता के कारण—घाटी के भीतर उन जंगली दलदलों में घुस गये जहाँ कभी मनुष्य ने पाँव नहीं रखा था और अपनी शक्ति द्वारा इन्हें उन्होंने मिस्र की और शिनार की उपजाऊ भूमि में बदल दिया । उनके पड़ोसी को, जिन्होंने दूसरा रास्ता पकड़ा जैसा ऊपर बतलाया गया है निराशा का सामना करना पड़ा क्योंकि उस पुरातन काल में जब अफ्रेशियाई स्टेप धरती पर स्वर्ग बन रहा था, नील नदी की तराई तथा मेसोपोटामिया ऐसे दलदली जंगल थे और उजाड़ थे जिनमें मनुष्य घुस नहीं सकता था । परिणाम यह निकला कि यह साहसपूर्ण कार्य ऐसा हुआ कि बहुत कम अग्रगामियों को ऐसी सफलता मिली होगी । प्रकृति के मनमानेपन पर मनुष्य के कार्यों ने विजय प्राप्त की । जहाँ जंगल और दलदल थे वे ताल, बाँध और खेत बने । जंगलों को हटाकर मिस्र और शिनार की धरती का निर्माण हुआ और मिस्री तथा सुमेरी समाजों का महान् साहसिक जीवन यहाँ से आरम्भ हुआ ।

नील की निचली घाटी जहाँ हमारे अगुआ पहुँचे आज जैसा हम उसे पाते हैं उससे बहुत भिन्न थी क्योंकि वहाँ छः हजार वर्षों के मनुष्य के कौशलपूर्ण परिश्रम का प्रभाव अंकित है । किन्तु यदि मनुष्य का कौशल न भी लगा होता और प्रकृति पर ही वह स्थान छोड़ दिया गया होता तब भी आज से बहुत भिन्न होता । अग्रगामियों के पहुँचने के हजारों वर्ष बाद तक अर्थात् प्राचीन और मध्य राज्यकाल में भी हिपोपोटमस, घड़ियाल तथा अनेक जंगली पक्षी निचली घाटी में पाये जाते थे जो आज पहले जलप्रपात के उत्तर में नहीं पाये जाते, जैसा कि उस युग के चित्रों और मूर्तियों से पता चलता है । जो बात पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में है वही वनस्पति के सम्बन्ध में भी है । यद्यपि सूखा पड़ना आरम्भ हो गया था, मिस्र में खूब पानी बरसता था और नील का डेलटा पानी से भरा हुआ दलदल था । यह सम्भव है कि डेलटा के ऊपर निचली नील उन दिनों वैसी ही थी जैसा सुडान के भूमध्य प्रदेश में ऊपरी नील का बहरुल जबल प्रदेश है और डेलटा नो झील के प्रदेश के समान था जहाँ बहरुल जबल और बहरुल गजाल नदियाँ मिलती हैं । आज जिस रूप में वह अभागा प्रदेश है उसका वर्णन इस प्रकार है——

‘बहरुल जबल के सारे मार्ग का दृश्य ‘सड’ (बहते हुए पेड़-पौधे) से भरा हुआ है और एक समान है । दो-एक जगह को छोड़कर, न कहीं तट है, न पानी के किनारे कहीं टीला है । दोनों

किनारे किलोमीटरों तक दलदल हैं जिसमें नरकुल उगे हुए हैं। फैलाव में कहीं-कहीं थोड़ी-थो दूर पर लागून हैं। जब नदी में पानी की ऊँचाई कम से कम होती है लागून में पानी की कु कुछ सेण्टी मीटर ऊँची होती है और जब नदी के पानी में आधा मीटर ऊँची बाढ़ आती है ला का पानी बहुत दूर तक फैल जाता है। इन दलदलों में नरकुल और घास बहुत घने रूप में उ रहती हैं और चारों ओर फैली रहती हैं।

'सारे प्रदेश में मुख्यत: बोर और नो झील की बीच मानव जीवन का कोई चिह्न दिखाई पड़ता। सारा प्रदेश इतना उजाड़ है कि भाषा में उनके वर्णन करने की शक्ति नहीं है बिना देखे वहाँ की स्थिति नहीं समझ में आ सकती।'[१]

यह इसलिए निर्जन है कि आज जो लोग उसकी सीमा पर रहते हैं उनके सामने वह परिस्थि नहीं है जो मिस्री सभ्यता के जनकों के सामने थी जब वे छ: हजार वर्ष पहले निचली नील नदी घाटी के किनारे बैठे हुए थे। उनके सामने यह समस्या थी कि वे अहितकर सड का साम करें अथवा अपने प्राचीन स्थान में रहना स्वीकार करें जो स्वर्ग समान भूमि से निष्ठुर मरुभूमि परिवर्तित हो रही थी। यदि विद्वानों का निष्कर्ष ठीक है तो आज जो लोग सुडान के सड वा प्रदेश के किनारे रहते हैं वे उस समय वहाँ रहते थे जिसे आज लीबिया का रेगिस्तान कहते हैं। ये लोग मिस्री सभ्यता के संस्थापकों के पास-पास उस समय रहते थे जब इन्होंने सूखेपन का सामना करने का महत्त्वपूर्ण रूप से निश्चय किया। ऐसा जान पड़ता है कि उस समय आधुनिक 'डिनका' और 'शिल्लुक' लोगों के पूर्वज अपने साहसी पड़ोसियों से अलग हो गये और सरल परिस्थिति का सामना करते हुए दक्षिण की ओर ऐसे प्रदेश में चले गये जहाँ अपने रहन-सहन को बिना बदले हुए ऐसे भौतिक वातावरण में रहने लगे जैसा उनका पहले का अभ्यास था। वे सुडान के ऊष्ण-कटिबन्ध में बस गये जहाँ विषुवत् रेखा वाली बरसात होती रही। आज तक उनके वंशज रहते हैं जो अपने पूर्वजों के समान ही जीवन व्यतीत करते हैं। इस नये निवास में आलसी और सन्तोषी लोग रहते हैं और ऐसी ही जगह रहने की उनकी इच्छा थी।

'ऊपरी नील के किनारे आज वे लोग रहते हैं जो पुराने मिस्रियों से चेहरे-मोहरे में, डील डौल में, खोपड़ी की बनावट में, भाषा और भेष में मिलते-जुलते हैं। इन पर या तो पानी बरसा वाले जादूगर या ईश्वरीय राजे शासन करते हैं। कुछ दिनों पहले इन राजाओं की धार्मिक बलि होती थी। इन उप-कुलों (ट्राइब) का संगठन टोटेम कुलों के आधार पर होता है। ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरी नील के पास रहने वाले इन उप-कुलों का सामाजिक विकास उस सम रुक गया जब मिस्री लोग वहाँ से चले गये और उनका इतिहास नहीं आरम्भ हुआ था। वहाँ हमें एक सजीव अजायब घर मिलता है जिसमें हमें प्रागैतिहासिक जातियों के उदाहरण मिलते हैं।'[२]

नील बेसिन के एक भाग की प्राचीन परिस्थिति और दूसरे भाग की आज की परिस्थि के समानान्तर होने के कारण कुछ विचार करना आवश्यक है। मान लीजिए, नील बेसिन के उन भागों के निवासियों के सम्मुख, जहाँ आज विषुवत् रेखा की वर्षा नहीं होती, सूखा पड़ने का

---

[१] सर विलियम गारस्टिन : रिपोर्ट अपान द बेसिन आव द अपर नाइल, १९०४, पृ ९८–९।

[२] वी० जी० चाइल्ड : द मोस्ट एन्शेन्ट ईस्ट, पृ० १०–११।

मस्या न उत्पन्न होती । तो क्या उस अवस्था में डेलटा और नील की निचली घाटी अपनी वाभाविक स्थिति में रह जाती ? क्या मिस्री सभ्यता का उदय न हुआ होता ? क्या ये लोग नचली नदी की घाटी के किनारे उसी प्रकार बैठे रहते जैसे शिल्लुक और डिनका बहरुल जबल के किनारे आज भी बैठे हुए हैं ? दूसरे ढंग से भी विचार किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध भविष्य से है, भूत से नहीं । हमें याद रखना चाहिए कि विश्व के, या इस धरती के या जीवोत्पत्ति के या मनुष्य की उत्पत्ति के भी समय-मान (टाइम-स्केल) में छः हजार वर्ष का समय नगण्य है । मान लीजिए कि जिस प्रकार के संघर्ष का सामना निचली नील की घाटी के निवासियों को अभी कल ही हिमकाल की समाप्ति पर करना पड़ा उसी प्रकार के संघर्ष का सामना ऊपरी नील के बेसिन के निवासियों को आगामी किसी दिन करना पड़े तो क्या उनमें गतिमान् कार्य करने की क्षमता न होगी जिसका परिणाम वैसा ही सर्जनशील न होगा ?

हमें यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि शिल्लुक और डिनका के सम्मुख यह काल्पनिक संघर्ष वैसा ही होगा जैसा मिस्री सभ्यता के जनकों पर हुआ था । मान लीजिए कि यह संघर्ष अथवा चुनौती भौतिक न होकर मनुष्य की ओर होती । जलवायु के परिवर्तन से न होकर विदेशी सभ्यता के आक्रमण से होती । क्या हमारी आँखों के सामने इस प्रकार का संघर्ष नहीं हो रहा है ? जब अफ्रीका के ऊष्ण-कटिबन्ध के निवासियों पर पश्चिमी सभ्यता का आक्रमण हो रहा है । यह मानवीय संस्था है जो हमारी पीढ़ी में इस पृथ्वी पर की सभी वर्तमान सभ्यताओं के प्रति और सभी वर्तमान आदिम समाज के प्रति मेफिसटोफिलीस की पौराणिक भूमिका अदा कर रहा है । यह चुनौती इतनी नयी है कि हम यह भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि जिन समाजों पर आक्रमण हुआ है उनकी प्रतिक्रिया क्या होगी । हम यही कह सकते हैं कि यदि आज की पीढ़ी इस संघर्ष का सामना करने में असफल रही तो यह आवश्यक नहीं है कि उनकी सन्तति भी आगे किसी संघर्ष का सामना करने में असफल हो ।

सुमेरी सभ्यता का जन्म

इस प्रश्न पर हम संक्षेप में विचार करेंगे क्योंकि यहाँ भी उसी प्रकार का संघर्ष हुआ था जिस प्रकार का संघर्ष मिस्री सभ्यता के जनकों के सम्मुख उपस्थित हुआ था और उसका सामना भी उसी प्रकार किया गया था । उसी प्रकार अफ्रेशिया में सूखा पड़ने के कारण सुमेरी सभ्यता के जनकों को दजला और फ़रात की निचली घाटी के जंगली दलदल से जूझना पड़ा और उसे शिनार की भूमि में बदलना पड़ा । दोनों की उत्पत्ति का भौतिक स्वरूप प्रायः समान है । दोनों से जो सभ्यताएँ उत्पन्न हुईं उनकी आध्यात्मिक विशेषताओं में, तथा उनके धर्म, उनकी कला और उनके सामाजिक जीवन में वैसी समानता नहीं है । हमारे अध्ययन के लिए इससे यह संकेत मिलता है कि हम पहले से ही यह नहीं मान सकते कि यदि कारण एक प्रकार के हैं तो कार्य भी एक प्रकार के होंगे ।

सुमेरी सभ्यता के जनकों को जिस विपत्ति का सामना करना पड़ा वह उनके आख्यानों में वर्णित है । मारडूक देवता का टायमट नाग का मार डालना और उसके मृत शरीर से संसार की रचना करना इस बात का प्रतीक है कि प्राचीन उजाड़ खण्ड पर विजय प्राप्त की गयी और नहरों द्वारा पानी की निकासी करके धरती को सुखाकर शिनार की भूमि का सर्जन किया गया । बाढ़ की कथा का यह अभिप्राय है कि मनुष्य के साहस ने प्रकृति पर जो नियन्त्रण किया था उसका

प्रकृति ने विरोध किया। बाइबिल के विवरण में, जो यहूदियों से साहित्यिक उत्तराधिकार मिला है, जिसमें वे बैबिलोन की बाढ़ के कारण वहाँ से निकल भागे थे, बाढ़ (द फ्लड) का ही घर-घर में पश्चिमी समाज हो गया है। आज के पुरातत्त्ववेत्ताओं का यह काम है कि आख्यान के मूल रूप की खोज करें और बाढ़ द्वारा लायी हुई मिट्टी की मोटी तह में, जो प्राग् तम स्तर और उस नये स्तर के बीच जो मनुष्य के सुमेरी सभ्यता के कुछ प्रमुख ऐतिहा स्थानों पर निवास करने के कारण पड़ गयी है, किसी असाधारण उग्र और विशेष बाढ़ की खोज

नील के बेसिन के समान दजला और फरात का बेसिन भी हमारे अध्ययन के लिए प्रकार का अजायब घर है जहाँ हम दोनों बातों का अध्ययन कर सकते हैं। जंगली अवस् निर्जीव प्रकृति का वह साधारण और स्वाभाविक रूप जिसे मनुष्य ने परिवर्तित किया है और जीवन भी जिस रूप में पहले सुमेरी अग्रगामी जंगल में व्यतीत करते थे। किन्तु मेसोपोटा में इस प्रकार का अजायब घर हमें नहीं मिलेगा जिस प्रकार नील नदी के बेसिन की उस जाने पर मिलता है जिधर से नदी निकलती है। यह फारस की खाड़ी के नये डेल्टा पर है जो दोनों नदियों के संगम से सुमेरी सभ्यता के जन्म से पहले ही नहीं बना था, बल्कि उन विनाश के बाद और उनके उत्तराधिकारी बैबिलोनी सभ्यता के विनाश के बाद भी बना। दलदल जो विगत दो-तीन हजार वर्षों में धीरे-धीरे बना है वह आज तक अपनी प्रारम्भिक अवस् में है क्योंकि किसी मानव समाज में यह शक्ति नहीं थी कि उनपर विजय प्राप्त कर सके यहाँ जो लोग इस दलदल में रहते हैं वह इस वातावरण के वश में ही होकर रहने लगे हैं जैसा उन पुकारे जाने वाले नाम (निक नेम) 'द वेब फीट' से मालूम होता है। यह नाम अंग्रेज सिपाहि ने १९१४–१८ के युद्ध में रखा था जब उनसे सामना हुआ था। किन्तु आज तक वे उस कार्य करने में सफल नहीं हुए जिसे ऐसे ही प्रदेश में पाँच-छः हजार वर्ष पहले सुमेरी सभ्यता के जन ने किया था अर्थात् दलदलों को नहरों और खेतों के जाल में परिवर्तित कर दिया था।

चीनी सभ्यता की उत्पत्ति

यदि हम पीली नदी (हांगहो) की निचली घाटी में चीनी सभ्यता की उत्पत्ति पर विचा करें तो यहाँ हम देखेंगे कि दजला और फरात और नील नदियों ने जो कठिन भौतिक परिस्थि उपस्थित की थी उससे कहीं अधिक कठोर परिस्थिति का सामना मनुष्य को यहाँ करना पड़ा। इस उजाड़ प्रदेश में जिसे मनुष्य ने किसी समय सभ्यता का केन्द्र बनाया दलदल, झाड़-झंखाड़ और बाढ़ की कठिनाई तो थी ही उसके ऊपर ताप की कठिनाई थी जो गर्मी में बहुत अधि और जाड़े में बहुत कम हो जाता था। चीनी सभ्यता के जनक उन लोगों की प्रजातियों से भि नहीं थे जो दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम के उस महान् क्षेत्र में रहती थीं जो पीली नदी ब्रह्मपुत्र तक और तिब्बती पठार से चीनी सागर तक फैला हुआ है। यदि इस विस्तृत प्रजाति कुछ लोगों ने एक सभ्यता का निर्माण किया और शेष सब सांस्कृतिक दृष्टि से निष्फल रहे इसका कारण यह हो सकता है कि जो सर्जनात्मक शक्ति सबमें छिपी रहती है वह केवल कु ही लोगों में जाग्रत हुई क्योंकि उन लोगों के सामने चुनौती आयी और शेष लोगों के सामने संघर्ष नहीं उपस्थित हुआ। उस संघर्ष का ठीक-ठीक स्वरूप इस समय जानना सम्भव नहीं क्योंकि इस समय हमारे पास उतना ज्ञान नहीं है। निश्चित रूप से हम इतना ही कह स हैं कि चीनी सभ्यता के जनकों को पीली नदी के पास के उनके निवास स्थान में वह काल्पनि

किन्तु भ्रान्तिपूर्ण सरल वातावरण नहीं था जो उनके पड़ोसियों के सामने था । इन्हीं से सम्बन्धित दूर-दक्षिण के लोगों को, अर्थात् यांगत्सी घाटी में, जहाँ यह सभ्यता उत्पन्न नहीं हुई, जीवन के लिए कठिन संघर्ष नहीं करना पड़ा ।

माया तथा एन्डियाई सभ्यताओं की उत्पत्ति

माया सभ्यता के सामने जो चुनौती थी वह ऊष्ण-कटिबन्ध के जंगलों की प्रचुरता थी । ‘माया संस्कृति इसी कारण सम्भव हो सकी कि उर्वर निचली जमीनों पर विजय प्राप्त कर इन लोगों ने खेती आरम्भ की । प्रकृति की बहुलता यहाँ मनुष्य के आयोजित चेष्टा से ही नियंत्रित हो सकती है । उच्च भूमि पर धरती की तैयारी साधारणतया सरल है क्योंकि वहाँ प्राकृतिक वनस्पति कम होती है और सिंचाई से निन्यत्रण होता है । निचली जमीन पर बड़े-बड़े पेड़ों को गिराना पड़ता है, झाड़ियों को जो जल्दी-जल्दी उग आती हैं काटते रहना पड़ता है, किन्तु जब प्रकृति पर विजय प्राप्त हो जाती है तब उसका बदला किसानों को कई गुना अधिक मिलता है । एक बात यह भी है कि जंगलों के कट जाने से जीवन की परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल हो जाती हैं जो घने जंगलों में सम्भव नहीं है ।’[१]

इस संघर्ष के परिणामस्वरूप पनामा डमरूमध्य के उत्तर माया सभ्यता का जन्म हुआ, किन्तु इस डमरूमध्य के दक्षिण की ओर इस प्रकार की कोई बात नहीं हुई । दक्षिण अमेरिका में जिन सभ्यताओं का जन्म हुआ उनके सामने दो भिन्न चुनौतियाँ थीं । एक एण्डियाई पठार से और दूसरी पड़ोस के पैसिफिक तट से । पठार पर एण्डियाई सभ्यता के जनकों के सामने कठोर जलवायु और अनुपजाऊ धरती थी । किनारे पर गर्म और सूखा था, विषुवत् प्रदेश का वर्षा विहीन समुद्र-स्तर (सी-लेवल) का रेगिस्तान था, जहाँ मनुष्य के प्रयत्न से ही कुछ उग सकता था । समुद्र तट की सभ्यता के अगुओं ने, मरुभूमि में पश्चिमी पठार से जो नदियाँ आती थीं, उनका जल एकत्र किया और सिंचाई द्वारा वहाँ खेती आरम्भ की । पठार के अगुओं ने पहाड़ी ढालों पर मिट्टी डाल-डाल सीढ़ीनुमा खेत बनाये और हर जगह बड़े परिश्रम से दीवार बनाकर उनकी रक्षा में लगे रहे ।

मिनोई सभ्यता की उत्पत्ति

हमने छः असम्बन्धित सभ्यताओं से पाँच के सम्बन्ध में विवरण उपस्थित किया है कि किस प्रकार भौतिक वातावरण की चुनौती का सामना करके उनका जन्म हुआ । इस सर्वेक्षण में हमने उस संघर्ष का विवरण नहीं दिया जो दूसरे प्रकार की भौतिक चुनौती थी । यह सागर की चुनौती थी ।

‘मिनोस के सागर राज्य’ के अगुआ कहाँ से आये ? यूरोप से, एशिया से या अफ्रीका से ? नकशा देखने से जान पड़ेगा कि यह यूरोप या एशिया से आये होंगे क्योंकि यह टापू उत्तरी अफ्रीका की तुलना में दोनों महाद्वीपों की मूल-भूमि से अधिक निकट है । क्योंकि यह टापू डूबे हुए पहाड़ों की चोटियाँ हैं जो यदि प्रागैतिहासिक काल में धँस न गयी होतीं और जल की बाढ़ न आ गयी होती, तो अनातोलिया से यूनान तक लगातार फैली होतीं । पुरातत्त्व वेत्ताओं को उल्टा, किन्तु

---

[१] एच० जे० स्पिन्टेन्ड : एन्शेन्ट सिविलिजेशन्स आव मेक्सिको एण्ड सेन्ट्रल अमेरिका, पृ० ६५ ।

निश्चित प्रमाण यह मिलता है कि मनुष्य के प्राचीनतम निवास का चिह्न क्रीट में है। यह ट यूनान और अनातोलिया दोनों से दूर है यद्यपि अफ्रीका की तुलना में दोनों से निकट है। मा जाति-विज्ञान (एथनालोजी) उस विचार का समर्थन करता है जिसका पुरातत्त्व संकेत कर है। क्योंकि यह प्रायः सिद्ध है कि एजियन सागर के सामने के महाद्वीपों के निवासियों के र वाले विशेष शारीरिक रचना के लोग थे। अनातोलिया और यूनान के प्राचीनतम निवा चौड़े माथे वाले थे, अफ्रेशियाई घास के मैदान के प्राचीनतम निवासी लम्बे सिर वाले थे। क्री के प्राचीनतम निवासियों की शारीरिक रचना के विश्लेषण से पता लगता है कि इस द्वीप के निवा मुख्यतः या सब लम्बे सिर वाले थे। और चौड़े माथे वाले, यद्यपि वाद में इनकी प्रधानता हो गयी क्रीट के रहने वालों में नहीं थे, या यदि थे तो बहुत कम संख्या में। मानव जाति-विज्ञान के प्रमा से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि एजियाई द्वीप समूह पर पाँव रखनें वाला पहला मनुष् अफ्रेशियाई घास के मैदान में सूखा पड़ने से वहाँ का प्रवासी रहा होगा।

सूखा पड़ने के कारण जिन पाँच समाजों ने यह चुनौती स्वीकार की, उसका वर्णन हम क चुके हैं। अब छठे का वर्णन हम करेंगे। इनमें ये हैं—वे जो अपने निवास में ही रह गये औ नष्ट हो गये, जो अपने-अपने निवास पर ही रह गये और खानाबदोश हो गये, जो दक्षिण की ओ चले गये और जिन्होंने अपने पुराने रहन-सहन को बनाये रखा, जैसे डिनका और शिल्लुक, ज उत्तर की ओर गये और यूरोपीय महाद्वीप पर बस गये और नव-पाषाण युग के खेतिहर हो गये जो जंगली दलदलों में पैठे और मिस्री और सुमेरी सभ्यताओं का जिन्होंने निर्माण किया। इस साथ ही एक और चुनौती को हम जोड़ना चाहते हैं—जो लोग उत्तर गये, किन्तु उस समय व अथवा आज के डमरूमध्यों की सरल राह उन्होंने नहीं पकड़ी। उन्होंने भूमध्यसागर के भयानक सागर का सामना किया, उसे पार किया और मिनोई सभ्यता को जन्म दिया।

यदि यह विश्लेषण ठीक है तो यह इस सचाई का नया उदाहरण है कि सभ्यताओं की उत्पत्ति में चुनौती और उसका सामना ही मुख्य तथ्य है, निकटता नहीं जैसे अन्तिम उदाहरण। यदि निकटता ही द्वीप-समूह पर बस जाने के लिए निश्चयात्मक बात होती तो निकटतम महाद्वीपों के निवासी अर्थात् एशिया और यूरोप के रहने वाले सबसे पहले एशियाई द्वीपों में बस गये होते। इनमें से बहुतेरे टापू इन महाद्वीपों के बहुत ही समीप हैं, जब क्रीट अफ्रीका के निकट से निक स्थान से दो सौ मील दूर है। यूरोप और एशिया से जो सबसे निकट द्वीप है, जहाँ कि जा पड़ता है लोग क्रीट के बहुत दिनों बाद तक नहीं बसे थे, उनमें लम्बे सिर वाले और चौड़े माथ वाले साथ ही बस गये। इससे यह संकेत मिलता है कि अफ्रेशियनों की मिनोई सभ्यता की स्थापन के बाद दूसरे उनका स्थान लेने आये। इन लोगों ने, चाहे पहले अग्रगामियों की नकल की हो या चुनौती का दबाव पड़ा हो, जिसको हम ठीक-ठीक बता नहीं सकते, उसी प्रकार सामना किया जैसे आरम्भ में क्रीट पर बसने वाले अफ्रेशियनों ने अधिक भीषण परिस्थिति में किया थी।

सम्बद्ध सभ्यताओं की उत्पत्ति

जब हम असम्बद्ध सभ्यताओं से जो आदिम समाज की इन अवस्था से विकसित हुई बाद की सभ्यताओं पर विचार करते हैं, जो किसी न किसी रूप में 'सभ्य' पूर्वजों से सम्बन्धित थी, तब इनके बारे में स्पष्ट जान पड़ता है कि इन्हें स्फूर्ति प्रदान करने के लिए थोड़ी-बहुत भौतिक चुनौती रही हो, किन्तु इनकी मुख्य चुनौती मानवीय थी जो उन समाजों द्वारा उपस्थित हुई जिनसे थे

सम्बद्ध थे । यह चुनौती, सम्बन्ध में ही विद्यमान रहती है, जो विभेद से उत्पन्न होती है और अलगाव से अन्त होती है । यह विभेद पूर्ववर्ती सभ्यता के समाज के अन्दर ही उस समय उत्पन्न होता है, जब उस सभ्यता की सर्जनात्मक शक्ति कम होने लगती है—जो शक्ति में अपने विकास के समय समाज के अन्दर अथवा उसके बाहर लोगों के हृदयों में अपने आप समाज के प्रति निष्ठा जाग्रत करती है । जब ऐसा होता है ह्रासोन्मुख सभ्यता के पतन का दण्ड यह होता है कि वह बिखर कर शक्तिशाली अल्पसंख्यक हो जाती है । उसके शासन में नृशंसता बढ़ती जाती है, किन्तु उसमें नेतृत्व की शक्ति नहीं रह जाती और एक सर्वहारा वर्ग (बाहर और भीतर) बन जाता है जो अनुभव करने लगता है कि हममें भी आत्मा है और वह इस आत्मा को सजीव रखने का निश्चय करता है । इसी प्रकार की चुनौती इस रोगी समाज को मिलती है । शक्तिशाली अल्पसंख्यक दबाना चाहते हैं जिसके कारण सर्वहारा में अलग होने की भावना उत्पन्न होती है । दोनों भावनाओं के कारण संघर्ष चलता रहता है । पतनोन्मुख सभ्यता विनाश की ओर चलती है और जब वह मृतप्राय हो जाती है, तब सर्वहारा वर्ग स्वतन्त्र हो जाता है और उसके लिए जो पहले कभी जीवनी शक्ति देने वाला घर था अब कारागार बन जाता है और अन्त में विनाश का नगर हो जाता है । सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसंख्यक का यह संघर्ष जिस प्रकार आरम्भ से अन्त तक चलता है उसमें हमें उन नाटकीय आत्मिक संघर्षों का उदाहरण मिलता है जिसमें विश्व के जीवन के सर्जन का चक्र चला करता है—पतझड़ की निष्क्रियता से शिशिर की पीड़ा और उसके पश्चात् वसंत का उत्साह । सर्वहारा का अलगाव गतिशील क्रिया है । यह चुनौती का सामना है जिसके द्वारा यिन का यांग में परिवर्तन होता है और इस गतिमान् अलगाव से सम्बन्धित सभ्यता का जन्म होता है ।

इस सम्बन्धित सभ्यता के आरम्भ में क्या कोई भौतिक संघर्ष भी हमें मिल सकता है ? दूसरे अध्याय में हमने देखा कि सम्बद्ध सभ्यताओं का सम्बन्ध अपने पूर्वजों से भौगोलिक स्थिति के विचार से भिन्न-भिन्न अंशों में रहा है । एक ओर बैबिलोनी सभ्यता अपने पूर्वज सुमेरी समाज के स्थान पर ही विकसित हुई । यहाँ नयी सभ्यता की उत्पत्ति में भौतिक संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा होगा । हाँ, यह सम्भव है कि दोनों सभ्यताओं के बीच के काल में उनका जन्मस्थान प्राचीन प्राकृतिक अवस्था में परिवर्तित हो गया हो और उनका सामना करने के लिए बाद की सभ्यता के जनकों को वही कार्य करना पड़ रहा हो जो उनके पूर्व की सभ्यता के जनकों को करना पड़ा था ।

जब सम्बद्ध सभ्यता ने नवजीवन आरम्भ किया होगा और पहले की सभ्यता के क्षेत्र के पूर्णतः या अंशतः बाहर कार्य आरम्भ किया होगा तब अपने नये वातावरण का सामना उन्हें करना पड़ा होगा और उस पर विजय उन लोगों ने प्राप्त की होगी । हमारी पश्चिमी सभ्यता को अपनी उत्पत्ति के समय आल्प्स के पार (ट्रांस-आल्पाइन) जंगलों और वर्षा का सामना करना पड़ा होगा यद्यपि उसके पूर्वज हेलेनी सभ्यता को ऐसा नहीं करना पड़ा होगा । भारतीय (इण्डिक) सभ्यता की उत्पत्ति के समय इन लोगों को गंगा की घाटी के ऊष्ण प्रदेशीय जंगलों तथा वर्षा का सामना करना पड़ा था, किन्तु उनके पहले की सुमेरी सभ्यता के पूर्वजों को सिन्धु की घाटी में तथा

उस प्रदेश में ऐसा नहीं करना पड़ा।[१] हिताइत सभ्यता की उत्पत्ति के समय अनातोलिया के पठार से संघर्ष करना पड़ा, किन्तु उसके पूर्वज सुमेरी सभ्यता को ऐसा नहीं करना पड़ा। हेलेनी सभ्यता को अपनी उत्पत्ति के समय समुद्र से संघर्ष करना पड़ा, जो ठीक वैसा ही था जो उसके पूर्वज मिनोई सभ्यता को करना पड़ा। यह संघर्ष बाहरी सर्वहारा के लिए बिलकुल नया था क्योंकि मिनोई सागर राज्य की यूरोपीय स्थल सीमा के बाहर उन्हें सामना करना पड़ा। ये महाद्वीपी बर्बर, जो एकियाई तथा उसी के समान और जातियों के समान थे जब मिनोई जनरेला के युग के बाद सागर पर विजय प्राप्त करने के लिए आये, तब उनके सामने वही कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं जो मिनोई सभ्यता के नेताओं के सामने उनके काल में हुई थीं।

अमेरिका में यूकेटी सभ्यता को अपनी उत्पत्ति के समय जल-विहीन, वृक्षहीन, अनुपजाऊ, चूने से मिली धरती का यूकेटी प्रायद्वीप से संघर्ष करना पड़ा और मेक्सिकी सभ्यता को आरम्भ में मेक्सिकी पठार से संघर्ष करना पड़ा, किन्तु इनके पूर्वज माया सभ्यता को इन दोनों में से किसी से संघर्ष नहीं करना पड़ा।

अब रह जाती है बात हिन्दू, सुदूर-पूर्व, परम्परावादी ईसाई, अरबी और ईरानी सभ्यताओं की। ऐसा जान पड़ता है कि इनको किसी भौतिक संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा। क्योंकि इनके निवास स्थान यद्यपि बैबिलोनी सभ्यता की भाँति अपनी पूर्व सभ्यताओं के निवास स्थानों के समान नहीं थे, फिर भी उन पर इन सभ्यताओं ने अथवा दूसरी सभ्यताओं ने विजय प्राप्त कर ली थी। हमने सकारण परम्परावादी ईसाई सभ्यता तथा सुदूर-पूर्वी सभ्यता को विभाजित किया था। रूस वाली परम्परावादी ईसाई सभ्यता की उपशाखा को जितने कठोर जंगलों, वर्षा और ठंड से सामना करना पड़ा उतना पश्चिमी सभ्यता को नहीं और कोरिया और जापान में सुदूर-पूर्वी उपशाखा को समुद्र से जो संघर्ष करना पड़ा वह उस संघर्ष से भिन्न था जो चीनी सभ्यता के नेताओं को करना पड़ा।

इस प्रकार हमने स्पष्ट किया है कि सम्बद्ध सभ्यताओं को निश्चय ही उस मानवी संघर्ष का सामना करना पड़ा जो उनकी पूर्व सभ्यता के विघटन में निहित था, जिस सभ्यता से उनकी उत्पत्ति हुई है, किन्तु सबमें नहीं। कुछ अवस्थाओं में उन्हें उसी प्रकार के भौतिक वातावरण से भी संघर्ष करना पड़ा जिस प्रकार असंबद्ध संस्थाओं को करना पड़ा। इस समीक्षा को पूरा करने के लिए हमें यह भी जानना चाहिए कि क्या असम्बद्ध सभ्याताओं को भौतिक संघर्ष के अतिरिक्त मानवी संघर्ष का भी सामना करना पड़ा, जब वे आदिम समाजों से अलग हुए। इस पर हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐतिहासिक प्रमाण हमें नहीं मिलते। यह सम्भव है कि हमारी छः असम्बद्ध सभ्यताओं को प्रागैतिहासिक काल में जहाँ उनकी उत्पत्ति छिपी हुई है, उसी प्रकार मानवी संघर्षों का सामना करना पड़ा हो जिस प्रकार सम्बद्ध समाजों के पूर्वजों को अपने शक्तिशाली अल्पसंख्यकों की नृशंसता से। किन्तु इस विषय पर अधिक कहना शून्य में कल्पना करना होगा।

[१] हमने श्री ट्वायनबी के उस विवाद का वर्णन यहाँ नहीं दिया जो पुस्तक के पहले अंश में उन्होंने किया है कि सिन्धु घाटी की संस्कृति अलग थी अथवा सुमेरी सभ्यता का ही एक अंश। उन्होंने इसका निश्चय नहीं किया, किन्तु पुस्तक के दूसरे अध्याय में उन्होंने कहा है कि सिन्धु घाटी की संस्कृति सुमेरी समाज का अंश थी। —सम्पादक।

६. विपत्ति के गुण[1]

एक कठोर परीक्षा

हमने इस प्रचलित धारणा को अस्वीकार कर दिया है कि सभ्यताओं का उदय उस समय होता है जब ऐसा वातावरण होता है जहाँ जीवन के साधन सरल होते हैं और इसके उल्टे तर्कों को स्वीकार किया है। प्रचलित धारणा इस कारण पैदा हो गयी कि इस युग का दर्शक जो मिस्री सभ्यता का निरीक्षण करेगा—और इस दृष्टि से प्राचीन यूनानी भी हमारी ही भाँति 'आधुनिक' थे—वह वहाँ की धरती को उस रूप में देखेगा जैसा मनुष्य ने उसे बना सँवार रखा है। वह समझता है जब सभ्यता के जनकों ने कार्य आरम्भ किया तब यह धरती ऐसी ही थी। हमने यह बताने की चेष्टा की है कि निचली नील की घाटी किस रूप में थी जब नेताओं ने वहाँ विकास का कार्य आरम्भ किया। इसके उदाहरण के लिए वह चित्र भी उपस्थित किया जिस रूप में आज भी ऊपरी नील की घाटी है। भौगोलिक परिस्थिति के अन्तर का यह चित्र शायद विश्वासप्रद न लगा हो। इसलिए इस अध्याय में हम उदाहरण देकर निश्चित रूप में प्रमाणित करेंगे कि कुछ सभ्यताएँ विकसित होकर उसी क्षेत्र में फिर नष्ट हो गयीं और मिस्र के विपरीत वे आदिम अवस्था को लौट गयीं।

मध्य अमेरिका

एक उदाहरण माया सभ्यता के जन्म की घटती है। यहाँ हमें विशाल और शानदार तथा अलंकृत सार्वजनिक भवनों के खण्डहर मिलते हैं जो इस समय ऊष्ण प्रदेशीय जंगलों में मानव बस्तियों से बहुत दूर हैं। मानो अजगर की भाँति जंगल इन्हें निगल गया है और अब धीरे-धीरे उन्हें चबा रहा है और इसकी तन्तुएँ (टेण्ड्रिल) सुन्दर गढ़े हुए और जुड़े हुए पत्थरों के बीच पैठ कर उन्हें उघाड़ रही हैं। आज जो रूप इस प्रदेश का है और माया सभ्यता के समय जो रूप रहा होगा—दोनों में महान् अन्तर है। इतना महान् कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक समय रहा होगा जब ये विशाल सार्वजनिक भवन बड़े और बसे हुए नगरों के बीच रहे होंगे और ये नगर बड़े-बड़े उपजाऊ क्षेत्रों के बीच रहे होंगे। इन जंगलों ने पुनः फैल कर पहले खेतों को उदरस्थ किया और अन्त में प्रासादों और नगरों को वे खा गये। यह मानव उपलब्धियों की नश्वरता का कितना करुणापूर्ण उदाहरण है! फिर भी कोपन, या टिकल या पैलेन्क की वर्तमान स्थिति से सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा यही नहीं मिलती। ये ध्वंसावशेष जोरदार शब्दों में कह रहे हैं कि माया सभ्यता के जनकों को अपनी भौतिक परिस्थिति से अपने समय में कितना संघर्ष करना पड़ा होगा। ऊष्ण कटिबन्ध की प्राकृतिक शक्ति ने जिस प्रकार बदला लिया और जिसमें उसका भयावह रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है, वही यह भी बताती है कि वे लोग कितने साहसी और शक्ति-

---

[1] ट्वायनबी ने इस अध्याय का नाम यूनानी भाषा में रखा जिसका अर्थ होता है—'जो सुन्दर है उसकी प्राप्ति कठिन है' या 'उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिए कठिन परिश्रम चाहिए,' —सम्पादक।

शाली रहे होंगे जिन्होंने, इस शक्ति से संघर्ष किया और चाहे थोड़े ही समय के लिए हो, उस प विजय प्राप्त की ।

लंका (सीलोन)

इसी प्रकार का अद्भुत और महान् कार्य वह भी था जो लंका के सूखे मैदानों को खेती के अनुरूप बनाने के लिए किया गया था । उसकी स्मृति आज भी टूटे हुए बाँधों और वृक्षों से से भर गये तालाबों के फर्शों में सजीव है । इन्हें पहाड़ी प्रदेश के जल वाले पार्श्व में किसी समय उन सिंहालियों ने बनाया था जिन्होंने भारतीय हीनयान दर्शन को स्वीकार कर लिया था ।

“ऐसे बड़े-बड़े ताल किस प्रकार बने इसे जानने के लिए लंका के इतिहास की जानकारी आवश्यक है । इस प्रणाली के निर्माण के अन्दर जो योजना है वह सरल, किन्तु महान् है । इन ताल बनाने वाले राजाओं ने सोचा कि पहाड़ के इस ओर जो विपुल पानी बरसे वह मनुष्य को अपनी भेंट दिये विना समुद्र में न जाय ।

“लंका के दक्षिणी भाग के बीच विस्तृत पहाड़ी क्षेत्र है, किन्तु पूरब और उत्तर में हजारों वर्गमील सूखा मैदान है जिसमें आजकल बहुत कम आवादी है । मानसून के वेग के समय जब दिन प्रतिदिन बादलों की प्रवल सेना पहाड़ों पर आक्रमण करती है, प्रकृति ने एक रेखा बना दी है जिसे वर्षा पार नहीं कर पाती । कुछ स्थान तो ऐसे हैं जहाँ सूखे और नम प्रदेशों के बीच इतना कम अन्तर है कि एक ही मील के पार जान पड़ता है कि किसी दूसरे देश में आ गये हैं । यह रेखा सागर के एक तट से दूसरे तट तक चली गयी है । यह रेखा अचल है और मनुष्य के कार्यों का जैसे जंगल काटना—इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।”[1]

किन्तु लंका में भारतीय सभ्यता के प्रचारकों ने एक समय ऐसी असाधारण शक्ति अर्जित की कि मानसून से प्रताड़ित पहाड़ियों को विवश किया कि जो मैदान सूखे और उजाड़ थे वे उनके द्वारा जीवन और संपत्ति के स्रोत बनें ।

“पहाड़ी नदियों के पानी की निकासी की गयी और उनका जल नीचे बड़े-बड़े तालों में लाया गया । कुछ ताल चार हजार एकड़ के थे, उनमें से फिर नालियों द्वारा पहाड़ियों से दूर दूसरे बड़े तालों में पानी लाया गया और उनमें से और दूर तालों में । प्रत्येक बड़े ताल के नीचे धरातल पर और बड़ी-बड़ी नालियों में सैकड़ों छोटी नालियाँ और छोटे ताल थे । प्रत्येक छोटा ताल एक गाँव का केन्द्र था । और इस प्रकार सभी जगह पहाड़ों से पानी आता था । धीरे-धीरे प्राचीन सिंहालियों ने सारे मैदान पर विजय प्राप्त कर ली और आज वही मैदान निर्जन हैं ।”[2]

इन प्राकृतिक ऊसरों को मानव सभ्यता का स्थल बनाने में कितना कठोर परिश्रम करना पड़ा होगा, लंका में दो प्रमुख भू-दृश्यों से आज भी जान पड़ता है । जो ऊजाड़ धरती एक समय सींच कर उपजाऊ बस्ती बनायी गयी थी वह फिर उजाड़ हो गयी, और आधे द्वीप में जहाँ वर्षा होती है आज चाय, काफी, तथा रवड़ उत्पन्न किया जाता है ।

---

१. जान स्टिल : द जंगल टाइड, पृ० ७४–७५ ।

२. वही, पृ० ७६–७७ ।

उत्तरी अरब की मरुभूमि

हमारे विषय का बहुत विख्यात और बहुत प्रचलित उदाहरण पेट्रा और पालमिरा की वर्तमान स्थिति है। इस दृश्य से इतिहास के दर्शन को बहुत प्रेरणा मिली है, 'वोलने' के 'ला सइने' (१७९१) से आज तक। आज सीरियाई सभ्यता के ये पुराने निवास स्थान उसी स्थिति में हैं जिसमें माया सभ्यता के पुराने निवास स्थान। यद्यपि जिस प्रतिकूल परिस्थिति ने अरबी क्षेत्र पर प्रहार किया वह अफ्रेशियाई स्टेप था और ऊष्ण प्रदेशीय जंगल नहीं। खण्डहरों द्वारा यह ज्ञात होता है कि ये कलापूर्ण मन्दिर, ये मण्डप, ये चैत्य जब अपने अविच्छिन्न रूप में रहे होंगे तब वे बड़े-बड़े नगरों की शोभा रहे होंगे और यहाँ पुरातत्त्व से जो प्रमाण मिलते हैं और जो माया सभ्यता का चित्र उपस्थित करने के लिए मात्र आधार हैं लिखित ऐतिहासिक अभिलेखों द्वारा भी पुष्ट होते हैं। हम जानते हैं कि सीरियाई सभ्यता के नेता जिन्होंने मरुभूमि में इन विशाल नगरों की कल्पना की वे उस 'जादू' के पण्डित रहे होंगे जिसके जानकार सीरियाई कथा में मूसा को बताया जाता है।

ये जादूगर जानते थे कि सूखी चट्टानों में से कैसे पानी निकाला जा सकता है और किस प्रकार उजाड़ मरुभूमि में से उन्हें ले जा सकते हैं। अपने प्रौढ़ काल में पेट्रा और पालमिरा ऐसे बागों के बीच रहे होंगे जहाँ सिंचाई की अच्छी व्यवस्था रही होगी। जैसे बाग आज भी दमिश्क के चारों ओर हैं। किन्तु पेट्रा और पालमिरा उस युग में भी केवल संकीर्ण मरु-उद्यान (ओएसिस) के बल पर ही नहीं जीवित थे, जैसे आज दमिश्क भी नहीं है। उनके सेठ शाक-सब्जी उत्पन्न करने वाले माली नहीं थे, व्यापारी थे जिन्होंने एक मरु-उद्यान से दूसरे मरु-उद्यान तक, तथा महाद्वीप से महाद्वीप तक सम्बन्ध स्थापित कर रखा था और उनके कारवाँ इन मरु-उद्यानों के बीच के स्टेप तथा मरुभूमि के आरपार करने में सदा व्यस्त रहते थे। उनकी वर्तमान स्थिति यही नहीं बताती कि अन्त में मरुस्थल ने मनुष्य पर विजय पायी, बल्कि यह भी कि इसके पहले मनुष्य की विजय मरुस्थल पर कितनी विशाल थी।

ईस्टर द्वीप

ईस्टर द्वीप की वर्तमान स्थिति से पोलिनीशियाई सभ्यता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम उसी परिणाम पर पहुँचते हैं। इस युग में जब दक्षिण-पूरब प्रशान्त महासागर के एक दूरस्थ स्थान में इस द्वीप का अन्वेषण हुआ वहाँ दो जातियाँ रहती थीं। एक जाति सजीव रक्त और मांस की, और दूसरी जाति पत्थर की। पोलिनीशियाई शरीर वाली आदिम जाति तथा सिद्ध कौशल की मूर्तियाँ। उस पीढ़ी के जीवित निवाससियों में जैसी मूर्तियाँ ये हैं वैसी मूर्तियाँ गढ़ने की क्षमता नहीं थी, न उन्हें समुद्र-यात्रा का इतना विज्ञान मालूम था कि खुले सागर में हजारों मील की यात्रा करते क्योंकि ईस्टर द्वीप और पोलिनीशियाई द्वीप-समूह के निकटतम द्वीप में इतना अन्तर है। यूरोपियन नाविकों ने जब इसका पता लगाया उस समय यह अज्ञात काल से संसार से अलग रहा था। वहाँ के दोनों प्रकार के निवासियों, मनुष्यों और मूर्तियों से पता चलता है जैसा पालमिरा और कोपन के खण्डहरों से कि उनका भूतकाल कुछ भिन्न रहा होगा। ये मनुष्य उन लोगों की सन्तान होंगे और ये मूर्तियाँ उन लोगों ने गढ़ी होंगी जिन्होंने भद्दी खुली डोंगियों में नकशे और दिक्सूचकों (कम्पास) के बिना प्रशान्त सागर की यात्रा की होंगी।

और ऐसा नहीं हो सकता कि केवल एक बार इन्होंने यात्रा की हो और संयोगवश ईस्टर द्वीप में अग्रगामियों को लाये हों । मूर्तियों की संख्या इतनी अधिक है कि उन्हें बनाने में पीढ़ियाँ लगी होंगी । इन बातों से सिद्ध होता है कि हजारों मील की खुले समुद्र की यात्रा बहुत दिनों तक बराबर जारी रही होगी । और अन्त में कुछ ऐसे कारण हुए होंगे, जो हमें ज्ञात नहीं हैं कि जिस सागर को विजय कर मनुष्य वीरता से यात्रा करता रहा, उसने इस द्वीप को घेर लिया जैसे मरुभूमि ने पालमिरा को घेर लिया या कोपन को जंगल ने ।

ईस्टर द्वीप का यह प्रमाण पश्चिमी प्रचलित विचारों से भिन्न है जिसके अनुसार दक्षिण सागर के द्वीप धरती पर स्वर्ग हैं और उनके निवासी पतन के पूर्व के समान, आदम और हौवा की भाँति प्रकृति की सन्तानों की तरह रहते हैं । यह भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ कि यह मान लिया गया कि पोलिनीशियाई वातावरण का एक भाग ही संपूर्ण द्वीप समूह है । यहाँ का भौतिक वातावरण जल और थल का है । पोलिनीशियाइयों के पास समुद्र यात्रा के जो साधन थे उनके बिना किसी मनुष्य का यात्रा करना भीषण संघर्ष करना था । ऐसे नमकीन अपरिचित सागर का वीरता और सफलतापूर्वक सामना करके ही विजय प्राप्त हुई । अदम्य साहस से एक द्वीप से दूसरे द्वीप में बराबर यात्रा हुई होगी और तब इन अगुओं ने किसी सूखे द्वीप पर पाँव रखा होगा क्योंकि ये द्वीप आकाश के तारों की भाँति प्रशान्त सागर में विखरे हुए हैं ।

न्यू इंगलैंड

आदिम प्राकृतिक अवस्था में लौट जाने पर विचार समाप्त करने के पहले लेखक दो उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता है । एक कुछ दूर का है और एक स्पष्ट है । लेखक ने अपनी आँखों से दोनों स्थान देखते हैं ।

मैं[1] न्यू इंगलैंड के कनेक्टिकर प्रदेश के एक गाँव में जा रहा था । राह में एक उजड़ा गाँव मिला । मुझसे बताया गया कि ऐसे अनेक गाँव हैं । किन्तु किसी यूरोपीय के लिए यह दृश्य अजीब और विलक्षण जान पड़े । 'टाउन हिल' इस गाँव का नाम था । दो शतियों तक यह ऐसा ही रहा है । गाँव के मैदान में लकड़ी का बना हुआ जाजी (ज्यारजियन) गिरजाघर था । गाँव, बाग, बगीचे और खेत थे । गिरजाघर प्राचीन स्मृति के रूप में अभी था, किन्तु घर सब लोप हो गये थे । फलों के पेड़ जंगली हो गये थे और खेत नष्ट हो गये थे ।

विगत एक सौ साल में न्यू इंगलैंड के निवासियों ने अपनी संख्या से कहीं अधिक अनुपात में परिश्रम करके अमरीका महाद्वीप में अतलान्तक से प्रशान्त सागर तक जंगली प्रकृति से लड़कर विजय प्राप्त की है । किन्तु इन्हीं दिनों इस गाँव में जो उनके प्रदेश के केन्द्र में बसा था प्रकृति को पुनःविजय प्राप्त करने का अवसर मिला जिस प्रकृति को उनके पितामहों ने पराजित किया था और जहाँ वे शायद दो सौ वर्षों तक रहे थे । ज्यों ही मनुष्य ने अपना शासन इस पर से हटा लिया त्यों ही जिस तीव्रता, पूर्णता तथा स्वतन्त्रता से टाउन हिल पर प्रकृति ने अपना राज्य फिर से स्थापित किया था, इस बात को स्पष्ट करता है कि उस ऊसर धरती पर विजय प्राप्त करने के

---

[1] जहाँ-जहाँ यह सर्वनाम पुस्तक में आया है लेखक श्री ट्वायनबी से सम्बन्धित हैं।

लिए मनुष्य को कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। जितनी प्रबल शक्ति टाउन हिल को पराजित करने में लगी होगी उतनी अमरीका के पश्चिमी भाग पर विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त थी। इस परित्यक्त भूमि से यह बात समझ में आती है कि ओहियो, इलिनायस, कोलोरेडी, तथा कैलिफोरनिया आदि नये-नये नगर किस प्रकार जल्दी बन गये।

द रोमन कैम्पेग्ना

जो प्रभाव मुझपर टाउन हिल का हुआ वही रोमन कैम्पेग्ना का लिवी पर हुआ। उसे आश्चर्य हुआ कि असंख्य योद्धाओं ने ऐसे प्रदेश में निवास किया जो उसके समय में, जैसा हमारे समय में भी है,[१] दलदल और नितान्त ऊसर था। आज जो जंगली उजड़ा प्रदेश है वह उसे लैटिन तथा बोलशियन अगुओं ने उर्वर और बसने योग्य ग्राम बनाया था जो आज पुनः अपनी पूर्वावस्था में बदल गये। जिस शक्ति ने किसी समय इस कठोर छोटे इटालियाई प्रदेश को उर्वर और बसने योग्य बनाया था उसी शक्ति ने बाद में मिस्र से ब्रिटेन तक विजय प्राप्त की।

विश्वासघाती कैपुआ

ऐसी परिस्थितियों के अध्ययन के पश्चात् जहाँ सचमुच सभ्यताओं का जन्म हुआ था, जहाँ मनुष्य को और विशेष सफलताएँ प्राप्त हुईं और यह भी ज्ञान प्राप्त कर कि वे परिस्थितियाँ मनुष्य के लिए सरल नहीं थीं, बल्कि इसके विपरीत थीं, हम उस परिस्थिति का अब अध्ययन करें जो इनके पूरक है। हम उस वातावरण की परीक्षा करें जहाँ परिस्थितियाँ सरल थीं और मानव जीवन पर उनका क्या प्रभाव पड़ा। इस अध्ययन में हमें दो विभिन्न परिस्थितियों का अन्तर समझ लेना आवश्यक है। एक तो वह जहाँ कठिन परिस्थिति का सामना करने के बाद सरल वातावरण में मनुष्य आया। दूसरी वह सरल परिस्थिति जिसे छोड़कर आदिम काल से जब से उसका विकास हुआ दूसरे और वातावरण में मनुष्य गया ही नहीं। दूसरे शब्दों में हमें यह अन्तर देखना है कि सरल वातावरण का प्रभाव सभ्यता की प्रगति में मनुष्य पर क्या पड़ा और आदिम मानव पर सरल वातावरण का क्या प्रभाव पड़ा।

इटली के क्लासिकी युग में कैपुआ में रोम को विपरीत परिस्थिति मिली। कैपुआ का कैम्पेग्ना मनुष्य के लिए उतना ही सहज था जितनी रोमन कैंपेग्ना कठोर। रोमन लोग अपने अनाकर्षक देश से निकल कर एक के बाद एक अपने पड़ोसी देशों को जीतने चले गये, किन्तु कैपुआई अपने देश में पड़े रहे और एक के बाद दूसरा पड़ोसी उनको जीतता रहा। इनके अन्तिम विजेता सैमनाइट रहे और अपनी इच्छा से रोमनों को बुलाकर कैपुआइयों ने अपनी मुक्ति करायी। और रोम के इतिहास में सबसे संकटपूर्ण युद्ध के सबसे संकटपूर्ण समय, कैनी के युद्ध के बाद ही कैम्पेग्नाइयों ने रोम से यहाँ बदला लिया कि हैनिबल का स्वागत किया। कैपुआइयों के रुख बदलने के सम्बन्ध में रोमनों और हैनिबल के मत एक ही थे। क्योंकि यह युद्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण, शायद निश्चयात्मक परिणाम था। हैनिबल कैपुआ चला गया और जाड़े में वह वहीं रहा।

---

[१] अब यह बात नहीं है। मुसोलिनी ने सफल परिश्रम द्वारा इसे सदा के लिए सुन्दर रहने योग्य बस्ती बना दिया है।

जिसका परिणाम ऐसा हुआ जो सबकी आशाओं के विपरीत था । जाड़े भर में हैनिबल की सेन का इतना पतन हो गया कि फिर उसमें विजय की वह क्षमता नहीं रह गयी ।

आर्टेम्बेयर्स की सलाह

हेरोडोटस ने एक कथा लिखी है जिससे यह बात बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है । कोई आर्टेम्बेयर्स और उसके मित्र खुसरो (साइरस) के पास आये और यह परामर्श दिया—

"अब जब भगवान् जीयुस ने ऐसटाइनस को पराजित कर दिया है और फारस के राष्ट्र को और श्रीमन् आपको व्यक्तिगत रूप से इस राज्य का आधिपत्य सौंपा है तब क्यों न हम इस पहाड़ी तथा संकीर्ण प्रदेश को जिसमें हम इस समय रहते हैं छोड़कर किसी अच्छे देश में चलकर वसें। ऐसे अनेक देश हमारे निकट और दूर हैं । हमें केवल चुन लेना है और हम संसार में भी अब से अधिक प्रभाव जमा सकेंगे । साम्राज्यवादियों के लिए यह स्वाभाविक नीति है । इस नीति को काम में लाने के लिए अब से उपयुक्त और दूसरा समय न होगा जब कि हमारा साम्राज्य विस्तृत लोगों पर और सारे ऐशिया महाद्वीप पर फैला है ।"

"खुसरो ने सुना, किन्तु उस पर कुछ प्रभाव न पड़ा । इन अभ्यर्थियों से उसने कहा कि जैसी उनकी इच्छा हो वैसा करें, किन्तु इसके लिए भी वे तैयार रहें कि उन्हें अपनी वर्तमान प्रजा का स्थान ग्रहण करना होगा । सुकुमार देशों में सुकुमार मनुष्य पैदा होते हैं ।"[१]

ओडेसी और प्रस्थान

यदि हम हेरोडोटस के इतिहास से भी विख्यात पुराने साहित्य की ओर दृष्टि डालें तो हम देखते हैं कि ओडीसियस को साइक्लोप्स अथवा ऐसे दूसरे भयानक बैरियों से उतना भय नहीं था जितना उन लोगों से जो उसे आराम का जीवन बिताने के लिए आमन्त्रित करते थे जैसे सरसी और उसके आतिथ्य का अन्त सुअरबाड़े में हुआ, लोटस-भक्षियों के देश में, जहाँ कुछ बाद के कुछ विद्वानों के अनुसार सदा मध्याह्न काल ही रहता था, सायरेनों के देश में जहाँ उसने अपने नाविकों को आज्ञा दी कि अपने कानों को मोम से बन्द कर लें जिससे उनका मधुर गान न सुन सकें, और फिर कहा कि मुझे मस्तूल में बाँध दो, और कैलिप्सो के यहाँ जिसकी सुन्दरता पेनिलोप से भी बढ़कर ईश्वरीय थी, किन्तु जो मनुष्य की संगिनी बनने के लिए नितान्त अयोग्य थी ।

इसरायलियों के प्रस्थान का जहाँ तक सम्बन्ध है पेन्टाटुएक के क्षुब्ध लेखकों ने उन्हें गुमराह करने के लिए सायरेन या सरसी का वर्णन तो नहीं किया, किन्तु हम यह अवश्य पढ़ते हैं कि वह मिस्र की ऊँची रहन-सहन के लिए अवश्य लालायित रहते थे । यदि उनका वश चलता तो हमें विश्वास है कि पुरानी बाइविल न बनी होती । भाग्यवश मूसा के विचार भी वैसे ही थे जैसे खुसरो के ।

मनमाना करने वाले

कुछ आलोचक कह सकते हैं कि जो उदाहरण हमने दिये हैं वे विश्वसनीय नहीं हैं । वे कहेंगे कि यह तो माना जा सकता है कि जो कठोर जीवन से सरल जीवन की ओर गये उनका पतन हो जायगा जिस प्रकार भूखे मनुष्य को पूरा भोजन मिल जाय तो वह ठूँसकर भर लेगा

---

[१] हेरोडोटस : पुस्तक ९, अध्याय १२२ ।

किन्तु जिन्होंने सदा कोमल परिस्थिति में जीवन बिताया है वे तो उसका ठीक उपयोग करेंगे। पहले जिन दो परिस्थितियों का भेद बताया गया था उसमें दूसरी पर हम विचार करेंगे। अर्थात् उन लोगों के बारे में जो कोमल परिस्थिति में सदा से रहते आये और दूसरी परिस्थिति का उन्हें अनुभव नहीं था। संक्रमण काल में जो अव्यवस्था होती है उसे छोड़ दिया जाय तो हम बिलकुल कोमल परिस्थिति का ठीक अध्ययन कर सकेंगे। पचास वर्ष हुए एक पश्चिमी प्रेक्षक ने न्यासालैंड को जिस रूप में देखा था उसकी सच्ची तस्वीर यों है—

"इन अपार जंगलों में पेड़ों पर पक्षी के घोसलों के समान छोटे-छोटे वहाँ के निवासियों के गाँव हैं जहाँ के लोग सदा एक दूसरे से तथा सामान्य वैरियों से भयभीत रहते हैं। यहाँ स्वाभाविक सरलता का जीवन आदिम मनुष्य व्यतीत करते हैं। न उनके पास कपड़े हैं, न सभ्यता है, न शिक्षा है, न धर्म है। प्रकृति की ये सच्ची और सहज सन्तान हैं। ये विचार रहित, चिन्ता से मुक्त और सन्तुष्ट हैं। ये मनुष्य प्रायः आनन्द में जीवन बिताते हैं, उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। बहुधा लोग अफ्रीकियों को काहिल कहते हैं, किन्तु यह इस शब्द का अशुद्ध प्रयोग है। उसे परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है। इतनी उदार प्रकृति के होते हुए परिश्रम करना निरर्थक होगा। जिसे उसकी काहिली कही जाती है वह उसके जीवन का वैसा ही स्वाभाविक अंश है जैसे उसकी चिपटी नाक। उसे सुस्ती के लिए दोष देना वैसा ही होगा जैसा कछुए को।"[१]

विक्टोरियन युग के कठोर परिश्रमी जीवन के समर्थक चार्ल्स किंग्सले दक्षिण-पश्चिमी पवन के बजाय उत्तर-पूर्वी पवन को अधिक पसन्द करते थे। उन्होंने एक कहानी लिखी थी 'द हिस्टरी आव द ग्रेट एण्ड फेमस नेशन आव डू-एज़-यू-लाइक्स, जो कठिन परिश्रम के देश से भाग आये क्योंकि वह दिन भर सारंगी (ज्यूज हार्प) बजाना चाहते थे।' परिणाम यह हुआ कि पतित होकर गोरिल्ला हो गये।

आधुनिक नैतिकवादियों और हेलेनी कवियों के अफीमचियों (लोटस-ईटरो) के प्रति विभिन्न मत मनोरंजक है। हेलेनी कवियों के हिसाब से अफीमची तथा उनका प्रदेश सभ्यता के प्रचारक यूनानियों के मार्ग में पिशाचों की ओर से फन्दा है। इसके विपरीत किंग्सले आधुनिक अंग्रेजी मनोवृत्ति प्रदर्शित करता है। वह डू-एज़-यू-लाइकों को इतनी घृणा से देखता है कि उसके लिए उनका कुछ भी आकर्षण नहीं है और वह यह कर्तव्य समझता है कि उन्हें अंग्रेजी साम्राज्य में, अपनी नहीं, उनकी भलाई के लिए ले लिया जाय और पहनने के लिए पतलून दी जाय और पढ़ने के लिए बाइबिल।

हमारा अभिप्राय इसे स्वीकार या अस्वीकार करना नहीं है। हमें तो समझना है। इस दृष्टान्त का परिणाम बाइबिल की उत्पत्ति की पुस्तक (बुक आव जेनेसिस) के आरम्भिक अध्यायों में स्पष्ट है। जब आदम और हौवा अदन के लोटस प्रदेश से निकाल दिये गये उसके बाद ही उनके वंशज खेती, धातुविज्ञान और वाद्य-यन्त्रों के आविष्कार करने के योग्य हुए।

---

[१] एच० ड्रूमंड—ट्रापिकल अफ्रीका, पृ० ५५–६।

७. वातावरण की चुनौती

(१) कठोर देशों की प्रेरणा (स्टिमुलस)

खोज की पद्धति

सम्भवतः हमने इस सत्य को प्रमाणित कर दिया है कि सुख का जीवन सभ्यता का वैरी है। क्या हम इसके एक कदम आगे जा सकते हैं? क्या हम यह कह सकते हैं कि जितनी ही परिस्थिति कठोर होती जाती है उतनी ही सभ्यता की प्रगति को स्फूर्ति प्राप्त होती है? इसके पक्ष में तथा इसके विरोध में प्रमाणों की हम परीक्षा करें और देखें कि क्या परिणाम निकलत है? इस बात का प्रमाण कि परिस्थिति की कठिनांइयाँ और सभ्यता की स्फूर्ति साथ-साथ चलती है, खोजना कठिन नहीं है। बल्कि इस पक्ष में इतने अधिक प्रमाण मिलते हैं कि उलझन हो जाती है। इस प्रकार के बहुत-से तुलनात्मक उदाहरण मिलते हैं। हम अपने उदाहरणों के दो व बनायें। भौतिक वातावरण का वर्ग और मानवीय परिस्थिति का वर्ग और पहले भौतिक व पर विचार करें। इसके दो उपविभाजन होते हैं। उन प्रभावों की तुलना जो विभिन्न अंशों क भौतिक कठिनाइयों के कारण उत्पन्न हुई हैं और नये तथा पुराने प्रदेशों के प्रभावों की तुलना, इस बात का विचार छोड़कर, कि स्वाभाविक रूप में वह भू-प्रदेश कैसा है।

हांगहो और यांग्त्सी नदियाँ

आरम्भिक उदाहरण के लिए हम इन दो नदियों की निचली घाटियों को देखें कि उनसे कितनी कठिनाई उत्पन्न हुई होगी। ऐसा जान पड़ता है कि जब पहले-पहल मनुष्य ने हांगहो की निचली घाटी में रहना आरम्भ किया, यह नदी वर्ष में किसी समय भी नौका चलाने योग्य नहीं थी। जाड़े में या तो वह जमी रहती थी या उसमें बर्फ के बड़े-बड़े टुकड़े तैरा करते थे और बसन्त में यह बर्फ गल जाती थी जिससे नदी में बाढ़ आ जाती थी जिससे नदी अपना रास्ता बदल देती थी और पुराने रास्ते में जंगल से भरे दलदल बन जाते थे। आज भी, तीन-चार हजार साल के बाद, जब मनुष्य के श्रम से दलदल सुखा दिये गये, जंगल साफ कर दिये गये हैं और बाँध ब गये हैं, बाढ़ से कभी-कभी पहले जैसा ही विनाश होता है। अभी सन् १८५२ में निचली हांगहो ने अपना रास्ता बदल दिया और जो धारा पहले शात्तुंग प्रायद्वीप के दक्षिण गिरती थी, प्रायद्वीप के उत्तर दो सौ मील की दूरी पर गिरने लगी। यांग्त्सी सदा से नौका चलाने योग्य थी और यद्यपि उसमें भीषण बाढ़ आती रही है, किन्तु वह इतने बहुतायत से नहीं आती थी जितंनी हांगहो में। यांग्त्सी की घाटी में जाड़ा इतना कठोर नहीं पड़ता। फिर भी हांगहो नदी के किनारे चीनी सभ्यता का जन्म हुआ, यांग्त्सी के नहीं।

अटिका और बेओशिया

कोई यात्री जो समुद्र से नहीं, धरती की राह से, उत्तर के पृष्ठ-प्रदेश की ओर से यूनान में आये या ऊपर से जाय तो वह यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि हेलेनी सभ्यता

मूल स्थान कठोर, पहाड़ी और सूखा है, उस धरती की तुलना में जो उसके उत्तर है जहाँ किसी सभ्यता का जन्म नहीं हुआ । ऐसा ही अन्तर एजियाई क्षेत्र में मिलता है ।

उदाहरण के लिए, यदि कोई रेल से एथेन्स से सैलोनिका होते हुए मध्य यूरोप की ओर चले तो यात्रा के पहले भाग में पश्चिमी या मध्य यूरोपीय यात्री को ऐसा दृश्य देखने को मिलेगा जिससे वह परिचित है । कुछ घंटों के बाद जब गाड़ी पारनेस पहाड़ की पूरबी ढाल से घूमती चलती है जहाँ नीबू के छोटे पेड़ और चूना-पत्थर के श्रृंग मिलते हैं तो यात्री को आश्चर्य होता है कि मैं धीरे-धीरे लहरियादार, गहरी मिट्टी वाले उपजाऊ क्षेत्र में चला जा रहा हूँ । किन्तु यह भू-दृश्य थोड़ी देर के लिए ही मिलता है । ऐसा दृश्य उसे फिर तभी मिलेगा जब वह नीश के आगे मोरावा से उतर कर मध्य डैन्यूब तक पहुँचेगा । हेलेनी सभ्यता के समय इस विशेष क्षेत्र का क्या नाम था ? इसे बेओशिया कहते थे और हेलेनी लोगों के मन में इसका विशेष अर्थ था । वे इस शब्द से उस विशिष्ट प्रकृति का मनुष्य समझते थे जो गँवार, निष्क्रिय, कल्पनाविहीन और कठोर होता था और ऐसी प्रकृति हेलेनी संस्कृति के बिलकुल प्रतिकूल थी । यह अन्तर और भी तीव्र इस कारण हो गया था कि सिथीरोन पहाड़ के पीछे और पारनेस पहाड़ के कोने पर जिधर से आज रेल घूम कर जाती है अटिका था जो हेलेनी सभ्यता का महान् क्षेत्र समझा जाता था । इस प्रदेश की प्रकृति हेलेनी सभ्यता का विशुद्धतम रूप थी । और यह प्रदेश ऐसे क्षेत्र के सन्निकट था जिसकी प्रकृति हेलेनी प्रकृति से नितान्त भिन्न थी । दोनों का अन्तर ऐसे वाक्यों से स्पष्ट होता है—'बेओशियाई सुअर' और 'ऐटिक नमक' ।

इस सम्बन्ध में मनोरंजक बात यह है कि जिस सांस्कृतिक भेद का प्रभाव हेलेनी बुद्धि पर इतना प्रबल पड़ा वह भौगोलिक दृष्टि से उसी के अनुरूप था अर्थात् संस्कृति के भेद के साथ भौतिक भेद भी था । क्योंकि अटिका 'यूनान का यूनान' थां, केवल आत्मिक दृष्टि से नहीं, शारीरिक दृष्टि से भी । उसका एजियाई देशों से वही सम्बन्ध है जो उनका दूर के देशों से है । यदि आप यूनान में पश्चिम की ओर कोरिंथिया की खाड़ी की ओर से जायँ तो गहरी कोरिंथ नहर के चट्टानों के समान किनारों तक आपको सब जगह यूनानी भू-दृश्य मिलेंगे जो सुन्दर किन्तु अनाकर्षक हैं, किन्तु जब आपका जहाज सरोनिक खाड़ी में पहुँचता है आप ऐसा रूखा दृश्य देख कर चकित होंगे जिसे देखने की, स्थल डमरूमध्य के उस पार के दृश्य के कारण, आपको आशा न होगी । यह कठोरता उस समय सबसे अधिक मिलती है जब सलामिस के कोने से घूमकर आप अपने सामने अटिका फैला हुआ देखते हैं । अटिका की मिट्टी पथरीली और हल्की है क्योंकि अनाच्छादन (डिनुडेशन) की क्रिया वर्षा के जल से पहाड़ों की मिट्टी को समुद्र में बहा ले जाना, बहुत पहले आरम्भ हो गयी थी और अफलातून के समय में पूरी हो चुकी थी जैसा कि 'क्रीटियास' में विस्तार से दिया हुआ है । बेओशिया में आज तक ऐसा नहीं हुआ है ।

एथेन्स के निवासियों ने अपने गरीब देश में क्या किया ? हम जानते हैं कि उन्होंने वह किया कि एथेन्स यूनान का शिक्षक बना । अटिका के चरागाह जब सूख गये और उर्वर धरती जब नष्ट हो गयी तब यूनानियों ने अपना पुराना व्यवसाय, पशुपालन और खेती छोड़ दी । यही उस युग में यूनान का विशेष उद्यम था । उन्होंने जैतून के बाग लगाना आरम्भ किया और नीचे की मिट्टी (सब स्वायल) से काम लेना आरम्भ किया । एथेन्स का यह सुखमय पेड़ पहाड़ों की रक्षा करता है और पहाड़ों पर जीता भी है । किन्तु मनुष्य केवल जैतून का तेल पीकर जीवित

नहीं रह सकता। अपने जैतून के कुंजों के सहारे जीवित रहने के लिए उसने जैतून के तेल का परिवर्तन सीथिया के अनाज से किया। सीथिया के बाजार में जैतून का तेल भेजने के उसने बेड़े बनाये और जहाजों द्वारा भेजा जिसके कारण आटिका के मिट्टी के बर्त्तनों का नि हुआ और व्यापारिक जहाजी बेडा भी तैयार हुआ। व्यापार के लिए मुद्रा की आवश्य पड़ती है इसलिए आटिक की चाँदी की खानों की खोज हुई।

किन्तु यह सम्पत्ति एथेन्स की राजनीतिक, कलात्मक तथा बौद्धिक संस्कृति की नींव प थी। इन संस्कृतियों ने एथेन्स को 'हेलास का शिक्षक' और बेओशियाई पशुता के जवाब 'आटिक नमक' की संज्ञा दी। राजनीतिक स्तर पर परिणाम था एथेन्स का साम्राज्य। कला स्तर पर मिट्टी के बर्त्तनों पर आटिक के कलशों की चित्रकारी का अवसर मिला जिसके द्वा नवीन सौन्दर्य की सृष्टि हुई जिसने दो हजार वर्ष बाद भी अंग्रेजी कवि कीट्स को मुग्ध कर दिया

बाइजान्टियम और कालचिडान

हेलेनी संसार का जो विस्तार हुआ उसका कारण हम पहले अध्याय में वर्णन कर चुके (पृ० ४ देखिए) इससे हमारे विषय के सम्बन्ध में एक और हेलेनी उदाहरण मिलता वह है दो यूनानी उपनिवेशों का अन्तर। एक कालचिडान जो मर्मर सागर से बासफरस प्रवेश करते हुए एशिया की ओर था और दूसरा बाइजान्टियम जो यूरोप की ओर था।

हेरोडोटस कहता है कि इन दोनों नगरों के निर्माण के लगभग एक सौ साल बाद मेगाबा के फारसी राज्यपाल ने 'एक लतीफा बनाया जिसने उसे हेलासपाटी यूनानियों में अमर कर दिय बाइजान्टियम में उसने सुना कि कालचिडोनियनों ने बाइजान्टिनियों से सत्रह साल पहले अप नगर बनाया। सुनते ही उसने कहा—कि कालचिडोनी सब अन्धे रहे होंगे। उसका अभिप्र यह था जब उपयुक्त स्थान उन्हें उपलब्ध था तब उन्होंने अनुपयुक्त स्थान क्यों चुना।'[1]

किसी घटना के बाद बुद्धि अर्जन करना सरल है। मेगाबाज़स के समय (जब फारसि ने यूनान पर आक्रमण किया) दोनों नगरों के भाग्यों का फैसला हो चुका था। कालचिड साधारण कृषि उपनिवेश अब भी था जैसा उसे बनाने का अभिप्राय था। और कृषि की दृ से वह बाइजाण्टियम से बहुत उत्तम था। बाइजान्टीनी बाद में आये और जो बच रहा था उ ग्रहण किया। कृषि में वे असफल रहे क्योंकि थ्रेस के बर्बर सदा उनपर धावा बोलते रहे किन्तु संयोग से उन्हें गोल्डन हार्न बन्दरगाह मिल गया। वह उनके लिए मानो सोने की ख था। क्योंकि जो धारा बासफारस से आती है वह जहाज को गोल्डन हार्न की ओर दोनों ओर ले जाने में सहायक होती है। यूनानी उपनिवेश की स्थापना के पाँच सौ साल बाद और सा भौम राजधानी कुसतुंनतुनिया के रूप में परिवर्तित होने के पाँच सौ साल पहले दूसरी शती ई० में पोलीबियस ने लिखा था :—

'बाइजान्टिनी ने ऐसे स्थान पर अधिकार जमा लिया है जो सुरक्षा तथा समानता दो दृष्टियों से हेलेनी संसार में सागर की ओर सबसे अनुकूल है और स्थल की ओर सबसे अनुपयुक्त सागर की ओर काले सागर के मुहाने पर बाइजान्टियम का इतना प्रभुत्व है कि किसी व्यापारि

---

[1] हेरोडोटस : चौथी पुस्तक, अध्याय १४४।

जहाज का सागर के भीतर अथवा वाहर जाना वाइजान्टीनियों की इच्छा बिना असम्भव है ।”[१]

किन्तु मेगावाज़स को उसके लतीफे के कारण दूरदर्शिता की जो ख़्याति मिली वह उसके योग्य न थी । इसमें विलकुल सन्देह नहीं कि जिन उपनिवेशियों ने वाइजान्टियम चुना वे यदि वीस साल पहले आये होते तो उन्होंने रिक्त कालचिडान को ही चुना होता । और यह भी सम्भव है कि यदि थ्रेसी आक्रमणकारियों से उनकी खेती वची होती तो वे अपने स्थान का व्यापारिक विकास की ओर उपयोग न करते ।

इसरायली, फोनीशी तथा फिलस्तीनी

यदि हम हेलेनी इतिहास से सीरियाई इतिहास की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि मिनोई काल के वाद जो जनरेला हुआ और सीरिया में अनेक लोग जो आये वे उसी अनुपात में विभिन्न जनपदों में वसे जिस अनुपात में भौतिक वातावरण की कठिनाइयाँ थीं । दमिश्क की अवाना और फारपर नदियों के आरमियनों ने सीरियाई सभ्यता के विकास का नेतृत्व नहीं ग्रहण किया, न वे दूसरे आरमियन जो ओरोन्टेज़ के किनारे वसे जहाँ वहुत दिनों वाद सेल्युकी वंश ने एटियोक राजधानी वनायी, न इसरायल के उपकुल के वे लोग थे जो जार्डन नदी के पूरव ठहरे कि गिलीड के वढ़िया चरागाहों में ‘वाशन के वैलों’ को मोटा करे । सबसे अद्भुत वात यह है कि सीरियाई संसार के विकास की प्रधानता उन लोगों के हाथ में नहीं थी जो एजियाई द्वीपों से भाग कर सीरिया में आये थे और जो वर्वर नहीं थे, वल्कि मिनोई सभ्यता के वे उत्तराधिकारी थे जिन्होंने कारमेल के दक्षिण तराई तथा वन्दरगाहों पर अधिकार कर लिया । हमारा अभिप्राय फिलस्तीनियों से है । यूनानियों में बेओशियों के समान इनका नाम भी घृणा से लिया जाता है । फिलस्तीनी और वेओशी उतने मलिन न भी रहे हों जितने यूनानियों ने उन्हें चित्रित किया है, और हमारा ज्ञान उनके विरोधियों (यूनानियों) द्वारा ही हमें प्राप्त होता है, तव भी इसका क्या उत्तर है कि उनके इन यूनानी विरोधियों का नाम आने वाली सन्तति श्रद्धा और सम्मान से स्मरण करती है ।

सीरियाई सभ्यता की प्रतिष्ठा तीन विशेषताओं के लिए है । उसने वर्णमाला का आविष्कार किया, उसने अतलान्तक महासागर को ढूँढ निकाला और उसने ईश्वर के सम्बन्ध में एक विशेष धारणा स्थापित की जो यहूदी, पारसी, इसाई और इस्लामी धर्मों में समान रूप से वर्तमान है और जो मिस्री, सुमेरी भारतीय तथा हेलेनी विचार धाराओं से असम्बद्ध है । वह कौन सीरियाई समाज था जिसके द्वारा ये उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं ?

वर्णमाला के सम्बन्ध में हम लोगों को ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है । यद्यपि परम्परा से इसके आविष्कारक फीनिशियाई कहे जाते हैं, सम्भव है आरम्भिक रूप में मिनोई लोगों से लेकर फिलिस्तीनियों द्वारा यह हुआ हो । इसलिए सम्प्रति जो ज्ञान हमारा है उसके आधार पर इसके आविष्कार का यश किसी को निश्चय रूप से नहीं दिया जा सकता । अब दूसरी दोनों वातों पर विचार करना चाहिए ।

---

[१] पोलीबियस : चौथी पुस्तक, अध्याय ३८ ।

वे कौन सीरियाई साहसी नाविक थे जो सारा भूमध्यसागर पार कर, जिबराल्टर डमरू पार कर आगे गये ? निश्चय ही फिलस्तीनी नहीं । यद्यपि ये मिनोई वंश के थे फिर भी एसड्रे और शेफेला[2] के उर्वर क्षेत्र के लिए युद्ध करते हुए इफ्राइम[3] और जूदा[4] के पहाड़ी क्षेत्रों के वाले इसराइलियों से हारे जो उनसे अधिक वीर थे । अतलान्तक की खोज करने वाले टायर[5] सिडन[6] के फिनिशियाई थे ।

ये फिनिशियाई की जातियों के अवशेष थे जो फिलिस्तीनियों और हिब्रुओं के आने पहले वहाँ के स्वामी थे । यह बात बाइबिल के प्रारम्भिक अध्याय में वंश परम्परा में दी गयी जहाँ हम पढ़ते हैं कनआँ (नोआ के पुत्र, हेम के पुत्र) ने सिडन को उत्पन्न किया जो उसका प्र पुत्र था । वे इस कारण बच गये कि उनका निवास जो सीरियाई तट के मध्य भाग में था आक्रमणकारियों के लिए पर्याप्त आकर्षक नहीं था । फिनीशिया में, जिसे फिलिस्तीनी छोड़ चले आये थे और शेफेला में बहुत अन्तर है । तट के इस भाग में कोई उपजाऊ मैदान है । लेबेनान पर्वत सागर से सीधे आरम्भ होता है । यह इतना खड़ा है कि सड़क अथवा बनाने की गुंजाइश नहीं । फिनीशियाई नगरों में विना समुद्र से गये आपस में भी सरलता सम्पर्क नहीं स्थापित हो सकता था । इनका सबसे विख्यात नगर टायर करण्ट के खोते भाँति पहाड़ी टापू पर बसा है । इस प्रकार जब फिलस्तीनी भेड़ों की भाँति घास चरने में म थे, फिनीशियाइयों ने, जिनका सामुद्रिक आवागमन अभी तक केवल बाइब्लस और मिस्र बीच तक सीमित था, मिनोइयों की भाँति खुले समुद्र में प्रवेश किया और अफ्रीकी तथा पश्चि भूमध्यसागर के स्पेनी तट पर नया निवास बनाकर अपने ढंग से सीरियाई सभ्यता स्थापित की फिनीशियाइयों के इस सागर पार के प्रतापलशाली नगर कारथेज ने फिलिस्तीनियों को स्थ युद्ध में भी परास्त किया, जिसमें ये कुशल समझे जाते थे । फिलिस्तीनियों का सबसे विख्या समर्थक सैनिक गाथ का गोलियथ है । फिनीशियाई हैनिबल की तुलना में यह तुच्छ है ।

अतलान्तक सागर की खोज भौतिक दृष्टि से मनुष्य की शक्ति का चमत्कार अवश्य किन्तु आत्मिक दृष्टि से इन लोगों ने एकेश्वरवाद की जो खोज की उसके सामने वह कुछ नहीं है और यह चमत्कार उस सीरियाई समाज की देन है जिसे जनरेला ने ऐसे स्थान पर छोड़ दि था जिसकी भौतिक स्थिति फिनीशियाई तट अर्थात् एफ्राइम तथा जूदा के पहाड़ी प्रदेश से अनाकर्षक थी । ऐसा जान पड़ता है कि पतली मिट्टी की तह वाला, पहाड़ी जंगल से भरा छोटा प्रदेश निर्जन था । यह ईसा के पूर्व चौदहवीं शती में मिस्र के 'नये साम्राज्य' के पतन बाद उस अन्तःकाल में बसा जब उत्तरी अरब के स्टेप से हिब्रू खानाबदोश का अग्रदल सीरि

---

१. एसड्रेलन—उत्तरी फिलस्तीन में कारमेल और गिलबोआ पहाड़ों के बीच का मैदान
२. शेफेला ।
३. फिलस्तीन के दो राज्य ।
४. वही ।
५. फीनीशिया का बन्दरगाह ।
६. सीरिया का बन्दरगाह ।

किनारों पर पहुँचा। यहाँ उन्होंने अपना जीवन खानाबदोशी पशुपालकों से बदलकर खेतिहर ना दिया और स्थावर बनकर पथरीली धरती जोतने-बोने लगे। और उस समय तक अज्ञात जब तक सीरियाई सभ्यता चरम सीमा को नहीं पार कर गयी। यहाँ तक कि पाँचवीं शती ० पू० तक जब सभी पैगम्बर अपनी वाणी सुना चुके थे हेरोडोटस को इसरायल का नाम भी हीं मालूम था। और हेरोडोटस ने जो सीरियाई संसार का चित्र खींचा है उसमें भी फिलिस्तीनी श के सामने इसरायली देश छिपा हुआ है। उसने लिखा है 'फिलस्तीनियों का प्रदेश'[1] और ाज भी वह फिलस्तीन (या पैलेस्टाइन) कहा जाता है।

एक सीरियाई कथा में बताया गया है कि किस प्रकार इसराइलियों के ईश्वर ने इसरायल के ाजा की परीक्षा ली। ऐसी कठोर परीक्षा जैसी किसी मनुष्य की ईश्वर ले सकता है।

"सुलेमान के सामने ईश्वर एक रात सपने में प्रकट हुआ। उसने कहा, 'जो चाहो मुझसे ाँगो, मैं तुम्हें दूँगा।' और सुलेमान ने कहा—'इस सेवक को ऐसा हृदय दीजिए जिसमें सूझ-झ हो। ईश्वर इस बात से प्रसन्न हुआ और उससे कहा—'तूने मुझसे यह माँगा है अपने लिए धिक जीवन नहीं माँगा, अपने लिए धन-दौलत नहीं माँगीं, अपने बैरियों की पराजय नहीं माँगीं, न्तु अपने लिए बुद्धि माँगी जिससे विवेक आ सके, तो मैं तेरे वचन के अनुसार ही वरदान देता । तुझे ऐसा हृदय देता हूँ जिसमें सूझ-बूझ हो, विवेक हो, जैसा किसी के पास न पहले था न कभी ागे होगा। मैं तुझे वह भी देता हूँ जो तूने नहीं माँगा है—धन और प्रतिष्ठा भी और तेरे समान ाजा आगे कभी नहीं होगा।"[2]

सुलेमान की इच्छा का आख्यान विशेष जाति के इतिहास का दृष्टान्त है। इसरायलियों आत्मिक ज्ञान की शक्ति फिलस्तीनियों की सैनिक शक्ति से तथा फिनीशियों की सामुद्रिक ाक्ति से बढ़कर थी। वे उन वस्तुओं के पीछे नहीं दौड़े जिनके लिए अ-यहूदी (जेण्टाइल) ौड़ते थे। वे ईश्वर के राज्य की कामना करते थे और सब वस्तुएँ साथ में मिल जाती थीं। ाहाँ तक बैरियों के जीवन का प्रश्न था, फिलस्तीनी उनके हाथों में सौंप दिये गये। जहाँ तक ाम्पत्ति का प्रश्न है टायर और कारथेज के उत्तराधिकारी यहूदी हुए जिनका व्यवसाय ऐसा था फिनीशियों ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी और ऐसे देशों से उनका व्यवहार चलता था जनका ज्ञान भी फिनीशियों को नहीं था। जहाँ तक दीर्घ जीवन का प्रश्न है, यहूदी आज भी जीवित हैं जब फिनीशियाई और फिलस्तीनी का शेष भी नहीं रहा। इनके पुराने सीरियाई ड़ोसी गल गये और नये सिक्कों में ढल गये जिन पर नये चित्र और नये मूल्य अंकित हो गये, इसराइलियों पर उस रासायनिक क्रिया का प्रभाव नहीं पड़ा जिसे इतिहास ने सार्वजनिक राज्य था सार्वजनिक धर्मतन्त्रों (चर्चों) और राष्ट्रों के संचरण की घरिया (क्रूसिल्ल) में पिघला कर नवीन रूप दिया और जिसके शिकार हम सभी अ-यहूदी (जेण्टाइल) बारी-बारी से हुए।

ब्रैण्डेनबुर्ग तथा राइन प्रदेश

अटिका और इसरायल से ब्रैण्डेनबुर्ग का बहुत दूर का फासला और बहुत अधिक उतार है।

---

१. हेरोडोटस : दूसरी पुस्तक, अध्याय १०४। सातवीं पुस्तक, अध्याय ८९।

२. किंग्ज, ३।५–१३।

किन्तु जिस नियम पर विचार हो रहा है उसका एक और उदाहरण है । यदि आप उस अना प्रान्त की यात्रा करें जो फ्रेडरिक महान् का प्रारम्भिक निवास था—अर्थात् ब्रैण्डेनबुर्ग, पोमेरे तथा पूर्वी प्रशा की, जहाँ चीड़ के बन हैं और रेतीला मैदान है तो आप समझेंगे कि यूरेशियाई के किसी बाहरी क्षेत्र में यात्रा कर रहे हैं । यहाँ से बाहर जिस ओर जाइए चाहे डेनमार्क के च के मैदान और सफेदा (बीच) के जंगलों की ओर, या लिथुएनिया के काली मिट्टी के प्रदेश और या राईन प्रान्त के अंगूर के प्रदेश की ओर, सभी ओर सुखमय तथा सुन्दर प्रदेश में प्रवेश करते हैं । किन्तु मध्ययुगीन उपनिवेशकों के जिन वंशजों ने इन 'असुन्दर' प्रदेशों में किया उन्होंने हमारे पश्चिमी समाज के इतिहास के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान किया । ही नहीं कि उन्नीसवीं शती में उन्होंने जरमनी पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और शती में जरमनों को प्रेरित किया कि हमारे समाज में वे सार्वभौम राज्य की स्थापना क प्रशियनों ने अपने पड़ोसियों को यह भी सिखाया कि बलुई धरती में कृत्रिम खाद डालकर अ कैसे उत्पन्न किया जाता है, किस प्रकार अनिवार्य शिक्षा प्रणाली द्वारा सारी जनता में अभू सामाजिक दक्षता इन्होंने उत्पन्न की और अनिवार्य स्वास्थ तथा बेकारी के बीमे की प्रणाली अभूतपूर्व सामाजिक सुरक्षा स्थापित की ।

स्काटलैंड और इंग्लैंड

यह तर्क उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है कि स्काटलैंड इंग्लैंड से 'कठोर' देश दोनों जातियों के स्वभावों में जो कुख्यात अन्तर है उस पर भी विस्तार से विचार करने आवश्यकता नहीं है । जैसे स्काट गम्भीर, मितव्ययी, सुनिश्चित, दृढ़, सावधान, जागरूक त सुशिक्षित होता है, इसके विपरीत अंग्रेज छिछला, खर्चीला, अस्पष्ट, उग्र (स्पासमोडि असावधान, स्वच्छन्द, सरल तथा पुस्तकी ज्ञान के अनुकूल होता है । इस परम्परागत तुलना अंग्रेज शायद विनोद समझें । अधिकांश बातों को वह विनोद ही समझता है । स्काट ऐसा समझता । जानसन बासवेल से सदा खीझ कर कहा करता था कि स्काट को यदि कोई सु दृश्य दिखाई देता है तो वह इंग्लैंड की ओर की सड़क है । जानसन के जन्म के पहले ऐन रान एक विनोदी दरबारी ने कहा था कि यदि केन स्काट होता तो उसे जो दण्ड दिया गया वह उल होता । उसे दण्ड दिया गया था कि वह जीवन भर संसार में भ्रमण करता रहे इसके बजाय दण्ड दिया जाता कि वह घर पर ही रहे । साधारणतः यह धारणा कि अंग्रेजी साम्राज्य के निम में और धार्मिक तथा राज्य के ऊँचे स्थानों को ग्रहण करने में स्काट लोगों की संख्या उनकी आब के अनुपात से कहीं कधिक है, बिलकुल ठीक है । विक्टोरिया के काल के इंग्लैंड में पार्लिमेण्ट में ऐतिहासिक संघर्ष चला था वह एक विशुद्ध स्काट और एक विशुद्ध यहूदी के बीच था । ग्लैडस्ट के बाद जो इंग्लैंड में आज तक प्रधान मन्त्री हुए उनमें लगभग आधे स्काट थे ।[१]

---

१. रोजबरी, बालफोर, कैम्बेल-बैनरमैन और मैकडोनल्ड ; इनमें बोनरला का नाम जोड़ा जा सकता है, जो कैनेडा में स्काट-आइरिश परिवार में पैदा हुए थे । किन्तु उनकी मा शुद्ध स्काट थी और वह ग्लासगों में रहने लगे । इस प्रकार पाँच हुए । सात ऐसे थे जो स्का नहीं थे—सम्पादक । (इसी सूची में मैकमिलन का नाम भी जोड़ देना चाहिए—अनुवादक

उत्तरी अमरीका के लिए संघर्ष

इस विषय का क्लासिकी उदाहरण हमारे पश्चिमी यूरोप का इतिहास है। लगभग आधे दर्जन उपनिवेशकों ने उत्तरी अमरीका पर आधिपत्य स्थापित करने का होड़ लगाया। इसमें न्यू इंग्लैंड वाले विजयी हुए। इसके पहले के अध्याय में हमने बताया है कि जो लोग अन्त में उस प्रायद्वीप के मालिक हुए उन्हें किन स्थानीय कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इस न्यू इंग्लैंड के वातावरण (एनवायरनमेण्ट) की जिसकी वानगी टाउन हिल का स्थल है, तुलना उन अमरीकी वातावरण से हम करें जिनमें न्यू इंग्लैंड के प्रतियोगी असफल रहे। इनमें डच, फ्रेंच, स्पेनी, तथा वे अंग्रेजी उपनिवेशी थे जो अतलान्तक समुद्र के दक्षिणी क्षेत्र में और वरजिनिया के इधर-उधर बसे थे।

सत्रहवीं शती के मध्य जब ये सब दल अमरीकी महाद्वीप के किनारे पहले-पहल बसे तब सरलता से यह भविष्यवाणी की जा सकती थी कि अन्दर के प्रदेश के आधिपत्य के लिए इनमें संघर्ष होगा। किन्तु १६५० में सबसे दूरदर्शी भी नहीं वता सकता था कि विजयी कौन होगा। शायद वह इतना बुद्धिमान् होता कि कह देता कि स्पेनी विजयी नहीं होंगे यद्यपि स्पष्टतः उनके पास दो सम्पदाएँ (असेट) थीं। एक तो यह कि वे मैक्सिको के स्वामी थे। अमरीकी क्षेत्र का यही प्रदेश था जिसका परिष्कार एक पूर्ववर्ती सभ्यता से किया जा सकता था, दूसरी उनकी अमरीकी शक्तियों में ख्याति थी जिसके योग्य अब वे नहीं रह गये थे। भविष्य-वक्ता मैक्सिको के स्वामित्व की इसलिए गणना न करता कि वह दूर था। स्पेनी दवदबा की गणना इसलिए न करता क्योंकि जो यूरोपीय युद्ध (तीस वर्षीय) अभी समाप्त हुआ था उसमें स्पेन की प्रतिष्ठा गिर चुकी थी। उसने कहा होता कि यूरोप में फ्रांस स्पेन की सैनिक शक्ति पर विजय प्राप्त कर लेगा और सामुद्रिक शक्ति में हालैंड और इंग्लैंड उससे बढ़ जायगा। और उत्तरी अमरीका की प्राप्ति का होड़ हालैंड, फ्रांस और इंग्लैंड में रह जायगा। निकट की दृष्टि से हालैंड की विजय सबसे आशापूर्ण है। उसकी सामुद्रिक शक्ति इंग्लैंड तथा फ्रांस दोनों से बढ़कर है। और हडसन नदी की घाटी द्वारा अन्दर के प्रदेश में प्रवेश करने के लिए उसके पास सुगम जलमार्ग है। किन्तु दूर की दृष्टि से देखा जाय तो फ्रांस की विजय ठीक जान पड़ती है। सेंट लारेंस नदी के मुहाने से उसका जलमार्ग अधिक उत्तम है और अपनी प्रवल सैनिक शक्ति द्वारा वह यूरोप में हालैंड की सैन्यशक्ति को क्षीण करके पस्त कर सकता है। सम्भवतः वह प्रेक्षक यह भी कहता है कि मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि दोनों अंग्रेजी दल कहीं न ठहरते। शायद दक्षिण के अंग्रेज उपनिवेशक बच जाते और एक घेरे में रह जाते और फ्रेंच चाहे डच जो भी मिसिसिपी की घाटी का विजेता होता उन्हें अन्दर के प्रदेश से अलग कर देता। एक बात निश्चित है कि न्यू इंग्लैंड की बंजर और उजाड़ धरती पर के रहने वाले लोप हो जायँगे क्योंकि हडसन के किनारे रहने वाले डचों ने उन्हें उनके सम्बन्धियों से अलग कर दिया है और उधर सेंट-लारेंस से फ्रेंच उन्हें दवा रहे हैं।

मान लीजिए, हमारे प्रेक्षण सोलहवीं शती की समाप्ति के बाद भी जीवित है। १७०१ में वह प्रसन्न होगा कि मैंने डचों की तुलना में फ्रेंच के सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी की थी वह सच निकली क्योंकि इन लोगों ने हडसन का क्षेत्र १६६४ में फ्रेंच को सौंप दिया। इसी बीच फ्रेंच सेंट-लारेंस होते हुए ग्रेट झीलों तक बढ़ गये और बढ़ते हुए मिसिसिपी की बेसिन तक पहुँचे।

लासाले से बढ़ते-बढ़ते नदी के मुहाने तक पहुँचे । वहाँ नयी फ्रांसीसी बस्ती लुइसियाना स्थापि हुई और उसके बन्दरगाह न्यू आरलियन्स का भविष्य उज्ज्वल था । फ्रांस और इंग्लैंड के सम्बन में हमारे प्रेक्षक को अपना विचार बदलने की आवश्यकता न थी । न्यू इंग्लैंड वालों ने न्यूया ले लिया था इस कारण नष्ट होने से बच गये थे, किन्तु उनका भविष्य उतना ही साधारण थ जितना उनके दक्षिण निवासी सम्बन्धियों का । प्रायद्वीप का भविष्य प्रायः निश्चित था, फ्रें ही इसके विजेता होने वाले हैं ।

आइए अपने प्रेक्षक की आयु हम अस्वाभाविक रूप से बढ़ा दें कि वह १८०३ की परिस्थितियों को भी देख सकें । यदि उस समय तक भी उसे हम जीवित रखें तो उसे यह स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ेगा कि अवस्था के अनुसार उसकी बुद्धि नहीं बढ़ी । १८०३ तक उत्तर अमरीका के राजनीतिक मान चित्र से फ्रांस का झंडा लोप हो गया था । ~~गत चालीस वर्षों से कैनेडा अंग्रेजी राज्य के अधीन था~~, लुइसियाना को जिसे फ्रांस ने स्पेन को दे दिया और जिसे फि स्पेन ने फ्रांस को लौटाया, नेपोलियन ने संयुक्त राज्य के हाथों बेच दिया । वही संयुक्त राज जो तेरह अंग्रेजी उपनिवेशों से महान् शक्ति में परिवर्तित हुआ ।

इस सन् १८०३ में सारा प्रायद्वीप संयुक्त राज्य की जेब में है और भविष्यवाणी की सीम कम हो गयी । अब इतना ही देखना शेष रह गया है कि संयुक्त राज्य का कौन भाग इस महा राज्य का अधिकांश हथिया लेता है । निश्चय ही इस सम्बन्ध की भविष्यवाणी में भूल नहीं ह सकती । दक्षिणी राज्य इस संघ के अधिपति जान पड़ते हैं । देखिए कि किस प्रकार पश्चिम पर विजय प्राप्त करने की दौड़ में वे आगे हैं । वरजिनिया के जंगली निवासियों ने कैंटकी क स्थापना की । पहाड़ों की श्रेणियों के पश्चिम स्थापित होने वाला यह पहला राज्य है इन पर्वतों की सहायता से फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों को पश्चिम जाने से रोक रखा था । साथ ह लंकाशायर की रुई-मिलों ने दक्षिण वालों के लिए जहाँ के जलवायु और मिट्टी के कारण रुई बहु उत्पन्न होती है, रुई का अच्छा बाजार बना रखा है ।

१८०७ में दक्षिण वाला कहता है, 'हमारे यांकी'[1] भाई ने एक भाप से चलने वाले जहाज की ईजाद की है, जो मिसिसिपी में प्रवाह के विरुद्ध जा सकती है, एक मशीन की ईजाद की है जिससे रुई धुनी जा सकती है और उसकी डोड़ी साफ की जा सकती है । ये 'यांकी विचार' उनके ईजाद वालों के बजाय हम लोगों के लिए अधिक लाभकारी है ।'

यदि हमारा बूढ़ा और अभागा भविष्यवक्ता दक्षिण वालों के उस समय के और उसके कुछ दिनों बाद के भविष्य के सम्बन्ध में दक्षिण वालों के ही मूल्यांकन के आधार पर कुछ कहता तो निश्चय ही उसका सठियाना होता । क्योंकि अन्तिम होड़ में दक्षिण वालों की भी वैसी ही तीव्र और घोर पराजय होने वाली थी जैसी डच अथवा फ्रांसीसियों की हुई ।

१८०७ की तुलना में १८६५ में परिस्थिति बिलकुल बदल गयी थी । पश्चिमी अमरीका की विजय में उत्तर वालों ने अपने दक्षिणी प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ दिया था । इंडियाना होते हुए बृहद् झीलों तक पहुँचने के बाद और मिसोरी पर भी विजय प्राप्त करके (१८२१) कंसास में

---

[1] उत्तरी अमरीका का निवासी ।—अनुवादक ।

वे पूर्ण रूप से पराजित हो गये (१८५४–६०) और प्रशान्त तक कभी नहीं पहुँच सके। न्यू इंग्लैंड वाले आज सिएटिल से लेकर लोस ऐंजेल्स तक सारे प्रशान्त तट के स्वामी हैं। दक्षिण वालों ने अपने भाप के जहाजों के बलपर सोचा था सारे पश्चिम को हम एक आर्थिक तथा राजनीतिक सूत्र में बाँध लेंगे। किन्तु 'यांकी विचार' समाप्त नहीं हो गये। भाप के जहाजों को रेल के इंजन ने मात कर दिया और वह सब दक्षिण वालों से ले लिया जो भाप के जहाजों की सहायता से उन्हें मिला था क्योंकि हडसन की घाटी और न्यूयार्क से जो अतलान्तिक का महाद्वार है, पश्चिम जाने की राह रेल के युग से साकार हुई। शिकागो से न्यूयार्क तक रेल द्वारा यातायात उससे अधिक हो रहा है जो नदी द्वारा सेंट लुई से न्यू आरलियन्स तक होता है। महाद्वीप के भीतर यातायात की प्रगति उत्तर-दक्षिण की अपेक्षा पूरब-पश्चिम अधिक है। उत्तर-पश्चिमी भाग दक्षिण से अलग हो गया है और लाभ तथा भावनात्मक दृष्टि से उत्तर-पूरब से मिल गया है।

इस प्रकार पूरब वालों ने जो पहले दक्षिण वालों को जहाज और बिनौले निकालने की मशीन देते थे, उत्तर पश्चिम वालों को दो वरदान दिये कि एक ओर तो उसने रेलवे इंजन दिया, दूसरी ओर अनाज काटने और बाँधने की मशीन दी। और उनकी दो समस्याओं को हल किया। यातायात का और श्रमिकों का। इन दो 'यांकी कल्पनाओं' द्वारा उत्तर-पश्चिम की मुक्ति निश्चित हो गयी। और दक्षिण घरेलू युद्ध (सिविल वार) आरम्भ होने के पहले हार गया। आर्थिक पराजय का प्रतिकार करने के लिए दक्षिण ने सैनिक युद्ध ठाना जिससे वह विनाश जो अवश्यम्भावी था पूरा हो गया।

यह कहा जा सकता है कि उत्तरी अमरीका में जितने उपनिवेशक थे सभी को अपनी परिस्थितियों का कठोर सामना करना पड़ा। केनेडा में फ्रांसीसियों को आर्कटिक की कटोर शीत का सामना करना पड़ा और लुइसियाना में नदियाँ वैसी ही विध्वंशकारी और अविश्वसनीय थीं जितनी चीन की हांगहो जिसके सम्बन्ध में इस प्रकार की तुलनाओं में पहले कहा जा चुका है। फिर भी जब मिट्टी, जलवायु, यातायात के साधन इत्यादि का विचार किया जाता है तब इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि न्यू इंग्लैंड वालों का उपनिवेश सब प्रदेशों से कठोर था। इस प्रकार उत्तरी अमरीका के इतिहास से भी हमारे मन्तव्य का समर्थन होता है कि जितनी ही अधिक कठिनाई का सामना करना होगा उतनी ही अधिक स्फूर्ति मिलेगी।

(२) नयी भूमि द्वारा प्रेरणा

इतना तो भौतिक परिस्थितियों के प्रभाव की तुलना के सम्बन्ध में कहा गया कि विभिन्न अंशों में कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं। इसी प्रश्न पर अब दूसरी दृष्टि से विचार किया जाय। भू-प्रदेश (टेरेन) के वास्तविक स्वरूप के अतिरिक्त यह देखा जाय कि पुरानी भूमि तथा नयी भूमि की तुलना में कौन अधिक स्फूर्तिदायक होती है। क्या नयी भूमि में किसी काम का प्रभाव स्वयं स्फूर्तिदायक होता है? इसका उत्तर अदन से निष्कासन की ओर मिस्र से प्रस्थान की कथाओं में 'हां' मिलता है। अदन के तिलिस्मी बाग से आदम का क्रियाशील संसार में प्रवेश करना आदिम मानव का फल एकत्र करने वाली आर्थिक व्यवस्था को त्यागकर कृषि तथा पशुपालन वाली सभ्यता की ओर जाने का द्योतक है। मिस्र से इसरायल के वंशजों ने जो प्रस्थान किया तो उन्होंने ऐसी पीढ़ी को जन्म दिया जिसने सीरियाई सभ्यता की नींव रखी। इन पौराणिक कथाओं से हटकर जब हम धार्मिक इतिहासों को देखते हैं तब इस अन्तर्ज्ञान की भावनाओं की

पुष्टि होती है। हमें इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। जो लोग पूछते थे कि नजारेथ[1] से क्या कोई अच्छी वस्तु निकल सकती है। उन्हें यह जानकर भय उत्पन्न हुआ कि अ-यहूदियों के अज्ञात गाँव गैलिली में यहूदियों का मसीहा उत्पन्न हुआ। यह गाँव वही नयी भूमि थी जिसे ईसा के जन्म से सौ से कुछ कम वर्ष पहले मक्काबियों[2] ने यहूदियों के लिए जीता था। और जब यह गैलीलिया का सरसों का बीज असंख्य दानों में उगा तब यहूदियों का आतंक सक्रिय विद्वेष में परिवर्तित हो गया। यह विद्वेष केवल जूडिया[3] में ही नहीं, इधर-उधर जो यहूदी बिखरे थे उनमें भी प्रविष्ट हुआ। और नये धर्म के प्रचारक जानबूझ कर अ-यहूदियों की ओर मुड़े और ईसाइयों के लिए उन्होंने नया-नया संसार विजय किया जो मक्काबी राज्य की अन्तिम सीमा से भी परे थे। बौद्ध इतिहास भी यही बताता है। इस भारतीय धर्म की निश्चित विजय भारतीय जगत् की पुरानी भूमि पर नहीं हुई। हीनयान सीलोन में गया जो भारतीय सभ्यता का उपनिवेश था। महायानी अपने भावी राज्य सुदूर पूर्व की ओर, लम्बी तथा चक्करदार राह से तब गये जब भारतीय प्रान्त पंजाब पर, जो सीरियाई तथा हेलेनी सभ्यता ग्रहण कर चुके थे उन्होंने विजय प्राप्त की। विदेशी संसार की इन नयी भूमियों पर सीरियाई और भारतीय धर्मों की प्रतिभा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति हुई जिसने इस सत्य को प्रमाणित किया कि 'अपने घर और अपने देश को छोड़ कर पैगम्बर का हर जगह आदर होता है।'

इस सामाजिक नियम की एक अनुभवसिद्ध सरल परीक्षा उन सभ्यताओं द्वारा होती है जो ऐसे 'सम्वन्धित' समाज में विकसित हुईं जो कुछ तो ऐसी भूमि पर बसे जहाँ उनके पहले एक सभ्यता विकसित हो चुकी थी और कुछ ऐसी भूमि पर जहाँ नये समाज ने अपनी नयी सम्वन्धित सभ्यता का विकास किया। इस नयी तथा पुरानी भूमियों के प्रेरणात्मक प्रभाव की परीक्षा इन 'सम्बन्धित' सभ्यताओं में से किसी एक के जीवन वृत्त का अध्ययन करके कर सकते हैं। हम उनमें उन बातों को देखें कि किस क्षेत्र में उन्होंने विशेषता अर्जित की है और तब हम यह देखें कि जिस भूमि पर यह विशेषता प्राप्त की गयी है वह नयी थी या पुरानी।

पहले हम हिन्दू-सभ्यता पर विचार करें। हम यह देखें कि हिन्दू-समाज के जीवन में जो नया सर्जनात्मक तत्त्व था, विशेषत: धर्म में, जो सदा से हिन्दू-समाज के जीवन का मुख्य तथा सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है, वह कहाँ से आया। हम देखते हैं कि इसका स्रोत दक्षिण था। हिन्दू-धर्म के विशेष रूपों का विकास यहीं हुआ। जैसे देवताओं का पार्थिव रूप में तथा मूर्तियों के रूप में निर्माण करना और मन्दिरों में स्थापित करना, भावात्मक व्यक्तिगत सम्बन्ध जो उपासक और उसके उपास्य देवता में है, पार्थिव पूजन का तात्त्विक (मेटाफिजिकल) उदात्तीकरण (सबलियेशन), और बौद्धिक कुतर्क पर आधारित दर्शन (हिन्दू धर्म दर्शन के प्रतिष्ठापक शंकराचार्य ७८८ ई० के लगभग मलाबार में पैदा हुए)। दक्षिण भारत नयी भूमि थी या पुरानी ? यह नयी भूमि थी।

---

[1] पैलेस्टाइन का नगर, जहाँ ईसा का आरम्भिक जीवन बीता था।—अनुवादक।

[2] यहूदी परिवार जो सीरियाइयों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए इतिहास में विख्यात है।—अनुवादक।

[3] पैलेस्टाइन के दक्षिण में जारडन के पश्चिमी किनारे एक जिला।—अनु०।

इसके पहले के भारतीय समाज में यह सम्मिलित नहीं हुई थी । यह अपने जीवन के अन्तिम काल में, मौर्य साम्राज्य के काल में जो भारतीय समाज का सार्वभौम राज्य था सम्मिलिति हुई । (लगभग ३२३ से १८५ ई० पू०) ।

सीरियाई समाज से दो सम्बद्ध समाजों की उत्पत्ति हुई—अरब और ईरानी । दूसरी अधिक सफल हुई और अपनी 'बहन' को हजम कर गयी । ईरानी सभ्यता किस क्षेत्र में बहुत स्पष्ट रूप में विकसित हुई ? युद्ध, राजनीति, वास्तुकला, साहित्य आदि में इसकी सभी उपलब्धियाँ ईरानी संसार के एक अथवा दूसरी छोर पर पूर्ण हुई । या तो हिन्दुस्तान में या अनातोलिया में । पहली में मुगल साम्राज्य के रूप में और दूसरी में उसमानिया (आटोमन) साम्राज्य के । दोनों उपलब्धियों की भूमि पहले की सीरियाई सभ्यता से सुदूर नयी भूमि थी । एक भूमि हिन्दू से छीनी गयी थी और दूसरी परम्परावादी ईसाई समाज से । इन दोनों उपलब्धियों की तुलना यदि मध्य की ईरानी सभ्यता से की जाय, जो सीरियाई सभ्यता से ग्रहण की गयी पुरानी भूमि पर थी, तो वह सभ्यता महत्त्वहीन है ।

परम्परावादी ईसाई सभ्यता ने सबसे अधिक शक्ति किस प्रदेश में दिखायी ? इतिहास पर दृष्टि डालने से यह पता चलता है विभिन्न कालों में इसके गुरुत्व का केन्द्र भिन्न क्षेत्रों में था । हेलेनी अन्तःकाल से निकलने पर पहले युग में परम्परावादी ईसाइयत का जीवन सबसे सशक्त अनातोलिया के पठार के मध्य तथा उत्तरपूर्वी भागों में था । उसके पश्चात् नवीं शती के मध्य से तथा उसके बाद यह गुरुत्व केन्द्र जलडमरूमध्यों के एशियाई भाग से हटकर यूरोपीय भाग की ओर चला गया । और जहाँ तक परम्परावादी ईसाई समाज के आरम्भिक तने (स्टेप) का प्रश्न है वह तबसे बालकन प्रायद्वीप में ही है । किन्तु वर्तमान युग में परम्परावादी ईसाई धर्म का मुख्य तना अपनी शक्तिशाली सभी शाखाओं से ऐतिहासिक महत्त्व में दब गया है ।

ये तीनों क्षेत्र नये माने जायँ या पुराने ? जहाँ तक रूस का प्रश्न है उत्तर स्पष्ट है । मध्य तथा उत्तर-पूर्वो अनातोलिया परम्परावादी ईसाई समाज की दृष्टि से नयी भूमि है यद्यपि दो दो हजार वर्ष पहले यह हिताइती सभ्यता का आवास था । इस क्षेत्र का हेलेनी करण रुक गया और सदा अपूर्ण रहा । हेलेनी संस्कृति को इसको पहली तथा अन्तिम देन हेलेनी समाज के जीवन काल की अन्तिम अवस्था में ईसा की चौथी शती में चर्च के केपाडोशियाई[1] पिताओं द्वारा हुई ।

परम्परावादी ईसाई समाज का शेष गुरुत्व-केन्द्र बालकन प्रायद्वीप का भीतरी भूभाग था । वह भी नयी भूमि थी । क्योंकि रोमन साम्राज्य के काल में यह प्रदेश लैटिन माध्यम में हेलेनी सभ्यता का हल्का परदा मात्र था और साम्राज्य के विघटन के पश्चात् अन्तकाल में इस परदे का पूर्ण रूप से विनाश हो गया था । उसका कोई चिह्न भी शेष नहीं रह गया था । साम्राज्य के पश्चिमी प्रान्तों में ब्रिटेन को छोड़कर कहीं इतना पूर्ण विनाश नहीं हुआ था । ईसाई रोमन प्रान्तों पर गैर-ईसाई (पेगन) बर्बर आक्रमणकारियों ने विजय ही नहीं प्राप्त की, इन बर्बरों ने स्थानीय संस्कृति की सारी बातें इस पूर्णता से मिटा दीं कि इनके वंशजों को अपने पूर्वजों के इस

---

[1] प्राचीन भूगोल में यह एशिया माइनर का एक जनपद था । ईसा के पहले यह स्वतन्त्र राज्य था । बाद में १७ ई० में यह रोमन प्रदेश हो गया । —अनु०

दुष्कर्म पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। यहाँ तक कि तीन सौ साल के बाद नये सिरे से खेती करने लिए बाहर से बीज लाने पड़े। आगस्टीन[१] के शिष्ट-मण्डल भेजने के समय ब्रिटेन की धर जितने दिनों तक बंजर थी उसके दूने समय तक यहाँ की धरती ऊसर पड़ी रही। इस प्रका परम्परावादी ईसाई सभ्यता ने जो दूसरा गुरुत्व-केन्द्र स्थापित किया उस भूमि को इन लोगों नये सिरे से ऊसर से आबाद किया।

हम देखते हैं कि जिन तीन क्षेत्रों में परम्परावादी ईसाई समाज ने विशेषता प्राप्त की वे सब नयी भूमियाँ थीं। यह और भी महत्त्व की बात है कि यूनान ने स्वयं जो इसके पहले की सभ्यता का प्रकाशयुक्त केन्द्र था, परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहास में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं किया। हाँ, ईसा की अठारहवीं शती में वह जलमार्ग बना जिसके द्वारा परम्परावादी ईसाई दुनिया में पश्चिमी प्रभाव जबर्दस्ती घुसा।

हेलेनी इतिहास के सम्बन्ध में वही प्रश्न हमें उन दो क्षेत्रों के लिए पूछना चाहिए जो एक के बाद दूसरे हेलेनी समाज में प्रमुख रहे, अर्थात् एजियन का इशियाई तट तथा यूरोप में यूनान का प्रायद्वीप। मिनोई सभ्यता की दृष्टि से ये कलम नयी भूमि पर लगे थे कि पुरानी? यहाँ भी भूमि नयी थी। जिस समय मिनोई सभ्यता का सबसे अधिक विस्तार था उस समय भी यूरोप यूनानी प्रायद्वीप की केवल दक्षिणी तथा पूर्वी तटरेखा पर मिनोइयों की कुछ दुर्गों की शृंखला थी अनातोलिया के तट पर हमारे पुरातत्त्ववेताओं ने मिनोई सभ्यता का कोई चिह्न या प्रभाव नहीं पाया है। यह बात इतनी असाधारण है कि केवल संयोग की बात नहीं कही जा सकती बल्कि इससे यह होता है कि ये क्षेत्र मिनोई सभ्यता के प्रभाव के बाहर थे। इसके विपरीत साइ कलेड द्वीपों ने, जो मिनोई सभ्यता के केन्द्र थे, हेलेनी इतिहास में निम्न कोटि का प्रभाव दिखाया ये द्वीप सागर के अधिपतियों के विनम्र चाकर मात्र थे। हेलेनी इतिहास में क्रीट का, जो मिनो सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, कार्यकलाप और भी आश्चर्यजनक है।

यह आशा की जा सकती थी कि क्रीट का महत्त्व रहता। केवल ऐतिहासिक कारणों से नहीं क्योंकि यहाँ मिनोई सभ्यता अपने शिखर पर पहुँची, किन्तु भौगोलिक कारणों से भी। एजिया द्वीप समूह में क्रीट सबसे बड़ा टापू है और हेलेनी संसार के दो महत्त्वपूर्ण सामुद्रिक राह के बीच पड़ता है। पेरिस से सिसिली को जो जहाज जाते थे उनमें प्रत्येक को क्रीट के पश्चिमी छोर और लेकोनिया से होकर जाना पड़ता था। पेरिस से मिस्र को जो जहाज जाते थे उनमें प्रत्येक को क्रीट के पूरबी छोर से और रोड्स से होकर जाना पड़ता था। किन्तु जहाँ लेकोनिया और रोड्स का हेलेनी इतिहास में प्रमुख योगदान था क्रीट अन्त तक अलग, अज्ञात और अन्धकारमय था। जिस समय हेलास में राजनीतिज्ञ, कलाकार और दार्शनिक उत्पन्न हो रहे थे क्रीट में केवल जादूगर, डाकू और लोभी पैदा हो रहे थे और बाद में तो बोएशियाई की भाँति हेलेनी लोग भी क्रीटियाई को अपमानजनक अर्थ में प्रयोग करते थे। क्रीटियों ने कविता की एक पंक्ति में जो ईसाई धर्म शास्त्र में लिखित है अपने ही लिए इस प्रकार फतवा दिया है—उनके एक पैगम्बर ने कहा है—'क्रीटियाई झूठे, पशुवत् और काहिल होते हैं।'[२]

---

[१] ईसाई सन्त (सन् ३५३–४३० ई०)।—अनु०

[२] टाइटस को पत्र—(१) इस पंक्ति का लेखक एमिमेनिलीज कहा जाता है।

अन्त में इसी कसौटी से सुदूर पूर्वी समाज को जो चीनी समाज से सम्बन्धित है परखना चाहिए, अपने क्षेत्र के किस भाग में उसने सबसे अधिक शक्ति दिखायी है ? इस समय जापानी तथा दक्षिण चीन वाले[1] इनके सबसे शक्तिशाली प्रतिनिधि हैं । और सुदूर पूर्वी इतिहास की दृष्टि से इनकी उत्पत्ति नयी भूमि में हुई है । चीन का उत्तरी-पूरवी समुद्र तट इस प्रजनित (ऐप-पैरेण्टेड) चीनी समाज के क्षेत्र में पहले नहीं सम्मिलित था । चीनी इतिहास में बहुत बाद में इसका समावेश हुआ है । वह भी राजनीति की दृष्टि से हैन साम्राज्य के सीमा प्रदेश के रूप में और साधारण ढंग से । इसके निवासी बर्बर रहे । सुदूर पूर्वी सभ्यता की जो शाखा जापानी द्वीप समूह में पल्लवित हुई वह ईसा की छठीं तथा सातवीं शती में कोरिया की राह से गयी । यहाँ की भूमि पर किसी पहले की संस्कृति का चिह्न नहीं था । सुदूर पूर्वी सभ्यता की इस शाखा का जापान की नयी भूमि पर जो वलवान् पेड़ हुआ उसकी तुलना परम्परावादी ईसाई सभ्यता की उस शाखा से की जा सकती है जो अनातोलिया के पठार से जाकर रूस की अछूती भूमि पर उगी ।

जैसा हमारे प्रमाणों से संकेत मिलता है, यदि यह ठीक है कि पुरानी भूमि की अपेक्षा नयी भूमि से क्रियाशीलता को अधिक प्रेरणा मिलती है तो ऐसी प्रेरणा उन नयी भूमियों में अधिक स्पष्ट है जहाँ पुरानी भूमियों से सागर की यात्रा करके लोग आये हैं । सागर पार स्थापित उपनिवेशों में जो यह विशिष्ट प्रेरणा की बात कही गयी है वह मध्यसागर के ई० पू० अन्तिम पाँच सौ वर्षों (१०००–५००) के इतिहास में वहुत स्पष्ट है । जब उसके पश्चिमी बेसिन् में लेवाण्ट की तीन सभ्यताओं से तीन सागरी अग्रगामी दल (पायोनियर) उपनिवेश बसा रहे थे । उदाहरण के लिए इनमें से दो महान् उपनिवेश सीरियाई, कारथेज तथा हेलेनी साइराक्यूज़ अपने मूल नगर टायर और कोरिंथ से कहीं अधिक बढ़ गये । मैगना ग्रीशिया (दक्षिणी इटली और सिसिली) में एकियाई उपनिवेश वाणिज्य और उच्च विचारों के केन्द्र बन गये, किन्तु पेलोपेनीज के उत्तर तट पर मूल एकियाई समुदाय हेलेनी सभ्यता की उच्चतम अवस्था तक अवरुद्ध अवस्था में पड़े रहे । इसी प्रकार जो लोक्रियन यूनान में रह गये उनसे कहीं अधिक उन्नति इटली के एपिज़ेफ़ियाई लोक्रियन कर गये ।

सबसे आकर्षक उदाहरण एट्रसकनों का है । यह तीसरा दल था जो पश्चिमी मध्यसागर के उपनिवेशीकरण में 'फोइनीशियनों' तथा यूनानियों से होड़ में था । जो एट्रसकन पश्चिम गये वे यूनानियों और फोइनीशियनों के विपरीत जिस सागर को पार करके आये थे उसके निकट रहने में सन्तुष्ट नहीं थे । वे इटली के पश्चिमी तट से आगे अन्दर की ओर चले गये और अपेनाइन पहाड़ तथा तो नदी को पार करते हुए आल्प्स की तराई तक पहुँच गये । जो एट्रसकन घर पर रह गये उनका चिह्न तक नहीं रह गया क्योंकि इतिहास उनसे अनभिज्ञ है और उनके निवास का भी ठीक-ठीक पता नहीं है । यद्यपि मिस्री अभिलेखों में यह संकेत मिलता है कि मूल एट्रसकन उस जनरेला में सम्मिलित थे जो मिनोइयों के बाद हुआ था और उनका क्रिया-कलाप लेवाण्ट के पूर्वी तट पर कहीं हो रहा था ।

जनरेला में समुद्र पार करके जाने का बहुत स्फूर्तिदायक प्रभाव पड़ता है । ऐसी घटना

---

[1] मूल पुस्तक में 'कैन्टनीज़' शब्द का प्रयोग किया गया है । —अनुवादक

असाधारण है । इस विषय के लेखक को एक ही ऐसा उदाहरण मिलता है और वे हैं एजि सागर पार कर के अनातोलिया के पश्चिमी तट की ओर ट्युक्रियनो, आयोलियनों, आयोनिय तथा डोरियनों का मिनोइयों के बाद वाला जनरेला, ट्युक्रियनों और फिलस्तीनियों का सीरि के तट की ओर का जनरेला, और एंथिलो तथा जूटों का ब्रिटेन की ओर हेलेनी सभ्यता के बाद जनरेला । क्रिटनों का सागर पार कर उस जगह आना जिसे ब्रिटानी कहते हैं, उसी समय आ रिश स्काटों का आरजिल को जाना, और स्कांडिनेवियाई वाइकिंगों का जनरेला जो उस स हुआ था जब कैरिलिजियनों ने मृत रोमन साम्राज्य को पुनरुज्जीविति करने का असफल प्रय किया था । कुल छः उदाहरण हैं । इनमें से फिलस्तीनियों का प्रव्रजन प्रायः निष्फल रहा जैसा कि पहले (पृ० ७७) बताया गया है । ब्रिटनों के बाद के इतिहास में भी कोई विशेष नहीं है । शेष चार सागर के पार के प्रव्रजनों में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ पायी जाती हैं थल पर के प्रव्रजनों में नहीं मिलतीं ।

सागर को पार करके जो प्रव्रजन हुए हैं उनमें एक वात सबमें पायी जाती है । सागर पा करने वाले प्रवासियों को अपने सामाजिक उपकरणों को अपने पुराने देश से अपने साथ ले जा पड़ा और नये देश में उसका प्रयोग करना पड़ा । सभी उपकरण——व्यक्ति और समाज, तकनी और संस्थाएँ तथा विचार इसी नियम के अधीन हैं । उन सभी वस्तुओं को जो समुद्र यात्रा सह नहीं कर सकती पीछे छोड़ देना पड़ता है । केवल भौतिक पदार्थ ही नहीं जिन्हें यात्रा में प्रवा ले जाते हैं और उन्हें अलग-अलग करके ले जाना पड़ता है और नये विकास में पहुँचने पर उ अपने मूल रूप में सम्भवतः फिर जोड़ा नहीं जाता । नये देश में पहुँचकर उपकरणों का बंडल जब वह खोलता है तब उसे पता चलता है समुद्र की यात्रा में इन उपकरणों में विचि और सूक्ष्म परिवर्तन हो गया है । इस प्रकार का सामुद्रिक प्रवास जब जनरेला द्वारा होता है चुनौती अधिक भीषण होती है और प्रेरणा और भी तीव्र होती है । क्योंकि जिस समाज पर प्रतिक्रिया हो रही है वह कोई प्रगतिशील समाज नहीं होता (जैसे यूनानी या फोएनीशिय उपनिवेशक जिनके सम्बन्ध में पहले विचार किया जा चुका है) वह ऐसा समाज होता है गतिहीन है और जो आदिम मानव की अन्तिम अवस्था में होता है । जनरेला में यह कर्मण्यत एकाएक वेग और गति में परिवर्तित हो जाती है । इससे समुदाय के जीवन को शक्ति प्राप्त होती है । और जब यह प्रवास भूमि पर से न होकर, जहाज द्वारा होता है तब यह गति अधिक ती हो जाती है । क्योंकि जहाज से जाने पर बहुत-सा सामाजिक उपकरण छोड़ देना पड़ता है जिन्हा भूमि पर की यात्रा में प्रवास करने वाले अपने साथ ले जाते हैं ।

"(समुद्र यात्रा के वाद) दृष्टि में अन्तर हो गया जिसके कारण देवताओं तथा मनुष्यों सम्बन्ध में नयी धारणाएँ वन गयीं । स्थानीय देवताओं के स्थान पर, जिनकी शक्ति उपासक के निवास के क्षेत्र में इतनी व्यापक थी, अब ऐसे समवेत (कारपोरेट) देवता हो गये जो विश्व भ पर शासन करते थे । जो मन्दिर कलंकित गृह के साथ 'मिडिलगाथ' का केन्द्र था वह ईश्वरीय प्रसाद वनाकर सम्मानित किया गया । काल-सम्मानित कथाएँ जिनमें अलग-अलग देवताओं के गुण-गान थे ईश्वरीय गाथाओं में बदल गयीं । उसी प्रकार जैसे पहले की बाइकिंग जाति

होमरी यूनानियों में बदल गयी । इस धर्म ने एक नये देवता ओडिन को जन्म दिया जो मनुष्यों का नेता और युद्ध का देवता था ।"[1]

कुछ-कुछ इसी प्रकार जो स्काट आयरलैंड से उत्तरी ब्रिटेन में आये उन्होंने नये धर्म की नींव डाली । यह केवल संयोग की बात नहीं है कि सागर पार डालरियाडा सन्त कोलम्बा[2] के धार्मिक कार्यों का मुख्य स्थान बना और आयोना उसका केन्द्र ।

समुद्र पार के प्रवास की विशेष घटना यह होती है कि विभिन्न जातीय प्रवृत्तियाँ एक दूसरे में मिल जाती हैं । इसमें पहला उपकरण जो त्याग दिया जाता है वह है आदिम कुटुम्ब दल । क्योंकि किसी एक जहाज में एक ही श्रेणी का दल रह सकता है । अनेक जहाज सुरक्षा के लिए एक साथ चलते हैं और अपने नये निवास में एक साथ रहने लगते हैं । वे विभिन्न स्थानों के होते हैं । थल की राह से जो प्रवास होता है उसमें बाल-बच्चों समेत अपने घर का सरो-सामान लेकर सारा कुटुम्ब एक साथ धीरे-धीरे घोंघे की गति से चलता है ।

समुद्र पार के प्रव्रजन की दूसरी विशेषता यह है कि आदिम संस्थाओं का, जिनमें एक ही प्रकार के सामाजिक जीवन की मुख्यतः अभिव्यक्ति होती है, विनाश हो जाता है । इस प्रवास के पहले ऐसा नहीं होता । प्रवास में विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक प्रवृत्तियाँ, विभिन्न धर्म तथा कलाएँ मिलती हैं और नयी सामाजिक चेतना जाग्रत हो जाती है । यदि इस संस्कार की महिमा हम देखना चाहें तो स्कांडिनेवी संसार में देख सकते हैं । जो स्कांडिनेवी घर पर ही रह गये उनकी तुलना करके देखिए—

"आइसलैंड में मई दिवस के खेल-कूद, वैवाहिक संस्कार तथा प्रेम के दृश्य उपनिवेशकों के बस जाने के बाद नहीं रह गये । एक तो इस कारण कि बसने वाले यात्रा करके आये थे और प्रबुद्ध श्रेणी के थे, दूसरे यह कि ये ग्रामीण समारोह कृषि से सम्बन्धित थे जो आइसलैंड के महत्त्व का कार्य नहीं हो सकता था ।"[3]

चूँकि आयरलैंड में भी किसी न किसी प्रकार की खेती होती ही थी । इसलिए जो दो कारण बताये गये हैं उनमें पहला अधिक महत्त्व का है ।

जिस पुस्तक का अवतरण उद्धृत किया गया है उसका प्रतिपाद्य विषय यह है कि जो स्कांडिनेवियाई कविताएँ 'दि एडलर एड्डा' के नाम से लिपिबद्ध की गयी उनमें आदिम स्कांडिनेवियाई कृषि-नाट्य (फरण्टिलिटी ड्रामा) की बोली के शब्दों का व्यवहार किया गया है । यही भाग था जो स्थानीय संस्कारों में जड़ पकड़े हुए था और जिन्हें प्रवासी अपने साथ जहाज पर लेकर आये । इस सिद्धान्त के अनुसार आदिम संस्कार जो नाटकों में विकसित होते थे उन्हें प्रवासियों ने रोक दिया । इस सिद्धान्त का समर्थन हेलेनी इतिहास में भी होता है । क्योंकि यह निश्चित

---

[1] बी० ग्रावबेख : द कलचर आव द ट्यूटन्स, भाग २, पृ० ३०६–७ ।

[2] आयरलैंड के एक सन्त जिन्होंने स्काटलैंड और उत्तरी इंग्लैंड में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए मिशनरी भेजे ।—अनु०

[3] बी० एस० फिलपाट्स : दि एलडर एड्डा ऍंड एन्शेन्ट स्कांडिनेवियन ड्रामा, पृ० २०४ ।

तथ्य है कि यद्यपि हेलेनी सभ्यता का विकास सागर पार आयोनिया में हुआ, आदिम सं के आधार पर जो हेलेनी नाटकों का विकास हुआ वह यूनान के प्रायद्वीप की भूमि पर हु अपसाला के मन्दिर का प्रतिरूप हेलास में एथेन्स का डायोनाइसस की नाट्यशाला थी। दू ओर आयोनिया, आइसलैंड तथा ब्रिटेन में सागर पार आने वाले प्रवासियों ने हेलेनी, स्कां वियाई तथा एंग्लो सैक्सन महाकाव्यों की रचना की अर्थात् होमर, दि एड्डा और वेओवल्

गाथा तथा महाकाव्यों का निर्माण उन मानसिक आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप हो जो शक्तिशाली व्यक्तियों के नवीन जागरण तथा महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक घटनाओं के कारण उ होते हैं। होमर कहता है—'उस काव्य की लोग अधिक प्रशंसा करते हैं जिनमें कानों में नवीनता सुनाई देती है।' किन्तु महाकाव्य में नवीनता से अधिक एक बात का मूल्य होता है वह है कथानक में वास्तविक मानव की अभिरुचि। वर्तमान में तभी तक रुचि रहती है जब वीरकाल का वेग और संघर्ष रहता है। किन्तु सामाजिक संवेग अस्थायी होता है और जब समाप्त हो जाता है महाकाव्य तथा गाथा के प्रेमी अनुभव करने लगते हैं कि हमारे युग का जी निस्तेज हो गया है। तब वे पुरानी की अपेक्षा नयी कविता पसन्द करने लगते हैं। तब नये यु कवि सुनने वालों के मनोभाव के अनुसार पुरानी पीढ़ी की कथाओं को अलंकृत करते और दो हैं। इसी बाद के युग में महाकाव्य तथा गाथाएँ साहित्यिक पराकाष्ठा को पहुँची। भी यह समझना चाहिए कि ये महान् रचनाएँ कभी न विद्यमान होतीं यदि सागर पार कर कष्टों से प्रेरणा न प्राप्त होती। हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि 'नाटक का विकास निवास में होता है—और महाकाव्य का प्रवासियों में।'[1]

सागर पार प्रवास की अग्नि-परीक्षा के फलस्वरूप दूसरी निश्चयात्मक रचना जो जन के पश्चात् होती है वह साहित्यिक नहीं, राजनीतिक होती है। यह नये ढंग का राज्यतन्त्र म्बिक नहीं होता, संविदा (कन्ट्रेक्ट) पर आधारित होता है।

सबसे प्रमुख उदाहरण वे नागरिक राज्य हैं जिन्हें समुद्रगामी यूनानी प्रवासियों ने अनातो के तट पर उन जनपदों में स्थापित किया जो बाद में आयोलिस, आयोनिया और डोरिस के ना विख्यात हुए। हेलेनी वैधानिक इतिहास के अल्प अभिलेखों से पता चलता है इन सागर की बस्तियों में जो संगठन हुए उनके आधार विधि और वे प्रदेश थे, कुटुम्ब और रीति-रि नहीं। बाद में यूरोपीय यूनान ने इनका अनुकरण किया। इस प्रकार सागर पार जो नगर स्थापित हुए, जो नये राजनीतिक संगठन के शक्ति केन्द्र कुटुम्ब नहीं थे, जहाज की कम्पनि थीं। जिन लोगों ने जहाज पर आपस में सहयोग किया, जैसे एक जहाज के सब साथी सागर विपत्तियों को झेलते हुए करते हैं, उसी प्रकार वे किनारे आकर तट की धरती की उस पतली पर भी करते हैं जिसे उन्होंने परिश्रम से जीता है और जहाँ उन्हें पृष्ठप्रदेश के वैरियों से भय रहता है। जिस प्रकार सागर में उसी प्रकार किनारे पर भी, कुटुम्ब से अधिक संगत का मह होता है और चुने हुए तथा विश्वसनीय नेता की आज्ञा रीति-रिवाज की भावनाओं से अपर करती है। वास्तविकता यह है कि जो जहाजों का गिरोह मिलकर समुद्र पार किसी स्थान

---

[1] बी० एस० फिलपाट्स : दि एल्डर एड्डा, पृ० २०७।

विजय प्राप्त करता है, वह स्वभावतः नगर-राज्य में परिवर्तित हो जाता है और स्थानीय दल बन ाता है जिसपर एक चुना हुआ मजिस्ट्रेट शासन करता है ।

जब हम स्कांडिनेवियाई जनरेला पर दृष्टि डालते हैं तब वहाँ भी हमें इसी प्रकार के राजनीतिक वकास का अंकुर दिखाई देता है । यदि अकाल प्रसूत स्कांडिनेवियाई सभ्यता को पश्चिमी यूरोप ा न गया होता और वह विकसित होती तो जो कार्य आयोलिस और आयोनिया के नगर राज्यों किया था वही आयरिश तट पर ओस्टमन के पाँच नगर-राज्य करते या वे पाँच नगर (लिंकन, म्फोर्ड, लाइसेस्टर, डरबी और नार्टिघम) जिन्हें डैनियों ने मरशिया में अपनी भूमि की सीमा ो रक्षा के लिए संगठित किया था सागर पार स्कांडिनेवियाई राजतन्त्र का सबसे सुन्दर उदाहरण आइसलैंड का लोकतन्त्र था जो देश अपनी जन्मभूमि (स्कांडिनेविया) से पाँच सौ मील दूर टिक सागर के फेरो द्वीप समूह में एक टापू था जहाँ की धरती ऊसर थी ।

जहाँ तक एंगलियों और जूटों का समुद्र पार करके ब्रिटेन में आने की घटना है केवल योग की ही बात नहीं है, कुछ अधिक भी है, कि जिस द्वीप पर पश्चिमी इतिहास के प्रभात में प्रवासियों ने अधिकार किया, जिन्होंने सागर पार कर आदिम कौटुम्बिक बन्धनों को तोड़ ला था, उसी द्वीप में हमारे पश्चिमी समाज के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विकास हुए जिन नियों तथा नारमन आक्रमणकारियों ने एंगिलियों के बाद प्रवेश किया और जिन्हें भी बाद राजनीतिक उन्नति का श्रेय मिलता है उन्हें भी ऐसे ही बन्धनों के तोड़ने का अनुभव हुआ था । जातियों ने मिलकर राजनीतिक उन्नति की जिसके लिए यहाँ बहुत उपयुक्त वातावरण मिला । में आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारे पश्चिमी समाज ने इंग्लैंड में पहले राजा का निर्माण या और उसके बाद संसदीय शासन स्थापित करने में सफलता प्राप्त की । इसके विपरीत रोप के महाद्वीप में पश्चिमी राजनीतिक विकास रुक गया क्योंकि फ्रांकों और लम्बार्डों में टुम्बिक भावना का अस्तित्व बना रहा इस कारण से कि यह सामाजिक दोष आरम्भ में सागर त्रा से मिट न सका ।

(३) आघात से प्रेरणा

भौतिक वातावरण द्वारा जो प्रेरणा प्राप्त होती है उसकी परीक्षा हमने की । इस अध्ययन हम यह देखकर पूरा करेंगे कि इसी प्रकार मनुष्य द्वारा उत्पन्न की हुई परिस्थिति का ा परिणाम होता है । दो परिस्थितियों का अन्तर इसमें देखना होगा एक तो वह मानवी रस्थिति जो भौगोलिक दृष्टि से उस समाज के बाहर की है जिसपर उनकी प्रतिक्रिया होती और दूसरी वह जो भौगोलिक दृष्टि से उस समाज से मिली हुई है पहले वर्ग में वे प्रतिक्रियाएँ म्मिलित हैं जो उन समाजों अथवा राज्यों द्वारा अपने पड़ोसियों पर होती हैं जब दोनों दल किसी शेष क्षेत्र में अलग-अलग अधिकारी होते हैं । संगठन ऐसे सामाजिक सम्पर्क में शिथिल होता और संगठन की दृष्टि से मानवी परिस्थिति, जिसका सामना उन्हें करना पड़ता है वह 'बाहरी' थवा 'विदेशी' हैं । दूसरा रूप वह है जिसमें दोनों वर्ग एक ही क्षेत्र में मिले हुए अधिकारी हैं र एक वर्ग की प्रतिक्रिया दूसरे वर्ग पर होती है । इस प्रकार के सम्बन्ध को हम 'आन्तरिक' थवा 'घरेलू' कहेंगे । इस आन्तरिक मानवी परिस्थिति की जाँच हम बाद में करेंगे । बाहरी घात के हम और विभेद करेंगे । आकस्मिक आघात और उसके परिणामस्वरूप जो बराबर

दबाव पड़ता है । इस प्रकार हमारी परीक्षा के लिए तीन विषय हैं । बाहरी आघात, दबाव और आन्तरिक दण्ड ।

आकस्मिक आघात का क्या प्रभाव पड़ता है ? हमारी जो प्रस्तावना है कि जित बड़ी चुनौती होगी उतनी ही अधिक प्रेरणा मिलेगी, क्या यहाँ भी सत्य उतरती है ? स्वभा पहले वे स्थितियाँ सामने आती हैं जहाँ किसी सैनिक शक्ति को अपने पड़ोसियों से बराबर करते रहने से प्रेरणा प्राप्त हुई है और फिर असैनिक शक्तियों को किसी ऐसे बैरी से पराजय है जिनके बल की उन्होंने पहले कल्पना नहीं की थी । जब आरम्भिक साम्राज्य निर्माता अपने कार्य-काल के बीच ही नाटकीय ढंग से पतन होता है तब साधारणत: क्या होता क्या वे धराशायी होने पर सिसेरा की भाँति धरती पर पड़ रहते हैं कि हेलेनी कथा के (जायण्ट) ऐण्टीयस की भाँति दुगनी शक्ति लेकर फिर उठते हैं ? ऐतिहासिक उदाहरण ही मिलते हैं कि दूसरी ही बात साधारणतया होती है ।

उदाहरण के लिए विदेशी आक्रमण द्वारा पराजय का प्रभाव रोम की गति-विधि पर पड़ा ? एट्रस्का के वेइआई से लगातार पाँच वर्षों के युद्ध के पश्चात् रोम ने विजय प्रा और उसी के पश्चात् यह पराजय हुई । और उसी के पश्चात् रोम की ऐसी स्थिति हुई कि लैटियम पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया । रोमन सेना का एलिया में पराजय और फ बर्बरों द्वारा रोम पर आक्रमण करना और उस पर अधिकार जमा लेना इतना पर्याप्त रोम ने अभी जो शक्ति और कीर्ति अर्जित की थी वह एक क्षण में मिट जाय । किन्तु ऐसा हुआ । (गैलिक पराजय से रोम इतनी शीघ्रता से पुनरुज्जीवित हो गया कि पचास साल ही अवधि में बाद में अपने इटालियाई पड़ोसियों से और अधिक दिनों तक लड़ता रहा औ में ऐसी विजय पायी कि सारे इटली पर उसका प्रभुत्व हो गया ।)

और भी देखिए । उसमानलियों की शक्ति का क्या हुआ जब तैमूर खाँ ने बजा सुलतान बेयजीद यिलदरीस को अंगौरा के रण-क्षेत्र में बन्दी बनाया ? यह दुर्घटना उस सम जब उसमानली परिवार बालकन प्रायद्वीप में परम्परावादी ईसाई समाज को पूर्ण रूप से पर करने वाला ही था । इसी संकटकाल में जलडमरूमध्य के एशियाई तट पर ट्रांस आक्जे की ओर से वज्र प्रहार हुआ और वे धराशायी हो गये । यह सम्भावना थी कि साम्राज्य का प्रासाद ढह जाता । किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ । पचास साल के बाद विजयी मुह साहब ने कुसतुनतुनिया पर विजय प्राप्त करके बैयजीद प्रासाद के मुँडेरे का पत्थर रखा ।

(रोम के असफल प्रतिद्वन्द्वियों के इतिहास से प्रकट होता है कि जिस समय समाज की पराजय होती है उसे उस पराजय के परिणामस्वरूप क्रियात्मक शक्ति प्राप्त होती है और अधिक पराजय के कारण वह शक्ति नष्ट हो जाती है और जिस कार्य के लिए वह उत्पन्न होती है, वह कार्य नहीं हो पाता) पहले प्युनिक युद्ध में हेमिलकार बारका की पर हुई । उससे उसे उत्तेजना मिली और उसने अपने देश के लिए विजय प्राप्त करके स् साम्राज्य स्थापित किया । सिसिली जो साम्राज्य यह हार चुका था उससे बड़ा यह साम्राज्य था । दूसरे प्युनिक युद्ध में हैनिबल की पराजय के पश्चात् कारथेजिनियनों ने वर्षों में अपने सम्पूर्ण विनाश के पहले दो कार्यों से संसार को चकित कर दिया । पहला तो कि उन्होंने अपने ऊपर लगी युद्ध की क्षतिपूर्ति बड़ी शीघ्रता से कर दी और अपना वा

व फिर से प्राप्त कर लिया । दूसरे अपने अन्तिम विनाशकारी युद्ध में वीरता से उनकी सारी ता पुरुष, स्त्री और बच्चों ने लड़कर अपने प्राणों की आहुति दे दी । और देखिए । मैसेडन पाँचवाँ फिलिप जो पहले निष्क्रिय राजा था, साइनोरिनफिली की लड़ाई के बाद इतना वीर या और इसने अपने देश को इतना शक्तिशाली बना दिया कि उसके पुत्र परसियुस ने अकेले से मोर्चा लिया और पिडना में अपने सम्पूर्ण पराजय के पहले उसे लगभग हरा चुका था ।

इसी प्रकार का एक और उदाहरण है यद्यपि उसका परिणाम भिन्न है । जब आस्ट्रिया ान्तिकारी और नेपोलियन के युद्धों में पाँच बार हस्तक्षेप किया, पहले तीन बार जब उसने क्षेप किया उसमें उसे पराजय ही नहीं, अप्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई । आस्टरलिट्स के युद्ध के इसने अपनी कमर कसनी आरम्भ कर दी । यदि आस्टरलिट्स उसके लिए साइनोसेफेली तो वैगरम उसका पिडना था । किन्तु मैसेडन से वह अधिक भाग्यशाली था । उसने फिर क्षेप किया और १८१३ में विजय पायी ।

इन्हीं युद्धों के चक्रों में प्रशिया का कारनामा और भी आश्चर्यजनक है । उन चौदह वर्षों जसका अन्तिम स्वरूप जेना का युद्ध था, जिसमें उसे अच्छी तरह मुँह की खानी पड़ी, प्रशिया की त निरर्थक और अपमानजनक थी । आइलाऊ में शीतकाल का भयंकर युद्ध हुआ और सिट में जो कठोर शर्तें उसपर लगायी गयीं उनसे प्रेरणा मिली जो जेना के पहले धक्के से म्भ हुई थीं । इस स्फूर्ति से प्रशिया ने जो शक्ति अर्जित की वह आश्चर्यजनक थी । उसके रण केवल प्रशिया की सेना ने ही नहीं नया जीवन प्राप्त किया, उसकी शासन तथा शिक्षा स्था ने भी नया रूप धारण किया । असल में इसके कारण प्रशिया वह पात्र बना जिसमें मन राष्ट्रीयता की नयी शराब रखी जा सके । इसी के कारण स्टाइन, हारडनबुर्ग, हमबोल्ट र बिसमार्क तक का क्रमशः विकास हुआ ।

यही क्रिया हमारे युग में दोहरायी गयी । यह घटना इतनी दुखद है कि कहने की आवश्यकता सगं । सन् १९१४-१८ में जरमनी की जो पराजय हुई और इस पराजय को और तीव्र कर दिया । २३-२४ में फ्रांसीसियों द्वारा रूर की घाटी पर कब्जा, उसी का परिणाम हुआ नाजियों का क्जेफल, किन्तु अमानुषिक बदला ।[1]

किन्तु प्रहार से स्फूर्ति प्राप्त होने का क्लासिकी उदाहरण साधारण हैलास का तथा विशेषतः न्स का है । जब ४८०-४७९ ई० पू० में फारस का आक्रमण हुआ जो सीरियाई सार्वभौम य था । जितनी ही एथेन्स को पीड़ा पहुँची उसी के अनुपात में उसका उत्कर्ष हुआ । यद्यपि एशिया के उपजाऊ खेतों की रक्षा उनके मालिकों के विश्वासघात के कारण स्वयं हो गयी

---

[1] पुस्तक के इस भाग को ट्वायनबी ने १९३१ की गर्मियों में लिखा था । उस समय डा० ब्रुईनिंग चांसलर थे । मगर जब सितम्बर १९३० में राइखस्ताग के चुनाव में नाजियों अभूतपूर्व विजय हुई और इन लोगों को ४९१ स्थानों में १२ के बजाय ५७७ में १०७ स्थान े । उन्होंने लिखा—'यह स्पष्ट हो गया कि जो प्रहार १९१८ के युद्धविराम के पश्चात् मनी पर हुए हैं उनसे उसे वही स्फूर्ति मिली है जो एक सौ साल पहले १८०६–७ में प्रशिया उसकी पराजय के पश्चात् प्राप्त हुई थी । —सम्पादक ।

और लेसिडेमान के उपजाऊ खेतों की रक्षा एथेनी जहाजी बेड़ों ने की, एटिका की धरती दो आक्रमणों में उजड़ गयी। एथेन्स को दखल कर लिया गया और उसके मन्दि कर दिये गये। एटिका की सारी जनता को अपना देश खाली कर देना पड़ा और सागर के पैलोपोनीस में शरणार्थी के रूप में जाना पड़ा। इस परिस्थिति में एथेनी जहाजी लड़ना पड़ा और सलानिस का युद्ध उसने जीता। इसमें आश्चर्य नहीं। जिस प्रहार जनता की अजेय आत्मा को उत्तेजित किया वह उस अद्वितीय उपलब्धियों की भू जिसने अपनी चमक तथा विविधता से मानव के इतिहास को प्रकाशित किया है। उन उनके देश के पुनरुत्थान के प्रतीक थे। उनके पुनर्निर्माण में जो समता पेरिक्लीजयुगी ने दिखायी वह १९१८ के बाद वाले फ्रांस से कहीं अधिक सजीव थी। जब रीम्स गिरजा घर को फ्रांस ने फिर से प्राप्त किया तब उसने हरएक पत्थर के टुकड़े को और टूटे टुकड़े को यथास्थान स्थापित किया। एथीनियनों ने जब हैकांटाम्पेडन को ऊपर तक भस्म पाया तब उन्होंने उस नींव को वहीं रहने दिया और नये स्थान पर पारथियन का किया।[1]

प्रहारों के कारण जो स्फूर्ति मिलती है उसका सबसे अच्छा उदाहरण सैनिक पर मिलता है। खोजने पर इसके बहुत-से उदाहरण मिल सकते हैं। हम केवल एक उदाहरण तक अपने को सीमित रखेंगे 'शिष्यों के विधान' (एक्ट्स आव द अपासिल्स) में विधान इसलिए बनाये गये थे कि हेलेनी संसार पर ईसाई विजय प्राप्त करें। इनक ऐसे समय आया जब उनका गुरु आश्चर्यजनक रीति से पुनरुज्जीवित होकर फिर लोप हु सूली पर चढ़ाने वाली घटना से यह दूसरी घटना अधिक निराशाजनक होती। किन्तु इ के ही अनुपात में उनकी आत्माओं में मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियिा उत्पन्न हुई जिसकी कथ में दो अभिव्यक्तियाँ इस प्रकार हैं। दो मनुष्य धवल वस्त्र में दृष्टिगोचर हुए और पेटि समय आग की लपटों का अवतरण हुआ। पवित्र आत्मा (होली गोस्ट) की शक्ति उन्होंने सूली पर चढ़े हुए तथा लोप हुए ईसू के ईश्वरत्व का प्रचार यहूदी जनता में ही न सबसे ऊँचे न्यायालय[3] में भी किया। और तीन सौ साल के भीतर ही रोमन सरकार से पराजित हो गयी जो ऐसे समय स्थापित हुआ था जब उनका मन बहुत गिरा हुआ था

(४) दबाव द्वारा प्रेरणा

अब ऐसी स्थितियों की परीक्षा की जायगी जहाँ आघात का स्वरूप दूसरे ढंग का है लगातार बाहरी दबाव। राजनीतिक भूगोल की शब्दावली में ऐसी जातियाँ, राज्य अथव जिन्हें ऐसे दबाव का सामना करना पड़ता है, 'मार्च' अर्थात् सीमा प्रदेश कहे जाते हैं। और

---

[1] लन्दन में १०६६ के विशाल अग्निकाण्ड के बाद प्राचीन गोथिक वास्तुकला क रुज्जीवित न करके रेन ने सन्तपाल का गिरजा घर बनाया। यदि युद्ध में वेस्टमिनिस्ट या सन्तपाल का गिरजा घर ध्वस्त हो जाता तो आज के लन्दन वाले क्या करते ?—सम्पा

[2] यहूदियों का फसल काटने का त्योहार।—अनु०

[3] सैनहैडराइन—यहूदियों का सबसे ऊँचा न्यायालय—जिसमें ७१ सदस्य होते थे।

नुभव जनित अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते हैं कि समाजों में ऐसे सीमा प्रदेशों ने उस समय ा किया है जब उनपर बाहरी दवाव पड़ा है और इसकी तुलना हम उन प्रदेशों के कार्यों से ें जो देशों के बीच सुरक्षित रूप से स्थित है ।

मिस्री संसार में :—मिस्री सभ्यता के इतिहास में तीन ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर आये हैं जब टनाओं का संचालन ऊपरी मिस्र के दक्षिण की शक्तियों द्वारा हुआ । संयुक्त राज्य (यूनाइटेड गडम) की स्थापना लगभग ३१०० ई० पू० हुई, सार्वभौम राज्य की स्थापना लगभग २०५८ पू० और इसका पुनःस्थापन लगभग १५८० ई० पू० । ये सब घटनाएँ उस छोटे सँकरे देश द्वारा सम्पादित हुईं । मिस्री साम्राज्य की यह जननी सच पूछिए तो मिस्री संसार की दक्षिणी मा थी जिसपर न्यूबिया के कबीलों का दबाव पड़ता रहा । किन्तु मिस्री इतिहास के पिछले ल में—अर्थात् नये साम्राज्य के पतन और ईसा की पाँचवीं शती में जब मिस्री समाज का पूर्ण प हो गया, इन सोलह धुँधली शक्तियों में——राजनीतिक सत्ता डेलटा में चली गयी जो उत्तरी फ्रीका तथा दक्षिण-पश्चिम एशिया की सीमा थी । यह सत्ता उसी प्रकार इधर आती गयी स प्रकार पहले दो हजार वर्षों में दक्षिणी सीमा की ओर आती रही । इस प्रकार मिस्री संसार ा राजनीतिक इतिहास अथ से इति तक उत्तरी और दक्षिणी सीमा की राजनीतिक सत्ताओं के च के खिंचाव के अनुसार ही थी । ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जिसमें महान् राजनीतिक टनाएँ सीमा पर न होकर अन्तरदेशवर्ती हों ।

क्या हम इसका कोई कारण दे सकते हैं कि मिस्री इतिहास के पहले आधे युग में उत्तरी सीमा ा प्रभुत्व क्यों रहा और अन्तिम आधे काल में दक्षिणी सीमा का ? कारण यह जान पड़ता है न्यूबियनों की सैनिक पराजय और तोतमीज़ प्रथम (लगभग १५८५–१४९५ ई० पू०) के ल में उनकी सांस्कृतिक विलीनता के पश्चात् दक्षिणी सीमा पर दबाव कम हो गया अथवा माप्त हो गया । और उसी समय अथवा थोड़े ही समय के बाद सीबिया के बर्बरों तथा दक्षिण-श्चिम एशिया के राज्यों का दबाव जोरों से बढ़ने लगा । इस प्रकार मिस्र के राजनीतिक तिहास पर सीमा प्रान्तों का प्रभाव केन्द्रीय प्रान्तों की अपेक्षा अधिक पड़ता है । इतना ही नहीं, स सीमा पर सबसे अधिक आक्रमण का भय रहता है उसी का प्रभाव सबसे अधिक होता है ।

ईरानी संसार में :—यही परिणाम दूसरी परिस्थिति में दो तुर्की जातियों, उसमानलियों ा करमानलियों के विरोधी इतिहासों से मिलता है । ये दोनों जातियाँ चौदहवीं शती में नातोलिया के एक-एक भाग पर राज्य करती थीं । ये भाग ईरानी संसार के पश्चिमी प्राचीर थे ।

ये दोनों तुर्की जातियाँ अनातोलिया के मुसलिम सलजुक सुलतानों की उत्तराधिकारिणी । ग्यारहवीं शती में धार्मिक युद्ध[1] के पहले, सलजुक तुर्की योद्धाओं ने परम्परावादी ईसाई ाज को हराकर दारुलइस्लाम का विस्तार किया और इस लोक तथा परलोक में अपने लिए ह बनायी । ईसा की तेरहवीं शती में जब यह सुलतानी शासन नष्ट हो गया तब सलजुकों राज्य का करमानलियों को सबसे श्रेष्ठ तथा उसमानलियों को सबसे निकृष्ट भाग मिला ।

---

[1] ईसाइयों तथा मुसलमानों का वह युद्ध जो ईसाइयों ने अपने धार्मिक स्थानों की प्राप्ति लिए किया था ।—अनुवादक

करमानली को राज्य का हीर मिला जिसकी राजधानी कोनिया थी और उसमानली को भाग जो भूसी के समान था ।

उसमानलियों को सलजुकों के राज्य का निकृष्ट भाग इसलिए मिला कि वे सबसे पीछे दीन अवस्था में आये । 'उसमान' जो उनकी जाति का उपनाम था, और जो किसी अज्ञा का लड़का था कुछ अज्ञात शरणार्थियों के गिरोह का नेता बन गया । ये अव्यवस्थित और जब पूर्वी यूरेशियाई स्टेप के मध्य से ईरानी समाज की उत्तर-पूर्वी सीमा पर होने लगा तब ये सीमा के अन्तिम छोर तक ढकेल दिये गये । अनातोलिया सलजुक के शासक ने इन शरणार्थियों को, जो उसमानलियों के पूर्वज थे अनातोलिया के पठार की पश्चिमी सीमा का एक टुकड़ा दे दिया । यहाँ सलजुकों के राज्य की और बाइजेंटी (वाइजेन्ट साम्राज्य की सीमाएँ मिलती थीं, जो मर्मर सागर के एशियाई किनारे तक विस्तृत था । भाग में सदा आक्रमण का भय बना रहता था । इसी से इसका नाम 'सुलतान ओनू' था अर्थ है सुलतान का युद्ध-क्षेत्र । इन उसमानलियों को करमानलियों के भाग्य से ईर्ष्या हुई किन्तु भिखमंगों को तो भिक्षा से ही सन्तोष करना पड़ता है । उसमान ने अपने भाग्य पर किया और अपने पड़ोसी परम्परावादी ईसाई समाज पर बराबर आक्रमण करके अपनी सी विस्तार आरम्भ किया । जिसमें पहला आक्रमण बाइजेण्टियाई नगर ब्रूसा पर था । ब्रू विजय प्राप्त करने में उसे नौ वर्ष लगे (१३१७–२६ ई०) । उसमानलियों ने अपने नाम ठीक ही 'उसमान' नाम पर रखा क्योंकि उसमानी साम्राज्य का वही संस्थापक था ।

ब्रूसा के पतन के तीस साल के भीतर ही उसमानलियों ने दर्दानियाल (डारडानि के यूरोपीय तट पर पाँव जमाना आरम्भ कर दिया और यूरोप में उनके भाग्य का सितारा च और इसी शती की समाप्ति के पहले ही उन्होंने एक ओर करमानलियों तथा अनात के दूसरे तुर्की समूहों पर विजय प्राप्त की और साथ ही साथ दूसरी ओर सर्वो यूनानि बुलगारियों को हराया ।

राजनीतिक दृष्टि से सीमा होने से इसी प्रकार प्रेरणा मिलती है । इतिहास के इसके के काल की परीक्षा से ज्ञात होता है कि उसमानलियों के पहले निवास-स्थान अनातोलि करमानलियों की अपेक्षा वीरता उत्पन्न करने की कोई विशेषता न थी जिससे सुलतान का नाम इस अध्याय के पहले भाग में आता । यदि हम सलजुक तुर्कों के आक्रमण के पहले की ग्यारहवीं शती के तीसरे चतुर्थांश की ओर ध्यान दें, जब अनातोलिया पूर्वी रोमन साम्रा की सीमा के अन्दर था तो हम देखेंगे कि जो प्रदेश बाद में करमानलियों ने अधिकृत किया वह वही था जिसमें पहले अनातोलिया की सेना (अनातोलिया आरमी कोर) रहती थी जो परम् वादी ईसाई समाज के आरम्भिक इतिहास में पूरबी रोमन सेना में प्रमुख थी । दूसरे शब्द कोनिया प्रदेश में करमानलियों के पूर्वी रोमन पूर्वज अनातोलिया में प्रमुख थे और बा यही स्थान सुलतान ओनू के उसमानलियों ने ग्रहण किया । कारण स्पष्ट है । पहले समय कोनिया अरबी खिलाफत के सामने ही पूरबी रोमन साम्राज्य का सीमा प्रदेश था और उसमानलि ने बाद में जिस प्रदेश पर अधिकार किया वह देश के अन्दर की ओर था जिसे कोई जानता था ।

रूसी परम्परावादी ईसाई समाज में :—और स्थानों की भाँति हम यहाँ भी देखते हैं कि माज की शक्ति क्रम से एक सीमा से दूसरी सीमा में उसी प्रकार केन्द्रीभूत होती रही है जिस कार, और जिस शक्ति से, तथा जिस तीव्रता से उस पर बाहरी दबाव पड़ता रहा है । हले-पहल जिस प्रदेश में परम्परावादी ईसाई समाज ने कुसतुनतुनिया से जाकर अपनी जड़ मायी, वह काले सागर के पार, यूरेशियाई स्टेप के पार नीपर नदी का उपरला (अपर) बेसिन ा । बारहवीं शती में सीमा-निवासियों ने बोलगा के उपरले बेसिन में प्रस्थान किया । ये त्तर-पूर्वी जंगल के विधर्मियों को हराकर अपनी सीमा का उस ओर विस्तार कर रहे थे । कन्तु कुछ ही दिनों के बाद शक्ति का केन्द्र नीपर के निचले बेसिन की ओर चला गया क्योंकि परले बेसिन में यूरेशियाई खानाबदोशों का सामना उन्हें करना पड़ता था । रूसियों पर बाटू ाँ मंगोल के आक्रमण का जो १२३७ ई० से आरम्भ हुआ था, दबाव कठोर तथा बहुत दिनों तक हा । यहाँ पर यह मनोरंजक बात ध्यान देने योग्य है कि और उदाहरणों के समान यहाँ भी स प्रकार आक्रमण का सामना किया वह नये ढंग का और मौलिक था ।

इस सामने का रूप नये ढंग के जीवन का विकास था और नया सामाजिक संगठन था जिसके रिणामस्वरूप इतिहास में पहली बार एक शिथिल समाज ने केवल यूरेशियाई खानाबदोशों का ामना ही नहीं किया, केवल उनको आगामी आक्रमणों से दण्ड ही नहीं दिया, किन्तु शाश्वत प से खानाबदोशों की धरती पर विजय प्राप्त की और खानाबदोशों के चराई के मैदानों के थान पर किसानों के झोपड़े स्थापित करके उस धरती का रूप बदल दिया । उनके चल खेमों की गह गाँव बसा दिये । कज्जाक[1] जिन्होंने यह अभूतपूर्व चमत्कार कर दिखाया, रूसी परम्परावादी साई समाज के सीमा-निवासी थे । सीमा प्रान्त के युद्ध की भट्ठी में जो यूरेशियाई खानाबदोश दो सौ साल तक बाटू खाँ के दलों के साथ गये थे उसी की तिहाई पर इनका निर्माण आ था । यह नाम इनके बैरियों का दिया हुआ है । तुर्की में कज्जाक उसे कहते हैं जो अपने ैधातिक मालिक की आज्ञा नहीं मानता और विरोध करता है ।[1] यह इतनी दूर बसा हुआ ज्जाक समुदाय, जो १९१७ की रूसी साम्यवादी (कम्युनिस्ट) क्रान्ति में नष्ट हो गया, एशिया डान नदी से उस्सूरी तक समानान्तर रेखा के समान फैला हुआ था, नीपर के किनारे वाले ज्जाक समुदाय से उत्पन्न हुआ था ।

यह मौलिक कज्जाक अर्ध-सांघिक (सेमी मोनास्टिक) सैनिक सम्प्रदाय था जो हेलेनी पाटे के सम्प्रदाय से तथा धार्मिक युद्ध वाले सरदारों के संघटन से (क्रूसेडिंग आर्डर्स आव इटहुड) बहुत कुछ मिलता-जुलता था । खानाबदोशों से निरन्तर युद्ध से उन्हें यह शिक्षा ली थी कि यदि सभ्य लोगों को बर्बरों से लड़ना है और विजय प्राप्त करनी है तब उनके हथि-रों को छोड़कर दूसरे हथियारों तथा साधनों से लड़ना होगा । जिस प्रकार आज के पश्चिमी

---

१. सच पूछिए तो कज्जाक का तुरकी अर्थ वैसा ही है जैसा आयरिश शब्द 'टोरी' का है । न्तु शाब्दिक अर्थ कज्जाक का 'खोदने वाला' है । अर्थात् स्टेप की सीमा पर वह खेत जोतने ला किसान जो खानाबदोश मालिक की सत्ता से इनकार करता है । दूसरे शब्दों में 'केन और बेल'—जो कथा खानाबदोशों की दृष्टि से बनायी गयी है ।

साम्राज्यवादियों ने अपने आदिम बैरियों को आधुनिक उद्योगवाद के उत्कृष्ट साधनों पराजित किया है उसी प्रकार कज्जाकों ने कृषि के उत्तम साधनों द्वारा खानाबदोशों पर प्राप्त की । और जिस प्रकार आज की पश्चिमी सेना की दक्षता ने खानाबदोशों की गति पर रेल, मोटर तथा हवाई जहाज के द्वारा विजय प्राप्त कर उन्हें बलहीन बना दिया है, प्रकार कज्जाकों ने नदियों पर जो स्टेप के विनाशलक्षण हैं, और जो खानाबदोशों के नि के परे थीं, काबू करके उन्हें पराजित कर दिया । खानाबदोश घुड़सवारों के लिए याता नदियों से रुकावट होती थी, किन्तु रूसी किसान और लकड़हारे (लम्बर मैन) नदी द्वारा आ में अभ्यस्त थे । कज्जाक लोग खानाबदोशों से घुड़सवारी में बाजी मारने की चेष्टा तो ही थे, किन्तु नदियों द्वारा आवागमन उन्होंने नहीं छोड़ा और इसी के द्वारा उन्होंने यूरेशि विजय प्राप्त की । नीपर से वह डान गये और डान से बोल्गा पहुँचे । वहाँ से उन्होंने ई० में बोल्गा और ओव के बीच के जल विभाजक को पार किया और सन् १६३८ तक साइबीरिया की नदियों को खोज डाला और उन्हें पार करते हुए प्रशान्त सागर के तट पर ओख के सागर तक पहुँचे ।

उसी शती में जब कज्जाकों ने दक्षिण पूरब में खानाबदोशों के दबाव को असफल शानदार विजय प्राप्त की एक दूसरी सीमा पर बाहरी दबाव पड़ रहा था और वह रूसी स का क्षेत्र बन रहा था । ईसा की सत्रहवीं शती में पहली बार रूसियों ने अपने इतिहास में प संसार के दबाव का अनुभव किया । दो वर्षों तक (१६१०–१२) पोल सेना मास्को को हुए थी । और थोड़े ही दिनों बाद गस्टेवस अडलफस के शासन में स्वीडन फिन लेकर पोलैंड की उत्तरी सीमा तक जो उस समय रीगा से कुछ ही मील दूर थी अधिकार कर बाल्टिक का मालिक बन बैठा और रूस की राह इधर से बन्द कर दी । किन्तु सौ साल बीतने पाये थे जब इस पश्चिमी दबाव का उत्तर पीटर महान् ने १७०३ ई० में पीट्स स्थापना करके दिया । जिस धरती पर यह बन्दरगाह बना उसे उसने स्वीडों से जीत उसने रूसी नौ-सेना का झण्डा बाल्टिक सागर में पश्चिमी ढंग पर फहराया ।

पश्चिमी संसार महाद्वीपी बर्बरों के विरोध में:—जब हम अपनी पश्चिमी सभ्यता की देखते हैं तब सबसे पहले सबसे भारी दबाव पूरब की ओर अर्थात् थल की ओर पड़ा । यह मध्य यूरोप के बर्बरों पर था । उतना ही नहीं कि सीमा की रक्षा विजयपूर्ण हुई बल्कि को पीछे की ओर ढकेलते गये, यहाँ तक की बर्बर वहाँ रह न पाये । परिणामस्वरूप प सभ्यता का आमना-सामना बर्बरों से नहीं रह गया, उसकी पूर्वी सीमा पर उसका सामना द सभ्यता से हुआ । यहाँ पर इतिहास के केवल प्रथम चरण से उदाहरण लिया जायगा कि द की प्रेरण शक्ति कितनी होती है ।

पश्चिमी इतिहास के प्रथम चरण में महाद्वीपी बर्बरों के दबाव के परिणामस्वरूप फ्रैंकों प्रदेश में एक नये सामाजिक संगठन का उदय हुआ जो अर्ध-बर्बर था । मेरोविंजियाई फ्रैंकों का प्रदेश था । यहाँ की सरकार पुराने रोम की ओर देखती थी, किन्तु बाद के केरों जियाई शासकों ने भविष्य की ओर दृष्टि डाली । यद्यपि इसने पुराने रोमन साम्राज्य के प्रेत आह्वान किया । किन्तु यह आवाहन मात्र था जिससे उसकी आत्मा से इन्हें अपने कार्यों में प्राप्त हो । और क्या आप जानते हैं फ्रैंकों के प्रदेश किस भाग में मेरोविंजियाई पतन के

पर केरोलिंजियाइयों ने यह कार्य सम्पन्न किया ? देश के भीतरी भाग में नहीं, सीमा पर। यह कार्य न्युस्ट्रिया में (जो उत्तरी फ्रांस के बराबर है) जिस धरती को प्राचीन रोमन सभ्यता ने उपजाऊ बनाया था, जो बर्बरों के आक्रमणों से सुरक्षित थी बल्कि आस्ट्रेशिया (राइनलैंड) में जो रोमन सीमा के सामने थी। यहाँ उत्तरी-यूरोपीय जंगलों के सेक्सनों के लगातार आक्रमण होते रहे और यूरेशियाई स्टेप के 'अवार' धावा बोलते रहे। इस बाहरी दबाव से कितनी स्फूर्ति मिली उसका उदाहरण है शार्लमान की विजय, उसके अठारह सैक्सन हमले, उसके द्वारा अवारों का विनाश, और केरोलिंजियाई पुनर्जागरण जो पश्चिमी संसार की पहली सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है और बौद्धिक शक्ति का पहला प्रदर्शन है।

आस्ट्रेशिया पर इस दबाव से जो प्रेरणा प्राप्त हुई उसके बाद वह फिर पुरानी गति को पहुँच गया। हम देखते हैं कि दो सौ वर्षों से कम ही समय में ओटो प्रथम के नेतृत्व में प्रतिक्रिया हुई। शार्लमान की, स्थायी उपलब्धि यह थी कि उसने सैक्सन बर्बरों के राज्य को पश्चिमी ईसाई जाति में मिला लिया था। किन्तु इस सफलता का परिणाम यह भी हुआ कि सीमा में परिवर्तन हो गया और उसी के साथ प्रेरणा की भी। विजयी आस्ट्रेशिया से विजित सैक्सनी में सीमा चली गयी। ओटो के काल में सैक्सनी में वही स्फूर्ति उत्पन्न हुई जो शार्लमान के समय आस्ट्रेशिया में हुई। जिस प्रकार शार्लमान ने सैक्सों को पराजित किया था उसी प्रकार ओटो ने वैंडों को पराजित किया और पश्चिमी ईसाई-जगत् की सीमा और पूरब की ओर बढ़ गयी।

तेरहवीं और चौदहवीं शती में अवशिष्ट महाद्वीपी (यूरोपीय) बर्बरों को सभ्य बनाने का काम शार्लमान तथा ओटो ऐसे वंशानुगत राजाओं ने जिन्होंने रोमन साम्राज्य वाली पदवी ग्रहण कर ली थी, नहीं किया। यह कार्य दो नयी संस्थाओं ने किया। नगर-राज्य ने तथा सैनिक मठ सम्प्रदाय ने। हंसा नगरों तथा टयूटानिक वीरों ने पश्चिमी ईसाई जगत् की सीमा ओडर से बढ़ाकर ड्वीना तक पहुँचा दी। धर्म निरपेक्ष युद्ध की यह अन्तिम घटना थी। क्योंकि चौदहवीं शती बीतते-बीतते ये महाद्वीपी बर्बर जो मिनोई, हेलेनी तथा पश्चिमी सभ्यताओं की सीमाओं को तीन हजार वर्षों तक दबाये चले आ रहे थे, संसार से लोप हो गये। १४०० ई० के आते, पश्चिमी ईसाई-समाज और परम्परावादी ईसाई समाज जो महाद्वीप में बर्बरों के कारण अलग हो गये थे, वे अब महाद्वीप में एड्रियाटिक सागर से आरटिक सागर तक साथ-साथ अभियान करने लगे।

यह मनोरंजक बात है कि बढ़ती हुई सभ्यता और भागती हुई बर्बरता के बीच जो सीमा का विस्तार होता चला जा रहा था उससे दबाव उस समय से बराबर पड़ा रहा जब से ओटो प्रथम ने शार्लमान का कार्य अपने हाथों में लिया। और जैसे-जैसे पश्चिम का प्रत्याक्रमण बढ़ता गया प्रेरक शक्ति भी स्थानान्तर होती रही। उदाहरण के लिए ओटो की वेंडों पर विजय के बाद सैक्सनी की डची भी निस्तेज हो गयी जिस प्रकार दो सौ साल पहले सैक्सनों पर शार्लमान की विजय के बाद आस्ट्रेशिया पराभूत हो गया था। १०२४ ई० में सैक्सनी का नेतृत्व समाप्त हो गया था और साठ साल के पश्चात् वह छिन्न-भिन्न हो गयी। सैक्सन वंश के बाद जो साम्राज्य-वाला वंश आया वह पूरब की ओर बढ़ती हुई सीमा पर नहीं उत्पन्न हुआ जिस प्रकार सैक्सन वंश केरोलिंजियाई के पूरब स्थापित हुआ। बल्कि फ्रैंकोनियाई वंश तथा उसके पीछे के सब वंश जिन्होंने साम्राज्यिक पदवी धारण की जैसे होहेन स्टाउफेन, लक्सेम बुर्ग तथा हैप्स बुर्ग, राइन

नदी के किसी न किसी संगम पर उत्पन्न हुए। साम्राज्यिक वंशों को दूर की सीमा से कोई प्रेरणा नहीं मिली और हमें यह जानकर आश्चर्य न होना चाहिए कि यद्यपि कुछ सम्राट् अवश्य महान् हुए जैसे फ्रेडरिक बारबरोसा फिर भी साम्राज्यिक शक्ति का ग्यारहवीं शती के अन्त से क्रमशः ह्रास होता गया।

फिर भी जिस साम्राज्य को शार्लमान ने पुनः सजीव किया था और जो यद्यपि छाया की छाया था, जीवित रहा। वह न तो पावन था, न रोमन था और न साम्राज्य था फिर भी पश्चिमी समाज के राजनीतिक जीवन में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान था। उसके पुनर्जीवित होने का यह कारण था कि मध्ययुग के अन्तिम समय कुछ तो वंशीय व्यवस्था और कुछ घटनाओं के फलस्वरू आस्ट्रिया में हैप्मबुर्ग का रीनी (रीनिश) घराना गद्दी पर बैठ गया। सीमा-प्रदेश के भी उत्तर दायित्त्व को इसने सँभाला और उसके साथ जो नयी प्रेरणा मिली उसके अनुरूप कार्य किया। इस विषय को हम नहीं छोड़ते हैं।

पश्चिमी संसार में दवाव उसमानिया साम्राज्य के विरोध में

उसमानलियों और हंगरी में जो शत वर्षीय युद्ध चला उसी समय पश्चिमी संसार तथ उसमानिया तुर्कों में भिड़न्त आरम्भ हुई। और इसके परिणामस्वरूप सन् १५२६ ई० में मोहाक के युद्ध में मध्ययुगीन हंगरी की समाप्ति हो गयी। हंगरी जान हुनयादी तथा उसके पुत्र मत्तिवा कोरनिवस के नेतृत्व में जब उसमानलियों से लड़ा तब उसमानलियों को वहुत शक्तिशा वैरी का सामना करना पड़ा। किन्तु दोनों सेना का अन्तर इतना अधिक था कि विजय पा हंगरी की शक्ति के वाहर था यद्यपि इसे सन् १४९० ई० के वाद से बोहीमिया से सहायता मिल रही क्योंकि इसी साल दोनों का एकीकरण हो गया था। परिणाम मोहाक्ज का युद्ध हुआ इतनी बड़ी विपत्ति का ऐसा मानसिक प्रभाव हुआ कि बचा-खुचा हंगरी बोहीमिया और आस्ट्रि हैप्सबुर्ग वंश के नेतृत्व में एक हुए और एकता स्थायी हुई और यह वंश सन् १४४० ई० से आस्ट्रि पर राज्य करता आ रहा है। चार सौ साल जब वही उसमानिया सलतनत अन्तिम रूप छिन्न-भिन्न हो गयी जिसने चार सौ साल पहले मोहाक्ज़ के युद्ध में आस्ट्रिया को धराशायी किया था

सच वात तो यह है कि जिस समय डैनूबियाई हैप्सबुर्ग वंश का जन्म हुआ उसका भाग्य भ उसके बैरी के भाग्य के अनुसार चलता रहा जिसके दबाव के फलस्वरूप उसकी (हैप्सबुर्ग वंश उत्पत्ति हुई थी और डैन्यूबियाई राज्य की वीरता का काल वही था जब पश्चिमी संसार ने उसमानिया दवाव का सबसे अधिक अनुभव किया। यह वीरता का काल सन् १५२९ से आरम्भ होता है जब उसमानिया सेना ने वियना पर असफल आक्रमण किया और १६८२–८३ में समाप्त होता है जब दूसरा आक्रमण हुआ। इन दोनों आक्रमणों में पश्चिमी संसार द्वारा उसमानिया आक्रमणों का सामना करने में आस्ट्रिया की राजधानी ने वही कार्य किया जो १९१४–१८ के युद्ध में जरमन आक्रमण रोकने के लिए वरदून ने जी तोड़कर फ्रांस की ओर से सामना किया था। पहले आक्रमण की असफलता के परिणामस्वरूप उसमानिया विजय का ज्वार रुक गया जो सौ साल से डैन्यूब की घाटी में फैल रहा था। और शायद बहुत-से लोग बिना जाँचे-परखे विश्वास न करें कि नकशे से स्पष्ट है कि वियना और कुसतुनतुनिया का अन्तर, डोवर (जल-डमरूमध्य) और वियना से जितना अन्तर है उससे आधे से अधिक है। दूसरे आक्रमण की

विफलता का परिणाम यह हुआ कि अनेक परिवर्तनों और विराम के होने पर भी तुर्की सीमा जो १५२९ से १६८३ तक वियना के दक्षिण-पूर्वी किनारे थी, खिसकती गयी और एड्रियानोप्ल के उत्तर-पश्चिमी किनारे तक पहुँच गयी।

किन्तु उसमानिया साम्राज्य के पतन से डैन्यूवियाई हैप्सबुर्ग के राज्य का कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि उसमानिया साम्राज्य के पतन के बाद डैन्यूबियाई राज्य की वीरता का युग भी रह नहीं सका। उसमानिया शक्ति के ह्रास के कारण दक्षिण-पूर्वी यूरोप में ऐसा क्षेत्र मिल गया जिस पर और शक्तियों ने अधिकार कर लिया। साथ ही डैन्यूवियाई राज्य पर से दबाव भी हट गया, जिसके कारण उसे प्रेरणा मिलती रही। डैन्यूबियाई शक्ति का ह्रास भी उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार उस शक्ति का जिसके थपेड़ों से इसमें जाग्रति आयी थी। और अन्त में इसका भी वही अन्त हुआ जो उसमानिया साम्राज्य का।

यदि हम उन्नीसवीं शती में आस्ट्रियाई साम्राज्य की ओर देखें, जब किसी समय का वीर उसमानली 'यूरोप का रोगी' हो गया था तो हमको पता चलेगा कि आस्ट्रिया के साम्राज्य में दो दुर्बलताएँ आ गयी थीं। एक तो यह कि यह राज्य अब सीमा राज्य नहीं रह गया था, दूसरे यह कि उसका अन्तरराष्ट्रीय संगठन जिसके द्वारा सोलहवीं तथा सत्रहवीं शती में उसने उसमानी चुनौती स्वीकार की, अब उसके लिए रुकावट हो गयी क्योंकि उन्नीसवीं शती में राष्ट्रीय भावना के नये विचार उत्पन्न हो गये थे। हैप्सबुर्ग ने अपने जीवन की अन्तिम शती इस प्रयत्न में वितायी कि राष्ट्रीय सिद्धान्तों के अनुसार यूरोप का मानचित्र बन पाये, किन्तु ऐसे सब प्रयत्नों में वह विफल रहा। उसने जरमनी पर से अपना नेतृत्व छोड़ दिया और इटली पर से अपना अधिकार हटा लिया। इतना मूल्य चुकाकर उसने जरमन साम्राज्य और इटली के राज्य के बगल-बगल अपना अस्तित्व बनाये रखा। उसने सन् १८६७ की आस्ट्रो-हंगरी की सन्धि स्वीकार की (आउसग्लाइच[1]) और उसी के परिणामस्वरूप गैलीशिया में आस्ट्रोपोली सन्धि की। उसे इसमें सफलता मिली कि उसने अपना स्वार्थ तथा मगयार और पोलो का स्वार्थ बताया एक और जरमनों ने यह भी बताया कि उसके राज्य में जो जरमन हैं उनका तथा उसका स्वार्थ भी एक ही है। किन्तु रोमानियनों, चेकोस्लोवायों, यूगोस्लावों से उससे समझौता न हो सका और सराजिवों में जो हत्या हुई वह आस्ट्रिया को नक्शे से मिटा देने का संकेत था।

अन्त में हम युद्धरत आस्ट्रिया तथा युद्धरत तुर्की की तुलना करें। १९१४–१८ के युद्ध के अन्त में दोनों लोकतन्त्र राज्य हो गये और उनका वह साम्राज्य निकल गया जो कभी उनके पड़ोसी थे और दुश्मन भी। किन्तु इतने ही पर समानता समाप्त हो जाती है। जो पाँच पराजित देश थे उनमें आस्ट्रिया की सबसे अधिक हानि हुई थी और उसने सबसे अधिक दीनता दिखायी थी। नयी व्यवस्था को उन्होंने बहुत दुख के साथ पूर्णरूप से आत्मसमर्पण किया। इसके विपरीत सन्धि के एक साल बाद ही, विजेताओं से तुर्क युद्ध के लिए फिर कटिबद्ध हुए और घिजेताओं ने जो शर्तें सन्धि के समय उन पर लादी थीं उन्हें सफलतापूर्वक बदलवाया। ऐसा करके तुर्कों ने

---

[1] **आस्ट्रिया और हंगरी में राजनीतिक समझौता, जो हर दसवें साल बदला जा सकता था।—अनुवादक**

फिर शक्ति प्राप्त की और अपने भाग्य में परिवर्तन किया । इस बार वे पतनोन्मुख उसमानि वंश के झण्डे के नीचे असहाय साम्राज्य के इस या उस प्रदेश की रक्षा के लिए नहीं लड़ रहे उसमानिया राजघराने ने उन्हें त्याग दिया था, अब वे फिर सीमा का युद्ध कर रहे थे और ऐसे के नेतृत्व में लड़ रहे थे जिसमें वैसे ही गुण थे जैसे पहले सुलतान उसमान में । यह युद्ध वे अपने का विस्तार करने के लिए नहीं कर रहे थे, बल्कि अपने देश की रक्षा करने के लिए । १९१ २२ के ग्रीक-तुर्की युद्ध में इनओनू के रणक्षेत्र में वही पैतृक धरोहर उन्हें मिली जो अ सलजुक ने छ सौ साल पहले उसमानलियों को समर्पित की थी । चक्र पूरा घूम गया ।

पश्चिमी संसार में उसकी पश्चिमी सीमा पर

पश्चिमी समाज के आरम्भिक दिनों में उसे पूर्वी सीमा पर ही दबाव का अनुभव नहीं हु बल्कि पश्चिम की ओर भी तीन दिशाओं से दबाव का सामना करना पड़ा । अंग्रेजी द्वीपों ब्रिटानी में केल्टिक लोगों का, स्कैंडिनेवियाई जहाजी-डाकुओं का अंग्रेजी द्वीप समूह त पश्चिमी यूरोप के अतलान्तक तट पर, और सीरियाई सभ्यता का जिसके प्रतिनिधि मुसलम विजेता थे आइबीरियाई प्रायद्वीप पर । पहले हम केल्टिक प्रभाव पर विचार करेंगे ।

यह कैसे सम्भव हुआ कि आदिम तथा स्वल्पायु बर्बर तथा कथित स्वल्पायु सप्तशास (हेप्टकी) के बीच के जीवन-संघर्ष के परिणामस्वरूप पश्चिमी राजनीतिक जगत् में दो प्रगति तथा शाश्वत राज्यों का उदय हो गया ? यदि इस बात पर ध्यान दें कि इंग्लैंड तथा स्काट के राज्यों ने किस प्रकार सप्तशासन को हटाया तो हम देखेंगे कि मुख्य कारण यही था कि बा दबाव का प्रत्येक पग पर सामना करना पड़ा । स्काटलैंड राज्य की उत्पत्ति का पिछला इति देखा जाय तो उसके जन्म का कारण है पिक्टों तथा स्काटों का एंग्लो-सेक्सनों पर आक्रम स्काटलैंड की वर्तमान राजधानी की नींव नार्थंब्रिया के एडविन ने डाली थी । (आज भी उ नाम उसमें सम्मिलित है) यह नगर नार्थंब्रिया की सीमा पर किले के रूप में बना था जिससे आव फोर्थ के पास के पिक्ट और स्ट्रैक क्लाइड के ब्रिटन के आक्रमणों से रक्षा की जा स चुनौती दी गयी सन् ९५४ ई० में जब पिक्टों तथा स्काटों ने एडिनबरा पर विजय प्राप्त की नार्थंब्रिया को विवश करके सारा लोथियन ले लिया । इस समर्पण से यह समस्या उठ खड़ी हुई पराजित होने पर भी पश्चिमी ईसाई समाज को अपनी पश्चिमी ईसाई संस्कृति सुरक्षित रख होगी अथवा 'सुदूर पश्चिमी' केल्टिक संस्कृति से पराभूत होना पड़ेगा । अपराजित लोथिय ने इस चुनौती को इस प्रकार स्वीकार किया कि जैसे एक बार पराजित यूनान ने रोम को अप वश में कर लिया था उसी प्रकार लोथियन ने अपने विजेताओं को पराजित कर लिया ।

पराजित देश की संस्कृति स्काटी राजाओं को इतनी भायी और इतनी आकर्षक लगी कि उन्होंने एडिनबरा को अपनी राजधानी बनाया और इस प्रकार का व्यवहार करने लगे कि लोथियन ही उनका निवास है और उच्च-भूमि (हाइलैंड) उनके लिए विदेश है । परिणामस्वरूप स्काटलैंड का पूर्वी समुद्रतट मोरे फोर्थ तथा उपनिवेश बना लिया गया और उच्चभूमि क्षेत्र को पीछे खिसकाया गया । यह कार्य लोथियन के अंग्रेजी निवासियों ने उन केल्टिक शासकों के संरक्षण में किया जो स्काटी राजाओं के प्राचीन सम्बन्धी थे । एक और परिणाम हुआ जो नामों के परिवर्तन में भी विरोधाभास प्रकट करता है । 'स्काटी भाषा' का अर्थ वह अंग्रेजी हो गया जो लोथियन में बोली जाती थी, न कि गैलिक जो मूल स्काट बोलते थे। पिक्टों और स्काटों

ारा लोथियन के विजय का अन्तिम परिणाम यह नहीं था कि पश्चिमी ईसाई संसार की सीमा ोर्थ से ट्वीड की ओर खिसकाते बल्कि उस सीमा को आगे बढ़ाते गये और अन्त में ग्रेट ब्रिटेन ा सारा द्वीप उसमें आ गया ।

इस प्रकार अंग्रेजी 'सप्तशासन' का एक छोटा-सा राज्य वर्तमान स्काटलैंड के राज्य का केन्द्र न गया और यह स्मरण रखने की बात है कि यह छोटा-सा राज्य नार्थंब्रिया जिसने यह कौशल खलाया ट्वीड और फोर्थ के बीच की सीमा थी, ट्वीड तथा हंवर के बीच का आन्तरिक प्रदेश हीं था । यदि कोई वुद्धिमान् यात्री दसवीं शती में नार्थंब्रिया गया होता, जिस समय स्काटों ार पिक्टों को लोथियन समर्पित हुआ, उसने यही कहा होता कि एडिनबरा का कोई भविष्य हीं है और यदि एक सभ्य राज्य का कोई नार्थंब्रिया का नगर राजधानी हो सकता है तो वह यार्क । उत्तरी ब्रिटेन के सवसे बड़े उपजाऊ क्षेत्र में वह वसा हुआ था, रोमन प्रदेश का सैनिक केन्द्र ा, धार्मिक केन्द्र था और अस्थायी स्कैंडिनेवियाई राज्य 'डेनला'[1] की राजधानी था । किन्तु २० ई० में डेनला को वेसेक्स के राजा ने जीत लिया और उसके वाद से यार्क साधारण प्रान्तीय गर था और जो इंग्लैंड के जनपदों में यार्कशायर का क्षेत्रफल इतना वड़ा है, वह इस बात का मरण करता है कि किसी समय इसका भविष्य उज्ज्वल रहा होगा ।

हंवर के दक्षिण सप्तशासन के प्रान्तों में कौन इस प्रकार का नेतृत्व ग्रहण करता कि वह ंग्लैंड के भावी राज्य का केन्द्रबिन्दु बन सकता । हम देखते हैं कि ईसा की आठवीं शती में मुख प्रतिद्वन्द्वी महाद्वीप के निकट वाले राज्य नहीं थे, बल्कि मरशिया और वेसेक्स थे । ये दोनों, ीमा पर, वेल्स तथा कार्नवाल के अविजित केल्ट की सीमा पर रहने के कारण शक्तिशाली हुए । ह भी हम देखते हैं कि युद्ध के पहले चक्र में परशिया विजयी हुआ । अपने समय में परशिया ा राजा वेसेक्स के सभी राजाओं से शक्तिशाली था क्योंकि मरशिया पर वेल्स का दवाव अधिक ा और कार्नवाल का वेसेक्स पर उतना नहीं । यद्यपि कार्नवाल में 'पश्चिमी वेल्सों' ने डटकर ामना किया जिसका वर्णन आर्थर की कहानियों में अमर है, परन्तु इस विरोध पर पश्चिमी ैक्सनों ने वड़ी सरलता से विजय प्राप्त कर ली । मरशिया पर दबाव कितना कठोर था वह स शब्द की व्युत्पत्ति ही वताती है (यह शब्द मार्च से निकला है जिसका अर्थ है सीमा । रशिया का अर्थ है बहुत वड़ी सीमा) । पुरातत्त्व की दृष्टि से भी यह सार्थक है । डी के हाने से सेवर्न के मुहाने तक वहुत बड़े-बड़े मिट्टी के बाँध का अवशेष है जिसे 'ओफ का बाँध' कहते । उस समय ऐसा जान पड़ता था कि भविष्य मरशिया का है, वेसेक्स का नहीं । किन्तु नवीं ती में जब केल्टिक सीमा का संघर्ष धीमा जान पड़ा और नया तथा उससे शक्तिशाली संघर्ष कैंडिनेविया से हुआ तब भविष्य का रूप बदल गया । ३४ बार मरशिया सामना नहीं कर का और आलफ्रेड के नेतृत्व में वेसेक्स ने खूब सामना किया, विजय प्राप्त की और ऐतिहासिक ग्लैंड के राज्य का केन्द्रविन्दु बना ।

पश्चिमी ईसाई जगत के सामुद्रिक तट पर जो स्कैंडिनेवियाई दवाव पड़ा उसका परिणाम ही नहीं हुआ कि सप्तशासन राज्य से करडिक के घराने ने इंग्लैंड के राज्य की स्थापना की

---

[1] दसवीं शती में इंग्लैंड का प्रदेश ।—अनुवादक

बल्कि शार्लमान के बचे-खुचे टुकड़ों को जोड़कर कैपेट के घराने ने फ्रांस के राज्य का भी नि किया। इस दबाव के कारण इंग्लैंड ने अपनी राजधानी वेसेक्स की पहली वाली रा विंचेस्टर को, जो पश्चिमी वेल्स के निकट था, नहीं बनाया, बनाया लंदन को जिसने कठि का सामना किया था और जिसके कारण सन् ८९५ के युद्ध में विजय मिली थी और जिसने नाविक सेना को टेम्ज में आने से रोका था। इसी प्रकार फ्रांस ने अपनी राजधानी सा नहीं बनायी जो अन्तिम कैरोलिजियनों की राजधानी थी बल्कि पेरिस को राजधानी बनाया प्रथम कैपेट राजा के नेतृत्व में आक्रमण का सामना किया था और वाइकिंगों को सेना द्वारा बढ़ने से रोका था।

इस प्रकार स्कैंडिनेवियाई सामुद्रिक आक्रमणों के कारण पश्चिमी ईसाई जगत ने दो राज्यों को जन्म दिया—इंग्लैंड और फ्रांस। इस युद्ध में अपने विरोधियों पर विजय पाने में फ्रांस तथा इंग्लैंड ने सामंती सैनिक तथा सामाजिक प्रथा को भी जन्म दिया और इंग्लैंड अपनी भावनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति महाकाव्य में की जिसका अंश 'द ले आव द आव माल्डन' में सुरक्षित है।

यह भी देख लेना चाहिए कि जो उपलब्धि अंग्रेजों को लोथियन में हुई, वही फ्रांस को ना में हुई और उसने नारमण्डी के स्कैंडिनेवियाई विजेताओं को विजितों की सभ्यता का रंगरू दिया। रोलो और उसके साथियों ने कैरोलिंजियाई चार्ल्स द सिम्प्ले से जो सन्धि की थी फलस्वरूप फ्रांस के अतलांतक तटपर उसे स्थायी स्थान मिल गया था (९१२ ई०) उ वर्ष के कुछ ही दिनों के बाद उसके वंशजों ने पश्चिमी ईसाई जगत की सीमा का विस्तार परम्प ईसाई जगत तथा इस्लामी जगत को जीत-जीतकर बढ़ाना आरम्भ कर दिया। पश्चिमी सभ्यता का प्रकाश जिस रूप में फ्रांस में फैला था उस रूप में इंग्लैंड और स्काटलैं फैलाने लगे जो अभी तक छाया में ही थे। नारमनों ने इंग्लैंड पर जो विजय प्राप्त की वह विज्ञान (फिजिआलोजिकल) दृष्टि से असन्तुष्ट वाइकिंगों की मनोकामना की अन्तिम सकती है, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से इस विजय को विजय कहना मूर्खता है। नारमनों ने प्राचीन धार्मिक विचारों को इसलिए नहीं अस्वीकार किया कि इंग्लैंड में जो पश्चिमी ई के विचार थे उन्हें नष्ट कर दें, बल्कि उनकी पुष्टि करें। हेस्टिंग्ज़ के युद्ध में जब नारमन टाएलेफर नारमन वीरों के आगे-आगे गाता हुआ घोड़े पर चल रहा था तब वह नार्स भा नहीं गा रहा था, फ्रेंच में गा रहा था और उस गीत का विषय साइगर्ड की गाथा नहीं थी, च डी रोलैंड की कथा थी। पश्चिमी ईसाई सभ्यता ने इस प्रकार स्कैंडिनेवियाई सभ्यत हटाकर अपनी सभ्यता की जड़ जमायी। इस विषय पर हम आगे फिर कहेंगे जब अविक सभ्यताओं का वर्णन करेंगे।

उस सीमा प्रान्त के दबाव को हमने अन्त के लिए छोड़ रखा जो समय की दृष्टि से आया और जो सबसे प्रबल था। उस शक्ति को नापा जाय तो हमारी शिशु सभ्यता उ सामने नगण्य थी। और गिबन की दृष्टि में तो वह अविकसित सभ्यता की श्रेणी में आती है

१. 'जिब्राल्टर के चट्टानों से ल्वायर तक लगभग एक हजार मील तक विजित सीमा गयी थी। उसी प्रकार यदि विजय की सीमा बढ़ती तो सरसन लोग पोलैण्ड और स्काटलैं

पश्चिमी शिशु सभ्यता पर जो अरबों का आक्रमण हुआ वह उस आक्रमण की अन्तिम सीरियाई प्रतिक्रिया थी, जो हेलेनी आक्रमण, सीरियाई राज्य में हुआ था। क्योंकि जब अरब इस्लाम के जोर पर आगे बढ़े तब उन्होंने तब तक चैन नहीं लिया जब तक उन्होंने उन सब प्रदेशों पर विजय नहीं प्राप्त कर ली, जो किसी समय सीरियाई राज्य था। उन्हें सीरियाई सार्वभौम राज्य को जो किसी समय अकेमेनीडी का फारस का साम्राज्य था, अरब साम्राज्य बना देने से ही सन्तोष नहीं हुआ उन्होंने पुराने फीनिशियाई राज्य, अफ्रीका में कारथेज तथा स्पेन पर भी विजय प्राप्त की। ७१३ ई० में हैमिलकर और हैनिबल का अनुसरण करते हुए उन्होंने जिब्राल्टर जलडमरूमध्य को ही नहीं पार किया पिरिनीज को भी पार किया। उसके बाद यद्यपि उन्होंने हैनिबल की भाँति रोम और आल्प्स का रास्ता नहीं पकड़ा वे ल्वायर की ओर गये जिधर हैनिबल कभी नहीं गया।

७३२ ई० में टूर्स का युद्ध, जिसमें शार्लमान के पितामह के नेतृत्व में फ्रैंकों ने अरबों को पराजित किया, इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। सीरियाई दबाव की पश्चिम पर जो प्रतिक्रिया हुई उससे पश्चिम की शक्ति बढ़ती गयी और इस ओर गति तीव्र होती गयी। यहाँ तक कि सात-आठ शतियों के बाद पश्चिमी ईसाई समाज के अग्रगामी पुर्तगाली आइबीरी प्रायद्वीप से चलकर अफ्रीका के तट का चक्कर लगाते हुए जो आ पहुँचे, मलक्का और मकाओ तक गये और कास्टिली अनुगामी दल अतलान्तक पार करते हुए मैक्सिको पहुँचा और प्रशान्त सागर को पारकर मनीला तक पहुँचा। इन आइबीरी अग्रगामियों ने पश्चिमी ईसाई समाज की अद्वितीय सेवा की। उन्होंने उस समाज के क्षितिज का विस्तार किया जिसके वे प्रतिनिधि थे और इस प्रकार संसार भर की धरती तथा सागर पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। आरम्भ में यह इसी आइबीरी शक्ति का परिणाम है कि पश्चिमी ईसाई समाज का विकास हुआ और बाइबिल की सरसों के बीज की कथा के समान उग कर 'महान् समाज' बना। और ऐसा वृक्ष बना जिसकी शाखाओं में संसार के सभी लोग आ गये और बसे।

मूरों के दबाव के कारण ही आइबीरी शक्ति का प्रवाह हुआ। यह इसी बात से जाना जा सकता है कि ज्योंही मूरों का दबाव समाप्त हो गया आइबीरी शक्ति भी समाप्त हो गयी। सत्रहवीं शती में पुर्तगाली और कास्टीला उसी नयी दुनिया में से हटाये गये जिसे उन्होंने बनाया था। उन्हें हटाने वाले पश्चिमी ईसाई समाज के पिरिनीज के उस पार वाले बीच में कूद पड़ने वाले लोग—डच, अंग्रेज तथा फ्रांसीसी थे। समुद्र पार के प्रदेश की यह असफलता उसी समय की है जब मूरो को निष्कासन से, हत्या से, जबरदस्ती धर्मपरिवर्तन से आइबीरी प्रायद्वीप से समाप्त किया गया और इस प्रकार ऐतिहासिक उत्प्रेरणा की समाप्ति हो गयी।

ऐसा जान पड़ता है कि मूरों पर आइबीरी आक्रमण वैसा ही था जैसा हैप्सबर्ग राजाओं का उसमानलियों पर था। जब तक दबाव कठोर रहा दोनों शक्तिशाली रहे, जब दबाव में कमी

पहाड़ियों तक पहुँच जाते।···तब शायद आक्सफोर्ड में कुरान की व्याख्या होती और वहाँ के गिरिजाघरों में मुहम्मद साहब की शिक्षा की पढ़ाई होती।'

'द हिस्टरी आव दि डिक्लाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर', अध्याय ५२।

हुई प्रत्येक—स्पेन, पुर्तगाल, आस्ट्रिया—शिथिल होते गये और पश्चिमी संसार में नेतृत्व समाप्त हो गया।

(५) दण्डात्मक दबाव की प्रेरणा

लँगड़े स्मिथ और अंधे कवि

किसी जन्तु का यदि एक अंग, उसी प्रकार के जन्तुओं की तुलना में, इस कारण ख या बेकार हो जाता है कि उसका उपयोग नहीं हो सकता तो इस कमी को वह जन्तु इस प्र पूर्ण करता है कि उसका दूसरा अंग अधिक शक्तिशाली तथा उपयोगी बन जाता है। इस प्र वह अपनी एक कमी को दूसरे प्रकार पूरी करके अपने साथियों से दूसरे अंगों की उपयोगि बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए अन्धे की स्पर्श शक्ति उन लोगों की अपेक्षा तीव्र हो है जिनके पास आँखें हैं। वही बात हम समाज के किसी दल अथवा समुदाय में भी देखते जिसे किसी घटनावश अथवा अपने कारण या जिस समाज में वे रहते हैं उनके और सदस्य कारण किसी प्रकार का दण्ड मिलता है। यदि किसी क्षेत्र में उनका कार्य बन्द कर दिया है तो दूसरे क्षेत्रों में उनकी कार्य-कुशलता बढ़ जाती है। क्योंकि शक्ति उधर केन्द्रित हो जाती

साधारण उदाहरण से आरम्भ करना उचित होगा जिसमें समाज के कुछ व्यक्ति शारीरिक अवरोध हो गया हो जिससे समाज के साधारण कार्य करने में उन्हें बाधा उप होती है। मान लीजिए कि किसी बर्बर समाज में एक अंधा और एक लँगड़ा आदमी है। समाज का कार्य युद्ध है जिसके लिए ये दोनों बेकार हैं। लँगड़े बर्बर पर क्या प्रतिक्रिया है? उसके पाँव उसे रणक्षेत्र में नहीं ले जा सकते, किन्तु हाथों से वह अस्त्र बना सक और उसमें वह इतनी दक्षता प्राप्त कर लेता है कि दूसरे उस पर उसी प्रकार आश्रित हो जिस प्रकार वह दूसरों पर। वह पुराणों के लँगड़े 'हेफेस्टस' (वलकन) की अथवा (वेलेंडस्मिथ) की प्रतिमूर्ति बन जाता है। अंधे बर्बर की क्या अवस्था होती है? वह में हाथ का भी प्रयोग नहीं कर सकता। किन्तु वह वीणा के तार झनझना सकता है, अप का उपयोग कर सकता है। जो कार्य वह रणक्षेत्र में जाकर नहीं कर सकता उसके सम्ब कविता गढ़ सकता है। यद्यपि उन घटनाओं को वह दूसरों के मुँह से, उन सिपाहियों से, जो बिना अलंकरण के सीधी-सादी भाषा में कहते हैं—सुनता है। वह उसे अमरता का साधन बन जाता है, जिसकी बर्बर को इच्छा होती है।

"एक बलशाली तथा वीरों की जाति ने अट्राइडों का सामना किया और वे मर मिटे समय कोई होमर नहीं था कि पावन गीतों द्वारा उनके महान् कार्यों को पवित्रता प्रदान कर अप्रतिष्ठित, अज्ञात, अनादृत वे पड़े हुए हैं, असीम अन्धकार में उनकी आत्मा कष्ट झेल रह कोई कवि न था जो उनके नाम को प्रकाश में लाकर उज्ज्वल करता।"[1]

दासता

वह दण्ड जो प्रकृति ने नहीं दिया मनुष्य द्वारा दिया गया, दासता है। जो सार्वज

---

[1] होरेस : ओड ४, ९—डीवियर के अंग्रेजी अनुवाद से।

ा सबसे कठोर है। उदाहरण के लिए उन प्रवासियों को लीजिए जो हैनिबली युद्ध और गस्टी शान्ति के बीच दो शतियों में मध्य-सागर के चारों ओर के देशों से दास होकर इटली में ये। जिस कठिनाई में इन दासों ने अपना यहाँ का जीवन आरम्भ किया उसकी कल्पना नहीं जा सकती। उनमें कुछ हेलेनी सभ्यता के सांस्कृतिक उत्तराधिकारी थे और उन्होंने अपनी खों से अपने भौतिक तथा आत्मिक संसार को ढहते देखा। जब उन्होंने अपने नगरों का लूट- देखा और देखा कि हमारे नागरिक साथी दासों के बाजार में बिक रहे हैं। दूसरों ने जो व से हेलेनी समाज के 'आन्तरिक सर्वहारा' थे यद्यपि अपना सांस्कृतिक उत्तराधिकार खो ा था, फिर भी उन्हें दासता की कठोर यातना सहने की शक्ति थी। जो उन्होंने नहीं ी थी। एक पुरानी यूनानी कहावत है कि 'दासता से आधा मनुष्यत्व चला जाता है' र यह मसल रोम के दासों के नागरिक वंशजों पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होता था जिनका पतन म सीमा को पहुँच गया था। ईसा के पूर्व दूसरी शती से लेकर छठी ई० तक वे केवल रोटी पर वित नहीं रहते थे, शारीरिक व्यवसाय भी करते थे और परिणामस्वरूप धरती पर से की समाप्ति हो गयी। यह दीर्घकालिक परिस्थिति, जब कि जीवन मृत्यु के ही समान था, दण्ड था जो दासता की चुनौती का सामना न करने के कारण उपस्थित हुआ। और अधिकांश व जो विभिन्न परम्पराओं के तथा विभिन्न वंशों के थे और जिन्हें सामूहिक रूप से हेलेनी युग ुष्काल में दास बना दिया गया था, विनष्ट हो गये। किन्तु कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने चुनौती सामना किया और किसी-न-किसी रूप में परिस्थिति को सुधारा।

कुछ तो अपने मालिक के कार्य में कुशलता के कारण ऊँचे उठे और बड़ी-बड़ी जागीरों के रदायी शासक बन गये। सीज़र की जागीर स्वयं जो बढ़ते-बढ़ते हेलेनी जगत् की सार्वभौम ज्य बन गयी उन दासों द्वारा शासित होती थी जिन्हें सीजर ने मुक्त किया था। दूसरे दासों जिन्हें उनके मालिकों ने छोटे-मोटे धन्धों में लगा दिया था, अपनी मजदूरी की बचत के रुपयों अपनी स्वाधीनता खरीद ली और रोम के व्यापारिक संसार में उन्होंने सम्पत्ति तथा महत्ता त की। दूसरे इस संसार में तो दास ही रहे, किन्तु वे दार्शनिक राजा हो गये अथवा दूसरे संसार लिए धार्मिक नेता हो गये। और असली रोमन जो नारसिसस के अवैध अधिकार को घृणा रखते थे और ट्रिमालशियो जैसे नये धनिकों पर हँसते थे, लँगड़े दास एपिक्टिटस के ज्ञान का पान करते थे और उन असंख्य दासों तथा मुक्त हुए दासों के उत्साह पर आनन्दमय आश्चर्य करते थे जिनका विश्वास पहाड़ों को हिला रहा था। हैनिबली युद्ध तथा कान्सेन्टाइन के परिवर्तन के बीच पाँच शतियों में रोमन शासकों ने अपनी आँखों से दासों के बौद्धिक तथा क विकास के चमत्कार को देखा यद्यपि बलपूर्वक इसे रोकना चाहते थे। किन्तु वे नहीं सके और अन्त में स्वयं पराभूत हो गये। क्योंकि जो दास बनकर आये थे वे अपना परिवार, र और सम्पत्ति तो छोड़ आये थे किन्तु अपना धर्म उन्होंने नहीं छोड़ा था। यूनानी दास साथ बकेनेलियो का त्योहार अपने साथ लाये थे, अनापोलियाई साइबिल (हितायती देवी का अस्तित्व उस समाज के लोप हो जाने पर भी बना रहा, जिस समाज में उसका प्रादुर्भाव था) की पूजा अपने साथ लाये, मिस्री दास 'आइसिस' की पूजा लाये, बैबिलोनियाई नक्षत्रों ूजा लाये, ईरानी 'मित्र' की पूजा लाये और सीरियाई दास ईसाई धर्म लाये। जुवेनल ने की दूसरी शती में लिखा था—'सीरियाई सरिता ओरोटीज़ का जल टाइबर नदी में

गिरा । इन दोनों जलों के मिश्रण का ऐसा परिणाम हुआ कि अपने मालिकों के प्रति दासों बन्धन की सीमा निश्चित हो गयी ।

विचारणीय विषय यह था कि आन्तरिक सर्वहारा का प्रवासी धर्म हेलेनी समाज के स्था शक्तिशाली अल्पसंख्यकों के धर्म पर विजय प्राप्त कर लेगा । जब एक बार जल का संगम हो तब यह असंभव था कि वे घुल-मिल न जायँ और जब एक बार दोनों मिल गये तब यह नहीं रह गया कि धारा किस ओर बहेगी जबतक कि उसका विरोध बल से अथवा कौशल किया जाय । क्योंकि हेलेनी जगत् के त्राता देवताओं की वह शक्ति समाप्त हो गयी थी जि कभी अपने उपासकों को जीवन प्रदान किया था । जब कि सर्वहारा के देवता इनके (सर्वहा लिए शान्ति तथा बल प्रदान करने वाले थे क्योंकि विपत्ति के समय इनसे बहुत सन्तोष सान्त्वना मिलती है । रोमन अधिकारी इन दो परिस्थितियों के बीच पाँच शतियों तक वि करते रहे कि किधर जायँ । विदेशी धर्मों के प्रति वह जेहाद बोल दें अथवा उन्हें ग्रहण क विदेशी प्रत्येक देवता केवल रोम के किसी-न-किसी वर्ग को आकृष्ट करता रहा । सेना 'मित्र' प्रिय थे, महिलाओं को 'आइसिस', बौद्धिकों को आकाश के नक्षत्र, फिलहेलेनियों 'डायोनाइसस', भूत-प्रेत पूजकों को 'साईबल' रुचा । ई० पू० सन् २०५ में जब हैनिबली की विभीषिका उपस्थित थी, रोमन सिनेट ने पाँच सौ साल बाद होने वाली घटना का कि क टेनटाइन ईसाई धर्म स्वीकार करेगा, प्रतिरूप ही उपस्थित किया जब उसने शासकीय सम्मा आकाश से गिरे जादू के पत्थर (उल्का) की प्राप्ति का स्वागत किया । इसे इन लोगों ने तोलियाई के पेसिनस से मन्त्रसिद्ध कवच समझकर मँगाया था । बीस साल बाद उन्होंने डायो शियन द्वारा ईसाइयों पर होने वाले अत्याचार की पूर्वपीठिका हेलेनी देवता बैकेनेलिया का करके उपस्थित की । देवताओं के प्रगत जो दीर्घकालिक युद्ध था वह प्रवासी दासों तथा मालिकों के युद्ध का प्रतिरूप ही था । और इस द्वन्द्व में दासों तथा उनके देवताओं की विजय

दण्ड द्वारा जो प्रेरणा प्राप्त होती है उसका उदाहरण हिन्दू-समाज में जाति (कास्ट) द्वारा जो भेद किया जाता है उसमें भी मिलता है । यहाँ हम देखते हैं जिस जाति या वर्ग को व्यापार या रोजगार से अलग कर दिया जाता था वह दूसरे में दक्षता प्राप्त कर लेता नेग्रो जो उत्तरी अमरीका प्रवासी दास है वह दो प्रकार के दण्डों से पीड़ित है । वर्णभेद वैधानिक दासता से । अस्सी वर्ष हुए दूसरी बाधा तो हटा ली गयी, किन्तु पहली बाधा हुए काले वर्ण के दासों पर अब भी बनी हुई है । इस बात के यहाँ विस्तार से कहने की आवश् नहीं है कि दासों के पश्चिमी जगत् के अमरीकी तथा यूरोपीय व्यापारियों तथा उनके मालि नेग्रो जाति पर कितना कष्ट पहुँचाया है । जो निष्कर्ष हम निकालना चाहते हैं और उदाहरण को देखकर बिना आश्चर्य के कह सकते हैं वह यह कि अमरीकी नेग्रो यह देखक इस लोक में उसके लिए कोई त्राण नहीं है, परलोक की ओर अधिक ध्यान दे रहा है ।

यदि सिंहावलोकन किया जाय तो हमारी भीषण चुनौती को नेग्रो ने धार्मिक दृष्टि से प्रकार स्वीकार किया जैसे पूरब के दासों ने रोम के मालिकों की चुनौती स्वीकार की थी । अफ्रीका से अपने साथ अपने पूर्वजों का कोई धर्म नहीं लाया था जो अमरीका के अपने गोरे नागरिकों के हृदय पर प्रभाव डालता । उसकी आरम्भिक सामाजिक विरासत इतनी दुर्बल कि पश्चिमी सभ्यता के आघात से छिन्न-भिन्न हो गयी । वह अमेरिका में शरीर से भी

आत्मा से भी नंगा ही आया । और इस नंगेपन को उसने अपने मालिकों के उतारे हुए कपड़ों से ढका । नेग्रो ने अपनी सामाजिक परिस्थिति के अनुसार अपने को इस प्रकार बनाया कि ईसाई धर्म में कुछ ऐसे मौलिक अर्थ निकाले और नये मूल्य स्थापित किये जिसे पश्चिमी ईसाई जगत् बहुत दिनों से भूल बैठा था । बाइबिल का सरल तथा सादेपन से अध्ययन करके उसने प्रकाशित किया कि ईसू पैगम्बर होकर संसार में इसलिए नहीं आया कि बलवानों को उनके स्थान पर सुरक्षित करे, बल्कि इसलिए कि दीनों और विनम्रों को ऊँचा उठाये । सीरियाई प्रवासी दास रोमन इटली में ईसाइयत लाये थे और वहाँ उन्होंने पुराने धर्म के स्थान पर जो मर चुका था नये धर्म की स्थापना करके चमत्कार दिखाया । सम्भव है नेग्रो प्रवासी दास जिन्होंने ईसाइयत की स्थापना अमरीका में की, उससे भी बढ़कर चमत्कार दिखायें और मृत को जीवन प्रदान करें । उनमें जो शिशु के समान आत्मिक अंतर्ज्ञान (इन्ट्यूशन) है और भावनात्मक धार्मिक अनुभूति को स्वाभाविक कलात्मक ढंग से व्यक्त करने की जो प्रतिभा है उससे सम्भव है कि हमने उन्हें जो ईसाइयत की बुझी हुई सफेद राख प्रदान की है, उससे उनके हृदयों में आग धधक उठे । और सम्भव है कि दूसरी बार मर रही सभ्यता में जीता-जागता ईसाई धर्म सजीव हो जाय । यदि अमरीकी नेग्रो ईसाई धर्म यह चमत्कार कर दे तो सामाजिक दण्ड की प्रतिक्रिया का अभूतपूर्ण उदाहरण होगा ।

फनारिओट वर्ग का जानअली वर्ग और लैवांटाइन वर्ग

जो सामाजिक अत्याचार किसी समशील (होमोजीनस) समुदाय के धार्मिक अल्पसंख्यकों पर होता है वह सबको भलीभाँति मालूम है । उसका उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं । सब लोग जानते हैं कि सत्रहवीं शती में अंग्रेज प्युरिटनों ने इस प्रकार की चुनौती का किस प्रकार सामना किया । जो इंगलैंड में रह गये उन्होंने पहले पार्लिमेंट के द्वारा और फिर क्रामवेल की सेना द्वारा विधान में उलट-फेर करके संसदीय शासन के प्रयोग को सफल किया और जो लोग समुद्र-पार गये उन्होंने संयुक्तराज्य (यूनाइटेड स्टेट्स) की नींव डाली । कुछ ऐसे उदाहरण देना अधिक मनोरंजक होगा जो बहुत विख्यात नहीं हैं । जहाँ उत्पीड़ित तथा अधिकार प्राप्त समुदाय भिन्न-भिन्न सभ्यताओं के थे यद्यपि बहुसंख्यकों की शक्ति के दबाव के कारण एक ही राजनीतिक संघटन में रहते थे ।

उसमानिया साम्राज्य में मुख्यत: परम्परावादी ईसाई धर्म मानने वाले थे । विदेशी धर्म तथा सभ्यता वालों ने वहाँ सार्वभौम राज्य स्थापित किया, जो ईसाई नहीं कर सके थे, परिणाम यह हुआ कि सामाजिक अक्षमता के कारण अपने ही घर में ईसाई वर्ग मालिक नहीं बन सका । मुसलिम विजेताओं ने परम्परावादी ईसाई जगत् में शान्ति स्थापित की । ईसाइयों से धार्मिक भेदभाव के रूप में कर वसूल किया क्योंकि ईसाई प्रजा की वे राजनीतिक सेवा करते थे । इसके परिणामस्वरूप उत्पीड़ित वर्ग के लोग आगे चलकर उन कार्यों के कुशल और विशेषज्ञ हो गये जो उनसे इस समय जबरदस्ती कराये जाते थे ।

पुराने उसमानिया राज्य में जो उसमानलियों में नहीं थे, वे शासन में योग नहीं दे सकते थे, न सेना में भरती हो सकते थे और साम्राज्य के बड़े-बड़े टुकड़ों की खेती-बारी भी ईसाइयों से निकाल कर मुसलिम शासकों ने ले ली और उनसे अधिकार भी छीन लिया । ऐसी परिस्थिति में अनेक परम्परावादी ईसाई धर्म की जातियों के इतिहास में पहली और अन्तिम बार अप्रकाश्य

रूप से और सम्भवत: अज्ञात, किन्तु प्रभावशाली ढंग से आपसी समझौता किया । अभी आपस में आनन्दपूर्वक विनाशकारी लड़ाइयाँ लड़ते थे उनको उन्होंने बन्द कर दिया व्यवसाय जैसे वकालत, अध्यापकी, डाक्टरी आदि उन्होंने छोड़ दिये । और छोटे-छोटे में लग गये और व्यापारियों के रूप में साम्राज्य की राजधानी में उन्होंने घर बना से विजेता मुहम्मद साहब ने उन्हें जबरदस्ती और पूर्णरूप से निकाल दिया था । रूमी पहाड़ों के बलाचा बनियों का काम करने लगे, यूनानी द्वीपसमूह के यूनानी बोलने वाले और अनातोलिया के करमान के तुर्की बोलने वाले यूनानियों ने और अच्छा और बड़े पै व्यापार आरम्भ किया, अलबेनिया के ईसाई राज बन गये, मॉंटोनेगरों निवासी दरवा हरकारे का काम करने लगे, देहाती बुलगेरियन भी गाँवों में साईस और माली का काम कर

जिन परम्परावादी ईसाइयों ने फिर से कुसतुनतुनिया में रहना आरम्भ किया उनमें यूनानियों का था जिन्हें फनारिओट कहते थे । उत्पीड़न की चुनौती से इनमें इतनी जागी कि उसमानलियों के शासन तथा साम्राज्य के नियन्त्रण में इनका प्रभुत्व हो गया और शक्तिशाली सहयोग अनिवार्य हो गया । जिस स्थान से इस यूनानी परिवार का नामक था उसे फनार कहते थे, वह इसतंबोल का उत्तर-पश्चिमी कोना था जिसे उसमानिया स परम्परावादी ईसाइयों को रहने के लिए अलग छोड़ दिया था । जब सन्त सोफिया का गि मसजिद बना दिया गया तब अखिल ईसाई सम्प्रदाय के मुखिया भागकर यहीं आये और परम्परावादी ईसाइयों का दल, जिसने व्यापार में उन्नति की थी, इन्हीं के नेतृत्व में रहने फनारिओटों ने दो कार्यों में कुशलता प्राप्त की थी । बड़े पैमाने के व्यापारी होने के नाते जगत् से उन्होंने अपना व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया और पश्चिम के आचार- रस्म-रिवाज और भाषा का ज्ञान प्राप्त किया । ईसाई सरदारों के क्षेत्र के वे प्रवन्धक ब इससे उन्हें उसमानिया शासन का व्यावहारिक तथा आन्तरिक ज्ञान हो गया था क्योंकि उसमानिया प्रणाली में उसमानिया सरकार तथा सभी प्रदेशों की परम्परावादी ईसाई बीच मुखिया ही राजनीतिक अफ़सर था । जब उसमानिया साम्राज्य और पश्चिमी लौकिक संघर्ष चला और वियना के दूसरे असफल घेरे, सन् १६८२–८३ में उसमान निश्चित पराजय हुई, फनारियोटों के भाग्य का सितारा चमका ।

सैनिक पराजय के कारण उसमानिया सरकार के कार्यों में अनेक भारी उलझनें हो १६८३ के पहले उसमानिया सरकार पश्चिमी संसार के बीच का सारा मामला सैनिक तय करती थी । सैनिक पराजय के कारण उनके सामने दो समस्याएँ उपस्थित हुईं । रणक्षेत्र में हरा नहीं सके । उनके साथ सम्मेलन में बैठकर बातचीत करनी थी और उन्हें प्रजा की भावनाओं का भी ध्यान रखना था क्योंकि उन्हें अब वे दबाकर नहीं रख सक दूसरे शब्दों में, जो कुशल ईसाई राजनीतिक तथा शासक थे उन्हें वे हटा नहीं सकते थे । जो आवश्यक था उसकी उसमानलियों में कमी थी और उनकी प्रजा में केवल फनारिओटों के वे अनुभव थे । परिणामस्वरूप उसमानलियों ने विवश होकर और पुरानी परम्परा को तथा अपने शासन में परिवर्तन करके राज्य में चार प्रमुख स्थान फनारिओटों को ही नयी राजनीतिक परिस्थिति में उसमानिया साम्राज्य में ये विशिष्ट स्थान थे । इस प्रकार की अठारहवीं शती में फनारिओटों की राजनीतिक शक्ति बहुत बढ़ गयी । और ऐसा जान

कि पश्चिमी दबाव के परिणामस्वरूप शतियों के धार्मिक और जातिगत उत्पीड़ित लोगों में से एक नवीन शासक वर्ग उत्पन्न होगा ।

अन्त में फनारिओट अपनी आकांक्षा की पूर्ति में असफल रहे क्योंकि अठारहवीं शती के अन्त में उसमानिया सामाजिक समूह पर पश्चिमी दबाव इतना तीव्र हो गया कि इस समाज में एकाएक परिवर्तन हो गया । उन यूनानियों में, जो उसमानिया प्रजा में पश्चिम से सम्बन्ध स्थापित करने में अगुआ थे, नवीन पश्चिमी राष्ट्रीयता के विषाणु (वाइरस) भी प्रवेश कर गये । यह फ्रांस की राज्यक्रान्ति का परिणाम था । फ्रांस की क्रान्ति और यूनानी स्वतन्त्रता के युद्ध के बीच यूनानी लोग दो विरोधी आकांक्षाओं के वशीभूत थे । एक ओर तो उनकी आकांक्षा थी कि उसमानलियों के उसमानी साम्राज्य को यूनानी प्रबन्ध में बनाये रखें क्योंकि अभी तक उसका वे प्रबन्ध करते रहे, साथ ही साथ उनकी महत्त्वाकांक्षा थी कि स्वतन्त्र यूनानी राज्य स्थापित करें । ऐसा यूनान यूनानियों के लिए जैसा फ्रांस फ्रांसीसियों के लिए था । १८२१ में स्पष्ट हो गया कि ये दोनों आकांक्षाएँ कितनी विरोधी हैं जब यूनानियों ने इस बात की चेष्टा की कि दोनों की पूर्ति हो जाय ।

जब फनारिओट के राजकुमार हाइपसिलांटी ने रूस के अपने अड्डे से प्रूथ को पार किया कि मैं उसमानिया साम्राज्य का मालिक बन जाऊँ और मैनिओट के सरदार पेट्रो-बे-मावरोमिखालिस मोरिया के अपने किले से उतरा, कि स्वतन्त्र यूनान की स्थापना की जाय, तब परिणाम पहले से समझा जा चुका था । इस युद्ध ने फनारिओटों के सपने को भंग कर दिया । जिस सरकण्डे के सहारे सौ वर्ष से अधिक तक उसमानली वंश खड़ा रहा उसने उनका हाथ छेद दिया इससे उनका क्रोध इतना भड़का कि उस सरकण्डे को तोड़ डाला और अपने पाँव पर खड़े हुए । राजकुमार हाइपसिलांटी के आक्रमण का उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया कि जिस शक्ति का ढाँचा १६८३ से शान्तिपूर्वक फनारिओट खड़ा कर रहे थे उसे एक प्रहार में नष्ट कर दिया । यह उस प्रक्रिया का पहला चरण था जिसके द्वारा उसमानिया जगत् से सारे अतुर्की तत्त्वों को निकाल बाहर करना था और जिसकी पराकाष्ठा उस समय हुई जब उन्होंने १९२२ में अनातोलिया से परम्परावादी ईसाई धर्म वालों को निकाल दिया । यूनानी राष्ट्रीयता की प्रथम चिनगारी ने तुर्की राष्ट्रीयता की आग भी भड़का दी ।

इस प्रकार फनारिओट उसमानिया साम्राज्य में वह प्रमुख अधिकार नहीं प्राप्त कर सके जिसे समझा जाता था कि वे पायेंगे । किन्तु यह भी सत्य है कि वे सफलता के बहुत निकट पहुँच गये थे । जिस बल से उन्होंने उत्पीड़न का सामना किया था वह इसका प्रमाण है । उसमानलियों से उनका सम्बन्ध चुनौती और उसका सामना करने के नियम का सुन्दर उदाहरण है । यूनानियों और तुर्कों का विरोध जिसमें लोगों को इतनी अभिरुचि उत्पन्न हुई है और जिस घटना में इतनी सजीवता प्राप्त हो गयी है इसी परिस्थिति में समझा जा सकता है । इसका कारण धर्म अथवा प्रजातिगत (रेशल) नहीं है जिस पर दोनों दल साधारणतः जोरों में विवाद करते हैं । तुर्क-प्रेमी तथा यूनानी-प्रेमी दोनों सहमत हैं कि यूनानी ईसाइयों और तुर्की मुसलमानों में कुछ ऐतिहासिक प्रजातिगत स्वाभाविक अन्तर है और यह अन्तर धर्म अथवा जाति की कुछ ऐसी विशेषताओं के कारण है जो अमिट है और हटायी नहीं जा सकती । केवल उस समय वे असहमत होते हैं जब इन अस्पष्ट विशेषताओं के मूल्यों को इधर से उधर कर देते हैं । यूनानी भक्त यूनानी रक्त तथा परम्परावादी ईसाई धर्म में जन्मजात गुण मानते हैं और तुर्की रक्त तथा इसलाम में जन्मजात

दोष; तुर्की भक्त इस गुण तथा दोष को उलट कर यूनानियों पर आरोपित करते हैं । किन्तु त
जानने से दोनों के विचार गलत प्रमाणित होते हैं ।

उदाहरण के लिए यह निर्विवाद है कि जहाँ तक प्रजाति का प्रश्न है वर्तमान तुर्कों में अल
गरल के मध्य एशिया के तुर्की साथियों का रक्त अत्यल्प मात्रा में है । उसमानिया तुर्की रा
में परम्परावादी ईसाई समाज भी घुलमिल गया है जिनके साथ गत छ शतियों से उसमानली
पीढ़ी रहती चली आयी है । जहाँ तक प्रजाति का प्रश्न है दोनों में कोई अन्तर नहीं रह गया है

यदि इस तर्क से यूनानी-तुर्की विरोध के विवाद का समाधान हो सकता है तो इसी प्रकार
तर्क धार्मिक विरोध के सम्बन्ध में हम दूसरा उदाहरण देकर उपस्थित कर सकते हैं ।
तुर्की मुसलमान बहुत दिनों से ऐसी अवस्था में रहते चले आये हैं जिनका रहन-सहन उसमानि
तुर्कों के समान नहीं है, उसमानलियों की पुरानी परम्परावादी यूनानी प्रजाओं के समान है
बोल्गा के किनारे एक तुर्की मुसलिम समुदाय रहता है जिसे काजानली समुदाय कहते है
शतियों से ये रूस के परम्परावादी ईसाई शासन में रहते आये हैं और इन्हें भी उतनी प्रजाति
तथा धार्मिक यातना सहनी पड़ी जितनी उसमानलियों के शासन में परम्परावादी ईसाइयों को
ये काजानली किस प्रकार के लोग हैं । हम पढ़ते हैं कि वे "अपनी ईमानदारी, संयम, मितव्ययि
तथा परिश्रम के लिए प्रसिद्ध हैं· · · । उनका मुख्य व्यवसाय व्यापार है· · · उनका मुख्य उद
साबुन वनाना, कातना और वुनना है· · · वे जूते बहुत अच्छा वनाते हैं और साईसी का काम
अच्छा करते हैं । सोलहवीं शती के अन्त तक काजान में कोई मसजिद नहीं वन सकती थी औ
तातारों को अलग महल्लों में रहने को विवश किया जाता था, किन्तु धीरे-धीरे मुसलमानों
अधिकता हो गयी ।"[1]

मुख्य रूप में यह विवरण जो तुर्कों का जार के काल में उत्पीड़न का है वैसा ही जैसा उसमानि
साम्राज्य के उन्नत काल में तुर्कों द्वारा कट्टर मुसलमानों की यातना का था । धर्म के नाम प
जो यातना दोनों समुदायों की हुई, वह दोनों की समान थी और दोनों के विकास का मु
कारण थी । शतियों तक जो इस समान यातना की प्रतिक्रिया दोनों समुदायों पर हुई उससे दो
में एक प्रकार की 'पारिवारिक समानता' उत्पन्न हो गयी जिसके परिणामस्वरूप परम्परावा
ईसाई धर्म तथा इस्लाम में जो आरम्भिक भेद थे वे मिट गये । यह 'पारिवारिक समानत
दूसरे धार्मिक समुदायों में भी दिखाई पड़ती है जिन्हें धार्मिक विचारों के कारण दण्ड दिया ग
और जिन्होंने उसी प्रकार उसका सामना किया । उदाहरण के लिए पुराने उसमानिया साम्रा
में 'लेवांटीनी' रोमन कैथोलिक । फनारिओटों के समान लेवांटीनी अपना धर्म छोड़कर औ
शासकों का धर्म अंगीकार करके यातना से वच सकते थे । किन्तु बहुत कम ने ऐसा किया
जो कुछ वन्धन जबर्दस्ती उन पर लगाये गये थे उन्हीं के वीच जो अवसर उन्हें मिला उसी
लाभ उन्होंने उठाया । इस प्रकार के आचरण में उन्होंने चरित्र की शक्ति तथा आशावादि
की मनोवृत्ति का विचित्र तथा सुन्दर मिश्रण दिखाया जैसा इस प्रकार की सीमाओं से बँधे औ
ऐसी परिस्थिति में पड़े सामाजिक समुदायों में बहुधा मिलती है । इस बात की चिन्ता उन्हें

---

[1] द ब्रिटिश एडमिराल्टी : मैनुअल आन द तूरानियन्स एण्ड पान-तूरानियनिज्म ।

नहीं की कि हम पश्चिमी ईसाई जगत के वीर और गौरवशाली वंश के हैं, अर्थात् मध्ययुगीन वेनिशियाई, जेनोई या आधुनिक फ्रेंच, डच या अंग्रेजों के वंशज हैं। उसमानिया साम्राज्य की जिस संकीर्ण परिस्थिति में रहने को वे विवश थे उसमें या तो वे धार्मिक यातना का उसी प्रकार सामना करते जिस प्रकार उन्हीं के समान विभिन्न धार्मिक उत्पीड़ित समुदायों ने किया था या समाप्त हो जाते।

उसमानलियों के उत्कर्ष के युग के आरम्भिक शतियों में वे पश्चिमी ईसाई संसार के केवल लेवांटीनियों को ही जानते थे जिन्हें वे फ्रांक-फिरंगी कहते थे। उनकी कल्पना थी कि पश्चिमी यूरोप में ऐसे ही निम्न कोटि के धर्मभ्रष्ट लोग रहते हैं। जब उन्हें और अनुभव हुआ तब उन्हें अपनी सम्मति बदलनी पड़ी। और उन्होंने दो प्रकार के फिरंगियों में विशिष्ट अन्तर माना—एक तो 'खारे पानी वाले फिरंगी' और दूसरे 'मीठे पानी वाले फिरंगी'। 'मीठे पानी वाले फिरंगी' वे थे जो तुर्कों में लेवांटी वातावरण में जन्मे और पनपे और लेवांटी आचार-व्यवहार का विकास किया। 'खारे पानी वाले' वे फिरंगी थे जो फ्रैंकों के देश में पैदा हुए और बढ़े और प्रौढ़ होकर दृढ़ चरित्र लेकर तुर्की में आये। तुर्कों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उनमें और 'मीठे पानी वाले फिरंगियों में' जो उन्हीं के बीच रहते आये थे, जो मनोवैज्ञानिक अन्तर था, उसके कारण उस समय कोई व्यवधान नहीं पड़ता था जब वे खारे पानी वाले फिरंगियों का सामना करते थे। जो फिरंगी भौगोलिक दृष्टि से तुर्कों के पड़ोसी थे और देशवासी थे वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विदेशी थे और जो फिरंगी दूर देश से आये थे उनकी भावनाएँ तुर्कों जैसी ही थी। इसका कारण स्पष्ट था। तुर्क और खारे पानी वाले फिरंगी एक दूसरे को समझते थे। क्योंकि दोनों की सामाजिक पृष्ठभूमि साधारणतः समान थी। प्रत्येक का विकास ऐसे वातावरण में हुआ था जिसमें अपने घर का वह स्वयं मालिक था। इसके विपरीत दोनों ही मीठे पानी वाले फिरंगियों को समझने अथवा उनका समादर करने में कठिनाई का अनुभव करते थे क्योंकि मीठे पानी वाले फिरंगियों की सामाजिक पृष्ठभूमि दोनों के लिए विदेशी थी। वह घट का लड़का नहीं था वह 'गेट्टों'[1] की सन्तान था। इस यातना के जीवन के कारण उनमें (मीठे पानी वाले फिरंगियों में) एक विशिष्ट जातिगत मनोवृत्ति उत्पन्न हो गयी जो तुर्की के तुर्कों अथवा फ्रैंकलैंड के फिरंगियों में नहीं थी।

यहूदी

बिना विस्तार में गये हुए हमने देखा कि धार्मिक भेद-भाव का परिणाम क्या होता है। वह स्थिति भी देखी जहाँ उत्पीड़ित तथा यातना पहुँचाने वाले एक ही समाज के थे जिसका अच्छा उदाहरण अंग्रेज प्युरिटन हैं और उसमानिया साम्राज्य के इतिहास से वह उदाहरण देखा जहाँ उत्पीड़ित समुदाय दूसरी सभ्यता का था और धार्मिक यातना पहुँचाने वाले दूसरी सभ्यता के। अब ऐसी स्थिति को देखना है जहाँ धार्मिक उत्पीड़न का शिकार एक विनष्ट जाति है जो जीवाश्म (फासिल) के रूप में अवशेष है। ऐसे फासिलों की सूची आरम्भ में दी गयी है। जिसमें प्रत्येक

---

[1] गेट्टों उस बस्ती को कहते थे जो साधारण जन से अलग यहूदियों को रहने के लिए बना दी गयी थी। यहाँ अभिप्राय है तिरस्कृत समुदाय।—अनुवादक

ही ऐसी यातना का उदाहरण है । किन्तु उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण फासिल अवशेष सीरियाई समा के यहूदी लोग हैं । लम्बी दुखमय कहानी कहने के पहले जिसका अन्त अभी नहीं हुआ है,[1] ह देखेंगे कि एक और सीरियाई अवशेष पारसियों ने हिन्दू समाज में वही कार्य किया है जो यहूदि ने और स्थानों में—जैसे व्यापार और आर्थिक बातों में दोनों ने विशेषता प्राप्त की है । इसी प्रका एक और सीरियाई अवशेष आरमीनियन, ग्रेगोरियन, मनोफाइसाइटों ने मुसलिम जगत् में व कार्य किया है ।

उत्पीड़ित यहूदियों की विशेषताएँ अच्छी तरह विदित हैं । हमें यहाँ यह देखना है वि यहूदियों के ये गुण उनकी जाति या धर्म के कारण अर्थात् उनके 'यहूदीपन' के कारण है, जैसा वि साधारणतः समझा जाता है अथवा यातना के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो गये हैं । दूसरे उदाहरण से जो परिणाम निकलता है वह तो ऐसा ही है, किन्तु हम निष्पक्ष ढंग से इस समस्या पर विचा करेंगे । प्रमाणों की परीक्षा दो प्रकार हो सकती है । जब धार्मिक कारणों से यहूदियों क उत्पीड़न होता था उस समय के उनके आचार की तथा जब यह उत्पीड़न कम कर दिया गय अथवा बिलकुल ही समाप्त कर दिया गया उस समय के उनके आचार की तुलना हम कर सक हैं । हम उन यहूदियों के आचार की तुलना, जो उत्पीड़ित किये जा रहे हैं या किये गये हैं उ यहूदियों के आचार से कर सकते हैं जो कभी उत्पीड़ित हुए नहीं ।

आजकल जिन यहूदियों में वे विशेष आचरण बहुत स्पष्ट हैं जिन्हें हम यहूदी आचरण कह हैं और अ-यहूदी जिन्हें यहूदियों की हर जगह और हर काल में विशेषता मानते आये हैं, पूरबी यूरोप के आशकेनाज़ी यहूदी हैं । वे रूमानिया तथा निकटवर्ती प्रदेशों में, जो रूसी साम्रा में तथाकथित 'यहूदी घेरे' में सम्मिलित थे, वैधानिक न सही नैतिक दृष्टि से दबाये हुए हैं और दबाने वाली पिछड़ी हुई ईसाई जातियाँ हैं। यहूदियों का विशेष आचरण हालैंड, ग्रेट-ब्रिटे फ्रांस तथा संयुक्त राज्य द्वारा विमुक्त किये हुए यहूदियों में नहीं पाया जाता । और जब हम इ बात पर विचार करते हैं कि इन देशों में यहूदियों की विमुक्ति को कितना कम समय हुआ और पश्चिम के प्रबुद्ध देशों में भी उनकी नैतिक विमुक्ति अभी पूर्ण रूप से नहीं हुई है तब इ यहूदियों के आचरण के परिवर्तन को कम महत्त्व न देंगे ।[2]

यह भी हम कहेंगे कि पश्चिम के विमुक्त यहूदियों में जो आशकेनाज़ी वंश के हैं और यहू घेरे से आये हैं अधिक यहूदी आचरण दिखाई पड़ता है और हमारे बीच जो सेफारडिम वंश के

---

१. जब श्री ट्वायनबी ने यह भाग लिखा था नाजियों द्वारा यहूदियों की यातना आर नहीं हुई थी, इसलिए उसका विवरण इसमें नहीं आया है ।——सम्पादक

२. पब्लिक स्कूल के अध्यापक के नाते मैं (सम्पादक) कह सकता हूँ कि मैंने देखा है पब्लिक स्कूल में जो यहूदी लड़के अच्छे खिलाड़ी होते हैं और इस कारण अपने साथियों के प्रेमपा हो जाते हैं, उतना 'यहूदी-आचरण' नहीं प्रदर्शित करते जितना और यहूदी बालक जो खेला नहीं हैं । साधारण अ-यहूदी बालक उन्हें यहूदी समझते ही नहीं चाहे उनके नाम और चेहरे क बनावट जैसी भी हो ।——सम्पादक

जो मूलत: दारुस्सलाम से आये हैं उनमें यह बात नहीं है । और इस कारण दोनों वंशों के इतिहास की भिन्नता है ।

आशकेनाजिम उन यहूदियों के वंशज हैं जिन्होंने उस परिस्थिति का लाभ उठाया जब रोमनों ने यूरोप का द्वार खोला । उन यहूदियों ने आल्प्स के पार के अर्ध बर्बर प्रदेशों से खुदरा व्यापार से लाभ उठाना आरम्भ किया । रोमन साम्राज्य के समाप्त हो जाने पर इन आशकेनाजियों को दोहरा कष्ट उठाना पड़ा । ईसाइयों की कट्टरता से और बर्बरों के क्रोध से । कोई बर्बर यह नहीं देख सकता कि एक विदेशी आकर और उनके बीच दूसरे प्रकार का जीवन बिताकर इस प्रकार व्यापार करके लाभ उठाये जो बर्बर की क्षमता के बाहर है । इन्हीं प्रकार की भावनाओं से प्रेरित होकर पश्चिमी ईसाइयों ने तब तक उन्हें यातना दी जब तक वे अनिवार्य समझे गये और जब ईसाइयों ने समझा कि उनकी आवश्यकता नहीं है उन्हें निष्कासित कर दिया । इस प्रकार पश्चिमी ईसाई समाज के उत्कर्ष और प्रसार के साथ-साथ आशकेनाजिम पूरब की ओर चलते गये । राइन प्रदेश के पुराने रोमन साम्राज्य की सीमा से वर्तमान ईसाई समाज की सीमा तक, उसी यहूदियों के घेरे में वे गये । पश्चिमी ईसाई समाज का ज्यों-ज्यों विस्तार होता गया और पश्चिम के लोगों में ज्यों-ज्यों आर्थिक दक्षता आती गयी यहूदी लोग एक देश से दूसरे देश में निकाले जाते रहे, जैसे इंग्लैंड से एडवर्ड प्रथम ने (१२७२–१३०७) निकाला । महाद्वीपों के तटीय उन्नतिशील देशों ने इन यहूदी निष्कासितों का स्वागत किया और पश्चिमीकरण की आरम्भिक अवस्था में उन्हें व्यावसायिक नेताओं के रूप में स्वागत भी किया और ज्योंही ईसाई समाज ने देखा कि अब आर्थिक जीवन के विकास में इनकी आवश्यकता नहीं है इन्हें अस्थायी शरणालय से निकाल बाहर किया । इस घेरे के अन्दर आशकेनाजी यहूदियों को पश्चिम से पूरब की ओर की निकासी बन्द कर दी गयी और उनका बलिदान सीमा तक पहुँच गया । क्योंकि यहाँ पश्चिमी तथा रूसी परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय का मिलन केन्द्र था । यहाँ यहूदी चक्की के दोनों पाटी के बीच पड़ गये । जब वे पूरब की ओर प्रस्थान करना चाहते थे 'पवित्र रूस' ने उनकी राह रोकी । आशकेनाजियों के भाग्य से पश्चिम के मुख्य राष्ट्र, जो मध्य युग में यहूदियों को निकालने में सबसे आगे थे अब ऐसे आर्थिक स्तर पर पहुँच गये कि स्वावलम्बी थे और यहूदियों की प्रतियोगिता से आशंका नहीं रह गयी । उदाहरण के लिए कामनवेल्थ शासन के समय क्रामवेल ने (१६५३–५८ ई०) यहूदियों को पुन: इंग्लैंड में रहने की आज्ञा दे दी । पश्चिम में यहूदियों का विस्तार उसी समय हुआ और आशकेनाजियों को पश्चिम की ओर जाने का नया द्वार खुला, जब पूरब की ओर 'पवित्र रूस' की पश्चिमी सीमा उनके लिए वन्द कर दी गयी । विगत शती में आशकेनाजियों का प्रवास पूरब से पश्चिम की ओर ही रहा है । 'घेरे' में से वे इंग्लैंड तथा संयुक्त राज्य में गये हैं । इन अतीत की परिस्थितियों के कारण इसमें आश्चर्य नहीं कि जो आशकेनाजिम हम लोगों के यहाँ आ गये हैं उनमें यहूदियों के आचारों की विशेषताएँ अधिक स्पष्ट हैं वजाय उनके सहधर्मी सेफार्डियों के जो अधिक सुखी स्थानों में रहे हैं ।

स्पेन तथा पुर्तगाल से आये हुए सेफ़ार्डियों में जो 'यहूदीपन' दिखाई देता है उसका कारण उनका दारुस्सलाम में अतीत का निवास है । जो यहूदी फारस में तथा रोमन साम्राज्य के प्रान्तों में फैल गये, जो प्रदेश बाद में अरबों के हाथ में आये, वे अपेक्षाकृत अधिक सुखी परिस्थिति में थे । अब्बासी खलीफों के शासन में उनकी स्थिति उन यहूदियों से खराब नहीं थी जो पश्चिमी

देशों में आये और जिनका निस्तार आज हुआ है । सेफार्डियों पर जो ऐतिहासिक विपत्ति आय उसका कारण था मूरों से धीरे-धीरे आइबीरी प्रायद्वीप का पश्चिमी ईसाइयों के हाथ में जाना ज क्रम पन्द्रहवीं शती के अन्त में समाप्त हुआ । ईसाई विजेताओं ने उनके सम्मुख तीन विकल रखे, विनाश, देश छोड़ देना अथवा धर्म-परिवर्तन । हम उन सेफार्डियों के बाद के इतिहास क देखें जिन्होंने देश छोड़कर अपनी जान बचायी और जिनके वंशज आज जीवित हैं । जो देश निकल गये वे कैथोलिक स्पेन तथा पुर्तगाल के वैरियों की शरण में गये अर्थात् तुर्की, हालैं अथवा टसकनी में ।[1] जो तुर्की पहुँचे उन्हें उसमानलियों ने कुसतुनतुनिया में सेलानि का तथ रुमिली के नागरिक क्षेत्रों में रहने के लिए प्रोत्साहित किया । इससे उन्होंने उस कमी की पूर्ति की जो उच्च मध्य-वर्गीय नागरिक यूनानियों के विनाश अथवा निष्कासन से हो गयी थी । ऐसी उपयुक्त परिस्थिति में उसमानी साम्राज्य में सेफार्डी प्रवासी शरणार्थियों ने व्यापार में विशेषत प्राप्त की तथा उन्नति की । उनमें आशकेनाजी यहूदियों के आचार नहीं पनप सके ।

वे आइबीरी यहूदी जिन्हें मरानो कहते हैं और जिन्होंने चार-पाँच शती पूर्व ईसाई धर्म स्वीका कर लिया, उनमें यहूदियों के लक्षण प्रायः लोप हो गये । इस बात के विश्वास करने के कार हैं कि उच्च तथा मध्य आइबीरी लोगों की नसों में धर्म परिवर्तित यहूदियों का रक्त है । किन्तु चतुर से चतुर मनोविश्लेषण वाले के सामने यदि उच्च तथा मध्य वर्ग के स्पेनी और पुर्तगाल लोगों को परीक्षा के लिए रखा जाय तो वे कठिनाई से बता सकेंगे कि इनके पूर्वज यहूदी थे

आधुनिक काल में मुक्त यहूदियों का एक दल यहूदियों के लिए पश्चिम के ढंग का आधुनिकत राष्ट्र बना कर अपने समाज को पूर्ण रूप से मुक्त करना चाहता है ।[2] जायनिष्टों का अन्तिम ल यह है कि शतियों के उत्पीड़न से जो एक विचित्र मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि उत्पन्न हो गयी है उस यहूदियों को मुक्त किया जाय । इस अन्तिम लक्ष्य के सम्बन्ध से मुक्त यहूदियों का दूसरा दल वह भी सहमत है । 'मिल जाने वाले' यहूदी और जायनिस्ट दोनों चाहते हैं कि यहूदी को 'विदे जाति' रूपी बीमारी से मुक्त किया जाय । किन्तु जायनिस्ट 'मिल जाने वालों' के उपचार सहमत नहीं हैं और यही उनमें भेद है ।

'मिलने वालों' का आदर्श यह है कि हालैंड के यहूदी, इंग्लैंड अथवा अमेरिका के यहूदी डच, अंग्रेज अथवा अमेरिकन होना चाहिए जिनका धर्म यहूदी हो । उनका तर्क है कि कि प्रबुद्ध देश में किसी यहूदी नागरिक को वह नागरिक बनने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहि चाहे वह रविवार को गिरजाघर जाने के बजाय शनिवार को अपने उपासना-गृह में जाता हो जायनिस्ट इसका दो उत्तर देते हैं । एक तो यह कि मान भी लिया जाय कि 'मिलने वाल की उपचार-विधि से वांछित परिणाम प्राप्त भी हो तो वह कुछ प्रबुद्ध देशों में ही हो सकता जहाँ संसार भर के यहूदियों की बहुत कम संख्या है । दूसरा उत्तर यह है कि बहुत ही उपयु वातावरण में भी इस प्रकार यहूदियों की समस्या का हल नहीं हो सकता क्योंकि यहूदी होना केव

---

१. डिसरायली अपने को इन्हीं का वंशज कहता था । यह सम्भवतः ठीक है, किन्तु उस अपने पूर्वजों का इतिहास अति रंजित जान पड़ता है ।

२. जब यह पुस्तक लिखी गयी उसके बाद यहूदियों का राष्ट्र बन गया है । —अनुवाद

यहूदी धर्म का होने से बहुत कुछ अधिक है। जायनिस्टों की दृष्टि में जो यहूदी डच या अंग्रेज या अमरीकी बनना चाहता है वह अपने व्यक्तित्व को नष्ट करता है, किन्तु डच या अंग्रेज अथवा जिस भी अ-यहूदी राष्ट्रीयता को ग्रहण करता है उसका व्यक्तित्व उसे प्राप्त नहीं होता। जायनिस्टों का कहना है कि यदि और राष्ट्रों के समान यहूदियों को भी होना है तो मिलने की प्रक्रिया व्यक्तिगत रूप से न होकर राष्ट्रीय ढंग से होनी चाहिए। इसके बजाय कि छिट-पुट यहूदी एक-दो डच अथवा अंग्रेज बनने का व्यर्थ प्रयास करें, यहूदियों को अंग्रेज या डच में इस प्रकार मिलना चाहिए कि उन्हें अपने लिए एक राष्ट्रीय भूमि बनानी चाहिए जहाँ यहूदी उसी प्रकार रह सकें जैसे इंगलैंड में अंग्रेज या हालैंड में डच रहते हैं——जहाँ वे अपने देश के स्वत्वाधिकारी हों।

यद्यपि जायनिस्टों के आन्दोलन का व्यावहारिक रूप केवल पचास साल पुराना है, उसके सामाजिक दर्शन का परिणाम ठीक निकला है। पैलेस्टीन के कृषि-उपनिवेश में यहूदियों की सन्तान पहचानी नहीं जाती। वे अब ऐसे अच्छे खेतिहर हो गये हैं। वैसे ही उपनिवेश के खेतिहर जैसे और अ-यहूदी देश वाले। दुर्भाग्य यह है कि वहाँ पहले की रहने वाली अरब जनता से उनका समझौता नहीं हो सका है।

केवल अब उन थोड़े-से यहूदियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में बता देना है जो सुदूर ऐसे स्थलों में भाग गये और इस प्रकार जिन्होंने उत्पीड़न से अपनी रक्षा कर ली। वहाँ उनके लक्षण कठोर किसानों के समान हैं अथवा पहाड़ी देश के रहने वालों के समान वे असभ्य हैं, जैसे अरब के दक्षिण-पश्चिम में यमन के यहूदी अबीसीनिया के फालाशा, काकेशिया के पहाड़ी यहूदी और क्रीमिया के तुर्की बोलने वाले क्रिमचक यहूदी।

८. सुनहला मध्यम मार्ग

(१) पर्याप्त और आवश्यकता से अधिक

हम ऐसी जगह पहुँच गये हैं कि अन्तिम तर्क उपस्थित कर सकते हैं । हम इस निर्णय प पहुँचे हैं कि सभ्यता ऐसे वातावरण में जन्म लेती है जो कठोर होते हैं, अथवा जहाँ जीवन सरल न होता । इससे हमने यह खोज करने की चेष्टा की कि यह किसी सामाजिक नियम का उदाहर तो नहीं है जिसे हम इस फारमूला द्वारा व्यक्त कर सकते हैं—कि 'जितनी ही जबरदस्त चुनौत होगी उतनी ही अधिक प्रेरणा होगी ।' हमने पाँच प्रकार की प्रेरणाओं द्वारा उत्पन्न परिस्थितिय का अध्ययन किया है—कठोर देश, नयी धरती, आघात, दवाव तथा उत्पीड़न । और इन पाँच सर्वेक्षणों में हमारे नियम का औचित्य सिद्ध हुआ है । किन्तु हमें यह देखना है कि यह निय निरपेक्ष है कि नहीं । यदि हम चुनौती की तीव्रता यावदनन्त (एड इनफिनिटम) बढ़ाते जा तो क्या यह निश्चित है कि प्रेरणा भी उसी अनुपात में बढ़ती जायगी और बराबर उसी अनुपा में चुनौती का सामना सफलतापूर्वक होता जायगा ? या हम बढ़ते-बढ़ते किसी ऐसे स्थान प पहुँचेंगे जहाँ चुनौती के अनुपात में प्रेरणा कम होने लगती है । और यदि इस स्थिति के भी ह आगे पहुँचते हैं तो क्या ऐसी स्थिति पर पहुँच जाते हैं जब चुनौती इतनी तीव्र हो जाती है कि सफलता के साथ उसका सामना करना असम्भव हो जाता है ? यदि यह है तो नियम यह होगा— 'कठोर और सबसे सरल चुनौती के औसत वाली चुनौती में सबसें अधिक प्रेरणा मिलेगी ।'

क्या बहुत अधिक चुनौती के ढंग की कोई वस्तु हो सकती है ? हमें ऐसा कोई उदाहरण न मिला है । चुनौती की चरम सीमा और उसके सामना करने के क्रियाकलाप के कुछ उदाहर हैं जिसका वर्णन हमने अभी नहीं किया है । हमने वेनिस की बात नहीं कही जो झील के किना मिट्टी में लकड़ी की बल्लियाँ धँसा कर बना है और जिसने सम्पत्ति और गौरव में पो के किना ठोस धरती पर बने सब नगरों से बाजी मार ली, हालैंड की भी बात हमने नहीं कही जो देश साग में से पानी हटाकर और धरती निकाल कर बना है और अपने ही क्षेत्रफल के बराबर उत्तर यूरो के मैदान के किसी टुकड़े से अधिक गौरवशाली इतिहास का निर्माण जिसने किया है । स्विटजरलैं जो पहाड़ों का ढेर है उसके सम्बन्ध में भी नहीं कहा है । ऐसा जान पड़ता है कि पश्चिमी यूरो के इन तीन कठोर प्रदेशों ने विभिन्न ढंगों से सामाजिक उन्नति के उच्चतम स्तर को प्राप्त किया जहाँ पश्चिम का कोई प्रदेश अबतक नहीं पहुँच सका ।

किन्तु और बातें विचारणीय हैं । इन तीनों प्रदेशों की चुनौती बहुत कठोर अवश्य रही है किन्तु वे समाज की दो या एक ही परिस्थिति तक सीमित रही हैं । भौतिक कठोरता अवश्य रही है, किन्तु जहाँ तक मानवी कठोरता का सम्बन्ध है, जैसे आघात, दवाव, दमन—इनसे भौतिक कठोरता ने रक्षा की है और इस प्रकार भौतिक कठोरता चुनौती नहीं, सुख ही रही है । इसके कारण मानवी कष्टों से उनकी रक्षा हुई जिनसे उनके पड़ोसी पीड़ित हुए । मिट्टी के किनारों

वाला वेनिस मुख्य प्रायद्वीप से झीलों द्वारा अलग रहा जिसके फलस्वरूप एक हजार साल तक (८१०-१७९७) कोई विदेशी सेना उस पर अधिकार न कर सकी। हालैंड ने अनेक बार कुछ काल के लिए अपने बाँधों को तोड़ अपने प्रमुख केन्द्रों की रक्षा की। उसी के साथ तुलना कीजिए उसके पड़ोसी लम्बार्डी और फ्लैंडर्स की जो सदा यूरोप के रणक्षेत्र रहे।

ऐसे अनेक उदाहरण सरलता से दिये जा सकते हैं जो विशेष चुनौतियों का सामना नहीं कर सके। इससे कुछ प्रमाणित नहीं होता क्योंकि प्रत्येक चुनौती जिसका सफलतापूर्वक सामना किया गया है, कभी-न-कभी सौवीं बार अथवा सहस्रवीं बार सामना करने वाले पर विजय प्राप्त करती है। प्रकृति का ऐसा ही विधान है। इस प्रकार के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए उत्तरी यूरोप के जंगलों की प्राकृतिक चुनौती ने आदिम मनुष्य को पराजित किया। उनके पास पेड़ों को गिराने के साधन नहीं थे और न उन्हें इसका ज्ञान था कि यदि पेड़ गिरा भी दिये जायँ तो उसके बाद जो उपजाऊ धरती मिलेगी उसमें खेती किस प्रकार की जाय। इसलिए उत्तरी यूरोप के आदिम निवासियों ने जंगलों का बहिष्कार किया और बालू के ढूहों तथा खड़िया मिट्टी की पहाड़ियों पर अड्डा जमाया। जहाँ खोदाई करने पर आज भी उनकी हड्डियाँ डोलमेन और चकमक के रूप में अवशेष मिलती हैं। इन्हीं धरतियों को उनके उत्तराधिकारियों ने, जो जंगल के पेड़ों को गिराने में सफल हुए, अनुपयुक्त धरती माना। आदिम मनुष्यों के सम-शीतोष्ण कटिबन्ध के जंगल बर्फीले टूंड्रा से अधिक दुर्जेय थे। उत्तरी अमरीका में न्यूनतम प्रतिरोध के पथ पर चलते हुए आदिम मनुष्यों ने जंगलों को छोड़ दिया और सुदूर ध्रुव की ओर गये जहाँ उन्होंने उत्तर-ध्रुव वृत्त कीं चुनौती का सामना किया और एसकिमा संस्कृति को जन्म दिया। किन्तु आदिम मनुष्य के अनुभव से यह नहीं प्रमाणित होता कि उत्तर यूरोप के जंगल इतने दुर्जेय हैं कि मनुष्य उनका सामना नहीं कर सकता। इनके बाद जो बर्बर उधर आये उन्होंने अपने यन्त्रों तथा तकनीकों से कुछ सामना किया क्योंकि जिस सभ्यता से उनका सम्पर्क था उससे उन्हें अनुभव प्राप्त था और थोड़े दिनों में पश्चिमी तथा रूसी परम्परावादी सभ्यता के नेता आये और पूर्ण रूप से यहाँ विजय प्राप्त कर ली।

ईसा के पूर्व दूसरी शती में पो की घाटी में उत्तर यूरोपीय जंगलों के दक्षिणी अग्रभाग जिसपर पहले वाले रोमन नहीं विजय प्राप्त कर सके थे बाद के रोमन दल के अग्रगामियों ने विजय प्राप्त कर ली। यूनानी इतिहासकार पोलीबियस उस समय गया था जब यह प्रदेश बसने लगा था। उसने रोम के गैलिक पूर्ववर्ती अन्तिम वंशज की जो आल्पस के जंगलों में अभी रहते थे। उसने दरिद्रता तथा असफल जीवन की तुलना उन लोगों से की जो उन प्रदेशों में रहते थे, जिन पर रोम ने विजय प्राप्त की थी। इसी प्रकार का चित्र उन्नीसवीं शती में उपस्थित किया जाता था जब केंट की अथवा ओहिया के आदिकालिक जंगलों में रेड इंडियनों के निकृष्ट जीवन से एंग्लो-अमरीकी अग्रगामियों से तुलना की जाती है।

भौतिक वातावरण से मानवी परिस्थिति की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तब वहाँ भी हमें यही स्थिति मिलती है। एक चुनौती जिससे एक सामना करने वाला पराजित हो जाता है वही दूसरे सामना करने वाले से स्वयं पराजित होती है।

उदाहरण के लिए हेलेनी समाज तथा उत्तर यूरोपीय बर्बरों के सम्बन्ध को हम देखें। यहाँ एक दूसरे पर दबाव पारस्परिक था। किन्तु हम केवल हेलेनी समाज के बर्बरों पर दबाव के

विचार तक सीमित रखेंगे । जैसे-जैसे यह सभ्यता प्रायद्वीप के अन्दर गहरी घुसती गयी बर् के जीवन-मरण का प्रश्न एक के बाद दूसरी पंक्ति के सामने उपस्थित होता गया । उसके साम प्रश्न था कि हम इस विदेशी बलवती शक्ति द्वारा अपने सामाजिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर और हेलेनी समाज में घुल-मिल जायँ ? या हम इसका सामना करें और बाहरी विरोधी हेले सर्वहारा के साथ हो जायँ और समय पाकर बर्बर समाज के शव पर बैठकर उसका भक्षण करें अर्थात् हम गिद्ध हों कि शव हों ? बार-बार इस प्रकार की चुनौती केल्टों और ट्यूटनों के बी आती रही । बहुत संघर्ष के पश्चात् केल्ट धराशायी हो गये और ट्यूटन विजयी हुए ।

केल्टों की पराजय प्रभावोत्पादक थी क्योंकि उनका आरम्भ अच्छा था और उन्होंने आरम् में परिस्थितियों से अच्छा लाभ उठाया । एट्रस्कनों की भूल से उन्हें अच्छा अवसर भी मिला पश्चिमी भूमध्यसागर के आरम्भिक प्रवेश के समय अपने प्रतिद्वन्द्वी हेलेनी संस्कृति के ग्रह करने वाले ये हितायती इटली के तट पर अधिकार जमाने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए । उनके अगु अपेनीन पहाड़ को पार कर के अन्दर घुसे और पो के बेसिन में दूर तक इधर-उधर फैल गये । इ कार्य में उन्होंने अपनी शक्ति का ह्रास किया और इन्हें नष्ट करने की शक्ति केल्टों को प्राप्त ह गयी । उसका परिणाम 'केल्टों का आवेग' (फ्यूरोर केल्टिकस) उत्पन्न हुआ जो दो शताब्दि तक स्थिर रहा और केल्टों की बाढ़ अपेनाइन पार करते हुए रोम ही नहीं पहुँची, (३९० बी० सी के विदेशी आक्रमण के) बल्कि मेसिडोनियाँ (२७९–६ बी० सी०) में, यूनान में, पूरब में अनातोलिया तक ये पहुँचे जहाँ वे 'गैलेशियन' नाम और अपना प्रभाव छोड़ गये । हैनिबल ने पो बेसि के विजेताओं को अपना मित्र बनाया, किन्तु ये सफल नहीं हुए और केल्टों के आवेग ने रोम साम्राज्यवाद की चुनौती को बल प्रदान किया । पश्चिमी प्रदेश में रिमिनी से राइन तथा टाइ तक और पूरब में डेन्यूब तथा हैलिस की चौकियों तक केल्ट छिन्न-भिन्न हो गये और अन्त में रोम साम्राज्य इन्हें निगल गया ।

यूरोपियन बर्बरों के केल्टिक भाग के नष्ट हो जाने से उनके बाद वाला ट्यूटनी भाग साम आ गया और उसे भी उसी चुनौती का सामना करना पड़ा । आगस्टी युग के इतिहासका को ट्यूटनों के भविष्य का क्या स्वरूप समझ में आया होगा जिन्होंने यह देखा कि ट्यूटनों के वे को मैरियस ने पूर्णत: नष्ट कर दिया और सीजर ने ट्यूटनों को गआल से पूर्णत: निष्कासित क दिया । उस इतिहासकार ने कहा होता कि ट्यूटनों का भी वही हाल होगा जो केल्टों का हुआ और सम्भवत: और सरलता से । किन्तु उसकी भविष्यवाणी गलत होती । रोमन सीमा एल्ब तक पहुँची, किन्तु कुछ ही समय के लिए । रोमनों को राइन-डैन्यूब रेखा तक लौटना पड़ और वहीं तक रहना पड़ा । जब सभ्य और बर्बरों के बीच की सीमा स्थिर हो जाती है तब सम सदा बर्बरों के पक्ष में रहता है । केल्टों के विपरीत ट्यूटनों पर हेलेनी संस्कृति का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । न तो सेना, न व्यापारी न प्रचारक (मिशनरी) उनका कुछ कर सके । ईसा की पाँचवीं शती आते-आते जब गोथ और वण्डल पेलोपोनीशियनों को लूट रहे थे और तबाह क रहे थे और रोम की स्वतन्त्रता को खतरे में डाल दिया था, तथा गआल, स्पेन और अफ्रीक पर अधिकार जमा लिया था, यह स्पष्ट हो गया कि जहाँ केल्ट असफल रहे वहाँ ट्यूटन विजयी हुए । यह इस बात का प्रमाण है कि हेलेनी दबाव इतना तीव्र नहीं था कि उस पर विजय प्राप्त करना असम्भव हो ।

एक बात और । सिकन्दर की सेना द्वारा हेलेनी संस्कृति का जो आक्रमण सीरियाई संसार पर हुआ वह सीरियाई समाज के प्रति बलपूर्वक चुनौती थी । सीरियाई समाज के सामने यह प्रश्न था कि वह हेलेनी आक्रमण का विरोध करे कि नहीं । इस चुनौती का सामना करने के लिए सीरियाइयों ने अनेक प्रयत्न किये । इन सब प्रयत्नों में एक बात सब में थी । प्रत्येक में हेलेनी आक्रमण के विरोध का आधार धार्मिक आन्दोलन था, किन्तु पहले चार विरोधों तथा अन्तिम विरोध में एक विशेष अन्तर था । जोरो आस्ट्री, यहूदी, नेस्टोरी, तथा मोनोफाइसाइटों के विरोध विफल हुए, ~~इस्लामी विरोध सफल~~ हुआ । जोरोआस्ट्री तथा यहूदी विरोध उन धर्मों के द्वारा हेलेनी चुनौती का विरोध करना चाहता था जो हेलेनी आक्रमण के पहले सीरियाई जगत् में वर्तमान थे । जोरोआस्ट्री धर्म के बल पर सीरियाई संसार के पूर्वी भाग में ईरानी हेलेनियों के विरुद्ध खड़े हुए और सिकन्दर की मृत्यु के दो सौ वर्ष के भीतर ही फरात (यूफ्रेटीज) के पूरब के सब प्रदेशों से उन्हें निकाल बाहर कर दिया । किन्तु जहाँ जोरोआस्ट्री चरम सीमा तक पहुँच गये और सिकन्दर की शेष विजित भूमि का उद्धार रोम ने हेलेनीवाद के लिए किया । मकाकीज़ के नेतृत्व में यहूदियों की जो प्रतिक्रिया हुई थी कि अपने पश्चिमी मातृभूमि को सीरियाई सभ्यता से मुक्त करने के लिए भीतरी क्रान्ति की जाय, वह भी असफल रही, यद्यपि यह चेष्टा साहस के साथ की गयी थी । सिल्पुसिडों पर जो क्षणिक विजय प्राप्त हुई थी उसका बदला रोम ने ले लिया । ~~सन् ६६-७० ई० में जो रोम-यहूदी युद्ध हुआ था उसके परिणाम में फिलस्तीन में यहूदियों की शक्ति चकनाचूर~~ हो गयी और अपने पवित्र नगर से मकाबीज ने जिन 'विनाशकारी रोमनों' को निकाल दिया था वे उस समय वापस आ गये और टिक गये जब हैड्रियन ने उस स्थान पर एलिया कैपिटोसिना नाम का उपनिवेश बसाया । जहाँ आजकल जरुसलेम है ।

जहाँ तक नैस्टोरी और मोनोफाइसीटी प्रतिक्रिया की बात है एक-दूसरे का प्रयत्न हेलेनी सभ्यता का विरोध, उस यन्त्र से करना था, जो आक्रमणकारी सभ्यता ने हेलेनी तथा सीरियाई तत्वों को मिलाकर तैयार किया था । आदिम ईसाई धर्म में जिसमें अनेक ईसाई विचारों का समन्वय था सीरियाई धार्मिक भावनाओं का कुछ सीमा तक हेलेनीकरण किया गया था । यह धर्म हेलेनियों के अनुकूल था, किन्तु सीरियाई इसके विरोधी थे । नेस्टोरी तथा मोनोफाइसाइटी दोनों अधार्मिक विचार ईसाई धर्म पर से हेलेनी प्रभाव हटाना चाहते थे, किन्तु हेलेनी प्रभाव को ये नहीं रोक सके । नेस्टोरीवाद फरात के पार भगा दिया गया । मोनोफाइसाइटीवाद सीरिया, मिस्र और आरमीनिया में जमा रहा क्योंकि वहाँ के किसानों के हृदय पर हेलेनीवाद का प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु नगर की चहारदीवारी के भीतर जहाँ शक्तिशाली अल्पसंख्यक थे कट्टरपन तथा हेलेनीवाद को वह नहीं हटा सका ।

सम्राट् हेराक्लियस के समय का कोई व्यक्ति जिसने पूर्वी रोमन साम्राज्य की ससानिदों पर अन्तिम युद्ध में विजय देखी होगी, और जिसने परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय की विजय नेस्टोरियों तथा मोनोफाइसाइटों के अन्तिम युद्ध में देखी होगी, वह ६३० ई० में ईश्वर को धन्यवाद देता कि उसने रोम, कैथोलिकवाद तथा हेलेनीवाद को एक कर दिया और यह अपराजेय है । किन्तु इसी समय हेलेनीवाद के विरुद्ध पाँचवी सीरियाई प्रतिक्रिया आने ही वाली थी । सम्राट् हेराक्लियस का दुर्भाग्य था कि वह उस समय तक जीवित रहा जब उसके सामने पैगम्बर मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी उमर उसके राज्य में आये और जिन्होंने सदा के लिए सिकन्दर के बाद से जो

कुछ सीरियाई राज्य में हेलेनीकरण किया गया था नष्ट कर दिया । क्योंकि इस्लाम वहाँ स हुआ जहाँ उसके पहले आने वाले असफल हो चुके थे । सीरियाई संसार से उसने हेलेनीवाद निष्कासित कर दिया । उसने फिर से अरब के खलीफा के राज्य का संयोजन किया और सार्वभौ सीरियाई राज्य बनाया जिसे सिकन्दर ने फारसी राजा अकेमिनीडी को हरा कर छोटा कर लि था । अन्त में इस्लाम ने सीरियाई समाज में देशी सार्वभौम धर्म की स्थापना की और शक्ति के मूर्छित समाज को ऐसा रूप प्रदान किया कि वह बिना अपना उत्तराधिकारी बनाये समाप्त होगा । क्योंकि इस्लामी धर्म वह कोष (क्राइसेलिस) हुआ जिसमें से समय पाकर अरबी त ईरानी सभ्यताओं का जन्म हुआ ।

उपर्युक्त उदाहरणों से हमें पता चलता है कि जो समस्या हमारे सामने है उसके निराक की कोई समुचित प्रणाली हमें नहीं मिली, जहाँ हमें कोई स्पष्ट उदाहरण मिलता कि यहाँ चुनौ की कठोरता बहुत अधिक प्रमाणित हुई हो । दूसरे ढंग से हमें इस समस्या पर विचार क चाहिए ।

(२) तीन स्थितियों की तुलना

समस्या पर नयी दृष्टि

क्या हम कोई दूसरी ऐसी प्रणाली ढूँढ़ सकते हैं जिससे और अच्छा परिणाम निकल स है । अभी तक हमने इस प्रकार आरम्भ किया जब चुनौती द्वारा विरोधी पक्ष की हार हो ज है । अब हम उन उदाहरणों को देखें जहाँ चुनौती के कारण प्रेरणा और स्फूर्ति मिली है विरोधी सफल हुआ है । ऊपर के अध्याय के कई भागों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण गये हैं और ऐसे समाजों की तुलना, जिन्होंने सफलतापूर्वक चुनौती स्वीकार की, ऐसे ही स समाजों से की गयी है, जिन्होंने जब चुनौती कम कठोर थी तब उसी प्रकार की चुनौती का सा कम सफलता से किया । अब कुछ इस प्रकार की तुलना को दो स्थितियों में देखना चाहिए यह देखना चाहिए कि तीन स्थितियों तक क्या उसे बढ़ा सकते हैं ?

प्रत्येक स्थिति में हमें किसी तीसरी ऐतिहासिक परिस्थिति को खोजना चाहिए जहाँ चु कम कठोर नहीं, बल्कि जिस चुनौती से हमने आरम्भ किया उससे अधिक कठोर रही । यदि इस प्रकार की किसी तीसरी स्थिति को खोज सकें तब वह परिस्थिति जो मिस्र से हमने आर की थी—अर्थात् चुनौती का सफल सामना—दो चरम स्थितियों के बीच, मध्यम स्थिति हो है । इन दोनों चरम स्थितियों में चुनौती की कठोरता मध्य वाली स्थिति से कम अथवा अ होती है । चुनौती का सामना करने से सफलता मिलती है कि नहीं ? हमने देखा है कि परिस्थिति में चुनौती कम कठोर थी वहाँ सामना करने में भी कम तीव्रता थी । परन्तु ती परिस्थिति में क्या होता था, जिसपर पहली बार हम विचार कर रहे हैं । जहाँ चुनौती कठोर है वहाँ सामना करने से सफलता भी अधिकतम हुई है । मान लीजिए कि हमें ऐसा मि मिले कि चुनौती मध्यम स्थिति से अधिक कठोर रही हो और सफलता की वृद्धि सापेक्ष अधि हुई बल्कि सामना करने की शक्ति में कमी आ गयी हो । यदि ऐसा प्रमाणित हो जाय तब हम निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि चुनौती तथा सामना का नियम 'क्रमागत ह्रास' के नियम के अनुसार हो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि कठोरता की एक मध्यम स्थिति होती है जब प्रेरणा अधिक

होती है इसे हम अधिकतम (आप्टिमम) कहेंगे। सबसे अधिक जब होती है उसे महत्तम (मैक्सिमम)।

नारवे-आइसलैंड-ग्रीनलैंड

हमने यह देखा है कि नारवे, स्वीडन तथा डेनमार्क में नहीं, बल्कि आइसलैंड में अकाल प्रसूत (अबार्टिव) स्कैंडिनेवियाई सभ्यता ने साहित्य तथा राजनीति में उच्च-सफलता प्राप्त की। यह उपलब्धि दो प्रेरणाओं के फलस्वरूप हुई। एक तो समुद्र पार से लोग आये और दूसरे यह कि जिस देश से स्कैंडिनेवियाई आये उससे आइसलैंड अधिक उजाड़ और कठोर जलवायु का था। मान लीजिए कि जिस चुनौती का इन्हें सामना करना पड़ा उससे दूनी कठोर चुनौती होती। मान लीजिए कि नार्स लोग पाँच सौ मील चलकर ऐसे देश में पहुँचते और बसते जो आइसलैंड से उतना ही कठोर होता जितना नारवे से आइसलैंड है। क्या 'थूल' के आगे 'धूल'[1] का प्रदेश ऐसा स्कैंडिनेवियाई समाज पैदा करता जो साहित्य और राजनीति में ऐसी ही प्रतिभा प्राप्त करता जो आइसलैंड में हुई। यह प्रश्न काल्पनिक नहीं है क्योंकि जिस अवस्था का हमने वर्णन किया है वही वास्तव में हुई जब ये सामुद्रिक यात्री आगे ग्रीनलैंड गये। और हमारे प्रश्न के उत्तर में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। पाँच सौ वर्ष से भी कम समय में ग्रीनलैंड वाले ऐसी भौतिक परिस्थिति से युद्ध करते-करते पराजित हो गये, जो उनके लिए अति कठोर थी।

डिक्सी-मसाचसेट्स-मेन

हमने पहले ही इस बात की तुलना की है कि किस प्रकार इंग्लैंड के कठोर जलवायु और पथरीली धरती के द्वारा कठोर भौतिक चुनौती बृटिश-अमरीकी उपनिवेशकों के सम्मुख उपस्थित हुई और वरजीनिया तथा केरोलिना की कम कठोर भौतिक चुनौती सामने आयी। प्रायद्वीप पर अधिकार करने की होड़ में न्यू इंग्लैंड वालों ने सब प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित किया। मैसन[2] और डिक्सन[3] रेखा स्पष्टत: श्रेष्ठतम चुनौती के क्षेत्र की दक्षिणी सीमा है। हमें यह देखना है कि इस जलवायु की कठोर चुनौती के क्षेत्र की कोई उत्तरी सीमा भी है। यह प्रश्न उठाते ही हमें पता चल जाता है कि हाँ ऐसा है।

श्रेष्ठतम भौतिक क्षेत्र की उत्तर सीमा न्यू इंग्लैंड को विभाजित करती है। क्योंकि जब हम न्यू इंग्लैंड का नाम लेते हैं और अमरीकी इतिहास में जो योगदान इसने दिया है उसे देखते हैं तब हम छ राज्यों में केवल तीन की बात कहते हैं अर्थात् मसाचसेट्स, कनेक्टिकट तथा र्‌होड द्वीप की। न्यू हेम्पशर, वरमांट और मेन की नहीं। उत्तर अमेरिका के अंग्रेजी बोलने वाले समाज में मसाचसेट्स सदा आगे रहा है। अठारहवीं शती में अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन के विरोध में वह आगे रहा और तब से बौद्धिक तथा कुछ सीमा तक औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में उसने अपने नेतृत्व का स्थान सुरक्षित रखा यद्यपि संयुक्त राज्य का तब से महान् विकास हुआ है। इसके विपरीत मेन का, जो १८२० तक मसाचसेट्स का ही भाग रहा—उसी सन् में वह अलग राज्य बना—कोई महत्त्व नहीं रहा और आज सत्रहवीं शती की केवल यादगार है जब वहाँ लकड़हारे, मल्लाह और शिकारी

---

[1] ब्रिटेन के उत्तर में किसी टापू का नाम।—अनुवादक

[2]–[3] दक्षिण पूरवी संयुक्त राज्य के दो नगर।—अनुवादक

रहते थे । अब वह अजायबघर की वस्तु रह गयी है । इस कठोर प्रदेश के निवासी आज निर्वाह उत्तरी अमरीका से जो पर्यटन करने आते हैं, जो ग्रामीण वातावरण में छुट्टियाँ आते हैं, उनके पथ प्रदर्शक बनकर रहते हैं । क्योंकि मेन आज भी उसी दशा में है जिस पहले था । आज मेन अमरीकी यूनियन का सबसे प्राचीन प्रदेश है, उसका सबसे कम संस्कार है और उसमें सबसे कम कृत्रिमता है ।

मेन और मसाचसेट्स में जो यह अन्तर है उसका कारण क्या है ? यह पता चलेगा इंग्लैंड की जो कठोर भौतिक परिस्थिति है वह मसाचसेट्स में अधिकतम है और मेन में वह स्थिति इतनी अधिक हो जाती है कि मनुष्य के सामना करने में उसका ह्रास आरम्भ होने है । हम अपना सर्वेक्षण और दूर तक ले जायँ तो हमारी बात ठीक निकलेगी । के न्यू ब्रन्जविक, नोवा-स्कोशिया तथा प्रिंस एडवर्ड द्वीप सबसे कम समृद्ध तथा प्रगतिशील और उत्तर चलिए तो न्यूफाउण्डलैंड ने भौतिक युद्ध में सामना न कर सकने के कारण अपने खड़ा होने का विचार छोड़ दिया और सहायता के बदले ग्रेट ब्रिटेन का एक प्रकार 'क्राउन होना स्वीकार कर लिया है । उससे भी उत्तर चलिए तो लैब्रैडर में वही अवस्था देखते नार्स उपनिवेशकों को ग्रीनलैंड में मिली थी । यह महत्तम चुनौती थी, अधिकतम नहीं बल्कि उसे 'निकृष्टतम' कह सकते हैं ।

ब्राजील-ला प्लाटा-पेटेगोनिया

दक्षिण अमरीका के अतलान्तक तट का भी स्पष्टत: यही रूप है । उदाहरण के लिए राष्ट्रीय सम्पत्ति, साधन, आबादी तथा शक्तिशाली देश के एक छोटे भाग में सीमित है जो डिगरी दक्षिणी अक्षांश के दक्षिण है । यह भी देखने की बात है कि दक्षिणी ब्राजील दूसरे क्षेत्रों से जैसे ला प्लाटा के मुहाने के दोनों ओर के राज्यों से, अर्थात् उरुगे तथा का आरजेंटाइन राज्य से निम्न कोटि का है । यह स्पष्ट है कि दक्षिण अमरीका का तट के विषुवत् रेखा का क्षेत्र स्फूर्तिदायक नहीं है, बल्कि शिथिल करने वाला है । भी स्पष्ट है कि ला प्लाटा नदी के मुहाने का ताप तथा जलवायु अधिक नम है । यदि तट पर और दक्षिण चलें तो चुनौती का दबाव तो अधिक है, किन्तु उसका सामना करने की नहीं है जैसे पेटेगोनिया के उजाड़ पठार में ।

गोलोवे-अल्सटर-अपेलेशिया

अब हम ऐसे उदाहरण पर विचार करेंगे जिसमें चुनौती केवल भौतिक नहीं है । कुछ है, कुछ मानवी । आज अल्सटर और शेष आयरलैंड में भयंकर अन्तर है । दक्षिणी पुराने ढर्रे का खेतिहर प्रदेश है और अल्सटर आधुनिक पश्चिमी यूरोप का बहुत बड़ा केन्द्र है । बेलफास्ट उसी श्रेणी में है जिसमें ग्लासगो, न्यूकासिल, हैमबुर्ग या डेट्रायट । वहाँ के आदमी अपनी दक्षता के लिए उतने ही विख्यात हैं जितने रूक्षता के लिए ।

अल्सटर वाले किस चुनौती के कारण इस योग्य हुए ? उन्हें दो चुनौतियों का सामना पड़ा । एक तो वे स्काटलैंड से सागर पार करके आये, दूसरे उन्हें आयरिश निवासियों का करना पड़ा जिनको उन्हें वहाँ से हटाना था । इन दोनों कठिनाइयों के कारण उनको प्राप्त हुई जिसे हम यों नाप सकते हैं कि अल्सटर की सम्पत्ति और शक्ति कितनी अधिक है

अपेक्षाकृत उन जनपदों की साधारण स्थिति से जो इंग्लैंड और स्काटलैंड के बीच की सीमा के स्काटलैंड की ओर पड़ते हैं। और जो हाइलैंड रेखा की तराई के किनारे बसे हैं जहाँ से सत्रहवीं शती के स्काटलैंड के उपनिवेशी अल्सटर में आये।[१]

आधुनिक अल्सटर वाले ही इस समुद्र पार से आने वाले उपनिवेशियों के प्रतिनिधि नहीं हैं। क्योंकि जो अग्रगामी स्काटलैंड से अल्सटर में आये उनकी आयरलैंड से मिली-जुली सन्तानें हुईं। ये लोग अठारहवीं शती में फिर अल्सटर से उत्तरी अमरीका में गये और आज भी वे अपेलेशियन पर्वत के दुर्ग रूपी प्रदेश में मौजूद हैं। यह प्रदेश ऊँचा है और अमरीकी यूनियन में पेनसिलवानिया से ज्यार्जिया तक फैला हुआ है। इस दूसरे स्थानान्तरण का क्या प्रभाव पड़ा? सत्रहवीं शती में राजा जेम्स की प्रजा ने (अर्थात् स्काटों ने) सेंट जार्ज चेनल पार किया और जंगली पठार निवासियों से न लड़कर जंगली आयरिशों से लड़े। अठारहवीं शती में उनके वंशजों ने अतलान्तक पार किया और अमरीकी जंगलों में इंडियन योद्धा बने। स्पष्टतः यह अमरीकी चुनौती भौतिक तथा मानवी दोनों रूपों में आयरिश चुनौती से प्रबल थी। क्या इस तीव्रतर चुनौती का सामना भी तीव्रतर हुआ? यदि आज हम अल्सटर वालों तथा अपेलेशियन निवासियों की तुलना, उनके अलग हो जाने के दो सौ साल बाद करें, तो इसका उत्तर नकारात्मक है। आज के अपेलेशियन निवासी ने यही नहीं कि प्रगति नहीं की, वह और पीछे चला गया है और बहुत बुरी तरह। सच पूछिए तो आज अपेलेशियन के 'पहाड़ी लोग' बर्बरों से ऊपर नहीं हैं। आज वे मूढ़ तथा जादू-टोना वाले हो गये हैं। उनमें दरिद्रता है, गन्दगी है और अस्वस्थता है। वे पुरानी दुनिया के पिछले गोरे बर्बरों के अमरीकी प्रतिरूप हैं—जैसे रिफी, अलबेनियन, कुर्द पठान तथा रोएँ वाले ऐनू। अन्तर केवल इतना है—ये पुराने बर्बरों में से आज बचे-खुचे लोग हैं। अपेलेशियन लोग ऐसी जाति के खेदजनक स्वरूप हैं जिन्होंने सभ्यता ग्रहण की और फिर उसे खोकर बर्बर हो गये।

युद्ध की प्रतिक्रिया

अल्सटर-अपेलेशिया के उदाहरण में चुनौती भौतिक भी थी और मानवी भी। किन्तु 'क्रमागत ह्रास' का नियम और उदाहरणों में भी लागू होता है जहाँ चुनौती का कारण केवल मानव ही है। जैसे युद्ध के द्वारा विनाश के कारण जो चुनौती मिलती है। हमने दो उदाहरण दिये हैं जिनमें इस प्रकार की चुनौती का विजयपूर्ण सामना किया गया है। फारस के आक्रमण के बाद एथैन्स 'यूनान का शिक्षा गृह' बन गया, नैपोलियन के आक्रमण के बाद प्रशा बिसमार्क वाला जरमनी बना। क्या इस रूप की ऐसी चुनौती का उदाहरण मिल सकता है जहाँ युद्ध की बरबादी का घाव इतना तीव्र हुआ कि अन्त में उसने जाति को मुर्दा कर दिया। ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं।

हैनिबल ने इटली का ध्वंस किया, उस चुनौती से इटली को कोई स्फूर्ति नहीं मिली जैसी और कम कठोर आक्रमणों से मिली थी। दक्षिणी इटली की उपजाऊ जमीन का कुछ भाग चराई का मैदान बन गया और कुछ में अंगूर तथा जैतून के बाग लग गये। इस नयी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था,

---

[१] ऊपर के पैराग्राफ में, शीर्षक में, 'गैलोवे' नाम जो दिया गया है उससे ठीक-ठीक उस प्रदेश का बोध नहीं होता जहाँ के उपनिवेशी अल्सटर में आये।—सम्पादक

पशुपालन तथा बागवानी का कार्य दास लोग करने लगे । जहाँ स्वतन्त्र किसान उसके खेती करते थे—जब हैनिबल के सैनिकों ने किसानों के घरों को जला दिया और फलस्वरूप खेतों में घास-फूस और कँटीली झाड़ियाँ उगने लगीं । इस प्रकार के क्रान्तिकारी परिव जिसमें खाने के अनाज के बदले तुरत पैसा देने वाली वस्तुओं की खेती आरम्भ हुई, कुछ दिन धरती का आर्थिक मूल्य बढ़ा दिया, किन्तु इससे कहीं अधिक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो गाँव निर्जन हो गये और निर्धन जनता तथा पुराने किसान नगरों में जा बसे । हैनिबल के से जाने के बाद तीसरी पीढ़ी में ग्रैकची ने कानून द्वारा इस प्रवृत्ति को रोकने की चेष्टा की, इससे रोमन राष्ट्रमण्डल और भी अधिक उत्तेजित हुआ जिसका परिणाम राजनीतिक झग फिर घरेलू युद्ध आरम्भ हो गया और टाइबीरियस ग्रैकस के शासन के सौ साल बाद रोम इन बुराइयों के निराकरण के लिए विवश होकर आगस्टस को स्थायी अधिनायक बन इस प्रकार हैनिबल ने जो इटली का विध्वंस किया उससे रोमन जाति ने वैसी स्फूर्ति नहीं की जैसी जरक्सीस के ऐटिका के विध्वंस होने पर एथेन्स वालों ने प्राप्त की । सच पूछिए तो को ऐसा धक्का पहुँचा जिससे वह कभी सँभल नहीं सका । फारसी शक्ति द्वारा की गयी ब से जो स्फूर्ति प्रदान हुई, उसी प्रकार की बरबादी जब प्यूनिक तीव्रता से हुई तब इटली भयंकर हो गयी ।

प्रवास की चुनौती पर चीनियों की प्रतिक्रिया

हमने अनेक श्रेणियों की भौतिक चुनौतियों का प्रभाव बृटिश प्रवासियों के अनेक दल देखा । अब हम यह देखें कि मानवी चुनौती की प्रतिक्रिया प्रवासी चीनियों पर क्या होती जब चीनी कुली बृटिश मलयद्वीप अथवा डच ईस्ट इंडीज़ में जाता है तब उसके साहस तथा प का पर्याप्त पुरस्कार मिलता है । वह जब घर छोड़ता है सामाजिक कठिनाइयों का सा करता है । वह विदेशी सामाजिक वातावरण में प्रवेश करता है । ऐसे वातावरण से, जहाँ प्रा परम्पराओं के परवश होकर वह दुर्बल और निर्धन हो गया है, वह ऐसे वातावरण में आता है उसे अपनी उन्नति करने का अवसर मिलता है । और बहुधा वह धनी हो जाता है । मान ली कि हम उन सामाजिक कठिनाइयों को बढ़ा दें जिसका सामना उसे अपनी आर्थिक स्थिति सु के लिए करना पड़ता है । मान लीजिए कि मलय या इंडोनेशिया भेजने के बजाय उसे लिया या कैलिफोर्निया में भेज दें । हम 'गोरे आदमियों, के देश में, हमारा साहसी कुली, प्रवेश पा भी जाय तो उसे बहुत कठोरता का सामना करना पड़ेगा । यहाँ नये देश में वह अजनबी ही नहीं रहेगा, उसे विदेशी होने का दण्ड भी भोगना पड़ेगा । कानून का भेदभा उसके विरोध में होगा और उसकी वैसी सहायता नहीं कर सकेगा, जैसी मलय में उसे मिल जहाँ दयालु उपनिवेशिक सरकार ने 'चीनी संरक्षक' नाम के अफसर की नियुक्ति कर रखी इन सामाजिक कठिनाइयों की चुनौती के कारण क्या उसी अनुपात में शक्तिशाली स्फूर्ति उत्पन्न होती है । ऐसा नहीं होता । हम यदि उन चीनियों की सम्पन्नता की, जो मलय इंडोनेशिया में गये हैं, उन चीनियों की सम्पन्नता से तुलना करें जो कैलिफोर्निया और आस्ट्रे में गये हैं ।

स्लाव-एक्रियन-ट्यूटन-केल्ट

अब उस चुनौती पर दृष्टि डालनी चाहिए जिसमें बर्बरों की सभ्यता का सामना करना प

है। यह चुनौती यूरोप के विभिन्न स्तरों के बर्बरों को क्रमबद्ध रूप से पुरातन काल में उन अनेक सभ्यताओं से मिली जो एक समय असभ्य यूरोप के भीतर घुसते चले आये।

जब हम इस नाटक का अध्ययन करते हैं तब हमारा ध्यान एक ऐसी घटना की ओर जाता है जब एक चुनौती के सामना के कारण अद्वितीय प्रतिभा को स्फूर्ति मिली। हेलेनी सभ्यता ऐसा सुन्दर सुमन कभी नहीं खिला। और वह तब खिला जब मिनोई सभ्यता की चुनौती का सामना यूरोपीय बर्बरों को करना पड़ा। जब सागरवर्तीय मिनोई सभ्यता का चरण यूनानी प्रायद्वीप पर पड़ा तब पृष्ठभूमि के एकियाई बर्बर न तो नष्ट किये गये, न उन्हें परतन्त्र किया गया और न उन्हें उन्होंने अपने में मिलाया। इसके विपरीत उन्होंने मिनोई सागर-तन्त्र (थेलेसोक्रैसी) के बाहरी सर्वहारा के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखा और जिस सभ्यता ने उन्हें चुनौती दी उसकी सभ्यता से सीखते भी रहे। समय पाकर उन्होंने सामुद्रिक कला सीखी। मिनोई लोगों के सागरतन्त्र को उन्हीं के तत्त्व पर अर्थात् समुद्र पर ही पराजित किया और हेलेनी सभ्यता को जन्म दिया। हेलेनीवाद के पितामह एकियाई हैं। इससे प्रमाणित होता है कि ओलिमपियाई देवकुल देवताओं की रूपरेखा स्पष्टतः एकियाई बर्बरों के देवताओं से उत्पन्न हुई है। यदि हेलेनी देवालयों में कहीं भी मिनोई जगत् के देवताओं का आभास मिलता है तो कदाचित् गाँवों में अथवा हेलेनी मन्दिरों के इधर-उधर तहखानों में और गुप्त धार्मिक मन्दिरों में।

इस घटना में जो स्फूर्ति प्राप्त हुई वह हेलेनीवाद की प्रतिभा के कारण हुई। इसे हम दूसरे उदाहरण से नाप सकते हैं। इन एकियाई बर्बरों के भाग्य की तुलना हम दूसरे स्तर के बर्बरों के भाग्य से करें जो इतनी दूर और सुरक्षित स्थान में थे जहाँ सभ्यता की कोई किरण उस चुनौती के दो हजार वर्ष तक भी नहीं पहुँच पायी थी, जो मिनोइयों ने एकियाइयों को दी थी और जिसका शानदार सामना एकियाइयों ने किया था। ये लोग स्लाव थे जो शान्तिपूर्वक उस काल में 'प्रिपेट' के दलदलों में छिपे पड़े थे जिस काल में बर्फ पिघल कर यूरोप महाद्वीप से हट गयी थी। ये यहाँ शतियों तक यूरोपीय बर्बरों के रूप में आदिम जीवन बिता रहे थे और जब ट्यूटनों के जनरेला ने उस लम्बे हेलेनी नाटक को समाप्त किया जो एकियाई जनरेला ने आरम्भ किया था, तब भी स्लाव लोग वहीं थे।

यूरोपीय बर्बर सभ्यता के इस अन्तिम समय खानाबदोश 'आवारों'[1] ने स्लावों को वहाँ से निष्कासित किया। ये आवारे अपने निवास स्थान यूरोपीय स्टेप से इस लालच से आगे बढ़े कि ट्यूटनों की भाँति हम भी रोमन साम्राज्य को लूटें और उसका विनाश करें। इस नये वातावरण में, जहाँ खेती होती थी, स्टेप की ये गुमराह सन्तानें (आवारे) जीवन की अपनी पुरानी गति-विधि अपनाना चाहते थे। आवारा लोग स्टेप पर ढोर चराकर जीवन-यापन करते थे। जब खेती की धरती पर वे आये तब उन्होंने देखा कि यहाँ के पशु तो खेती करने वाले किसान हैं। इसलिए बुद्धिमानी पूर्वक वह मनुष्यों के चरवाहे बनें। जिस प्रकार वे अपने किसी पड़ोसी खानाबदोश पर छापा मार के उसके पशु को लाते थे कि हम उन्हें नयी जोती हुई चराई की भूमि पर रखें उसी प्रकार उन्होंने मानव रूपी पशु की खोज की जिससे उन रोमन प्रदेशों को बसायें जिन्हें उन्होंने

---

[1] एक खानाबदोश जाति।—अनुवादक

जीता था और जो निर्जन हो गये थे । स्लाव लोग वैसे ही थे जिस प्रकार के लोगों को अ
खोज रहे थे । पशुओं के झुण्ड के समान उन्होंने उन्हें हाँका, हंगेरियाई मैदान के चारों ओ
रखा और मैदान में अपने खेमे गाड़े । ऐसा जान पड़ता है कि स्लाव दल के अग्रगामियों ने
अपमानजनक ढंग से इतिहास में प्रवेश किया । ये आधुनिक चेक, स्लोवाक तथा ज्यूगो
के पूर्वज थे ।

स्लावों तथा एकीयाइयों की तुलना से यह प्रमाणित होता है कि आदिम समाज यदि सभ्
के संघर्ष से पूर्ण रूप से सुरक्षित रहें तो उनकी प्रगति में बाधा पड़ती है । यह भी प्रमाणित है
कि यदि यह संघर्ष अपनी कठोरता में परिमित हो तो स्फूर्तिदायक होता है । मान लीजिए कि
तीव्रतर हो जाय, मान लीजिए कि मिनोई सभ्यता ने जो शक्ति प्रासारित की वह और
होती तो क्या हेलेनीवाद के एकियाई पूर्वजों ने जो प्रतिभा दिखायी उससे अधिक प्रतिभा दिख
या क्रमागत ह्रास का नियम लागू हो जाता । इस सम्बन्ध में शून्य में कल्पना करना ह
चाहते क्योंकि एकियाइयों तथा स्लावों के बीच और अनेक बर्बर हुए हैं जिन्हें अनेक सभ्यता
अनेक दर्जे की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है । उनका क्या हुआ ?

यूरोपीय बर्बरों में से एक का उदाहरण तो हमने देखा जो सभ्यता का सामना करने मे
हो गये । हमने देखा कि किस प्रकार केल्ट अल्प काल तक अपनी शक्ति दिखलाकर एट्र
द्वारा संघर्ष में या तो नष्ट हो गये या मिला लिये गये या पराधीन कर दिये गये । हमने बता
कि किस प्रकार अन्त में हेलेनी संघर्ष में केल्ट विफल हुए और ट्यूटन उनकी अपेक्षा अधिक
हुए । हमने यह भी बताया कि यूरोपीय बर्बरों के ट्यूटनी माँग ने केल्टी भाग के वि
हेलेनियों को विच्छिन्न करने की क्रिया का यहाँ तक सामना किया कि हेलेनी जगत् के बाहरी
के वे सर्वहारा बन गये और हेलेनियों पर अन्तिम प्रहार करके उनका बुरी तरह विध्वंस कि
केल्टों के इस पराजय की तुलना में ट्यूटनों की प्रतिक्रिया सफल हुई । किन्तु जब हम ट्यूट
विजय की तुलना एकियाइयों से करते हैं तब हमें जान पड़ता है कि ट्यूटनों की विजय सत्या
विजय थी । हेलेनी समाज की मृत्यु तो हुई, किन्तु साथ ही मृत हेलेनी समाज के सर्वहारा उ
धिकारियों के हाथों इनका विनाश हो गया । इस अवसर पर ट्यूटनी लड़ाकू विजयी नहीं
बल्कि रोमन कैथोलिक धर्मतन्त्र (चर्च) विजयी हुआ जो हेलेनी समाज के भीतरी भा
सर्वहारा थे । ईसा की सातवीं शती के समाप्त होते-होते अरियन अथवा मूर्तिपूजक (ही
ट्यूटन सेना का प्रत्येक व्यक्ति, जिसने रोमन धरती पर पाँव रखने का साहस किया वह या
रोमन कैथोलिक हो गया या समाप्त हो गया । यह नयी सभ्यता, जिसका सम्बन्ध हेलेनि
था, अपने पूर्वजों के बाहरी नहीं, भीतरी सर्वहारा के कारण विकसित हुई । पश्चिमी ईसाई स
कैथोलिक धर्मतन्त्र से निर्मित हुआ था, इसके विपरीत हेलेनीवाद का निर्माण एकियाई ब
ने किया था ।

जिन संघर्षों का वर्णन किया गया है उन्हें कठोरता की दृष्टि से आरोही क्रम से देखा ज
स्लाव लोगों को बहुत दिनों तक किसी संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा । प्रेरणा की दृ
उनकी स्थिति खराब रही । प्रतिक्रिया की दृष्टि से देखा जाय तो एकियाइयों को अधि
संघर्ष का सामना करना पड़ा । ट्यूटनों ने हेलेनी सभ्यता का सफलतापूर्वक सामना किया,
कैथोलिकवाद से वे पराजित हो गये । केल्टों ने हेलेनी समाज का सामना उसकी उन्नताव

में किया—ट्यूटनों ने पतनावस्था में किया था—और उनसे पराजित हुए। स्लाव तथा केल्टों को पराकाष्ठा का सामना करना पड़ा—पहले को निर्जीव शान्ति का, तथा दूसरे को अति तीव्र आक्रमण का। इस तुलना में एकियाई और ट्यूटनों की 'मध्यम स्थिति' है। अब इस तुलना में तीन के स्थान पर चार स्थितियाँ हैं। किन्तु अधिकतम सामना की दृष्टि से एकियाई ही औसत में रखे जा सकते हैं।

(३) दो अकाल प्रसूत (अबार्टिव) सभ्यताएँ

ट्यूटनी जनरेला का पृष्ठभाग

यूरोपीय बर्बरों तथा प्रभावशाली सभ्यताओं के बीच जो क्रमशः संघर्ष हुए हैं और उनमें जब क्रमागत ह्रास का नियम चलने लगा है उस समय का क्या हम अधिक स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन करा सकते हैं? हाँ, हो सकता है : क्योंकि दो उदाहरण ऐसे हैं जिनका विचार हमने नहीं किया है। इनमें एक तो है वह संघर्ष, जो पश्चिमी समाज के स्रोत, रोमन धर्मतन्त्र से 'केल्टिक किनारे' के अकाल प्रसूत सुदूर ईसाई समाज के बीच हुआ था। दूसरा हमारी प्रारम्भिक अवस्था के पश्चिमी समाज और सुदूर उत्तरी अर्थात् वाईकिंगों के स्कैण्डिनेवियाई समाज से हुआ था। इन दोनों संघर्षों में विरोधी थे बर्बरों के पृष्ठभाग वाले, जो रोमन शासन के सदा बाहर थे। इन्होंने उस समय अपने को अलग रखा जब ट्यूटनों का अग्रभाग नाश करने के लिए और स्वयं नाश हो जाने के लिए मृतप्राय हेलेनी समाज के शरीर में ये ट्यूटन बर्बर तलवार भोंक रहे थे। इन दोनों पृष्ठभागों ने थोड़ी सफलता भी प्राप्त कर ली जो एकियाइयों के इतनी तो नहीं किन्तु ट्यूटनों से कहीं अधिक थी। हमारी तुलना की चार स्थितियों में एकियाइयों के बाद ट्यूटन ही आते हैं। एकियाइयों ने मिनोइयों पर आक्रमण किया और एक महान् सभ्यता के निर्माण करने में सफलता प्राप्त की। ट्यूटनी अग्रभाग ने चार दिन चाँदनी पायी और विनाश करने का आनन्द उठाते रहे किन्तु कुछ विशेष लाभ न उठा सके। सुदूर पश्चिम के ईसाई और सुदूर उत्तर के वाईकिंग, दोनों ने सभ्यताओं का निर्माण किया किन्तु दोनों को जब और अधिक बली सभ्यताओं का सामना करना पड़ा तो अल्पकाल में ही वे नाश हो गये। हमने कई बार संकेत के रूप में अकाल प्रसूत सभ्यताओं की बात कही है। हमने अपनी पहली सूची में इन सभ्यताओं का नाम नहीं गिनाया क्योंकि सभ्यता की सत्ता उसकी परिपक्वता प्राप्त करने में है और ये जन्मजात ही मृत हो गयीं। अब हम इस अवसर की समीक्षा करेंगे।[1]

अकाल प्रसूत सुदूर पश्चिमी ईसाई सभ्यता

केल्टी किनारे के लोगों की प्रतिक्रिया ईसाइयत पर अपने विशेष ढंग से हुई। जिस प्रकार गोथिकों ने अरियनवाद का परिवर्तन स्वीकार किया तथा ऐंग्लो-सैक्सनों ने कैथोलिकवाद स्वीकार

---

[1] आगे के अध्याय में एक और प्रकार का वर्णन करेंगे जिसे 'अविकसित सभ्यता' (अरेस्टेड सिविलिजेशन) कहेंगे। इनकी 'शिशु मृत्यु' नहीं हो गयी, बल्कि इन्हें 'बाल पक्षाघात' (इनफेंट पैरेलिसिस) हो गया। ये सभ्यताएँ जन्मी, किन्तु जादू के जगत के शिशुओं के समान (जैसे पीटर पैन) बढ़ न सकीं।

किया उसके विपरीत केल्टों ने विदेशी धर्म को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जिस रूप में उनके सामने आया । इसके बजाय कि यह नया धर्म उनकी परम्पराओं पर आघात करे, इन्हों उस-धर्म को अपने बर्बर सामाजिक परम्परा के अनुसार बनाया । रेनन का कहना है—'कि दूसरी जाति ने ईसाई धर्म स्वीकार करने में इतनी मौलिकता न दिखायी ।' रोमन शासन में ब्रिटे में जो ईसाई केल्ट थे उनमें भी हम यह बात देख सकते हैं । उनके बारे में हम बहुत कम जान हैं किन्तु इतना मालूम है कि उनमें पेलाजियस ऐसा अधर्मी पैदा हुआ जिसने अपने समय के ईसा संसार में हलचल पैदा कर दी । पेलाजियसवाद से भी अधिक महत्त्व की बात यह हुई कि पेलाजिय के देशवासियों तथा पेट्रिक ने रोमन संसार की सीमा के बाहर आयरलैंड में ईसाई धर्म फैलाया

अंग्रेजों के समुद्र पार के जनरेला ने (ब्रिटेन पर ऐंग्लो सैक्सन आक्रमण) जिसने ब्रिटि केल्टों को पराजित किया, आयरिश केल्टों का भाग्योदय कर दिया । उसने उस समय आयरलैं को, ठीक उस काल के जब ईसाई धर्म का बीजारोपण वहाँ हुआ था, पश्चिमी यूरोप के उन प्रान से अलग कर दिया जहाँ नयी ईसाई सभ्यता का विकास हो रहा था जिसका झुकाव रोम की ओ था । अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अलग होने के कारण 'सुदूर पश्चिमी ईसाई समा का अलग से प्रारम्भिक स्वरूप बनाने में वह समर्थ हुआ । उसका केन्द्र आयरलैंड था और उस आगमन उसी समय हुआ जब महाद्वीपी पश्चिमी ईसाई समाज का जन्म हुआ । इस सुदूर ईसा समाज की मौलिकता उसके धार्मिक संगठन, उसकी पूजा-पद्धति तथा उसके सन्तों के जीवन-च से स्पष्ट है ।

सन्त पेट्रिक के मिशन के सौ साल के भीतर ही (जिसका समय ४३२–६१ ई० कहा जा सक है) आयरिश धर्म ने अपनी विशेषताओं का ही विकास नहीं किया बल्कि महाद्वीपी कैथोलिकवा से कई बातों में आगे बढ़ गया था । यह बात उससे प्रमाणित होती है कि जब अलगाव का का बीत गया आयरिश मिशनरियों और विद्वानों का ब्रिटेन तथा यूरोपीय महाद्वीप में बड़े उत्साह स्वागत हुआ और बड़े उत्साह से ब्रिटेन तथा यूरोप के विद्यार्थी आयरिश विद्यालयों में जाते यह आयरिश सांस्कृतिक प्राधान्य आयरलैंड में सन् ५४८ में क्लानमेक्वाय के मठ की स्थाप तक रहा । आयरलैंड तथा यूरोप के बीच यह सांस्कृतिक संचरण ही इस नवीन संपर्क का परिण नहीं था । दूसरा परिणाम शक्ति की प्रतिद्वन्दिता भी थी । निर्णय इसका होना था कि पश्चि यूरोप की भावी सभ्यता आयरिश स्रोत से निकले कि रोमन । और इस निर्णय में शीघ्र आयरिश सांस्कृतिक प्राधान्य समाप्त हो गया ।

यह झगड़ा सातवीं शती में सीमा पर पहुँच गया जब कैंटरबरी के सन्त आगस्टीन के शि तथा आयोना के सन्त कोलम्बा के शिष्यों में प्रतिद्वंद्विता आरम्भ हुई कि नार्थम्ब्रिया के ऐंग का धर्म परिवर्तन कौन करे । इनके प्रतिनिधियों की नाटकीय भिड़न्त व्हिटबी की परि (साइनाड) (६६४ ई०) में हुई और नार्थम्ब्रिया के राजा ने रोम के समर्थक सन्त विल्फ्रिड के में निर्णय दिया । रोमन विजय उसी समय रुक गयी जब रोमन धार्मिक प्रथा पर इंग्लैंड के धार्मि समाज का संगठन करने के लिए महाद्वीप से टारसस के शियोडोर आये और कैंटरबरी और य के मुख्य क्षेत्रों में कार्य आरम्भ किया । अगले पचास वर्षों में सभी केल्टी किनारे के लोग, वि आयरिश, वेल्श तथा ब्रिटेन और अन्त में आयोना ने भी रोमन प्रणाली स्वीकार कर ली और स

ही रोमन ईस्टर की तिथि निकालने की विधि भी जो व्हिटबी के झगड़ों का एक विषय था स्वीकार की । और भी मतभेद थे जो बारहवीं शती तक समाप्त नहीं हुए ।

व्हिटबी की परिषद् के बाद से सुदूर पश्चिमी सभ्यता अलग पड़ गयी और विनाश की ओर उन्मुख हो गयी । ईसा की नवीं शती में वाईकिंगों के आक्रमण आयरलैंड में होते रहे और ऐसा एक भी मठ नहीं बचा जहाँ लूट-पाट न हुई हो । जहाँ तक पता है नवीं शती में आयरलैंड में एक भी पुस्तक लैटिन में नहीं लिखी गयी यद्यपि इसी समय जो आयरिश भाग कर यूरोप चले गये थे उनकी विद्वत्ता चरम सीमा पर पहुँच गयी थी । स्कैण्डिनेवियाई चुनौती के कारण ही इंग्लैंड और फ्रांस का निर्माण हुआ क्योंकि इससे इन देशों को अधिकतम स्फूर्ति प्राप्त हुई । किन्तु आयरलैंड का इसके फलस्वरूप इतना अधिक अलगाव (आइसोलेशन) हो गया कि वह केवल एक अल्पकालिक विजय आक्रमणकारियों पर प्राप्त कर सका——क्लोनटार्फ पर ब्रायनबोरू द्वारा । अन्तिम आघात उस समय हुआ जब एंग्लोनारमन एंजेविन राजा हेनरी द्वितीय ने बारहवीं शती के मध्य पोप का आशीर्वाद लेकर आयरलैंड पर विजय प्राप्त की । केल्टिक किनारे के लोग अपनी निजी सभ्यता की नींव न डाल सके । उनके आत्मिक नेता के भाग्य में यह बदा था कि उन्हीं प्रतिद्वंद्वियों के ऋणी हों जो उनकी स्वतन्त्र सभ्यता के जन्मसिद्ध अधिकार को छीन रहे थे । आयरिश विद्वत्ता पश्चिमी महाद्वीपी सभ्यता के विकास में सहायता दे रही थी । क्योंकि आयरिश विद्वान् स्कैण्डिनेवियाई आक्रमण के कारण आयरलैंड से भाग कर विस्थापितों के रूप में वहाँ गये । केरोलिंजियाई पुनर्जागरण में उनकी सेवाओं से काम लिया गया । इनमें आयरिश हेलेनीवादी दार्शनिक तथा धर्मशास्त्री जोहानस स्कोटस एरिजेना निस्सन्देह सबसे योग्य व्यक्ति था ।

अकाल प्रसूत स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता

हमने देखा कि पश्चिमी सभ्यता के निर्माण करने के एकाधिकार प्राप्त करने के लिए जो संघर्ष रोम तथा आयरलैंड के बीच चला उसमें रोम सम्मिलित हुआ । और जब पश्चिमी ईसाई समाज अभी नवजात ही था । उसे थोड़े ही अवकाश के पश्चात् इसी कार्य के लिए संघर्ष करना पड़ा । इस बार उत्तरी यूरोपीय बर्बरों से जो ट्यूटनों के सबसे पीछे की पंक्ति में थे और स्कैण्डिनेविया में तैयार बैठे थे । इस समय परिस्थिति अधिक कठिन थी । सैनिक तथा सांस्कृतिक दोनों स्तरों पर संघर्ष हुआ । दोनों विरोधी पक्ष एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली और भिन्न थे । दो शती पहले आयरिश और रोमन दल जो पश्चिमी ईसाई समाज की नींव रख रहे थे एक दूसरे से शक्तिशाली तथा मित्र नहीं थे ।

स्कैण्डिनेवियाइयों और आयरिशों का पश्चिमी ईसाई समाज से जो संघर्ष चला, उसके पहले का इन देशों का इतिहास, यहाँ तक समान है कि दोनों अपने भावी विरोधी से एक काल तक अलग रहे । ऐंग्लो-सैक्सन अधर्मियों (पेगन) ने इंग्लैंड में जो अभियान किया उसके कारण आयरिश लोग अलग रहे । ईसा की छठी शती की समाप्ति के पहले अधर्मी स्लावों के बीच में आ जाने के कारण स्कैण्डिनेवियाई लोग रोमन ईसाई समाज से अलग हो गये । ये स्लाव बाल्टिक के दक्षिणी तट के नीमर से एल्ब नदी की रेखा के सीधे स्थल मार्ग पर चले और उस स्थान में आये जो ट्यूटनी बर्बरों के हट जाने से खाली पड़ गया था । ये हेलेनियों के बाद के जनरेला में हटे । स्कैण्डिनेवियाई लोग अपने निवास स्थान में ही रह गये । इस प्रकार आयरिश अपने ईसाई साथियों से बिछुड़

गये और स्कैण्डिनेवियाई साथियों से भी क्योंकि इनके बीच बर्बर लोग आ गये । किन्तु दोनों महत्त्वपूर्ण अन्तर था । एंग्लो-सैक्सन प्रवेश के पहले रोमनों ने आयरिशों में ईसाई धर्म चिनगारी सुलगा दी थी जो अलगाव (आइसोलेशन) के समय आग के रूप में भड़क उठी स्कैण्डिनेवियाई अधर्मी बने ही रहे ।

दूसरे जनरेलों के समान स्कैण्डिनेवियाई जनरेला उस संघर्ष का परिणाम था जो एक समाज का एक सभ्य समाज से हुआ । यह शार्लमान के साम्राज्य में हुआ । यह साम्रा नितान्त असफल रहा क्योंकि यह केवल आडम्बर था और असमय था । यह महत्त्वाकांक्षा राजनीतिक ढाँचा मात्र था जो अविकसित सामाजिक तथा आर्थिक नींव पर बिना उचित दिये बना था । इसी निस्सारता का सबसे बड़ा उदाहरण है शार्लमान का सैक्सनी की विजय असाधारण शक्ति का प्रयोग । जब ७७२ ई० में शार्लमान सैनिक बल पर सैक्सनी को ईसाई जगत् में लाने चला, वह उस शान्तिमय प्रवेश की नीति का बहुत बुरी तरह उल्लंघन रहा था जिसका पालन पिछले एक शती में आयरिश और अंग्रेजी मिशनरियों ने किया इस शान्तिमय नीति से इन लोगों ने बवेरियनों, थ्युरिंजियनों, हेसियनों तथा फ्रीसियनों का परिवर्तन करके ईसाई जगत् की सीमा बढ़ा दी थी । फ्रैंको-सैक्सन के तीस वर्षीय युद्ध की अ परीक्षा ने नवजात पश्चिमी समाज के दुर्बल तन्तुओं को जर्जर कर दिया और स्कैण्डिनेविया के हृदय में वही बर्बरी उत्साह उत्पन्न कर दिया जो कभी केल्टों के हृदय में उभड़ा था जब आल के नीचे एट्रस्कनों का उत्साहपूर्ण बढ़ाव उन्होंने रोका था ।

ईसा की आठवीं तथा नवीं शती में स्कैण्डिनेवियाइयों का बढ़ाव, ईसा के पूर्व पाँचवीं से ती शती के केल्टों के बढ़ाव से विस्तार में और प्रखरता में कहीं आगे था । केल्टों ने जो हेलेनी ज को घेरने की विफल चेष्टा की वे अपना दाहिना पक्ष स्पेन के मध्य तक ले गये और बायाँ एशिया माइनर के मध्य तक ले गये । किन्तु यह प्रयास, वाइकिंगों की सैनिक कार्यवाहियों कारण, जिन्होंने परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय पर अपने वामपक्ष द्वारा रूस में घुसकर दाहिने पक्ष द्वारा उत्तरी अमरीका में घुसकर, आक्रमण किया, विफल हो गया । एक बार दोनों ईसाई सभ्यताएँ उस समय खतरे में पड़ गयीं जब वाइकिंग दल टेम्स पार करके लन्दन घुस रहे थे, सेन पार कर के पेरिस में और बासफरस पार करके कुसतुनतुनिया में । यह ख उस समय से अधिक था जब केल्ट कुछ काल के लिए रोम और पैसेडोनिया के अधिकारी बन थे । अकाल प्रसूत स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता, जिसका विकास आइसलैंड में ईसाइयत के उ श्वास से वहाँ के हिमखण्डों को गलाकर फैल रही थी, केल्टी संस्कृति से उपलब्धि और भविष्य आशा में कहीं आगे बढ़ गयी थी । इसके अवशेष आधुनिक पुरातत्वविदों ने ढूँढ निकाले हैं ।

जिस प्रणाली से हम अध्ययन कर रहे हैं उसमें स्वाभाविक है कि वही ऐतिहासिक घट भिन्न-भिन्न सन्दर्भ में बार-बार आयें । हमने ऊपर उस संघर्ष का वर्णन किया है जो इंग्लैंड फ्रांस के लोगों को स्कैण्डिनेवियाई आक्रमण के समय करना पड़ा और यह भी दिखाया है कि

---

१. इमे 'लाटेने कलचर' कहते हैं । इस कारण कि इसका पहले-पहल पता, समु प्रमाण न्यूचेटेल झील की बाढ़ के बाद लगा ।

चुनौती में दोनों जातियों ने अपनी एकता स्थापित करके और स्कैण्डिनेवियाई अधिवासियों (सेट्लर्स) को अपनी सभ्यता में मिला करके विजय प्राप्त की। (देखिये पृष्ठ १०४) जिस प्रकार केल्टी ईसाई संस्कृति की समाप्ति पर, उसके वंशजों ने रोमन ईसाई जगत् को समृद्ध किया, उसी प्रकार दो शतियों के बाद नारमन लोग लैटिन लोगों पर आक्रमणकारी नेता बने। एक इतिहासकार ने तो प्रथम धार्मिक युद्ध (क्रूसेड) को, विरोधाभास में यह कहा है कि वह ईसाई-वाईकिंग चढ़ाई थी। हमने स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता के अविकसित जीवन में आइसलैंड के महत्त्व को भी बताया है और यह भी कल्पना की कि यदि स्कैण्डिनेवियाई अधर्मी एकियाइयों के बराबर सिद्धि प्राप्त करते और ईसाइयों को भगा कर सारे पश्चिमी यूरोप में अपनी अधर्मी सभ्यता का [illegible] दृष्टि से प्रसार करते, कि हेलेनी सभ्यता के हमीं एक मात्र उत्तराधिकारी हैं तो क्या परिणाम होता? हमें अभी यह देखना है कि स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता पर उसकी ही भूमि पर किस प्रकार विजय हुई और किस प्रकार उसका विनाश हुआ। विजय उसी समर-तन्त्र (टेक्टिक्स) से हुई जिसे शार्लमान ने त्याग दिया था। पश्चिमी ईसाई जगत् को विवश होकर अपनी रक्षा सैनिक ढंग से करनी पड़ी। परन्तु ज्यों ही पश्चिमी रक्षात्मक सैनिक शक्ति ने स्कैण्डिनेवियाई सैनिक आक्रमण को रोक दिया पश्चिम वालों ने शान्तिमय अभियान का ढंग पकड़ा। पश्चिम में जो स्कैण्डिनेवियाई बस गये उनका धर्म परिवर्तन करके उनको पुराने धर्म से हटाया और यही नीति उन्होंने स्कैण्डिनेविया में जो रह गये उनके प्रति अपनायी। उसमें स्कैण्डिनेवियाइयों के एक गुण ने बड़ी सहायता की। वह थी उनकी ग्रहण करने वाली प्रबल शक्ति। इसे एक समकालीन पश्चिमी ईसाई विद्वान् ने कविता में वर्णन किया है—'जो लोग उनके झंडे के साथ आते हैं उनकी भाषा, रीति-रिवाज वे ले लेते हैं, परिणाम यह होता है कि वे एक जाति बन जाते हैं।'

यह विचित्र बात है कि ईसाई धर्म स्वीकार करने के पहले ही स्कैण्डिनेवियाई शासक शार्लमान की वीर पूजा करने लग गये थे, यहाँ तक कि अपने पुत्रों का नाम कार्ल्स या मैगनस रखने लग गये थे। उसी काल में यदि पश्चिमी ईसाई जगत् के शासकों में मुहम्मद और उमर ईसाइयों के प्रिय नाम होने लगते तो निश्चय ही हम इस परिणाम पर पहुँचते कि इस्लाम से संघर्ष में पश्चिमी ईसाई जगत् का भला नहीं होने वाला है।

रूस, डेनमार्क तथा नारवे के स्कैण्डिनेवियाई राज्यों में तीनों स्कैण्डिनेवियाई राजाओं ने, जो समकालीन थे, दसवीं शती के अन्त के लगभग मनमानी आदेश जारी कर दिया था जिससे सब लोग बलपूर्वक ईसाई धर्म में दीक्षित कर दिये गये। नारवे में पहले इसका जोरदार विरोध हुआ किन्तु डेनमार्क और रूस में परिवर्तन चुपचाप स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार स्कैण्डिनेवियाई समाज पराजित ही नहीं हुआ, विभाजित भी हो गया क्योंकि हर ईसाई जगत् ने जिसने वाईकिंगों के आक्रमण का भार सहन किया था, उसके बाद के धार्मिक और सांस्कृतिक प्रत्याक्रमण (कोंटर-अफैंसिव) का भी बोझ उठाया।

रूस के (स्कैण्डिनेवियाई प्रदेश के) व्यापारी अथवा राजदूत जंगलों की मूर्ति पूजा को कुसतुन-तुनिया के रमणीय अन्ध विश्वास से तुलना करते थे। उन्होंने सन्त सोफिया के गुम्बद को सराहना की दृष्टि से देखा था, उन्होंने सन्तों तथा शहीदों के सजीव चित्रों को, पूजा के स्थान (आलटर) की सम्पत्ति को देखा था, पादरियों की वेशभूषा और उनकी संख्या को, उनकी पूजा तथा संस्कारों के आडंबर को देखा था, मौन तथा उसके बाद संगीतमय भजन सुनकर उनकी आत्मा का उत्कर्ष

हुआ था, और इसमें कठिनाई नहीं हुई कि उन्हें विश्वास हो जाय कि प्रतिदिन ईसाइयों की प्रा में सम्मिलित होने के लिए स्वर्ग से देवदूत आते हैं ।[1]

इसके बाद शीघ्र ही १००० ई० में आइसलैंड में धर्म परिवर्तन हुआ और आइसलैंडी संस्क समाप्त हो गयी । यह सही है कि बाद के आइसलैंडी विद्वानों ने जिन्होंने सागाओं को लिपिबद्ध कि और जिन्होंने एड्डाई (एड्डिक) कविताओं का संग्रह किया और स्कैण्डिनेवियाई पुराणों, (माइ लोजी) वंशावली, विधियों का संक्षेप बनाया उन सबमें ईसाई तथा उत्तरी सम्मिश्रण था, उन्हों यह कार्य धर्म परवर्तन के पश्चात् पचास से ढाई सौ साल के भीतर किया था । किन्तु विद्वत्ता विहंगावलोकन आइसलैंडी प्रतिभा का अन्तिम चमत्कार था । इससे हम हेलेनी इतिहास होमरी कविताओं के योगदान की तुलना कर सकते हैं । ये कविताएँ विहंगावलोकन की विद्व का प्रमाण थीं । क्योंकि होमर ने इनका साहित्यिक स्वरूप उस समय के बाद दिया जब वीरका जिनसे वे उत्प्राणित हुई, बीत चुका था । परन्तु हेलेनी प्रतिभा, इन महाकाव्यों को पूरा क उसी परिमाण के दूसरे क्षेत्रों में कार्य करने लगी और आइसलैंडी प्रतिभा अपनी 'होम उपलब्धि के बाद, ११५०–१२५० ई० में समाप्त हो गयी ।

(४) ईसाई जगत् पर इस्लाम का आघात

इस अन्वेषण को समाप्त करते हुए हम यह भी देख लें कि क्या ईसाई जगत् पर इस्लाम आघात से 'तीन स्थितियों की तुलना' का उदाहरण मिलता है, जिससे हमारे पाठक अब परिचि हो गये हैं । एक दूसरे सम्बन्ध में हमने देखा है कि इस्लाम की चुनौती से अधिकतम स्फूर्ति मि है । ईसा की आठवीं शती में इस्लाम ने फ्रैंकों को चुनौती दी जिसके परिणाम में अनेक शत तक ईसाइयों की ओर से प्रत्याक्रमण होता रहा जिसने मुसलमानों को आइबीरी प्रायद्वीप निकाल बाहर ही नहीं किया, किन्तु अपने मूल अभिप्राय से अधिक स्पेनी और पुर्तगाली सागर पार करके संसार के सभी देशों में पहुँच गये । इस सम्बन्ध में एक घटना पर हमें ध्या देना चाहिए जिसे हम सुदूर पश्चिमी तथा स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता के पराजय पर विचार क हुए देख चुके हैं । आइबीरी प्रायद्वीप से इस्लाम के पूर्णतः निष्कासित होने के पहले मुसलि संस्कृति से उसके विजयी विरोधियों ने वहाँ बहुत लाभ उठाया । मध्ययुगीन पश्चिमी ई दार्शनिकों ने जो दार्शनिक महल खड़ा किया था उसके निर्माण में अज्ञात रूप से स्पेन के मुसलि विद्वानों ने योग दान किया और हेलेनी दार्शनिक अरस्तू की कुछ पुस्तकें पश्चिमी ईसाई जगत अरबी अनुवाद द्वारा पहुँचीं । यह भी सत्य है कि पश्चिमी संस्कृति पर जो 'पूर्वी' (ओरिएंटल प्रभाव पड़ा है इसका कारण यह बताया जाता है कि वह धार्मिक युद्ध करने वालों के राज्य, सीरि के प्रदेशों से, आया किन्तु सत्य यह है कि वह मुसलिम आइबीरिया से आया ।

आइबीरिया से और पिरिनीज के ऊपर से पश्चिमी ईसाई जगत् पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ वह इतना प्रबल नहीं था जितना वह प्रतीत होता है क्योंकि इस्लामी शक्ति स्रोत दक्षिण-पश्चिमी एशिया तथा आइबीरी सीमाग्र (फ्रंट) के बीच की गमनागमन की रे बहुत लम्बी थी । ऐसे स्थल मिलते हैं जहाँ संचरण की रेखा छोटी थी और वहाँ मुसलिम आक्र

---

१. ई० गिबन : द हिस्ट्री आव द डिक्लाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर, अध्याय ५

बहुत तीव्र हुआ। ऐसा प्रदेश है अनातोलिया जो उस समय परम्परावादी ईसाई सभ्यता का दुर्ग था। अरब आक्रमण का पहला रूप यह देना चाहते थे कि 'रूम' को (वे रोम को रूम कहते थे) निष्क्रान्त कर दें और अनातोलिया पर आक्रमण करते हुए साम्राज्य की राजधानी पर विजय प्राप्त कर पश्चिमी ईसाई जगत् को धराशायी कर दें। मुसलमानों ने ६७३–७७ ई० में और फिर ७१७–१८ में कुसतुनतुनिया को घेरा किन्तु असफल रहे। दूसरे घेरे की असफलता के बाद भी जब दोनों शक्तियों की सीमा टारस पहाड़ की रेखा मान ली गयी, मुसलमान शक्ति अनातोलिया के बचे-खुचे परम्परावादी ईसाई जगत् पर साल में दो बार आक्रमण करते रहे।

परम्परावादी ईसाई जगत् ने इस दवाव का सामना राजनीतिक युक्ति से किया। और यह प्रतिरोध देखने में तो सफल रहा क्योंकि इसके कारण अरब दूर रखे जा सके, किन्तु वास्तव में यह ठीक नहीं था क्योंकि परम्परावादी ईसाई समाज के आन्तरिक जीवन और विकास पर इसका प्रभाव घातक था। यह युक्ति थी सीरियाई लीओ का परम्परावादी ईसाई जगत् में रोमन साम्राज्य की 'छाया' का आह्वान। यही काम दो पीढ़ी बाद पश्चिम में शार्लमान ने किया था और वह असफल रहा और इस कारण उससे कोई क्षति भी नहीं हुई। सीरियाई लिओ की उपलब्धि का सबसे घातक परिणाम यह हुआ कि परम्परावादी ईसाई धर्म की हानि करके बाइज़ेन्टायन राज्य का उत्कर्ष हुआ। उसका फल यह हुआ कि सौ साल तक पूर्वी रोमन साम्राज्य तथा ईसाई धार्मिक सत्ता और बुलगेरियाई साम्राज्य तथा ईसाई धार्मिक सत्ता में आपसी विनाशकारी युद्ध होते रहे। इस प्रकार परम्परावादी ईसाई समाज का विनाश अपने आप ही घातक प्रहार करने से, अपने ही घर में, अपने ही ढंग से हुआ। इन तथ्यों से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि परम्परावादी ईसाई समाज पर जो इस्लामी प्रहार हुआ उससे अत्यधिक था जो प्रहार इस्लाम का पश्चिमी ईसाई जगत् पर हुआ था।

क्या हमें ऐसा कोई उदाहरण मिल सकता है जहाँ इस्लामी आघात ने पर्याप्त रूप से कठोर न होने के कारण कोई प्रेरणा न दी हो? हाँ, आज भी इस प्रकार के आघात का परिणाम अबिसीनिया में मिलता है। इस अफ्रीकी गढ़ में जो मोनोफाइसाइट[1] ईसाई समाज मिलता है वह संसार का एक सामाजिक आश्चर्य है। इसलिए कि वह अभी तक जीवित है, और जब अरबों ने मिस्र पर विजय प्राप्त की उससे आज तेरह शतियों के बीतने पर भी सारे ईसाई समाज से वह अलग है। दूसरे यह कि उसका सांस्कृतिक स्तर बहुत नीचा है। यद्यपि ईसाई अबिसीनिया कुछ हिचकिचाहट के साथ लीग आव नेशन्स में सम्मिलित कर लिया गया, यह अपनी अव्यवस्था और बर्बरता के लिए कुख्यात था। वहाँ सामन्ती और कबीलों के झगड़े होते रहते थे और दासों का व्यापार होता था।

लाइबीरिया को छोड़कर, जिसने अपनी स्वतन्त्रता स्थिर रखी, इस एक अफ्रीकी राज्य की

---

[1] वे लोग जो ईसा की केवल एक प्रवृत्ति मानते हैं।—अनुवादक

अवस्था ऐसी थी कि शेष अफ्रीका का यूरोपीय शक्तियों द्वारा विभाजन उचित समझा सकता है ।[१]

विचार करने पर ज्ञात होता है कि अबिसीनिया की विशेषताएँ उसकी स्वतन्त्रता का अस्ति तथा उसकी संस्कृति का गतिरोध—दोनों का कारण एक ही है । ऐसी गढ़ी में उसकी स्थि है जो दुर्भेद्य और अश्मीभूत (फासिल) होकर स्थिर हो गयी । इस्लाम की ज्वार और पश्चि सभ्यता की और भी प्रखर लहरें उसके पहाड़ों के चरणों तक ही पहुँच सकीं, केवल कभी-कभी उ शिखर तक पहुँच पायीं जिसे वे कभी अपने में डुबा नहीं सकीं ।

जिन अवसरों पर विरोधी तरंगों ने इस पठार की चोटी का स्पर्श किया वे बहुत क्षणिक और ऐसे अवसर भी कम थे । सोलहवीं शती के पहले पचासे में अबिसीनिया को लालसागर तट निवासी मुसलिमों से पराजित होने का भय था, जब अबिसीनिया से पहले इन्होंने आग्नेया प्राप्त कर लिया था । किन्तु ये अस्त्र, जो सोमालियों ने उसमानलियों से प्राप्त किया, अबिसीनिय के पास पुर्तगालियों से ठीक ऐसे समय पहुँच गये कि ये नष्ट होने से अपने को बचा लें । पुर्तगाली यह सहायता कर चुके और अबीसीनियनों को मोनोफाइसाइटवाद से कैथोलिक ई बनाने का घृणित कार्य करने लगे वहाँ ईसाई धर्म का पश्चिमी रूप एकदम दबा दिया गया पश्चिमी आगन्तुक सन् १६३० ई० के आस-पास वहाँ से निष्कासित कर दिये । उस समय नीति जापान ने भी बरती थी ।

सन् १६८८ का ब्रिटिश अभियान सफल हुआ किन्तु उसका कुछ परोक्ष परिणाम नहीं निक यद्यपि इसके विपरीत पन्द्रह वर्ष पहले अमरीकी जलसेना जापान का आवरण हटाने में स हो गयी थी । उन्नीसवीं शती के अन्त में जब 'अफ्रीका की छीना-झपटी' चल रही थी, कोई कोई अफ्रीकी शक्ति अबिसीनिया को हड़पती रही और इटालियनों ने भी चेष्टा की । जो ढाई सौ साल पहले पुर्तगालियों ने किया था वही इस समय फ्रांसीसियों ने किया । इन्होंने सम्र मेनेलिक को ब्रीच-लोडिंग[२] बन्दूकें दीं जिनकी सहायता से १८९६ में अडोवा में इटालियनों उसने बेतरह हराया । जब इटालियनों ने जो जान-बूझकर एक नयी वर्बरता का विकास क अपने को उसमें दुष्टतापूर्वक दृढ़ कर चुके थे—१९३५ में अधिक दृढ़तापूर्वक आक्रमण किया क्षण भर के लिए जान पड़ा कि अविसीनिया की अभेद्यता समाप्त हो जायगी और साथ पीड़ित पश्चिमी जगत् की नव-जनित सामूहिक सुरक्षा की आशा भी । किन्तु इथियोपिया इटालियन साम्राज्य की घोषणा करने के चार ही साल के अन्दर मुसोलिनी को १९३९–४५ विश्वयुद्ध में सम्मिलित होना पड़ा । इसके कारण ब्रिटिश जो १९३५–३६ में लीग आव नेशन की रक्षा करने की भावना से अभी तक अविसीनिया की रक्षा करने नहीं आये थे, १९४१–४

---

[१] जब यह पुस्तक लिखी गयी तबसे अफ्रीका में काफी जागरण हो गया और बहुत-से रा विदेशी सत्ता को हटाकर स्वतन्त्र हो गये । अबिसीनिया की भी अब वह अवस्था नहीं रही —अनुवादक

[२] अपराजेयता तथा अभेद्यता के दार्शनिक आदर्शों के सम्बन्ध में आगे देखिए ।

में उन्होंने अपनी रक्षा करने के अभिप्राय से अबिसीनिया के लिए वही किया जो पुर्तगालियों और फ्रांसीसियों ने इससे पहले ऐसे ही संकट के समय किया था।

ये ही चार विदेशी आक्रमण हैं जिनका ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद सोलह सौ वर्षों में अबिसीनिया को सामना करना पड़ा। इनमें पहले तीन पर इतनी जल्दी विजय मिल गयी कि उनसे किसी प्रकार की स्फूर्ति नहीं मिल सकती थी। नहीं तो इसकी अनुभूति नितान्त कोरी रही है। यह बात इस कथन को झूठ प्रमाणित कर सकती है कि वह राष्ट्र सुखी है जिसका कोई इतिहास नहीं है। इसका इतिहास जड़ता (अपेथी) के प्रति निरर्थक तथा नीरस विरोध के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। 'अपेथी' का अर्थ मूल यूनानी भाषा में है कष्ट अथवा अनुभूति के प्रति जड़ रहना अर्थात् स्फूर्ति की भावना न होना। १९४६ में सम्राट् हेल सेलासी तथा उसके उदार सहकर्मियों ने सुधार करने की प्रबल चेष्टा की फिर भी देखना है कि क्या चौथे विदेशी आक्रमण से, इसके पहले के आक्रमणों की अपेक्षा अधिक प्रेरणा मिलेगी।

३

सभ्यताओं का विकास

१. अविकसित सभ्यताएँ

(१) पोलिनेशियाई, एसकिमो और खानाबदोश

अपने अध्ययन के पिछले भागों में हम इस कठिन प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास कर रहे कि सभ्यताओं की उत्पत्ति कैसे हुई । किन्तु अब हमारे सामने ऐसी समस्या है जिसे लोग क सरल समझ सकते हैं और सोच सकते हैं कि इस पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं एक बार एक सभ्यता जन्मी और यदि आरम्भ में ही वह नष्ट नहीं हो गयी, जैसा कि उन सभ्यता का अन्त हुआ, जिन्हें हमने अकाल प्रसूत सभ्यताएँ कहा है, तो उनका विकास एक प्रकार स्वा विक घटना मानी जा सकती है । इस प्रश्न का उत्तर एक दूसरे प्रश्न द्वारा बहुत अच्छा सकता है । क्या यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जिन सभ्यताओं ने अपनी उत्पत्ति के समय बचपन के समय कठिनाइयाँ झेली हैं, उन्होंने क्या पूरे यौवन को प्राप्त किया है । दूसरे शब्द क्या समय पाकर अपने वातावरण तथा जीवन की गतिविधि को वे वश में कर सकीं, कि हम उस सूची में सम्मिलित कर सकें जो इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में हमने दी है । इसका उत्त कि कुछ सभ्यताएँ ऐसी नहीं हैं । जिन दो सभ्यताओं का उल्लेख हमने किया है, अर्थात् विक सभ्यताएँ और अकाल प्रसूत सभ्यताएँ उनके अतिरिक्त एक तीसरी सभ्यता है—अविक सभ्यताएँ । ऐसी सभ्यताएँ हैं जिनका अस्तित्व तो है किन्तु जिनका विकास रुक गया है । इस विकास की समस्या का अध्ययन हमारे लिए आवश्यक है । हमारा पहला कदम यह होगा हम ऐसी सभ्यताओं के सम्बन्ध में प्राप्य सामग्री एकत्र करें और उनका अध्ययन करें ।

ऐसे आधे दर्जन उदाहरण हमें आसानी से मिल सकते हैं । भौतिक चुनौतियों के फलस्व जिन सभ्यताओं का जन्म हुआ है उनमें पोलिनेशियाई, एसकिमो तथा खानाबदोश हैं । मा चुनौतियों के परिणामस्वरूप जिन सभ्यताओं का जन्म हुआ है वे हैं परम्परावादी ईसाई जग उसमानली परिवार और हेलेनी जगत् में स्पार्टन । ये (पीछे वाली) सभ्यताएँ उस जब प्रचलित मानवी चुनौतियों में शक्ति स्फुरित हुई, और जब असाधारण कठोरता उनमें हुई तब स्थानीय तीव्रता के कारण उत्पन्न हुई । ये अविकसित सभ्यताओं के उदाहरण हैं तुरत हमें पता चल जाता है कि सब एक समान हैं ।

ये सभी अविकसित सभ्यताएँ असाधारण शक्ति प्राप्त करने के फलस्वरूप स्थिर हो इन्हें ऐसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा जो उस सीमा पर हैं जिसके एक ओर विकास की स्फूर्ति मिलती है दूसरी ओर पराजय होती है । पहले हमने (देखिए पृष्ठ ४१-४२) जो पर चढ़ने वालों का दृष्टान्त दिया उनमें ये ऐसे चढ़ने वाले हैं जो कुछ ऊपर आये हैं और

गये हैं। वे न तो आगे वढ़ सकते हैं न पीछे लौट सकते हैं। वे शक्ति से पूर्ण किन्तु अचल हैं। और हम यहाँ पर वता दें कि जिन पाँच का हमने नाम लिया है उनमें चार को अन्त में पराजित होना पड़ा। उनमें केवल एक अर्थात् एसकिमो अभी जीवित है।

उदाहरण के लिए पोलिनेशियनों ने समुद्र-यात्रा करने में अपनी साहसपूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। ये वड़ी-वड़ी यात्राएँ उन्होंने खुली हुई क्षीण डोगियों (कैनो) में कुशलतापूर्वक की। उसका दण्ड उन्हें यह मिला कि अज्ञात किन्तु दीर्घकाल तक प्रशान्त सागर के विस्तृत क्षेत्र को पार तो करते रहे किन्तु कभी सरलता अथवा आत्मविश्वास के साथ उन्होंने इस सागर को पार नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि इस असह्य तनाव के कारण उनमें शिथिलता आ गयी। और मिनोई तथा वाइकिंगों के समान अफीमचियों तथा अकर्मण्यों की जाति में पतित हो गयी। सागर पर से उनका अधिकार जाता रहा और अपने-अपने द्वीप के स्वर्ग में ये भटकते रहे और अन्त में पश्चिमी नाविकों ने उनपर आक्रमण किया। हम यहाँ इस पर विचार नहीं करेंगे कि पोलिनेशियनों का अन्त क्या हुआ क्योंकि ईस्टर द्वीप के प्रसंग में इस सम्वन्ध में लिख दिया है (देखिए पृष्ठ ६९)।

जहाँतक एसकिमो की वात है उनकी संस्कृति उत्तरी अमरीकी इंडियनों के जीवन-यापन का विकास था और इसे उन्होंने आर्कटिक सागर के तट के जीवन के अनुकूल बना लिया। एसकिमों की शक्ति का कौशल यही था कि जाड़े में बर्फ में रहे और सीलों का शिकार करें। ऐतिहासिक प्रेरणा जो भी मिली हो, यह स्पष्ट है कि एसकिमों के पूर्वजों ने अपने इतिहास में किसी समय आर्कटिक वातावरण का साहस के साथ सामना किया होगा और पूर्ण कौशल से संकटकाल में अपने जीवन को परिस्थिति के अनुकूल बनाया होगा। इस कथन को पुष्ट करने के लिए उन उपकरणों की सूची मात्र गिना देनी है जिनका उन्होंने आविष्कार किया है 'कायक' (लकड़ी की हल्की डोंगी जिसपर सील का चमड़ा लपेटा रहता है), यूमिअक (स्त्रियों की नाव), हारपून (वह भाला जिससे बड़ी-बड़ी मछलियों का शिकार होता है) पक्षियों के शिकार करने वाला तीर और निशाने वाला तख्ता, सामन मछली के शिकार करने वाला त्रिशूल, कम्पाउण्ड-धनुष जिसके ऊपर नसों को बाँधकर मजबूत बनाते हैं, कुत्ते वाला स्लेज (बर्फ पर चलने वाली विना पहिए की गाड़ी), वर्फ पर चलने वाला जूता, जाड़े में रहने के लिए घर और वर्फ (स्नो) का घर जिसमें चरबी का तेल जलाने का लम्प होता है, चबूतरे, गर्मी के मौसम के खेमे और खाल के वस्त्र[1]।'

उनकी बुद्धि तथा इच्छा-शक्ति का यह बाहरी दिखायी देने वाला चमत्कार है, फिर भी—कुछ दिशाओं में, उदाहरण के लिए सामाजिक संगठन में एसकिमो का विकास निम्न कोटि का है। प्रश्न यह है कि यह निम्न कोटि का सामाजिक अन्तर उनके पुरानेपन के कारण है अथवा उस प्राकृतिक वातावरण के कारण तो नहीं है जिसमें एसकिमो अनन्त काल से रहते चले आये हैं। यह जानने के लिए कि इनकी संस्कृति ऐसी है कि इनकी शक्ति का बहुत बड़ा भाग उस

---

१. एच० पी० स्टीन्सबी : ऐन एन्थ्रोपोलाजिकल स्टडी आव दि ओरिजिन आव दि एसकिमो कलचर, पृ० ४३।

साधन के विकास में व्यय होता था जिसके द्वारा ये अपनी जीविका अर्जित कर सकें, एसकि संस्कृति के बहुत गम्भीर ज्ञान की आवश्यकता नहीं है[1] ।'

एसकिमों ने जिस साहस से आर्कटिक वातावरण पर विजय प्राप्त की उसका उन्हें दण्ड भुगतना पड़ा । वह यह कि आर्कटिक प्रदेश में ऋतुओं का जो वार्षिक चक्र है उसके अनुसार उ जीवन जड़वत् हो गया । कबीले (ट्राइब) के जितने जीविका उपार्जन करने वाले पुरुष वर्ष की विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न कारोबार करते हैं । आर्कटिक प्रदेश की भौतिक परि वहाँ के शिकारियों के ऊपर समय पर कार्य करने का उतना ही कठोर नियन्त्रण करती है जि नृशंसता मनुष्य पर किसी कारखाने में 'वैज्ञानिक प्रवन्ध' द्वारा होती है । वास्तव में हम सकते हैं कि एसकिमो आर्कटिक परिस्थिति के दास हैं अथवा प्रभु । इसी प्रकार का प्रश्न ह सामने उस समय भी उपस्थित होगा जब हम स्पार्टनों और उसमानलियों के जीवन का अ करेंगे । और इतनी ही कठिनाई उत्तर देने में भी पड़ेगी । किन्तु पहले हम एक दूसरी अवि सभ्यता का अध्ययन करेंगे जिसे एसकिमो की भाँति भौतिक चुनौती का सामना करना प

एसकिमो बर्फ से लड़ रहे थे और पोलिनेशियाई सागर से । इधर खानाबदोश लो स्टेप की चुनौती स्वीकार की । इन्हें भी वैसे ही दुर्दम तत्त्व से लड़ना पड़ा जैसा कि पहले स्टेप में जो घास और कंकरीला मैदान था वह (होमर के शब्दों में) 'बिना फसल काटे हुए स के ही समान था । वह उस धरती से भिन्न था जिसमें हल और कुदाली चल सकती है । और सागर की सतह इस बात में समान है कि उसपर मनुष्य केवल यात्री रह सकता है थोड़े समय के लिए ठहर सकता है । द्वीपों और नखलिस्तानों को छोड़कर दोनों के विस्तृत पर मनुष्य निश्चल होकर रह नहीं सकता । दोनों में इतनी सुविधा तो मिलती है कि यात्र जा सके और सरलता से परिवहन किया जा सके जैसा कि उन प्रदेशों में कठिन है जहाँ मनुष्य अपना स्थायी निवास कर लिया है । किन्तु दोनों को आर-पार करने का दण्ड देना पड़ता वह यह कि, या तो बराबर स्थान परिवर्तन करता रहे या उनके चारों ओर जो ठोस धरती है (फर्मा) उसके तट पर जाकर वस जाय । (इस प्रकार खानाबदोश समूह में, जो चराई के गरमी और जाड़े में एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते रहते हैं और मछुओं के समूह में, जो ऋ अनुसार एक किनारे से दूसरे किनारे तक घूमते रहते हैं, एक प्रकार की समानता है । वे व्या जो एक तट के माल को दूसरे तट पर ले जाते हैं और ऊँटों के कारवाँ जो स्टेप के एक किना दूसरे किनारे तक जाते हैं एक ही ढंग के लोग हैं । सागर के डाकू और मरुभूमि के लुटेरे स हैं । (मानव के उस विस्फोटक हलचल ने, जिसने मिनोइयों अथवा नार्सों (नासमेन) को जह पर जाकर लहरों को चीरकर यूरोप के तट अथवा भूमध्यसागर के पूर्वी तट पर जाने को वि किया और जिस हलचल ने खानाबदोश अरबों, सीथियों, तुर्कों अथवा मंगोलों को अपने साध पथ को छोड़कर उसी उग्रता तथा तीव्रता से मिस्र, इराक, रूस, भारत और चीन पर धावा बो पर विवश किया, एक समान है ।)

यह देखा जायगा कि पोलिनेशियनों और एसकिमों की भाँति खानाबदोशों ने भौतिक

---

[1] स्टीन्स बी : वही, पुस्तक पृ० ४२ ।

की चुनौती का जो सामना किया वह असाधारण शौर्य का कार्य था। और दूसरी घटनाओं (केसेस) के विपरीत इस घटना में ऐतिहासिक प्रेरणा केवल अनुमान नहीं है। हमें इस परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि खानाबदोशी भी उसी प्रकार की चुनौती को उत्तेजना का परिणाम है जिस उत्तेजना ने मिस्री, सुमेरी और मिनोई सभ्यता को चेतना दी और जिसने डिनका, शिल्लुक और एक्वेटोरिया के पूर्वजों को अपना स्थान छोड़ने पर विवश किया अर्थात् सूखा पड़ा। खानाबदोशों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो सबसे स्पष्ट ज्ञान कैसपियन के पार के अनाम के नखलिस्तान में जो पंपेली अभियान हुआ था उससे प्राप्त हुआ है।

यहाँ हम देखते हैं कि सूखा पड़ने की चुनौती ने पहले-पहल उन समुदायों को प्रेरित किया जो शिकार करके अपना जीवन-यापन करते थे। वे अनुपयुक्त परिस्थिति में प्रारम्भिक रूप की खेती करने लगे। इस प्रमाण से पता चलता है खानाबदोशी स्थिति के पहले निश्चय ही रूप से खेती की स्थिति थी।

खेती-वारी एक दूसरा प्रभाव है जो अप्रत्यक्ष किन्तु महत्त्वपूर्ण इन पहले के शिकारियों के सामाजिक इतिहास पर पड़ा। बनैले पशुओं से इनका नये प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो गया। शिकारी का कार्य ऐसा है कि विशेष परिस्थिति को छोड़कर पशुओं के पालने की कला उसे नहीं आ सकती। खेतिहरों के लिए बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं। शिकारी भेड़िये या सियार को जिसकी सहायता से वह शिकार करता है या जिसकी उससे प्रतिद्वंद्विता है, भले ही पाल ले किन्तु वह उस पशु को नहीं पालता जिसका वह शिकार करता है। शिकारी का कुत्ता नहीं, किसान का पहरा देने वाला कुत्ता ही वह परिवर्तन कर सकता है जिसके परिणामस्वरूप गड़ेरिया और उसके ढोर की रक्षा करने वाला कुत्ता उत्पन्न होता है। किसान वह अनाज पैदा करता है जिसे जुगाली करने वाले पशु जैसे वैल या भेड़ पसन्द करते हैं। उन्हें कुत्तों की भाँति शिकार का मांस पसन्द नहीं होता।

अनाऊ के पुरातत्वीय प्रमाणों से पता चलता है सामाजिक विकास में यह घटना ट्रांस कैसपिया में उस समय हुई जब सूखने का दूसरा चक्र आया। जुगाली करने वाले पशुओं को पाल कर यूरेशिया के मानव ने वह गति पुन: प्राप्त कर ली जो उस समय समाप्त हो गयी थी जब वह शिकारी से किसान बना। पुरानी चुनौती के उत्तर में इस बार उसकी नयी अर्जित गति दो विभिन्न दिशाओं की ओर हुई। ट्रांस कैसपिया के कुछ किसान अपनी गति को केवल आगे बढ़ाते रहे। ज्यों-ज्यों ऋतु अधिक सूखी होती जाती थी वे आगे बढ़ते जाते थे। वे ऐसी भौतिक परिस्थिति के साथ ही रहते थे कि अपने जीवन की गतिविधि बनाये रखें। उन्होंने अपने निवास-स्थान को बदला, अपनी प्रवृत्ति को नहीं बदला। किन्तु दूसरों ने इनका साथ छोड़ दिया। उन्होंने इसी (सूखे पड़ने की) चुनौती का सामना दूसरे ढंग से साहस के साथ किया। इन यूरेशियनों ने उन नखलिस्तानों को छोड़ दिया जहाँ रहना सम्भव नहीं था और अपने परिवार और अपने पशुओं तथा भेड़ों के झुण्ड को लेकर स्टेप की अनाकर्षक भूमि पर आ गये। ये भगोड़े बनकर विदेश में नहीं आये। इन्होंने अपना मुख्य काम खेती को छोड़ दिया जैसे इनके पूर्वजों ने मुख्य धन्धा शिकार का छोड़ दिया था और नव अर्जित पशु-पालन की कला के आधार पर अपना जीवन बिताने लगे। वे स्टेप पर इसलिए नहीं आये कि उसकी सीमा से बाहर जायँ अपितु इसलिए कि उसके अनुसार अपना जीवन बनाये। ये खानाबदोश हो गये।

यदि हम उन खानाबदोशों की सभ्यता की तुलना, जिन्होंने खेती का धन्धा छोड़ दिया स्टेप पर बस गये, उनके उन बन्धुओं की सभ्यता से करें जिन्होंने अपना स्थान छोड़ दिया खेती का कार्य करते रहे तो हम देखेंगे कि खानाबदोशी में अनेक विशिष्टताएँ हैं। पहली तो यह है कि पशु-पालन पौधों के लगाने से ऊँची कला है क्योंकि पशु-पालने में मानव इच्छा तथा बुद्धि की विजय कम मर्यादा वाले जीव पर होती है। किसान से गड़ेरिया वड़ा कल है। इसकी सच्चाई सीरियाई पुराण की एक कथा में इस प्रकार है :—

"हौवा आदम की पत्नी थी, वह गर्भवती हुई और केन का जन्म हुआ · · ·उसका फि भाई पैदा हुआ एवेल । एबेल भेड़ें पालता था और केन खेत जोतता था । कुछ दिनों के खेत से उत्पन्न हुए अनाज को वह ईश्वर को भेंट चढ़ाने के लिए लाया । एबेल भी भेड़ों के उत्पन्न बच्चों को भेंट चढ़ाने के लिए लाया । ईश्वर ने एबेल की भेंट स्वीकार की, केन क की ओर ध्यान नहीं दिया।"

खानावदोश का जीवन मानव कौशल की सफलता है। जो कठोर घास वह स्वयं नहीं सकता उसे उसके पालतू पशु खाते हैं, और वह दूध और मांस में परिवर्तित हो जाता है। इस विचार से कि उसके पशुओं को अनुपजाऊ और कठोर स्टेप से सव ऋतुओं में चारा मिल उसे ऋतुओं के चक्र के अनुरूप अपने जीवन तथा गति को सावधानी से वनाना पड़ता वास्तविक यह है कि खानावदोशी के लिए बहुत ऊँचे चरित्र और आचार की आवश्यकता है जिस कठिनाई का सामना खानाबदोश को करना पड़ता है वह वैसी है जैसी एसकिमो जिस कठोर परिस्थिति पर उसने विजय प्राप्त की उसी ने धोखे से उसे दास बना लिया। एस की भाँति खानावदोश भी वार्षिक ऋतु तथा वानस्पतिक चक्र के दास हो गये हैं। स्टेप में ग्रहण किया उन्होंने, किन्तु संसार में नेतृत्व ग्रहण करने योग्य नहीं रह गये। सभ्यता के इति के पन्नों में उनका चिह्न अवश्य मिलता है। समय-समय पर अपने क्षेत्र को छोड़कर पड़ो शिथिल सभ्यताओं पर उनका धावा हुआ और कभी-कभी क्षणिक सफलता भी उन्हें मिली ये धावे अपना इच्छा से नहीं हुए। जब खानाबदोश लोग स्टेप छोड़कर किसानों की भूमि आयें, उन्होंने जान-बूझकर अपन अभ्यास के ऋतु-चक्र को नहीं छोड़ा। वे मशीनवत् ऐसी शक्ति से प्रेरित होकर आये जिस पर उनका वश न था।

ऐसी दो वाहरी शक्तियाँ हैं जिनके वे दास हैं—एक शक्ति जो उसे दाबती है, दूसरी जो खींचती है। कभी-कभी बहुत सूखा पड़ने से उसे दवकर स्टेप से वाहर निकलना पड़ता है उसके पुराने निवास में उसका रहना उसकी सहन-शक्ति के वाहर हो जाता है, और कभी- उसे स्टेप से बाहर इसलिए जाना पड़ता कि उसके निकट सामाजिक शून्यक (वैकुअम) में किसी ऐतिहासिक प्रक्रिया के कारण शिथिल समाज में वन जाता है वह खिच जाता है। जब शिथिल सभ्यता के विघटन के कारण जनरेला होता है। ये कारण खानाबदोशों के अनुभवों के बाहर की बातें हैं। यदि यह सर्वेक्षण किया जाय कि कब-कब खानाबदोशों ने शि समाज के इतिहास में हस्तक्षेप किया है तो सभी हस्तक्षेपों का कारण इन्हीं में मिलेगा।[1]

---

[1] ट्वायनबी ने इसी आधार पर विस्तृत खोज की है और इस अध्याय के बाद एक ल सूची दी है, जो यहाँ नहीं दी जा सकती।—सम्पादक

यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं में खानावदोशों ने हस्तक्षेप किया है, फिर भी इनके समाज का कोई इतिहास नहीं है । एक बार जब वह अपने वार्षिक कक्ष में आ गया खानावदोशों का गिरोह अनन्तकाल तक उसमें घूमता रह जाय, यदि कोई ऐसी वाहरी शक्ति उसपर अपना प्रभाव न डाले जिसके विरोध में खानावदोशों का वश नहीं चलता, और जो इस गिरोह की गति को समाप्त करके उसके जीवन को समाप्त न कर दे । यह शक्ति उस शिथिल सभ्यता का दवाव है जो खानावदोशों के गिरोह को चारों ओर से घेरे है । क्यों ईश्वर एबेल तथा उसकी भेंट का सम्मान करे और केन का न करे कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो केन को एबेल की हत्या करने से रोक सके ।

आधुनिक मौसम विज्ञान सम्बन्धी खोजों से पता चला है कि अपेक्षाकृत सूखे और नम ऋतुओं में विश्व भर में लय (रिद्म) के समान परिवर्तन होता रहता है । जिसके कारण किसान कभी एक क्षेत्र में, कभी दूसरे क्षेत्र में प्रवेश किया करते हैं । जब सूखा इस दर्जे पर पहुँच जाता है कि खानावदोशों के पास जितना ढोर है उसे उसके लिए चारा नहीं मिलता तो ये पशुपालक अपने वार्षिक अभ्यस्त पथ को छोड़कर अपने निकट के उन देशों में घुस पड़ते हैं जहाँ उनके तथा उनके पशुओं के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री मिल जाती है । इसके विपरीत जब इतनी तरी हो जाती है जब स्टेप में बोये हुए धान्य और मूल (रूट) वाली खाद्य सामग्री उपजने लगती है तब किसान खानावदोशों पर जवाबी हमला कर देते हैं । उनके आक्रमण के ढंग एक समान नहीं होते । खानावदोशों का आक्रमण रिसाले (केवेलरी) की भाँति आकस्मिक आवेग से होता है । किसानों का आक्रमण पैदल सेना की भाँति धीरे-धीरे बढ़ता है । हरएक कदम पर यह फावड़े से अथवा भाप वाले हल से खोदता जाता है और सड़क तथा रेल का निर्माण करके अपने संचारण व्यवस्था को दृढ़ करता जाता है । खानावदोशों के हमले का सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण तुर्कों और मंगोलों का आक्रमण है जो एक को छोड़ सबसे अन्तिम सूखा के युग में हुआ था । किसानों के आक्रमण का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है जब रूस पूरब की ओर बढ़ा । दोनों प्रकार के आक्रमण असाधारण हैं और जिस पर आक्रमण होता है उसके लिए दुखदायी है । किन्तु एक बात में दोनों समान हैं कि वे ऐसी भौगोलिक परिस्थिति के कारण होते हैं जिन पर नियन्त्रण नहीं हो सकता ।

खानावदोशों के बर्बर तथा आकस्मिक आक्रमण की अपेक्षा किसान का आक्रमण समय पाकर आक्रान्त देश को अधिक कष्टकर होता है । मंगोलों के आक्रमण दो-तीन पीढ़ियों में समाप्त हो गये किन्तु उनके बदले में रूसियों ने जो उपनिवेशन (कोलोनाइज़ेशन) आरम्भ किया वह चार सौ साल तक चलता रहा—पहले कजाक पंक्ति के पीछे जो उत्तर के चराई के मैदान के चारों ओर थी, फिर ट्रांसकैसपियन रेलवे के किनारे जिसकी शाखाएँ दक्षिणी सीमा पर चारों ओर फैली हुई हैं । खानावदोश की दृष्टि में रूस के समान किसानों की शक्ति उस दबाने वाले बेलन की मशीन की भाँति है जिसके द्वारा पश्चिमी उद्योगवाद अपनी रुचि के अनुसार गर्म स्टील को ढालता है । उस दबाव में खानावदोश या तो दबकर नष्ट हो जाता है या उस ढाँचे में निर्जीव वस्तु ढलकर निकलता है । प्रवेश की विधि भी सदा शान्तिपूर्ण नहीं होती । ट्रांसकैसपियन रेलवे की सड़क गोकटेप के तुर्कमेनों की हत्या करके बनी थी । परन्तु खानावदोशों की मृत्यु की चीख शायद ही कभी सुनी जाती हो । यूरोपीय युद्ध में जब इंग्लैंड इस खोज में संलग्न था कि उस्मानिया तुर्की के खानावदोशों के पूर्वज कौन थे जिससे पता चले कि छः लाख आरमीनियाइयों के हत्यारे कौन थे, किरगिज-कजाक संघ के तुर्की बोलने वाले पाँच लाख मध्य एशिया के खानावदोशों

का विनाश किया जा रहा था, और यह भी ऊपर की रूसी मुजाहक की आज्ञा से जो 'सर्व प्रिय मानव' कहा जाता था ।[१]

यूरेशिया में खानाबदोशों का विनाश सत्रहवीं शती में उसी समय से निश्चित था स्थावर (सिडेंटरी) साम्राज्य मसकोवी और मंचू ने अपनी-अपनी बाँहें यूरेशियाई स्टेप विपरीत दिशाओं से फैलायीं । आज जब हमारी पश्चिमी सभ्यता ने अपनी बाँहें विश्व ओर फैला रखी हैं, उन खानावदोशों को उनके अपने प्राचीन निवासों से निकालने पूरा कर रही हैं । केनया में मसाई चरागाहों को साफ करके यूरोपीय किसानों के लि बनाया गया है । सहारा में इमोशाग जो अपने रेगिस्तानी भूमि को अगम्य समझते देखते हैं कि हवाई जहाज और आठ पहिए वाली लारियाँ उनमें घुस रही हैं । अरब जो अफ्रेसियाई खानाबदोशों का पुराना निवास स्थान था आज बद्दुओं को फलाहीन (बनाया जा रहा है । और यह भी किसी विदेशी द्वारा नहीं बल्कि अरबों के अरब नज्द और के बादशाह मुसलमान विशुद्धवादी (प्युरिटन) वहावियों के सरदार अब्दुल अजीज अल की निश्चित नीति के अनुसार । जब वहाबी अधिपति अरब के केन्द्र में ही अपनी बख्तरबन्द गाड़ियों (आरमर्ड कार) की सहायता से दृढ़ कर रहे हैं और अपनी आर्थिक को पेट्रोल पम्पों, पताल तोड़ कूओं से तथा अमरीकी तेल की कम्पनियों को सुविधा प्रदान सुलझा रहे हैं तब यह स्पष्ट है कि खानाबदोशी का अन्तिम समय आ गया ।

इस प्रकार एबेल को केन ने मार डाला और हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि केन का हत्यारे पर पड़ा । समुचित रूप से पड़ रहा है । 'अब मुझे पृथ्वी का अभिशाप मिला है तेरे हाथों से तेरे भाई का रक्तपान करने के लिए अपना मुँह खोला है । जब तू खेत को आज से तुझे उसकी शक्ति नहीं प्राप्त होगी, पृथ्वी पर तू आवारा घूमा करेगा ।'[२]

केन के शाप का पहला भाग तो बिना प्रभाव के रहा । क्योंकि यद्यपि नखलिस्तान में करने वाला सूखी स्टेप से उपज नहीं प्राप्त कर सका, वह ऐसे प्रदेशों में चला गया जलवायु अनुकूल था । वहाँ से उद्योग की प्रेरणात्मक शक्ति लेकर वह लौटा और अपनी एबेल के चरागाह का दावेदार हुआ । अभी देखना है कि केन इस उद्योगीकरण का उसने निर्माण किया है मालिक होगा कि दास । सन् १९३३ में जब विश्व की नयी व्यवस्था के ह्रास होने और नष्ट हो जाने की आशंका थी यह असम्भव नहीं था कि एबेल की का बदला पूरा हो जाता और जो खानाबदोश मृतप्राय था वह जीवित रहता और देख हमारा हत्यारा विक्षुब्ध होकर शिओल के पास जाता ।[३]

(२) उसमानली वंश

इतना उन सभ्यताओं के सम्बन्ध में कहा गया है जिनकी सभ्यता भौतिक चुनौती के

---

[१] ए० जे० ट्वायनबी : द वेश्टर्न क्वेस्चन इन ग्रीस एण्ड टर्की, पृ० ३३९–४२ ।

[२] जेनेसिस ४, ११–१२ ।

[३] यदि ट्वायनबी सन् १९४५ में लिखते होते, जब कि यह सम्पादक लिख रहा विवरण में केवल सन् के ही परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती ।—सम्पादक

असाधारण शक्ति का प्रयोग करने के फलस्वरूप अविकसित रह गयी। अब हम उन पर विचार करेंगे जिन्हें भौतिक नहीं, मानवी चुनौती का सामना करना पड़ा।

जिस महान् चुनौती का परिणाम उसमानिया प्रणाली से उत्पन्न हुई, वह थी खानाबदोशों का अपने स्टेप के निवास स्थान से नये स्थान पर जाना। उनके सामने ही यह समस्या भी थी कि नये मानव समाज पर शासन करना। हमने पहले देखा है कि किस प्रकार आवार खानाबदोश जब अपने स्टेप के चरागाह से निर्वासित हुए और साधनहीन प्रदेश में फँस गये। तब उन्होंने जिन आलसी लोगों पर विजय पायी थी उनके साथ ऐसा व्यवहार करने की चेष्टा की जैसा या तो वे मनुष्यों के ढोर थे या भेड़ों के गड़ेरिये के वजाय उन्होंने अपने को मनुष्यों का गड़ेरिया बनाने का प्रयत्न किया। पशुओं को पाल कर उनके माध्यम से स्टेप की घास को अपने भोजन में परिवर्तन करने के स्थान पर आवारों ने (दूसरे खानावदोशों ने भी ऐसा ही किया है।) उपजाऊ धरती से भोजन उत्पन्न किया। स्टेप पर वे पशुओं के मांस को खाते थे जो घास पचकर बनता था अब वह पाचन के माध्यम से नहीं विजित मनुष्यों से परिश्रम कराकर उनके उपजाये अन्न को खाते थे। यह तुलना किसी सीमा तक ही ठीक बैठती है, परीक्षा करने पर इसमें एक बड़ा दोष मिलता है।

स्टेप पर खानाबदोशों तथा पशुओं का जो समाज है वह वैसी भौतिक परिस्थिति में रहने के बहुत ही उपयुक्त है। और खानाबदोश वास्तव में अपने अमानव साथियों अर्थात् पशुओं के प्रति परजीवी (पैरेसाइट) नहीं हैं। वहाँ एक दूसरे से लाभ उठाते हैं। पशु दूध ही नहीं अपने मांस से खानाबदोशों की सहायता करते हैं, खानाबदोश भी अपने पशुओं के चारे का प्रबन्ध करते रहते हैं। एक दूसरे की सहायता बिना दो में से एक भी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता था। किन्तु खेतों तथा नगरों के वातावरण में स्टेप से निर्वासित खानावदोशों और स्थानीय 'मानव ढोरों' का समाज आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त है। क्योंकि इन मानवों के गड़ेरिये आर्थिक दृष्टि से भले ही नहीं, राजनीतिक दृष्टि से बकार हैं, इसलिए परजीवी हैं। आर्थिक दृष्टि से ये गड़ेरिये नहीं रह जाते जो अपने ढोर की देख-रेख करें। ये नर-मधुमक्खी (ड्रोन) की भाँति अकर्मण्य हो जाते हैं और परिश्रमी मक्खियों का शोषण करते हैं। ये अन्न-उत्पादक शासक वर्ग बन जाते हैं जो उत्पादक जनता के परिश्रम पर जीते हैं। और यदि वे न होते जो जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी होती।

इस कारण खानाबदोश विजेताओं ने जितने साम्राज्य स्थापित किये वे सब जल्दी ही नष्ट होने लगे और उनकी असामयिक मृत्यु हो गयी। महान् मगरिबी इतिहासकार इब्नखल्दून (१३३२–१४०६ ई०) खानावदोशी साम्राज्यों को ध्यान में रखे हुए था जब उसने हिसाब लगाया कि साम्राज्यों की आयु तीन पीढ़ी अर्थात् एक सौ बीस वर्ष से अधिक नहीं होती। एक बार जब विजय प्राप्त कर ली तब खानाबदोश विजेता का क्षय होने लगता है। वह अपने तत्त्व से बाहर हो जाता है और आर्थिक दृष्टि से बेकार हो जाता है। इसके विपरीत उसके मानवी ढोर शक्ति अर्जित करते हैं क्योंकि वे अपनी ही धरती पर रहते हैं और आर्थिक दृष्टि से उत्पादक बने रहते हैं। ये 'मानवी पशु' अपने गड़ेरिया अधिकारियों को निष्कासित करके

अथवा उन्हें अपने में मिलाकर अपने मनुष्यत्व को स्थापित करते हैं । स्लावों पर आवारों राज्य पचास वर्षों से कम रहा और इसने प्रमाणित कर दिया कि स्लावों का निर्माण हुआ आवारों का विनाश । पश्चिमी हूणों का साम्राज्य केवल एक व्यक्तिअटिला के जीवन का रहा । ईरान तथा इराक में मंगोल के खानों का साम्राज्य अस्सी साल से कम रहा और दी चीन में भी खानों का साम्राज्य इससे अधिक नहीं रहा । मिस्र में हाइक्सो (गड़ेरिया का साम्राज्य कठिनाई से सौ साल रहा होगा । ये अपवाद अवश्य थे कि उत्तरी चीन पर मं तथा उनके पूर्वज किन दो सौ साल (११४२–१३६८ ई०) से अधिक शासन करते रहे और तथा इराक पर पार्थियन साढ़े तीन सौ साल से अधिक (१४० बी०सी०——२२६।२३२ तक राज्य करते रहे ।

इस तुलना के मानक (स्टैंडर्ड) से परम्परावादी ईसाई जगत् पर उसमानिया साम्रा अद्वितीय था । यदि हम इस साम्राज्य की स्थापना सन् १३७२ ई० में मैसेडोनिया की प से मानें और उसके विनाश का आरम्भ सन् १७७४ ई० में कुचुक——किनार्जी की रूसी सन्धि से मानें और उसके उत्कर्ष और अपकर्ष के समय को छोड़ दें तो लगभग चार सौ साल हैं इसके इतने दिन तक रहने का क्या कारण है । इसका कुछ कारण तो यह है कि उसमा वंश, यद्यपि आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त था, उसने एक राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति की परम्परावादी ईसाई जगत् को सार्वभौम राज्य में परिवर्तित किया, जो यह स्वयं बनने में अ था । किन्तु दूसरे कारण मिल सकते हैं ।

हमने देखा है कि आवार तथा उनके समान और खानाबदोश जातियाँ जब रेगिस्ता उपजाऊ जमीन पर आती हैं तब वे 'मनुष्यों के गड़ेरिया' बनने की चेष्टा करती हैं किन्तु अ रहती हैं । उनकी असफलता से हमें आश्चर्य नहीं होता क्योंकि ये असफल खानाबदोश जि उपजाऊ धरती पर अपना साम्राज्य स्थापित किया, मानवों के रूप में कोई ऐसा साथी ब की चेष्टा नहीं की जैसा साथी उन्हें स्टेप में मिला था । स्टेप में केवल मनुष्य-गड़ेरिये और ढोर ही नहीं रहता । उन पशुओं के अतिरिक्त जिन पर वह अपना जीवनयापन करता है, पशु भी वह रखता है जैसे कुत्ता, ऊँट और घोड़ा जो उसे उसके कार्य में सहायता देते हैं । सहायक पशु खानाबदोशी सभ्यता की मुख्य शक्ति हैं और उनकी सफलता की कुंजी । भेड़ गाय को मनुष्य के लाभ हेतु बनाने के लिए पालना पड़ता है यद्यपि इसमें कठिनाई होती कुत्ते, ऊँट और घोड़े को काम के लायक बनाने के लिए उन्हे पालना ही नहीं पड़ता, प्रशिक्षित क पड़ता है । मनुष्य के अतिरिक्त दूसरे जीवधारियों को प्रशिक्षित करना खानाबदोशों की बड़ी सफलता है । इसी खानाबदोशी कला को स्थावर परिस्थितियों के अनुरूप बनाने में उस निया साम्राज्य और आवार साम्राज्य में अन्तर है । और इसी के कारण उसमानिया साम्रा अधिक टिका । उसमानिया बादशाहों ने दासों को मानवी सहायकों के रूप में प्रशिक्षित जिससे अपने साम्राज्य की रक्षा की और उन्हीं की सहायता से 'मानव-पशुओं' में सुव्यवस्था र

दासों से सैनिक और शासक बनाने की अद्भुत प्रथा जो खानाबदोशों की प्रतिभा के अनु हैं और हम लोगों के प्रतिकूल, उसमानियों की खोज नहीं थी । यह बात हम दूसरे खानाब

साम्राज्यों में भी पाते हैं जो उन्होंने स्थावर जातियों पर स्थापित किया था। और यह प्रथा उन्हीं में पायी जाती है जो अधिक दिनों तक टिके।

पार्थियन साम्राज्य में भी दास-सैनिकों का आभास मिलता है क्योंकि एक सेना ने जिसने मार्क एन्तनी की सिकन्दर महान् के नकल करने की महत्त्वाकांक्षा को पूरा होने नहीं दिया उसमें ५०,००० कुशल सैनिकों में ४०० स्वतन्त्र नागरिक थे। इसी प्रकार और इसी ढंग पर अव्वासी खलीफों ने स्टेप से तुर्की दासों को खरीद कर और उन्हें अच्छे सैनिकों तथा शासकों में प्रशिक्षित कर अपने अधिकार को सुरक्षित रखा। कारडोवा के उम्मयी खलीफा ने अपने पड़ोसी फ्रांकों से दासों को लाकर शरीर रक्षक नियुक्त किया। फ्रांक लोग अपने सामने के फ्रांकी राज्यों से लोगों को पकड़ कर लाते थे और कारडोवा के दासों को वाजार में वेचा करते थे। जो वर्वर इस प्रकार पकड़ कर लाये जाते थे वे स्लाव होते थे, इसी से अंग्रेजी भाषा में 'स्लेव' (दास) की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार का एक और विख्यात उदाहरण मिस्र में ममलूकों का शासन है, अरबी में ममलूक का अर्थ है 'अधिकृत', जिसपर अधिकार हो। ममलूक पहले-पहल उस वंश के दास थे जिसे अयूवी सलादीन ने चलाया था। सन् १२५० ई० में ये दास अपने मालिकों से स्वतन्त्र हो गये और अयूवी दास प्रथा को स्वयं व्यवहार में लाने लगे। ये भी वाहर से दास खरीदा करते थे। कठपुतली खलीफा के पीछे यही दासों का घराना मिस्र और सीरिया पर शासन करता रहा और सन् १२५० से १५१७ तक पराक्रमी मंगोलों को फरात की रेखा तक रोके रखा, जव उन्हें उनसे भी वली उसमानलियों के दास परिवार ने पराजित किया। परन्तु इस समय भी उनका अन्त नहीं हुआ क्योंकि मिस्र में उसमानिया शासन के समय भी उन्हें इसी प्रकार दासों के खरीदने और उन्हें प्रशिक्षित करने की छूट थी। जब उसमानिया शक्ति का ह्रास होने लगा, ममलूकों ने अपने को फिर शक्तिशाली बना लिया और अठारहवीं शती में मिस्र के उसमानिया पाशा ममलूकों के उसी प्रकार राजबन्दी हो गये जैसे तुर्की विजय के पहले कैरोन अव्वासी खलीफे थे। ईसा की अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में यह प्रश्न विचारणीय हो गया कि मिस्र का उसमानिया वंशज ममलूकों के हाथ में जायगा कि किसी यूरोपीय शक्ति के——नैपोलियन वाले फ्रांस के अथवा इंग्लैंड के। अल्वानिया के एक मुसलिम मुहम्मद अली ने अपनी प्रतिभा के वल पर दोनों सम्भावनाओं को समाप्त कर दिया। किन्तु उसे ममलूकों के नियन्त्रण करने में उससे अधिक कठिनाई हुई जितनी अंग्रेजों अथवा फ्रांसीसियों को दूर रखने में हुई। उसने अपनी योग्यता और नृशंसता से और यूरेशियाई तथा काकेशियाई जनबल को लेकर इन दासों की सेना को नष्ट किया जिन्होंने पाँच सौ साल से अधिक तक मिस्र की विदेशी भूमि पर अपने को जीवित रखा।

अनुशासन में तथा संगठन में ममलूक दास घराने से कहीं अधिक श्रेष्ठ वह बाद का दास घराना था जिसे उसमानिया वंश ने परम्परावादी ईसाई जगत् पर शासन करने के लिए स्थापित किया था। खानाबदोशी विजेता के लिए यह बहुत कठिन कार्य था कि किसी विदेशी सभ्यता के सारे समाज पर शासन स्थापित करें। किन्तु इस साहसी कार्य के कारण उसमान और उनके वंश में सुलेमान महान् तक (१२५०–६६ ई०) इन खानाबदोश शासकों को अपने सामाजिक गुणों को पूर्ण रूप से व्यवहार में लाना पड़ा।

एक अमरीकी विद्वान् ने उसमानिया दास घरानों की इन विशेषताओं के अध्ययन को शब्दों में व्यक्त किया है ।[१]

उसमानिया राज्य-व्यवस्था में ये तो सम्मिलित थे । सुलतान और उनका परिवा उनके घर के कर्मचारी, शासन से कार्यकारी (एकजिक्यूटिव) अफसर, पैदल तथा रिसाला से अनेक युवक जिन्हें सेना में कार्य करने के लिए शिक्षा दी जाती थी, दरवार और शासन । लोग तलवार, लेखनी और दण्ड के आधार पर शासन करते थे । न्याय को छोड़कर जो शरी के नियमों द्वारा होता था और थोड़े उन कार्यों को छोड़कर जो विदेशी गैर-मुसलिम प्रजा के हा में था, शासन का सारा कार्य ये चलाते थे । गैर-मुसलिम शासन व्यवस्था की विशेषता यह कि इसमें कुछ अपवादों को छोड़कर वही लोग थे जो ईसाइयों के वंशज थे, दूसरी वात यह थी इस संस्था का प्रत्येक सदस्य सुलतान का दास होकर आता था और चाहे वह धन, प्रतिष्ठा शक्ति में कितना भी महान् हो जाय, जीवन भर वह सुलतान का दास ही रहता था । ' परिवार भी दास परिवार में ही था (क्योंकि) सुलतान की सन्तानों की माता दासी होती थीं- सुलतान स्वयं दास का पुत्र होता था । सुलेमान के समय से, बहुत पहले से, सुलतानों ने राजघरा में विवाह करना बन्द कर दिया था, अपनी सन्तानों की माता को पत्नी का नाम नहीं दिया क थे । उसमानिया व्यवस्था में जान-बूझकर दासों को राज का मन्त्री बनाया जाता था । चरवा और हलवाहों को वे लाते थे और उन्हें दरवारी बनाते थे और अपनी राजकुमारियों का पति वे ऐसे युवकों को लाते थे जिनके पितामह सैकड़ों वर्षों से ईसाई थे और बड़े-बड़े इस्लामी प्रा का उन्हें शासक बनाते थे और अजेय सेना में उन्हें सैनिक तथा सेनापति बनाते थे जो ईसाइयों हराकर इस्लाम का झण्डा ऊँचा करने में अपना गौरव समझते थे । उन मौलिक आचा को, जिन्हें हम 'मानवी प्रकृति' कहते हैं, बिलकुल परवाह न करके, तथा उन धार्मिक तथा सामाजि आग्रहों की भी (प्रिजुडिसेज) जिनकी गहराई उतनी होती है जितनी जीवन की, उपेक्षा क उसमानिया व्यवस्था में बच्चों को माता-पिता से सदा के लिए अलग कर दिया जाता था उन्हें जीवन के क्रियाशील काल में परिवार की चिन्ता से निवृत्त कर दिया जाता था । वे अ पास किसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं रख सकते थे । यह भी उन्हें वचन नहीं दिया जाता था उनकी सन्तानों को इन दासों की सफलता तथा त्याग का फल मिलेगा । इस बात की परवाह करके कि इनके पूर्वज कितने बड़े थे अथवा इनमें क्या पहले की विशेषता है, वे उन्नत या अव कर दिये जाते थे । उनको विचित्र विधियाँ, नीतियाँ तथा धर्म की शिक्षा दी जाती थी । औ इस बात का उन्हें सदा ध्यान दिलाया जाता था कि उनके सिर पर तलवार लटक रही है जो कि समय किसी अद्वितीय व्यक्ति अथवा विशिष्ट जीवन को भी समाप्त कर सकती है ।

शासन में से स्वतन्त्र उसमानिया रईसों को अलग रखना इस तन्त्र की विचित्र व्यवस्था किन्तु परिणाम से इसका औचित्य सिद्ध हुआ । क्योंकि जब सुलेमान के राज्य के अन्तिम दि

---

[१] ए० एच० लाइबाइयर : द गवर्नमेन्ट आव दि आटोमन एम्पायर इन द टाइम अ सुलेमान द मैग्निफिसेंट,—पृ० ३६, ४५–४६, ५७–५८ ।

में स्वतन्त्र मुसलिम लोग शासन में जबरदस्ती घुसे, राज व्यवस्था तहस-नहस होने लगी और उसमानिया साम्राज्य का विनाश आरम्भ हो गया ।

जब तक पहले वाली व्यवस्था अक्षुण्ण थी और मुसलिम स्रोतों से रँगरूट आते रहे । विदेशों से युद्ध में बन्दी बनाकर, या दासों को बाजार से खरीदकर अथवा अपनी इच्छा से दासों की भर्ती होती रही । कभी-कभी अपने राज्य में ही जबरदस्ती भर्ती की जाती थी । रँगरूटों को बहुत विस्तार से शिक्षा दी जाती थी और प्रत्येक स्तर पर विशेषज्ञता का प्रशिक्षण होता था । अनुशासन कठोर होता और दण्ड भी क्रूर । किन्तु सदा प्रोत्साहित किया जाता था कि वे अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा कर सकते हैं और ऐसा करें । हर एक युवक जो उसमानिया बादशाह के दास परिवार में सम्मिलित होता था जानता था कि मैं किसी समय प्रधान मन्त्री हो सकता हूँ और मेरा भविष्य मेरी शक्ति और योग्यता पर निर्भर है ।

इस शिक्षा प्रणाली का विस्तृत तथा सजीव वर्णन बेलजियम के विद्वान् तथा राजनीतिज्ञ ओजियर गिसेलिन डिवल्सबेने किया है । यह सुलेमान महान् के दरबार में राजदूत थे । इनका वर्णन उसमानलियों की जितनी प्रशंसा करता है उतना ही पश्चिमी ईसाई जगत् की निन्दा ।

वह लिखते हैं—'मैं तुर्कों की इस प्रथा से ईर्ष्या करता हूँ । तुर्कों का सदा यह स्वभाव रहा है कि जब कभी उन्हें ऐसा व्यक्ति मिल जाता है जिसकी योग्यता असाधारण होती तब वे उतने ही प्रसन्न होते हैं मानों उन्हें बहुमूल्य मोती मिल गया है । और उसकी जो कुछ योग्यता होती है और जो रुचि होती है उसके परिष्कार के लिए कुछ भी उठा नहीं रखते, विशेषतः यदि उसमें सैनिक गुण हों । हम पश्चिम वालों का सचमुच भिन्न ढंग है । पश्चिम में यदि अच्छा कुत्ता, या बाज (पक्षी) या घोड़ा हमें मिल सकता है तो हम बहुत प्रसन्न होते हैं और उसे अधिक से अधिक पटु बनाने के लिए जो कुछ भी बन पड़ता है करते हैं । जहाँतक मनुष्य का प्रश्न है, मान लीजिए कि हमें विशेष योग्यता का व्यक्ति मिल गया, तो हम समझते हैं कि उसे शिक्षित करना हमारा काम नहीं है । हम पश्चिम वाले घोड़े, कुत्ते या बाज को प्रशिक्षित करके अनेक प्रकार के आनन्द उठाते हैं और तुर्क मनुष्य के गुणों से, जिसका आचार और चरित्र शिक्षा से परिष्कृत किया गया है, और जिसके कारण वह पशु से बहुत ऊँचा तथा श्रेष्ठ बनता है लाभ उठाते हैं ।'[1]

आगे चलकर यह प्रथा नष्ट हो गयी क्योंकि सभी चाहते थे कि अधिक से अधिक सुविधा हमें मिले । ईसा की सोलहवीं शती के अन्त में जानिसारी[2] सेना में हबशियों को छोड़कर सब स्वतन्त्र मुसलमानों की भर्ती होने लगी । संख्या बढ़ गयी । साथ ही अनुशासन और दक्षता घटने लगी । सत्रहवीं शती के बीच ये मानवी रक्षक-कुत्ते 'प्रकृति की ओर लौट गये' और भेड़िये हो गये जो बादशाह के मानवी ढोरों की रक्षा करने के बजाय उन्हें तंग करने लगे । परम्परावादी ईसाई प्रजा को, जिसने उसमानिया शासन को स्वीकार कर लिया था अब धोखा हुआ कि हमने इनसे सुलह कर ली थी । सन् १६८२–९९ में जब उसमानिया साम्राज्य और पश्चिमी ईसाइयों में

---

[1] ओ० जी० बसबेक : लैटिन की पुस्तक जिसमें तुर्कों की सैनिक संस्था का वर्णन है ।

[2] तुर्कों के सुलतान की पैदल सेना । —अनुवादक

महायुद्ध हुआ, उसमानिया प्रदेश का एक टुकड़ा ईसाइयों ने जीत लिया और यह जीत का सिल १९२२ ई० तक जारी रहा। उसमानिया अनुशासन तथा दक्षता पश्चिम की ओर निश्च से चली गयी।

उसमानिया दास घराने की व्यवस्था नष्ट हो जाने से एक बात प्रकट हो गयी कि उसका दोष उसकी दृढ़ता (रिजिडिटी) थी। एक बार यन्त्र में गड़बड़ी हो गयी, फिर न तो उ मरम्मत हो सकती थी, न उसका प्रतिरूप बन सकता था। सारी व्यवस्था भयावह स्वप्न के स हो गयी थी। और बाद के तुर्की शासक अपने पश्चिमी वैरियों की नकल मात्र करते थे। नीति आधे मन से और अयोग्यता से काम में लायी जाती थी किन्तु अन्त में पूर्णरूप से इ पालन हमारे युग में मुस्तफा कमाल ने किया। पर परिवर्तन उतना ही आश्चर्यजनक शक्तिशाली था जितना पुराने उसमानिया राजनीतिज्ञों के काल में दास-व्यवस्था। इन दोनों प्रथाओं की तुलना से दास-व्यवस्था के दोष प्रकट हो जाते हैं। उसमानिया दास घ के निर्माताओं ने ऐसा साधन तैयार किया था जिसके द्वारा वे थोड़े खानाबदोश जो अपने नि स्टेप से निकल आये थे, अजनबी संसार में अपनी स्थिति दृढ़ ही नहीं रख सके बल्कि एक ऐसे ईसाई समाज में शान्ति और व्यवस्था कायम रख सके, जो छिन्न-भिन्न हो गयी थी और उस महान् ईसाई समाज के जीवन को भयावह परिस्थिति में डाल दिया था, जिसकी छाया आज स संसार पर है। बाद के तुर्की राजनीतिज्ञों ने केवल उस रिक्तता की पूर्ति की है जो पुराने अ उसमानिया साम्राज्य के लोप हो जाने से निकट पूर्व में हो गयी थी। उन्होंने उस शून्य स्थान पश्चिमी ढाँचे पर तुर्की राष्ट्रीय राज के रूप में बना-बनाया गोदाम खड़ा कर दिया है। इस साधा ग्राम-भवन में निवास करने में अविकसित उसमानिया सभ्यता के तुर्की उत्तराधिकारी उसी प्र सन्तुष्ट हैं जैसे उन्हीं की बगल में पथराये (फसिलाइज्ड) सीरियाई सभ्यता के उत्तराधि यहूदी अथवा सड़क पार वाले अकाल प्रसूत सुदूर पश्चिमी सभ्यता के उत्तराधिकारी आय ये अब 'विचित्र जाति' की परिस्थिति से बचकर साधारणतः सुख का जीवन व्यतीत कर रहे है

जहाँ तक दास घराने का प्रश्न है, उसका वही हाल हुआ जो उस पहरुवे कुत्ते का होता है बिगड़ जाता है और भेड़ों को तंग करने लगता है। १८२६ में ग्रीक-तुर्की के युद्ध के बीच मह द्वितीय ने निष्ठुरता से उसका अन्त कर दिया, ठीक पन्द्रह साल बाद जब उसी प्रकार की सं ममलूकों का विनाश महमूद की नाम मात्र की प्रजा ने मिस्र के मुहम्मद अली ने किया, जो क उनके मित्र कभी प्रतिद्वंदी बनते थे।

(३) स्पार्टन

उसमानिया संस्था, जहाँतक जीवन में सम्भव हो सकता है प्लेटो के रिपब्लिक के आदर्श समीप थे। किन्तु यह निश्चित है कि प्लेटो ने जब अपने यूरोपिया की कल्पना की, उसके मन स्पार्टा की संस्थाएँ रही होंगी और यद्यपि उसमानिया के तथा स्पार्टन सैनिक कार्यों के वि के कारण अन्तर था, उनकी 'विचित्र संस्थाओं' में निकट की समानता भी थी जिसके आधार इन्होंने अपने असाधारण शौर्य के कार्य सम्पन्न किये।

जैसा हमने अपने अध्ययन के पहले उदाहरण में (पृ० ४) में बताया था कि जब ईसा के प आठवीं शती के सभी हेलेनी राज्यों को समान चुनौती का सामना करना पड़ा और वहाँ की जनसं

भोजन के परिमाण के अनुपात में बहुत बढ़ गयी तब स्पार्टा वालों ने इस समस्या का हल अपने ढंग से किया। सामान्य (नारमल) हल तो उपनिवेशन था। उन्होंने समुद्र पार नयी जगहें खोजीं और बर्बरों पर विजय प्राप्त कर अपने देश की सीमा बढ़ायी और वहाँ लोगों को बसाया। बर्बरों का विरोध दुर्बल था इसलिए वह कार्य सरल था। स्पार्टा वाले ही यूनानी महत्त्वपूर्ण समुदाय में ऐसे थे जो सागर के समीप नहीं थे। उन्होंने अपने यूनानी पड़ोसी मेसेनियों पर विजय प्राप्त की। इसमें उन्हें अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। पहली स्पार्टा-मेसेनियाई लड़ाई (७३६–७२० ई० पू० के लगभग) लड़कों का खेल थी। दूसरी (६५०–६२० ई० पू० के लगभग) बहुत कठोर थी। मेसेनियाई अपनी विपत्ति के फलस्वरूप स्पार्टनों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। यद्यपि उन्होंने स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की स्पार्टनों के विकास की सारी दिशा बदल दी। मेसेनियाई क्रान्ति इतनी प्रबल थी कि इसके परिणामस्वरूप स्पार्टनों की अवस्था दरिद्रों की सी हो गयी। इसके पश्चात् न तो उन्हें कभी शान्ति मिली, न युद्धेतर विपत्तियों से वे अलग हो सके। उनके विजय ने विजेताओं को ही बन्दी बना लिया जिस प्रकार एसकिमो ने आर्कटिक सागर प्रदेश को जीता किन्तु स्वयं उसके बन्दी बन गये। जिस प्रकार एसकिमो ऋतु के वार्षिक चक्र की कठोरता में बँधे हुए हैं उसी प्रकार स्पार्टन मेसेनियाई दासों को दबाने में बँध गये थे।

स्पार्टनों ने अपनी शक्ति के प्रयोग करने में उसी प्रणाली का सहारा लिया जो उसमानलियों ने लिया था। केवल उन्हें नयी परिस्थिति के अनुकूल बना लिया था। अन्तर इतना था कि उसमानली शासकों ने 'खानाबदोशों की समृद्ध परम्परा' का सहारा लिया था, स्पार्टनों की संस्थाएँ उन डोरिबी (डोरियन) बर्बरों के आदिम सामाजिक व्यवस्था से ली गयी थी जिन्होंने मिनोई जनरेला के पश्चात् यूनान पर आक्रमण किया था। हेलेनी किंवदन्ती के अनुसार यह लाइकरगस की देन है। किन्तु लाइकरगस मनुष्य नहीं देवता था, और इसके वास्तविक प्रणेता ईसा के पूर्व ६ सौ वर्ष तक अनेक राजनीतिज्ञ थे।

(उसमानिया व्यवस्था के अनुसार स्पार्टन व्यवस्था में भी मानव प्रकृति की नितान्त अवहेलना थी जिसके कारण उसमें दक्षता भी थी और कठोरता थी और उसी के कारण उसका अन्त भी हुआ) स्पार्टा के 'अगोगे' उसमानिया दास-घराने की भाँति नहीं थे। यह बात नहीं थी कि जन्म तथा वंश के गुणों पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता था। स्पार्टा के स्वतन्त्र नागरिक जमींदार उसमानिया साम्राज्य के स्वतन्त्र मुसलिम जमींदारों से बिलकुल भिन्न थे। मेसेनिया पर स्पार्टन शासन कायम रखने का सारा उत्तरदायित्व इन्हीं पर था और साथ ही साथ स्पार्टनी नागरिकों में समता के सिद्धान्त का पालन कठोरता से किया जाता था। प्रत्येक स्पार्टन को बराबर धरती, जिसकी प्रत्येक की उपज भी समान हो, दी जाती थी। यह धरती मेसेनियाई दास जोतते-बोते थे और इनकी उपज इतनी होती थी कि स्पार्टन और उसके परिवार का भरण-पोषण कर सके जिससे वे अपनी सारी शक्ति युद्ध में लगा सकें। प्रत्येक स्पार्टन बालक यदि दुर्बल हुआ तो मरने के लिए निराश्रय छोड़ दिया जाता था, नहीं तो उसे सातवें साल से अपनी सारी शक्ति कठोर सैनिक शिक्षा ग्रहण करने में लगानी पड़ती थी। इसका अपवाद बिलकुल नहीं होता था। लड़के-लड़कियों दोनों को व्यायाम की शिक्षा दी जाती थी। बालकों की भाँति बालिकाएँ भी नंगे बदन पुरुष जनता के सामने प्रतिद्वन्द्विताओं में सम्मिलित होती थीं। इन बातों में स्पार्टनों ने सेक्सी-भावों पर इतना नियन्त्रण अथवा उदासीनता अर्जित कर ली थी जितनी वर्तमान जापानियों

ने । सन्तानोत्पत्ति कड़े सुजनन (यूजेनिक) नियमों के अनुसार नियन्त्रित था । यदि पुरुष दुर्बल होता था तो उसे प्रोत्साहन दिया जाता था कि बलशाली व्यक्ति से अपने परिवा बच्चे पैदा करा ले । प्लूटार्क के अनुसार—'दूसरे मानव समाज में केवल अश्लीलता और अभिमान है जो इस बात का तो ध्यान रखते हैं कि उनकी कुतियों और घोड़ियों के लिए तो उत्पन्न करने के लिए अच्छे जोड़े मोल या माँगनी लाते हैं किन्तु अपनी स्त्रियों को तालों में रखते हैं कि केवल अपने पति से ही सन्तान उत्पन्न करें । मानों यह पति का कोई अधिकार है वह रोगी हो, पागल हो अथवा बूढ़ा हो ।'[1]

पाठकों ने प्लूटार्क के विचार और उसमानलियों के दास-घरानों पर बसबेक के विचारों जिसका विवरण पहले दिया गया है समानता देखनी होगी ।

स्पार्टा की व्यवस्था तथा उसमानिया व्यवस्था की मुख्य बातें समान थीं जैसे निरीक्षण, चुन विशेषज्ञता और प्रतिद्वन्द्विता के भाव, और दोनों में ये बातें केवल शिक्षण काल तक नहीं स्पार्टन तिरपन साल तक सेना में काम करता था । कुछ बातों में जानिसारियों से अधिक काम करना पड़ता था । जानिसारियों को विवाह करने से जहाँ तक सम्भव हो रोका जाता किन्तु यदि उन्होंने विवाह किया तो विवाहितों के टोले में रहना पड़ता था, स्पार्टनों को विवाह लिए विवश किया जाता था किन्तु वे गार्हस्थ्य जीवन नहीं व्यतीत कर सकते थे । विवाह के भी उन्हें बैरकों में खाना और सोना पड़ता था । इसका परिणाम ऐसा होता था जो अविश्वस जान पड़ता है और वह साधारण जन के भावों को कुचल डालने वाला होता था । ये भावन ऐसी थीं जो युद्ध काल में भी अंग्रेजी विचारधारा के प्रतिकूल और घृणित हैं और दूसरे समय वे असह्य हैं और इसी कारण 'स्पार्टन' शब्द बदनाम हो गया है । इस भावना का एक रूप 'थ पिली के दर्रे और तीन सौ' की घटना में या लोमड़ी और बालक की कहानी के उदाहरण में दूसरी ओर हमें यह भी स्मरण रखना है कि स्पार्टी लड़के की शिक्षा के अन्तिम दो वर्ष गुप्त वि में काम करने में लगाये जाते थे । ये केवल हत्यारे थे । रात को गाँवों में घूमा करते थे यदि कोई दास अ-विनय का दोषी होता था उसमें चरित्र दोष पाया जाता था या कोई अपनी इ के अनुकूल कार्य करता था, तो वह मौत के घाट उतार दिया जाता था ।

स्पार्टा की प्रणाली की 'एक-मार्गी' प्रतिभा आज वहाँ अजायब घर में भी दर्शक को मि सकती है । क्योंकि यह अजायबघर और अजायबघरों से भिन्न है, जहाँ हेलेनी कला की वस्तु रखी हैं । और अजायबघरों की सामग्रियों में दर्शक की आँखें क्लासिकी युग की कुशल कारीग का नमूना ढूँढ़ती हैं और देखती हैं । यह युग ईसा के पूर्व पाँचवीं और चौथी शताब्दी में मा जाता है । स्पार्टा के अजायबघर में क्लासिकी कला देखने को नहीं मिलती । क्लासिकी युग पहले की वस्तुएँ मिलती हैं और उनकी कला आशाप्रद है किन्तु उनके बाद की वस्तुएँ नहीं मिलती एक शून्य मिलता है और फिर बाद की हेलेनी तथा रोमन काल की प्रतिभाहीन त बँधी-तुली वस्तुएँ मिलती हैं । जिस समय पुरानी स्पार्टन कला परम्परा से टूटती है वह लग वही काल है जब ईसा के पूर्व छठी शती के मध्य चिलन शासक था इसलिए इसको इस प्रणाली

---

१. प्लूटार्क : लाइकरगस, अध्याय १५ ।

निर्माता कहा जाता है। पतन काल में जो एकाएक कला की वस्तुओं की उत्पत्ति आरम्भ हुई, वह ई० पू० १८९–१८२ के बाद की है, जिसे विदेशी विजेता ने जबरदस्ती बन्द कर दिया। यह उस कठोर प्रणाली का विचित्र उदाहरण है कि उसके मुख्य अभिप्राय के लोप होने के बाद भी दो शतियों तक चलती रही—उस समय तक जब मसीना पूरा पराजित हो गया। इसके पहले साधारण कथन के रूप में अरस्तू ने स्पार्टा का समाधि लेख (एपिटाफ) इस रूप में लिख दिया था—

"राष्ट्रों को युद्ध की शिक्षा अपने को इसलिए नहीं देनी चाहिए कि अपने ऐसे पड़ोसियों पर विजय प्राप्त करे जो इस योग्य नहीं है कि उनपर विजय प्राप्त की जाय। (अर्थात् सहयोगी यूनानियों पर अथवा ऐसे नियम-विधि विहीन जातियों पर जिन्हें यूनानी वर्बर कहते हैं) किसी सामाजिक प्रणाली का मुख्य लक्ष्य, दूसरी संस्थाओं की भाँति, सैनिक व्यवस्था में भी ऐसा होना चाहिए कि शान्ति के समय भी जब युद्ध नहीं होता हो, उसकी उपयोगिता हो।"[1]

(४) साधारण विशेषताएँ

इन अविकसित समाजों की दो विशेषताएँ हैं जो प्रमुख हैं। श्रेणियाँ और विशेषज्ञता (स्पेशलाइजेशन), ये दोनों बातें एक सूत्र में सम्मिलित हो सकती हैं। इन समाजों में जो व्यक्ति हैं वे एक प्रकार के नहीं हैं, वे दो या तीन विभिन्न श्रेणियों में स्पष्ट रूप से विभाजित हो जाते हैं। एसकिमो समाज में दो श्रेणियाँ हैं—शिकारी मानव तथा उनके सहायक कुत्ते। खानाबदोशी समाज में तीन श्रेणियाँ हैं—मानव गड़ेरिये, सहायक पशु और ढोर (केट्ल), उसमानिया समाज में खानाबदोशी तीन श्रेणियों के स्थान पर पाँच श्रेणियाँ हमें मिलती हैं—और पशुओं की जगह वहाँ मनुष्य होते हैं। खानाबदोशों का बहुरूपी (पोलिमारफिक) समाज मानव तथा पशुओं के गिरोह का एक समाज बना हुआ है, जिनमें से कोई अपने साथी के बिना स्टेप पर जीवित नहीं रह सकता जबकि उसमानिया समाज में विरोधी व्यवस्था है जहाँ एक ही मानव जाति विभिन्न जातियों में बँटी हैं मानों वे विभिन्न जाति के पशु हैं। किन्तु सम्प्रति हम इस भेद को छोड़ दे सकते हैं। एसकिमो के कुत्ते और खानाबदोश के घोड़े और ऊँट मनुष्य के साथी होने के कारण आधे मनुष्य बन गये हैं, उसमानिया समाज में प्रजा को 'रिआया' (जिसका अर्थ 'ढोर' है) कहते हैं और लेकोनियाई दासों के साथ पशुओं का-सा व्यवहार होने के कारण वे अर्ध-पशु हो जाते हैं। शेष जो मानव इनके साथी हैं वे राक्षस बन जाते हैं। पूर्ण स्पार्टन लड़ाकू, पूर्ण जानिसारी साधु, पूर्ण खानाबदोश किन्नर (सेंटार) और पूर्ण एसकिमो समुद्र कुमार (मरमैन) बन जाता है। पेरिक्लीज ने अन्त्येष्ठि भाषण में ऐथेन्स और उसके बैरियों में जो अन्तर बताया है वह यह है कि ऐथेनियन ईश्वर के बिम्ब में मानव हैं और स्पार्टन युद्धक यन्त्र-मानव हैं। जहाँ तक एसकिमो और खानाबदोशों की बात है जिन लोगों ने वहाँ का वर्णन किया है सभी एकमत हैं कि इन्होंने अपने कौशल को इतना ऊँचा उठाया है कि मनुष्य और नाव पहले के यहाँ, तथा मनुष्य और घोड़े दूसरे के यहाँ, एक अंग से हो गये हैं।

---

[1] अरस्तू : पोलिटिक्स—१३३३ बी—१३३४ ए।

इस प्रकार एसकिमो, खानाबदोश, उसमानली वर्ग और स्पार्टन ने ऐसी सफलता प्राप्त मानवता के विभिन्न गुणों का तिरस्कार किया और अपरिवर्तनशील पशु प्रकृति को ग्रहण कि इस प्रकार उन्होंने प्रतिगामिता की ओर पाँव रखा । जीव-विज्ञानियों का कहना है जिस पशु जाति ने विशेष वातावरण के अनुसार अपने को विशेष रूप से अनुकूल बना लिया वह प्राय हो जाती है और उसका विकास रुक जाता है । यही हाल अविकसित सभ्यताओं का

इसी प्रकार के उदाहरण हमें काल्पनिक मानव समाज यूटोपिया में तथा सामाजिक में भी मिलते हैं । यदि हम तुलना करें तो चींटियों के झुण्ड, मधुमक्खियों के समूह तथा अफ के 'रिपब्लिक' और अल्डस हक्सले के 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में वही बातें पायेंगे जो हमने वि सभ्यताओं में देखी हैं—अर्थात् जाति और विशिष्टता ।

सामाजिक कीड़े आज जिस ऊँचाई पर हैं वहाँ स्थिर हो गये और वे वहाँ लाखों वर्ष उसके पहुँच गये थे जब मनुष्य कशेरुकी (वर्टिबट) प्राणियों के औसत स्तर पर पहुँचा था । काल्पनिक आदर्श जातियों का—यूटोपियनों का सम्बन्ध है वे अचल हैं । ये पुस्तकें काल्प समाजवाद (सोशलाजी) के वर्णन के बहाने क्रियाशीलता के कार्यक्रम का वर्णन करती हैं । जिस कार्यशीलता को जाग्रत करने के लिए उनकी चेष्टा होती है वह किसी एक स्तर पर पतनोन्मुख समाज का उद्बन्धन होता है जिसका पतन किसी कृत्रिम ढंग से न रोका ज यूटोपिया में अधिक से अधिक यही दिखाया जा सकता है कि पतन किस प्रकार रोका सकता है क्योंकि किसी समाज में ऐसी पुस्तकें तभी लिखी जाती हैं जब उसके सदस्यों को प्रगति की आशा नहीं रह जाती । इसलिए—अंग्रेजी प्रतिभा को छोड़कर जिसने यह 'यूटोपिया' साहित्य को दिया है—सभी यूटोपियाओं का अभिप्राय यह होता है कि अप स्थिरता समाज को दी जाय और समाज की और बातें उससे गौण कर दी जायँ और आव कता हो तो उसके लिए उनकी बलि दे दी जाय ।

हेलेनी यूटोपिया के सम्बन्ध में यह सत्य है । इन यूटोपियों की कल्पना उस समय हुई पेलोपेनेशियाई युद्ध के पश्चात् एथेन्स में तबाही आ गयी और वहाँ नये दार्शनिकों का उ हुआ । इन विचारों की नकारात्मक स्फूर्ति एथेनी लोकतन्त्र के पूर्ण विरोध में थी । पेरिक्लीज की मृत्यु के पश्चात् वहाँ का लोकतन्त्र एथेनी संस्कृति से अलग हो गया । इस लोक के कारण एक उन्मत्त सैनिकवाद का विकास हुआ था जिसने उस संसार का विनाश किया एथेनी संस्कृति फ़लफूल रही थी, और सुकरात की वैधानिक किन्तु न्याय विरुद्ध हत्या करके असफलता को सीमा तक पहुँचा दिया और युद्ध में विजयी न हो पाया ।

युद्ध के पश्चात् एथेनी दार्शनिकों का पहला कार्य यह था कि जिन बातों ने पिछले दो सौ के एथेन्स को महान् बनाया था उन सबको अग्राह्य कर दिया । उनका मत था कि यूनान (हेल की रक्षा तभी हो सकती है जब एथिनी दर्शन और स्पार्टा की सामाजिक व्यवस्था मिलायी स्पार्टा व्यवस्था को अपने विचारों के अनुकूल बनाने में वे दो रूप में उसे सुधारना चाहते पहले तो वे उस व्यवस्था को उसकी पूर्ण सीमा तक ले जाना चाहते थे और दूसरे एथेनी दार्श के ही समान एक प्रमुख बौद्धिक वर्ग (अफलातून के 'गारजियन') की स्थापना करना चाहते जिसका कार्य इस आदर्श व्यवस्था में गौण होता

वर्गवाद को स्वीकार करके, विशेषज्ञता की ओर झुकाव के कारण और किसी भी मूल्य पर सन्तुलन स्थापित करने के जोश के कारण ईसा के पूर्व चौथी शती के एथेनी दार्शनिक ई० पू० छठी शती के स्पार्टा के राजनीतिज्ञों के विनम्र शिष्य मात्र हैं। जहाँ तक जातिवाद का या वर्गवाद की बात है अफलातून और अरस्तू के विचार जातिवाद से रँगे हुए हैं जो हमारे पश्चिमी समाज में आज भी एक दोष बना हुआ है। अफलातून ने 'कुलीन झूठ' (नोब्ल लाई) की जो दर्पभरी कल्पना की है वह मानव-मानव में उसी प्रकार के भेद उत्पन्न करने की सूक्ष्म चाल है जो विभिन्न जाति के पशुओं में होती है। अरस्तू ने दास-प्रथा का जो समर्थन किया है वह भी इसी प्रकार का है। उसका कहना है कि कुछ लोगों को प्रकृति ने ही दास बनने योग्य बनाया है, यद्यपि वह यह स्वीकार करता है कि बहुत-से जो दास हैं उन्हें स्वतन्त्र होना चाहिए और बहुत-से जो स्वतन्त्र हैं उन्हें दास होना चाहिए।

अफलातून और अरस्तू के काल्पनिक राज्य में (अफलातून के रिपब्लिक और 'लाज' और अरस्तू के 'पालिटिक्स' के अन्तिम दो खण्डों में) मानव के सुख का लक्ष्य नहीं है, समाज की दृढ़ता ही लक्ष्य है। प्लेटो कवियों पर बन्धन लगाता है जो जान पड़ता है स्पार्टा के ओवरसियर की आज्ञा है। वह 'भयंकर विचारों' पर भी नियन्त्रण लगाना चाहता है जो आजकल के कम्युनिस्ट रूस, नेशनल सोशलिष्ट जरमनी, फासिस्ट इटली और शिंतोई जापान के ढंग का नियन्त्रण है।

यूटोपियाई कार्यक्रम से यूनान का त्राण नहीं हो सका। यूनान के इतिहास की समाप्ति के पूर्व ही उसकी अनुपयोगिता प्रकट हो चुकी थी जब यूटोपियाई सिद्धान्तों के अनुसार कृत्रिम ढंग से अनेक प्रजातन्त्र स्थापित किये गये थे। जिस लोकतन्त्र की कल्पना अफलातून ने अपने 'लाज़' में क्रीट के उजाड़ द्वीप पर की थी वैसे ही सैकड़ों नगर-राज्य (सिटी स्टेट्स) बाद के चार सौ सालों में सिकन्दर ने स्थापित किये और पूर्वीय देशों में सेल्यूकस के उत्तराधिकारियों ने और रोमनों ने बर्बर प्रदेशों में स्थापित किया। इन वास्तविक यूटोपियों में यूनानी अथवा इटालियों को उपनिवेशकों के रूप में यह स्वतन्त्रता दी गयी कि हेलेनीवाद के प्रकाश कों विदेशों के अन्धकार में प्रज्वलित करें और वहाँ के निवासियों को गंदे और नीच कार्यों के लिए विवश करें। गआल के रोमन उपनिवेश के सारे क्षेत्र में सब बर्बर हीं निवासी हो सकते थे।

ईसा की दूसरी शती में जब हेलेनी जगत् भारतीय ग्रीष्म का आनन्द ले रहा था, समकालीन और बाद के लोगों को भी भ्रम हुआ कि यह स्वर्णयुग है और अफलातून की सभी आशाएँ पूर्ण हो गयीं। सन् ९६ से १८० ई० तक अनेक दार्शनिक राजा हेलेनी जगत् की गद्दी पर बैठे और इस दार्शनिक साम्राज्य में सहस्रों नगर-राज्य साथ-साथ शान्ति और एकता में जीवन-यापन कर रहे थे। किन्तु दोषों की यह निवृत्ति केवल ऊपरी थी, भीतर-भीतर कुशल नहीं था। सामाजिक परिस्थिति के परिणामस्वरूप एक सूक्ष्म नियन्त्रण का वातावरण हो गया था, जैसा सम्भवतः साम्राज्य के आदेश से भी न होता। इस नियन्त्रण के कारण ऐसी कलापूर्ण बौद्धिकता अग्रसर हो रही थी जिसे यदि अफलातून जीवित होता और देखता तो चकरा जाता कि मेरे सनकी सिद्धान्तों का क्या परिणाम हो रहा है। दूसरी शती के शान्त प्रतिष्ठित लोगों के पश्चात् तीसरी शती में कष्ट और पीड़ा का समय आया जब किसान दासों ने अपने मालिकों का विनाश किया। चौथी शती आते-आते सारी व्यवस्था उलट गयी और जो किसी समय रोमन नगर-पालिकाओं के स्वतन्त्र

शासक थे, और बच रहे थे, जंजीरों में बँधे थे। आज जो जंजीरों में 'दासों' के समान बँधे थे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि ये अफलातून के प्रतिष्ठित शासकों के वंशज हैं।

आज हम यदि इस प्रकार के यूटोपिया को देखें तो वही विशेषताएँ मिलेंगी । आल्डस ह ने 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' को व्यंगात्मक शैली में लिखा है। उनके लिखने का अभिप्राय यह था कि व्यवस्था से लोगों को घृणा हो, आकर्षण नहीं । उन्होंने यह बात मानकर पुस्तक आरम्भ की वर्तमान उद्योग-वाद (इंडस्ट्रियलिज्म) तभी चल सकता है जब लोग 'प्राकृतिक' (नेचु वर्गों में विभक्त कर दिये जायँ । जीव-विज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक कौशल से यह क्रिया पूर् जाती है । परिणामस्वरूप अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा, एपसाइलन नाम की जातियों में स बँट जाता है । ये जातियाँ भी उसी भाँति की हैं जैसी अफलातून के अनुसार अथवा उसमान के अनुसार बनी थीं । अन्तर केवल इतना था कि हक्सले की वर्णमाला के अनुसार जा कुत्ते, घोड़े, मनुष्य के रूप में विभिन्न जन्तु बनाये जाते हैं जो खानाबदोशी समाज में मनुष सहायक होते हैं । एपसाइलन जिनके सुपुर्द गन्दे काम करना है, उससे प्रसन्न है और दूसरा नहीं करना चाहते । प्रजनन की प्रयोगशाला में उन्हें वैसा ही पैदा किया और बनाया गया श्री वेल्स की पुस्तक 'द फर्स्ट मैन इन द मून' में ऐसा समाज चित्रित किया गया है । प्रत्येक ना को अपनी परिस्थिति ज्ञात है। वह उसी स्थिति में उत्पन्न होता है, और पूर्ण प्रशिक्षण और अनुशा शिक्षा तथा शल्य चिकित्सा द्वारा उसे ऐसा बना दिया जाता है कि उस स्थिति के अतिरिक्त न दूसरी बात जानता है, न सोच सकता है ।

एक दूसरी दृष्टि से सेमुएल बटलर का 'अरहोन' मनोरंजक और विशेषतापूर्ण है । वर्णन करने वाले आगमन के चार सौ साल पहले अरहोनियनों ने समझ लिया था कि नये या उपकरणों द्वारा हम दास बनाये जा रहे हैं । मनुष्य तथा यन्त्रों के मेल से एक अव-मानव (ह्यूमन) प्राणी का निर्माण हो रहा है जिस प्रकार एसकिमो का मानव-नौका अथवा खानाब का मानव-अश्व है । इसलिए उन्होंने मशीनों को नष्ट कर डाला और अपने समाज को उसी स्थिर कर दिया जहाँ वह औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ के पहले था ।

नोट : भाषा के वाहक सागर तथा स्टेप

खानाबदोशों के वर्णन के पहले हमने कहा था कि जैसे सागर बिना जोत के खेत के समान है प्रकार स्टेप में किसी स्थिर मनुष्य के लिए स्थान नहीं है। खेती की भूमि की तुलना में यात्रा तथा यातायात की अधिक सुविधा होती है । दोनों की समानता भाषा वाहक के स्पष्ट हो जाती है । यह सभी जानते हैं कि समुद्री जातियाँ जिस तट पर अथवा जिस सा जाती हैं, और जहाँ वे निवास बना लेती हैं वहाँ अपनी भाषा भी ले जाती हैं । पुराने यू नाविकों ने भूमध्य सागर के चारों ओर तट पर यूनानी भाषा प्रसारित कर दी थी । म नाविकों ने मलय परिवार की भाषाओं को एक ओर मैडेगास्कर और दूसरी ओर फिलिपीन समूह तक फैला दिया था । प्रशान्त सागर में पालिनेशियाई भाषाएँ फिजी से ईस्टर द्वीप न्यूज़ीलैंड से हवाई तक आज भी समान रूप से बोली जाती हैं यद्यपि बहुत काल बीता जब नेशियाई नौकाओं में बैठकर इस महान् सागर के आरपार आया-जाया करते थे । यह भी की बात है कि इंग्लैंड का सागरों पर शासन है इसी कारण संसार-भर में अंग्रेजी भाषा का प्रचार

इसी प्रकार स्टेप के चारों ओर उपजाऊ देशों में खानाबदोशों के आवागमन के कारण चार भाषाओं का प्रसार हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से यह प्रमाणित हो जाता है। वे चार भाषाएँ हैं—बर्बर, अरबी, तुर्की तथा इंडोयूरोपियन।

बर्बर भाषाएँ आज सहारा के खानाबदोश और सहारा के उत्तरी तथा दक्षिणी तट की स्थावर जातियाँ बोलती हैं। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में मरुभूमि के खानाबदोश इन प्रदेशों में घुसे थे जहाँ बर्बर भाषा के उत्तरी और दक्षिणी रूपों का व्यवहार होता है।

इसी प्रकार अरबी आज अरब स्टेप के उत्तरी तट और सीरिया और इराक में ही नहीं बोली जाती, इसके दक्षिणी तट इद्रामार्ट और यमन तथा पश्चिमी किनारे नील की घाटी में भी बोली जाती है। नील की घाटी से और भी पश्चिम बर्बर प्रदेश में वह चली गयी है और आज वह अतलान्तक के उत्तरी अफ्रीकी तट पर और चड झील के उत्तरी तट पर बोली जाती है।

तुर्की यूरेशियाई स्टेप के विभिन्न तटों पर फैली है और मध्य एशिया में कैसपियन सागर के पूर्वी तट से साव-नार तक और ईरानी पठार के उत्तरी कगार से अलताई पर्वत के पश्चिमी ओर तक किसी न किसी रूप में बोली जाती है।

तुर्की परिवार की भाषाओं के इस विभाजन से इंडोयूरोपियन भाषाओं के वर्तमान विभाजन का कारण मिलता है। यह भाषा दो भिन्न भौगोलिक वर्गों में बँट गयी है। एक यूरोप में रह गयी और दूसरी ईरान तथा भारत में। इस इंडो यूरोपियन भाषा का मानचित्र हमें तब समझ में आ जायेगा यदि हम इस बात को मान लें कि इसके पहले कि तुर्की भाषाओं के प्रसारकों ने वहाँ अपना निवास बनाया, इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं का प्रसार स्टेप के उन खानाबदोशों ने किया जो यूरेशियाई स्टेप पर बस गये थे। यूरोप और ईरान दोनों के किनारे यूरेशियाई स्टेप हैं और इसी जल-विहीन मार्गों द्वारा ये भाषाएँ फैली हैं। पहले के उदाहरणों और इनमें अन्तर इतना ही है कि इन भाषाओं का अब वहाँ निशान नहीं है जहाँ किसी समय इनका अस्तित्व था।

१०. सभ्यताओं के विकास की प्रकृति

(१) दो भ्रामक संकेत

जो पर्यवेक्षण हमने किया, उससे पता चला है कि सबसे अधिक प्रेरणा देने वाली कठोरतम और सुगमतम के बीच की चुनौती होती है । चुनौती में यदि तीव्रता न रही तो नहीं मिलेगी, यदि चुनौती बहुत कठोर रही तो मन को ध्वस्त कर देगी । किन्तु वह कैसी होगी जिसकी तीव्रता केवल इतनी हो कि मनुष्य सामना कर सके । पहली दृष्टि ऐसा जान पड़ता है इसी प्रकार की चुनौती से सबसे अधिक स्फूर्ति मिलती है, और उसके पोलिनेशियाइयों, एसकिमो, खानाबदोशों, उसमानलियों तथा स्पार्टनों में मिलते हैं । हमने है कि इस प्रकार की चुनौती से इनमें महान् शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है । दूसरे अध्याय में यह भी देखा कि इन लोगों को इसमें दण्ड भी मिला कि इनकी सभ्यता अविकसित रह इस कारण जब हम और ध्यान से देखते हैं तब हमें यह पता चलता है कि चुनौती की अधि तीव्रता हम उसे नहीं मान सकते जिसमें केवल उसका सामना ही कर लिया जाय चुनौती में ऐसा भी बल होना चाहिए कि प्रेरणा स्थगित न हो जाय, आगे भी बढ़ती रहे। संघर्ष के बाद एक कदम और आगे बढ़े। एक समस्या का हल करने के बाद दूसरी समस्या उ हो और उसका हल हो । यिन से यांग की ओर प्रगति होती रहे । केवल ऐसी गति, आन्दोलन कोसमाप्त करके सन्तुलन उपस्थित कर दे पर्याप्त नहीं है, उत्पत्ति के साथ विका होना चाहिए । यह गति सदा लय के रूप में होनी चाहिए । जिस समाज को चुनौती मिले सामना करे, सन्तुलन स्थापित करे, सन्तुलन बिगड़े, फिर नयी चुनौती आये, फिर उसका हो, सन्तुलन हो, सन्तुलन बिगड़े और चुनौती आये, अनन्त काल तक ऐसा ही होता रहे ।

इस प्रकार के अ-सन्तुलनों की श्रेणी हमें हेलेनी सभ्यता में उसकी उत्पत्ति से ई० पू० शती तक में, जब उसकी चरम सीमा थी, मिलती है ।

नवीन हेलेनी सभ्यता को पहली चुनौती अव्यवस्था और अन्धकार की थी । मिनोई समा विघटन का परिणाम केवल सामाजिक मलवा था जिनमें बचे-खुचे मिनोई और बेचरबार के ए और डोरियन थे । क्या पुरानी सभ्यता नये बर्बरों के तूफानी आक्रमणों में बह जायगी ? एकियाई मैदानों पर उसके चारों ओर के पहाड़ों का शासन हो जायगा ? क्या मैदान के प्रिय किसानों को पहाड़ों के लुटेरों, और डाकुओं की दया पर जीना होगा ?

पहली चुनौती के सामना में विजय हुई । यह निश्चित हुआ कि यूनान नगरों का होगा, ग्रामों का नहीं । यहाँ खेती की व्यवस्था होगी, चराई की नहीं, व्यवस्था का देश दुर्व्यवस्था का नहीं । किन्तु पहली चुनौती की सफलता से ही उन्हें दूसरी चुनौती का करना पड़ा । विजय के बाद शान्तिपूर्ण खेती आरम्भ हुई, मैदानों में खेती से जनसंख्या

जनसंख्या का यह वेग (मोमेंटम) कम नहीं हुआ और जनसंख्या इतनी बढ़ गयी कि हेलेनी प्रदेश सँभालने में समर्थ नहीं हो सका। पहली चुनौती की सफलता ने दूसरी जनसंख्या वाली चुनौती का भी उसी सफलता से सामना किया जैसे पहली का।

अति-जनसंख्या की समस्या के सुलझाने के कई उपाय निकाले गये। सबसे सरल और स्पष्ट उपाय का पहले प्रयोग किया गया। उससे क्रमागत ह्रास होने लगा। उसके पश्चात् एक कठिन और असाधारण प्रयोग किया गया और इस बार समस्या सुलझ गयी।

पहली बार जो ढंग अपनाया गया वे वही संस्थाएँ तथा तकनीक थीं जिसका प्रयोग यूनान के मैदान में रहने वालों ने अपने पड़ोसी पर्वतीय लोगों पर किया था जिससे उनका शासन पर्वतीय लोगों पर स्थापित हो और सागर पार नये प्रदेशों पर विजय प्राप्त हो। सशस्त्र यूनानी सैनिकों के व्यूह और नगर राज्य के यन्त्र की सहायता से हेलेनी नेताओं के गिरोह ने इटली तथा कोनेस के बर्बरों को हराकर इटली के दक्षिण में महान् यूनान की स्थापना की। सिसिली में बर्बर सिकेलों को हराकर नवीन पेलोपोनेस का निर्माण किया। सीबियनों को पराजित करके साइरेनेका में नये हेलेनी पेन्टापोलिस (पाँच नगरों का एक समूह) बनाया, और बर्बर थ्रेसियनों को पराजित करके एजियन सागर के उत्तर तट पर कालसिडिसे की स्थापना की। परन्तु इस विजय के परिणाम-स्वरूप ही विजेता को नयी चुनौती का सामना करना पड़ा। क्योंकि इन्होंने जो कुछ किया था वह भूमध्यसागरीय देशों के लिए स्वयं एक चुनौती थी और अन्त में अ-यूनानी लोगों ने इस यूनानी विस्तार को रोक दिया। उन्होंने कुछ तो हेलेनी अस्त्र-शस्त्र तथा उन्हीं की कला लेकर उनका आक्रमण रोका और कुछ ने अपनी शक्ति को संचय किया जिसका सामना हेलेनी नहीं कर सके। इस प्रकार हेलेनी विस्तार जो ई० पू० आठवीं शती में आरम्भ हुआ था छठी शती में स्थगित हो गया। फिर भी अति-जनसंख्या की चुनौती हेलेनी समाज में रह गयी।

इतिहास की इस विपदा में एथेन्स ने नयी खोज की। एथेन्स ने जो 'यूनान का शिक्षक' बना था, विस्तार की प्रणाली छोड़कर ज्ञान तथा शिक्षण से हेलेनी समाज को, गहनता की ओर ले चला। इस महत्वपूर्ण परिवर्तन के सम्बन्ध में इस अध्याय में आगे बताया जायगा। इस एथेनी संवर्ष के बारे में पहले (पृष्ठ ४) में कहा जा चुका है, उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

वृद्धि की इस लय को वाल्ट व्हिटमैन ने समझा था। उसने लिखा था : 'वस्तुओं के मूल में यह निहित है कि किसी सफलता में, चाहे वह कैसी भी हो, आगे और भी संघर्ष की आवश्यकता होती है।' यह भाव निराशापूर्ण भाषा में विक्टोरियन काल के कवि विलियम मोरिस ने प्रकट किया जब उसने लिखा, 'मैं विचार करता हूँ कि किस प्रकार लोग लड़ते हैं और पराजित होते हैं। और जिस बात के लिए लोग लड़ते हैं वह उनके पराजय के बावजूद प्राप्त होती है। जब वह प्राप्त होती है तब पता चलता है कि जिस बात के लिए लोग लड़ रहे थे वह यह नहीं है। दूसरे लोग दूसरे नाम से उसी बात के लिए फिर लड़ते हैं।'

सभ्यताओं का ऐसी सजीवता द्वारा विकास होता है जो चुनौती से संघर्ष और संघर्ष से फिर चुनौती की ओर ले जाती है। इसके बाहरी और आन्तरिक दोनों रूप होते हैं। ब्रह्माण्ड में

(मैक्रोकाज्म) में जो विकास होता है वह क्रमशः बाहरी विजय की प्राप्ति द्वारा होता है (माइकाज्म) पर का विकास क्रमशः आत्मनिर्णय अथवा आत्माभिव्यक्ति द्वारा हो इन दोनों अभिव्यक्तियों में सजीवता की प्रगति का सिद्धान्त सम्भवतः मिलता है। इ दृष्टि से दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों की परीक्षा करेंगे।

पहले बाहरी परिस्थिति की क्रमागत विजय के विचार के लिए, सरलता के लिए, ह परिस्थिति को दो भागों में विभाजित करेंगे। एक तो मानवी परिस्थिति। प्रत्येक मानव को दूसरे मानव समाज के सम्पर्क में आना पड़ता है और ऐसे भौतिक वातावरण का सामना पड़ता है जो मानव परिस्थिति से भिन्न है। मानवी परिस्थिति के क्रमशः विजय का अ कि समाज अपनी भौगोलिक सीमा को बढ़ाता जाय, भौगोलिक परिस्थिति पर विजय होगा कि समाज तकनीकों में उन्नति करता रहे। हम पहले प्रथम बात पर अर्थात् भौ विस्तार पर विचार करेंगे और देखेंगे कि सभ्यता के विकास की परीक्षा के लिए कहाँ त उचित कसौटी है।

हमारे पाठक हमसे इस बात पर झगड़ा नहीं करेंगे यदि बिना बहुत प्रमाणों के और हम यह कहें कि भौगोलिक विस्तार सभ्यता के वास्तविक विकास का माप नहीं है कभी-क देखते हैं कि भौगोलिक विस्तार और सभ्यता के विकास का समय एक ही होता है जैसा सन्दर्भ में हेलेनी विस्तार के सम्बन्ध में बताया गया है। कभी-कभी भौगोलिक विस्तार वास्तविक पतन साथ-साथ होते हैं और विघटन भी साथ-साथ होता है। सार्वभौम रा पतन और विघटन के लिए भौगोलिक विस्तार और 'संकट काल' दो कदम हैं। इसका ढूँढ़ने के लिए दूर नहीं जाना होगा। संकट-काल से सैन्यवाद का जन्म होता है, जो मनु आत्मा को पारस्परिक विनाश की ओर ले जाता है, और सबसे सफल सैन्यवादी साधारणतः भौम राज्य का संस्थापक होता है। भौगोलिक विस्तार इस सैन्यवाद का परिणाम होता यह उस समय होता है जब वीर लोग अपने ही समाज के बीच के प्रतिद्वन्द्वियों पर आक्रमण छोड़कर पड़ोस के समाज पर आक्रमण करते हैं।

इस अध्याय में हम आगे देखेंगे कि सैन्यवाद विगत चार-पाँच हज़ार वर्षों में सभ्यता के का सबसे साधारण कारण रहा है। आज तक के इतिहास में ऐसा ही मिलता है कि सभ्यताओं का पतन इसी प्रकार हुआ है। सैन्यवाद के कारण समाज के स्थानीय राज्य (स्टेट्स) एक दूसरे से टकरा कर आपसी युद्ध में लड़कर नष्ट हो जाते हैं। आत्म विनाश प्रक्रिया में सारा सामाजिक ढाँचा इन पिशाचों (मोलोक[1]) के लिए ईंधन का काम कर युद्ध की एक कला की प्रगति शान्ति की विभिन्न कलाओं को विनाश करके होती है। इसके कि सैन्यवाद के सब समर्थक नष्ट हो जायँ इस हत्या की कला में वे इतने निपुण हो जाते हैं कि वे पारस्परिक विनाश से क्षण भर के लिए रुक जायँ और दूसरे समाज पर आक्रमण करें तो सबका विनाश कर डालते हैं।

---

[1] कनअरनियों का वह देवता जिसके आगे बच्चों की बलि दी जाती थी।—अनुवाद

हेलेनी इतिहास के अध्ययन से ऐसा संकेत मिल सकता है कि जिस परिणाम को हमने अस्वीकार कर दिया है उसी का विपरीत ठीक है। हम यह देख चुके हैं कि जब हेलेनी समाज को अति-जनसंख्या की चुनौती मिली तब उसने भौगोलिक विस्तार द्वारा उसका सामना किया और दो सौ साल बाद। सम्भवतः (७५०–५५० ई०पू०) उसके चारों ओर की अ-हेलेनी शक्तियों ने इस विस्तार को रोक दिया। इसके पश्चात् हेलेनी समाज रक्षात्मक (डिफेंसिव) हो गया। पूरब की ओर इसके घर में ही परशियनों ने और पश्चिम से नये विजित प्रदेश में कार्थेजिनियनों ने आक्रमण कर दिया। इस काल में जैसा कि थ्यूसिडाइड्स ने देखा था, 'यूनान चारों ओर से बहुत दिनों तक दबाया जा रहा था।' और हेरोडोट्स ने देखा था कि, 'यूनान पर इतनी अधिक विपत्ति आयी जितनी इसके पहले बीस पीढ़ियों में नहीं आयी थी।' आज का पाठक यह नहीं अनुभव कर सकता कि इन दो यूनानी इतिहासकारों ने जिन विषादपूर्ण वाक्यों में इस काल का वर्णन किया है वही बाद की पीढ़ी के लिए हेलेनी सभ्यता का मूर्धन्य काल था। यह वही युग था जब हेलेनी प्रतिभा ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नयी बातों का निर्माण किया जिनके ही कारण हेलेनीवाद अमर है। हेरोडोट्स और थ्यूसिडाइड्स ने हेलेनी सर्जन के इस युग को इस दृष्टि से इसलिए देखा कि यूनान का भौगोलिक विस्तार रुक गया था। किन्तु इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि हेलेनी सभ्यता में इतनी सजीवता न कभी पहले थी, न बाद में हुई। और यदि ये इतिहासकार किसी प्रकार ऐसी असाधारण जीवनी पा जाते, इस सजीवता का परिणाम देख पाते तो वह देखते एथेनो-पोलिपेनेशियाई युद्ध के अवरोध के पश्चात् ही नवीन रूप से भौगोलिक विस्तार आरम्भ हुआ। यह विस्तार सिकन्दर द्वारा स्थल पर आरम्भ हुआ जो यूनान के सागरी विस्तार से कहीं बड़ा था। सिकन्दर ने जब हेलेस पार किया उसके बाद दो शतियों में हेलेनीवाद एशिया और नील नदी की घाटी में फैल गया और सीरियाई, मिस्री, बैबिलोनी, भारतीय सभी सभ्यताओं पर, जो सामने आयीं, विजय प्राप्त की। उसके दो सौ साल बाद रोमनों की छत्र-छाया में ये यूरोप तथा उत्तर-पश्चिम अफ्रीका की बर्बर पृष्ठभूमि में फैलते जा रहे थे। और ये ही वे शक्तियाँ थीं जब हेलेनी सभ्यता का विघटन हो रहा था।

सभी सभ्यताओं के इतिहास से यह उदाहरण मिलता है कि भौगोलिक विस्तार के साथ-साथ गुणों का ह्रास होता है। हम केवल दो उदाहरण लेंगे।

मिनोई संस्कृति का सबसे अधिक विस्तार उस समय हुआ जिसे हमारे पुरातत्त्ववेत्ता 'अन्तिम' (तीसरी मिनोई) कहते हैं। ऐसा युग उससे पहले नहीं आया जब १४२५ ई० पू० के लगभग क्नासस का घेरा हुआ था। अर्थात् उस संकट काल के बाद ही जब 'मिनोस के सागर तन्त्र' का सार्वभौम राज्य नष्ट हो गया और अन्तर्काल था, जब मिनोई समाज का अन्त हो रहा था। जितनी वस्तुएँ इस अन्तिम मिनोई काल की, तीसरी अवस्था की, मिलती हैं उन सब पर पतन का प्रमाण अंकित है और उन्हीं से यह भी पता लगता है कि मिनोई वस्तुएँ विस्तार से फैली हुई थीं। ऐसा जान पड़ता है कि विस्तार का मूल्य गुणों के ह्रास में चुकाना पड़ा।

सुदूर पूर्व समाज के पूर्वज चीनी (सिनिक) समाज का भी वही हाल है। चीनी सभ्यता के विकास के समय इसका विस्तार हांगहो नदी के आगे नहीं था। चीनी संकट काल में 'जब विभिन्न राज्य एक दूसरे से लड़ रहे थे' जैसा कि चीनी कहते हैं चीनी जगत् दक्षिण में यांग्त्सी बेसिन तक और दूसरी ओर पीहो के मैदान तक फैल गया था। चीनी सार्वभौम राज्य के प्रतिष्ठापक त्सिन

शी ह्वांगटी ने अपनी राजनीतिक सीमा महान् दीवार (ग्रेट वाल) तक बढ़ायी थी। इ पश्चात् हैन परिवार ने आकर त्सिन शी की सीमा को और दक्षिण तक बढ़ाया। इस प्र चीनी इतिहास में भौगोलिक विस्तार तथा सामाजिक विघटन समकालीन है ।

अन्त में हम अपनी पश्चिमी सभ्यता के अपूर्ण इतिहास की ओर दृष्टि डालें और उसके प्राचीन विस्तार की ओर ध्यान दें जो अविकसित सुदूर पश्चिमी और स्कैण्डिनेवियाई सभ्यत को पराजित करके हुआ था, तथा जो उत्तरी यूरोपीय बर्बरों पर विजय प्राप्त करके राइन बिसचूला तक विस्तृत था, जो यूरेशियाई खानाबदोशों के हंगेरियन अग्रिम गारद (एडवांस ग को हराकर आल्प्स से कारपेथियन तक फैला और जो भूमध्यसागर के बेसिन के कोने-कों जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य से नील के तथा डान के मुहाने तक विस्तृत था और अल्पका विजय तथा व्यापारिक विस्तार की पताका फहराता रहा, जिसका उन्होंने 'द क्रूसेड' का नाप रखा था। इन सबके सम्बन्ध में हम सहमत होंगे कि प्राचीन यूनानी सागरी विस्तार के इन भौगोलिक विस्तारों के साथ अथवा उसके बाद सभ्यता की वास्तविक उन्नति नहीं किन्तु जब हम इस युग में इस विश्वव्यापी विस्तार की ओर ध्यान देते हैं तब हमें रुकना पड़ और हम आश्चर्य में पड़ जाते हैं। इस प्रश्न का उत्तर, हमारी पीढ़ी में कोई बुद्धिमान् म सन्तोषजनक नहीं दे सकता ।

अब हम अपने विषय के दूसरे विभाजन को देखेंगे कि यदि भौतिक परिस्थिति पर तकनीकों द्वारा क्रमशः विजय प्राप्त की जाय तो क्या सभ्यता के विकास का वास्तविक माप मिलता है ? क्या तकनीक की उन्नति में तथा सामाजिक उन्नति और विकास में कोई सम्बन्ध

अद्यतन पुरातत्त्वविदों ने जो वर्गीकरण किया है उससे इस प्रकार का सम्बन्ध सिद्ध मान जाता है। यह मान लिया जाता है कि क्रमशः प्रत्येक व्यवस्था में तकनीकी उन्नति सभ्यता विकास की सूचक है । इस विचारधारा में मानवी उन्नति का 'युगों' का क्रम बताया गया है उनका तकनीकी नाम भी रखा गया है। पुरापाषाणिक युग (पेलिओलिथिक एज) नव-पा युग (नियोलिथिक एज), ताम्र-पाषाण-युग (कालकोलिथिक एज), ताम्र-युग, कांस्य-युग, युग और इसमें हम यन्त्र-युग जोड़ सकते हैं जिसमें रहने का हमें सौभाग्य प्राप्त है । यद्यपि वर्गीकरण का बहुत प्रचलन है, हमें ध्यान से इस बात की परीक्षा करनी होगी कि क्या यह स कि प्रत्येक युग सभ्यता के विकास की अवस्था का द्योतक है । आनुभविक परीक्षा के बिना अनेक कारणों से प्रागनुभव (आ प्रायोरो) से हम कह सकते हैं कि इसमें सन्देह है ।

सन्देह का पहला कारण उसकी लोकप्रियता है क्योंकि वह ऐसे समाज की ओर हमारे वि को ले जाता जिसके सम्बन्ध में आधुनिक तकनीकी सफलताओं के कारण हमें मोह हो और इस कारण एक धारणा बन गयी है । यह लोकप्रियता उस तथ्य का उदाहरण है, जि जिक्र हमने अपने अध्ययन के पहले अध्याय में किया था कि प्रत्येक पीढ़ी प्राचीन इतिहास के स में जो धारणा बनाती है वह उसके अपने अल्पकालिक विचारों की व्यवस्था के अनुसार होती

इस तकनीकी वर्गीकरण को सन्देह से देखने का एक दूसरा कारण यह है कि यह उस प्र का भी स्पष्ट उदाहरण है कि विद्यार्थी उस सामग्री पर ही निर्भर हो जाता है जो संयोग से हाथों पड़ जाती है । वैज्ञानिक दृष्टि से यह संयोग मात्र है कि 'प्रागैतिहासिक' मानव जिन

का प्रयोग करता था वे आज प्राप्य हों और उसकी मनोवैज्ञानिक कलाएँ उसके विचार और उसकी संस्थाएँ नष्ट हो गयी हों । वास्तविक बात तो यह है कि जब मानसिक क्रियाएँ काम करती रहती हैं तब मनुष्य के जीवन में भौतिक साधनों से अधिक उनका योगदान होता है । प्रयोग में लायी हुई भौतिक वस्तुओं का अवशिष्ट रह जाता है और मानसिक धारणाओं के प्रयोग का चिह्न नहीं रह जाता और पुरातत्त्ववेत्ता मनुष्य उन अवशिष्ट चिह्नों का प्रयोग करता है और उससे मानव इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है तो पुरातत्त्ववेत्ता मनुष्य (होमो सेपियन्स) को केवल निर्माता के रूप में ही देखता है । हम प्रमाणों का अध्ययन करेंगे तो उस समय के तकनीकी विकास के उदाहरण पायेंगे जब सभ्यता स्थिर थी या अवनति की ओर जा रही थी और हमें इसके विपरीत भी उदाहरण मिलेंगे जब तकनीकी विकास स्थिर रहता है और सभ्यता की उन्नति होती है या अवनति ।

उदाहरण के लिएँ सभी अविकसित सभ्यताओं ने उच्च तकनीकी उन्नति की है । पोलिनेशियाइयों ने नौ-चालन में विशिष्टता प्राप्त की, एसकिमो ने मछुआ बनने में, स्पार्टनों ने सैनिकता में, खानाबदोशों ने घोड़ों को वश करने में, और उसमानलियों ने मनुष्यों को साधने में । ये सभी उदाहरण ऐसे हैं जहाँ सभ्यता तो अविकसित रह गयी और तकनीक उन्नत हुई ।

एक उदाहरण उस सभ्यता का जिसका विकास अवरुद्ध हो गया और तकनीक विकसित हुई यूरोप के अपर पुरा-पाषाणिक युग और निचले नव पाषाण-युग की तुलना करने से प्राप्त होता है । क्योंकि वह पहले का उत्तराधिकारी है । अपर-पुरापाषाणिक युग वालों को अनगढ़ यन्त्रों से ही सन्तोष हो गया था । किन्तु उनमें कलात्मक आत्मबोध था और उन्होंने उसकी अभिव्यक्ति चित्रों में की थी । पुरा-पाषाणिक युग वालों ने, जो गुफाओं की दीवारों पर कोयले से पशुओं के चित्र बनाये हैं, उन्हें देखकर आश्चर्य होता है । निचले नव पाषाण-युग के समाज ने अपने अस्त्र-शस्त्रों को माँज और घिसकर बहुत तीव्र बनाया और पुरा-पाषाणिक युग के मानव के विरुद्ध उसका प्रयोग किया जिसमें वह चित्रकार मानव-पराजित हो गया और वह निर्माता मानव (हामो फेबर) विजयी हुआ । इस परिवर्तन से स्पष्ट है कि तकनीकी विकास तो हुआ किन्तु सभ्यता अवनत हो रही, क्योंकि अपर-पुरापाषाणिक मानव की कला लुप्त हो गयी ।

और भी । माया सभ्यता तकनीकी दृष्टि से प्रस्तर-युग से आगे नहीं बढ़ी, जब मेक्सिको और यूकेटी सभ्यताओं ने स्पेनी विजय के पाँच सौ साल पहले विभिन्न धातुओं के प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर ली थी । किन्तु इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि माया समाज की सम्पन्नता इन दोनों समाजों की सभ्यताओं से जो केवल दूसरी श्रेणी की थी, कहीं अधिक विकसित थी ।

अन्तिम हेलेनी इतिहासकार सिसेरिया का प्रोकोपियस सम्राट् जसटीनियन के उन युद्धों के इतिहास की भूमिका में, जिन युद्धों के कारण हेलेनी समाज का विनाश आरम्भ हुआ, लिखता है कि मेरे नायक का जीवन उसके पूर्वजों से अधिक मनोरंजक है क्योंकि उसके युग की सैनिक तकनीक इसके पहले के युग के किसी भी सैनिक तकनीक से अच्छी थी । वास्तव में यदि हेलेनी इतिहास की और बातों से उनके सैनिक तकनीक को अलग कर दें तो आरम्भ से अन्त तक, सभ्यता के विकास से अवनति तक भी, हम तकनीक की उन्नति ही पायेंगे और हम यह भी देखेंगे कि तकनीक की उन्नति का हर कदम सभ्यता के लिए भयावह सिद्ध हुआ है ।

पहले स्पार्टी व्यूह को लीजिए । पहली महत्त्वपूर्ण हेलेनी उन्नति, जिसका वर्णन मिल वह है दूसरा स्पार्टी-मेसेनियाई युद्ध जिसके परिणामस्वरूप स्पार्टा की सभ्यता असमय हो गयी, दूसरा विशेष सुधार था हेलेनी पैदल सेना को दो उग्र भागों में विभाजित करना, एक डोनियाई जत्था और दूसरी एथेनी हलकी पैदल सेना । मैसेडोनियाई जत्था एकहरे भालों के दोनों हाथों में दो भालों से लैस था । यह अपने पहले के स्पार्टी सेना से आक्रमण में अधिक था किन्तु साथ ही साथ बोझिल भी था और यदि एक बार पंक्ति बिगड़ गयी तो पराजित की अधिक सम्भावना थी । यह युद्ध क्षेत्र में तभी जा सकता था जब इसके पार्श्व में रक्षा के पेल्टास्ट रहती थी, जो विशेष प्रकार की हलकी पैदल सेना (लाइट इन्फैंट्री) थी जिसे सा सेना से अलग निकाल कर विशेष ढंग से छुट-पुट मुठभेड़ के लिए प्रशिक्षित किया जाता यह दूसरा सुधार सौ वर्षों के घमासान युद्ध का परिणाम था जो एथेनो-पेलोपोने संग्रामों से आरम्भ हुआ और किरोनिया में (४३१–३३८ ई० पू०) थीबनों तथा एथीनि विजय प्राप्त करके समाप्त हुआ । हेलेनी सभ्यता का पहला पतन यह था । दूसरा महत्त्व सुधार रोमनों ने किया था जब उन्होंने अपनी सेना में हल्की पैदल सेना तथा व्यूह के गु ग्रहण कर लिया और उनके दोषों से सावधान हो गये । इस सेना के सैनिक के पास दो फेंकने भाले और एक तलवार रहती थी । रणक्षेत्र में ये दो तरंगों के रूप में आक्रमण करते तीसरी तरंग पुराने व्यूह के ढंग पर सज्जित रिजर्व मे रहती थी । यह तीसरा सुधार उस भयंकर युद्ध का परिणाम था जो २२० ई० पू० में हेनिबली लड़ाइयों से आरम्भ हुआ और ई० पू० में तीसरे रोमानो-मैसेडोनियाई संग्राम से समाप्त हुआ । चौथा तथा अन्तिम सुधार सैन्य दल में मैरियस ने आरम्भ किया और सीज़र ने पूर्ण किया । यह एक शती के रोमन वि और घरेलू युद्धों का परिणाम था और जिसका अन्त रोमन साम्राज्य के रूप में हेलेनी सा राज्य था । जसटीनियन का कवच सैनिक, जो अस्त्र सज्जित घोड़े पर अस्त्रों से सज्जित के रूप में था और जिसे प्रोकोपियस पाठकों के सम्मुख हेलेनी सैनिक तकनीक के विशेष सैनि रूप में बताता है, हेलेनी सैनिक विकास की श्रेणी में कोई नयी वस्तु नहीं है । यह कवच हेलेनी समाज के पतनोन्मुख पीढ़ी द्वारा ईरानी समकालीन विरोधियों का रूपान्तर था। ईरानी सैनिकों की शक्ति की जानकारी रोम को तब हुई जब उन्होंने ५५ ई० पू० में कहीं में को हराया था ।

युद्ध की कला ही केवल वह तकनीक नहीं है जो समाज की सभ्यता से विपरीत चल आइए, हम ऐसी कला को लें जो युद्ध की कला से बहुत दूर है । खेती की तकनीक शान्ति के की सर्वोच्च कला कही जाती है । यदि हम हेलेनी इतिहास को देखें तो पता चलेगा कि इस की उन्नति के साथ-साथ सभ्यता का ह्रास होता रहा है ।

आरम्भ में ही हमें दूसरी कथा मिलती है । हेलेनी युद्ध कला का पहला सुधार उस के विकास को अवरुद्ध करके हुआ जिस समाज ने उसका आविष्कार किया था । उसके हेलेनी कृषि में जो उन्नति हुई वह सुखदायी थी । जब सोलन की सलाह पर अटिका ने कृषि की व्यवस्था बन्द कर निर्यात के लिए विशिष्ट खेती आरम्भ की, तकनीकी उन्नति हुई साथ-साथ एटिकी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सजीवता और शक्ति का आरम्भ हो गया । इस कहानी का दूसरा अध्याय दुखदायी है । इस तकनीक का दूसरा कदम यह हुआ कि

श्रम के बलपर अधिक मात्रा में उत्पादन होने लगा। यह कार्य पहले सिसिली के उपनिवेशिक समुदायों में आरम्भ हुआ और सम्भवतः पहले-पहल एग्रिजेन्टम में । क्योंकि सिसिली वाले यूनानियों को निकट के बर्बर प्रदेशों में शराब और तेल का बढ़ता हुआ बाजार मिला । यहाँ तकनीकी प्रगति के साथ भयंकर सामाजिक बुराई उपस्थित हो गयी । क्योंकि नयी खेती वाली दासता प्रथा घरवाली दासता प्रथा से अधिक दोषपूर्ण थी । नैतिक दृष्टि से तथा संख्या की भी दृष्टि से यह दोष बड़ा था । व्यक्तित्वहीन और अमानुषिक तो था ही, बहुत बड़ी मात्रा में भी था । फैलते-फैलते यह सिसिली के यूनानी समुदाय से दक्षिणी इटली के बहुत बड़े क्षेत्र तक में फैल गया । यह क्षेत्र हेनिबली युद्ध के कारण उजाड़ और परित्यक्त हो गया था । जहाँ-जहाँ यह प्रथा फैली धरती की उपज जो इसने बढ़ायी जिससे पूँजी वालों को लाभ हुआ, किन्तु धरती सामाजिक दृष्टि से बंजर हो गयी । क्योंकि जहाँ-जहाँ दास खेती करने लगे किसानों को उन्होंने निकाल बाहर किया और उन्हें कंगाल बना दिया जिस प्रकार खोटा सिक्का खरे सिक्के को बाजार से बाहर कर देता है । इसका सामाजिक परिणाम यह हुआ कि गाँव निर्जन हो गये और नगरों में परोपजीवी जनता का जन्म हुआ विशेषतः रोम में । ग्राची से लेकर उसके बाद तक के कितने ही सुधारकों ने रोमन संसार को इस दोष से मुक्त करना चाहा जो कृषि की तकनीकी प्रगति के कारण आ गया था किन्तु असफल रहे । कृषि-दासता की प्रथा तब तक रही जब मुद्रा की आर्थिक व्यवस्था के बैठ जाने से वह अपने से नष्ट हो गयी । क्योंकि इसी मुद्रा पर उसका लाभ निर्भर था । यह आर्थिक विनाश उस साधारण सामाजिक विध्वंस का एक अंग था जो ईसा की तीसरी शती के बाद आरम्भ हुआ । और विध्वंस एक अंश में उसी कृषि सम्बन्धी रोग का परिणाम था जो उसके पूर्व चार सौ सालों से रोमन समाज के शरीर को खाये चला जा रहा था । इस प्रकार इस सामाजिक कैंसर का अन्त उस समय हुआ जब वह शरीर समाप्त हो गया जिसमें कैंसर उत्पन्न हुआ था ।

इंगलैंड में सूती कपड़ों के बनाने की तकनीक में जो उन्नति हुई उसके कारण अमरीकी संघ में रुई वाले प्रदेशों में दासों की प्रथा का भी विकास हुआ । यह भी पहले ही समान उदाहरण है । अमरीकी गृह-युद्ध ने जहाँ तक दासों की बात थी उस कैंसर को तो समाप्त किया किन्तु उससे वह दोष दूर नहीं हो सका जो स्वतन्त्र हुए नेग्रो के उस अमरीकी समाज के बीच आ जाने के कारण उत्पन्न हो गया था, जो यूरोपीय वंशज थे ।

तकनीकी उन्नति और सभ्यता की प्रगति का सह-सम्बन्ध (को-रिलेशन) नहीं रहा है । यह बात उन सब उदाहरणों से स्पष्ट है जहाँ तकनीक की तो उन्नति हो गयी किन्तु सभ्यता स्थिर रही या पुरोगामी हो गयी । यही बात उन अवस्थाओं में भी हुई जहाँ तकनीक तो स्थिर रही और सभ्यता या तो विकसित होती रही या पीछे जाती रही ।

उदाहरण के लिए यूरोप में अन्तिम तथा अपर पुरापाषाणिक युग में मानव ने अच्छी प्रगति की ।

"अपर-पुरापाषाणिक युग की संस्कृति चौथे हिमनदीय (ग्लेशियल) काल के अन्त में सम्बन्धित है । नानडरताल (नियानडरताल) मानव के अवशेष के स्थान पर हमें विभिन्न प्रकार के अवशेष मिलते हैं जिनसे नानडरताल मानव से कोई सम्बन्ध नहीं है । इसके विपरीत वे लगभग आधुनिक मानव के निकट दिखाई पड़ते हैं । जब हम यूरोप के इस युग के जीवाश्मों (फासिल) को देखते

हैं तब एकाएक हमें ऐसा जान पड़ता है कि जहाँ तक शारीरिक रचना का सम्बन्ध है हम निक मानव को देख रहे हैं।"[१]

पुरापाषाणिक युग के मध्य मानव के प्रकार का इस ढंग से परिवर्तन ऐसी घटना है जो मा के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि उस काल में उप-मानव मानव के रूप में बदल और उप-मानव के मानव के रूप में बदलने से आज तक इतना समय बीत गया फिर भी अतिमानव (सुपरमैन) नहीं बन सका। इस तुलना से हमें उस मानसिक प्रगति के परि पता चलता है जब नानडरताल मानव उन्नत करके आधुनिक मानव बन गया। प्र मानसिक क्रान्ति के साथ कोई तकनीकी क्रान्ति नहीं हुई। इस प्रकार तकनीकी वर्गीक अनुसार अपर-पुरापाषाणिक युग की गुफाओं के जिन चित्रों की हम प्रशंसा करते हैं उ भ्रमवश लुप्त कड़ी (मिसिंग लिंक) की बनायी समझते हैं जबकि वास्तव में, बुद्धि, आका मानवता के सभी विशेष लक्षणों से हम यह कह सकते हैं कि श्रेष्ठ पुरापाषाणयुगीन आ और निचले पुरा-पाषाणयुगीन मानव में उतना ही अन्तर है जितना उसमें और हमारे मानव में।

इन उदाहरणों के, जिनमें तकनीक स्थिर रही है और समाज प्रगतिशील रहा है, वि भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ तकनीक स्थिर रही है और समाज का पतन हुआ है। उदाह लिए लोहे के प्रयोग की तकनीक जिसे एजियाई संसार ने पहले पहल उस समय आरम्भ था जब महान् सामाजिक पतन हो रहा था और मिनोई समाज का विघटन हो रहा था, स्थिर न उन्नति हो रही थी न अवनति, और हेलेनी समाज अपने पूर्ववर्ती मिनोई समाज की भाँति टित हो रहा था। हमारे पश्चिमी समाज ने लोहे के प्रयोग की तकनीक रोमन संसार से किसी त्रुटि के पाया था। लैटिन वर्णमाला और यूनानी गणित भी इसी प्रकार वहीं से मिला किन्तु सामाजिक विप्लव हो गया था। हेलेनी समाज छिन्न-भिन्न हो गया और एक अन्त उपस्थित हुआ जिससे अन्त में पश्चिमी सभ्यता का जन्म हुआ। किन्तु इन तीनों तकनी किसी प्रकार का व्यवधान नहीं उपस्थित हुआ।

(२) आत्म-निर्णय की ओर प्रगति

भौगोलिक विस्तार की भाँति ही तकनीकी प्रगति से हमको ऐसा सिद्धान्त नहीं मिला हम सभ्यताओं के विकास का मापदण्ड बना सकें, किन्तु उससे एक सिद्धान्त मिलता है अनुसार तकनीकी उन्नति होती है उसे हम उत्तरोत्तर सरलता का नियम कह सकते हैं। भरकम भाप के इंजन और विस्तृत 'रेल पथ' के स्थान पर सुविधाजनक अन्तर्दहन इंजन (इं कम्बस्चन इंजन) आ गये जो सड़कों पर रेलगाड़ी की गति से चलते हैं और उसी स्वतन्त्र चलते जैसे कोई पैदल चलता है। तार की जगह बेतार से समाचार जाने लगे। चीनी और जटिल लिपि के स्थान पर स्पष्ट और सरल लैटिन लिपि आ गयी। भाषा में भी इसी सरलता की ओर झुकाव है। विभक्तिमय रूप को छोड़कर सहायक शब्दों का प्रयोग होने है जैसा इंडो यूरोपीय परिवार की भाषाओं के इतिहास से ज्ञात होता है। इस परिवार की प्र

---

[१] ए० एम० कार—सांडर्स : द पापुलेशन प्राबलेम, पृ० ११६–१७।

तम भाषा संस्कृत में विभक्तियों की भरमार है। और उपसर्गों की कमी है। इसके विपरीत आधुनिक अंग्रेजी में विभक्तियाँ सब हटा दी गयी हैं उनका स्थान प्रिपोजिशनों ने और सहायक क्रियाओं ने ले लिया है। इन दोनों छोरों के बीच क्लासिकी यूनानी भाषा है। आधुनिक पश्चिमी संसार में वेशभूषा भी सरल हो गयी है। एलिजाबेथी काल के बर्बर उलझावपूर्ण कपड़ों के स्थान पर आज सीधी-सादी वेशभूषा हो गयी है। ज्योतिष आज टोलमी के सिद्धान्तों के स्थान पर कोपरनिक्स का सिद्धान्त मानता है जिसके अनुसार आकाश के नक्षत्रों की गणना उचित, वैज्ञानिक और समझ में आने वाले ढंग पर होती है।

इन परिवर्तनों के लिए सरलता शब्द का प्रयोग कदाचित् यथार्थ न होगा, कम से कम उचित नहीं है। सरलता में नकारात्मक ध्वनि है और यह भाव है कि किसी वस्तु में कोई कमी कर दी गयी है या कोई चीज हटा दी गयी है। किन्तु जिन बातों का वर्णन ऊपर किया गया है उनमें कुछ कमी नहीं हुई है बल्कि व्यावहारिक कुशलता वढ़ी है अथवा कलात्मक सन्तोष की वृद्धि हुई है या बौद्धिक क्षमता वढ़ी है, जिसका परिणाम हानि नहीं लाभ है। यह लाभ सरलता की एक प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रक्रिया द्वारा ऐसी शक्तियाँ निकल पड़तीं जो भौतिक माध्यम में बँधी रहती हैं और स्वतन्त्र होकर अधिक शक्ति से मानसिक रूप में प्रकट होती हैं और प्रयोग में आती हैं। इससे उपकरण में सरलता ही नहीं आती, शक्ति स्थानान्तरित होती है और कार्य की प्रणाली निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर गतिशील होती है। इस प्रक्रिया को यदि हम सरलता न कहकर 'अलौकिकीकरण' (एथीरियलाइजेशन) कहें तो अधिक उपयुक्त होगा।

भौतिक प्रकृति पर मनुष्य ने जो नियन्त्रण प्राप्त किया है उस विकास को एक आधुनिक मानव-विज्ञान वेत्ता ने बड़े काल्पनिक रूप में यों वर्णन किया है:

"हम लोग धरती छोड़ रहे हैं, हमारा सम्पर्क छूट रहा है, हमारे रास्ते अस्पष्ट हो रहे हैं। चकमक पत्थर (फ्लिंट) शाश्वत है, ताँबा एक सभ्यता तक रहता है, लोहा कई पीढ़ियों तक और इस्पात एक मनुष्य के जीवन तक। जब गति का युग समाप्त हो जायगा तब कौन लंदन-पीकिंग हवाई रास्ते का नकशा बना पायेगा या आज भी ईथर के माध्यम से जो समाचार भेजे जाते हैं या सुने जाते हैं उसका पथ क्या है कोई बता सकता है? किन्तु समाप्त आइसेनी राज्य की सीमा आज भी ईस्ट एंगलिया की दक्षिणी सीमा पर वर्तमान है, जो सुखाये दलदल और काटे गये जंगल में बनी थी।"[१]

हमारे उदाहरण से यह संकेत मिलता है कि उन्नति की जिस कसौटी की खोज में हम हैं और जिसे हम बाह्य वातावरण पर विजय में नहीं पा सके चाहे वह मानवी हो अथवा भौतिक, वह हमें वहाँ मिलती है जहाँ तीव्रता (एम्फेसिस) में क्रमशः परिवर्तन होता है और कार्य एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदलता रहता है। इसमें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चुनौती और उसका सामना होता रहता है। इस प्रकार के क्षेत्र में चुनौती बाहर से नहीं आती, अन्दर से ही प्रकट होती है और जो चुनौती पर विजय होती है वह किसी बाहरी शक्ति अथवा बैरी पर

---

१. जोल्ड हर्ड : दि असेंट आव ह्युमैनिटी, पृ० २७७–८

नहीं । यह विजय आत्म-निर्णय, आत्माभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होती है । जब हम किसी अथवा किसी एक समाज को चुनौतियों का सामना करते हुए देखते हैं और हम यह जानना हैं कि जिस क्रम से चुनौती और सामना हो रहा है उसमें उन्नति हो रही है कि नहीं तो हमें उत्तर तब मिल जायगा जब हम देखेंगे कि प्रतिभा पहले ढंग की है कि दूसरे ।

यह सचाई इतिहास के उन वर्णनों से स्पष्ट हो जाती है जो अथ से इति तक इसी प्रकार जाते हैं कि उन्नति बाहरी परिस्थितियों पर विजय के कारण होती है । इसी प्रकार के दो इतिहासकारों के वर्णनों के उदाहरण हम प्रस्तुत करते हैं । दोनों के लेखक प्रतिभाशाली हैं । एक पुस्तक हैं एम० एडमंड डिमोलिन्स की 'कमेंट ला रूटे क्री ले टाइप सोशल' और है एच० जी० वेल्स की 'आउट लाइन आव हिस्ट्री' ।

एम० डिमोलिन्स ने अपनी पुस्तक की भूमिका में वातावरण के सिद्धान्त को बहुत शब्दों में अंकित किया है : 'पृथ्वी पर अगणित प्रकार के लोग रहते हैं, क्या कारण है कि प्रकार के लोग हो गये ? पहला और प्रमुख कारण प्रजातियों के इतने भेदों का यह है कि विभिन्न रास्तों से आये-गये । विभिन्न मार्गों के कारण ही विभिन्न प्रजातियाँ तथा सामा प्रकार के लोग हो गये ।'

लेखक के इस विचार से प्रभावित होकर जब हम यह पुस्तक पढ़ते हैं तब यह जान पड़ता कि उसके विचार वहाँ तक बहुत ठीक मिलते हैं जहाँ तक उसके उदाहरण आदिम समाज से गये हैं । इन उदाहरणों से यह समझ में आता है कि बाहरी चुनौती का सामना करने से इन ने पूर्णता प्राप्त की, किन्तु उनके विकास का इनसे पता नहीं चलता क्योंकि अब ये समाज हैं । डिमोलिन्स महोदय अविकसित समाजों की स्थिति भी समझाने में सफल हैं । किन्तु लेखक अपने सूत्र को पितृ-सत्तात्मक ग्राम्य समाज पर लगाता है तब पाठक को घबराहट होती कारथेज और वेनिस पर जो अध्याय लिखे हैं उन्हें पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि लेखक ने छोड़ दिया, यद्यपि वह यह नहीं कह सकता कि क्या छूट गया है । जब वह पाइथोगारस के को इटली के दक्षिण के व्यापार-परिवहन पर स्थापित करना चाहता है तब हँसी रोकनी पड़ती किन्तु 'प्लेटो के मार्ग' और 'अलवेनी और हेलेनी जाति' के अध्याय पर तो ठहर जाना पड़ता है अलबेनी बर्बरता और हेलेनी सभ्यता को एक साथ रखना, क्योंकि किसी समय दोनों के नेता अपने भौगोलिक लक्ष्य पर एक ही भू-प्रदेश की राह से पहुँचे, आश्चर्यजनक है । यह कहना वह महान् मानव घटना जिसे हम हेलेनीवाद कहते हैं बालकन पठार का केवल गौण था, हास्यास्पद है । इस दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय में अपने ही विषय को लेखक गलत सिद्ध करके बात को असंगत बना देता है । जब कोई सभ्यता हेलेनी सभ्यता के स्तर तक उन्नति कर ले तब यह कहना कि उसका विकास केवल बाहरी परिस्थिति की चुनौती के कारण हास्यास्पद है ।

जब वे आदिम सभ्यता के बजाय किसी परिपक्व सभ्यता पर विचार करते हैं वेल्स भी विचारों को पुष्ट नहीं कर पाते । जब वह अपनी कल्पना से किसी अत्यन्त प्राचीन भू-वैज्ञानिक कल्प के किसी नाटकीय घटना को गढ़ते लगते हैं तब वह पूर्णरूप से सफल होते हैं । कहानी कि किस प्रकार ये छोटे जन्तु (थेरियोमारफिस) अत्यन्त प्राचीन स्तनपायी जीव

रहे, जब बहुसंख्यक सरीसृप (रेपटाइल्स) धरती के अन्दर चले गये, उसी स्तर की है जिस स्तर की बाइबिल की डेविड और मोलियक की गाथा। जब ये छोटे जन्तु पुरापाषाणिक काल के शिकारी या यूरेशियाई खानाबदोश के रूप में आ जाते हैं डिमोलिन्स के समान वेल्स फिर भी हमारी धारणा के अनुसार ही प्रकट होते हैं। किन्तु जब वह हमारी पश्चिमी सभ्यता की कथा कहते हैं और उस जन्तु का वर्णन करते हैं जो विलियम एवार्ड ग्लैडस्टन के रूप में आया तब उनकी बुद्धि विफल हो जाती है। वह असफल इसलिए होते हैं कि ज्यों-ज्यों उनकी कथा की गति बढ़ती है, वह अपनी आत्मिक भावना को महान् से इस सूक्ष्म की ओर नहीं ला सकते। यही असफलता 'द आउट लाइन आव हिस्ट्री' की कमी है, नहीं तो यह पुस्तक महान् बौद्धिक देन है।

वेल्स की असफलता इसी समस्या को सुलझाने में, शेक्सपियर की सफलता से नापी जा सकती है। यदि हम अलौकिकता की दृष्टि से शेक्सपियर के पात्रों की विकासात्मक क्रम से सूची बनायें और यह स्मरण रखें कि नाटककार का कौशल यह है कि पात्रों की क्रियाशीलता द्वारा उनके चरित्र की अभिव्यक्ति हो, तो हम देखेंगे कि जैसे-जैसे चरित्र के विकास की सीढ़ी पर नीचे से ऊपर की ओर शेक्सपियर चलता है वह अपने पात्रों के कार्यक्षेत्र को इस प्रकार बदलता रहता है और अपने नायकों की भूमिका की इस प्रकार अभिव्यक्ति करता है कि मंच पर इस जगत् का अधिकाधिक समावेश होता है और विश्व को दूर रखता जाता है। यदि हम पाँचवें हेनरी से लेकर मैकबेथ का चरित्र देखते हुए हैमलेट की ओर चलें तो यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। पाँचवें हेनरी के चरित्र का स्वरूप अपेक्षाकृत आदिम है और जो मानवी वातावरण उसके चारों ओर है उसी की चुनौती का सामना उसे करना पड़ता है। उसका सम्बन्ध अपने प्रिय साथियों से है, अपने पिता से है और अगिनकोर्ट के युद्ध के प्रति उसके साथी सैनिकों से और राजकुमारी केट से उग्र रूप में प्रेम याचना में है। जब हम मैकबेथ के पास आते हैं तब कार्यक्षेत्र बदलने लगता है क्योंकि मैकबेथ का सम्बन्ध मैलेकम से या मैकडफ से या अपनी पत्नी महारानी मैकबेथ से उतने ही महत्त्व का है जितना मैकबेथ का अपने से है। और अन्त में जब हम हैमलेट की ओर आते हैं तब हम देखते हैं कि अखिल ब्रह्माण्ड की भावना प्रायः लुप्त होने लगती है। उसके पिता के हत्यारों से उसके सम्बन्ध में, ओफीलिया से समाप्त प्रेम की भावना में, उसके वयोवृद्ध परामर्शदाता होरेशियो में यह देखा जाता है कि वह आन्तरिक संघर्ष से जूझ रहा है जो नायक की अपनी आत्मा के अन्दर ही काम कर रही है। हैमलेट में कार्यक्षेत्र प्रायः पूर्ण रूप से अखिल ब्रह्मांड से मानवी जगत् में आ गया है। शेक्सपियर की कला की इस महान् कृति में, जैसे ऐसकाइलस के 'प्रोमीथ्युज़' अथवा ब्राउनिंग के नाटकीय एकपात्री संवादों में (मोनोलोग्ज़) एक ही अभिनेता सारे मंच पर अधिकार जमा लेता है यह इसलिए कि उसके व्यक्तित्व के अन्दर जो आत्मिक शक्तियाँ व्यक्त होने के लिए विवश हो रही हैं, उन्हें पूरा अवसर मिले।

कार्यक्षेत्र का यह परिवर्तन, जो हम शेक्सपियर के पात्रों में पाते हैं जब हम क्रमशः आत्मिक विकास में देखते हैं, हमें सभ्यताओं के इतिहास में भी मिलता है। यहाँ भी हम देखते हैं कि जब अनेक चुनौतियों के संघर्ष विकास के रूप में परिवर्तित होते हैं तब ज्यों-ज्यों विकास की प्रगति होती है, बराबर कार्यक्षेत्र बाहरी परिस्थिति से हटकर समाज की आन्तरिक परिस्थिति की ओर मुड़ जाती है।

उदाहरण के लिए, हमने देखा कि जब हमारे पश्चिम के पूर्वजों ने स्कैण्डिनेवियाई आक्रमण

पर विजय पायी, उसका एक कारण यह था कि उन्होंने मानवी परिस्थिति पर शक्तिशाली शु तथा सामाजिक सामन्ती प्रथा निर्माण करके विजय प्राप्त की । किन्तु पश्चिमी इतिहास में चलकर जब सामंती प्रथा के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक वर्ग उत्पन्न हो गये उनके कारण अनेक प्रकार के तनाव और आघात होने लगे और समाज को उनका सामना क पड़ा । पश्चिमी ईसाई जगत् को अभी वाइकिंगों को पराजित करके पर्याप्त अवकाश भी मिला था कि उन्हें सामन्ती प्रथा के विभिन्न वर्गों को हटाकर स्वतन्त्र राज्य और नागरिकों का रूप से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ा । इन दोनों चुनौतियों के परिवर्तन से स्पष्ट है कि व परिस्थिति से हटकर कार्यक्षेत्र आन्तरिक हो गया ।

यही बात हम इतिहास की दूसरी घटनाओं में देख सकते हैं जिन्हें हमने दूसरे संदर्भों में किया है । उदाहरण के लिए, हमने देखा कि हेलेनी इतिहास में सारी प्रारम्भिक चुनौतियाँ बा थीं । यूनान में पठारों के बर्बरों की चुनौती, तथा जनसंख्या की चुनौती का सामना उन्होंने पार साम्राज्य का विस्तार करके किया । (जिसके परिणामस्वरूप उन्हें वहाँ के बर्बरों प्रतिद्वंद्वी सभ्यता की चुनौती का सामना करना पड़ा और अन्त में पाँचवीं शती ई० पू० के चतुर्थांश में एक साथ कारथेज और परशिया के आक्रमण का सामना करना पड़ा । इसके फ इस मानवी भीषण चुनौती पर विजय होने लगी जो चार शतियों तक चलती रही । जो सि के विजय से आरम्भ हुई और रोम पर विजय करके समाप्त हुई ।) इन विजयों के कारण हे समाज को पाँच-छ सौ वर्षों की शान्ति मिली जिनके बीच कोई बाहरी महत्त्व की चुनौती का सा नहीं करना पड़ा । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हेलेनी समाज बिलकुल चुनौतियों से वि रहा । इसके विपरीत जैसा हमने देखा है यह पतन का युग था अर्थात् इस काल में उसे चुनौतियों का सामना करना पड़ा जिसपर वह विजय नहीं पा सका । हमने देखा कि ये चुनौ किस प्रकार की थीं, और यदि हम फिर उनपर विचार करें, तो देखेंगे कि ये चुनौतियाँ आन्त थीं । ये पहली बहारी चुनौतियों के विजय की परिणाम थीं । जिस प्रकार हमारे पश्चिमी स में वाईकिंगों के आक्रमण के परिणाम में सामन्तवाद की प्रथा हो जाने के कारण चु उपस्थित हुई ।

उदाहरण के लिए परशियनों तथा कारथेजीनियनों के दबाव ने हेलेनी समाज को आत्म के लिए दो शक्तिशाली सामाजिक तथा सैनिक साधनों को तैयार करने की स्फूर्ति प्रदान एक तो एथेनी नौ-सेना, और दूसरी साइराक्युज़ी नृशंस सैनिक । इनके कारण दूसरी पीढ़ हेलेनी समाज में तनाव और दबाव आरम्भ हुआ और उसके फलस्वरूप एथेनी-पेलोपोने युद्ध हुआ । साथ ही साइराक्यूज़ तथा उसकी बर्बर प्रजा और उसके यूनानी सहायकों के प्रतिक्रिया भी आरम्भ हुई । इन हलचलों के कारण हेलेनी समाज का प्रथम पतन हुआ ।

इसके बाद के हेलेनी इतिहास के अध्यायों में जिन सेनाओं ने सिकन्दर तथा और सेना के संचालन में विदेशियों की सेना को पराजित किया था वे मैसेडोनियाई सेनापति तथा अधिनायक देश के भीतर ही घरेलू युद्ध करने लगे । इसी प्रकार पश्चिमी भूमध्यसा आधिपत्य के लिए हेलेनी तथा सीरियाई समाज में जो आर्थिक द्वंद्व चल रहा था वह सीरि प्रतिद्वंद्वी की पराजय के बाद अधिक उग्र संघर्ष में फिर उपस्थित हुआ । इस बार पूर्वी

दासों और उनके सिसिली तथा रोम के मालिकों में। इसी प्रकार हेलेनी तथा पूर्वी सभ्यताओं का सांस्कृतिक संघर्ष—सीरियाई, और मिस्री और बैबिलोनी और भारतीय—हेलेनी समाज के भीतर ही आन्तरिक संकट के रूप में प्रकट हुआ। इस संकट से आइसिस की पूजा, ज्योतिष, सूर्य की पूजा, ईसाई धर्म तथा अनेक सम्मिलित धर्मों का आविर्भाव हुआ।

पूरब और पश्चिम कोई युद्ध बन्द नहीं करता
मेरी छाती पर ये लोग मार्च कर रहे हैं।[1]

आज तक के अपने पश्चिमी इतिहास में भी यही प्रवृत्ति हम पाते हैं। प्रारम्भिक काल में मानवी परिस्थिति से चुनौती मिली। वह स्पेन में अरबों से आरम्भ हुई और फिर स्कैण्डिनेवियाइयों से और अन्त हुआ उसमानलियों की चुनौती से। उसके पश्चात् पश्चिमी विस्तार संसार भर में व्यापक हुआ। और कम-से-कम कुछ काल के लिए इस विस्तार के कारण विदेशी मानवी समाजों की चुनौतियों से हम बच गये हैं।[2–3]

उसमानली वंश जब दूसरी बार वियना लेने में असफल रहा उसके बाद पश्चिमी समाज पर जो बाहरी चुनौती मिली वह बोलशेविज्म की थी। पश्चिमी जगत् को यह चुनौती उस समय से है जबसे लेनिन तथा उसके साथियों ने सन् १९१७ में रूस पर अपना आधिपत्य कर लिया। किन्तु यू० एस० एस० आर० की सीमा से बाहर पश्चिमी सभ्यता पर इसका बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। और यदि एक दिन ऐसा भी हो कि रूसी कम्युनिस्टों की यह आशा पूरी हो जाय कि विश्व भर में साम्यवाद फैल जाय और पूँजीवाद पर वह विजय प्राप्त कर ले तो भी यह विदेशी संस्कृति की विजय नहीं होगी क्योंकि इस्लाम के विपरीत साम्यवाद का स्रोत पश्चिम ही है। वह पूँजीवाद की प्रतिक्रिया मात्र है। बीसवीं शती के रूस ने जो इस विदेशी पश्चिमी क्रान्तिकारी सिद्धान्त को अपनाया है उससे पश्चिमी संस्कृति को किसी प्रकार की आशंका नहीं है। वास्तव में इससे पता चलता है कि यह संस्कृति कितनी बलवती है।

लेनिन के जीवन वृत्त से जो बोलशेविज्म प्रकट होता है उसमें गम्भीर अस्पष्टता है। पीटर महान् के कार्यों को वह पूरा करने आया कि नष्ट करने? पीटर की सनकी राजधानी को फिर से केन्द्रीय स्थान में ले जाकर लेनिन ने अपने को महान् पुजारी अवाकुम तथा पुराने धर्म के विश्वास करने वालों और स्लाव प्रेमियों का वंशधर ही घोषित किया। हम यह सम्भवतः अनुभव करें कि पवित्र रूस के एक पैगम्बर पश्चिमी सभ्यता के विरोध में रूस की आत्मा की अभिव्यक्ति कर रहा है। किन्तु जब लेनिन सिद्धान्त बनाता है तब उसे पश्चिमी विचारों वाले जरमन यहूदी कार्ल-मार्क्स के पास जाना पड़ता है। यह सच है कि पश्चिमी समाज की प्रक्रिया को अस्वीकार करने

---

[1] ए० ई० हाउसमैन : ए शापशायर लैंड, २८।

[2] यदि मिस्टर ट्वायनबी ने कुछ बाद में यह इतिहास लिखा होता तो एक अपवाद बनाते जापान की चुनौती के लिए।—सम्पादक

[3] और बाद में लिखा होता तो उन्हें उन बाहरी चुनौतियों का भी जिक्र करना पड़ता जो इंगलैंड को बाहर से मिलीं।—अनुवादक

के लिए मार्क्सी सिद्धान्त सबसे निकट आता है। बीसवीं शती में पश्चिमी कोई दूसरा सि रूस चुन नहीं सकता था। मार्क्सी सिद्धान्त का नकारात्मक तत्त्व ही रूसी क्रान्तिकार मन रुचा, स्वीकारात्मक नहीं। और यही कारण है कि सन् १९१७ में रूस में पश्चिमी पूँजीवा विदेशी तन्त्र को उसी प्रकार के पश्चिमी पूँजीवाद-विरोधी तन्त्र ने उलट दिया। जब हम परिवर्तन पर ध्यान देते हैं जो मार्क्सी दर्शन का रूस में हो रहा है तब यह व्यवस्था स्पष्ट हो है। वहाँ मार्क्सवाद को परम्परावादी ईसाई धर्म के स्थान पर भावात्मक तथा बौद्धिक विचा रूप में स्थापित किया जा रहा है। मूसा के स्थान पर मार्क्स और मसीह के स्थान पर ले स्थापित किये जा रहे हैं। उनके धर्मग्रन्थों के स्थान पर इन लोगों की रचनाएँ नवीन-ना युद्ध प्रिय धर्म में समाविष्ट हो रही हैं। किन्तु जब हम सैद्धान्तिक भावना से अलग होकर यह दे हैं कि लेनिन तथा उसके उत्तराधिकारी रूसी जनता के लिए वास्तव में क्या कर रहे हैं तब दू रूप दिखाई पड़ता है।

जब हम यह प्रश्न करते हैं कि स्टालिन की पंचवर्षीय योजना का क्या अभिप्राय था तब यही उत्तर दे सकते हैं कि इसका एक ही अर्थ था कृषि, व्यवसाय तथा परिवहन को यांत्रिक देना। किसानों की जाति को मिस्त्री (मैकानिक) वनाना। पुराने रूस को नया अमरीका बना दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इस आधुनिक ढंग से तथा कठोरता से और बड़ी आ के साथ रूस के पश्चिमीकरण की चेष्टा की जा रही है कि महान् पीटर का कार्य भी पीछे गया। रूस के वर्तमान शासक रूस में इस पैशाचिक शक्ति से उसी सभ्यता की भाँति सफ प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं जिसकी वे निन्दा करते हैं। निस्सन्देह वे एक ऐसे समाज के नि की कल्पना कर रहे हैं जिसकी आत्मा रूसी हो और साज-सज्जा अमरीकी हो। यह उस राजनी का विचित्र सपना है जिसका विश्वास इतिहास की भौतिक व्याख्या में है। मार्क्सी सिद्धान्त हमें यही आशा करनी चाहिए कि यदि रूसी किसान अमरीकी मिस्त्री की भाँति रहता है तो मि की ही भाँति वह विचार करने लगेगा, वैसी ही उसकी भावना होगी और वैसी ही उसकी इ होंगी। रूस की इस खींचा-खींची में, जो लेनिन के आदर्शों और फोर्ड की प्रणाली में हो रहा हम यह देखेंगे कि सभ्यता पर पश्चिम विजय पा जायगा, चाहे यह बात विचित्र सी क्यों न ल

इसी प्रकार की असंगति गांधी के जीवन में भी है। जो अनजाने इसी प्रकार पूर्ण रू पश्चिमीकरण कर रहे हैं। इनका यह कार्य उनके सिद्धान्तों का व्यंग्य है। यह हिन्दू पैगम्बर तागों को तोड़ना चाहते हैं जिसके पश्चिमी जाल में भारत फँसा हुआ है। वह प्रचार करते 'अपने हाथों से भारतीय रूई को कातो और बुनो। पश्चिम की मिलों के कपड़े मत पहनो। भारत की धरती पर पश्चिमी ढंग की मिलें खड़ी करके इन विदेशी वस्त्रों को यहाँ से हटाने चेष्टा मत करो।' गांधी के इस वास्तविक सन्देश को इसके देशवासी नहीं मानते। वे सन्त भाँति उन्हें मानते हैं और उतना उनके निर्देश पर कार्य करते हैं जितना वह उन्हें पश्चिमीकर सहायक होता है और आज हम देखते हैं कि गांधी भारत की उन्नति पश्चिमी ढंग पर कर रहे वह संसदीय ढंग से स्वतन्त्र शासन स्थापित करना चाहते हैं जिसमें कानफरेंसों, वोटों, और फार्मों, समाचार-पत्रों, तथा प्रचार के पश्चिमी तन्त्र अपनाये जा रहे हैं। इस आन्दोलन में उनकी बहुत सहायता कर रहे हैं जिन्होंने उनके वास्तविक सिद्धान्त की असफलता की

चेष्टा की। वे लोग जिन्होंने उद्योगवाद की तकनीक को भारत की धरती पर अच्छी तरह जमाया है।[१]

इसी प्रकार जब बाहरी चुनौतियों का परिवर्तन भीतरी चुनौतियों में हुआ है, पश्चिमी सभ्यता ने भौतिक वातावरण पर विजय पायी है। तकनीकी क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति की जो तथाकथित विजय हुई उसके आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में ऐसी असंख्य कुख्यात समस्याएँ खड़ी कर दीं और वे ऐसी उलझी हुई हैं कि उनपर यहाँ विचार करना सम्भव नहीं। जरा पूर्व-यांत्रिक सड़कों का ध्यान कीजिए। इन पुरानी सड़कों पर अनन्त प्रकार की प्राचीन ढंग की गाड़ियों की भीड़ रहती है। ठेलागाड़ी, रिक्शा, बैलगाड़ी, ताँगा, बग्घी सब शारीरिक शक्ति से चलने वाली गाड़ियाँ उनपर चलती हैं, और कभी-कभी बाइसिकिल भी जो आने वाले युग का संकेत है। सड़कों पर भीड़ बहुत होती है इसलिए भिड़न्त भी होती है किन्तु उसकी चिन्ता कोई नहीं करता, क्योंकि चोट-चपेट कम लगती है और रास्ता बन्द नहीं होता। क्योंकि यदि धक्का लग भी जाय तो भयावह नहीं होता। उनकी गति धीमी होती है और जोर भी कम होता है। इन सड़कों पर जो यातायात की समस्या है वह दुर्घटनाओं को रोकने की नहीं है। ये सड़कें वैसी ही हैं जो पुराने काल में थीं इसलिए समस्या है कि यात्रा पूरी होगी कि नहीं। इसलिए न तो यातायात के कोई नियम हैं, न पुलिस वहाँ खड़ी रहती है, न रोशनियों का संकेत रहता है।

अब जरा आज की सड़कों को देखिए जिनपर यांत्रिक यातायात का गर्जन होता रहता है। इन सड़कों पर गति और ढुलाई की समस्या नहीं रह गयी है। मोटर, ट्रकें और लारियाँ लदी हुई दौड़ती चलती हैं। हाथी के प्रहार से भी अधिक उनमें जोर होता है। या स्पोर्ट की गाड़ियाँ जो गोली अथवा मधुमक्खी से तेज चलती हैं। किन्तु साथ ही साथ मुठभेड़ की समस्या अधिक बढ़ गयी है। इसलिए आज सड़कों की समस्या तकनीकी नहीं, मनोवैज्ञानिक है। पुरानी चुनौती भौतिक थी, दूरी की। वह बदल कर आज नयी चुनौती मानव-मानव के सम्बन्ध की है। चालक जो दूरी को मिटाते हैं उन्हें बराबर एक दूसरे का नाश करने का भय बना रहता है।

यातायात की इस समस्या का प्रतीकात्मक तथा स्पष्ट तात्पर्य है। एक तो यह उस परिवर्तन का स्वरूप बताता है जो आधुनिक पश्चिमी सामाजिक जीवन की विशेषता हो गयी है जब से युग की दो प्रबल शक्तियाँ इस जीवन में आ गयी हैं—औद्योगिकता और लोकतन्त्र शासन। हमारे आधुनिक आविष्कर्ताओं ने भौतिक शक्ति को अनुशासित करने में जो अद्वितीय उन्नति की है उससे करोड़ों मनुष्य सामूहिक कार्य करने लग गये हैं और हमारे समाज में भला या बुरा जो कुछ कार्य होता है बड़े धड़ल्ले से होता है। इसका भौतिक परिणाम और भौतिक उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। हो सकता है कि प्रत्येक युग में हरएक समाज में ऐसे नैतिक विषय उत्पन्न हुए हों जिनसे समाज के भविष्य पर निर्णयात्मक प्रभाव पड़ा हो। चाहे जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समाज के सामने जो चुनौती उपस्थित है वह नैतिक है, भौतिक नहीं।

---

[१] चरचिल ने कामन्स सभा में १० सितम्बर, १९४२ के भाषण में इस बात की ओर ध्यान दिलाया था। भारत में इसका जोरों से विरोध हुआ था।—सम्पादक। आज वही हो रहा है और गांधी के सिद्धान्तों के विपरीत औद्योगीकरण भारत का मूलमन्त्र है।—अनुवादक

"आज यांत्रिक उन्नति के सम्बन्ध में हम विचारकों की भावनाएँ बदली हुई पाते हैं। के साथ आलोचना होने लगी है, सन्तोष का स्थान सन्देह ने लिया है, और सन्देह का स्थान धीरे भय ले रहा है। उलझन और कुण्ठा के भाव उत्पन्न हो गये हैं, जैसे किसी को बहुत दूर पर पता चले कि मैं गलत राह की ओर मुड़ गया हूँ। लौटना असम्भव है, किधर वह चले ? यदि एक या दूसरा रास्ता पकड़े तो वह कहाँ पहुँच जायगा ? प्रयुक्त यांत्रिकी (अप मैकेनिक्स) के एक पुराने समर्थक होने के नाते मुझे क्षमा किया जाय कि आज जब मैं तटस्थ आविष्कारों तथा अनुसन्धानों की बारात देख रहा हूँ तब मेरी भ्रान्ति दूर हो रही है। यह बिना पूछे रहा नहीं जा सकता कि यह सब जलूस हमें कहाँ ले जायगा ? आखिर इनका क्या है ? मनुष्य की भावी पीढ़ी पर इसका प्रभाव क्या पड़ेगा ?"

इन शब्दों से ऐसे प्रश्न उठते हैं जो हम सबके हृदय के भीतर मुखर होने के लिए बेकल हैं। क्योंकि ये बातें साधिकार कही गयी हैं। ब्रिटिश असोसिएशन फार दि एडवांसमेन्ट सायंस के अध्यक्ष ने उस ऐतिहासिक संस्था के एक सौ एकवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर इन्हें कहा था।[1] उद्योगवाद और जनतन्त्र की नयी सामाजिक प्रेरणात्मक शक्ति पश्चिमी ज सार्वजनिक (धार्मिक) समाज के संगठन में व्यय होगी कि इस शक्ति से हमारा विनाश हो

यही समस्या कुछ सरल ढंग से पुराने मिस्र के शासकों के सामने भी आयी थी। जब नेताओं ने भौतिक चुनौती पर विजय पायी, जब उन्होंने निचली नील की घाटी के जल, मिट्टी वनस्पति को मानव की आज्ञा के अधीन कर लिया, तब यह प्रश्न उठा कि मिस्र और मिस्र शासक अपने इस महान् मानवी संगठन को किस प्रकार अपने अनुशासन में कर सकेंगे नैतिक चुनौती थी। जिस भौतिक तथा मानवी शक्ति को उन्होंने अपने वश में कर लिया था अपनी प्रजा की अवस्था का सुधार कर सकेंगे ? क्या यह शक्ति प्रजा को क्या और आगे कल्याण की ओर ले जा सकेगी जिस ओर सम्राट् और उसके कुछ साथी ले जा चुके थे। क वही उदार कार्य करेंगे जो ऐसकाइलस नाटक में प्रोमीथ्यूज ने किया अथवा जीयुस का कार्य करेंगे। हमें उत्तर मालूम है। इन्होंने पिरामिड बनाये और पिरामिडों ने इन शासकों को अमर कर दिया; अमर देवताओं के रूप में नहीं, बल्कि गरीबों को पीसने वालों के में। उनकी कुख्याति मिस्री लोक-कथाओं में प्रसारित हुई और अन्त में हेरोडोट्स ने उन्हें कर दिया। उन्होंने अनुचित ढंग चुना जिसके बदले में उस सभ्यता को मृत्यु ने आ दबोचा जब चुनौती जिससे उन्हें प्रेरणा मिल रही थी बाहर से आन्तरिक क्षेत्र में आ गयी थी। आज के संसार हमारी भी परिस्थिति कुछ वैसी ही है। आज हमारी भी स्थिति कुछ वैसी ही है। आज उद्योग की चुनौती तकनीकी क्षेत्र से नहीं, नैतिक क्षेत्र से आ रही है। इसका परिणाम अज्ञात है नयी परिस्थिति के प्रति हमारी प्रतिक्रिया क्या होगी अभी निश्चित नहीं है।

जो भी हो, हमने इस अध्याय में जो तर्क उपस्थित किया है वह समाप्त है। हम इस परि पर पहुँचे हैं कि जब चुनौतियों की श्रृंखला उपस्थित होती और एक चुनौती के परिणामस्व दूसरी चुनौती आती जो उन्नति की ओर प्रेरित करती है, तब ज्यों-ज्यों श्रृंखला आगे बढ़

---

[1] सर आल्फ्रेड इंविग : १ सितम्बर, १९३२ के 'द टाइम्स' से उद्धृत।

बाहरी चुनौती के स्थान पर चाहे वह भौतिक हो अथवा मानवी, आन्तरिक चुनौती उपस्थित होती है जो उन्नतिशील सभ्यता की आत्मा होती है । इस प्रकार सभ्यता की ज्यों-ज्यों उन्नति ी है बाहरी चुनौती से कम लड़ना पड़ता है और आन्तरिक चुनौती से अधिक संग्राम करना ता है । विकास का अर्थ यह है कि सभ्यता की उन्नति स्वयं अपनी परिस्थिति बन जाती है, यं ही आक्रामक बनती है और स्वयं ही अपना युद्धक्षेत्र बन जाती है । दूसरे शब्दों में विकास मापदण्ड आत्मनिर्णय की ओर प्रगति है । आत्मनिर्णय की ओर प्रगति उस चमत्कार को व्यक्त करने का नीरस-सा ढंग है कि किस प्रकार जीवन का प्रवेश उस समाज में होता है ।

११. विकास का विश्लेषण

(१) समाज और व्यक्ति

यदि हमारी विचारधारा यह रही है कि विकास का मापदण्ड आत्म-निर्णय है, और यदि समझते हैं कि आत्म-निर्णय का अभिप्राय है आत्माभिव्यक्ति, तो हम उस प्रक्रिया का वि करें कि किस प्रकार क्रमशः सभ्यताओं द्वारा आत्माभिव्यक्ति हुई है तो सभ्यताओं के विका ठीक-ठीक समझ सकेंगे । साधारणतः यह स्पष्ट है कि सभ्यताएँ विकास की प्रक्रिया में आत्माभिव्यक्ति उन व्यक्तियों के माध्यम से करती हैं जो 'उस समाज के हैं' अथवा 'जिनका समाज है ।' समाज तथा व्यक्ति के सम्बन्ध को निरपेक्ष दृष्टि से दोनों में से किसी सूत्र के अ हम समझ सकते हैं, यद्यपि वे एक दूसरे के विरोधी हैं । इस भ्रम से यह जान पड़ता है कि सिद्धान्त पर्याप्त नहीं हैं, इसलिए इस जाँच के पहले हम इस पर विचार कर लें कि समाज व्यक्ति में क्या सम्बन्ध है ।

समाज-विज्ञान का यह पुराना प्रश्न है और दो बँधे-बँधाये इसके उत्तर हैं । एक तो य व्यक्ति ही मूल है जिसका अस्तित्व है, वही समझा जा सकता है और इन्हीं व्यक्तियों की का समूह समाज है । दूसरा उत्तर यह है कि वास्तविक तो समाज है । समाज अपने में पू व्यक्ति तो इस पूर्ण का केवल एक अंश है । समाज के बिना इस अंश का कोई अस्तित्व न सकता, न इसके सम्बन्ध में कोई कल्पना हो सकती है ।

व्यक्ति की इकाई का क्लासिक चित्र होमर ने साइक्लोप्स के वर्णन में खींचा है । अफ ने उसी भावना से इसे उद्धृत किया है जिस भावना से हम अब करना चाहते हैं :

> न तो उनकी कोई सभा है, न उनका कोई विधि-विधान है। पहाड़ों की चोटियों पर
> माँदो में वे रहते हैं ।
> जहाँ अपनी पत्नी तथा बाल-बच्चों के प्रति प्रत्येक अपने नियम के अनुसार व्यवहार करता
> और अपने साथियों की बातों की तनिक भी परवाह नहीं करते ।[1]

स्पष्ट है कि इस प्रकार का, परमाणुओं से समाज जीवन, साधारण मानव का जीवन न सकता । और कभी कोई मनुष्य साइल्कोप्स के समान जीवन नहीं व्यतीत करता था । मनुष्य सामाजिक प्रणाली है । अप-मानव से मानवता के विकास के लिए सामाजिक आवश्यक है । इसके बिना विकास का कोई रूप स्थिर ही नहीं हो सकता था । तब दूसरे का कि व्यक्ति केवल समाज का एक अंग है क्या होगा ?

---

[1] ओडेसी : नवीं पुस्तक, ११, ११२–१५ । अफलातून द्वारा लाज पुस्तक २, पृष्ठ में उद्धृत ।

"ऐसे सामाजिक प्राणी हैं जैसे मधुमक्खियाँ और चीटियाँ जिनमें व्यक्तियों में किसी प्रकार का शृंखलाबद्ध सम्बन्ध नहीं है परन्तु सभी अपने लिए नहीं, सारे समाज के लिए कार्य करते हैं और यदि समाज से अलग हो जाते हैं तो उनकी मृत्यु हो जाती है।

"मूंगे अथवा जल के और पोलिप ऐसी घनी बस्ती बना लेते हैं। उनमें प्रत्येक को अलग से निस्संकोच जीव कहा जा सकता है किन्तु एक दूसरे से वे इस प्रकार लगे रहते हैं कि सबके साथ मिलकर एक हो जाते हैं। इसमें व्यक्ति कौन रहा ?" औतिकी विज्ञान (हिस्टोलोजी) की कहानी सुनिए। उसके अनुसार सभी जन्तु, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है, असंख्य इकाइयों से मिलकर बने हैं जिन्हें कोषाणु कहते हैं। इनमें से कुछ कोषाणु बहुत स्वतन्त्र होते हैं और हम यह समझने पर विवश होते हैं कि शरीर का उनसे उसी प्रकार का सम्बन्ध है जैसे मूंगे के पोलिपों की बस्ती में किसी इकाई का होता है, अथवा जिस प्रकार पूरी बस्ती में साइफोनोफोरा होता है। यह निष्कर्ष और भी पुष्ट हो जाता है जब हम यह देखते हैं कि असंख्य स्वतन्त्र जीव, प्रोटोजोआ, ऐसे हैं जो उन कोषाणुओं के समान हैं जिनसे मनुष्य का शरीर बना है। अन्तर केवल यह है कि मनुष्य के शरीर में ये एक दूसरे से संयुक्त हैं और वे प्रोटोजोआ अलग स्वतन्त्र हैं।

"एक प्रकार सारा जैव जगत् (आरगेनिक वर्ल्ड) एक महान् व्यक्ति है। यह ठीक है कि वह अस्पष्ट और उचित ढंग से सम्बद्ध नहीं है फिर भी परस्पर निर्भर रहने वाला एक पूर्ण है। यदि कोई ऐसी दुर्घटना हो कि सारी हरी वनस्पति या सब जीवाणु (वैक्टीरिया) नष्ट हो जायँ तो संसार में कोई जीवधारी रह नहीं सकता।"[१]

जबकि प्रकृति के सम्बन्ध में जो बातें कही गयी हैं वे मनुष्य के लिए भी ठीक उतरती हैं ? क्या मनुष्य भी साइक्लोप्स की भाँति स्वतन्त्र होकर समाज के शरीर में केवल एक कोषाणु है ? या यह महान् जैविक जगत् केवल एक कोषाणु है ? हाब्स की पुस्तक 'लेवियाथान' के आरम्भ में सामाजिक मनुष्य का शरीर अनेक अनेक्सोगोरियन तत्त्वों से बना है जिन्हें मनुष्य कहते हैं। मानो सामाजिक संविदा (सोशल कंट्रेक्ट) ने जादू से साइक्लाप्स को कोषाणु बना दिया। उन्नीसवीं शती में हरबर्ट स्पेंसर और बीसवीं में आस्वेल्ड स्पेंग्लर ने मानव समाज को गम्भीरतापूर्वक शरीर माना है। दूसरे लेखक का कथन है—"किसी सभ्यता (कुल्टूर) का जन्म उस समय होता है जब स्थायी शैशवमानवता की आदिम मानसिक परिस्थिति में कोई महान् आत्मा जाग्रत होती है और अपने को अलग कर लेती है। आकारहीन तत्त्वों से एक रूप गढ़ती है। सीमाहीन और स्थायी अवस्था से सीमित और प्रगतिशील जीवन को जन्म देती है। यह आत्मा उस देश की सीमित धरती पर प्रस्फुटित होती है और पौधे के समान उससे लगी रहती है। इसी के विपरीत सभ्यता का विनाश तब होता है जब इस आत्मा ने, जातियों, भाषा, धर्म, कला, विज्ञान तथा राज्य की सारी सम्भावनाओं की अनुभूति प्राप्त कर ली है और तब वह जिस आदिम मानव स्थिति से उत्पन्न हुई उसी में मिल जाती है।"[२]

इस विचार की आलोचना एक अंग्रेजी लेखक ने अपनी पुस्तक में की है जो उसी साल

---

[१] जे० एस० हक्सले : दि इंडिविजुअल इन दि एनिमल किंगडम, पृ० ३६–८ तथा १२५।

[२] ओ० स्पेंग्लर : डर उनटरगेंग डेस एबडंलैंडेस, खण्ड १, १५–२२ संस्करण, पृ० १५३।

प्रकाशित हुई थी । 'समाज शास्त्र के सिद्धान्तवादियों ने अपने विषय की प्रणाली और शब्दाव के प्रयोग करने के बजाय बार-बार समाज के तथ्यों और मूल्यों को किसी-न-किसी विज्ञान सिद्धान्त के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । भौतिक विज्ञान की समानता (एनोलोजी) आधार पर समाज को उन्होंने यन्त्र वताया, जीव-विज्ञान से तुलना करके उन्होंने उसे प्रा प्रमाणित करने की चेष्टा की । दर्शन अथवा मनो-विज्ञान की समता दिखलाकर उन्होंने समाज व्यक्ति बनाने पर जोर दिया और कभी-कभी धार्मिक समानता से उन्होंने इसे ईश्वर बनाने भ्रम उत्पन्न किया ।"[1]

जैविक तथा मनोवैज्ञानिक समानता उतनी हानिकर नहीं है जब यह आदिम समाज अथ अविकसित सभ्यताओं के साथ लागू की जाती है । किन्तु जहाँ सभ्यताएँ विकसित हो रही उनके समाज तथा व्यक्ति के सम्बन्ध की तुलना इनसे ठीक नहीं होती । ऐसी समानताओं लाना ऐतिहासिक बुद्धि की दुर्वलता है अथवा गप्पबाजी है । इसका संकेत ऊपर किया जा चु है । यह प्रवृत्ति कि 'ब्रिटेन', 'फ्रांस', 'धर्मतन्त्र', 'द प्रेस', 'द टर्फ' को सजीव वनाना और सं के नाम से पुकारना और इन अमूर्त संस्थाओं को मानव मानना ठीक नहीं है । यह अ तरह स्पष्ट है कि समाज को जैविक या व्यक्ति का रूप देकर हम समाज और उसके व्यक्ति सदस्यों के सम्बन्ध को समझा नहीं सकते ।

तव मानव समाज और उसके व्यक्तियों के सम्बन्ध के वताने का कौन ढंग उचित हो सकता है सच्ची वात तो यह है कि मानव समाज मनुष्य के आपसी सम्बन्धों की संस्था है । मनुष्य के व्यक्ति नहीं है, सामाजिक प्राणी है । एक दूसरे से सम्बन्ध बिना वह जी नहीं सकता । हम सकते हैं कि समाज व्यक्तियों के सम्बन्ध का परिणाम है । इसकी उत्पत्ति इस कारण होती कि एक व्यक्ति का कार्यक्षेत्र दूसरे व्यक्ति के कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित होता है । इस सम्बन्ध कारण व्यक्तियों का कार्य समान हो जाता है और इसी समान क्षेत्र को हम समाज कहते हैं ।

यदि यह परिभाषा मान ली जाय तो इससे महत्त्वपूर्ण किन्तु स्पष्ट परिणाम निकलता है समाज 'कार्यक्षेत्र' है किन्तु कार्य का स्रोत व्यक्ति है । इसी वात को बर्गसों ने जोरदार शब्दों कहा है : "हम इतिहास में 'अचेतन' तत्त्व पर विश्वास नहीं करते । वहुत-सी अज्ञान विचा धाराएँ, जिसके सम्बन्ध में वड़ी चर्चा हुई है, इसलिए प्रवाहित होती है कि एक या अधिक मनु ही अपने समुदाय को किसी एक ओर बहा ले गये हैं । यह कहना कि सामाजिक प्रगति अ आप समाज के इतिहास के किसी काल में किसी आत्मिक परिस्थिति के कारण होती है, बे है । जब समाज एक प्रयोग का निश्चय कर लेता है और इस कारण आगे कूदता है तब प्र होती है । इसका अर्थ यह है कि समाज को विश्वास हुआ होगा अथवा कम-से-कम वह आन्दो के लिए तैयार हुआ होगा । और यह आन्दोलन किसी व्यक्ति द्वारा किया गया होगा ।"[2]

ये व्यक्ति, जो समाजों में जिनमें वे रहते हैं गतिशीलता उत्पन्न करते हैं उनमें साधारण मनु से कुछ अधिक क्षमता होती है । उनके कार्य ऐसे होते हैं जो साधारण मनुष्यों को चमत्कार

---

१. जी० डी० एच० कोल : सोशल थियरी, पृ० १३ ।

२. एच० बर्गसों : लार्ड सोर्स डि ला मोराल एट डि ला रिलिजन, पृ० ३३३ तथा ३७३

हैं क्योंकि वे सचमुच महामानव होते हैं, केवल आलंकारिक भाषा में नहीं । "मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनने के लिए जो कुछ भी आवश्यक था प्रकृति ने किया । जिस प्रकार प्रतिभाशाली मनुष्य साधारण मनुष्यों की बुद्धि के आगे चला जाता है, उसी प्रकार ऐसी विशिष्ट आत्मा समय-समय पर आती है जो समझती है कि हमारा सम्बन्ध विश्व भर की आत्माओं से है और अपने को अपने समुदाय के भीतर ही सीमित रखने के बजाय प्रेम की शक्ति से प्रेरित होकर सारे विश्व से अपनी बातें कहती है । इस प्रकार की प्रत्येक आत्मा ऐसी है मानों एक व्यक्ति में सारी जाति का समावेश है ।"[1]

इन अतिमानव आत्माओं के चरित्र को जो आदिम समाज के सामाजिक जीवन की शृंखला को छोड़कर नया सर्जन करते हैं व्यक्तित्व कहा जा सकता है । व्यक्तित्व के आन्तरिक विकास के परिणामस्वरूप ही नये निर्माण का कार्य होता है और इन्हीं के द्वारा मानव समाज का विकास होता है । बर्गसों के अनुसार योगी (मिस्टिक) लोग ही अतिमानव व्यक्ति होते हैं, यही श्रेष्ठ सर्जन करते हैं और योग की रहस्यवादी अनुभूति के क्षणों में सर्जनात्मक कार्यों का अंकुर फूटता है । उन्हीं के शब्दों में इसका विश्लेषण सुनिए :—

"महान् योगियों (मिस्टिक) की आत्मा रहस्यवादी अनुभूति के सुखद क्षणों में विराम नहीं कर लेती कि यात्रा की मंजिल पूरी हो गयी । अनुभूति के क्षण को विश्राम का समय समझना चाहिए । वैसा ही विश्राम जैसा स्टेशन पर रेलवे इंजन का होता है । जिसमें भाप का दबाव भरा रहता है और इसलिए रुकता है कि आगे तीव्र गति से चले । · · · महान् योगियों के हृदय में इसी प्रकार सत्य की शक्ति गतिशील होने के लिए निकलती है । उसकी इच्छा होती है कि ईश्वर की कृपा से मानव के सर्जन की क्रिया को पूर्ण करे · · · योगी की शक्ति जिस ओर गतिशील होती है उसी ओर जीवन की शक्ति भी प्रवाहित होती है । यही शक्ति है जो पूर्ण रूप से विशिष्ट मनुष्यों को प्रेरित करती है और उनमें यह इच्छा उत्पन्न होती हैं कि सारे मानव समाज पर अपनी छाप अंकित कर दें । साथ ही एक ऐसी विरोधात्मक बात होती है जिसे वे जानते हैं । वह यह कि जो वस्तु स्वयं निर्मित हो वह निर्माण करने का प्रयत्न करे । जिसकी गति रुक गयी हो वह चलना आरम्भ करे ।"[2]

यह विरोध उस गतिशील सामाजिक जीवन की पहेली है जो रहस्यमय व्यक्तियों के प्रादुर्भाव के समय उपस्थित होती है । यह सर्जनकर्ता इस प्रकार प्रेरित होता है कि अपने साथियों को भी सर्जनशील बना देता है । वह अपने साथियों को भी अपनी ही भावना में ढाल देता है । योगी पुरुष के सूक्ष्म जगत् में (उसकी आत्मा में) जो सर्जनात्मक परिवर्तन होता है उसे पूर्ण तथा दृढ़ होने के लिए जगत् में भी परिवर्तन होना आवश्यक है किन्तु जिस जगत् में उसका परिवर्तन हुआ है उसी जगत् में उसके ऐसे साथी हैं जिनमें परिवर्तन नहीं हुआ है । उस अपरिवर्तित जगत् को परिवर्तित करने में अपरिवर्तित लोगों की ओर से रुकावटें उपस्थित होती हैं क्योंकि इनमें गतिहीनता है । यह गतिहीनता उन्हें अपरिवर्तित रूप में ही रखेगी ।

---

[1] वही, पृ० ९६ ।

[2] वही, पृ० २४६–६१ । पाठकों ने यह अनुभव किया होगा कि बर्गसों के इतिहास का दर्शन कारलाइस के दर्शन से कितना मिलता है ।—सम्पादक

इस सामाजिक परिस्थिति से उलझन उत्पन्न हो जाती है। यदि सर्जनकारी प्रतिभा समाज में परिवर्तन करने में विफल होती है तो उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा उसके लिए विना सिद्ध होगी। वह अपने कार्यक्षेत्र से अलग हो जायगा। कार्य शक्ति समाप्त हो जाने पर जीवनी शक्ति भी समाप्त हो जायगी। चाहे उसके साथी उसे सुरलोक न पहुँचा दें जैसे सामाजिक जन्तुओं अथवा कीड़ों के जीवन में होता है। और यदि यह प्रतिभाशाली अपने साथियों की गतिहीनता अथवा विरोध पर विजय पा जाता है तो अपनी परिवर्तित के अनुरूप समाज को भी बना देता है और साधारण पुरुष अथवा स्त्री के जीवन को तवतक बनाये रखता है जबतक कि वे उसी के अनुरूप अपने जीवन को न बना लें।

बाइबिल में जो निम्नलिखित यीसू का कथन बताया गया है, उसका यही अभिप्राय है:
"यह न समझो कि मैं संसार में शान्ति के लिए आया हूँ—मैं शान्ति का सन्देश नहीं, का सन्देश देने आया हूँ 'क्योंकि मैं इसलिए आया हूँ कि पुत्र को पिता के विरोध में खड़ा करूं, को माता के विरोध में और वधू को सास के विरोध में।' और लोगों के बैरी उसके घर वाले होंगे।"[१]

सामाजिक सन्तुलन कैसे सम्भव है जब एक वार प्रतिभाशाली व्यक्ति के प्रभाव का प्रारम्भ हो जाता है।

इसका सबसे सरल समाधान इस प्रकार हो सकता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति रूप से बराबर शक्ति से और सब ओर आक्रमण आरम्भ कर दे। इसका परिणाम यह होगा बिना तनाव या विकृति के विकास होने लगेगा। किन्तु यह कहना अनावश्यक होगा कि प्रतिभा के आवाहन के उत्तर में शत प्रतिशत प्रतिक्रिया नहीं होती। इतिहास में ऐसे उदा अवश्य मिलते हैं जब कोई 'वैज्ञानिक अथवा धार्मिक' विचार जनता के सम्मुख आता है तब बुद्धिमानों के मन में एक ही समय और स्वतन्त्र रूप से उसकी प्रतिक्रिया होती है। किन्तु प्रकार के उत्तम से उत्तम उदाहरणों में ऐसे आदमियों की संख्या उँगली पर गिनी जा सक जिनके मन में स्वतन्त्र रूप से और एक ही प्रतिक्रिया हुई हो। हजारों और लाखों व्यक्ति रहते हैं जिनपर इन विचारों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। सच्ची बात तो यह है कि जब व्यक्ति द्वारा निजी तथा मौलिक सर्जन की विचारधारा प्रवाहित होती है तब सब लोग समान से उसे ग्रहण नहीं करते। इसका कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में सर्जनात्मक शक्ति निहित है और सब एक ही वातावरण में रहते हैं। इसलिए जब सर्जनशील व्यक्ति उभरता है तब बहुत बड़े निष्क्रिय समूह का सामना करना पड़ता है यद्यपि उसके साथ थोड़े से उसी के क्रियाशील व्यक्ति भी रहते हैं। जितना भी सामाजिक निर्माण हुआ है वह या तो एक की कृति है अथवा कुछ थोड़े से निर्माताओं की है। और प्रगति के हर कदम पर समाज की बड़ी संख्या पीछे छूट जाती है। यदि आज हम संसार के महान् धार्मिक संगठनों को जैसे इसलामी तथा हिन्दू, पर विचार करें तो हमको पता चलेगा कि उनके अधिकांश अनुयायी जितने भी मौलिक रूप से वे अपने धर्म का गुणगान करते हों, ऐसी मानसिक परिस्थिति में हैं जो अंधविश्वास से अधिक दूर नहीं है। यही हाल आज की भौतिक सभ्यता की उपल

---

१. मैथ्यु १० । ३४–६ इससे तुलना कीजिए, ल्यूक १२, ५१–३ ।

भी है। हमारा पश्चिमी वैज्ञानिक ज्ञान और हमारी तकनीक जो उस ज्ञान को कार्यान्वित करती है भयंकर रूप से कुछ चुने हुए सीमित लोगों के हाथों में है। लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की नयी सामाजिक शक्तियाँ बहुत थोड़े मौलिक लोगों द्वारा निर्मित हुई हैं और अधिकांश मानव उसी बौद्धिक तथा नैतिक स्तर पर है जिसपर वह इन शक्तियों के आविर्भाव के पहले था। सच पूछिए तो इस 'पश्चिम के संसार के नमक' के स्वाद के समाप्त होने का भय है क्योंकि पश्चिमी समाज के अधिकांश लोगों को उसका स्वाद मिला ही नहीं।

यह तथ्य कि सभ्यताओं का विकास कुछ मौलिक विचार के व्यक्तियों अथवा अल्प संख्यकों द्वारा होता है यह भी साथ-साथ वताता है कि बहुसंख्यक लोग पीछे छूट जाते हैं जव तक नेता लोग कोई ऐसी व्यवस्था न करें कि इस अकर्मण्य पिछड़ी बहुसंख्या को अपने साथ-साथ न ले चलें। इस विचार के कारण हमें सभ्य तथा पिछड़े समाजों के—जिन पर हम अभी तक विचार करते आये हैं—अन्तर की परिभाषा में कुछ परिवर्तन करना होगा। इस अध्ययन में पहले हमने कहा है कि आदिम समाजों का हमें जो ज्ञान है उसके अनुसार वे स्थैतिक (स्टेटिक) हैं और अविकसित सभ्यताओं को छोड़कर सब गत्यात्मक हैं। अव हम इस सम्वन्ध में यह कहना चाहेंगे कि प्रगतिशील सभ्यताओं तथा स्थैतिक सभ्यताओं में गत्यात्मक दृष्टि का सामाजिक संस्थाओं का तथा मौलिक व्यक्तियों का अन्तर है। और इसके साथ हम यह भी कहेंगे कि ये मौलिक व्यवित अधिक से अधिक भी जव उनकी संख्या होगी तव भी समाज में उनकी अल्प संख्या होगी। प्रत्येक विकासशील सभ्यता में भी उस समाज की बहुत बड़ी संख्या उसी गतिहीन तथा निष्क्रिय स्थिति में रहती है जिस स्थैतिक परिस्थिति में आदिम समाज के लोग रहते हैं और भी। प्रगतिशील सभ्यता के अधिकांश लोगों में शिक्षा की ऊपरी वारनिश केवल होती है नहीं तो उनमें भी आदिम समाज के मनुष्यों की भाँति ही भावनाएँ होती हैं। यहाँ उस कथन की सच्चाई हम पाते हैं कि मानव समाज कभी बदलता नहीं। विशिष्ट व्यक्ति—प्रतिभा सम्पन्न, रहस्यवादी, महामानव—जो कुछ भी उन्हें कहिए, साधारण मानवता की ढेरी में केवल अंश में ही हैं।

अव हमें इस पर विचार करना है कि ये थोड़े गतिशील व्यक्ति समाज के रूढ़िवाद को तोड़ने में किस प्रकार सफल होते हैं और अपनी विजय को स्थायी बनाते हैं। अपनी प्रगति को सामाजिक पराजय से सुरक्षित रखते हैं और अपनी सामाजिक परिस्थिति में प्रगति करते रहते हैं। इस समस्या को सुलझाने के लिए—

"दोहरे प्रयत्न की आवश्यकता है, कुछ थोड़े लोग नयी बात उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं और शेष इस वात की चेष्टा करते हैं कि वह नयी वात हमारी परिस्थिति के अनुकूल हो और हम नयी परिस्थिति के अनुकूल हों। समाज को सभ्य तव कहा जाता है जव ये दोनों कार्य प्रारम्भ होने वाले और उसके अनुकूल आचरण होने वाले—साथ-साथ चलें। असभ्य समाजों में विशेष व्यक्तियों का अभाव हो, ऐसा नहीं है। (कोई कारण नहीं है कि प्रकृति ने सब युगों में और सब स्थानों पर ऐसे व्यक्ति न पैदा किये हों)। असभ्य समाजों में कमी इस बात की जान पड़ती है कि ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जो अपनी विशेषता का इस प्रकार प्रयोग कर सकें कि समाज के शेष व्यक्ति उसका नेतृत्व ग्रहण करें।"[1]

---

[1] बर्गसों : पहले वर्णित पुस्तक, पृ० १८१।

निष्क्रिय बहुसंख्यक क्रियाशील अल्पसंख्यकों के नेतृत्व को स्वीकार करें, इस समस् सुलझाने के दो ढंग हो सकते हैं । एक व्यवहारात्मक दूसरा, आदर्श । पहला ढंग है कठोर अनु द्वारा लोगों में सुधार करना—दूसरा, रहस्यवाद से । पहले के लिए ऐसी नैतिकता होनी च जिसमें अहं न रह जाय । दूसरा ढंग यह है कि दूसरे के (नेता के) व्यक्तित्व के अनुसरण करने प्रलोभन औरों को दिया जाय । दोनों में आत्मिक संयोग की भावना उत्पन्न की जाय, यहाँ तक उसके साथ एक हो जाय ।"[१]

एक आत्मा दूसरी आत्मा में मौलिकता की शक्ति का प्रकाश पैदा करे, अवश्य ही आदर्श है, किन्तु इसी पर निर्भर रहना 'पूर्णता' से ही सम्भव है । निष्क्रिय जनता को गतिशील के के समकक्ष लाने के लिए व्यवहार में अनुकरण की प्रवृत्ति ही उत्पन्न करनी पड़ती है कि प्रेरणा कम, अनुशासन ही अधिक व्यावहारिक होता है ।

अनुकरण का प्रयोग इस कार्य के लिए आवश्यक है क्योंकि अनुकरण मनुष्य की मूल प्रवृ में से है । हमने पहले बताया है कि अनुकरण सामाजिक जीवन का व्यापक गुण है । आ समाजों में पुरानी पीढ़ी के जीवित व्यक्तियों का अनुकरण होता है या उन मृत व्यक्तियों का जि किसी प्रथा का पुनःस्थापन किया था । जिन समाजों की सभ्यता प्रगतिशील है उनमें उन का अनुकरण किया जाता है जिन्होंने किसी नवीन विचार, प्रथा अथवा कार्य की सृष्टि की शक्ति वही है किन्तु दोनों में विरोधी ढंग से प्रयुक्त होती है ।

आदिम समाज के सम्वन्ध में सामाजिक अनुशासन का जो हमने फिर से विचार किया है जो बाहर से लादा जाता है तथा जो स्वाभाविक ढंग से उन्हें क्रियाशील करता है वह कठिन बौद्धिक सम्पर्क स्थापित कर सकता है, वह घनिष्ठ व्यक्तिगत तादात्म्य ला सकता है जिसके सम् में अफलातून ने कहा था कि यही एक ढंग है जिससे एक व्यक्ति से दूसरे तक दार्शनिक वि लाये जा सकते हैं । इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि मानव-समूह में जो जड़ता है उ अफलातून की प्रणाली से विजय नहीं प्राप्त की जा सकती । वहुसंख्यक जनता को अल्पसं के साथ ले जाने के लिए यह आदर्श ढंग तो है कि व्यक्तिगत बौद्धिक सम्पर्क स्थापित किया ज किन्तु उसे सफल बनाने के लिए व्यावहारिक ढंग सार्वजनिक सामाजिक अनुशासन आवश्यक है यही आदिम मानव का अभ्यास है । और जब नये नेता कार्यक्षेत्र में प्रवेश करते हैं तब जनता अपने संग ले चलने के लिए और सामाजिक प्रगति के लिए यही ढंग सफल होता है ।

अनुकरण से वे सामाजिक सम्पदाएँ जैसे रुझान (ऐप्टिचूड) या संवेग (एमोशन) या वि (आइडिया) ग्रहण की जा सकती हैं जो ग्रहण करने वालों के पास प्रारम्भ में नहीं थीं और उन्हें कभी न प्राप्त होतीं यदि वे उनके सम्पर्क में न आये होते और उनका अनुकरण न करते जि पास ये सम्पदाएँ थीं । वास्तव में यह सरल ढंग है । आगे चलकर इस अध्ययन में हम देखें यह लक्ष्य की ओर जाने के लिए आवश्यक राह है किन्तु साथ ही साथ सन्देहपूर्ण भी है । क लाभ के साथ-साथ सभ्यता का इससे विनाश भी हो सकता है । किन्तु इस खतरे पर यहाँ वि करना असामयिक होगा ।

---

[१] बर्गसों : वही पुस्तक, पृ० ९८–९९ ।

(२) अलग होना और लौटना : व्यक्ति

गत अध्याय में हमने उन सर्जनशील व्यक्तियों के सम्बन्ध में अध्ययन किया है जो उच्चतम आत्मिक स्थिति को प्राप्त करते हैं और तब रहस्यात्मक पथ पर चलते हैं। हमने देखा है कि पहले वह भावातिरेक में समाधि की अवस्था को पहुँचते हैं और क्रियाहीन हो जाते हैं और तब इस क्रियाहीनता से पुनः नये और उच्चतर स्तर पर क्रियाशीलता की ओर आते हैं। ऐसी भाषा के प्रयोग से हम मनुष्य की मानसिक अनुभूति के शब्दों में सामाजिक उन्नति का वर्णन करते हैं। इसी दोहरी गति को, हम उस मनुष्य तथा जिस समाज का वह नेता है उसके भौतिक सम्बन्ध का वर्णन करें तो कह सकते हैं कि यह 'हट जाना और फिर लौटना' है। हट जाने पर वह व्यक्ति अपने अन्दर की शक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है। यह शक्ति शायद सुषुप्त रह जाती यदि वह व्यक्ति सामाजिक बाधाओं और सामाजिक उन्नति के लिए जो परिश्रम करना पड़ता है, उसका पहले थोड़े समय के लिए अनुभव न करता। वह अपने मन से अपने आप अथवा उन परिस्थितियों के कारण हट जाने को विवश हो, जिस पर उसका कोई वश नहीं है। दोनों अवस्थाओं में, हट जाने से ऐसा अवसर मिलता है कि वह एकान्तवासी (एंकराइट) बन सके। एंकराइट यूनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'वह जो अलग हो जाता है।' किन्तु एकान्तवास का कोई अभिप्राय नहीं है, न कोई अर्थ हो सकता है जब तक कि फिर लौट कर सक्रिय होने की बात न हो, जब तक वह उस सामाजिक वातावरण में फिर नये रूप में न आ जाय जिसमें से वह अलग हुआ था। वह सामाजिक प्राणी सदा के लिए अलग नहीं रह सकता। नहीं तो वह मानवता से अलग हो जायगा और अरस्तू के शब्दों में 'या तो पशु हो जायगा या देवता'। सारी प्रवृत्ति का उद्देश्य ही लौटना है। यही उसका मूल कारण है।

सिनाई पर्वत पर हजरत मूसा के अकेले जाने की जो सिरियाई कथा है उससे यह स्पष्ट है। मूसा यहवा[1] की आज्ञा के अनुसार पहाड़ पर उनसे बात करने गया था। ईश्वर ने केवल मूसा को पुकारा। इसरायल[2] के और सारे परिवार को दूर ही रहने के लिए कहा गया। मूसा को बुलाने का मुख्य उद्देश्य यही है कि नये नियमों को वह ले जाकर यहूदियों को दे क्योंकि वे इस योग्य नहीं हैं कि इन नियमों को प्राप्त कर सकें।

"और मूसा ईश्वर के पास गये। पहाड़ों में ईश्वर ने उसे पुकारा और कहा—'इस प्रकार तू याकूब के घराने वालों से कहेगा और इसरायल के पुत्रों से कहेगा।' और जब ईश्वर उससे बात समाप्त कर चुका तब उसने दो तख्तियाँ इस वार्ता के प्रमाण में दीं जिन पर ईश्वर के हाथ से लिखा था।"[3]

इसी प्रकार 'लौटने' का महत्त्व ई० चौदहवीं शती के अरबी दार्शनिक इब्न खलदून ने पैगम्बरी अनुभूति और पैगम्बरी धर्म प्रचार के अपने वर्णन में बताया है।

---

[1] यहूदियों के अनुसार ईश्वर का एक नाम।—अनुवादक

[2] याकूब का दूसरा नाम। यहूदियों के पूर्वज।

[3] एक्सोडस, १९ का ३ तथा २१ का १८। देखिए, मासिम का, १९ वाँ अध्याय।

‘मनुष्य की आत्मा का जन्मजात लक्षण है कि वह अपने मानवी स्वभाव को त्याग फरिश्तों का स्वरूप ग्रहण करे । क्षण भर के लिए फरिश्ता बन जाय । यह क्षण उतने ही काल रहता है जितना पलक मारने में लगता है । और फिर चला जाता है । उसके पश्चात् आ पुनः अपने मानवी स्वभाव को ग्रहण कर लेती है । इसी काल में फरिश्तों के बीच वह उस स को ग्रहण करता है जो उसे मनुष्यों तक पहुँचाना है। ”[१]

इस्लामी पैगम्बरी के इस दार्शनिक व्याख्या में हम हेलेनी दर्शन का प्रतिविम्ब देखते है अफलातून का गुफा वाला रूपक । इस वर्णन में साधारण मनुष्यों की उपमा वह गुफा में कैदियों से देता है जो प्रकाश की ओर पीठ किये उसमें खड़े हैं और उनके पीछे जो लोग चल रहे हैं उनकी परछाई गुफा की दीवार पर वे देखते हैं । ये कैदी समझते हैं कि जो छाया हम की दीवार पर देख रहे हैं वही वास्तविकता है क्योंकि इनके अतिरिक्त वे और कुछ देख नहीं पा फिर अफलातून कल्पना करता है कि एक कैदी एकाएक छोड़ दिया जाता है और उसे प्रकाश ओर मुँह फेरने और बाहर निकलने के लिए विवश किया जाता है । इस मुँह फेरने का प परिणाम यह होता है कि वह चकाचौंध में पड़ जाता है और भ्रमित हो जाता है। किन्तु स्थिति अधिक देर तक नहीं रहती । क्योंकि देखने की शक्ति उसमें मौजूद है और धीरे- उसकी आँखें बताती हैं कि वास्तविक संसार यह है । उसे फिर गुफा में भेज दिया जाता है वह फिर इस धुँधलके में उतना ही चकित और भ्रमित हो जाता है जितना प्रकाश में पहले जैसा पहले वह प्रकाश में जाने पर दुखी हुआ था वैसा ही फिर यहाँ लौटने पर दुखी होता है इस बार दुखी होने का कारण अधिक उपयुक्त है । क्योंकि जब वह अपने उन साथियों के आता है जिन्होंने कभी सूर्य का प्रकाश नहीं देखा है तब उसे विरोध के सामना करने का भय है ‘अवश्य ही लोग उस पर हँसेंगे और यह कहा जायगा कि उसके चले जाने का यही परिणाम कि वह अपनी दृष्टि को नष्ट कर के लौटा है । शिक्षा : ऊपर की ओर भी उठना मूर्खता है और उस हलचल मचाने वाले व्यक्ति को जो स्वतन्त्र करने तथा ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है यदि पकड़ जाय और मार डालने का अवसर मिले तो अवश्य ही मार डालेंगे ।’

रावर्ट ब्राउनिंग की कविता के पाठक इस स्थल पर उसकी लाजरस की कल्पना को स्म करेंगे । उसकी कल्पना है—लाजरस जो अपनी मृत्यु के चार दिनों बाद जी उठा ‘गुफा’ में लौ अपनी पहली अवस्था से भिन्न अवस्था में था । और वह इसी बेथानी के लाजरस का चा वर्ष के बाद वृद्धावस्था का विचित्र वर्णन करशीश के ‘ऐन एपिस्ल’ (एक पत्र) में वर्णन क है । करशीश एक अरबी चिकित्सक था जो घूमा करता था और अपनी दूकान के मालिक जानकारी के लिए बराबर विवरण भेजता था । करशीश के अनुसार बेथानी ग्राम के निवा बेचारे लाजरस को समझ नहीं पाये । उसे वह सरल ग्रामीण मूर्ख समझते थे । किन्तु करशी लाजरस की कहानी सुनी थी और वह गाँव वालों के विश्वास को ठीक नहीं समझता था ।

ब्राउनिंग का लाजरस ‘लौटने’ पर कुछ प्रभावकारी नहीं सिद्ध हुआ । न तो वह पैगम् हुआ न शहीद । अफलातून के दार्शनिक की भाँति उसके प्रति लोग उदार तो थे किन्तु उ

---

[१] इब्न खलदून : मुकद्दमात : बैरन एम० डी० स्पेन द्वारा फ्रेंच अनुवाद, जि० २, पृ० ४३

उपेक्षा करते थे। अफलातून ने 'लौटने' का जो स्वयं चित्रण किया है वह बहुत ही नीरस है और आश्चर्य होता है कि अपने ही बनाये दार्शनिक के प्रति वह इतना हृदयहीन है। किन्तु यदि अफलातूनी व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि नेता दार्शनिक ज्ञान प्राप्त करें तो साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह दार्शनिक हीन रह जाय। उनके ज्ञान उपलब्धि का अभिप्राय यह है कि वे दार्शनिक शासक बनें। अफलातून ने उन नेताओं के लिए जो प्रणाली बतायी है वह उसी पथ पर ईसाई सन्त (मिस्टिक) भी चले हैं।

पथ एक ही है, किन्तु जिस भावना से हेलेनी तथा ईसाई आत्माएँ चलीं वह अलग-अलग है। अफलातून यह मान लेता है कि स्वतन्त्र तथा ज्ञानप्राप्त दार्शनिक का व्यक्तिगत हित तथा इच्छाएँ उसके साथियों के हितों के प्रतिकूल हैं क्योंकि वे 'अंधकार' और मृत्यु की छाया में पड़े हुए हैं और दुख तथा लोहे की शृंखला में बँधे हैं।'[1] बन्दियों का जो कुछ भी हित हो, अफलातून का दार्शनिक अपने सुख और पूर्णता की पूर्ति नहीं कर सकता। क्योंकि (उसके अनुसार) एक बार जब दार्शनिक को प्रकाश मिल गया उसके लिए उत्तम बात यही होगी कि वह गुफा के बाहर प्रकाश में सदा सुख में रहे। हेलेनी दर्शन का मुख्य सिद्धान्त यह रहा है कि जीवन की सबसे अच्छी अवस्था ध्यान की अवस्था है। इसके लिए यूनानी शब्द की जगह अंग्रेजी शब्द थियरी (सिद्धान्त) है जिसके विपरीत हम लोग 'प्रेक्टिस' (व्यवहार) शब्द का व्यवहार करते हैं। पाइथोगोरस साधना के जीवन को कर्म के जीवन से बढ़कर मानते हैं और यही सिद्धान्त सारी हेलेनी परम्परा में व्याप्त है। प्राचीन काल से लेकर हेलेनी समाज के नव-अफलातूनी युग तक इस समाज का विघटन हो रहा था। अफलातून का विश्वास था कि उसके दार्शनिक कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर संसार के कार्यक्षेत्र में उतरेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने ऐसा नहीं किया, एक कारण हो सकता है कि अफलातून की पहले की पीढ़ी में हेलेनी सभ्यता को धक्का लगा जिससे वह कभी फिर स्थिर न हो सकी। हेलेनी दार्शनिकों ने कर्मक्षेत्र में क्यों नहीं पदार्पण किया इसका कारण स्पष्ट है। उनकी नैतिक सीमा विश्वास की एक भूल का परिणाम है। उन्होंने समझा कि इस आत्मिक ओडेसी की जो यात्रा उन्होंने आरम्भ की थी उसका अन्तिम तथा पूर्ण ध्येय ध्यान में मग्न होना ही है, लौटना नहीं। उन्होंने समझा कि ध्यान से कर्तव्य क्षेत्र में लौटना जिस कार्य में वे रहते हैं उसका बलिदान है। उनकी रहस्यवादी अनुभूति में उस मुख्य ईसाई प्रेम के गुण की कमी थी जिसके वशीभूत होकर ईसाई सन्त ध्यान की स्थिति से उतर कर नैतिक तथा भौतिक मलिनता की ओर आये जहाँ संसार के लोगों के उद्धार की आवश्यकता थी।

अलग होने और लौटने का कार्य मनुष्य के जीवन की ही विशेषता नहीं है जो मनुष्यों और उनके साथियों के सम्बन्ध में दिखाई देती है। जीव मात्र की यह विशेषता है। वनस्पति जगत् के जीवन में भी मनुष्य को इसका भास होता है जब वह कृषि की ओर देखता है। इसी कारण खेती के सम्बन्ध में उसकी आशा और निराशा की भावना बन गयी है। अन्न के प्रति वर्ष समाप्त होने और फिर उपजने की कथा और कर्मकाण्ड (रिचुअल) में ऐसा रूप दिया गया है मानो वे

---

[1] साम (बाइबिल में) १०७, १०।

मनुष्य हैं। जैसे कोरे या पर्सिफोनी[१] का अपहरण और फिर लौटना या डायोनिसस, एडोनि ओसाइरिस अथवा जो कुछ भी—अन्न के अथवा वर्ष के देवता का स्थानीय नाम हो उनकी और पुनर्जन्म का यही अभिप्राय है। उनकी पूजा अथवा उनकी कथा विभिन्न नामों से जगह उसी का रूपक प्रदर्शित करती हैं और उतनी ही व्यापक हैं जितना स्वयं खेती का का

इसी प्रकार मनुष्य की कल्पना ने अपने जीवन का रूपक पेड़-पौधों के अवसान (विदड़िन तथा पुनर्जीवन में स्थापित किया। और इस रूपक के ही आधार पर मृत्यु से द्वंद्व किया यह समस्या मनुष्य के मन को, उन्नतिशील सभ्यताओं में, उसी समय चिन्तित करने लगी जब महान् व्यक्ति साधारण जनता से अलग होने लगते हैं।

कुछ लोग पूछेंगे : 'मृत लोग कैसे जी जाते हैं? और किस शरीर से वे आते हैं?'

'ए मूर्ख, जो कुछ तू बोता है वह जीवन इसीलिए धारण करता है कि वह मरे और जो तू बोता है वह इस शरीर में नहीं बोता जिस शरीर में वह फिर उपजेगा, बल्कि केवल दाना है। चाहे गेहूँ हो या कोई दूसरा दाना;'

'परन्तु ईश्वर जैसा उसका मन होता है वैसा शरीर प्रदान करता है, और हर एक बीज शरीर देता है.....'

'इसी प्रकार मृत व्यक्ति का पुनर्जीवन भी है। विकृति (करप्शन) में वह बोया जा (मरता है) और पावनता में वह पुनर्जीवित होता है'

'अप्रतिष्ठा में वह बोया जाता है, प्रतिष्ठा में वह उगता है, दुर्बलता में वह बोया जात शक्ति लेकर उगता है,'

'प्राकृतिक शरीर में बोया जाता है, आध्यात्मिक शरीर में वह उगता है,'

'और इसलिए लिखा है : 'पहला मनुष्य आदम, जीवित आत्मा के रूप में बनाया अन्तिम आदम, सजीव करने वाली आत्मा के रूप में....'

'पहला मानव मिट्टी का है, धरती का, दूसरा स्वर्ग का मालिक।'[२]

ऊपर के अवतरण में जो कोरिंथियनों को पाल के पहले पत्र से लिया गया है, चार वि लगातार प्रस्तुत किये गये हैं और प्रत्येक पहले से ऊँचा है। पहला विचार यह है कि हम पुनर्जीवन उस समय देखते हैं जब शरत् में फसल की समाप्ति हो जाती है और वसन्त में फिर आगमन हम देखते हैं। दूसरा विचार यह है कि अनाज का पुनर्जीवन मनुष्य के पुनर्जीवन भविष्यवाणी है। यह सिद्धान्त हेलेनी रहस्यवाद के पहले का है। तीसरा विचार यह है मनुष्य का पुनर्जीवन सम्भव है और उसकी प्रकृति में परिवर्तन भी होने की सम्भावना होती वह परिवर्तन ईश्वर द्वारा उस काल में होता है जो उसकी मृत्यु और पुनर्जीवन के बीच आता

---

[१] पर्सिफोनी एक यूनानी देवी थी। जीयूस की पुत्री। वह जब फूल चुन रही थी (प्लूटो) उसे लेकर भाग गया। जब तक वह पाताल में थी, पृथ्वी की देवी ने पृथ्वी में उत्पन्न होना बन्द कर दिया। अन्त में जीयूस ने उसे पाताल से बुलवाया। उसका हरण लौटना अनाज के बोने तथा उगने का प्रतीक है।

[२] कोरिंथियन्स १५.३५–८, ४२–५, ४७।

कहा जाता है कि मृत व्यक्ति के दूसरे रूप धारण करने का प्रमाण यही है कि बीज फूल तथा फल का रूप ग्रहण करता है। मनुष्य की प्रकृति में यह परिवर्तन यों होता है कि उसमें अधिक सहनशीलता, सौन्दर्य, शक्ति तथा आध्यात्मिकता के गुण आ जाते हैं। इस अवतरण में चौथा विचार अन्तिम है और उदात्त है। पहले और दूसरे मानव की कल्पना में मृत्यु की समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया गया और व्यक्ति के पुनर्जीवन को थोड़ी देर के लिए बढ़-चढ़कर माना गया है। दूसरा मानव स्वर्ग का मालिक है। उसके आगमन को पाल एक नयी जाति की सृष्टि के रूप में स्वागत करता है जो एक व्यक्ति में निहित होकर आता है जो 'न्याय का देवता' है, जो स्वयं ईश्वर से प्रेरणा प्राप्त करता है और अपनी प्रेरणा से अपने साथी दूसरे मानवों को अनुप्राणित करता है और महामानव के स्तर पर उन्हें उठाने की चेष्टा करता है।

अलग होने और फिर शक्ति तथा वैभव के साथ लौटने का अभिप्राय रहस्यवादी आत्मिक उन्नति में देखा जा सकता है। यही भावना वनस्पति जगत् में है, यही भावना मनुष्य ने मृत्यु के पश्चात् के सम्बन्ध में जो अनेक कल्पनाएँ हैं उसमें भी है। जिसमें अमरता की भावना है या नीची श्रेणी से उच्च श्रेणी में परिवर्तन का भाव है। यह विश्वव्यापी विषय है। इसकी बुनियाद पर अनेक प्राचीन पौराणिक कल्पनाएँ हैं। इन कल्पनाओं द्वारा सार्वभौमिक सत्य प्रकट किया गया है।

इसी अभिप्राय का परिवर्तित रूप ऐसे त्यक्त शिशुओं की पौराणिक कहानियाँ हैं। राजकुल में उत्पन्न बच्चा फेंक दिया जाता है। कभी-कभी स्वयं पिता या प्रपिता उसे छोड़ आते हैं, जिन्हें स्वप्न द्वारा सूचना मिलती है कि शिशु गद्दी ले लेगा (जैसे ओडिप्स और परस्यूस की कथा में) उन्हें सपने में अथवा देववाणी द्वारा सूचना मिलती है कि बच्चा मेरी गद्दी छीन लेगा, कभी (जैसे रोपुलस की कहानी में) गद्दी हड़पने वाला फेंक आता है। उसे यह भय होता है कि बड़ा होने पर यह बालक बदला लेगा, और कभी-कभी (जैसा कि जेसन, ओरिस्टीज़, जीयूस, होरस, मूसा और साइरस की कहानियों में.) मित्र ही बच्चे को उसकी रक्षा के लिए हटा देते हैं। उन्हें भय होता है कि दुष्ट उनकी हत्या कर डालेगा। आगे कथा में त्यक्त शिशु चमत्कारिक ढंग से सुरक्षित हो जाता है और कहानी के अन्तिम भाग में यह बालक जिसका जीवन कठिनाइयों में बीतता है, वीर और साहसी युवक हो जाता है और शक्ति तथा वैभव के साथ अपना राज्य पाता है।

ईसा की कहानी में भी हट जाने और लौटने का अभिप्राय बराबर मिलता है। ईसू राजपरिवार में जन्म लेता है। वह दाऊद का वंशधर है या ईश्वर का पुत्र है। स्वर्ग से आकर वह पृथ्वी पर जन्म लेता है। उसका नाम दाऊद के नागर वैतल्लहरु में होता है। फिर भी उसको सराय में स्थान नहीं मिलता और उसे चारे की नाँद में रख देते हैं जैसे मूसा नौका में व परस्यूस पिटारी में। अस्तबल में पशु मित्रवत् उसकी देख-रेख करते हैं जैसे रोपुलस की देख-रेख भेड़िये ने की और साइरस की कुत्ते ने। चरवाहे उसकी सेवा-सुश्रुषा करते हैं और उसका पालन-पोषण, रोपुलस, साइरस और ओडिपस की भाँति साधारण स्थिति का व्यवित करता है। इसके बाद हेरोद की हिंसक योजना से इस प्रकार रक्षा होती है कि उसे चुपके से मिस्र भगा ले जाते हैं जिस प्रकार मूसा की रक्षा फरऊन की हत्याकारी योजना से उसे सेवार में छिपा कर की गयी और जैसे जेसन को राजा पैलिआस से बचाने के लिए पीलियन पर्वत के दुर्गों में रख कर की गयी। और अन्त में दूसरे वीरों की भाँति ईसू भी अपने राज्य में लौटता है। वह जूडा के राज्य जेरूशलेम में लौटता

है और दाऊद के पुत्र के रूप में उसका स्वागत होता है। और उत्कर्ष में वह स्वर्ग के रा प्रवेश करता है।

ईसू की ये सब बातें ऐसे त्यागे बच्चों की कथाओं के समान हैं किन्तु बाइबिल में अलग और लौट आने का जो अभिप्राय है उसके और रूप भी हैं। ज्यों-ज्यों ईसू को ईश्वरत्व की आ अनुभूति होती है त्यों-त्यों क्रमशः इसकी भी अभिव्यक्ति होती है। जब जान के बपतिस्मे के ईसू को अपने मिशन का ज्ञान होता है, वह चालीस दिनों के लिए वन में चला जाता है और आ बल प्राप्त कर वहाँ से लौटता है। इसके पश्चात् जब ईसू को ज्ञात होता है कि मेरे मिशन से मृत्यु की सम्भावना है, वह पहाड़ों में चला जाता है जहाँ उसमें परिवर्तन होता है। इस अनु के पश्चात् मृत्यु के लिए तैयार होकर वह लौटता है। इसके पश्चात् जब वह सूली पर चढ़ा जाता है और मनुष्यों की भाँति उसकी मृत्यु हो जाती है, वह कब्र में जाता है जहाँ से पुनर्जीवन कर अमरता प्राप्त करता है। और अन्त में जब उसका आरोहण होता है, वह स्वर्ग को जाता है इसलिए कि 'फिर आयेगा और जीवित तथा मृत लोगों के प्रति न्याय करेगा और राज्य का कभी अन्त न होगा।'

अलग होने और लौट जाने के अभिप्राय को लेकर जो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ ईसू के जीव हैं उसी के समान और भी उदाहरण हैं। ईसू के पहाड़ों में चले जाने के ही समान मूसा के मौ में चले जाने की बात भी है। पहाड़ों में जो ईसा का परिर्तन हुआ वैसा ही मूसा का परि सीनाई पहाड़ पर हुआ। ईश्वरीय प्राणी (ईसू) की मृत्यु और उसके पुनर्जीवन की बात हैं रहस्यवादी कथाओं में पहले आ चुकी है। वह महान् व्यक्ति जिसका अवतरण होने वा और जो इस सृष्टि-प्रलय के समय सूत्रधार होगा जरथूष्ट्री पुराण में उसकी कल्पना त्राता के में की गयी है, और यहूदी पुराण में मसीह और 'ईश्वर के पुत्र' के रूप में की गयी है। किन्तु पुराण में एक बात है जिसका कोई पहले का दृष्टान्त नहीं है। वह उस व्यक्ति की है जो ऐतिहा व्यक्ति हो और पहले पृथ्वी पर साधारण मनुष्य के रूप में रहा हो और फिर मृत्यु के पश्चात् अथवा मसीहा के रूप में लौट कर आये। यह अन्तःप्रज्ञा का प्रकाश, अनन्त भूतकालात्मक की कल्पना और अनन्त वर्तमान में कृषि के धार्मिक कृत्यों की कल्पना उस ऐतिहासिक मानव रूप में परिवर्तित की गयी है जो चेष्टा करके अपने उद्देश्य को प्राप्त करती है। दूसरी बार लौटने की भावना में अलग होने और लौटने का अभिप्राय गम्भीर आध्यात्मिक तात्पर्य है।

अन्तःप्रज्ञा का प्रकाश, जिसमें ईसाइयों ने दोबारा लौटने की कल्पना की है, किसी विशेष तथा देश की चुनौती के फलस्वरूप की गयी होगी। वह आलोचक जो यह समझने की भूल क है कि किसी वस्तु में इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है जो उसकी उत्पत्ति के समय उसमें होती है, वह इस ईसाई सिद्धान्त की इसलिए उपेक्षा करेगा कि इसका आरम्भ निराशा में हुआ हो वह सोचेगा कि यह निराशा उस समय आदिम ईसाई समाज में हुई होगी जब उनका प्रभु और बिना उस परिणाम के चला गया जिसे देखने के लिए लोग इच्छुक थे। उसकी हत्या कर गयी, और जहाँ तक सोचा जा सकता था, उसकी मृत्यु से उसके अनुगामियों का भविष्य अन्धका हो गया। यदि उन्हें अपने प्रभु के मिशन को आगे बढ़ाना है तो उन्हें प्रभु के जीवन की अस के काँटे को इस प्रकार निकालना होगा कि उसके भूतकाल के जीवन को भविष्यकाल में परि कर दें, वे इस बात का प्रचार करें कि वह फिर से शक्ति और वैभव से पूर्ण होकर आयेगा।

यह सत्य है कि दोबारा आने के सिद्धान्त को और समाजों ने भी मान लिया है, जिन्हें उसी प्रकार की निराशा या कुण्ठा हो गयी। उदाहरण के लिए, जब आर्थर वर्बर अंग्रेज आक्रमणकारियों पर विजय नहीं पा सका तो पराजित ब्रिटनों ने यह कथा बनायी कि आर्थर फिर आयेगा। जब उत्तर माध्यमिक काल में जर्मन पश्चिमी ईसाई जगत् में अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सके तब उन्होंने यह कथा गढ़ी कि सम्राट् फ्रेडरिक बारबरोसा (११५२–९० ई०) फिर आयेंगे।

"उस हरे-भरे मैदान के दक्षिण-पश्चिम की ओर, जो साल्जबुर्ग पर्वत के चारों ओर है, बड़ा पहाड़ उनटर्संबुर्ग खड़ा है। उसी के नीचे से एक सड़क घूमती हुई बखटेसगेडेन झील की तराई की ओर गयी है। वहीं चूने के पत्थरों की चट्टानों में एक स्थान है जहाँ मनुष्य का जाना बहुत कठिन है। वहाँ के किसान एक काली कन्दरा यात्रियों को दिखाते हैं और कहते हैं कि उसी के अन्दर बारबरोसा अपने वीरों के साथ मंत्रमुग्ध निद्रा में सोया है। जब पहाड़ की चोटी पर कौवे न मँडरायेंगे, और नाशपाती के पेड़ फूलेंगे वह अपने योद्धाओं के साथ घाटी में आयेगा और जरमनी में शान्ति, शक्ति और एकता का स्वर्णयुग लायेगा।"[1]

इसी प्रकार मुसलिम जगत् में शीया समाज की कल्पना है। जब युद्ध में ये हार गये और प्रताड़ित वर्ग हो गये उन्होंने कल्पना की कि बारहवें इमाम (पैगम्बर के दामाद अली की बारहवीं पीढ़ी) मरे नहीं बल्कि एक कन्दरा में जा बैठे हैं जहाँ से अपने अनुगामियों को भौतिक तथा आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं और एक दिन प्रतिज्ञा के अनुसार मेंहदी के रूप में आयेंगे और अत्याचार के शासन का अन्त करेंगे।

किन्तु यदि हम एक बार फिर पुरानी ईसाई अभिव्यक्ति के अनुसार दूसरी बार आने के सिद्धान्त की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि वास्तव में वह उस आध्यात्मिक वापसी का भौतिक रूपक है जो शिष्यों (अपासिल्स) के हृदय में उनके पराजित प्रभु ने अंकित कर दिया था। जब शिष्यों ने यह निश्चय किया कि भौतिक रूप से तो हमारे प्रभु चले गये किन्तु अपने साहसी मिशन की पूर्ति का कार्य हमारे सुपुर्द कर गये। थोड़े समय के भ्रम निवारण और निराशा के पश्चात् शिष्यों के साहस और विश्वास ने फिर क्रियात्मक पुनर्जीवन प्रदान किया और वह बाइबिल के 'एक्टस' में पौराणिक भाषा में लिखी गयी है जिसमें कहा गया है कि पवित्र आत्मा 'पेंटिकास्ट'[2] के दिन फिर आयेगी।

अलग होने और लौट आने का क्या वास्तव में अभिप्राय है यह समझ लेने के बाद अब हम इसी दृष्टि से मनुष्य के इतिहास की प्रक्रिया का प्रयोगात्मक सर्वेक्षण करेंगे। क्रियाशील व्यक्तियों और क्रियाशील अल्पसंख्यकों में किस प्रकार ऐसी ही घटना हुई है। इस प्रकार की क्रिया के विख्यात उदाहरण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मिलते हैं। योगियों, सन्तों, राजनीतिज्ञों, सैनिकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों और कवियों में तथा राष्ट्रों, राज्यों और धर्मों के इतिहासों में हमें ऐसी घटनाएँ मिलती हैं। जिस सिद्धान्त को हम प्रमाणित करना चाहते हैं उसी सचाई को

---

[1] जेम्स ब्राइस : द होली रोमन एम्पायर, अध्याय ११—अन्त।

[2] पेंटिकास्ट : जिस दिन यहूदियों की मिस्र वालों से मुक्ति हुई उसके बाद का पचासवाँ दिन। फसल काटने के बाद इस दिन उत्सव होता है।—अनुवादक

वाल्टर बेजहाट ने इस प्रकार लिखा है : 'सब बड़े राष्ट्रों की तैयारी गुप्त ढंग से और लोगों छिपाकर हुई है । सारे आकर्षणों से अलग उनका निर्माण हुआ है ।'[1]

अब हम विभिन्न उदाहरणों को देखेंगे । सर्जनात्मक व्यक्तियों से हम आरम्भ करेंगे।

सन्त पाल

टारसस के पाल का जन्म यहूदी परिवार में ऐसे युग में हुआ था जब सीरियाई समाज हेलेनीवाद का आक्रमण हो रहा था और जो रुक नहीं सकता था । अपने जीवन के प्रथम का उसने ईसा के यहूदी अनुगामियों पर अत्याचार किया । उत्साही यहूदियों की दृष्टि में ये समाज में भेद उत्पन्न कर रहे थे । अपने जीवन के अन्तिम काल में इसने शक्ति बिलकुल ओर लगायी । नयी भावना का प्रचार किया जिसमें कहा कि 'जहाँ न यूनानी है न यहूदी, खतना और बिना खतना वाले, बर्बर या सीथियाई (सीथियन) पराधीन या स्वाधीन ।'[2] और इसे सम्प्रदाय के नाम पर यह सान्त्वना युक्त प्रचार किया जिस पर पहले अत्याचार किया था। के जीवन का यह अन्तिम अध्याय सर्जनात्मक अध्याय था । पहला अध्याय मिथ्या अध्याय दोनों अध्यायों के बीच बहुत बड़ा व्यवधान था । दमिश्क जाते हुए जब उसे एकाएक प्र प्राप्त हुआ, पाल ने जीवित मनुष्यों से बातचीत नहीं की बल्कि, अरब चला गया । तीन साल वह यरुशलेम आया और तब पुराने शिष्यों से मिलकर क्रियाशील हुआ ।

सन्त बैनेडिक्ट

नरसिया का बेनेडिक्ट (४८०–५४३ ई० सम्भवतः) उसी समय था जब हेलेनी समाज की हिचकियाँ ले रहा था । अपने घर अंब्रिया से उसे रोम भेजा गया था कि उच्च वर्ग के परम्प शास्त्रों का (ह्युमैनिटीज़) अध्ययन करे । वहाँ के जीवन का उसने विरोध किया और प्रार जीवन में ही कहीं जंगल में चला गया । तीन साल तक एकान्तवास करता रहा । उसके जीव उस समय पलटा खाया जब वह जवान हुआ और उसने एक मठ वाले समाज का अध्यक्ष हो स्वीकार किया, पहले सुवियाको की घाटी में और उसके बाद मांटे कैसिनो में । अपने जीव इस अन्तिम काल में इस सन्त ने शिक्षा की नयी प्रणाली निकाली और उस पुरानी शिक्षा के स पर, जिसका बचपन में उसने विरोध किया था, इसे प्रचारित किया । मांटे कैसिनो का मठ अं मठों का जन्मदाता हुआ जो बढ़ते गये और सुदूर पश्चिम तक केनेडिक्टी शिक्षा प्रसारित करते सच पूछिए तो यह शिक्षा-व्यवस्था इस नये सामाजिक संगठन की आधार-शिला थी जो पु हेलेनी व्यवस्था के ध्वंसावशेष पर पश्चिमी ईसाई जगत् ने स्थापित किया ।

बेनेडिक्ट की व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग था शारीरिक श्रम और इसका मुख्य अं खेतों में कृषि कार्य । बेनेडिक्टी आन्दोलन आर्थिक स्तर पर था और कृषि का पुनःस्थापन था । हैनिबली युद्ध में जो इटली की आर्थिक व्यवस्था नष्ट हो गयी थी उसके स्थान पर यह प सफल पुनःस्थापन था । बेनिडिक्टी व्यवस्था से वह उपलब्धि हुई जो न तो ग्रैकनों[3] के

---

१. वालटर बेजहाश : फिजिक्स एण्ड पोलिटिक्स, १० वाँ संस्करण, पृ० २१४ ।

२. कोलोशियन्स ३, २२ ।

३. ग्रेकस नाम के तीन रोमन शासक ।—अनुवादक.

सम्बन्धी कानूनों से न रोमन साम्राज्य के खाद्य पदार्थ सम्बन्धी कानूनों से हुई। क्योंकि ये कानून राज्य की ओर से लादे गये थे और ऊपर से नीचे की ओर इनका कार्य-संचालन होता था, किन्तु बेनेडिक्टी व्यवस्था में व्यक्तिगत प्रेरणा थी, धार्मिक उत्साह था और नीचे से ऊपर की ओर इनका कार्य होता था। इस आध्यात्मिक सजीवता के कारण बेनिडिक्टी समूह ने इटली के आर्थिक जीवन को ही नहीं परिवर्तित किया, इसने आल्पस के उत्तर के प्रदेशों में जंगलों के काटने, दलदलों के सुखाने और खेतों तथा पशुओं के चरागाहों के तैयार करने में वही पथ-प्रदर्शकों का काम किया जो उत्तरी अमरीका में फ्रांसीसी, और ब्रिटिश जंगल काटने वालों ने किया था।

सन्त ग्रेगरी महान्

बेनेडिक्ट की मृत्यु के तीस वर्ष बाद ग्रेगरी को, जो रोम में नागरिक शासक था, असम्भव कार्य का सामना करना पड़ा। ५७३ ई० में रोम की वही अवस्था थी जो वियना की १९२० ई० में। रोम शतियों तक एक बड़े साम्राज्य की राजधानी होने के कारण महान् नगर हो गया था। किन्तु एकाएक अपने सारे प्रान्तों से अलग हो गया था और उसके सब ऐतिहासिक कार्य समाप्त हो गये और उसे अपने पाँव पर खड़ा होना पड़ा। जिस साल ग्रेगरी रोम का प्रशासक (प्रिफेक्ट) हुआ रोम का शासन क्षेत्र प्रायः उतना ही रह गया था जितना नौ सौ साल पहले था। उसके पहले जब रोमनों ने इटली के आधिपत्य के लिए सैमनाइटों से युद्ध करना आरम्भ किया। किन्तु जिस क्षेत्र को पहले केवल व्यापारिक नगर का भरण-पोषण करना पड़ता था उसे अब पराश्रयी राजधानी का पालन करना पड़ा। इस नयी परिस्थिति का सामना करने में पुरानी व्यवस्था असमर्थ थी। इस रोमन शासक ने इसे भलीभाँति अनुभव किया और कटु अनुभव के परिणाम-स्वरूप ग्रेगरी भौतिक संसार से बाद में दो वर्षों के लिए अलग हो गया।

पाल की भाँति तीन वर्षों तक वह अन्तर्धान रहा। इस अवधि के बाद उसकी योजना थी कि मैं स्वयं अपने मिशन को पूरा करूँ जिसे उसने बाद में अपने प्रतिनिधि से कराया। जब वह पोप द्वारा रोम में बुलाया गया उसका मिशन था मूर्तिपूजक अंग्रेजों को ईसाई बनाना। अनेक पदों पर रहकर और अन्त में जब वह स्वयं पोप के पद पर आसीन हुआ (५९०–६०४ ई०)। उसने तीन महान् कार्य किये। उसने इटली के तथा सागर पार के ईसाई धर्म द्वारा शासित राज्यों के शासन का पुनःसंगठन किया, उसने इटली के साम्राज्य वाले अधिकारियों तथा लोंबार्डी आक्रमण-कारियों के बीच समझौता कराया और रोम के पुराने साम्राज्य के स्थान पर, जो अब नष्ट हो गया था, नये साम्राज्य की नींव डाली। यह रोमन साम्राज्य सैनिकों के बलपर नहीं स्थापित किया गया बल्कि मिशनरी उत्साह से बना। और इसने संसार के ऐसे नये देशों पर विजय प्राप्त की जहाँ पुरानी रोमन सेना पहुँची भी नहीं और जिसके अस्तित्व की कल्पना भी सीपियों या सीजरों ने नहीं की थी।

बुद्ध

गौतम बुद्ध सिद्धार्थ भारतीय संसार में संकटकाल में पैदा हुए थे। उसने देखा कि मेरी राजधानी कपिलवस्तु लूटी गयी। और मेरे परिवार के लोगों की शाक्यों की हत्या हुई। प्राचीन भारत के जो अभिजात्य (एरिस्टोक्रेटिक) गणतन्त्र थे, जिनमें शाक्य समाज भी था, गौतम के काल में धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था और उसके स्थान पर बड़े स्तर पर एकतंत्रीय (आटोक्रेटिक) राजतन्त्र की स्थापना हो रही थी। गौतम अभिजात्य कुल में जन्मा था। जब उस वर्ग पर नयी

सामाजिक शक्तियों का आक्रमण हो रहा था । इसका उत्तर गौतम ने संसार को त्याग क क्योंकि वह संसार उसके पूर्वजों के समान अभिजात्य लोगों के अनुकूल नहीं रह गया था। साल घोर तपस्या करके उसने प्रकाश की खोज की । जब वह अपना व्रतभंग कर संसार लौटने वाला था, उसे प्रकाश मिला और जब उसे प्रकाश मिल गया, उसने अपना जीवन को प्रदान करने में बिताया । यह प्रकाश अच्छी तरह लोगों में पहुँचे, इसलिए उसने कु बनाये । इस प्रकार एक संघ बनाया जिसका केन्द्र और मुखिया वह बना ।

मुहम्मद

मुहम्मद का जन्म रोमन साम्राज्य के बाहरी सर्वहारा प्रदेश में अरब के रेगिस्तान में हुआ था जब रोमन साम्राज्य और अरब का सम्बन्ध बहुत संकटपूर्ण था । ईसाई संवत् तथा सातवीं शती में यह स्थिति पराकाष्ठा को पहुँच गयी जब रोमन साम्राज्य की सं प्रभाव अरब में पहुँचने लगा । अरब की ओर से इसके प्रतिकार में कुछ सजीव प्रतिक्रिया थी। यह प्रतिक्रिया मुहम्मद का चरित था (जिसका जीवन काल सम्भवत: ५७०-६३ इन्हीं के जीवन ने निश्चय कर दिया कि इस प्रतिक्रिया का क्या रूप हो । मुहम्मद के जी दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं द्वारा यह हुआ । दोनों घटनाएँ 'अलग होने और लौटने' के पर आश्रित हैं ।

मुहम्मद के समय रोमन साम्राज्य के सामाजिक जीवन में दो बातें ऐसी थीं जिन प्रभाव अरबी आलोचकों के जीवन पर पड़े बिना नहीं रह सकता था । और उन दोनों का अभाव था । एक तो धर्म में एकेश्वरवाद और दूसरा शासन में विधि और व्यवस्था । के जीवन का यही कार्य था कि इन दोनों तत्त्वों को 'रूम' के सामाजिक जीवन में अरबी माध्यम से कार्यान्वित करना । और अरबी एकेश्वरवाद तथा अरबी शासन-व्यवस्था का विधान इस्लाम धर्म में स्थापित करना । उसने इस धर्म को इतनी गति तथा शक्ति प्र और एक व्यवस्था अरब के बर्बरों की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए उसके आ बनायी थी । उस व्यवस्था ने अरब की सीमा को पार करके अतलान्तक सागर से यूरेशियन स्टेप तक सारे सीरियाई संसार पर विजय प्राप्त कर ली ।

मुहम्मद के जीवन भर का यह कार्य जो उसके चालीसवें वर्ष में आरम्भ हुआ (६०९ ई०) दो बार में समाप्त हुआ । पहली दशा में मुहम्मद ने केवल धार्मिक मिशन प दिया । दूसरे दौर में धार्मिक कार्य शिथिल हो गया और राजनीतिक मिशन इतना गया कि धार्मिक कार्य दब-सा गया । मुहम्मद के जीवन के पहले अंश का धार्मिक मि समय आरम्भ हुआ जब वह पन्द्रह वर्ष बाद ग्राम के जीवन की ओर लौटे । यह पन्द्रह उनका जीवन कारवाँ के व्यापारी का था जब वह रोमन साम्राज्य के उत्तरी स्टेप के किनारे सीरियाई रेगिस्तानी नगरों तथा अरब के नखलिस्तानों के बीच आया-जाया क दूसरा दौर धर्म से मिला राजनीतिक मिशन का था । यह उस समय आरम्भ हुआ जब अपने निवास-स्थान मक्का से दूसरे नखलिस्तान मशरिब को गये जिसे मदीना कहते हैं अलग हो जाने को हिजर: कहते हैं । मुसलमान लोग हिजर: को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते वह इस्लामी संवत् का आरम्भ भी मान लिया गया है । मक्का से मुहम्मद को भागना प

सात साल के निर्वासन के पश्चात् (६२२–९ ई०) वह मक्का लौटे। क्षमा प्राप्त भगोड़े के रूप में नहीं, आधे अरब के अधिकारी होकर।

मेकियावली

मेकियावली (१४६९–१५२७ ई०) फ्लारेंस का नागरिक था। जब वह पचीस साल का था तब फ्रांस के आठवें चार्ल्स ने, सन् १४९४ में फ्रांसीसी सेना लेकर आल्प्स को पार किया और इटली को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वह ऐसी पीढ़ी में हुआ जब उसकी अवस्था ऐसी थी कि उसे वह समय याद था जब इटली में फ्रेंच आक्रमण के पहले सुख और शान्ति का जीवन था। वह इतने दिनों तक जीवित रहा कि उसने वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष देखे जो आल्प्स के उस पार वाली अथवा समुद्र पार की शक्तियाँ एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए और नेतृत्व प्राप्त करने के लिए इटली में संघर्ष कर रही थीं। और उनमें कभी एक शक्ति तथा कभी दूसरी शक्ति ने इटली के नागरिक राज्यों की सत्ता छीन ली। इटली में इटली के बाहर की शक्तियों के आक्रमण का सामना मेकियावली की पीढ़ी को करना पड़ा और उससे अनुभूति भी उन्हें प्राप्त हुई। यह ऐसी अनुभूति थी जो उस पीढ़ी के इटालियनों के लिए कठिन थी क्योंकि उनके अथवा उनके पितामहों के सामने ऐसी परिस्थिति ढाई सौ साल से कभी उत्पन्न नहीं हुई थी।

स्वभावतः मेकियावली में बड़ी राजनीतिक क्षमता थी और अपनी प्रतिभा का प्रयोग करने की उसमें तीव्र लालसा थी। भाग्यवश वह फ्लारेंस का नागरिक था जो उस प्रायद्वीप का प्रमुख नागरिक राज्य था। अपनी योग्यता के बल पर वह उन्तीस साल की अवस्था में सरकार का सचिव हो गया। पहले फ्रांसीसी आक्रमण के चार साल बाद सन् १४९८ में उसने यह पद ग्रहण किया। अपने सरकारी कार्यों के बीच उसे इन बर्बर शक्तियों का निजी ज्ञान प्राप्त हुआ। चौदह साल के शासन के इस अनुभव के बाद जीवित इटालियनों में उसके अतिरिक्त कोई नहीं रह गया था जो इटली के राजनीतिक उद्धार के लिए सफलता से कार्य कर सकता। उसी समय फ्लारेंस की राजनीति का चक्र ऐसा घूमा कि वह निकाल दिया गया। सन् १५१२ में वह राज्य के मन्त्रिपद से हटाया गया और दूसरे ही वर्ष वह बन्दी बना लिया गया और उसे अनेक यंत्रणाएँ दी गयीं। यद्यपि वह जीवित छूट गया किन्तु जेल से छूटने का मूल्य उसे इस प्रकार चुकाना पड़ा कि उसे फ्लारेंस के गाँव में अपने फारम पर ग्रामीण जीवन बिताना पड़ा। उसके जीवन पर घोर विपत्ति आयी किन्तु इस व्यक्तिगत चुनौती का सामना करने के लिए उसमें पर्याप्त शक्ति थी और उस शक्ति का उसने उपयोग किया।

ग्राम में निवासित होने के कुछ ही दिनों बाद उसने अपने एक पुराने मित्र और साथी को एक पत्र लिखा। उसमें पूरे ब्योरे के साथ और विनोदात्मक तटस्थता से उसने लिखा है कि मैं किस प्रकार का जीवन अब बिताने जा रहा हूँ। प्रातःकाल उठकर दिनभर वह, जिस नयी परिस्थिति में आ गया था उसके अनुसार, सामाजिक कार्यों तथा खेल-कूद और क्रीड़ा में अपना जीवन बिताता था। किन्तु इसी में वह अपना क्रियाकलाप समाप्त नहीं कर देता था। संध्या को जब मैं घर लौटता हूँ, पढ़ने के कमरे में चला जाता हूँ, दरवाजे पर मैं अपना ग्रामीण वस्त्र जो कीचड़-मिट्टी से सना होता है उतार देता हूँ और दरबारी वस्त्र धारण करता हूँ। और इस प्रकार फिर कपड़े पहनकर प्राचीन काल के लोगों के साथ पुराने महलों में प्रवेश करता हूँ। वहाँ मेरे आतिथेय

बड़े प्रेम से मेरा स्वागत करते हैं और मैं ऐसे पदार्थ का भोजन करता हूँ जो वास्तव में मेरा भो
है और जिसके लिए मैंने जन्म लिया था ।

इसी विद्याव्यसन के दिनों में 'द प्रिंस' की कल्पना हुई और वह लिखी गयी । इसके अ
अध्याय में 'इटली को बर्बरों से मुक्त करने का उद्‌बोधन है ।' और इससे पता चलता है कि
मेकियावली ने इसे आरम्भ किया तब उसका अभिप्राय क्या था । एक बार फिर उसने
सामयिक इटली की राजनीति के सम्बन्ध में विचार प्रकट किया । इस आशा से कि शायद
भी मौलिक सर्जनात्मक विचारों द्वारा लोगों में वह शक्ति उत्पन्न कर सके, जो कुंठित हो गयी
और इटली की राजनीतिक समस्या का समाधान उपस्थित हो सके ।

किन्तु जो राजनीतिक आशा 'द प्रिंस' से जाग्रत हुई वह सफल नहीं हुई । लेखक के तात्का
लक्ष्य तक वह नहीं पहुँच सकी । इसका यह अर्थ नहीं है कि पुस्तक असफल रही । मेकिया
खेत से लौटकर रात-रात भर प्राचीन काल के महापुरुषों के बीच जो लिख रहा था तो उस
यह अभिप्राय नहीं था कि साहित्य के माध्यम से व्यावहारिक राजनीति को कार्यान्वित क
अपनी कृतियों द्वारा मेकियावली बहुत ऊँचे धरातल पर पहुँच कर लौटा जहाँ से उसका प्र
संसार पर इससे कहीं अधिक पड़ा जितना वह फ्लारेंस राज का मन्त्री होकर पहुँचा सकता
विवेचन (कथार्सिस) की उन चमत्कारिक घड़ियों में जिनमें आत्मपीड़ा से वह ऊपर उठ चुका
उसने द प्रिंस, द डिसकोर्सेज़ आन लिबी, दि आर्ट आव वार, तथा द हिस्ट्री आव फ्रांस, ऐसे म
बौद्धिक ग्रन्थों का निर्माण किया । हमारे आधुनिक पश्चिमी राजनीति दर्शन के ये बीज हैं ।

दान्ते

इससे दो सौ साल पहले इसी नगर के इतिहास में इसी प्रकार का एक उदाहरण मिलता है
दान्ते ने उस समय तक अपना कार्य पूरा नहीं किया जब तक वह अपने नगर से निष्कासित नहीं
गया । फ्लारेंस में दान्ते बीत्रिस से प्रेम करने लगा । उसने अपने सामने ही दूसरे की पत्नी के
में उसकी मृत्यु देखी । फ्लारेंस में उसने राजनीति में प्रवेश किया और वहाँ से वह निकाल दि
गया और वहाँ फिर न लौटा । परन्तु फ्लारेंस की नागरिकता भले ही छिन गयी वह विश्व
नागरिक हो गया । क्योंकि विदेश में जिस प्रतिभा ने असफल प्रेम के कारण असफल राजनीति
प्रवेश किया, उसी के द्वारा उसके जीवन की कृति 'डिवाइना कामीडिया' लिखी गयी ।

(३) अलग होना और लौटना : सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग

हेलेनी समाज के विकास के दूसरे अध्याय में एथेन्स

अलग होने और लौटने का बड़ा स्पष्ट उदाहरण दूसरे सम्बन्ध में हमारे सामने आया है
वह है हेलेनी समाज के उस समय का एथीनियनों का व्यवहार जब ईसा के पहले आठवीं श
जनसंख्या की समस्या उनके सामने आयी ।

हमने देखा कि इस चुनौती के प्रति उनका पहला रुख केवल नकारात्मक था । अपने
पड़ोसियों की भाँति उसने समुद्र पार उपनिवेश नहीं बनाये, न उसने स्पार्टनों की भाँति दूसरे
राज्यों पर आक्रमण करके, उनको विजय करके, वहाँ के निवासियों को दास बनाया । उस
में जब तक उसके पड़ोसियों ने उसे छेड़ा नहीं एथेन्स अकर्मण्य रहा । किन्तु जब स्पार्टा के

प्रथम क्लियोमिनीस ने लेसिडिमोनियन शासन में मिलाने की चेष्टा की पहले-पहल उसकी सुषुप्त प्रबल शक्ति का संकेत मिला। लेसिडिमोनियन शक्ति का बलपूर्वक सामना करते हुए और उपनिवेश बनाने की क्रिया से अपने को दूर रखते हुए दो सौ साल तक एथेन्स हेलेनी संसार से अलग रहा। किन्तु ये दो सौ साल निष्क्रियता के नहीं थे। इसके विपरीत, अलग रहकर उसने साधारण हेलेनी समस्या का अपना एक एथेनी समाधान निकाला। यह सुलझाव, उपनिवेश स्थापित करने के हेलेनी कार्य और स्पार्टा के समाधान से अधिक अच्छा था। क्योंकि इनसे क्रमशः ह्रास हो रहा था। जब उसने अपने मन के अनुसार समय लेकर अपनी परम्परागत संस्थाओं को नये जीवन के अनुकूल बना लिया तभी वह अखाड़े में उतरा। किन्तु जब वह आया तब इतनी शक्ति लेकर जैसी हेलेनी इतिहास में कभी पैदा नहीं हुई थी।

एथेन्स ने अपने लौटने की घोषणा फारसी (परशियन) साम्राज्य को ललकार कर की। उस समय एथेन्स ही था जिसने एशियाई यूनानी विद्रोहियों की प्रार्थना ४९९ ई० पू० में सुनी और उस दिन से बराबर यूनान तथा सीरियाई सार्वभौम राज्य के बीच के पचास वर्षीय युद्ध में यूनानियों की सहायता की। ईसा के पूर्व पाँचवीं शती से दो सौ सालों के हेलेनी इतिहास में ऐथेन्स की भूमिका उसके नितान्त विपरीत थी जो दो सौ साल पहले थी। इस दूसरे काम में हेलेनी अन्तर-राज्यों के राजनीतिक युद्धों में वह बराबर योगदान करता रहा और जब वे सिकन्दर के पूरवी योद्धा वीरों से परास्त हो गये तभी विवश होकर उन्होंने महान् हेलेनी शक्ति के पद को छोड़ा। जब ई० पू० २६२ में मैसेडन के युद्ध में वे पराजित हो गये तब भी हेलेनी इतिहास में योगदान से वे हट नहीं गये। सैनिक तथा राजनीतिक दौड़ में हार जाने के पहले ही उन्होंने और क्षेत्रों में 'यूनान के शिक्षक' बनने का पद प्राप्त कर लिया था।

पश्चिमी समाज के विकास के दूसरे अध्याय में इटली

मेकियावली के सम्बन्ध में लिखते हुए हमने बताया था कि तेरहवीं शती के मध्य से जब होहेन्सटाउफेन विनष्ट हुआ था और पन्द्रहवीं शती के अन्त तक जब फ्रांसीसियों ने आक्रमण किया—इन दो सौ वर्षों तक इटली आलपीय पार (ट्रांस आलिपाइन) अर्ध बर्बर सामन्ती झगड़ों से अलग रहा। इन ढाई सौ सालों तक अलग रहकर इटली ने विस्तृत नहीं, गम्भीर, भौतिक नहीं, आध्यात्मिक उन्नति की। वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, तथा साहित्य और सांस्कृतिक तथा सौंदर्यात्मक जगत् में मौलिक सर्जन किया जिनकी तुलना यूनान के ईसा के पूर्व पाँचवीं तथा चौथी शताब्दी की उपलब्धियों से की जा सकती है। वास्तव में इटालियनों ने प्राचीन यूनान प्रतिभा से प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने मृत यूनानी संस्कृति के भूत को जगाया और यूनानी उपलब्धियों को निरपेक्ष, क्लासिक और आदर्श माना जिसकी नकल की जा सकती है, किन्तु उनसे बढ़ा नहीं जा सकता। और हम लोगों ने उन्हीं के पद-चिह्नों पर चलकर क्लासिक शिक्षा की प्रणाली स्थापित की जो आजकल की तकनीकी शिक्षा की माँग के कारण हट रही है। और अन्त में यह कहा जा सकता है कि इटालियनों ने विदेशी सत्ता से सुरक्षा प्राप्त कर अपने प्रायद्वीप में जिसकी रक्षा संदिग्ध ही थी, ऐसे संसार का सर्जन किया जिसने पश्चिमी सभ्यता का स्तर समय से पूर्व इतना ऊँचा कर दिया कि केवल मात्रा का अन्तर नहीं रह गया, प्रकार (काइंड) का अन्तर हो गया। पन्द्रहवीं शती के अन्त तक उन्होंने अपने को दूसरे पश्चिम वालों से इतना ऊँचा समझा कि सचमुच, कुछ घमण्ड में आलपस के

पार और टाइरीन सागर के पार के लोगों को बर्बर कहकर इस शब्द को फिर जाग्रत किया और इस काल के ये 'बर्बर' इस प्रकार क्रियाशील हुए कि सांस्कृतिक इटालियनों से राजनी तथा सैनिक दृष्टि से श्रेष्ठ दिखाई दिये ।

प्रायद्वीप से इटालियन संस्कृति जब चारों ओर फैली, उसने सभी दिशाओं में लोगों के सां तिक विकास को जाग्रत किया । पहले उसने संस्कृति के स्थूल तत्त्वों को जीवित किया जैसे रा नीतिक संगठन तथा सैनिक तकनीक को । ऐसी बातों पर बहुत जल्द प्रसार का प्रभाव पड़ता है और जब 'बर्बरों' ने इन इटालियन कलाओं को भली प्रकार सीख लिया तब उन्होंने इटालि नगरराज्यों से अधिक व्यापक रूप में इसका प्रयोग किया ।

'बर्बर' लोग इटालियनों से इस संगठन में क्यों अधिक सफल हुए इसका कारण यह है उन्होंने इटालियनों से जो शिक्षा ग्रहण की उसके प्रयोग के लिए उनके सामने परिस्थिति उपयु थी । इटालियनों के सामने ऐसी परिस्थिति नहीं थी । इटालियनों की राजनीतिज्ञता को बाधा का सामना करना पड़ा । बर्बरों के लिए यह सरल हो गया क्योंकि 'शक्ति' सन्तुलन (बैले आव पावर) के एक सुव्यवस्थित नियम की सहायता उन्हें मिल गयी ।

शक्ति-सन्तुलन राजनीतिक गत्यात्मक शक्ति की एक प्रणाली है जो उस समय कार्यानि होती है तब समाज में उन विभिन्न राज्यों का संगठन बन जाता है, जो एक दूसरे पर निर्भर र हैं । जब इटालियन समाज पश्चिमी ईसाई जगत् से अलग हुआ तब इसी प्रकार के राज्यों परिवर्तित हुआ । इटली को पवित्र रोमन साम्राज्य (होली रोमन एम्पायर) से अलग करने जो आन्दोलन चला तो अनेक नगर-राज्यों का संगठन बन गया और प्रत्येक राज्य आत्मनि (सेल्फ डिटरमिनेशन) की चेष्टा करने लगा । इस प्रकार एक अलग इटालियन संसार का नि हुआ और इस इटालियन संसार में अनेक राज्यों का संगठन साथ-साथ हुआ । ऐसे संसार में श सन्तुलन का कार्य इस प्रकार होता है कि राज्यों की औसत क्षमता को राजनीति के प्रत्येक माप से जैसे क्षेत्रफल, जनसंख्या सम्पत्ति निम्न स्तर पर रखा जाता है । क्योंकि कोई राज्य यदि साधा औसत से किसी बात में बढ़ जाने का साहस करता है तो निकट के सभी राज्य प्रायः अपने उसपर दबाव डालने लगते हैं और शक्ति सन्तुलन का यह नियम है कि यह दबाव राज्यों के के केन्द्र में सबसे अधिक होता है और परिधि पर सबसे कम ।

केन्द्र का कोई राज्य यदि अपने अभ्युदय की चेष्टा करता है तो उसके पड़ोसी उसे देखते हैं और चतुराई से उसकी चेष्टा को निष्फल करते हैं । कुछ वर्गमीलों का राज कठिन संघर्ष विषय हो जाता है । इसके विपरीत परिधि वाले राज्यों में चढ़ा-ऊपरी कम होती है और प्रयत्न से भी परिणाम श्रेष्ठ होता है । संयुक्त राज्य (यूनाइटेड स्टेट्स) अतलान्तक से प्र सागर तक बिना रुकावट के बढ़ सकता है, रूस बालटिक से प्रशान्त सागर तक वि कर सकता है किन्तु फ्रांस या जरमनी की सारी शक्ति ऐलसेस या पोसेन को प्राप्त करने के पर्याप्त न होगी ।

पश्चिमी यूरोप के पुराने और सिकुड़े राष्ट्र-राज्यों के लिए आज जिस रूप में रूस और सं राज्य है, वैसे ही चार सौ साल पहले इटालियन नगर-राज्यों, फ्लारेंस, वेनिस तथा मिलन के उस समय का फ्रांस जिसे ग्यारहवें लूई ने, स्पेन को आरागोन के फरडिनैंड ने, और इंग्लैं आरम्भिक ट्यूडरों ने, राजनीतिक दृष्टि से इटालियन बना दिया था, उसी रूप में थे ।

तुलनात्मक दृष्टि से हम देख सकते हैं कि ईसा के पूर्व आठवीं, सातवीं तथा छठीं शती में एथेंस के अलग हो जाने में और ईसा की तेरहवीं, चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शती में इटालियनों के अलग हो जाने में बहुत कुछ समता है। दोनों स्थितियों में राजनीतिक दृष्टि से यह अलग हो जाना पूर्ण और दृढ़ था। दोनों स्थितियों में जो अल्पसंख्यक दल अलग हो गया, वह इस चेष्टा में लगा रहा कि सारे समाज के सम्मुख जो समस्याएँ हैं उनके निराकरण के उपाय ढूँढ़ निकाले जायँ। और दोनों अल्पसंख्यक दल जब उसका सर्जनात्मक कार्य समाप्त हो चुका, अपना पूरा समय बिताकर उसी समाज में लौटा जिसे कुछ समय के लिए उसने छोड़ दिया था और सारे समाज पर अपना छाप अंकित किया। यह भी है कि एथेन्स और इटली ने अलग होकर जिन समस्याओं का समाधान खोजा वे दोनों समान थे। जिस प्रकार यूनान में एटिका ने अलग से एक सामाजिक प्रयोगशाला में स्थानीय स्वावलम्बी, अपने में पूर्ण कृषि समाज को परस्परावलम्वी राष्ट्रीय औद्योगिक तथा व्यावसायिक समाज में परिवर्तन करने का सफल प्रयोग किया था उसी प्रकार पश्चिमी ईसाई जगत् में लोम्वार्डी और टसकनी ने किया। और जिस प्रकार एथेन्स में, उसी प्रकार इटली में परम्परागत संस्थाओं में नये जीवन के अनुसार आमूल परिवर्तन हुआ था। एथेन्स जब व्यापारिक तथा औद्योगिक राज्य बन गया तब राजनीतिक स्तर पर जहाँ जन्म के आधार पर अभिजात तंत्रीय (एरिस्टोक्रेसी) संविधान था उसके स्थान पर सम्पत्ति के आधार पर बुर्जुआ संविधान बना। औद्योगिक तथा व्यावसायिक मिलन या बोलोना या फ्लारेंस या सिएना पश्चिमी ईसाई जगत् के प्रचलित सामन्तवादी शासन-प्रणाली से नयी शासन-प्रणाली में परिवर्तित हो गया जिसमें प्रत्येक नागरिक और स्थानीय प्रभुत्व सत्ता वाली सरकार से सीधा सम्बन्ध हो गया, जिसमें प्रत्येक नागरिक में प्रभुत्व सत्ता निहित थी, इन मूर्त आर्थिक तथा राजनीतिक आविष्कारों तथा इटालियन प्रतिभाओं को और सूक्ष्म तथा अलौकिक कृतियों को इटली ने पन्द्रहवीं शती तथा उसके वाद आल्पस के पार के यूरोप में प्रसारित किया।

किन्तु इस समय से पश्चिमी ईसाई जगत् तथा हेलेनी इतिहास अलग-अलग चलते हैं। उसका कारण पश्चिमी ईसाई जगत् के इटालियन नगर-राज्यों तथा यूनान के एथेन्स की स्थिति में अन्तर था। एथेन्स नगर-राज्य था और नगर-राज्यों का संसार बन रहा था, किन्तु इटालियन नगर-राज्य जिस ढाँचे पर बना था वह संसार के भीतर एक संसार था और पश्चिमी ईसाई जगत् में मूलतः इस प्रकार का सामाजिक संयोजन नहीं हुआ था। इसका मूल आधार सामन्तवाद था। और पन्द्रहवीं शती के अन्त में पश्चिमी ईसाई समाज का अधिकांश सामन्तवादी आधार पर संगठित था, उस समय जब इटली के नगर-राज्य पश्चिमी समाज में फिर से मिल गये थे।

इस स्थिति में जो समस्या उत्पन्न हुई उसका समाधान दो प्रकारों से हो सकता था। इटली ने जो नयी सामाजिक परिस्थिति सामने उपस्थित की उसके अनुरूप बनने के लिए आल्पस पार यूरोप या तो अपनी प्राचीन सामन्तवादी पद्धति को त्याग देता और नगर-राज्य के आधार पर नये ढंग से संगठन करता, या इटालियन नये आविष्कारों को इस ढंग से परिवर्तित करता कि उनसे सामन्तवादी आधार पर काम लिया जा सकता और राष्ट्र-राज्य (किंगडम-स्टेट) का रूप ग्रहण करता। इस बात के होते हुए कि स्विटजरलैंड, स्वाविया, फ्रेंकोनिया और नेदरलैंड्स में नगर-राज्यों को पर्याप्त सफलता मिली थी, जहाँ आन्तरिक तथा सामुद्रिक मार्ग के मूल स्थानों का नियन्त्रण हैसियाटिक लीग के नगरों के हाथ में था, आल्पस के पार के लोगों ने नगर-राज्य वाला

समाधान नहीं स्वीकार किया । इसके परिणामस्वरूप पश्चिम के इतिहास का नया अध् आरम्भ होता है । यह भी अलग होने और लौट आने के महत्त्व का और उदाहरण है जिस परिणाम समझने योग्य है ।

पश्चिमी समाज के विकास के तीसरे अध्याय में इंग्लैंड

पश्चिमी समाज के सामने यह समस्या थी कि खेतिहर अभिजाततंत्रीय जीवन से बदल औद्योगिक लोकतंत्रात्मक जीवन में कैसे परिवर्तन हो और नगर-राज्य प्रणाली न अपनायी जा इस परिस्थिति का सामना किया स्विटजरलैंड, हालैंड और इंग्लैंड ने और अंग्रेजों ने इस समाधान निकाला । इन तीनों देशों को यूरोप के साधारण जीवन से अलग होने में यूरोप भौगोलिक स्थिति से बहुत सहायता मिली । स्विटजरलैंड को पर्वतों से, हालैंड को अपने बां से और इंग्लैंड को इंगलिश चैनल से । उत्तर माध्यमिक काल में जो नगर-राज्य बन रहे थे संकट से स्विटजरलैंड ने संघ का निर्माण करके अपने को बचाया । पहले हैप्सबर्ग से फिर ब की शक्ति से । डचों ने स्पेन से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की और सात संयुक्त प्रदेश बना महाद्वीप के देशों पर विजय प्राप्त की महत्त्वाकांक्षा को इंग्लैंड को त्याग देना पड़ा क्योंकि वर्षीय युद्ध में वह पराजित हो गया और कैथोलिक स्पेन के आक्रमण को उसने एलिजाबेथ के में डचों की भाँति विफल किया । और उस समय से लेकर १९१४–१९१८ के युद्ध तक अं की विदेशी प्रमुख नीति सदा यह रही कि महाद्वीप के मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय।

किन्तु ये तीन स्थानीय अल्पसंख्यक अपने अलग होने की नीति में समान स्थिति में नहीं स्विटजरलैंड के पहाड़ और हालैंड के बाँध का प्रभाव रुकावट में उतना नहीं था जितना इंग् चैनल का । डचों ने चौदहवें लूई से जो युद्ध किये उनसे वे पूर्ण रूप से अपनी पूर्वावस्था को नहीं थे और कुछ दिनों के लिए हालैंड तथा स्विटजरलैंड दोनों को नैपोलियन निगल गया था। ही डच तथा स्विस दोनों को यह असुविधा थी कि वे उस समस्या के समाधान में लगे थे जिसका ऊपर किया गया है, दो में से कोई भी केन्द्रीभूत राष्ट्र-राज्य नहीं था । केवल कैंटनों (प्रदेशों) नगरों के अदृढ़ संघ थे । परिणामत: इंग्लैंड के, और सन् १७०७ के मिलन के बाद ग्रेट ब्रिटे ऐंग्लो-स्काटिश संयुक्त राज्य को पश्चिमी ईसाई संसार के इतिहास में तीसरे अध्याय का करना पड़ा जैसा इटली ने दूसरे अध्याय में किया था ।

यह ध्यान देने की बात है कि इटली स्वयं नगर-राज्य की ईकाई की सीमा के बाहर जा था क्योंकि उसके अलग होने के समय के अन्त तक सत्तर या अस्सी नगर-राज्य विजय द्वारा या दस बड़े-बड़े समूह बन गये थे । किन्तु दो बातों में परिणाम समुचित नहीं हुआ । पहली तो यह कि ये नयी राजनीतिक इकाइयाँ यद्यपि पहले से बड़ी थीं फिर भी वे बर्बरों के आक्र को जिस काल में वे आरम्भ हुए, रोकने में असमर्थ थीं । दूसरी बात यह कि इन बड़ी इकाइ जो शासन-व्यवस्था बनी वह सदा नृशंस थी और नगर-राज्य के जो राजनीतिक गुण थे वे प्रणाली की प्रक्रिया में समाप्त हो गये । यह उत्तरकालीन इटली का निरंकुश शासन आल्प पहुँचा और उसे स्पेन में हैप्सबर्गों ने, वेलायों और बूरबनों ने फ्रांस में, आस्ट्रिया में भी है ने और प्रशा में होहेनजालनों ने अपनाया । किन्तु यह अपनाना अन्धी गली में जाने के था । क्योंकि किसी प्रकार के एक राजनीतिक लोकतंत्रीय शासन के बिना आल्पस के देश की पहले की वे आर्थिक उपलब्धियाँ नहीं प्राप्त कर सकते थे जिन्हें इटली ने नगर-राज्य की

व्यवस्था में प्राप्त की थी, जब वह खेतिहर परिस्थिति से व्यापारिक और औद्योगिक रूप में परिवर्तित हुआ।

फ्रांस और इंग्लैंड के विपरीत निरंकुश राजतन्त्र चुनौती थी जिसका सामना सफल ढंग से हुआ। आल्पस पार की राजनीतिक व्यवस्था प्राचीन पश्चिमी ईसाई संसार के समान उत्तराधिकार में मिली थी जो अंग्रेजी भी थी, फ्रेंच भी और स्पेनी भी। अंग्रेजों ने इस प्राचीन परम्परागत विधान में नयी जान फूँकी और नया कार्य उसे सौंपा। आल्पस पार की संस्थाओं की एक परम्परागत विशेषता यह थी कि राजा तथा राज्य के जनवर्ग के बीच समय-समय पर संसद अथवा कानफरेन्स हुआ करती थी। इसके दो कार्य थे। एक तो जनवर्ग अपने कष्टों के निराकरण के लिए कहता था और दूसरे राजा को धन देना स्वीकार करता था इसके बदले में कि हमारी उचित शिकायतें दूर की जायेंगी। आल्पस पार के इन राज्यों ने इस संस्था के क्रमशः विकास द्वारा अत्यधिक संख्या तथा अव्यावहारिक दूरी की, भौतिक––राजनीतिक समस्या का समाधान प्रतिनिधित्व रूपी वैध-फूट का आविष्कार करके किया अथवा फिर से ढूंढ़ निकाला। नगर-राज्य में संसद के कार्यों में स्वयं योगदान करने का प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार या कर्तव्य था। बड़े-बड़े दुःसाध्य सामन्ती राज्यों को इस व्यवस्था को प्रतिनिधि के रूप में परिवर्तित किया गया कि ये प्रतिनिधि वहाँ जायँ जहाँ संसद का अधिवेशन हो।

समय-समय पर प्रतिनिधियों के सम्मेलन का यह सामन्ती रूप राजा तथा प्रजा के सम्पर्क के लिए बहुत उपयुक्त व्यवस्था थी। किन्तु वह मौलिक रूप में उस कार्य के लिए बिलकुल अनुपयुक्त थी जो सत्रहवीं शती में इंग्लैंड ने सफलतापूर्वक अपने अनुकूल बनाया। अर्थात् धीरे-धीरे राजा से वह शक्ति जो राजनीतिक सत्ता की कुंजी थी, अपने हाथ में कर ली।

क्या कारण था कि इंग्लैंड ने उस चुनौती का सफलतापूर्वक सामना किया जिस प्रकार की चुनौती में कोई आल्पस के पार का राज्य सफल नहीं हो सका। इसका उत्तर यही है कि महाद्वीप के सामन्ती राज्यों की अपेक्षा इंग्लैंड छोटा था और उसकी सीमाएँ स्पष्ट ढंग से निर्धारित थीं। इसी कारण वहाँ पड़ोसी राज्यों की अपेक्षा बहुत पहले सामन्ती राज के विपरीत राष्ट्रीय जीवन का विकास हो गया। यदि यह कहा जाय कि पश्चिमी ईसाई समाज के इतिहास के मध्य अर्थात् दूसरे अध्याय में अंग्रेजी राजतन्त्र का जो बल था उसी के परिणामस्वरूप तीसरे अध्याय में संसदीय शासन ने सफलता पायी तो विरोधाभास न समझना चाहिए। दूसरे अध्याय में किसी शासन का इतना शक्तिशाली अधिकार और कठोर अनुशासन नहीं था जितना विलियम द कांकार का, प्रथम और दूसरे हेनरियों का और पहले और तीसरे एडवर्डों का। इन प्रबल शासकों के शासन में इंग्लैंड राष्ट्रीय एकता में संयोजित हुआ जैसा फ्रांस, या स्पेन या जरमनी नहीं हुआ था। इस परिणाम का एक कारण और था, वह था लन्दन का प्रभुत्व। आल्पस पार के पश्चिमी राज्यों में कोई एक नगर ऐसा नहीं था जो दूसरों से श्रेष्ठ रहा हो। सत्रहवीं शती के अन्त में जब फ्रांस अथवा जरमनी की जनसंख्या की तुलना में इंग्लैंड की जनसंख्या नगण्य थी और स्पेन या इटली की जनसंख्या से कम थी, लन्दन यूरोप का सबसे बड़ा नगर था। यह कहा जा सकता है कि इंग्लैंड ने इटालियन नगर-राज्य को राष्ट्रीय पैमाने पर अपने अनुकूल बनाने की समस्या का समाधान दूसरे आल्पस पार राज्यों की अपेक्षा पहले कर लिया था। इसके कारण थे उसका छोटा आकार, उसकी निश्चित सीमाएँ, उसके बलशाली राजे और एक बहुत बड़ा नगर। वास्तव में यह एक नगर-राज्य की सघनता तथा आत्मजागरण का विस्तृत रूप था।

इन तमाम अनुकूल परिस्थितियों के होने पर भी अंग्रेज जाति ने इटालियन शासन की द के पुनर्जागरण की नयी शराब मध्ययुगीन आल्पस पार के संसदीय शासन की नयी बोतल में और बोतल टूटा नहीं। यह वैधानिक विजय है जिसका कारण आश्चर्यजनक और असाधा शक्ति ही कही जा सकती है। यह असाधारण शक्ति जिसने शासन के कार्य तथा उसकी आलो में पार्लमेन्ट की विजय पश्चिमी समाज के लिए प्राप्त की उन अंग्रेज सर्जनशील अल्पसंख्यकों देन है जो आरम्भिक काल में महाद्वीप की उलझनों से अलग हो गये थे। एलिजावेथी काल सत्रहवीं शती के अधिकांश भाग का यह समय था। जिस समय चौदहवें लुई की चुनौती स्वी करके मार्लवरो के प्रतिभापूर्ण नेतृत्व में अंग्रेजों ने महाद्वीप के क्षेत्र में अंशतः पुनः प्रवेश किय तब यूरोपीय महाद्वीप के लोग देखने लगे कि अंग्रेज क्या करते रहे हैं। फ्रेंच लोगों की भाषा 'एंग्लोमेनी'[1] का युग आरम्भ हो गया था। माटेंसकू ने अंग्रेजों की उपलब्धियों की प्रशंसा और इसे गलत समझा। वैधानिक राजतन्त्र के रूप में 'एंग्लोमेनी' उस वारूद की ढेरी में था जि फ्रांस की राज्यक्रान्ति की आग भड़काई और यह साधारण ज्ञान की बात है कि उन्नीसवीं समाप्त होकर बीसवीं शती जब आरम्भ हुई संसार के सभी लोगों की आकांक्षा हुई कि अ राजनीतिक नग्नता को सांसारिक पत्तों के आवरण में छिपायें। पश्चिमी इतिहास के तीसरे अ के अन्तिम चरण में अंग्रेजी राजनीतिक संस्थाओं की पूजा स्पष्टतः उसी प्रकार है जैसे दू अध्याय के अन्तिम चरण में इटालियन संस्थाओं की पूजा। अंग्रेजों के यहाँ इसका सबसे स उदाहरण यह है कि शेक्सपियर के कथा वाले नाटकों के तीन चौथाई भाग इटालियन कहानि पर आधारित हैं। 'रिचर्ड द्वितीय' में शेक्सपियर इस इटली प्रेम की ओर संकेत करता है मजाक उड़ाता है यद्यपि यह प्रेम स्वयं उसकी रचनाओं में दिखाई देता है। यार्क का सुवे ड्यूक कहता है कि मूर्ख राजा निम्नलिखित बातों से बहक गया है—

'घमण्डी इटली के फैशनों के समाचार से,
जिसके रंग-ढंग को हमारी आलसी मर्कट की सी जाति
निम्न कोटि की नकल करने के लिए पीछे-पीछे चलती है।'

नाटककार अपने स्वाभाविक समय-दोषपूर्ण (एनाक्रानिस्टिक) ढंग से चासर के युग के सम्ब में वह बात कह रहा है जो उसके युग की थी। यद्यपि चासर के युग में इसका आरम्भ हो गया था

अंग्रेजों के संसदीय शासन का राजनीतिक आविष्कार आगे के उद्योगवाद के अंग्रेजी आवि के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण बना। वह लोकतंत्रीय शासन जिसमें कार्यकारी (ए क्यूटिव) उस संसद के प्रति उत्तरदायी है जिसे जनता ने चुना है तथा उद्योगवाद जिसमें कारख में मजदूर केन्द्रित होते हैं और मशीन द्वारा उत्पादन होता है, हमारे युग की दो महान् सं हैं। ये इसलिए चल सकीं कि इन्हीं के द्वारा पश्चिमी समाज उस समस्या का समाधान कर जिससे इटालियन नगर-राज्य की संस्कृति की राजनीतिक तथा औद्योगिक उपलब्धियों को रा राज्य के स्तर पर ले जा सके। और ये दोनों समाधान उस समय हुए जब इंग्लैंड का वह यु जिसे वाद के राजनीतिज्ञों ने 'महान्' कहा है।

---

[1] अंग्रेजी बातों के प्रति प्रेम।—अनुवादक

पश्चिम के इतिहास में रूस की भूमिका क्या होगी ?

जिस महान् समाज के रूप में हमारे पश्चिमी ईसाई जगत् का विकास हुआ है उसके समसामयिक इतिहास में हमें ऐसा आभास मिलता है जहाँ एक युग की प्रवृत्ति दूसरे युग की प्रवृत्ति के ऊपर छा जाती है और जहाँ पूरे समाज का एक भाग भविष्य की समस्याओं के समाधान के लिए अलग हो जाता है और समाज का शेष भाग पुरानी समस्याओं को सुलझाने में लगा रहता है। इससे पता चलता है कि विकास की प्रक्रिया चल रही है। पहले की इटालियन समस्याओं के समाधानों से जो नयी समस्याएँ उत्पन्न हुईं उनका समाधान इंग्लैंड में हुआ। देखना यह है इन अंग्रेजी समाधानों ने नयी समस्याएँ तो नहीं खड़ी कर दीं। हम यह बात जानते हैं कि हमारी ही पीढ़ी में लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की विजय को दो नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। विशेषत: उद्योगवाद की आर्थिक प्रणाली में इस प्रणाली का अर्थ यह है कि संसार के बाजार के लिए कुशल तथा मूल्यवान् स्थानीय उत्पादन हो। इसके लिए संसार को ध्यान में रखकर कोई ढाँचा बनाना पड़ता है। और लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद, दोनों में मानव-स्वभाव में अधिक व्यक्तिगत आत्मनियन्त्रण, पारस्परिक सहिष्णुता तथा सार्वजनिक सहयोग की अपेक्षा होती है जिसका मानव प्राणी अभी तक अभ्यासी नहीं रहा है। क्योंकि इन नयी संस्थाओं ने मनुष्य के सारे सामाजिक कार्यों में नयी सक्रियता उत्पन्न कर दी है। उदाहरण के लिए सब लोगों ने मान लिया है कि जिन सामाजिक तथा तकनीकी परिस्थितियों में आज हम हैं उनमें हमारी सभ्यता का अस्तित्व इसी प्रकार बचा रह सकता है कि आपसी मतभेदों के निपटारे के लिए युद्ध न किया जाय। यहाँ हम केवल इसी पर विचार करेंगे कि इन नयी चुनौतियों के कारण ऐसे नये उदाहरण मिलते हैं कि नहीं जहाँ कोई अलग हुआ हो और फिर लौटा हो।

इतिहास के ऐसे अध्याय पर जिसका अभी आरम्भ हुआ हो, कुछ कहना असामयिक होगा। किन्तु यह कहने का साहस तो किया ही जा सकता है कि इस समय जो रूसी परम्परावादी ईसाई समाज है क्या इसी प्रकार का कुछ नहीं है। हमने पहले कहा है कि रूसी साम्यवाद, पश्चिमी परदे में उस पश्चिमीकरण से अलग होने का कट्टरतापूर्ण प्रयत्न है जो दो सौ साल पहले महान् पीटर द्वारा हुआ था। और हमने देखा कि यह परदा चाहे-अनचाहे हटता जा रहा है। हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जो रूस अनिच्छा से पश्चिमी बना और जहाँ पश्चिम के विरोध में क्रान्तिकारी आन्दोलन हुआ उसने रूस को अधिक पश्चिमी बना दिया। किसी पश्चिमी सामाजिक सिद्धान्त का अनुगामी होने से ऐसा न हुआ होता। रूस तथा पश्चिम के इस संपर्क को हमने इस प्रकार व्यक्त किया है कि यह सम्बन्ध जो पहले दो विभिन्न समाजों का केवल ऊपरी सम्पर्क था वह उस बड़े समाज के आन्तरिक रूप में परिवर्तित हो गया जिस समाज का अब रूस अंग बन गया है। क्या हम इससे आगे बढ़कर यह कह सकते हैं कि रूस इस बड़े (यूरोपीय) समाज में सम्मिलित होने के साथ-साथ अपने साधारण जीवन से अलग होने की चेष्टा कर रहा है कि वह सर्जनात्मक अल्पसंख्यक के रूप में इस बड़े समाज की समस्याओं का समाधान खोजे ? यह सोचा जाता है और रूसी प्रयोग के प्रशंसकों का विश्वास है कि रूस पुन: इस बड़े समाज में सर्जनात्मक भूमिका अदा करने के लिए लौटेगा।

१२. विकास द्वारा विभिन्नता

हमने उस प्रक्रिया की छानबीन पूरी कर दी जिससे सभ्यताओं का विकास होता है जिन उदाहरणों की परीक्षा की है उससे पता चलता है कि सबमें प्रक्रिया एक ही है। तब होता है जब कोई व्यक्ति या अल्पसंख्यक दल या सारा समाज किसी चुनौती का करता है और यह सामना केवल चुनौती पर विजय ही नहीं पाता, बल्कि विजय प्राप्त करने के सामने नयी चुनौती उपस्थित कर देता है जिसका फिर उसे सामना करना पड़ा है। की यह प्रक्रिया समान हो सकती है किन्तु चुनौती का सामना करने वाले वर्गों की अनुभूति सी नहीं होती। समान चुनौतियों का सामना करने में विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ होती किसी एक समाज में जो विभिन्न समुदाय संयुक्त होते हैं उनकी अनुभूतियों की हम तुलना करें यह स्पष्ट हो जाता है कुछ परास्त हो जाते हैं, कुछ अलग होने और लौट आने की सर्जना क्रिया से विजय पा जाते हैं, कुछ ऐसे होते हैं जो न पराजित होते हैं न विजयी होते हैं। ये अस्तित्व बनाये रखते हैं और जब विजयी समुदाय उनको नयी राह दिखाता है तब उसी के चिह्नों पर चलते हैं। इस प्रकार प्रत्येक चुनौती में समाज में विभिन्नता उत्पन्न होती रहती और जितनी ही लम्बी चुनौती की शृंखला होती है उतनी ही विभिन्नता अधिक होती है। किसी एक विकास वाले समाज में, जिसमें सभी के लिए चुनौती एक-सी है, विकास के विभिन्नता उत्पन्न होती है, तो निर्णयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि जहाँ चुनौतियों में है वहाँ एक सी प्रक्रिया होने पर भी, एक विकासोन्मुख समाज दूसरे विकासोन्मुख समाज विभिन्न होगा।

इसका स्पष्ट उदाहरण कला के क्षेत्र में मिलता है। क्योंकि यह सर्वमान्य सिद्धान्त है प्रत्येक सभ्यता की अपनी कला की शैली होती है। और यदि हम किसी सभ्यता की देश और की सीमा निर्धारित करना चाहें तो सबसे निश्चित तथा सबसे सूक्ष्म कसौटी सौन्दर्यबोध है। उदाहरण के लिए मिस्र में जो कलात्मक शैलियाँ पायी जाती हैं, यदि उनका किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी 'प्रीडाइनास्टिक' युग की कला में। अभी मिस्री विशेषता नहीं आयी है और कोप्टिक कला ने मिस्री कला की विशेषताओं को त्याग दिया इस आधार पर हमें मिस्री सभ्यता के काल का पता चल सकता है। इसी परीक्षण के पर उस समय का पता लगा सकते हैं जब मिनोई समाज के आवरण से हेलेनी सभ्यता प्र और कब परम्परावादी ईसाई समाज के विकास के लिए उसका विघटन हुआ। मिनोई की शैली से हम यह जान सकते हैं कि मिनोई इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं में उसकी के क्षेत्र की सीमा कहाँ तक थी।

इसीलिए यदि हम स्वीकार कर लें कि कला के क्षेत्र में प्रत्येक सभ्यता की अपनी अलग शैली है तब हमें इसका पता लगाना होगा कि कला का जो विशेष गुण कला के क्षेत्र में है क्या वह सभ्यता के दूसरे क्षेत्रों, कार्यों तथा संस्थाओं में बिना प्रवेश किये रह सकता है। इस प्रकार

खोज में बहुत गहरे न जाकर हम इतना कह सकते हैं कि यह सर्वमान्य तथ्य है कि विभिन्न सभ्यताओं ने विभिन्न कार्यकलाप को महत्त्व प्रदान किया है। उदाहरण के लिए हेलेनी सभ्यता में सम्पूर्ण जीवन पर सौन्दर्यबोधात्मक दृष्टि रही है। यही उसकी विशेषता है। यूनानी विशेषण 'कैलोस', जिसका अर्थ है कलापूर्ण सुन्दरता, नैतिक सुन्दरता के लिए भी निस्संकोच प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत भारतीय सभ्यता में जिसमें हिन्दू सभ्यता भी सम्मिलित है जीवन के सभी क्षेत्रों में धार्मिक प्रवृत्ति व्यापक है।

जब हम अपनी पश्चिमी सभ्यता की ओर देखते हैं तब हमें अपनी प्रवृत्ति या रुझान पहचानने में कठिनाई होती है। यह तो स्पष्ट है कि इस सभ्यता का झुकाव यन्त्रों (मशीनरी) की ओर है। इसकी रुचि, चेष्टा तथा योग्यता इस ओर है कि विज्ञान के आविष्कारों का उपयोग भौतिक उद्देश्यों के लिए किया जाय और इसके लिए भौतिक तथा सामाजिक यन्त्र चतुराई से बनाये गये हैं। भौतिक यन्त्र जैसे मोटरकार, कलाई घड़ी, बम आदि और सामाजिक यन्त्र जैसे संसदीय संस्थाएँ, बीमा और सैनिक सज्जनन की प्रणालियाँ। यह हमारी प्रवृत्ति जितना हम समझते हैं उससे अधिक दिनों की है। दूसरी सभ्यताओं के श्रेष्ठ लोग इस 'यन्त्र युग' के बहुत पहले से पश्चिम वालों को भौतिकवादी कहकर घृणा करते रहे। बाइजांटी राजकुमारी एनाकोमिना ने जो इतिहासकार भी हो गयी है जब धर्म-युद्ध करने वालों को कलदार धनुष (क्रास-बो) का प्रयोग करते देखा, जिसमें यान्त्रिक चतुराई दिखाई देती थी, घृणा तथा भय से भर गयी। उसके युग में नयी चीज थी और यांत्रिक संहारक हथियारों के आविष्कार के शतियों पहले यह बन गया था। माध्यमिक काल के पश्चिमी मानव ने अनाकर्षक शान्तिपूर्ण कलाओं की अपेक्षा इस ओर अपनी बुद्धि और कौशल की श्रेष्ठ कृति इसी को समझा।

आजकल के कुछ पश्चिमी लेखक, विशेषत: स्पेंगलर ने विभिन्न सभ्यताओं की इन विशेषताओं का इतनी दूर तक अध्ययन किया है कि गम्भीर निदान मनमानी कल्पना तक पहुँच गया है। हमने इतना बता दिया है जिससे यह बात निश्चित हो जाती है कि किसी-न-किसी प्रकार का भेद अवश्य उत्पन्न होता है। साथ ही हमें इस बात का भय है कि समुचित अनुपात की भावना भी जाती रहेगी यदि हम एक बात की ओर ध्यान न देंगे, जोकि उतनी ही सत्य है जितनी पहली। वह यह कि मानव-जीवन तथा संस्थाओं में जो विभिन्नता दिखाई देती है वह केवल बाहरी है। इस विभिन्नता के आवरण में एकता छिपी हुई है और बाहरी विभिन्नता उस एकता को नष्ट नहीं करती।

हमने अपनी सभ्यताओं की तुलना पहाड़ पर चढ़ने वालों से की है। इसी उपमा के अनुसार चढ़ने वाले अनेक हैं किन्तु उनका प्रयत्न एक ही है। उसी चट्टान की एक ही शिला फलक से एक ही स्थान पर चढ़ने की सब चेष्टा कर रहे हैं। उनका ध्येय एक ही है। आन्तरिक एकता यहाँ स्पष्ट है। हम इस उपमा को बदलकर बीज बोने वाले की कहानी (द पैरेबल आव द सोवर) की उपमा देखें और सभ्यताओं से तुलना करें। जो बीज बोये गये वे अलग-अलग हैं, हर एक बीज का अपना अलग भविष्य है। बोने वाला एक है और एक ही प्रकार की फसल काटने की आज्ञा भी उसे है।

४

सभ्यताओं का विनाश

१३. समस्या का रूप

सभ्यताओं के विकास की समस्या की अपेक्षा उनके विनाश की समस्या अधिक स्पष्
वह उतनी ही स्पष्ट है जितनी उनकी उत्पत्ति की समस्या । सभ्यताओं की उत्पत्ति के
में कहना आवश्यक है कि इतनी सभ्यताएँ उत्पन्न हो गयीं और उनके अट्ठाईस प्रतिनि
नाम हमने गिनाये हैं । इनमें पाँच अविकसित सभ्यताएँ भी सम्मिलित हैं । अकाल
सभ्यताओं को छोड़ दिया गया है । अब हम कह सकते हैं कि इन अट्ठाईस में से अठारह
जो काल-कवलित हो गयी हैं । जो दस बची हैं वे हैं पश्चिमी समाज, निकट पूर्व का परम्परा
ईसाई जगत्, उसकी शाखा रूप में, इस्लामी समाज, हिन्दू समाज, सुदूर पूर्व समाज का
भाग, उसकी शाखा जापान में, और पोलिनेशियनों, एक्सिमो तथा खानावदोशों की
अविकसित सभ्यताएँ । यदि हम इन दस अवशिष्ट सभ्यताओं पर ध्यान दें तो हम देखें
पोलिनेशियाई और खानावदोश अपनी अन्तिम साँस ले रहे हैं और शेष सात या तो विना
ओर उन्मुख हैं या आठवीं अर्थात् पश्चिमी सभ्यता में विलीन हो जाने वाली हैं । इन सा
छः का विघटन होने लगा है । एक अपवाद है एसकिमो का जिसका विकास आरम्भ का
रुक गया था ।

विघटन का मुख्य लक्षण जैसा पहले बताया जा चुका है, यह है, जो अन्त में दृष्टिगोचर
है और वह पतन और विनाश का है वह यह है कि विघटन वाली सभ्यता सार्वभौम रा
साथ जबर्दस्ती राजनीतिक एकीकरण करके अपने अस्तित्व की रक्षा कुछ काल के लिए
है । पश्चिम के विद्यार्थी के लिए इसका क्लासिक उदाहरण रोमन साम्राज्य है जिसमें
समाज बलपूर्वक अपने इतिहास के अन्तिम अध्याय के पहले मिला लिया गया था । यदि
अपनी सभ्यता के अतिरिक्त शेष छः जीवित सभ्यताओं की ओर देखें तो हमें पता चलता
परम्परावादी ईसाई जगत् उसमानिया साम्राज्य के रूप में सार्वभौम राज्य में जा
था, रूस का परम्परावादी ईसाई संसार पन्द्रहवीं शती के अन्त में, जब मास्को और नोव
का एकीकरण हुआ था, सार्वभौम राज्य में सम्मिलित हो चुका था, हिन्दू सभ्यता मुगल सा
में और उसके बाद वृटिश राज के सार्वभौम राज्य में सम्मिलित हो गयी थी, सुदूर पूर्वी
मंगोल साम्राज्य में सम्मिलित हो चुकी थी जिसका पुनरुद्धार मंचुओं ने किया, सुदूर पूर्वी
की जापानी शाखा तोकूगावा शोगून राज्य में सम्मिलित हुई । इस्लामी समाज के विश्व-
आन्दोलन के सार्वभौम राज्य में विलीन हो जाने की सम्भावना है ।

यदि हम इस सार्वभौम राज्य की घटना को विनाश का लक्षण स्वीकार करें तो
अ-पश्चिमी सभ्यताएँ जो आज जीवित हैं वे पश्चिमी सभ्यता के संघात के पहले ही
रूप में विघटित हो चुकी थीं । इस अध्ययन में आगे हम इस मत पर विश्वास करेंगे

सभ्यताओं पर विजयपूर्ण बाहरी आघात हुआ है वे आन्तरिक रूप में मर चुकी थीं और विकास के योग्य नहीं रह गयी थीं । यहाँ हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि जीवित सभ्यताओं में हमारी सभ्यता के अतिरिक्त सब पतनोन्मुख हो चुकी हैं और विघटन के पथ पर हैं ।

और हमारी पश्चिमी सभ्यता ? अभी वह सार्वभौम राज्य की स्थिति तक नहीं पहुँची है । हमने पहले वताया है कि सार्वभौम राज्य विघटन की पहली मंजिल नहीं है और न अन्तिम । सार्वभौम राज्य के बाद 'अन्तःकाल' होता है और उसके पहले 'संकट का काल' होता है जो कई शतियों चलता रहता है । और यदि हम अपने युग में आत्मपरक भाव से इसी कसौटी पर विचार करें तो कह सकते हैं कि 'संकट का काल' निश्चित रूप से हमारी सभ्यता के लिए आरम्भ हो गया है । किन्तु सम्प्रति यह प्रश्न हम छोड़ देते हैं ।

हमने सभ्यताओं के विनाश की प्रकृति की परिभाषा बना दी है । आदिम मानव अतिमानव के जीवन की ऊँचाई तक पहुँचने के अनेक साहसपूर्ण प्रयास करता है और असफल होता है । उस महाप्रयास की दुर्घटनाओं का अनेक उपमाओं द्वारा वर्णन हमने किया है । उदाहरण के लिए हमने उनकी उन पर्वतारोहियों से तुलना की है जो गिर पड़ते हैं और मर जाते हैं या उन लोगों के समान जो वहाँ रह गये । जिस चट्टान से उन्होंने चढ़ना आरम्भ किया था और जीवित मृतक के समान वहाँ पड़े हुए हैं और ऊपर एक और चट्टान पर पहुँच कर विश्राम नहीं ले सके । इन विनाशों को हमने अ-भौतिक (नान-मैटीरियल) भाषा में इस प्रकार कहा—सर्जनात्मक व्यक्तियों अथवा अल्पसंख्यकों की आत्मा में सर्जनात्मक शक्तियों का अभाव । इस अभाव के कारण असर्जनात्मक जनसमूह को वे प्रभावित नहीं कर सकते । जहाँ रचना नहीं है वहाँ अनुकरण भी नहीं है । जो वंशी वाला अपनी कला भूल गया वह अपने सामने की भीड़ के चरणों में वैसी गति नहीं ला सकता कि वे नाच सकें । और यदि क्रोध में वह ड्रिल सरजंट या दासों का हाँकने वाला वन जाय और उन लोगों को, जिन्हें अपनी मोहनी शक्ति से वह नचा देता था न नचा सके और जवरदस्ती नाचने पर विवश करे, तो उसका अभिप्राय सफल नहीं हो सकता । जो लोग उसके साथ नहीं पाँव उठा सकते क्योंकि स्वर्गीय संगीत अब बन्द हो गया, वे चाबुक की चोट के कारण विद्रोह करेंगे ।

हमने देखा है कि वास्तव में, जव किसी समाज के इतिहास में कोई सर्जनात्मक अल्पसंख्यक समुदाय शक्तिशाली अल्पसंख्यक दल में परिवर्तित हो जाता है और बलपूर्वक वह स्थान अपने लिए वनाये रहना चाहता है जिसके योग्य वह नहीं है तो इस शासक वर्ग की मनोवृत्ति के परिवर्तन के कारण दूसरी ओर सर्वहारा अलग हो जाता है क्योंकि अपने शासकों के प्रति उसकी आस्था नहीं रह जाती, न वह उनका अनुकरण करता है वल्कि विद्रोह करता है । हमने यह भी देखा है कि जब यह सर्वहारा दृढ़ हो जाता है तब आरम्भ से ही उसके दो भाग हो जाते हैं । एक तो अन्दर का सर्वहारा होता है जो अकर्मण्य और शिथिल होता है, दूसरा सीमा के बाहर सर्वहारा होता है जो सम्मिलन का घोर विरोध करता है ।

इस प्रकार सभ्यताओं के विनाश के सम्बन्ध में तीन बातें हैं : अल्पसंख्यकों में (शासक वर्ग) रचनात्मक शक्ति का अभाव, तदनुसार बहुसंख्यक वर्ग में अनुकरण शक्ति का लोप और परिणामस्वरूप सारे समाज में एकता का अभाव । सभ्यताओं के विनाश की प्रवृत्ति का यह चित्र अपने सामने रखकर अब हम उनके कारणों का अध्ययन करें । इस अध्ययन के शेष अंश में यही खोज की जायगी ।

१४. नियतिवादी (डिटरमिनिस्टिक) समाधान

फिर सभ्यताओं का विनाश कैसे होता है, विवेचन करने के पहले हम अपनी प्रणा
अनुसार जिसमें इतिहास के ठोस संगत तत्त्वों को क्रम से एकत्र किया जाता है, समस्या के
समाधानों को फिर से देखें जो प्रमाण के लिए ऊँची उड़ान भरते हैं और ऐसे प्रमाणों के लि
तो ऐसे सिद्धान्तों का आधार लेते हैं जिन्हें वे कभी साबित नहीं कर सकते या ऐसे तथ्य व
जो मानव इतिहास की परिधि के बाहर है ।

मनुष्य की शाश्वत दुर्बलता है कि अपनी असफलताओं के कारण वह उन बातों को व
जो उसके नियन्त्रण के बाहर है, यह मानसिक प्रवंचना चतुर लोगों के मन में विशेषत: किसी स
के पतन और विनाश के समय होती है । हेलेनी सभ्यता के पतन और विनाश के समय
दार्शनिकों का यह सामान्य कथन था कि सामाजिक पतन का उन्हें दुख था किन्तु उनका
था कि यह रोका नहीं जा सकता क्योंकि यह विश्वव्यापी (कासमिक) जरा (सेनेसेन्स)
निश्चित और आवश्यक परिणाम है । ल्युक्रीशियस का दार्शनिक मत यही था (देखिए, डी
नेच्युरा, दूसरा खण्ड, ११, ११४४–७४), जब हेलेनी सभ्यता में संकट का काल आया ।
विषय पश्चिमी ईसाई जगत् के धार्मिक पक्ष सन्त साइप्रियन ने अपनी पुस्तक में लिखा है ।
के तीन सौ साल बाद हेलेनी सार्वभौम राज्य का पतन आरम्भ हुआ । वह लिखता है—'
जानना चाहिए कि युग का बुढ़ापा आ गया है । इसमें वह बल नहीं है जिससे वह खड़ा
न वह सजीवता और दृढ़ता है जिससे उसमें शक्ति आ सके ।··· जाड़े की वर्षा जिससे पृ
बीज को भोजन मिलता था कम हो गयी है, गर्मी की उष्णता भी जिससे फसल पकती है,
गयी है··· संसार को यह दण्ड मिला है, यह ईश्वर का नियम है, जो जन्मा है वह मरेगा
बढ़ा है वह जरावस्था को पहुँचेगा ।'

आधुनिक भौतिक विज्ञान ने इस सिद्धान्त का खोखलापन साबित कर दिया, कम से
सभ्यता इस युग में है उसके सम्बन्ध में यह ठीक है कि आज के भौतिक विज्ञान के पण्डित
हैं कि किसी सुदूर भविष्य में, जिसकी कल्पना नहीं हो सकती, विश्व की रचना धीरे-धीरे
जायगी क्योंकि पदार्थों का विकिरण हो रहा है । किन्तु जैसा हमने कहा है, वह भविष्य
से परे है । सर जेम्स जीन्स लिखते हैं :

'मानव जाति का भविष्य अंधकारपूर्ण समझते हुए हम कल्पना करें कि केवल दो अरब
तक यह जाति और जीवित रह सकती है । इतने ही दिन पृथ्वी की आज तक आयु है । उ
मानवता की उत्पत्ति के समय मनुष्य की आयु सत्तर साल की समझी जाती थी । मान
यद्यपि ऐसे घर में जन्म लिया था जो सत्तर साल पुराना था, मानवता स्वयं केवल तीन दिन
है । हम लोग नितान्त अनुभवहीन जीव हैं जो सभ्यता के प्रभात की प्रथम किरण के साम
हैं । समय पर प्रात:काल की शोभा साधारण दिन में बदल जायगी और कुछ सुदूर काल

प्रकाश संध्या के धुँधलके में परिवर्तित हो जायगा और फिर शाश्वत अंधकार। किन्तु इन बालकों को सुदूर भविष्य के सूर्यास्त पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है ।'[1]

इधर के वे पश्चिमी लोग जो सभ्यता के विनाश का भाग्यवादी या नियतिवादी समाधान बताते हैं वे भौतिक विश्व के भाग्य के साथ मानव सभ्यता का गठवन्धन नहीं करते। वे जरा और मृत्यु के नियम के अनुसार इसे बताते हैं जो इस संसार के सभी प्राणि-जगत् पर लागू होता है। स्पेंगलर का ढंग है कि वह पहले एक रूपक उपस्थित करता है और फिर वह उसके अनुसार तर्क करना आरम्भ करता है मानो वह कोई नियम किसी घटनाओं को देखकर उसके आधार पर बना हो और वह कहता है कि प्रत्येक सभ्यता उसी क्रम से चलती है जिससे मनुष्य। किन्तु उसके कथन का कोई प्रमाण नहीं है और हम देख चुके हैं कि समाज किसी दृष्टि से जीवित प्राणी के समान नहीं है। आत्मपरक (सबजेक्टिव) दृष्टि से समाज ऐसा क्षेत्र है जिसका ऐतिहासिक अध्ययन बुद्धिमानी से किया जा सकता है। वस्तुपरक (आब्जेक्टिव) दृष्टि से अनेक व्यवितयों के कार्यक्षेत्र के वे सामान्य कार्यों के अध्ययन के क्षेत्र हैं। ये जो जीवित प्राणी हैं उनके लिए यह सम्भव नहीं है कि वें अपनी छायाओं को मिलाकर अपने ही रूप का महान् व्यक्ति खड़ा कर दें और निर्जीव छाया में अपना प्राण फूँक दें। प्रत्येक व्यक्ति जो समाज का तथाकथित सदस्य होता है, वह शक्ति होता है जिससे उस समाज की आयु तथा इतिहास का निर्माण होता है। आग्रहपूर्वक कहना कि प्रत्येक समाज की आयु पहले से निर्धारित है उतना ही मूर्खतापूर्ण है जितना यह कहना कि प्रत्येक नाटक में इतने अंक होंगे ही।

इस सिद्धान्त को कि प्रत्येक सभ्यता का उस समय विनाश होता है जब जीवविज्ञान की दृष्टि से उसकी आयु समाप्त होती है, हम त्याग देते हैं क्योंकि सभ्यताओं का अस्तित्व ऐसा होता है जो जीवविज्ञान के नियमों के अनुसार नहीं चलता, किन्तु एक दूसरा सिद्धान्त है जिसका अभिप्राय है कि कुछ ऐसे कारणों से जो समझ में नहीं आते, व्यक्तियों के, जिनके पारस्परिक सम्बन्धों से सभ्यता बनती है, जीव-वैज्ञानिक गुण कुछ निश्चित या अनिश्चित पीढ़ियों के बाद समाप्त होने लगते हैं। सभ्यता वास्तव में बढ़ते-बढ़ते आवश्यक रूप से पितृत्व-नाशक होती है।

निकृष्ट पिताओं के निकृष्ट बीज से—
शीघ्र ही अयोग्य सन्तान उत्पन्न होगी ।[2]

यह तो गाड़ी को घोड़े के सामने रखना हुआ, सामाजिक पतन के परिणाम को उसका कारण समझना हुआ। क्योंकि सामाजिक पतन के समय पतनोन्मुख समाज के लोग या तो बौने के समान लघु हो जाते हैं या शरीर से अशक्य हो जाते हैं, जब कि उनकी तुलना में उनके पूर्वज विशाल काय थे और उनके कार्य महान् थे। इस रोग का कारण ह्रास बताना मिथ्या निदान है। जो वंश बाद में हुआ उसकी जीव-वैज्ञानिक परम्परा वही है जो उसके पूर्वजों की ओर पूर्वजों की सब चेष्टाओं तथा उपलब्धियों की शक्ति उनके वंशों में विद्यमान है। जो रोग पतनकाल की सन्तान की उन्नति में बाधा डालता है वह उनकी शक्तियों का क्षय नहीं है बल्कि सामाजिक उत्तराधिकार का विघटन

---

[1] सर जे० जीन्स—ईओस : अर्थात् सृष्टि के व्यापक रूप, पृ० १२–१३, ८३–८४।

[2] होरेस : ओड, पुस्तक ३।—अनुवादक

है। जिसके कारण उनकी स्वस्थ शक्तियाँ भी सर्जनात्मक सामाजिक कार्य करने के लि बनाने में असमर्थ होती हैं।

इस अमान्य प्राक्कल्पना (हाईपोथेसिस) का कि प्रजातीय (रेशल) पतन के कारण स का विनाश होता है, समर्थन कभी-कभी यह कह कर किया जाता है कि किसी समाज के विनाश तथा नये समाज के उद्भव के बीच जो अन्त:काल होता है उसमें एक जनरेला हो जिसमें इन दोनों समाजों के बीच, जिनका निवास स्थान एक ही तरह का होता है, 'नये र संचरण होता है। इस तर्क के अनुसार, कि बाद की घटना कारण है, यह मान लिया जाता है नयी सभ्यता में जो सर्जनात्मक शक्ति दिखाई देती है वह उस 'नये रक्त' का परिणाम है 'आदिम बर्बर प्रजाति' के विशुद्ध स्रोत से आया है। और तब इसके विपरीत यह परि निकाला जाता है कि पुरानी सभ्यता में सर्जनात्मक शक्ति का ह्रास इस कारण हुआ हो कोई प्रजातीय रक्तक्षीणता रही होगी जो नये तथा स्वस्थ रक्त के संचार बिना जीवित न सकती।

इस विचार के समर्थन में इटली के इतिहास से उदाहरण दिया जाता है। कहा जा कि इटली के निवासियों में ईसा के पूर्व की अन्तिम चार शतियों में बहुत अधिक सर्जन शक्ति दिखाई देती है। और फिर इसी प्रकार की शक्ति ईसा की ग्यारहवीं शती से सो शती के छः सौ वर्षों में दिखाई देती है। इन दोनों के बीच का एक हजार वर्ष, पतन, दु और फिर स्वस्थ होने का है जिससे जान पड़ता है इटली गुणविहीन हो गया था। प्रजाति (रेशियलिस्ट) का कहना है कि इटली के इतिहास के इन अद्भुत परिवर्तनों का कारण सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि गोथों और लम्बार्डों ने आक्रमण करके इस अन्त:काल में की नसों में नये रक्त का संचार किया। इस संजीवनी द्वारा समय पाकर शतियों की सुश्रूषा इटली में नवजीवन अर्थात् पुनर्जागरण (रेनेसां) का जन्म हुआ। कहते हैं कि नये रक्त के के कारण रोमन जनतन्त्र के काल में अपार शक्ति की उत्पत्ति के बाद, रोमन साम्राज्य का और विनाश हुआ। और रोमन जनतन्त्र के उद्भव के समय जिस क्रियात्मक शक्ति का आवि हुआ वह भी नये बर्बर रक्त के संचार के कारण हो सका जो हेलेनी सभ्यता के जन्म के पह जनरेला में हुआ।

ईसाई संवत् की सोलहवीं शती तक के इतिहास का प्रजातीय समाधान ऊपरी दृष्टि से संगत जान पड़ता है, यदि हम इसी काल तक रुक जायँ। किन्तु यदि हम सोलहवीं शती से तक के इतिहास तक दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि सत्रहवीं तथा अठारहवीं शती पुनः पतन का थी और उसके बाद एकाएक उन्नीसवीं शती में जाग्रति हो गयी। यह जाग्रति ऐसे नाटकी से हुई कि इस आधुनिक काल में जो मध्ययुगीन इटालियन अनुभव हुआ है उसका नाम ही 'रि जिमेन्टो' (पुनर्जागरण) रख दिया गया। इस इटालियन शक्ति के प्रस्फुटन में किस बर्बर का संचार हुआ? उत्तर स्पष्ट है 'कोई नहीं'। इतिहासकार इसे स्वीकार करते हैं कि उन्न शती में जो 'रिसारजिमेन्टो' हुआ वह उस चुनौती तथा जाग्रति का परिणाम था जो फ्रां क्रान्ति तथा नेपोलियन की विजय तथा शासन के कारण उत्पन्न हुई।

ईसाई सन् के आरम्भ के दो हजार वर्ष पहले इटली में जो जाग्रति हुई थी उसका अ-प्र कारण बताना कठिन नहीं है। और ईसा के पूर्व दो सौ साल में उसका जो पतन हुआ उसका

यह पतन रोमन सैनिकवाद का परिणाम था जिसके कारण भयंकर हैनिबली युद्ध हुआ था। उत्तर हेलेनी अन्तःकाल में इटली के सामाजिक जागरण का भी कारण यह था कि पुरानी इटालियन प्रजाति के अनेक सर्जनात्मक महान् व्यक्तियों ने योगदान किया। विशेषतः सन्त वेनिडिक्ट तथा पोप ग्रेगरी महान्, जिन्होंने केवल मध्ययुगीन इटली को ही प्राणदान नहीं दिया, बल्कि नयी पश्चिमी सभ्यता को जाग्रत किया जिसमें मध्ययुगीन इटली ने योगदान किया। इसके विपरीत जब हम इटली के उन क्षेत्रों को देखते हैं जिन्हें 'शुद्ध रक्त' वाले लोन्बार्डों ने आक्रान्त किया तब उनमें वेनिस और रोमाना तथा वे जनपद सम्मिलित नहीं हैं जिन्होंने इटालियन पुनर्जागरण में योगदान किया। और जिनका कार्य उन नगरों से अधिक श्रेष्ठ था जो लोम्बार्ड के शासन-क्षेत्र में थे, जैसे पाविया, बेनवेल्टो, और स्पोलेटो। यदि हम इटालियन इतिहास के प्रजातीय समाधान को महत्त्व देना चाहते हैं तो जो साक्ष्य है उसके आधार पर कहना पड़ेगा कि लोम्बार्ड रक्त ने सुधा के बजाय विष का काम किया।

प्रजातीय समाधान वालों को एक और किले से हम खदेड़ देना चाहते हैं जो उन्होंने इटालियन इतिहास में बना रखा है। वह रोमन रिपब्लिक का उदय है जो अ-प्रजातीय समाधान है। इस उदय का कारण यूनानियों तथा एट्रस्कनों द्वारा उपनिवेश बनाने की चुनौती थी। इटालियन प्रायद्वीप के निवासियों के सामने तीन विकल्प थे। नष्ट हो जायँ, विजित हो जायँ या पच जायँ जैसे यूनानियों ने सिसिली वालों को और एट्रस्कनों ने अम्ब्रिया वालों को बलपूर्वक सम्मिलित कर लिया था। हेलेनी सभ्यता को अपनी इच्छा के अनुसार और अपनी मर्यादा के अनुकूल ढाल कर अपनी सत्ता को कायम रखें (जिस प्रकार जापान ने पश्चिमी यूरोप को ग्रहण करके किया) और इस प्रकार अपने को यूनानी तथा हेलेनी दक्षता तक ले जायँ। रोमनों ने अन्तिम ढंग पर चलने का निश्चय किया और इस निश्चय के कारण अपनी महत्ता के विधायक बने।

सभ्यता के विनाश के तीन नियतिवादी समाधानों को हमने समाप्त कर दिया अर्थात् यह सिद्धान्त कि विनाश इसलिए होता है कि विश्व के यन्त्र का जीवन समाप्त हो गया था या पृथ्वी की जरावस्था आ गयी, या यह सिद्धान्त कि जीवों के नियमों के समान उसकी आयु की सीमा भी निर्धारित है और यह सिद्धान्त कि सभ्यता का विनाश इसलिए होता है कि जो व्यक्ति उस समाज के सदस्य होते हैं उनके गुणों का ह्रास हो जाता है क्योंकि उनके पूर्वजों की सभ्यता की कहानी बहुत प्राचीन हो जाती है। एक प्राक्कल्पना पर और विचार करना है जिसे इतिहास का चक्रीय सिद्धान्त (साइक्लिकल थियरी) कहा जा सकता है।

मनुष्य के इतिहास का चक्रीय सिद्धान्त उन ज्योतिष के आविष्कारों का स्वाभाविक परिणाम था जो ईसा के पूर्व अरबी तथा छठी शती के बीच बेबिलोनी समाज ने खोज निकाले थे। तीन स्पष्ट चक्र थे—दिन और रात, चान्द्र मास और सौर वर्ष। ये आकाशीय पिण्डों के सामयिक प्रत्यावर्तन के उदाहरण हैं। यह भी कहा गया था कि पृथ्वी, चाँद, सूर्य तथा और ग्रहों की गतियों में सामंजस्य है। और आकाशीय संगीत जो नक्षत्रों की गतियों के मिलन से उत्पन्न होता है सूर्य का प्रतिवर्ष का चक्र का नियमित क्रम उसके सामने कुछ नहीं है। इसका परिणाम यह निकाला गया कि जिस प्रकार वनस्पति जगत् में जीवन तथा विनाश का क्रम है, जो सूर्य के नियमित आवर्तन के कारण है उसी प्रकार विश्व के चक्र में सभी का जीवन और मरण होता है।

मानव इतिहास की इस चक्रीय व्याख्या ने अफलातून को आकृष्ट किया (टीमियस
२२ सी तथा पोलिटियस १६९ सी–२१०३ ई०) और यही सिद्धान्त वर्जिल के चौथे
(एकलोग) में दिखाई देता है।[1]

हेलेनी संसार को आगस्टस ने जो शान्त किया था उससे प्रभावित होकर वर्जिल ने
लिखी थी उसमें इस चक्रीय सिद्धान्त की प्रशंसा की गयी है। किन्तु क्या यह वधाई का
कि 'पुराने युद्ध फिर होंगे।' बहुत से लोगों ने, जिनका जीवन सफल और सुखी रहा है दृढ़ता
कहा है कि हम नहीं चाहते कि पुरानी लड़ाइयाँ फिर हों। तो जो बात व्यवित नहीं चाहता
क्या इतिहास दोहराना चाहेगा ? इस प्रश्न का उत्तर वर्जिल नहीं देता। किन्तु शेली ने
काव्य 'हेलास' के कोरस[2] के अन्तिम अंश में इसका उत्तर दिया है। जो आरम्भ तो होता
वर्जिल के संस्मरण की भाँति किन्तु अन्त के भाव शेली के अपने हैं :—

विश्व का महान् युग फिर से आता है
स्वर्णिम वर्ष लौटते हैं
पृथ्वी सर्प के समान—अपना केचुल बदलती है
शीत काल में उगे पौधे मुरझा जाते हैं
आकाश मुस्कुराता है
भग्न स्वप्नों के समान
विश्वास और साम्राज्य धुँधले पड़ जाते हैं।
एक और विशाल आरगो सागर को चीरता है
जिसमें नयी सम्पत्ति लदी हुई है
नया आरफ्यूज़ फिर गाता है
प्रेम करता है, रोता है और मर जाता है
नया यूलिसिस अपनी जन्मभूमि
के लिए कैलिप्सो से चलता है
किन्तु ट्राय की कहानी अब मत लिखो
पृथ्वी में संहार होना ही है तो
स्वतन्त्रता से जो आनन्द—प्राप्त होता है
उसमें लेईमी आक्रोष मत सम्मिलित होने दो
चाहे और भी चतुर स्फिंक्स मृत्यु के

---

[1] क्युमियनों की भविष्यवाणी के अनुसार अन्तिम-युग आ गया है। युगों का जन्म
से क्रमानुसार होता है। नया तथा स्वर्णयुग लौट रहा है। भगवान् के यहाँ से नयी जाति
रही है। वीरों के विशिष्ट समूह का नेतृत्व करने के लिए टाइफिस और आरगो फिर से
होंगे। पुराने युद्ध फिर होंगे और फिर एकिलीज महान् ट्राय को भेजा जायगा।

[2] किसी नाटक अथवा बड़े काव्य के आरम्भ में समवेत गान जिसमें कविता अथवा
आये पात्रों के सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है।—अनुवादक

उन रहस्यों का उद्घाटन करे
जिन्हें थीबी भी नहीं जानता था····
बन्द करो—क्या घृणा और मृत्यु फिर लौटेगी
चुप हो—क्या मानव हत्या करेगा और मरेगा
शान्त हो भविष्यवाणी के पात्र के अन्तिम
बूंद तक मत पान करो
संसार भूतकाल के इतिहास से ऊब गया है
या तो इसका विनाश हो जाय या यह शान्त हो।

यदि विश्व का नियम सचमुच ऐसा ही विषादपूर्ण है कि सर्जन और विनाश होता रहे तब हमें इस पर आश्चर्य न होना चाहिए कि कवि बौद्ध दर्शन के अनुसार कहता है कि जीवन के चक्र से मुक्त हो जाना चाहिए। जब तक यह चक्र नक्षत्रों के भ्रमण में उनका पथ-प्रदर्शक है तब तक वह सुन्दर जान पड़ता है किन्तु जब वही मनुष्य के जीवन को प्रभावित करने लगता है असह्य हो जाता है।

नक्षत्रों के प्रभाव को अलग रख दीजिए। क्या बुद्धि इस बात पर विश्वास कर सकती है कि मानव का इतिहास नक्षत्रों की गति से प्रभावित होता है? हमने भी क्या इस अध्ययन के बीच ऐसे ही विचार को प्रोत्साहित नहीं किया है? यिन और यांग, चुनौती और उसका सामना, अलग होना और लौटना, उत्पत्ति और सम्बद्धता, सभी गतियाँ जिनका विवेचन हमने किया है, क्या इसी ओर लक्षित नहीं होती हैं? क्या ये सब उसी पुरानी कहावत के विभिन्न रूप नहीं हैं कि 'इतिहास का पुनरावर्तन होता है।' निस्सन्देह इन सब शक्तियों में, जो मानव इतिहास का जाल बुनती है पुनरावर्तन का तत्त्व अवश्य है। किन्तु समय के करघे में जो ढरकी बराबर इधर से उधर चलती है उससे ऐसे नकशे बनते हैं जिनमें नयापन होता है, उसी नकशे को बार-बार समय दोहराता नहीं। इसे भी हमने बार-बार देखा है। पहिये का जो रूपक दिया गया है उसमें भी आवर्तन के साथ प्रगति भी है। यह ठीक है कि पहिया अपनी धुरी पर बराबर एक समान घूमता है किन्तु गाड़ी में पहिया इसलिए लगा है कि गाड़ी चले। पहिया गाड़ी का अंग है। पहिया घूम-घूमकर गाड़ी को चलाता है किन्तु वह गाड़ी को विवश नहीं कर सकता कि चरखी के समान वह एक ही दिशा में चला करे।

हमारा अभिप्राय लय से दो विभिन्न गतियों का सामंजस्य है। एक मुख्य गति है जो पीछे नहीं जाती। यह आवर्तन वाली गति से उत्पन्न होती है। इन गतियों को हम आधुनिक मशीनों में ही नहीं पाते, जीव जगत् में भी यही लय पाया जाता है। ऋतुओं का प्रत्यावर्तन, जिससे वनस्पतियों का जन्म और क्षय होता, वनस्पति जगत् के विकास का कारण है। जन्म, प्रजनन तथा मृत्यु का जो दुखद चक्र है उससे ही सारे मनुष्य तक, सारी सृष्टि का विकास हुआ है। एक के बाद दूसरा पाँव चलता है इससे हम पृथ्वी पर आगे बढ़ते हैं, फेफड़ों और हृदय से रक्त का संचालन होता है इसी से जीव अपना जीवन बिताता है। संगीत के स्वर और कविता की पंक्तियों द्वारा संगीतज्ञ तथा कवि अपने विषयों का प्रसार करते हैं। ग्रहों का चक्र जिससे हमारा वर्ष बनता है और जो भी सम्भवतः 'चक्र' के विचारों का स्रोत है, विशाल सृष्टि का मूल नहीं बन सकता। क्योंकि पश्चिम के ज्योतिष-शास्त्र ने महान् दूरबीनों की सहायता से हमारे सौर मण्डल को विश्व के बीच एक कण के समान प्रमाणित कर दिया है। पिण्डों को संगीत (म्युजिक आव स्फियर्स)

का अस्तित्व विश्व में नहीं रह जाता, आकाश में लीन हो जाता है । क्योंकि ब्रह्माण्ड अपने नक्ष समूह के साथ बढ़ता चला जा रहा है और नक्षत्र-समूह अविश्वसनीय गति से एक दूसरे से होते जा रहे हैं । और देशकाल के प्रभाव से संसार में जो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ उत्पन्न होती उन नाटकीय परिस्थितियों में सभी लोग अभिनय करते हैं ।

इस प्रकार चक्र के प्रत्यावर्तन की गति का हमने सभ्यता की प्रगति की दृष्टि से जो विश्ले किया है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रगति उसी चक्र के अनुसार नहीं होती जैसा एक वार आता है । इसके विपरीत यदि प्रत्यावर्तन का कोई अर्थ हो सकता है तो यही कि लघु गति की है और प्रधान गति चक्र की भाँति नहीं होती वह आगे की ओर ले जाती है । मानवता इक्ग्रन[1] नहीं है कि पहिये से बँधा रहे न सिसाइफस[2] जो पत्थर को एक ही पहाड़ की चोटी पर जाय और विवश होकर देखा करे कि पत्थर फिर नीचे लुढ़क जाता है ।

पश्चिमी सभ्यता की हम सन्तानों को यह उत्साहवर्धक सन्देश है जब हम अकेले इधर-उ भटक रहे हैं और हमारे साथ घायल सभ्यता के अतिरिक्त और कोई नहीं है । सम्भव है हमारी सभ्यता पर भी मृत्यु का प्रकोप हो । सभ्यताएँ मृत्यु से नहीं मरतीं, या नियमानुसार उन विनाश नहीं होता, इसलिए हम यह न समझें कि हमारी सभ्यता भूत सभ्यताओं की श्रेणी में सम्मिलित होगी । जहाँ तक हमारा ज्ञान है सोलह सभ्यताएँ मर चुकी हैं और नौ मृतप्राय हैं । हमा छब्बीसवाँ स्थान है और हम विवश होकर जन्म-मरण के नियमानुसार मरने को नहीं हैं । सृजनात्म शक्ति की ईश्वरीय चिनगारी हममें है । यदि हम उसे फूँककर प्रज्वलित कर सकें तो नक्ष हमारी चेष्टाओं को विफल नहीं कर सकते और हम अपनी मानवीय चेष्टा से अपने लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं ।

---

[1] यूनानी पुराण में इक्सायन एक व्यक्ति था जिसे नरक में एक पहिये में बाँध दिया ग था । उसी में सदा वह घूमा करता है ।—अनुवादक

[2] यूनानी पुराण में एक व्यक्ति जिसका काम था पत्थर को पहाड़ पर ले जाना । पत्थ फिर नीचे लुढ़क जाता था और फिर वह ले जाता है । सदा उसे यही करना था, यही उसे मिला था ।—अनुवादक

१५. वातावरण पर से नियंत्रण का लोप होना

(१) भौतिक परिस्थिति

यदि हमने प्रमाणित कर दिया है कि सभ्यताओं का विनाश मानव शक्ति के बाहर ब्रह्माण्ड (कासमिक) की शक्तियों के कारण नहीं होता तो विनाश का वास्तविक कारण हमें ढूँढ़ना चाहिए। पहले हम इस बात पर विचार करेंगे कि यह विनाश इस कारण तो नहीं है कि समाज के वातावरण पर से नियन्त्रण उठ गया है ? इस प्रश्न के समाधान के लिए दो वातावरणों के अन्तर पर ध्यान रखेंगे। भौतिक वातावरण और मानवी वातावरण।

क्या सभ्यताओं का विनाश इस कारण होता है कि भौतिक वातावरण पर से नियन्त्रण लोप हो जाता है ? किसी समाज का, उसके भौतिक वातावरण पर कितना नियन्त्रण होता है नापा जा सकता है। जैसा कहा गया है उसकी तकनीक होती है। 'विकास' की समस्या का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि यदि हम दो वक्र रेखा (कर्व) बनायें जिनमें एक सभ्यताओं के उत्थान-पतन के लिए हो और दूसरी तकनीक के अदल-बदल के लिए तो दोनों रेखाओं में एक समता नहीं होती, बल्कि बहुत अधिक अन्तर होता है। हमने देखा है कि सभ्यता स्थैतिक रही है और तकनीक गतिशील अथवा तकनीक स्थैतिक रही है और सभ्यता आगे या पीछे प्रगतिशील रही है।[1] हमने अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है कि भौतिक वातावरण पर नियन्त्रण का अभाव सभ्यता के विनाश की कसौटी नहीं है। अपने प्रमाण को और दृढ़ करने के लिए हम बतायेंगे कि जहाँ सभ्यता का पतन हुआ है और साथ ही तकनीक की अवनति हुई है वहाँ तकनीकी अवनति सभ्यता के विनाश का कारण नहीं रही है। हम देखेंगे कि तकनीकी अवनति कारण नहीं है, बल्कि परिणाम या लक्षण है।

जब कोई सभ्यता पतनोन्मुख होती है, कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई विशेष तकनीक, जो विकास की अवस्था में उपयुक्त भी रही हो और लाभदायक भी, तो इस समय उसे सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है और उसका आर्थिक प्रतिफल (रिटर्न) कम होने लगता है। वह बिलकुल लाभहीन हो जाती है और यह तकनीक छोड़ देनी पड़ती है। ऐसी अवस्था में यदि हम यह मानें कि तकनीक को इसलिए त्याग दिया गया कि उसे काम में लाने की क्षमता नहीं रह गयी और तकनीकी अयोग्यता के कारण सभ्यता का ह्रास हुआ तो कारण-कार्य के क्रम को स्पष्टतः उलट देना होगा।

इसका स्पष्ट उदाहरण पश्चिमी यूरोप में रोमन सड़कों का त्यागना है। यह रोमन साम्राज्य के पतन का कारण नहीं था, परिणाम था। ये सड़कें इसलिए नहीं त्याग दी गयीं कि तकनीकी कौशल का अभाव था, बल्कि जिस समाज ने उसे सैनिक कारणों के लिए बनाया था और जिसे

---

[1] देखिए, पृ० १५८–६६

उसकी आवश्यकता थी, वह समाज नष्ट हो गया । हेलेनी सभ्यता की विजय में भी हम नहीं सकते कि उनकी आर्थिक व्यवस्था की सारी तकनीक के नाश हो जाने से उनका विनाश हुआ

"प्राचीन संसार के पतन का आर्थिक कारण हमें पूर्णतः त्याग देना पड़ेगा । पुराने जीवन आर्थिक सरलता पुराने संसार के पतन का कारण नहीं था, बल्कि दूसरी साधारण घटना (मेनन) का एक अंश था ।"[1]

यह साधारण घटना मध्यवर्ग का विनाश तथा शासन की असफलता थी ।

जिस प्रकार रोमन सड़कों को त्याग दिया गया था उसी के समान उससे पुरानी दजला- के कछारी डेल्टा की सिंचाई की व्यवस्था को भी त्याग दिया गया था । ईसा की सातवीं शती दक्षिण-पश्चिम इराक में इस जल की इंजीनियरी व्यवस्था को इसलिए छोड़ दिया कि बाढ़ के का वे उपयोगी नहीं रह गयीं । यद्यपि ऐसी बाढ़ें अनेक बार आयीं और उनसे जो हानि हुई उससे अधि हानि इस बार नहीं हुई थी । और इसके बाद तेरहवीं शती में इराक की सारी सिंचाई व्यवस्था नष्ट हो गयी । ऐसा क्यों हुआ ? इराक निवासियों ने उस प्रणाली की रक्षा क्यों की जिसे उनके पूर्वज हजारों वर्षों से सफलतापूर्वक काम में लाते रहे और जिसके कारण कृषि से सम्पन्न होती रही और उनकी बड़ी जनसंख्या का भरण-पोषण करती रही । तक का यह विनाश कारण नहीं था । जनसंख्या के ह्रास और समाज की सम्पन्नता की समाप्ति यह परिणाम था । ईसा की सातवीं शती और फिर तेरहवीं शती में इराक में सीरियाई सभ्य इतनी नीचे आ गयी थी और अरक्षा इतनी अधिक थी कि किसी के पास इस व्यवस्था में पूंजी को न सम्पत्ति थी न सिंचाई तथा नदी के पानी रोकने की व्यवस्था के लिए किसी में प्रेरणा ठीक कारण ये थे कि सातवीं शती में रोमन-परशियन युद्ध (६०३–६२८ ई०) हुआ मुसलिम अरबों ने इराक को तहस-नहस कर दिया, तेरहवीं शती में, सन् १२५८ में, मंगोलों आक्रमण किया जिससे उसकी पूर्ण आहुति हो गयी ।

इसी प्रकार के परिणाम पर हम उस समय पहुँचते हैं जब हम उसी प्रकार का निरीक्षण सीलो में करते हैं ।[2] आज हम सीलोन के उस क्षेत्र का जब निरीक्षण करते हैं जो भारतीय (इंडि सभ्यता का ध्वंसावशेष है, तब हम देखते हैं कि यही क्षेत्र सूखा हुआ ही नहीं है, यही क्षेत्र मलेरि से पूर्ण है । आजकल जल कृषि कार्य के लिए सर्वथा अपूर्ण है किन्तु मलेरिया वाले मच्छरों पनपने के लिए पर्याप्त है । पुरानी सभ्यता की यह विचित्र निशानी है । और यह तो सम्भ नहीं कि उस समय भी मलेरिया के मच्छर वहाँ रहे हों जब सीलोन में भारतीय समाज ने ऐ सुन्दर जल की व्यवस्था की थी । वास्तव में यह प्रमाणित किया जा सकता है कि नहरों प्रणाली के विनाश के कारण ही वहाँ मलेरिया फैला हो अर्थात् इन नहरों के निर्माण के बाद सीलोन के इस भाग में मलेरिया इस कारण फैला कि सिंचाई की नहरों के नाश हो जाने के

---

[1] एम० रोस्टोफ्जेफ़ : द सोशल एण्ड एकनामिक हिस्ट्री आव द रोमन एम्पा पृ० ३०२–५ तथा ४८२–५ ।

[2] इस विषय पर पहले भी विचार किया गया है । देखिए, पृ० ६८–६९ ।

नहरें छोटे-छोटे तालों में परिवर्तित हो गयीं, जहाँ का जल कम हो गया और वे मछलियाँ नष्ट हो गयीं जो मच्छरों के अण्डों को खा जाती थीं ।

किन्तु भारतीय सिंचाई प्रणाली नष्ट क्यों हुई ? लगातार तथा विनाशकारी युद्धों के कारण नहरें तोड़-फोड़ दी गयीं और नालियाँ भर गयीं । जान-बूझकर सैनिक कारणों से आक्रमणों ने नहरों को नष्ट किया और युद्ध पीड़ित जनता को इनकी मरम्मत करने का उत्साह न रहा और यह भी उन्हें भय रहा कि बन जाने पर ये फिर तोड़ डाली जायेंगी । इस उदाहरण में भी तकनीकी ह्रास सभ्यता के ह्रास का कारण नहीं है । सामाजिक कारण-कार्य की श्रृंखला में तकनीकी ह्रास उत्पन्न होता है । उसके सामाजिक कारण का पता लगाया जा सकता है ।

सीलोन में भारतीय सभ्यता के इस अध्याय के समान ही हेलेनी सभ्यता में भी उदाहरण मिलता है । यहाँ भी हमको ऐसे प्रदेश मिलते हैं जहाँ किसी बीते युग में वैभवशाली सभ्यता थी और जिसने इस क्षेत्र को सजीव बनाया था । बाद में वह क्षेत्र मलेरियापूर्ण दलदल हो गया जिसका उद्धार इस युग में किया गया है । कोपेक के दलदल, जो दो हजार वर्षों तक घातक बने थे और जिसका उद्धार सन् १८८७ में एक ब्रिटिश कम्पनी ने किया, किसी समय उपजाऊ प्रदेश थे, जो धनवान् आरकोमेनास के नागरिकों का पोषण करते थे । पाम्पटाइन के दलदल जिसका बहुत काल तक उजाड़ रहने के पश्चात् मुसोलिनी ने उद्धार किया, किसी समय लैटिन उपनिवेशों तथा वोलशियन नगरों का पोषण करते थे । ऐसा संकेत किया गया है कि 'नाड़ियों का विनाश' (लास आव नर्व—यह वाक्यांश प्रोफेसर गिलबर्ट मरे का है) जिसके कारण हेलेनी सभ्यता की समाप्ति हो गयी इसलिए हुआ कि वहाँ मलेरिया का प्रकोप फैला । किन्तु यहाँ भी और सीलोन में भी, उस समय मलेरिया का आरम्भ हुआ जब उस समय की सभ्यता का ह्रास होने लगा था । इस युग के एक विशेषज्ञ[1], जिसने इसे अपने अध्ययन का विषय बनाया है, कहते हैं कि मलेरिया पेलोपोनेशियाई युद्ध के पहले यूनान में फैला नहीं था, और लैटियन में हैनिबली युद्ध के बाद ही फैला । ऐसा कहना मूर्खता होगी कि सिकन्दर के बाद के युग के यूनानी तथा सीपियों और सीजरों के युग के रोमन कोपेक और पाम्पटाइन के दलदलों के जल की कठिनाइयों को दूर करने में अयोग्य थे जब उस समस्या को उनसे कम योग्य पूर्वजों ने सुलझा लिया था । इसका समाधान तकनीकी बातों में नहीं है, सामाजिक स्तर पर ये मिलेंगे । हैनिबली युद्ध और उसके पश्चात् दो शतियों तक रोमन लूट-पाट और घरेलू युद्ध का इटली के सामाजिक जीवन पर विघटनात्मक प्रभाव पड़ा । पहले कृषि संस्कृति और अर्थ-व्यवस्था का विनाश हुआ उसके पश्चात् अनेक विनाशकारी शक्तियों का प्रभाव पड़ा । हैनिबल द्वारा सत्यानाश, कृषकों का सेना में बराबर भर्ती होना, भूमि सम्बन्धी क्रान्ति जिसमें दासों द्वारा जोते जाने वाले बड़े-बड़े खेतों के स्थान पर किसानों द्वारा छोटे-छोटे खेत जोते जाने लगे जो अपने में पूर्ण थे, और गाँवों से पराश्रित शहरों की ओर अधिक संख्या में लोग जाने लगे । इन अनेक सामाजिक बुराइयों के कारण मनुष्य का पतन हुआ । हैनिबल की पीढ़ी से लेकर इटली के सन्त बेनेडिक्ट की पीढ़ी तक सात शताब्दियों में मच्छरों का प्रकोप बढ़ा ।

---

[1] डब्ल्यू० एच० एस० जोन्स : मलेरिया एण्ड ग्रीक हिस्ट्री ।

इसी प्रकार की बुराइयों का परिणाम यूनान में भी हुआ। पेलोपोनेशियाई युद्ध में पो बियस के समय (२०६–१२८ ई० पू०) तक वहाँ आबादी बहुत घट गयी। इटली से भी यहाँ निर्जनता हो गयी। पोलीबियस ने एक विख्यात स्थल पर कहा है कि यूनान के साम तथा राजनीतिक पतन का कारण परिवार में गर्भपात तथा शिशु हत्या की प्रथा है। यह है कि तकनीकी ह्रास के कारण कोपेक अथवा पाम्पटाइन के मैदान उपजाऊ खेतों के स्थान मच्छरों के प्रजनन के घर नहीं बने।

यदि हम इंजीनियरी की तकनीक की जगह वास्तुकला और मूर्तिकला की तकनीक चित्रकला, लेखन-कला तथा साहित्य पर विचार करें तब भी इसी परिणाम पर पहुँचेंगे। उदाह के लिए वास्तुकला की हेलेनी शैली ईसा की चौथी से सातवीं शती तक में क्यों लोप हो उसमानी तुर्कों ने सन् १९२८ में अरबी वर्णमाला को क्यों त्याग दिया? क्या कारण है कि प्रायः सभी अ-पश्चिमी देश अपने परम्परा गत वस्त्रों को तथा कलाओं को छोड़ रहे हैं? हम इस प्रश्न की ओर भी लोगों का ध्यान दिलाना चाहेंगे कि क्यों हमारी नयी पीढ़ी के अधि लोग हमारे परम्परागत संगीत, नृत्य, चित्रकला और मूर्तिकला को छोड़ रहे हैं।

हमारी स्थिति में क्या कला की तकनीक का ह्रास है? क्या हम लोग लय के राग, विषय के (पर्सपेक्टिव) तथा अनुपात के नियमों को भूल गये जिनका हमारे इतिहास के और तीसरे अध्यायों में इटालियन तथा दूसरे सर्जनात्मक अल्पसंख्यकों ने आविष्कार किया स्पष्ट है हम लोग भूले नहीं हैं। अपनी कलात्मक परम्पराओं को छोड़ देने की, जो वर्तमान है उसका कारण तकनीकी अक्षमता नहीं है। जान-बूझकर इस शैली का त्याग किया जा क्योंकि नयी पीढ़ी को वह रुचती नहीं। यह पीढ़ी पश्चिमी परम्परा की कलाओं के प्रति नहीं हो रही है। हमारे पितामहों को जिन महान् आत्माओं की जानकारी थी, उन्हें जान-बूझ इस पीढ़ी ने त्याग दिया है। और जो आध्यात्मिक शून्यता हमने रची है उसी से सन्तुष्ट हम पड़े हैं और उष्ण देश अफ्रीका के संगीत, नृत्य तथा मूर्तिकला की आत्मा ने कृत्रिम वाइजें चित्रकला तथा नक्काशी से अपवित्र गठबन्धन करके उस घर में डेरा जमा लिया है जिसे खाली पाया। पतन तकनीकी नहीं है, आध्यात्मिक है। कला की अपनी पश्चिमी पर को छोड़कर हमने अपनी शक्तियों को निर्जीव कर दिया है और इस स्थिति में डेहोमे और की विदेशी आदिम कला को अपनाया है मानों हमारे लिए मरुभूमि में मन्ना[1] सदृश है। ऐसा मानव मात्र के सम्मुख हमने स्वीकार किया है कि हमने अपने आध्यात्मिक जन्मसिद्ध अधि को खो दिया है। हमने अपनी परम्परागत कला के तकनीक को त्याग दिया है। वह स्पष्टतः सभ्यता के एक प्रकार के आध्यात्मिक पतन का परिणाम है। इस पतन का कारण उस घटना नहीं मिल सकता जो स्वयं परिणाम है।

इधर अरबी वर्णमाला छोड़ कर तुर्कों ने लैटिन वर्णमाला अपनायी है इसका कारण भी है। मुस्तफा कमाल अतातुर्क और उनके शिष्यों ने अपने इस्लामी संसार में रहते हुए का अनुकरण किया है। उन्हें अपनी सभ्यता की परम्परा में विश्वास नहीं रह गया और

---

[1] इसरायलियों को ईश्वर की ओर से जो भोजन दिया गया था।—अनुवादक

उस साहित्यिक माध्यम को उन्होंने त्याग दिया जिसके द्वारा वह परम्परा आयी है। यही कारण पहले की उन मृतप्राय सभ्यताओं की अपनी परम्परागत लिपियों को त्याग देने का है जैसे मिस्र की चित्रलिपि और वैबिलोनिया की कील वाली लिपि। चीन और जापान में आज एक आन्दोलन चल रहा है कि चीनी लिपि त्याग दी जाय।

एक तकनीक के स्थान पर दूसरे को स्थापित करने का एक अच्छा उदाहरण यह है जो वास्तुकला की हेलेनी शैली को छोड़कर बाइज़ंटाइन शैली अपनायी गयी। इस स्थिति में खम्भों पर पत्थर रखने के (आरकिट्रेव) सरल ढंग को छोड़कर क्रूसाकार भवन (क्रूसिफार्म) बनाकर उस पर वृत्ताकार गुम्बज बनाने की कठिन शैली को अपनाया है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि तकनीकी अक्षमता इसका कारण थी। क्या यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि वास्तुशिल्पी जिन्होंने सम्राट् जस्टीनियन के लिए हेगिया सोफ़िया के गिरजाघर के निर्माण की समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझा लिया था तो वह यूनानी मन्दिर भी बना सकते थे यदि सम्राट् की या उनकी इच्छा होती? जस्टीनियन तथा उसके वास्तुशिल्पियों ने नयी शैली का इसलिए प्रयोग किया कि पुरानी शैली उन्हें अरुचिकर हो गयी थी क्योंकि वह सड़ी हुई प्राचीनता से सम्बन्धित थी।

हमारी खोज का परिणाम यह निकला कि परम्परागत कला की शैलियों का त्याग यह सूचित करता है कि जो सभ्यता उस शैली से सम्बद्ध थी उस (सभ्यता) का पतन हो चुका था और वह विघटित हो रही थी। प्रतिष्ठित तकनीक का व्यवहार बन्द हो जाता है तो वह सभ्यता के पतन का परिणाम है, कारण नहीं।

(२) मानवी वातावरण

सभ्यताओं के विकास के सम्बन्ध में जब हमने इस विषय पर विचार किया था तब हमने देखा था कि किसी समाज के इतिहास में मानवी वातावरण पर नियन्त्रण होता है तो उसे इस प्रकार नाप सकते हैं कि उसका भौगोलिक विस्तार कितना है जितना नियन्त्रण होगा उतना ही विस्तार होगा। उदाहरणों के अध्ययन से यह भी हमने देखा कि भौगोलिक विस्तार के साथ-साथ सामाजिक विघटन भी हुआ है यदि ऐसा है तब यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि सभ्यता का विघटन इस कारण होता है कि मानवी वातावरण पर समाज का नियन्त्रण कम हो जाता है। बल्कि यह सम्भव है कि विदेशी मानवी शक्तियों के सफल आक्रमण के कारण ऐसा होता है। फिर भी यह विचारधारा बहुत प्रचलित है कि आदिम समाजों की भाँति सभ्यताएँ भी विदेशी शक्तियों के प्रहार से समाप्त हो जाती हैं। इस विचार का प्रतिपादन गिबन ने अपने 'द हिस्ट्री आव द डिकलाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर' में शास्त्रीय ढंग से किया है। एक वाक्य में गिबन ने अपनी कथा के विषय को कह डाला है—'मैंने बर्बरता तथा धर्म की विजय का वर्णन कर दिया है।' हेलेनी समाज रोमन साम्राज्य में उस समय मिल गया जब अंतोनाइनों के समय साम्राज्य अपने शिखर पर था। ऐसा बताया जाता है कि दो विदेशी बैरियों के दो विभिन्न दिशाओं में एक साथ आक्रमण होने के कारण हेलेनी समाज का विनाश हुआ। एक डैन्यूब तथा राइन के पार से अवान्तर भूमि के उत्तरयूरोपीय बर्बरों द्वारा और दूसरा ईसाइयों द्वारा जो उन पूर्व प्रदेशों से निकले थे जिन्हें पराजित तो कर लिया गया था, किन्तु आत्मसात् नहीं किया जा सका था।

गिबन को यह नहीं सूझा कि अन्तोनाइनों का युग ग्रीष्म ऋतु नहीं थी बल्कि 'भा ग्रीष्म' था । उसकी पुस्तक के नाम से ही उसका भ्रम प्रकट होता है । रोमन साम्राज्य का और पतन । ऐसे इतिहास का लेखक, जिसका ऐसा नाम हो और जिसने ईसा की दूसरी इतिहास आरम्भ किया हो, अपने इतिहास को उस समय से आरम्भ कर रहा है जब कथानक प्राय: अन्त हो रहा है । जिस ऐतिहासिक अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र के सम्बन्ध में लिखना चाहता है वह रोमन साम्राज्य नहीं है, हेलेनी सभ्यता है और रोमन साम्राज्य बढ़ा हुआ ह्रास स्वयं पतन का रोग-चिह्न है । पूरी कथा पर विचार करने से पता है कि अन्तोनाइनों के युग के बाद रोमन साम्राज्य का पतन जिस द्रुत गति से हुआ आश्चर्य नहीं होता । इसके विपरीत यदि रोमन साम्राज्य बना रहता तो आश्चर्य हो क्योंकि संस्थापन के पहले ही साम्राज्य का विनाश होना निश्चित था । विनाश निश्चित था कि यह जो सार्वभौम राज्य बना वह केवल एक जुटाव था जो हेलेनी समाज पतन में विलम्ब कर सकता था, सदा के लिए रोक नहीं सकता था । क्योंकि वह निश्चय पतनोन्मुख हो चुका था ।

यदि गिबन बड़ी कथा, आरम्भ से कहता तो उसे पता लगता कि 'बर्बरता तथा धर्म विजय' मुख्य कथानक नहीं था, कथा का केवल उपसंहार था । पतन का कारण नहीं बल्कि का आवश्यक उपकरण था जो विघटन के साथ अवश्यम्भावी था । उसे यह भी पता चल विजयी धर्म तथा विदेशी शक्तियाँ नहीं थीं । ये हेलेनी परिवार की सन्तानें थीं जो पेरि पतन और आगस्टी समाहरण (रैली) के बीच के संकट काल में शक्तिशाली अल्पसंख अलग हो गयी थीं । सच बात यह है कि यदि गिबन ने इस दु:खमय गाथा के वास्तविक तक खोज की होती तो वह दूसरे परिणाम पर पहुँचता । वह इस परिणाम पर पहुँचता कि हेलेनी समाज की आत्महत्या थी । इसलिए कि जब उसके जीवन की कोई आशा नहीं गयी कि अपने ऊपर किये गये घातक प्रहार को वह टाल सके । और जिस पर बाद में उ धृष्ट और बिलगायी सन्तान ने अन्तिम प्रहार किया । ऐसा उस समय हुआ जब आगस्टी सम के तीन शतियों के बाद पुन: रोग ने दबाया और रोगी अपने ही प्रहार के घावों के प्रभाव से रहा था ।

ऐसी अवस्था में खोज करने वाला इतिहासकार अपना ध्यान उपसंहार पर न रखता इस बात का पता लगाता कि कब और कैसे आत्महत्या के लिए हाथ उठा । इस समय का लगाने के लिए सम्भवत: वह ४३१ ई० पू० पेलोपोनेशियाई युद्ध पर अपनी उँगली रख यह सामाजिक विनाश था जिसके बारे में थ्यूसिडाइड्स ने अपने नाटक के एक पात्र से उस कहलाया है कि 'यह यूनान (हेलास) के लिए महान् विपत्ति का आरम्भ है ।' इस बा विवरण देते हुए कि किस प्रकार हेलेनी समाज नें अपने ही विनाश का अपराध किया है वह बात पर भी जोर देता कि दो और भी बुराइयाँ थीं राज्यों के बीच युद्ध और वर्गों के बीच थ्यूसिडाइड्स के अनुसार इन दो बुंराइयों के दो विशेष उदाहरण भी वह देता । अथीनि जो विजित मेलियनों को भयावह दण्ड दिया और कोरसाइरा के आपस के दलों का युद्ध । भी अवस्था में, वह बताता कि जैसा गिबन ने सोचा था उसके छ: सौ वर्ष पहले घातक प्र चुका था और घातक प्रहार उसके अपने हाथों हुआ था ।

इस उदाहरण से हम और सभ्यताओं के सम्बन्ध में खोज करें, जो या तो समाप्त हो गयी हैं या मृत प्राय हैं तो यही बात मिलेगी ।

उदाहरण के लिए सुमेरी समाज का पतन और विनाश । इसमें हमूरबी का स्वर्णयुग (जैसा कि कैंब्रिज एंशेंट हिस्ट्री में कहा गया है) 'भारतीय ग्रीष्म' का और उससे भी आगे का समय है जो अंतोनाइनों के युग का था । क्योंकि हमूरबी सुमेरी इतिहास का ट्राजन नहीं डायोक्लीशियन है। इसलिए सुमेरी सभ्यता को नष्ट करने वाले वे बर्बर नहीं थे जिन्होंने 'चारों दिशाओं के राज्य' पर ईसा के पूर्व अठारहवीं शती में आक्रमण किया। हम देखेंगे कि घातक प्रहार नौ सौ वर्ष पहले हो चुका था। स्थानीय महन्तों तथा लगाश के उरुकाजिना के बीच का वर्गयुद्ध और उरुकाजिना के विध्वंसक लुगालज़ागिसी का सैनिकवाद । सुमेरी संकट का आरम्भ इन्हीं दो कारणों से हुआ ।

चीनी समाज के पतन और विनाश 'धर्म और बर्बरता की विजय' उस समय हुई जब वे लगभग ३०० ई० में चीनी सार्वभौम राज्य के स्थान पर यूरेशियाई खानाबदोश राज्यों की स्थापना हुई और साथ-ही-साथ चीनी संसार में महायान बौद्धों का आक्रमण हुआ । चीन के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों के सर्वहारा का यही धर्म था । किन्तु यह सब विजय रोमन साम्राज्य के 'बर्बरता और धर्म' की भाँति एक मृतप्राय समाज के बाहरी और आन्तरिक सर्वहारा की विजय मात्र थी। और ये कहानी के अन्तिम अध्याय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । चीनी सार्वभौम राज्य केवल उस समय एक सामाजिक जमाव था जब चीनी समाज के छोटे-छोटे प्रदेशीय राज्यों में आपसी युद्ध हो रहा था । कुछ पहले चीनी समाज में ही ये राज्य बन गये थे । चीनी इतिहास की यह घातक तिथि ४७९ ई० पू० है जो हेलेनी तिथि ४३१ ई० पू० के समान है । यही समय ऐतिहासिक 'युद्धरत राज्यों का काल है' जब से विघटन आरम्भ होता है । किन्तु यह तिथि वास्तविक घटना से ढाई सौ साल बाद की है । यह तिथि चीन के संकट की तिथि सम्भवतः इसलिए मान ली गयी है कि उस समय कनफूशियस की मृत्यु हुई थी ।

जहाँ तक सीरियाई समाज का सम्बन्ध है, उसका 'भारतीय ग्रीष्म' बगदाद के अब्बासी खलीफों के समय था और उसने 'बर्बरता और धर्म की विजय' उस समय देखी जब खानाबदोश तुर्कों ने आक्रमण किया और उन्होंने स्थानीय इस्लाम धर्म स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में हमें एक बात याद रखनी चाहिए जो हमने इस अध्ययन में पहले ही स्थापित की थी कि सीरियाई पतन और विनाश हेलेनी प्रवेश के कारण एक हजार साल तक रुक गया था। और अब्बासी खलीफे सीरियाई इतिहास का सूत्र वहीं से पकड़ते हैं जहाँ ईसा के पूर्व चौथी शती में एकेमीनियाई साम्राज्य ने छोड़ दिया था ।[1] इसलिए हमें सीरियाई संकट के लिए उस काल के पहले देखना पड़ेगा, जब खुसरू ने अकेमीनियाई शान्ति स्थापित की थी ।

उस सभ्यता के विनाश का क्या कारण हुआ जिसने अपने विकास के अल्पकाल में अपनी प्रतिभा का प्रमाण दिया था और तीन महान् आविष्कारों में अपनी शक्ति दिखायी थी—एकेश्वरवाद, वर्णमाला और अतलान्तक । पहले-पहल शायद हम यहाँ ठिठकें कि हमें ऐसी सभ्यता का उदाहरण मिल गया जिसमें विदेशी मानवी शक्ति के प्रहार से सभ्यता का विनाश हुआ । क्या

---

[1] देखिए, पृष्ठ १४–१६ ।

सीरियाई सभ्यता उन प्रहारों से नष्ट हो गयी जो नवीं, आठवीं, सातवीं ई० पू० शती में अ द्वारा हुआ था ? देखने में ऐसा जान पड़ता है। किन्तु ध्यान से देखा जाय तो जब 'अ ने भेड़िये के समान बाड़े (फोल्ड) पर आक्रमण किया' उस समय एक बाड़ा और उसका नहीं था। दसवीं शती (ई० पू०) में इसरायली नेतृत्व में हिब्रू, फोनीशियन, अरमेइय हिताइती प्रदेशों को जो बैबिलोनी तथा मिस्री संसार के बीच स्थित थे राजनीतिक सूत्र में का प्रयत्न निष्फल हो गया। और सीरियाई भ्रातृघातक (फ्रेट्रिसाइडल) युद्ध के परिणा असीरियनों को अवसर मिला। सीरियाई सभ्यता के पतन की तिथि उस समय से नहीं चाहिए जब ८७६ ई० पू० में पहले-पहल अशूर-नजीरपल ने फरात नदी को पार किया ९३७ ई० पू० जब सुलेमान का साम्राज्य उसके संस्थापक की मृत्यु के बाद से विघटित होने

बहुधा यह भी कहा जाता है कि परम्परावादी ईसाई सभ्यता, जिसका 'वाइज़ेन्टाइन' पूरवी रोमन साम्राज्य था और जिसका वर्णन उपसंहार में गिवन ने विस्तार से किया है द्वारा नष्ट की गयी। इसके साथ यह कहा जा सकता है कि उस समाज को जिसे पश्चिमी आक्रमण के घातक रूप ने क्षत-विक्षत कर दिया था उस पर मुसलिम तुर्कों ने अन्तिम प्र दिया। जिसे भ्रष्ट ढंग से चौथा धार्मिक युद्ध कहा जाता है और जिसके कारण वाइ सम्राट् को आधी शती तक (१२०४–६१ ई०) अपने साम्राज्य से बाहर रहना पड़ा। यह लैटिन आक्रमण, उसी प्रकार जैसे उसके बाद तुर्की आक्रमण हुआ, ऐसी जगह से विदेशी था। यदि हम अपना विश्लेषण यहीं समाप्त कर दें तो हमें कहना पड़ेगा कि इस की वास्तविक 'हत्या' की गयी जहाँ इसने इसी सूची में बताया है कि और सभ्यताओं ने की। किन्तु हम देखते हैं तो पता चलता है कि परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहा परिवर्तनशील घटना हुई वह न तो चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती का तुर्की आक्रमण था और न शती का लैटिन आक्रमण था और न ग्यारहवीं शती का तुर्की आक्रमणकारियों (सल्जूकों) अनातोलिया पर विजय थी। यह एक घरेलू घटना थी जो इन सबके पहले हुई थी। १०१९ ई० की रोमानी-बुलगेरियन युद्ध हुआ था। परम्परावादी ईसाई जगत् की दो का आपसी घातक युद्ध तब तक नहीं समाप्त हुआ जब तक एक की राजनीतिक स्थि समाप्त हो गयी और यह कहना ठीक होगा कि दूसरा इतना आहत हो गया कि उसके घा नहीं हुए।

सन् १४५३ ई० में जब उसमानिया बादशाह मुंहम्मद द्वितीय ने कांस्टेनटिनोपल पर प्राप्त की उस समय परम्परावादी ईसाई सभ्यता की समाप्ति नहीं हुई। विचित्र विरो है कि विदेशी विजेता ने जिस समाज पर विजय प्राप्त की उसे सार्वभौम राज्य बनाया। हागिया सोफ़िया का गिरजाघर मुसलमानी मसजिद बन गया, परम्परावादी ईसाई सभ्य पूरे जीवन भर रही, जिस प्रकार हिन्दू सभ्यता तुर्की वंश के मुगल सम्राट् अकबर के निर्मित राज्य में जीवित रही, और विदेशी ब्रिटिश राज में जीवित है। किन्तु कुछ समय में उस तुर्की साम्राज्य में जो परम्परावादी ईसाई समाज का क्षेत्र था, विघटन तथा जनरेला होना हो गया। यूनानी, सर्ब, और अलबेनियन आठवीं शती के समाप्त होने के पहले गतिमान् है क्या कारण था कि इस गति से 'बर्बरता और धर्म की विजय' नहीं हुई जैसा हेलेनी, और समाजों की समाप्ति पर हमने देखा।

इसका उत्तर यह है कि पश्चिमी सभ्यता का धावा परम्परावादी ईसाई समाज के बर्बर उत्तराधिकारियों के पीछे बहुत शक्तिशाली था। बर्बरता और धर्म नहीं बल्कि पश्चिमीकरण ही उसमातिया साम्राज्य के विघटन का मुख्य कारण था। 'वीरता के युग' के ढंग पर बर्बर राज्य न होकर उसमानिया साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्य पश्चिमी ढंग के बने। वे पश्चिमी राज्यों की भाँति राष्ट्रीय राज्य के समूह बन गये। कोई-कोई तो जैसे, सर्बिया और यूनान, पश्चिमी ढंग के नवीन राष्ट्रीय राज्य के समान बने। जो बर्बर राष्ट्र पश्चिमी प्रभाव से अलग रहे और पश्चिम की राष्ट्रीय भावना को नहीं ग्रहण कर सके, उन्होंने अवसर खो दिया। अलबेनियनों ने, यूनानियों, सर्बों और बुलगरों को आत्मसमर्पण कर दिया यद्यपि अठारहवीं शती में उसका पुरातन वैभव इन लोगों से अधिक था। और बीसवीं शती में बहुत अल्प पैतृक सम्पत्ति को लेकर वह पश्चिमी राष्ट्रों के समूह में सम्मिलित हुआ।

इस प्रकार परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहास का अन्तिम दृश्य 'बर्बरता और धर्म की विजय' नहीं थी बल्कि एक विदेशी सभ्यता की विजय थी जो इस मृतप्राय समाज को धीरे-धीरे हड़प किये जा रही थी और उसके ताने-बाने से अपने सामाजिक वस्त्र को बुन रही थी।

हमको यहाँ एक और ढंग दिखाई दिया जिसके द्वारा कोई समाज अपना अस्तित्व खो देता है। 'बर्बरता और धर्म की विजय' का यह अर्थ होता है कि मृतप्राय समाज प्राचीन मान्यताओं के विरुद्ध क्रान्ति के परिणामस्वरूप अपने ही बाहरी और भीतरी सर्वहारा द्वारा तिरस्कृत हो जाता है, इसलिए कि इनमें से कोई एक सर्वहारा नयें समाज की स्थापना करने के लिए नया क्षेत्र बना दे। इस घटना में पुराना समाज समाप्त हो जाता है। यद्यपि एक प्रकार प्रतिनिधि रूप में वह नये समाज में रहता है। और इस सम्बन्ध को हमने 'सम्बद्ध या प्रजनित' कहा है। जब पुरानी सभ्यता तिरस्कृत नहीं होती, बल्कि अपनी ही किसी समकालीन सभ्यता द्वारा विलीन कर ली जाती है तब उसका निजत्व पूर्ण रूप से खो जाता है। पहली परिस्थिति में ऐसा नहीं होता। इस मृतप्राय समाज के जो-जो रूप बनते हैं वे सब नष्ट नहीं हो जाते। पुराने सामाजिक स्वरूप से बिना ऐतिहासिक शृंखला को तोड़े भी वे नये समाज में परिवर्तित हो जाते हैं जैसे वर्तमान यूनानी लोग चार सौ साल तक उसमानिया के पिट्ठू रहने के बाद भी पश्चिमी जगत् के राष्ट्र हो गये। दूसरी दृष्टि से निजित्व और भी अधिक लोप हो जायगा क्योंकि जो समाज दूसरे समाज में लोप हो जाता है तो एक नये समाज के न निर्माण करने का मूल्य इस रूप में चुकाता है कि अपनी विशिष्टता को किसी सीमा तक अक्षुण्ण रखता है और वह नये समाज की नयी पीढ़ी में उपस्थित होता है जैसे हमारा समाज हेलेनी समाज का प्रतिनिधि है, हिन्दू समाज भारतीय समाज का प्रतिनिधि है और सुदूर पूर्वी समाज चीनी का।

सम्मिलित होने पर लोप हो जाने का जो उदाहरण हमारे सामने है वह है परम्परावादी ईसाई समाज का पश्चिमी सभ्यता में लोप हो जाना। किन्तु हम यह देख सकते हैं कि आज की सभी सभ्यताएँ उसी राह पर चल रही हैं। रूस में परम्परावादी ईसाई समाज का वर्तमान इतिहास यही है, इस्लामी और हिन्दू समाज और सुदूर पूर्वी समाज की दोनों शाखाओं का भी यही वर्तमान इतिहास है। तीन अविकसित समाज जो वर्तमान है अर्थात् एसकिमो, खानाबदोश तथा पोलिनेशियनों का भी यही इतिहास है। पश्चिमी सभ्यता इन्हें पूरा नष्ट नहीं कर रही है, उसमें ये सम्मिलित होते जा रहे हैं। सत्रहवीं शती के अन्त में परम्परावादी ईसाई संसार का पश्चिमीकरण

आरम्भ हुआ, उसका प्रभाव दो सौ साल पहले से अमरीका के मैक्सिको तथा एंडियन- पड़ रहा था और अब यह प्रक्रिया प्रायः समाप्त हो गयी है। ईसा के पूर्व अन्तिम बैबिलोनी समाज सीरियाई समाज में लय हो गया और इसी सीरियाई समाज में कुछ बाद मिस्री समाज भी लीन हो गया। मिस्री समाज सबसे दीर्घजीवी, ठोस और एकता उसका सीरियाई समाज में लय हो जाना इस प्रकार के लीन हो जाने वाले उदाहरणों विचित्र है।

यदि हम उन जीवित सभ्यताओं की ओर देखें जो हमारी पश्चिमी सभ्यता में लीन प्रक्रिया में है तो हम देखेंगे कि यह प्रक्रिया भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न गति रही है।

आर्थिक स्तर पर ये सभी समाज आधुनिक पश्चिमी उद्योगवाद के जाल में, जो में फैला है, फँस गये हैं।

'उनके लाल बुझक्कड़ों ने
पश्चिम की बिजली की बत्ती देखी और उसे पूजने लगे'[१]

राजनीतिक स्तर पर भी इन मृतप्राय सभ्यताओं की सन्तानें विभिन्न दरवाजों से राज्य-परिवार में आने की चेष्टा कर रही हैं। सांस्कृतिक स्तर पर इस प्रकार का है। परम्परावादी ईसाई समाज के मुख्य लोग, पुराने उसमानिया साम्राज्य की रिआया सर्ब, रूमानियन, बुलगारियन ने खुले दिल से पश्चिमी सांस्कृतिक तथा राजनीतिक स्वीकार किया और उनके पुराने मालिक तुर्कों के नेताओं ने भी उनका अनुसरण किन्तु ये उदाहरण अपवाद जान पड़ते हैं। अरब, परशियन, हिन्दू, चीनी और जापानी बूझकर नैतिक तथा बौद्धिक प्रतिबन्धों के सहित पश्चिमी संस्कृति को स्वीकार कर जहाँ तक रूसियों का सम्बन्ध है, पश्चिम की चुनौती के सम्बन्ध में उनकी गोल-मटोल सम्बन्ध में दूसरे संदर्भ में विचार किया जा चुका है।

इस प्रकार पश्चिमी राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर संसार के की जो प्रवृत्ति है वह उतनी उन्नतिशील या अन्त में उतनी सफल सम्भवतः न हो जित देखने में वह जान पड़ती है। इसके विपरीत मैक्सिकी एंडियन, बैबिलोनी, तथा मि समाजों के उदाहरण से स्पष्ट है कि आत्मीकरण (असिमिलेशन) से भी अपना स्वरूप उ लोप हो जाता है जिस प्रकार विघटन से जैसे हेलेनी, भारतीय, चीनी, सुमेरी और मिनोई का हुआ। हम अब अपने उस बात की ओर ध्यान दें जो इस अध्याय का लक्ष्य था कि जो पड़ोसी समाज द्वारा विलीन हो गये अथवा हो रहे हैं, वही उनके विनाश का कारण है कि दूसरे समूह के सम्बन्ध में हमने देखा है विलीन होने या सम्मिलित होने के पहले ही आरम्भ हो गया था? यदि हम दूसरे निर्णय पर पहुँचते हैं तो हमारी खोज का काम जायेगा। और हम इस स्थिति में होंगे कि कह सकें कि किसी समाज के भौतिक अथवा वातावरण पर नियन्त्रण न होना समाज के विनाश का मूल कारण नहीं है।

---

[१] राबर्ट ब्रिजेज : द टेस्टामेंट आव ब्यूटी, भाग १, ५९४–५।

उदाहरण के लिए हमने देखा कि परम्परावादी ईसाई समाज के मुख्य भाग का अस्तित्व तब तक नहीं लोप हुआ जब तक उसका सार्वभौम राज्य क्षय होते-होते अन्तःकाल की स्थिति को नहीं पहुँच गया और उसका वास्तविक विघटन आठ सौ साल पहले रोमन-बुलगानिन युद्ध के समय आरम्भ हुआ जब पश्चिमीकरण का कोई चिह्न भी न था। मिस्री समाज के विघटन और विलीनीकरण के बीच का समय अधिक था। विघटन उस समय आरम्भ हुआ जब लगभग २४२४ ई० पू० पाँचवीं से छठी पीढ़ी में परिवर्तन हो रहा था जब पिरामिड बनाने वालों के पाप का परिणाम उनके उत्तराधिकारियों ने भोगा और 'पुराने राज्य' का भारी भरकम राजनीतिक ढाँचा ढह गया। सुदूर पूर्वी समाज के विघटन और विलीनीकरण के आरम्भ की प्रक्रिया के बीच उतना समय नहीं लगा जितना मिस्री समाज के इतिहास में किन्तु उससे अधिक लगा जितना परम्परावादी ईसाई राज्य के इतिहास में। सुदूर पूर्वी समाज का विघटन ईसा की नवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश में तांग वंश के विनाश से आरम्भ होता है। उसके बाद संकट काल आया जिसमें बर्बरों ने कई सार्वभौम राज्य साम्राज्य के ढंग पर बनाया। इनमें पहला कुबलाई खाँ ने मंगोलिया द्वारा शान्ति स्थापित करने के लिए बनाया। किन्तु उसमें उतनी सफलता नहीं मिली जितनी अकबर ने हिन्दू समाज में शान्ति स्थापित करके पायी और परम्परावादी ईसाई समाज में विजयी मुहम्मद ने। चीनी इस सिद्धान्त पर कार्य करते रहे हैं कि 'मैं यूनानियों से उस समय भी डरता हूँ जब वे लाभ का काम करते हैं ?' और इसके अनुसार उन्होंने मंगोलों को निकाल बाहर किया जिस प्रकार मिस्रियों ने हाइकसों को। पश्चिमीकरण के पहले मंचुओं को मंच पर आना था।

रूस और जापान में, जो इस समय पश्चिम से प्रभावित महान् शक्तियाँ हैं, इनकी सभ्यता के विघटन के बहुत पहले पश्चिमी सभ्यता का आघात हो चुका था। किन्तु इन दोनों सभ्यताओं में विघटन हो रहा था क्योंकि रोमानोफ़ ज़ारशाही जिसका आरम्भ पीटर महान् ने किया था। पश्चिमी राष्ट्रों के समूह में राष्ट्रीय राज्य बन रहा था और दो सौ साल तक सार्वभौम राज्य रहा, इसी प्रकार जापानी सार्वभौम राज्य भी तीन सौ साल तक रहा जिसके पश्चिमीकरण का आरम्भ ताकुगावाशोगुन वंश ने किया था। इन दोनों स्थितियों में यह कोई नहीं कहेगा कि पीटर महान् अथवा तोकुगावा के कार्यों से विघटन आरम्भ हुआ। इसके विपरीत देखने में ये उपलब्धियाँ इतनी सफल थीं कि बहुत पर्यवेक्षक इन्हें इस बात का प्रमाण मान सकते हैं कि जिन समाजों ने जान-बूझकर ये परिवर्तन स्वीकार किये और जो कम से कम कुछ काल के लिए सफल रहे वे इस समय पूर्ण रूप से सजीव होंगे। रूसी तथा जापानियों ने जिस चुनौती का सामना किया वह उसी प्रकार की उस चुनौती के विपरीत है जिसका सामना उसमानलियों, हिन्दुओं, चीनियों, एज़टेकों और इनका को करना पड़ा। इनपर कुछ प्रभाव न पड़ा। रूसियों और जापानियों ने अपने पश्चिमी पड़ोसियों—पोल, स्वीड, जरमन या अमरीकन-द्वारा जबरदस्ती पश्चिमीकरण स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपना सामाजिक परिवर्तन अपने हाथों किया और परिणाम यह हुआ कि पश्चिम की बराबरी के राष्ट्र में बन गये। औपनिवेशिक दासता या गरीब रिश्तेदार नहीं बने।

ध्यान देने की बात है कि सत्रहवीं शती के आरम्भ में पीटर महान् के लगभग सौ साल पहले और 'मेइनी पुनःस्थापन' (मेइनी रेस्टोरेशन) के ढाई सौ साल पहले, रूस और जापान को अनुभव हुआ कि पश्चिम हमें विलीन करने की चेष्टा कर रहा है, उसी प्रकार जैसे और देशों को उसने

किया । रूस में तो पोलैंड तथा लिथुएनिया के संयुक्त राज ने मास्को पर सैनिक आक्रम रूसी गद्दी पर एक झूठे दावेदार की सहायता के लिए । जापान में यह आक्रमण दूसरे प्रका स्पेनी और पुर्तगाली मिशनरियों ने कई लाख जापानियों को कैथोलिक ईसाई बनाया हो सकता था कि ये ईसाई अल्पसंख्यक स्पेनी जहाजों की सहायता से जापरन पर अपना जमा लेते । रूसियों ने तो पोलों को मार भगाया और जापानियों ने इस 'सफेद खतरे' प्रकार दूर किया कि सभी पश्चिमी व्यापारियों को जापान से निकाल बाहर किया और जापानी धरती पर किसी पश्चिमी का आना बन्द कर दिया । केवल कुछ डच रह गये ऊपर बहुत अपमानजनक शर्तें लगा दी गयी थीं । और जापानी ईसाइयों को निर्द समाप्त कर दिया । इस प्रकार पश्चिमी समस्या को हल करके रूसियों और जापानि समझा कि अब हम अपने घोसले में शान्ति से रहेंगे । समय ने बताया कि ऐसा नहीं सम्भ इन्होंने नये ढंग से पश्चिम की चुनौती को स्वीकार किया जिसका वर्णन पहले हो चुका है।

किन्तु ऐसे स्पष्ट चिह्न मौजूद हैं कि नागासाकी में पहला पुर्तगाली जहाज पहुँचने के और आरचेंजेल में प्रथम अंग्रेजी जहाज के पहुँचने के पहले (मास्को में पोलों के आक्र पूर्व यह पश्चिम का अग्रदूत पहुँचा चुका था) जापान की सुदूर पूर्वी सभ्यता तथा रूस के वादी ईसाई समाज का विनाश आरम्भ हो गया था ।

रूसी इतिहास में वास्तविक 'संकट का काल', जिस अर्थ में ये शब्द इस अध्ययन में किये गये हैं, सत्रहवीं शती की वह अराजकता नहीं है जिसके लिए रूसियों ने ही ये शब्द वह पहले तथा दूसरे रूसी सार्वभौम राज्य के बीच केवल एक घटना थी जो हेलेनी संसार के नाइनों के काल तथा डायोक्लीशियन के पदारोहण के बीच की अराजकता का युग था। इतिहास का वह अध्याय तो हेलेनी इतिहास कें उस अध्याय के समान है जो पेलोपोने और आगस्ट्स के शासन के बीच पड़ता है और इसलिए वह हमारे विचार के अनुसार का काल है । यह वह समय है जब मास्को और नवगोरोड सन् १४७८ ई० में एक साथ गये और रूसी सार्वभौम राज्य की नींव पड़ी । उसी हिसाब से जापानी संकट का काल और आशीकागा का काल है जब सामन्तवादी अराजकता थी । यह काल उसके पहले नोबूनाग, हिदेयोशी और इयेयासू को मिलाकर शान्ति तथा मर्यादा स्थापित की गयी। दोनों मिलाकर सन् ११८४ ई० से सन् १५९७ ई० तक का काल होता है ।

यदि ये सचमुच रूसी और जापानी संकटकाल है तो इन दोनों हालतों में हमें यह देखना ये संकट के काल किसी निजी घातक कारणों से उपस्थित हुए अथवा किसी विदेशी वैरी के रूसी उदाहरण में साधारणतः यह कारण बताया जाता है कि पश्चिमी मध्ययुग के अनु विघटन का काल है वह यूरोपीय स्टेप से मंगोल खानाबदोशों के कारण था । किन्तु दूसरे में हमने विचार करके अस्वीकार कर दिया है । जैसे परम्परावादी ईसाई समाज की शाखा के सम्बन्ध में यह तर्क कि यूरेशियाई खानाबदोश अनेक प्रकार के दुष्ट थे । क्या यह नहीं है कि रूस में परम्परावादी ईसाई समाज ने इसके पहले कि सन् १२३८ में वोल्गा को पार किया अपने ही कृत्यों से अपना विघटन किया हो । इसका पुष्टीकरण इस है कि कीव का आदिम रूसी राज्य ईसा की बारहवीं शती में छिन्न-भिन्न होकर अनेक राज्यों में बँट गया ।

जापान की स्थिति इससे अधिक स्पष्ट है। यहाँ विघटन मंगोलों के आक्रमण के कारण नहीं हुआ क्योंकि जापानियों ने सन् १२८१ में अपने तट से इन्हें मार भगाया। इस महान् विजय का कारण एक तो उनकी द्वीप की स्थिति थी, दूसरे आपस में सौ साल से लड़ते-लड़ते उनकी सैनिक दक्षता बहुत बढ़ गयी थी।

हिन्दू, बैबिलोनी तथा एंडियाई समाजों में विदेशी समाजों द्वारा विलीनीकरण की घटना अकस्मात् घटी जब ये पतनोन्मुख समाज सार्वभौम राज्य के रूप में थे, जैसे रूस और जापान के उदाहरणों में। किन्तु पहले तीन उदाहरणों में प्रक्रिया विपत्तिपूर्ण थी क्योंकि विदेशियों ने सैनिक बल से इन पर विजय प्राप्त की थी। हिन्दू इतिहास में ब्रिटिश विजय के पहले तथा मुगलों के काल से पहले, मुसलमानों ने विजय प्राप्त की थी जब उनके आक्रमण सन् ११९१ से १२०४ के बीच हुए। यह विजय और इसके बाद की ब्रिटिश तथा मुगल विजय इस कारण हुई कि उस समय हिन्दू समाज में बेतरह अराजकता फैली हुई थी।

बैबिलोनी समाज को सीरियाई समाज ने अपने में विलीन कर लिया जब नेबुकदनज़ार के साम्राज्य सार्वभौम राज्य को—फारस के खुसरू ने पराजित किया। इसके बाद से धीरे-धीरे बैबिलोनी संस्कृति सीरियाई संस्कृति में लीन होती गयी और परिणामस्वरूप एकेमेनियाई सार्वभौम राज्य बना। किन्तु बैबिलोनी पतन का कारण असीरियाई सेना का अत्याचार था।

एंडियाई समाज के सम्बन्ध में यह जान पड़ता है कि 'इनका' साम्राज्य को स्पेनी विजेताओं ने तहस-नहस किया। और सम्भव है कि यदि पश्चिम के लोग वहाँ न पहुँचे होते तो 'इनका' साम्राज्य कुछ और शतियों तक चलता। किन्तु एंडियाई सभ्यता का विनाश और 'इनका' साम्राज्य का 'विनाश' एक ही बात नहीं है। हमें एंडियाई इतिहास के सम्बन्ध में इतना ज्ञात है कि इसका पतन इनकाओं के सैनिक तथा राजनीतिक उत्थान के पहले हो गया था। स्पेनी विजय के एक शती पहले यह घटना हो चुकी थी। एंडियाई सभ्यता के सांस्कृतिक उद्भव के साथ ही यह घटना न थी। यह पतन बाद में हुआ।

मेक्सिको की सभ्यता स्पेनी विजेताओं के आक्रमण से उस समय नष्ट हुई जब ऐज़टेक साम्राज्य, जो अपने समाज का सार्वभौम राज्य होने वाला था, अपनी विजय पूरी नहीं कर पाया था। दोनों का अन्तर हम इस प्रकार कह सकते हैं कि एंडियाई समाज अपने एन्टोनाइनों के काल में पराजित हुआ और मेक्सिकी समाज अपने सीपियों के काल में समाप्त हुआ। किन्तु 'सीपियों का काल' संकट का काल है और इस कारण हमारी परिभाषा के अनुसार विनाश के पहले का स्वरूप है।

उसके विपरीत इस्लामी संसार में पश्चिमीकरण उस समय होने लगा जब किसी प्रकार का इस्लामी सार्वभौम राज्य दृष्टि में नहीं था। उसके कई राज्य जैसे फारस, इराक, सऊदी अरब, मिस्र, सीरिया, लेबनान पश्चिमी राष्ट्रों के 'गरीब रिश्तेदार' के रूप में, जो उन्नति सम्भव है कर रहे हैं। अखिल इस्लामी आन्दोलन अकाल प्रसूत जान पड़ता है।

दूसरी सभ्यताएँ जो प्रौढ़ हुईं अथवा अविकसित तथा अकाल प्रसूत सभ्यताओं को हम छोड़ दे सकते हैं। किन्तु कुछ प्रौढ़ सभ्यताएँ जैसे मिनोई, हिताइटी और माया के इतिहास अभी पूर्ण रूप से जाने नहीं गये हैं और जो ज्ञान उपलब्ध हैं उसके आधार पर कोई परिणाम निकालना ठीक न होगा। अविकसित सभ्यताओं के सम्बन्ध में इस खोज में कुछ परिणाम निकालना ठीक

न होगा क्योंकि हमारी परिभाषा के अनुसार उनका जन्म तो हुआ किन्तु विकास न हो सका और अकाल प्रसूत सभ्यता के सम्बन्ध में कुछ कहना निश्चय रूप से बेकार होगा ।

(३) नकारात्मक अभिमत (वर्डिक्ट)

ऊपर के अनुसन्धान से हम सामान्यतः इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सभ्यताओं के पतन का कारण मानवी परिस्थितियों पर नियन्त्रण का अभाव नहीं है । यदि यह नियन्त्रण इस दृष्टि से नापा जाय कि जिस समाज के बारे में हम खोज कर रहे हैं उस पर विदेशियों का आक्रमण कब और कैसे हुआ तो जितने उदाहरण हमने देखे हैं उन सबके बारे में यही कहा जा सकता है कि अधिक-से-अधिक निजी घातक कारणों के अन्त में विदेशी कारण अन्तिम प्रहार रहा है । जहाँ सभ्यता के इतिहास के किसी काल में विदेशी सम्पर्क शक्तिशाली आक्रमण के रूप में रहा है, सभ्यता का विनाश नहीं हुआ, उसे स्फूर्ति ही मिली । सिवाय उसके अन्तिम काल में जब सभ्यता का विनाश हो गया । ईसा के पूर्व पाँचवीं शती के आरम्भ में परशियनों के आक्रमण से हेलेनी समाज को सजीवता मिली और उसकी प्रतिभा का अभूतपूर्व विकास हुआ । ईसा की नवीं शती में नार्स और मैंगयरों के आक्रमण से पश्चिमी समाज को स्फूर्ति प्राप्त हुई और इन्होंने शक्ति तथा राजनीतिज्ञता के विशिष्ट कौशल दिखाये जिसका परिणाम था इंग्लैंड और फ्रांस का राज्य और सेक्सनों द्वारा पवित्र रोमन साम्राज्य का पुनःसंगठन । मध्य युग में इटली के उत्तरी राज्यों को होहेस्टाफेन आक्रमणों से शक्ति प्राप्त हुई और स्पेन के आक्रमणों से आधुनिक इंग्लैंड और हालैंड को और आठवीं शती में अरब मुसलमानों के आक्रमण से शिशु हिन्दू समाज को स्फूर्ति मिली।

ऊपर के सभी उदाहरण ऐसे हैं कि उन देशों पर ऐसे समय आक्रमण हुआ जब उनका विकास हो रहा था । हम ऐसे भी अनेक उदाहरण दे सकते हैं जो अपनी ही कुव्यवस्था से नष्ट हो चुके थे और विदेशी आक्रमण ने कुछ दिनों के लिए उन्हें स्फूर्ति प्रदान की । क्लासिक उदाहरण मिस्री समाज का है जिस पर इस प्रकार के आक्रमण की अनेक बार प्रतिक्रिया हुई । दो हजार वर्षों तक मिस्र में प्रतिक्रियाएँ बार-बार होती रहीं । मिस्री इतिहास का यह उपसंहार उस समय हुआ जब उसके सार्वभौम राज्य का जीवन समाप्त हो चुका था । और ऐसा अन्तःकाल था जिसके बाद शीघ्र ही वह विनाश की अवस्था को पहुँचा । इस अन्तिम अवस्था में मिस्री समाज ने इतनी शक्ति प्राप्त की कि हाइक्सो आक्रमणकारियों को निकाल बाहर किया और बीच-बीच में ऐसी शक्ति उत्पन्न होती रही कि सागर के दस्युओं को, असीरियों को और अकेमेनिडियों को मार भगाया और टोलेमियों ने हेलेनीकरण की जो प्रक्रिया आरम्भ की थी उसका भी सफल सामना किया ।

इसी प्रकार की प्रतिक्रिया चीन की सुदूर पूर्वी सभ्यता में भी हुई । मिंग वंश ने मंगोलों को निकाला, यह उसी प्रकार है जैसे 'नये साम्राज्य' के थीबी संस्थापकों ने हाइक्सों को निकाला और सन् १९०० में पश्चिम विरोधी बाक्सर आन्दोलन तथा १९२५–२७ का रूसी साम्यवादी उपकरणों की नकल करते हुए पश्चिम से असफल युद्ध, उसी के समान है जैसे मिस्र ने हेलेनीकरण का विरोध किया था ।

ये उदाहरण तथा दूसरे भी बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो हमारे इस पक्ष के समर्थन के लिए पर्याप्त हैं कि बाहरी दबाव तथा घात साधारणतः स्फूर्तिदायक होते हैं, विनाशकारी नहीं।

और यदि यह बात मान ली जाय तो हमारे परिणाम को प्रमाणित करता है कि मानवी वातावरण पर नियन्त्रण हट जाने से सभ्यताओं का विनाश नहीं होता ।

सम्पादक की टिप्पणी

कुछ पाठक सोच सकते हैं कि ऊपर के अध्यायों में लेखक तर्क के लिए कई बार अनेक सभ्यताओं के विघटन का काल बहुत पीछे ले गया है । यह भावना इसलिए हो सकती है कि 'ह्रास' के अनेक अर्थ हो गये हैं । जब हम किसी मनुष्य के स्वास्थ्य के ह्रास की वात करते हैं तब उसमें यह ध्वनि निहित रहती है कि यदि वह स्वस्थ न हुआ तो उसका सक्रिय जीवन समाप्त हो गया । हम लोग साधारणतः 'ह्रास' उसी अर्थ में प्रयोग करते हैं जिसमें ट्वायनबी 'विघटन' कहते हैं । किन्तु इस अध्ययन में 'विघटन' का वही अर्थ नहीं है, उसका अर्थ है विकास का युग समाप्त हो जाना । जीवधारियों के जीवन और समाजों के जीवन की तुलना अनुचित होती है, किन्तु पाठकों को यह वता देना चाहता हूँ कि जीवधारियों में विकास जीवन में वहुत पहले ही समाप्त हो जाता है । जीवधारियों और समाजों में अन्तर है । इसे ऊपर के अध्याय के पहले अध्याय में लेखक ने बड़े परिश्रम से स्पष्ट करने की चेष्टा की है । जीवधारी जैसे मनुष्य की अवस्था 'सत्तर साल'[1] की बतायी गयी है । समाजों के लिए कोई ऐसी सीमा नहीं है । दूसरे शब्दों में समाजों की मृत्यु प्राकृतिक कारणों से नहीं हुआ करती । सदा आत्महत्या अथवा हत्या से उनका अन्त हुआ करता है । विशेषतः आत्महत्या से जैसा कि इस अध्याय में बताया गया है । इसी प्रकार विकास-काल की समाप्ति जीवधारियों के जीवन में स्वाभाविक क्रम है । समाज में यह 'भूल' या 'अपराध' के कारण अस्वाभाविक कारण है । इसी 'भूल' या 'अपराध' को ट्वायनबी समाज के लिए 'ह्रास' कहते हैं । इस अर्थ में जब इस शब्द का प्रयोग किया जाता है तब पता चलता है कि सभ्यता के इतिहास में अनेक सफल, विख्यात और विशिष्ट घटनाएँ ह्रास के पश्चात घटी हैं या उनके कारण हुई हैं ।

---

[1] वाइबिल के अनुसार —अनुवादक

१६. आत्मनिर्णय की असफलता

(१) अनुकरण की यांत्रिकता (द मेकानिकलनेस आव माइमेसिस)

सभ्यताओं के ह्रास के सम्बन्ध की खोज के आधार पर हम अनेक नकारात्मक परि पर पहुँचे हैं। हमने देखा है कि ये ह्रास ईश्वर कृत्य नहीं हैं, कम-से-कम जैसा वकील लोग शब्दों का अर्थ कहते हैं। न तो वे प्रकृति के अन्धे नियमों के कारण होते रहते हैं। हमने यह देखा है कि वातावरण पर नियन्त्रण का अभाव भी उनका कारण नहीं है—चाहे वातावरण भौति हो या मानवी। ह्रास इस कारण भी नहीं होता कि औद्योगिक अथवा कलात्मक तकनीक विफलता हो और न विदेशी आक्रमण द्वारा की गयी नर-हत्या ही कारण है। इन कारणों अस्वीकार करते हुए हमको अपनी खोज का परिणाम नहीं मिला। किन्तु अन्तिम तर्कभा हमें एक संकेत मिल गया। हमने जहाँ यह बताया कि ह्रास विदेशों के द्वारा नर-हत्या के का नहीं हुआ वहाँ हम यह नहीं प्रमाणित कर सके कि ह्रास का कारण हिंसा नहीं है। प्रत्येक उदाह में हम इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि ह्रास का कारण हिंसा है अपने ही द्वारा—आत्मह इस परिणाम पर अच्छी तरह विचार करने के लिए संकेत का सहारा लेना चाहिए। और सम्बन्ध में एक आशाजनक बात है जिसे हम तुरत देख सकते हैं। इसमें कोई मौलिक बात नहीं बता रहे हैं।

जिस परिणाम पर हम इतने परिश्रम से पहुँचे हैं उसे पहले ही एक आधुनिक पश्चिम के ने कहा है :—

> ईश्वर जानता है, इस दुखमय जीवन में किसी दुरात्मा की
> आवश्यकता नहीं है। हमारी ही कुवासनाएँ जाल बुनती हैं
> हमारी अन्तरात्मा ही हमारे साथ घात करती है।

(मेरेडिथ का लव्जग्रेव) यह कोई नयी बात नहीं है। इससे पहले तथा और अधिकारी व्यक्ति ने यह बात कही है। शेक्सपियर ने 'किंग जान' की अन्तिम पंक्तियों में कहा है :—

> यह इंग्लैंड घमंडी विजेता के
> चरणों पर कभी न पड़ा है, न पड़ेगा,
> जब तक कि वह स्वयं अपने पर घात नहीं करेगा।
> हमें कभी पछताना न पड़ेगा,
> यदि इंग्लैंड अपने प्रति सच्चा रहेगा।

इसी प्रकार ईसू के शब्द हैं (मैथ्यु १५, १८–२०) 'जो कुछ मुँह द्वारा प्रवेश करता है, पेट में है और फिर बाहर फेंक दिया जाता है। किन्तु जो मुँह से निकलता है वह हृदय से आता है वह मनुष्य को गन्दा करता है। क्योंकि हृदय से बुरे विचार, हत्या, परस्त्री-गमन, वेश्या चोरी, झूठी गवाही देना, ईश्वर निन्दा आदि हृदय से निकलते हैं। इनसे मनुष्य अपवित्र होता

वह कौन दुर्बलता है जिसके कारण विकासोन्मुख सभ्यता अपने जीवन के मध्यकाल में पतनोन्मुख हो जाती है और अपनी महती शक्ति खो बैठती है। यह दुर्बलता महत्त्वपूर्ण होगी, क्योंकि पतन का संकट निश्चित नहीं है फिर भी संकट भयावह तो है ही । हमारे सामने यह तथ्य है कि इक्कीस सभ्यताओं में, जों सजीव जन्मी और विकसित हुई, तेरह तो मर गयीं और दफन हो गयीं और जो आठ बची हैं उनमें सात स्पष्टतः पतनोन्मुख हैं । आठवीं जो हमारी है वह कौन जानता है अपने उत्कर्ष पर पहुँच चुकी हो । अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि विकासोन्मुख सभ्यता को अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है । और जो विकास का विश्लेषण किया गया है उसका ध्यान हम रखेंगे तो देखेंगे कि विकास की ही राह में वह संकट रहता है ।

विकास सर्जनात्मक व्यक्तियों और सर्जनात्मक अल्पसंख्यकों का काम है । वह आगे बढ़ नहीं सकते यदि इस प्रगति में अपने साथियों को अपने साथ न ले चलें । समाज की बहुसंख्यक जनता अ-सर्जनात्मक होती है । उन्हें निर्माण करने वाले नेता क्षण भर में अपने समान नहीं बना सकते । यह असम्भव होगा । क्योंकि सन्तों के समागम से तपोमय आत्मा का प्रकाशमान होना उतना ही चमत्कारपूर्ण है जितना सन्त का संसार में प्रकट होना । नेता का काम है कि अपने साथियों को अपना अनुगामी बनाये । अपने नेता के अनुसार उन्नति के लक्ष्य की ओर बढ़े, उसका एक ही ढंग है वह नेता का अनुकरण करे । अनुकरण एक प्रकार का सामाजिक अभ्यास (ड्रिल) है। जो कानओरफ्यूज की मधुर वीणा के स्वरों से प्रभावित नहीं होते वे सार्जेंट की आज्ञा के शब्दों के वशीभूत हो जाते हैं । जब हेमलिन का वंशीवाला प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम के रूप में गरजता है तब वे, जो अब तक निष्क्रिय थे, गतिशील हो जाते हैं और जिस विकास की ओर वह ले जाना चाहता है चलते हैं । किन्तु उसका साथ वे छोटे रास्ते से ही कर सकते हैं । लम्बी राह विपत्ति की ओर ले जाती है । जब विवश होकर लम्बा रास्ता ही पकड़ना पड़ता है तभी उन्हें विनाश का सामना करना पड़ता है ।

एक बात और ध्यान देने की है । अनुकरण के अभ्यास में एक दुर्बलता है । उस ढंग के अतिरिक्त जिस ढंग से जनता की शक्ति का उपयोग किया जाय । और अनुकरण चूंकि अभ्यास है इसलिए इससे मानव जीवन और गति यन्त्रवत् हो जाती है ।

जब हम 'कौशलपूर्ण यन्त्र' अथवा 'चतुर मिस्त्री' की बात करते हैं तब इन शब्दों से यह बोध होता है कि जीव की पदार्थं (मैटर) पर विजय है, मानवी चतुराई की भौतिक बाधाओं पर विजय है । वास्तविक उदाहरणों से भी यही बात मालूम होती है जैसे ग्रामोफोन या हवाई जहाज से लेकर पहली बार जब पहिया बना होगा या पहली डोंगी जो लकड़ी को खोदकर बनी होगी (कैनू) उन तक, क्योंकि इन आविष्कारों द्वारा मनुष्य की शक्ति अपने वातावरण पर इतनी अधिक हो जाती है कि निर्जीव पदार्थों को वे जिस प्रकार चाहे काम में ला सकते हैं जैसे सारजेंट अपनी आज्ञा से यन्त्रवत् मनुष्य से जिस प्रकार चाहे ड्रिल करा सकता है । अपनी पलटन की ड्रिल कराते समय सारजेंट अपने को ब्राएरियस के समान बना लेता है जिसके सैकड़ों हाथ और पाँव इस प्रकार आज्ञा पालन करते हैं जैसे उसके दो ही हाथ-पाँव हैं । उसी प्रकार दूरबीन मनुष्य की आँख का विस्तार है, भेरी मनुष्य की आवाज का, स्टिल्ट पाँव का और तलवार मनुष्य के बाहु का । मनुष्य कैसे-कैसे यन्त्र बनायेगा उसके पहले ही प्रकृति ने उसकी चतुराई की प्रशंसा कर रखी

है । अपनी सर्वोत्तम कृति मनुष्य के शरीर में प्रकृति ने उसका खूब प्रयोग किया है । फेफड़े बनाकर प्रकृति ने दो स्वचालित यन्त्र बनाये हैं जो आदर्श हैं । इन्हें तथा और प्रकृति ने ऐसा सामंजस्य स्थापित किया है कि वे अपने से सब काम करतें हैं । ढंग से काम करते रहने से जो शक्ति उत्पन्न होती है उससे हम चलते हैं, वात-चीत करते उसने ही इक्कीस सभ्यताओं को जन्म दिया है । यों समझिए कि किसी अवयव का नब्बे कार्य अपने से होता है और कम-से-कम शक्ति उसमें व्यय होती है । यह इसलिए कि अधिक शक्ति शेष दस प्रतिशत व्यय में लगे । इस दस प्रतिशत शक्ति द्वारा प्रकृति है । सच बात यह है कि प्राकृतिक जीवन भी मानव समाज की भाँति है जिसमें एक अल्पसंख्यक सदस्य हैं और एक निष्क्रिय बहुसंख्यक । विकासोन्मुख जीव में, समाज की भाँति अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों को यन्त्रवत् चालित करते रहते हैं ।

मानव की इन यन्त्रवत् सफलताओं की सराहना में हम मगन हो जाते हैं किन्तु शब्दावली है जिन्हें सुनकर हमें चिन्ता होती है—जैसे 'मशीन के बने सामान', आचरण' जिनमें मशीन का अर्थ पदार्थ पर मानव की विजय नहीं, मानव पर पदार्थ की संकेत हम करते हैं । मशीन मनुष्य का दास बनने के लिए बनायी गयी है । किन्तु यह है कि मनुष्य मशीन का दास बन जाय । उस सजीव प्राणी में जिसमें प्रतिशत मशीन है सर्जन शक्ति है बजाय उस प्राणी में जिसमें पचास प्रतिशत मशीन है । जैसे—यदि भोजन बनाने में समय न लगाना पड़े तो वह विश्व के रहस्य के उद्घाटन में अधिक समय है । मगर जो जीव शत प्रतिशत यन्त्र है वह जीवन से ही रोबोट—यन्त्र रूपी मानव—

इसलिए अनुकरण के माध्यम से समाज में जो यान्त्रिक कार्य होता है उसमें विपत्ति रहता है । और यह स्पष्ट उस समाज में अधिक रहता है जो गत्यात्मक है बजाय उस जो सुषुप्त है । अनुकरण की प्रक्रिया का दोष यह है—इस यन्त्रवत् संचालन की प्रेरणा होती है । यदि आज्ञापालन करने वाले पर छोड़ दिया जाय तो वह अपनी ओर से कभी न करेगा । अनुकरण की क्रिया अपने मन से नहीं होती और इस क्रिया को पूर्ण रूप करने के लिए आवश्यक है कि उसे रीति-रिवाज या आचार का रूप दे दिया जाय वास्तव में आदिम समाजों का 'यिन' अवस्थाओं में होता है । किन्तु जब रीति की जाती है तब तो जो अनुकरण शक्ति पुरातन लोगों के या अपरिवर्तिनीय सामाजिक अवतारों की पूजा में लगती थी, वह नेताओं की पूजा में लगायी जाती है जो सुन्दर भविष्य ले जाने का सपना दिखाते हैं । इस दशा में समाज का रास्ता भयपूर्ण हो जाता है । का भय सिर पर सवार रहता है । क्योंकि विकास को सुरक्षित रखने के लिए सदैव स्वाभाविक प्रवृत्ति चाहिए और समुचित अनुकरण के लिए मशीन के समान चाहिए जो विकास के लिए आवश्यक है । वाल्टर बेजहाट के मन में यही दूसरी बात उसने अपने व्यंग्यपूर्ण ढंग से अंग्रेज पाठकों से कहा था कि तुम्हारी सफलता बहुत कुछ मूढ़ता के कारण है । अच्छे नेताओं को अच्छे अनुगामी कभी नहीं मिल सकते, यदि ये विचार करने लगें । फिर यदि सब मूढ़ हैं तो नेता कौन बनेगा ?

सच बात यह है सर्जनात्मक व्यक्ति सभ्यता के आगे-आगे है और जो अनुकरण के का सहारा लेते हैं दो प्रकार की असफलताओं के सम्मुख रहते हैं । एक प्रतिकूल और एक

प्रतिकूल असफलता इस प्रकार हो सकती है कि नेता स्वयं उस शक्ति के वशीभूत हो जायँ जिससे उन्होंने अपने अनुगामियों को प्रभावित किया है। ऐसी अवस्था में जन-साधारण की शिक्षा उसके नेता अपनी स्व-प्रेरणा (इनिशियेटिव) को गवाँ कर देते हैं जो नाशकारी है। यही अविकसित सभ्यताओं के इतिहास में हुआ, और अन्य सभ्यताओं में भी, जो निष्क्रिय रूप में हैं। किन्तु यह प्रतिकूल असफलता ही कहानी का अन्त नहीं है। जब नेता का नेतृत्व समाप्त हो जाता है तब उनके कार्यकाल का दुरुपयोग होने लगता है। तब जनता विद्रोह कर देती है और अफसर दमन द्वारा शान्ति स्थापन करना चाहते हैं। ओरफ्यूज जिसकी वंशी खो गयी या जो वंशी वजाना भूल गया, अब ज़रक्सेज का कोड़ा हाथों में लेता है। परिणाम यह होता है कि भयंकर अशान्ति छा जाती है और सुव्यवस्थित समाज में क्रान्ति हो जाती है। यह अनुकूल असफलता है और हमने वार-वार इसी के लिए दूसरे शब्द का प्रयोग किया है। वह है पतनोन्मुख सभ्यता का विघटन जिसमें नेता शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का रूप धारण करते हैं और जनता सर्वहारा होकर अलग हो जाती है।

सर्वहारा का इस प्रकार अपने नेताओं से अलग हो जाना समाज के उस सामंजस्य को खो देना है जो उसे एक बनाये रखती है। किसी पूर्ण समाज में, जिसमें कई भाग हों, भागों की एकता मिट जाय तो सारे समाज को अपने आत्मनिर्णय की भावना को खो कर उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। आत्मनिर्णय की शक्ति का अभाव ह्रास की अन्तिम कसौटी है। इस निष्कर्ष से हमें आश्चर्य न होना चाहिए कि यह उस निष्कर्ष के विपरीत है, जिस पर हम इस अध्ययन में पहले पहुँच चुके हैं कि आत्मनिर्णय की भावना की ओर जाना सभ्यता के विकास का चिह्न है। हम अब कुछ उन तत्त्वों की परीक्षा करेंगे जिनमें सामंजस्य के अभाव के कारण आत्मनिर्णय की भावना लोप हो जाती है।

(२) पुरानी बोतल में नयी शराब

समायोजन, क्रान्ति और अनाचार[१]

समाज जिन संस्थाओं का बना हुआ है उनमें असंगति का एक कारण नयी सामाजिक शक्तियाँ, जैसे नयी रुझान, नये आवेग, नये विचार—हैं जिन्हें संस्थाएँ वहन करने के लिए मूल रूप से नहीं वनी थीं। इस प्रकार के दो विरोधी तत्त्वों का कितना अनिष्टकर परिणाम होता है उसका एक विख्यात वार्ता में वर्णन है, जिसके बारे में कहा जाता है ईसा ने कहा था :

'कोई मनुष्य नये कपड़े में पुराने कपड़े का जोड़ नहीं लगाता। क्योंकि जो नया कपड़ा लगाया जाता है, पर पुराने कपड़े में से कुछ हटा देता है और छेद और भी भद्दा हो जाता है। और लोग नयी शराब को भी पुरानी बोतल में नहीं रखते नहीं तो बोतल फूट जाती है और शराब बह जाती है। लोग नयी शराब को नयी बोतल में रखते हैं और दोनों की रक्षा होती है।'[२]

जिस घरेलू व्यवस्था की उपमा ऊपर दी गयी है उसका अक्षरशः पालन किया जा सकता है परन्तु सामाजिक जीवन में मनुष्य को कार्य करने की शक्ति सीमित होती है। समाज कपड़े या

---

[१] एडजस्टमेन्ट, रिवोल्यूशन एण्ड एनामिटीज़।

[२] मैथ्यु—९, १६–१७।

बोतल के समान एक आदमी की सम्पत्ति नहीं है । वह अनेक मनुष्यों का कार्यक्षेत्र है इसलि जो शिक्षा घरेलू व्यवस्था में साधारण और व्यावहारिक ज्ञान है वह समाज में आदर्श है।

आदर्श रूप में नयी गत्यात्मक शक्तियों को समाज की सारी संस्थाओं को नये सिरे से निर्मि करना चाहिए और वास्तविक विकासोन्मुख समाज में विशेष काल-दोषों (एनाक्रोनिज्म) क समायोजन होता रहता है। किन्तु स्थिर शक्तियाँ सदा समाज के ढाँचे के बहुत-से हिस्से को का त्यों बनाये रखती हैं यद्यपि नयी कार्यशील शक्तियों और पुरानी शक्तियों में असंगति रहती है। ऐसी स्थिति में नयी शक्तियाँ दो विरोधी दिशाओं में साथ-साथ कार्य करती रहती हैं। एक ओ तो नयी संस्थाओं द्वारा, जिनका उन्होंने निर्माण किया है या उन पुरानी संस्थाओं द्वारा जि उन्होंने अपने अनुसार गढ़ लिया है, अपना सर्जनात्मक कार्य करती रहती है, कल्याण कर हैं। साथ-ही-साथ वे ऐसी संस्थाओं में अव्यवस्थित ढंग से घुस पड़ती हैं, जो उनके सामने आ जा हैं, जैसे शक्तिशाली भाप की शिखा इंजन घर में चली जाय और किसी पुराने इंजन में घुस जाय ऐसी अवस्था में दो में एक दुर्घटना हो सकती है। या तो भाप के दबाव से पुराना इंजन चूर-च हो जाय या किसी प्रकार वह बना रहे और इस प्रकार कार्य करने लगे जो भयानक विनाशकारी हो

इन रूपकों को सामाजिक जीवन के अर्थ में लें अर्थात् पुराने इंजनों का विस्फोट जो भाप के दबाव को सहन नहीं कर सकते, या पुरानी बोतलों का फूटना जिसमें नयी शराब रखी जाती है तो इसका अभिप्राय होगा—वे क्रान्तियाँ जो कभी-कभी उन संस्थाओं में होती हैं जो समय साथ नहीं है। इसके विपरीत वे इंजन जो दबाव को सहन कर लेते हैं और ऐसे विनाशका कार्य करने लगते हैं जिनके लिए वे बनाये नहीं गये थे। वे उन सामाजिक अपराध के प्रतीक जो कभी-कभी समय के साथ न चलने वाली, 'परम्परावादी' संस्थाओं में उत्पन्न हो जाते हैं।

क्रान्ति की परिभाषा यह हो सकती है कि वे ऐसे अनुकरण के कार्य हैं जिनका अवरोध हु है और जो थोड़े बहुत हिंसात्मक हैं। उनका मूल तत्त्व अनुकरण है। क्योंकि प्रत्येक क्रान्ति क संदर्भ ऐसी घटना से है जो पहले कभी कहीं हो चुकी है और यह स्पष्ट है कि किसी क्रान्ति का अध्ययन जब हम उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर करते हैं तब देखते हैं कि यह क्रान्ति कभी न होती यदि पहले की किसी बाहरी शक्ति ने उसे उद्बुद्ध न किया होता। प्रत्यक्ष उदाहरण सन् १७८९ ई फ्रांस की क्रान्ति है जिसकी प्रेरणा कुछ बातों में उन घटनाओं से मिली थी जो ब्रिटिश अमरीका घटी थीं। इन घटनाओं में फ्रांस की पुरानी सरकार भी सहायक थी जो उसके लिए घातक सि हुई। और कुछ प्रेरणा उन शतियों पुराने अंग्रेजी विचारों से मिली जिनका फ्रांस में मांटे आदि ने प्रचार किया था और जिनका वहाँ प्रभाव पड़ा।

अवरोध भी क्रान्ति का एक तत्त्व है और इसी के कारण हिंसा को बल मिलता है, जो क्रान्ति का मुख्य अंग है। क्रान्ति हिंसात्मक इसलिए होती है कि नयी पराक्रमी सामाजिक शक्तियों उन पुरानी दृढ़ संस्थाओं पर देर में विजय होती है, जो जीवन की नयी अभिव्यक्तियों का विरो करती हैं और उन्हें पराजित करने की चेष्टा करती हैं। जितना ही अधिक दिनों तक अवरो होता है उतना उस शक्ति का दबाव बढ़ता है, जो बाहर निकलना चाहती है। और जितना अधिक दबाव होगा उतने ही जोर का विस्फोट होगा जिसके परिणामस्वरूप अवरुद्ध शक्ति बाहर निकल पड़ती हैं।

क्रान्ति का स्थान सामाजिक अपराध भी ले लेते हैं। उनकी यह परिभाषा की जा सकती

कि वह दण्ड है जिसे समाज को भुगतना पड़ता है, जब अनुकरण जिसे पुरानी संस्थाओं को नयी सामाजिक शक्तियों के साथ चलना चाहिए था केवल रुकती ही नहीं, बिलकुल विफल हो जाती है।

इससे स्पष्ट है कि जब किसी समाज की संस्था पर नयी सामाजिक शक्ति का आघात होता है तीन विकल्पों में एक की सम्भावना है : या तो शक्ति के साथ संस्था का सामंजस्य, या क्रान्ति (जो एक प्रकार का सामंजस्य है जो विलम्ब से होता है और विरोधी तत्त्वों का होता है), अथवा अपराध। यह भी स्पष्ट है कि इन विकल्पों में प्रत्येक उसी समाज के विभिन्न भागों में विभिन्न राष्ट्रीय राज्यों में, विभिन्न ढंग से परिपूर्ण हों, यदि कोई विशेष समाज विशेष ढंग से बन गया हो। यदि सन्तुलन के साथ सामंजस्य है तो समाज का विकास होगा। यदि क्रान्ति होगी तो विकास में खतरा रहेगा, यदि अनाचार होगा तो समाज का ह्रास होगा।

उद्योगवाद का दासप्रथा पर संघात

विगत दो शतियों में दो बलशाली नयी सामाजिक शक्तियाँ गतिमान् हुईं। उद्योगवाद और लोकतन्त्र। पुरानी संस्थाओं में से एक पर, दासत्व प्रथा पर, इसका आघात हुआ। यह विनाशकारी संस्था हेलेनी सभ्यता के पतन और विनाश का एक कारण थी। पश्चिमी समाज के देशों में इसका पाँव नहीं जमा था, किन्तु जब पश्चिमी ईसाई संसार का सागर पार विस्तार हुआ, तब नये सागर पार के राज्यों में यह स्थापित हो गयी। किन्तु खेत पर काम करने वाले दासों का यह संक्रामक रोग बहुत जोरदार नहीं था। अठारहवीं शती के अन्त में जब उद्योगवाद और लोकतन्त्र की नयी शक्तियाँ ग्रेट ब्रिटेन से पश्चिमी दुनिया में फैलने लगीं, दासत्व उपनिवेशों में ही थोड़ा-बहुत पाया जाता था और वहाँ भी इसका क्षेत्र कम होता जाता था। ऐसे राजमर्मज्ञ जैसे वाशिंगटन और जेफ़रसन जिनके पास स्वयं दास थे, इस संस्था से दुखी थे और उन्हें आशा थी कि आगामी शती में शान्तिपूर्वक इस संस्था की समाप्ति हो जायगी।

किन्तु यह सम्भावना ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने पर समाप्त हो गयी। क्योंकि इसी के कारण उन कच्चे मालों की माँग बढ़ गयी जिन्हें खेतों में दास पैदा करते थे। उद्योगवाद के संघात के कारण इस जीर्ण और समय के विपरीत संस्था को नया जीवन मिला। पश्चिमी समाज के सामने तो विकल्प थे। या तो वह दासत्व प्रथा का अन्त करने के लिए तुरत सक्रिय कार्य करे अथवा इस पुरानी सामाजिक बुराई को उद्योगवाद की नयी गतिशील शक्ति द्वारा ऐसे रूप में बदल दे जो समाज़ के जीवन के लिए विनाशकारी सिद्ध हो।

ऐसी स्थिति में पश्चिमी संसार के अनेक राष्ट्रीय राज्यों में दास-प्रथा के विरुद्ध कार्य हुए और शान्तिपूर्ण सफलता भी मिली। एक महत्त्व का क्षेत्र रह गया जहाँ दास-प्रथा के विरुद्ध कुछ कार्य न हो सका। वह थे उत्तरी अमरीकी संघ के दक्षिणी राज्य जिन्हें 'रुई का क्षेत्र' कहते हैं। यहाँ दास-प्रथा के समर्थक एक पीढ़ी तक और शक्तिशाली रहे। इस तीस वर्ष की अल्प अवधि में अर्थात् सन् १८३३ से जब बृटिश साम्राज्य में दास-प्रथा अन्त कर दी गयी, सन् १८६३ तक जब संयुक्त राज में दास-प्रथा का अन्त हुआ, दक्षिण के राज्यों की यह 'विशिष्ट संस्था' उद्योगवाद की गतिशील शक्ति के कारण भीषण रूप से उन्नत हुई। इसके पश्चात् इस पिशाच को पराजित किया गया और नष्ट किया गया। किन्तु संयुक्त राज्य में दास-प्रथा के विनाश में जो विलम्ब हुआ उसके परिणामस्वरूप विनष्टकारी क्रान्ति हुई जिसका भीषण परिणाम आज भी दिखाई देता है। इस अनुकरण के अवरोध का यह मूल्य चुकाना पड़ा।

फिर भी हमारे पश्चिमी समाज को अपने को साधुवाद करना चाहिए कि इस मूल्य अन्तिम पश्चिमी गढ़ से दास-प्रथा का सामाजिक दोष हटाया गया। इस दया के कार्य के हमें लोकतन्त्र की शक्ति का धन्यवाद करना चाहिए। पश्चिमी जगत् में यह शक्ति के कुछ पहले उत्पन्न हो गयी थी क्योंकि यह केवल आकस्मिक संयोग नहीं था कि पश्चिमी दास की प्रथा को निर्मूल करने वाला लिंकन सबसे महान् लोकतान्त्रिक राजमर्मज्ञ (स्टे था। लोकतन्त्र मानवतावाद की राजनीतिक अभिव्यक्ति है और मानवतावाद तथा दूसरे के विरोधी हैं, इसलिए नये लोकतन्त्रात्मक जागरण ने दासता के विरुद्ध आन्दोलन को समय शक्तिशाली बना दिया जब नवीन उद्योगवाद दासता को उत्साहित कर रहा था। निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उद्योगवाद जिस प्रकार दासता की प्रथा को कायम चाहता था उसे यदि लोकतन्त्र की प्रगतिशील शक्तियों ने समाप्त न कर दिया होता तो जगत् में इतनी सरलता से दासता समाप्त न होती।

युद्ध पर लोकतन्त्र और उद्योगवाद का संघात (इंपैक्ट)

साधारणतः कहा जाता है कि उद्योगवाद के कारण युद्ध की विभीषिका बढ़ गयी है जैसे कारण दासता की विभीषिका बढ़ गयी थी। युद्ध प्राचीन तथा युग के विपरीत प्रथा है और नैतिक सिद्धान्त पर उसकी भर्त्सना की जाती है जिसपर दासता की। बौद्धिक दृष्टि से लोगों का यह भी विचार है कि युद्ध से उन लोगों को भी कुछ लाभ नहीं होता जो समझते हैं इससे लाभ होता है। जिस प्रकार अमरीकी गृह-युद्ध के ठीक पहले एच० आर० 'दि इम्पेंडिग क्राइसिस आव द साउथ' नाम की पुस्तक लिखी जिसमें बताया था कि मालिकों को दास रखने से कोई लाभ नहीं होता। मन भ्रष्ट होने के कारण उन्हीं लोगों ने पुस्तक की भर्त्सना की जिनके लाभ के लिए तथा ज्ञान के लिए वह पुस्तक लिखी गयी उसमें बताया गया था कि वास्तविक लाभ उनका क्या होगा, उसी प्रकार १९१४-१८ के के पहले नारमन एंजेल ने एक पुस्तक लिखी थी—'यूरोप्स आपटिकल इल्युजन' जिसमें करने की चेष्टा की गयी थी कि युद्ध से विजयी तथा पराजित—दोनों की हानि होती है। लोगों ने लेखक की निन्दा की जो स्वयं उसी के समान शान्ति बनाये रखना चाहते थे। हमारा समाज युद्ध बन्द करने में सफल नहीं हुआ और दासता के उन्मूलन में सफल उत्तर स्पष्ट है। दासता के उन्मूलन में लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की शक्तियाँ एक ही ओर

यदि हम लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद के आरम्भ के पहले के पश्चिमी संसार की पर विचार करें तो हमें पता चलेगा कि उस समय अठारहवीं शती के मध्य युद्ध तथा प्रायः समान स्थिति थी। युद्ध की प्रवृत्ति घट रही थी, इसलिए नहीं कि लड़ाइयाँ कम थीं। यद्यपि अंकों द्वारा इसे भी प्रमाणित किया जा सकता है[1] बल्कि इसलिए कि उनका

---

[1] यद्यपि पी० ए० सोरोकिन ने जो संख्याएँ एकत्र की हैं उनसे पता चलता है कि शती में अठारहवीं शती से कम युद्ध हुए हैं (सोशल एण्ड कलचरल डाइनेमिक्स)। यार्क, १९३७, अमेरिकन बुक कं०, पृ० ३४२ तथा ३४५-४६।

संयम से होता था। हमारे अठारहवीं शती के बुद्धिवादी इस बात को अनुचित समझते हैं कि कुछ ही पहले युद्धों में धार्मिक मदान्धता के कारण युद्ध में भीषणता अधिक थी। सत्रहवीं शती के अन्तिम भाग में यह विभीषिका हटा दी गयी और युद्ध की भीषणता यथासम्भव कम हो गयी। पश्चिम के इतिहास के किसी अध्याय में इसके पहले या उसके बाद फिर ऐसा कभी नहीं हुआ। इस 'सभ्यता के संग्राम' का युग उस समय अठारहवीं शती के अन्त में समाप्त हो गया जब एक बार फिर लोकतन्त्र और उद्योगवाद के संघर्ष के कारण युद्ध की ओर लोग अग्रसर होने लगे। यदि हम पूछें कि विगत डेढ़ सौ वर्षों में इन दोनों में किस शक्ति ने युद्ध की ओर लोगों को उत्तेजित किया है, तो सम्भवतः पहली प्रक्रिया यही होगी कि उद्योगवाद ने इस दृष्टि से इस चक्र में पहला आधुनिक युद्ध फ्रांस की राज्यक्रान्ति के युद्धों से आरम्भ हुआ और इन पर उद्योगवाद का प्रभाव नगण्य था और फ्रांस की राज्यक्रान्ति वाले लोकतन्त्र का महत्त्वपूर्ण। नेपोलियन की सैनिक प्रतिभा का परिणाम उतना नहीं था जितना नयी क्रान्तिकारी फ्रांसीसी सेना का, जिसने पुराने ढंग के अठारहवीं शती के अक्रान्तिकारी राज्यों के सैन्यवल को नष्ट कर दिया और वह सेना सारे यूरोप की सेना को इस प्रकार काटती चली गयी जैसे मक्खन को चाकू काटता है और यह सेना सारे यूरोप में घुस गयी। यदि इसके प्रमाण की आवश्यकता हो तो देखिए कि इस बलपूर्वक एकत्र की हुई अर्ध-शिक्षित सेना ने जितना कमाल दिखाया वह नेपोलियन के आने के पहले चौदहवीं लूई की सेना के लिए असम्भव था। और हमें यह भी स्मरण कर लेना चाहिए कि रोमन—और असीरियाई तथा दूसरी उग्र सैन्यवादी शक्तियों ने प्राचीन युगों में विना किसी यांत्रिक उपकरणों के वड़ी-वड़ी सभ्यताओं को नष्ट कर डाला और ऐसे हथियारों से जो सोलहवीं शती के लोहारों के सामने खिलवाड़ के समान थे।

अठारहवीं शती में, उसके बाद अथवा उसके पहले की लड़ाइयाँ क्यों कम भीषण थीं, उसका कारण यह था कि उन युद्धों में धार्मिक उन्माद नहीं रह गया था और न राष्ट्रीय उन्माद की सफलता के वे साधन वने थे। इस वीच युद्ध 'राजाओं के मनोरंजन' थे। नैतिक दृष्टि से इस प्रकार वे मतलव के युद्ध घृणास्पद हो सकते थे किन्तु उनसे भौतिक क्षति अधिक नहीं होती थी, इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। ऐसे युद्ध करने वाले राजा भलीभाँति समझते थे कि हमारी प्रजा कहाँ तक इस प्रकार के ख़िलवाड़ को सहन कर सकती है और अपने कार्यकलाप को वे इसी सीमा के अन्दर रखते थे। जवरदस्ती उनके सैनिक नहीं भर्ती किये जाते थे, धार्मिक युद्ध की सेनाओं की भाँति वे उन देशों के सहारे जीवन-यापन नहीं करते थे जिन्हें वे जीत लेते थे और न वीसवीं शती की सेना की भाँति उन वस्तुओं को नष्ट करते थे जिनका निर्माण शान्ति के समय होता है। युद्ध के नियमों का वे पालन करते थे, उनके ध्येय सन्तुलित होते थे और पराजित पक्ष के लिए वे कठोर शर्तें नहीं लगाते थे। जव कभी इन नियमों का उल्लंघन होता था जैसे उस समय जव चौदहवें लूई ने सन् १६७४ ई० और १६८९ ई० में पैलेटिनेट का ध्वंस किया तव पराजित पक्ष ने ही नहीं, तटस्थ जनमत ने भी ऐसे भीषण कार्यों की निन्दा की।

इसका क्लासिक उदाहरण एडवर्ड गिवन की लेखनी में मिलता है :

'युद्ध में यूरोपीय सेनाएँ संयत और अनिर्णीत युद्धों के अभ्यासी हैं। शक्ति-सन्तुलन में परिवर्तन होता रहता है और हमारे पड़ोसी राज्यों की समृद्धि बढ़ेगी, कभी घटेगी। किन्तु ये आकस्मिक घटनाएँ हमारे साधारण सुख-वैभव को नष्ट नहीं कर सकतीं, जो हमारे विधि-विधान, कला,

आचार-व्यवहार के कारण उत्पन्न हुए हैं और जिनके कारण यूरोपियन तथा औपनिवेशिक मानवों से भिन्न हैं ।"[1]

इस अतिशय आत्मतुष्टि का लेखक इतने दिनों तंक जीवित रहा कि उसने ऐसे युद्धों को कि उसका हृदय हिल गया और उसके ये विचार अति प्राचीन पड़ गये ।

जिस प्रकार उद्योगवाद के समय दासता की उग्रता के परिणामस्वरूप दासता के विरुद्ध आन्दो खड़ा हुआ उसी प्रकार लोकतन्त्र के परिणामस्वरूप और फिर उद्योगवाद संघात के कारण यु विरोधी आन्दोलन उत्पन्न हुआ । सन् १९१४–१८ ई० के महाभारत के परिणामस्वरूप आव नेशन्स की स्थापना हुई किन्तु वह सन् १९२९–४५ ई० के युद्ध से संसार को न रोक सकी इस विपत्ति के बाद युद्ध बन्द करने के लिए हम एक और नवीन तथा कठिन प्रयास, सहयो (कोआपरेटिव) विश्वशासन (वर्ल्ड गवर्नमेन्ट) की स्थापना करके, कर रहे हैं, बजाय इसके युद्ध का चक्र चले और अन्त में कोई एक प्रबल शक्ति सबको हराकर एक विश्वराज्य स्था कर ले । हम लोग उस बात में सफल होंगे कि नहीं, जिये विश्व की कोई सभ्यता नहीं कर ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर भगवान् ही दे सकता है ।

लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद का संकुचित प्रभुसत्ता (पैरोकियल सावरेन्टी) पर संघा

क्या कारण है कि लोकतन्त्र ने, जिसे ईसाई धर्म का स्वाभाविक परिणाम लोग साधार बताते हैं, और दासता के प्रति उसका जो रुख था उससे यह धारणा अनुचित नहीं जान पड़ती युद्ध की उग्रताओं में वृद्धि की, जो वैसी ही बड़ी बुराई है जैसा युद्ध । इसका उत्तर यह है कि की प्रथा से टक्कर लेने के पहले लोकतन्त्र को संकुचित (अथवा स्थानीय) प्रभु सत्ता से ट लेनी पड़ी । और लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की नयी सजीव शक्ति का संकुचित राज्य पर आघात हुआ उससे दो अभिशाप प्रकट हुए—राजनीतिक तथा आर्थिक राष्ट्रवाद । लो विदेशी माध्यम के द्वारा इस रूप में उत्पन्न हुआ कि उसकी पवित्र आत्मा युद्ध को समाप्त कर बजाय उसे उत्तेजित करने लगी ।

इसमें भी हमारा पश्चिमी समाज अठारहवीं शती के पूर्व-राष्ट्रीयतावाद के युग में सुखी एक-दो विशिष्ट अपवादों को छोड़कर, पश्चिमी जगत् के संकुचित राज्य, नागरिकों की सा इच्छा की बुनियाद पर नहीं बने थे, वे राजवंशों की निजी सम्पदा थे । राजकीय युद्ध तथा रा विवाह दो प्रणालियाँ थीं जिनके द्वारा ऐसे राज्य एक से दूसरे के हाथों में जाते थे और इ प्रणालियों में स्पष्टतः विवाह को लोग अधिक पसन्द करते थे । इस कारण हैप्सबर्ग के की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में प्रशंसा की यह पंक्ति कही जाती थी कि 'दूसरों को युद्ध कर सुखमय आस्ट्रिया, तुम विवाह करो ।' (अठारहवीं शती के पहले पचीस सालों के तीन मुख्य के नाम—स्पेनी, पोलिश और आस्ट्रियाई उत्तराधिकार के युद्ध—यह बताते हैं कि युद्ध हुआ जब वैवाहिक समस्याएँ नहीं सुलझ सकीं ।)

विवाह वाली राजनीति में कुछ क्षुद्रता थी, इसमें सन्देह नहीं । आज के लोकतन्त्र

---

[1] ई० गिबन : द हिस्ट्री आव द डिक्लाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर, अ २८ से अन्ततक ।

युग की भावना को यह बात घृणास्पद मालूम होती है कि राजवंशों के मेल-जोल से एक देश के निवासी एक स्वामी के अधिकार से दूसरे स्वामी के पास चले जायँ जैसे कोई गाँव अपने पशुधन के साथ एक स्वामी के पास से दूसरे के पास मोल लेने के वाद चला जाता है। किन्तु अठारहवीं शती में इसका कुछ प्रतिकार भी था। इससे देश-प्रेम की भावना कुछ कम अवश्य हो जाती थी, पर भावना के साथ ही तीव्रता भी कम हो जाती थी। स्टर्न के 'सेंटिमेंटल जर्नी' में विख्यात वर्णन है कि लेखक फ्रांस चला गया। उसे यह ध्यान नहीं रहा कि फ्रांस और इंग्लैंड में सप्तवर्षीय युद्ध हो रहा है। फ्रेंच पुलिस से कुछ झगड़े के वाद एक फ्रांसीसी रईस ने, जिससे उससे कभी का परिचय नहीं था, विना किसी कठिनाई के, उसे यात्रा करने की सुविधा कर दी। चालीस साल के वाद अमीन्स की सन्धि जब टूट गयी, नैपोलियन ने यह आज्ञा दी कि उस समय फ्रांस में जितने अंग्रेज अठारह और साठ साल के बीच की अवस्था के थे, नजरबन्द कर लिये जायँ, तब यह कार्य नैपोलियन की पशुता का द्योतक समझा गया और जैसा वाद में वेलिंग्टन ने कहा कि 'नैपोलियन भला आदमी नहीं है' उसका एक उदाहरण माना गया। नैपोलियन ने इस कार्य के लिए अनेक तर्क दिये। किन्तु यह वही कार्य था जिसे आज बहुत ही उदार तथा दयालु सरकार स्वाभाविक और साधारण समझ कर करती है। आजकल का युद्ध 'पूर्ण युद्ध' (टोटल वार) हो गया है। इसका कारण यह है कि संकुचित राज्य अेव राष्ट्रीय लोकतन्त्र में परिवर्तित हो गये हैं।

पूर्ण युद्ध से यह अभिप्राय है कि लड़ने वाले केवल वे चुनी हुई गोटियाँ नहीं हैं जिन्हें हम सैनिक या नाविक कहते हैं बल्कि देश की सारी आबादी है। इस नयी दृष्टि का आरम्भ हमें कहाँ मिलता है? सम्भवतः उस क्रान्तिकारी युद्ध के अन्त में जो व्यवहार विजयी ब्रिटिश-अमरीकी उपनिवेशकों ने उन अमरीकियों के साथ किया जिन्होंने अपनी मातृभूमि (इंग्लैंड) का पक्ष लिया था। ये इंग्लैंड के भक्त—युद्ध के वाद पुरुष, स्त्री, बच्चे—वोरिया-विस्तर के साथ अपने घरों से निकाल वाहर कर दिये गये। यह व्यवहार उससे कितना भिन्न था जो बीस साल पहले ग्रेटब्रिटेन ने पराजित कैनेडियनों के साथ किया। इतना नहीं कि वे अपने देश में रहने दिये गये, इतना ही नहीं उनके विधान उनकी धार्मिक संस्थाएँ ज्यों की त्यों रहने दी गयीं। 'एकदलवाद' (टोटालिटेरियनिज्म) का यह पहला उदाहरण महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अमरीकी उपनिवेशक पश्चिमी समाज के पहले लोकतन्त्रात्मक राष्ट्र है।[१]

आर्थिक राष्ट्रीयतावाद भी उतनी ही बड़ी बुराई है जितना राजनीतिक राष्ट्रीयतावाद। और वह उद्योगवाद की विकृति से उत्पन्न हुआ है जो संकुचित राज की संकीर्ण सीमा में पनपा है।

पूर्व-औद्योगिक युग में भी आर्थिक लिप्सा तथा प्रतिद्वन्द्विता थी। आर्थिक राष्ट्रीयतावाद का क्लासिक उदाहरण अठारहवीं शती के 'वाणिज्यवाद' (मरकेंटिलिज्म) में व्यक्त होता है जिसका उदाहरण यूट्रेट की सन्धि की वह धारा है जिसके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन को स्पेनी-अमरीकी

---

[१] वास्तव में इसके पहले का एक उदाहरण है जब सप्तवर्षीय युद्ध के आरभ में ब्रिटिश अधिकारियों ने नोवास्कोशिया से फ्रेंच एकेडियनों को निकाल बाहर किया था। यद्यपि अठारहवीं शती की मान्यता से यह कार्य भीषण था, पर यह छोटी घटना थी और इसके लिए कुछ युद्धनीतिक कारण थे, या समझे गये थे।

उपनिवेश में दास-व्यापार का एकाधिकार दिया गया था । परन्तु अठारहवीं शती के संघर्ष का प्रभाव थोड़े वर्गों और कम लोगों पर पड़ता था । उस युग में जब कृषि ही प्रधान था, प्रत्येक देश ही नहीं, प्रत्येक गाँव जीवन की प्राय: सभी आवश्यकताओं को अपने में लेता था । उस समय अंग्रेजों का बाजारों का युद्ध 'व्यापारियों की क्रीड़ा' कही जा सकती प्रकार प्रदेशों के लिए यूरोप के युद्ध 'राजाओं की क्रीड़ा' कहे गये हैं ।

आर्थिक सन्तुलन की साधारण परिस्थिति उद्योगवाद के कारण गड़बड़ा गयी, लोकतन्त्र के समाज उद्योगवाद के भी अपनी कार्यप्रणाली में सर्वदेशीय (कास्मोपालिटन) यदि लोकतन्त्र का मूल तत्त्व भ्रातृ-भावना है, जैसा कि फ्रांस की क्रान्ति ने भ्रम में घोषणा उद्योगवाद की भी प्रमुख अपेक्षा विश्वव्यापक सहयोग है । उद्योगवाद की सामाजिक को अठारहवीं शती के इसके नेताओं ने अपनी नयी तकनीक के विख्यात सिद्धान्त को इन उद्घोषित किया था 'निर्माण (मैनुफैक्चर) की स्वतन्त्रता, विनिमय की स्वतन्त्रा ।' हुए, जब विश्व छोटी-छोटी आर्थिक इकाइयों में बँटा हुआ था, उद्योगवाद ने विश्व की संरचना (स्ट्रक्चर) को दो रूपों में बदलना आरम्भ किया और दोनों विश्व की एकता ओर थे । इसका अभिप्राय था कि आर्थिक इकाइयाँ कम हों और बड़ी हों और इनके सीमाएँ भी कम हो जायँ ।

इन प्रयत्नों के इतिहास पर यदि हम ध्यान दें तो हम देखेंगे कि गत शती के साठवें और दशक में एक परावर्तन हुआ । उस समय तक लोकतन्त्र इस बात में उद्योगवाद का कि आर्थिक इकाइयाँ कम हों और उनके बीच की सीमाएँ घटें । इस समय के बाद तथा उद्योगवाद ने अपनी नीतियाँ उलट दीं और विरोधी दिशाओं की ओर काम करने

यदि हम आर्थिक इकाइयों के आकार पर पहले विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि शती के अन्त में पश्चिमी जगत् में ग्रेट ब्रिटेन सबसे बड़ा मुक्त व्यापार (फ्री ट्रेड) जिससे यह भी स्पष्ट होता है कि क्यों ग्रेट ब्रिटेन में ही औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हुई, में नहीं । परन्तु सन् १७८८ ई० में ब्रिटेन के गत-उपनिवेश उत्तरी अमरीका ने वाला विधान स्वीकार किया और राज्यों के बीच की व्यापारिक सीमाएँ मिटा दीं और विस्तार द्वारा सबसे बड़ा मुक्त व्यापार-क्षेत्र स्थापित किया । उसका सीधा परिणाम कि अमरीका इस समय संसार का सबसे शक्तिशाली औद्योगिक देश है । कुछ वर्षों के बाद की क्रान्ति ने प्रान्तों के बीच की चुंगी (टैरिफ) की वे सीमाएँ तोड़ दीं जिनके कारण आर्थिक एकता न बन पायी थी । उन्नीसवीं शती के दूसरे चतुर्थांश में जरमनी ने आर्थिक वे राइन' की स्थापना की जो राजनीतिक ऐक्य का अग्रदूत था। तीसरे चतुर्थांश में इटली में एकता स्थापित होने के कारण साथ-ही-साथ आर्थिक एकता भी स्थापित हो गयी । इस एकता के बचे-खुचे कार्यक्रम को देखें अर्थात् चुंगी का कम करना, और अन्तर्राष्ट्रीय के निमित्त संकुचित स्थानीय सीमाओं को तोड़ना, तो हम देखेंगे कि पिट ने, जो अपने को स्मिथ का शिष्य कहता था, मुक्त आयात का आन्दोलन आरम्भ किया और जिसे उन्नीसवीं के अन्त में पील, काबडेन तथा ग्लेडस्टन ने पूरा किया । और संयुक्त राज्य (यूनाइटेड अधिक चुंगी लगाने का प्रयोग करने के पश्चात्, क्रमश: सन् १८३२ से १८६० ई० तक

मुक्त व्यापार की ओर चला । फ्रांस के लुई फिलिप तथा तीसरे नैपोलियन और बिसमार्क के पूर्व के जरमनी ने भी यही राह पकड़ी ।

फिर हवा का रुख बदला । लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रीयतावाद, जिसके फलस्वरूप जरमनी और इटली जिसने बहुत-से राज्यों का एकीकरण किया था वही अब अनेक-राष्ट्र (मल्टी-नेशनल) वाले राज्यों को हैप्सबुर्ग उसमानिया तथा रूसी साम्राज्य को बिलगाने का कार्य करने लगा । सन् १९१४–१८ ई० के महान् युद्ध के बाद डैन्यूबी राज्य मुक्त व्यापार की इकाई कई राज्यों में विभाजित हो गयी और प्रत्येक अपनी आर्थिक स्वाधीनता के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करने लगा । कुछ और नये राज्य कटे-छटे जरमनी और कटे-छटे रूस के बीच बन गये जो नये आर्थिक कोष्ठ हो गये । इस बीच एक पीढ़ी पहले से एक के बाद दूसरे देशमुक्त व्यापार के विरुद्ध जाने लगे थे और अन्त में धारा ऐसी पलटी कि सन् १९३१ ई० में ग्रेट ब्रिटेन में ही 'वाणिज्यवाद' (मर कें टि लिज्म) लौट आया ।

मुक्त व्यापार के त्यागने के कारण आसानी से समझ में आ जाते हैं । ग्रेट ब्रिटेन के लिए मुक्त व्यापार उस समय अनुकूल था जब वह 'विश्व का कारखाना' (वर्कशाप) था । यह प्रथा रुई के निर्यात करने वाले राज्यों के भी अनुकूल थी जो संयुक्त राज्य के शासन पर सन् १८३२–१८६० ई० तक नियन्त्रण रखते थे । अनेक कारणों से इसी काल में यह फ्रांस तथा जरमनी के अनुकूल भी था । किन्तु ज्यों-ज्यों एक के बाद दूसरे राष्ट्र का औद्योगीकरण हो गया, संकुचित हितों के कारण उन्होंने अपने पड़ोसियों से प्राणघातक प्रतिद्वन्द्विता करनी आरम्भ की और संकुचित राज की प्रभुसत्ता को कौन मना कर सकता था ?

कावडेन तथा उसके साथियों ने गलत अनुमान किया था । उन्होंने ऐसी कल्पना की थी कि संसार के राज्य तथा राष्ट्र इस संसार भर के आर्थिक सम्बन्ध के इस नये घने बुने जाल में आकर नयी सामाजिक एकता में बँध जायँगे । यह जाल अन्धाधुन्ध उद्योगवादी नयी शक्तियाँ ब्रिटिश केन्द्र से बुन रही थीं । यदि यह कहा जाय कि विक्टोरियन मुक्त व्यापार का आन्दोलन प्रबुद्ध स्वार्थ का श्रेष्ठ कृतित्व था तो काबडेनियों के प्रति अन्याय होगा । यह आन्दोलन सर्जनात्मक अन्तर्राष्ट्रीय नीति तथा नैतिक कल्पना की अभिव्यंजना थी । उसके योग्यतम अभिव्यक्ति करने वालों का लक्ष्य इससे कुछ अधिक था कि ग्रेट ब्रिटेन संसार के बाजार का अधिपति बन जाय । उनका यह भी लक्ष्य था कि धीरे-धीरे एक ऐसी राजनीतिक विश्व-व्यवस्था का विकास हो जिसमें नये आर्थिक जगत् की व्यवस्था पनप सके । वे ऐसा राजनीतिक वातावरण उत्पन्न करना चाहते थे जिसमें वस्तुओं तथा सेवाओं का शान्ति और सुरक्षा के साथ विनिमय हो सके । और यह सुरक्षा बढ़ती चले और इसके साथ हर कदम पर विश्व भर के मानव के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाय ।

कावडेन का अनुमान इसलिए गलत निकला कि उसने यह भविष्य नहीं देखा कि संकुचित राज्यों की प्रतिद्वन्दिता पर लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद के संघात का क्या परिणाम होगा ? उसने मान लिया था कि ये महान् शक्तियाँ (लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद) उन्नीसवीं शती में भी वैसे ही सुषुप्त रहेंगी जैसे अठारहवीं में थीं । और सोचा था कि मनुष्यरूपी मकड़ियाँ जो विश्वव्यापी औद्योगिक जाल बुन रही हैं सारे संसार को अपनी बारीक तन्तु में फँसा लेंगी । वह समझता था कि लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद में जो स्वाभाविक एकता लाने वाला तथा शान्तिदायक प्रभाव है उसकी अभिव्यक्ति अवश्य होगी और लोकतन्त्र से भ्रातृ-भावना फैलेगी और उद्योगवाद से सहयोग

का प्रसार होगा । उसने यह नहीं सोचा कि ये ही शक्तियाँ, संकुचित राज्य के पुराने
अपने आप का ऐसा दबाव डालेंगी जिससे विध्वंस हो जायगा और अराजकता फैल
उसे यह नहीं स्मरण हुआ कि फ्रांस की क्रान्ति के नेताओं ने जो भ्रातृ-भावना की शिक्षा
किया था उसका परिणाम इस युग का पहला राष्ट्रीयतावादी युद्ध था । उसने सोचा कि
णित होगा कि अपने ढंग का यह पहला ही नहीं अन्तिम युद्ध होगा । उसने यह नहीं सोचा
रहवीं शती के व्यापारिक अल्पतन्त्र (ओलिगारकी) जब अपेक्षाकृत महत्त्वहीन विलास
ग्रियों के लिए युद्ध करते रहे, क्योंकि उन दिनों इसी का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता रहा,
युक्ति द्वारा यह भी निश्चय था कि लोकतन्त्रात्मक राष्ट्र आर्थिक कारणों से एक-दूसरे से
लड़ेंगे क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति ने विलासी सामग्री के स्थान पर आवश्यकता की
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आरम्भ कर दिया था ।

सारांश यह है कि मैंचेस्टर वर्ग के अर्थ-शास्त्रियों ने मानवी प्रवृत्ति को नहीं
उन्होंने नहीं समझा कि विश्व की आर्थिक व्यवस्था भी केवल आर्थिक बुनियाद पर नहीं
की जा सकती । सच्चे आदर्शवादी होने पर भी उन्होंने नहीं सोचा कि 'मनुष्य केवल
नहीं जीवित रहेगा ।' यह घातक भूल ग्रेगरी महान् तथा पश्चिमी ईसाई जगत् के अन्य
ने की जिनसे विक्टोरियाई इंग्लैंड ने आदर्श की प्रेरणा पायी थी । इन लोगों ने
के लिए अपने को समर्पित कर दिया किन्तु संसार की व्यवस्था की स्थापना के लिए चेष्टा
संसार के लिए उनका सीधा-साधा ध्येय ध्वस्त समाज के बचे-खुचे लोगों को जीवित
था । ग्रेगरी ने जो बोझिल आर्थिक अट्टालिका उठायी वह आवश्यक तो थी किन्तु
किसी ने साधुवाद तक नहीं किया और वह काम चलाऊ थी । किन्तु उसकी नींव
चट्टान पर रखी थी आर्थिक बालू पर नहीं । उनके परिश्रम का धन्यवाद करना चाहिए
समाज की नींव ठोस धार्मिक थी और चौदह शतियों से कम में एक अज्ञात कोने में
आज सर्वव्यापी महान् समाज बन गया । अगर ग्रेगरी के सीधे-सादे आर्थिक भवन के लिए
नींव की आवश्यकता पड़ी, तो इसी तर्क से हम समझ सकते हैं कि आज के संसार की
विशाल इमारत, जिसे बनाना हमारा आज कर्त्तव्य है, आर्थिक हितों के मलबे पर नहीं

निजी संपत्ति पर उद्योगवाद का संघात

निजी सम्पत्ति वह संस्था है जो उन समाजों में स्थापित है जहाँ आर्थिक कार्य-क्षेत्र
एक परिवार या घर साधारणतः होता है । और ऐसे समाज में भौतिक सम्पत्ति के
यह बहुत सन्तोषप्रद प्रणाली है । किन्तु आज आर्थिक कार्य-कलाप की स्वाभाविक
परिवार, एक गाँव या एक राष्ट्रीय राज्य नहीं है बल्कि मानव की सारी जीवित पीढ़ी है
आधुनिक पश्चिमी आर्थिक उद्योगवाद के कारण परिवार की इकाई वस्तुतः
और परिणामस्वरूप परिवार की संस्था निजी सम्पत्ति भी समाप्त हो गयी । किन्तु
पुरानी संस्था चल रही है, ऐसी परिस्थिति में उद्योगवाद ने निजी सम्पत्ति पर
किया है । इसके कारण सम्पत्ति वाले व्यक्ति की सामाजिक शक्ति तो बढ़ गयी, किन्तु
उत्तरदायित्व कम हो गया । परिणाम यह हुआ कि पूर्व-औद्योगिक काल में जो संस्था
रही होगी उसमें बहुत-सी सामाजिक बुराइयाँ आ गयी हैं ।

ऐसी परिस्थिति में आज हमारे समाज के सामने यह समस्या है कि निजी सम्पत्ति की पुरानी संस्था को उद्योगवाद की नयी शक्तियों से किस प्रकार सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जाय। यह शान्तिमय व्यवस्था इस प्रकार स्थापित की जाय कि उद्योगवाद के कारण निजी सम्पत्ति के विभाजन में जो अनिवार्य दोष आ गये हैं उन्हें दूर किया जाय और राज्य द्वारा निजी सम्पत्ति का समझ-बूझकर, बौद्धिक ढंग से और सुनीतिसंगत फिर से विभाजन किया जाय । मुख्य उद्योगों पर नियन्त्रण करके राज्य उस महान् शक्ति की रोक-थाम कर सकता है जो ऐसे उद्योगों के निजी स्वामित्व के कारण लोगों के जीवन को वश में किये हुए है और सम्पत्ति पर अधिक टैक्स लगाकर सामाजिक सेवाओं द्वारा निर्धनता जनित दोषों को दूर कर सकता है। इस प्रणाली से साथ-ही-साथ एक और सामाजिक लाभ होगा कि राज्य युद्ध-प्रेमी यन्त्र न रह जायगा, जो प्राचीन काल से उसका विशेष धर्म रहा है। वह सामाजिक कल्याण का साधन होगा।

यदि यह शान्तिमय नीति पर्याप्त न हुई तो निश्चय ही कोई-न-कोई क्रान्ति हो जायगी जिससे किसी-न-किसी ढंग का साम्यवाद उत्पन्न होगा और निजी सम्पत्ति प्रायः लोप हो जायगी। सामंजस्य के बदले यही व्यावहारिक विकल्प जान पड़ता है क्योंकि उद्योगवाद के संघात के कारण निजी सम्पत्ति के असमान वितरण की विभीषिका असह्य हो जायगी यदि सामाजिक सेवाओं द्वारा और अत्यधिक कर लगा कर इस कष्ट को कम न किया गया । परन्तु रूसी प्रयोग बताता है कि साम्यवादी क्रान्ति की औषधि रोग से कुछ ही कम घातक है। क्योंकि पूर्व-औद्योगिक काल से निजी सम्पत्ति की संस्था की ऐसी विरासत मिली है कि उसे नष्ट कर देने से हमारे पश्चिमी समाज की सामाजिक परम्परा पर भयावह प्रभाव पड़े विना नहीं रह सकता।

शिक्षा पर लोकतन्त्र का संघात

लोकतन्त्र के आगमन से बहुत बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि समाज में शिक्षा का प्रसार बहुत हुआ। उन्नतिशील देशों मे सार्वभौम अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा के कारण शिक्षा प्रत्येक बालक का जन्मसिद्ध अधिकार हो गयी है। इसके विपरीत लोकतन्त्र प्रणाली के पहले शिक्षा विशिष्ट अल्पसंख्यक लोगों का एकाधिकार थी। शिक्षा की यह नवीन व्यवस्था ही एक राज्य का जो विश्व के राष्ट्रों में अपना स्थान चाहता है, प्रमुख आदर्श है।

जब सार्वभौम शिक्षा का पहले-पहल आविर्भाव हुआ उस युग के उदार विचारकों ने उसका इसलिए स्वागत किया कि यह न्याय और प्रबुद्धता की विजय थी और आशा की गयी कि इसके द्वारा मानवता को सुख और कल्याण की प्राप्ति होगी। किन्तु आज यह देखा जाता है कि इन आशाओं ने उन रुकावटों का विचार नहीं किया जो इस सतयुग की राह में मिले। और जैसा कि और बातों में देखा जाता है इसमें भी ऐसी अदृष्ट बातें आ गयीं जो बहुत महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई।

एक अड़चन यह हुई कि जब शिक्षा 'जन-जन' के लिए हो गयी और अपनी परम्परागत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अलग हो गयी तब शिक्षा के परिणाम में क्षीणता आ गयी, जो स्वाभाविक था। लोकतन्त्र को सदाशयता में यह जादू नहीं है कि भोजन और भरण-पोषण की आवश्यकता पूरी करने का चमत्कार दिखला सके। जनगण द्वारा अर्जित बौद्धिक आहार में स्वाद और विटामिन नहीं होते। दूसरा रोड़ा यह था कि जब शिक्षा सबकी पहुँच तक हो जाती है तब शिक्षा के परिणाम

को उपयोगिता में परिवर्तित करने का प्रयत्न होता है । उस व्यवस्था में जिसमें शिक्षा लोगों तक सीमित रहती है जिन्हें उत्तराधिकार में सामाजिक सुविधा मिली होती है या परिश्रम और बुद्धि का विशेष वरदान मिला होता है या तो शिक्षा अनधिकारी के पास चली है या शिक्षा ग्रहण करने वाले को अपना सब कुछ देकर प्राप्त करना होता है । दो में से परिस्थिति में वह लक्ष्य का माध्यम रहती है; या तो सांसारिक आकांक्षाओं के लिए ओछे मनोरंजन के लिए । शिक्षा को जनता के मनोरंजन के लिए प्रयोग करना और उन आदमियों का, जो ऐसे मनोरंजन का प्रबन्ध करके लाभ उठाते हैं, आविर्भाव उसी समय से है जब से सार्वभौम प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ हुई । और इस नयी सम्भावना ने तीसरी उत्पन्न कर दी है । सार्वभौम शिक्षा की रोटी ज्योंही सबमें बाँटी जाती है इधर-उधर से मगरमच्छ आ जाते हैं और बच्चों के लिए दिये गये भोजन को शिक्षकों की आँखों के साफ कर जाते हैं । इंग्लैंड के शिक्षा के इतिहास की तारीखों से स्पष्ट हो जाता है । रूप से सन् १८७० ई० के फास्टर के अधिनियम के अनुसार सार्वभौम शिक्षा की व्यवस्था हुई । इसके बीस साल बाद उसी समय जब राष्ट्रीय स्कूलों से बच्चों की पहली पीढ़ी ने क्रय-शक्ति प्राप्त कर ली, उत्तेजना फैलाने वाले पत्रों (येलो प्रेस) का जन्म अनुत्तरदायी शाली व्यक्तियों द्वारा हुआ जिन्होंने यह भाँप लिया था कि जिस उदारता और सामाजिक कारण यह प्रथा चली है उससे समाचार-पत्रों के श्रीपति अच्छा लाभ उठा सकते हैं ।

आधुनिक भावी एकदलवादी राष्ट्रीय राज्यों का ध्यान शिक्षा पर लोकतन्त्र की इस कर देने वाली प्रतिक्रिया पर गया है । यदि प्रेस के श्रीपति अर्ध शिक्षित लोगों को मनोरंजन देकर करोड़ों रुपये पैदा कर सकते हैं तो गम्भीर राजनीतिक उसी साधन से तो शक्ति तो अर्जित कर ही सकते हैं । आधुनिक अधिनायकों ने प्रेस के श्रीपतियों को है और निजी उद्यम के अपरिपक्व तथा भ्रष्ट मनोरंजन के स्थान पर वैसे ही अपरिपक्व और प्रचार की स्थापना की है । ब्रिटिश और अमरीकी शासनों की जिस व्यापारी अबन्ध निजी सम्पत्ति अर्जित करने के अभिप्राय से अर्ध शिक्षित जनता की मानसिक दासता के विस्तृत और कुशल यन्त्र का आविष्कार किया था, उसे राज्य के शासकों ने अपना लिया सिनेमा और रेडियो की सहायता लेकर अपने कुटिल स्वार्थ के लिए इन मानसिक उपकरणों प्रयोग कर रहे हैं । नार्थक्लिफ् के बाद हिटलर । यद्यपि हिटलर ही इस क्षेत्र में पहला नहीं था ।

इस प्रकार उन देशों में जहाँ लोकतन्त्रात्मक शिक्षा का आरम्भ हुआ है, लोगों का दो नृशंसता के नीचे आ जाने का भय है या तो निजी शोषण के या सरकारी शासन के । यदि की आत्मा की रक्षा करनी है तो एक ही ढंग है । शिक्षा के मान-दण्ड को इस दर्जे तक चाहिए कि शिक्षार्थी शोषण तथा प्रचार के, कम-से-कम स्पष्ट रूपों से, अपने को सुरक्षित सकें । यह कहना अनुचित न होगा कि काम साधारण नहीं है । प्रसन्नता की बात है कि पश्चिमी संसार में शिक्षण के ऐसे निःस्वार्थ तथा प्रभावकारी माध्यम हैं जो इस समस्या रहे हैं, जैसे ब्रिटेन में वर्कर्स एजुकेशनल असोसिएशन और ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालय की पढ़ाई के अतिरिक्त कार्य ।

परा-आल्पाइन (ट्रांस-आल्पाइन) सरकारों पर इटालियाई दक्षता का संघात

हमने अब तक जितने उदाहरण दिये हैं वे पश्चिम के इतिहास के आधुनिकतम काल के हैं। हम पाठकों को केवल स्मरण कराना चाहते हैं कि इसी काल के इतिहास के एक पहले के अध्याय में एक पुरानी संस्था पर नयी शक्तियों के संघात से क्या समस्या उत्पन्न हुई। एक दूसरे सन्दर्भ में हमने इस पर विचार किया था ,। वह समस्या यह थी कि पुनर्जागरण काल में नगर-राज्यों की राजनीतिक दक्षता का संघात जब परा-आल्पाइन सामन्ती राजतन्त्र पर हुआ तब सामंजस्यपूर्ण समझौता कैसे हो। सरल और निम्न कोटि के समझौते का ढंग यह था कि राजतन्त्र नृशंस शासक था निरंकुश शासन में बदल जाते जिस ढंग पर इटली के अनेक राज्य पराभूत हो गये थे। कठिन और अच्छा ढंग यह होता कि परा-आल्पाइन राज्यों के मध्ययुगीन विधान सभाओं। (असेम्बली) को प्रतिनिधिक शासन (रिप्रेजेंटेटिव) में परिवर्तित कर देते। ये उतने ही दक्ष होते जितने बाद का निरंकुश शासन। और साथ-ही-साथ राष्ट्रीय पैमाने पर वैसे उदार ढंग का स्वराज्य भी हो जाता जैसा कि इटालियाई नगर-राज्यों का अपने अच्छे दिनों में था।

. जैसा कि हमने पहले एक जगह बताया है इंग्लैंड में ऐसे सामंजस्यपूर्ण समझौते की उपलब्धि हुई। और इंग्लैंड पश्चिमी इतिहास के दूसरे अध्याय में इस विषय का अग्रगामी हुआ जैसा कि इटली पहले अध्याय में था। वह इस मौलिकता में अल्पसंख्यक था। राष्ट्रीय विचार के तथा चतुरट्यूडरों के समय राज्यतन्त्र निरंकुशता में बदलने लगा किन्तु अभागे स्टुअर्टों के समय पार्लिमेंट राजा की बराबरी करने लगी और अन्त में उससे आगे बढ़ गयी। फिर भी दो क्रान्तियों के पहले सामंजस्य नहीं स्थापित हो सका। किन्तु ये क्रान्तियाँ दूसरी क्रान्तियों की तुलना में समय और मर्यादा के साथ हुईं। फ्रांस में निरंकुशता अधिक दिनों तक और अधिक मात्रा में चली। उसका फल यह हुआ कि वहाँ क्रान्ति अधिक तीव्र हुई और उसका परिणाम था राजनीतिक अस्थिरता जिसका अन्त अभी नहीं दिखाई पड़ता। स्पेन और जरमनी में निरंकुशता हमारे सामने तक रही है। इसके विरोध में लोकतन्त्रीय आन्दोलन बहुत दिनों तक रुके रहे। जिसके फलस्वरूप अनेक जटिलताएँ उत्पन्न हो गयीं जिनका वर्णन इस अध्याय के पहले खण्ड में आ चुका है।

हेलेनी नगर-राज्यों पर सोलोनी (सोलोनियन) क्रान्ति का संघात

पश्चिमी इतिहास में दूसरे से तीसरे अध्याय के संक्रमण में इटालियाई राजनीतिक दक्षता का जो संघात पश्चिमी जगत् के परा-आल्पाइन देशों पर हुआ उसी प्रकार की घटना हेलेनी इतिहास में हुई जब ईसा के पहले सातवीं और छठी शती में हेलेनी जगत् के कुछ राज्यों ने आर्थिक दक्षता प्राप्त की। यह उस समय, जब जनसंख्या की समस्या उत्पन्न हुई। क्योंकि यह आर्थिक दक्षता एथेन्स अथवा उन राज्यों तक ही नहीं रह गयी जिन्होंने इसे आरम्भ किया था। आगे बढ़ती हुई सारे हेलेनी नगर-राज्यों के अन्तर्राष्ट्रीय तथा घरेलू राजनीति पर इसका संघात हुआ।

हम इस नयी आर्थिक नीति का वर्णन पहले कर चुके हैं और जिसे सोलोनी क्रान्ति कह सकते हैं। भोजन का अन्न उपजाने के बजाय नकदी फसल (कैश क्राप) उपजाने का यह आवश्यक परिवर्तन किया गया और इससे व्यापार तथा उद्योग का विकास हुआ। धरती पर आबादी के इस दबाव से जो आर्थिक समस्या उत्पन्न हुई इससे दो राजनीतिक समस्याएँ भी उपस्थित हुईं। एक ओर इस आर्थिक क्रान्ति से एक नया सामाजिक वर्ग उत्पन्न हो गया अर्थात् नागरिक व्यापारी

और औद्योगिक श्रमिक, कारीगर, नाविक जिनके लिए राजनीतिक ढाँचे में स्थान नि आवश्यक था । दूसरी ओर यह कि एक नगर-राज्य दूसरे से पहले से जो अलग थे, वे आर्थि स्तर पर अन्योन्याश्रित हो गये । जब एक बार अनेक नगर-राज्य अन्योन्याश्रित हो गये तब असम्भव था कि राजनीतिक स्तर पर वे अपने प्राचीन ढंग से विना विपत्ति बुलाये अलग-अ रहते । पहली समस्या इंग्लैंड के विक्टोरियाई काल के समान है जब पार्लिमेंट में अनेक सुध विधेयकों से सुलझाया गया और दूसरी समस्या को मुक्त व्यापार आन्दोलन द्वारा सुलझाने प्रयत्न किया गया । इन समस्याओं पर अलग-अलग उसी क्रम से विचार किया जायगा जिस से पहले विचार किया गया था ।

हेलेनी नगर-राज्यों की निजी राजनीति में नये वर्गों के मताधिकार (एन फ्रेंचाइज़मे देने के लिए राजनीतिक संस्था की बुनियाद पर आमूल परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी । परम्प गत वंश आधार को छोड़कर नया मताधिकार सम्पत्ति के आधार पर दिया गया । एथेन्स यह परिवर्तन सोलन के युग से पेरिक्लीज के युग के बीच अनेक वैधानिक विकासों द्वारा किया गया यह परिवर्तन पूर्ण रूप से और सरलता से हुआ । इसका प्रमाण यही है कि एथेनी इतिहास निरंकुशों का कार्यकलाप बहुत कम है । क्योंकि नगर-राज्यों के राजनीतिक इतिहास में साधारण नियम रहा है कि जब कभी उन्नतिशील समुदायों के अनुकूल चलने की गति में उपस्थित हुई, वर्गयुद्ध उपस्थित हो गया जिसकी समाप्ति तभी हुई जब कोई निरंकुश शास उत्पन्न हो गया, जिसे रोम से ली हुई भाषा में हम 'अधिनायक' कहते हैं । दूसरी जगहों के स एथेन्स में भी सामंजस्य स्थापित करने की क्रिया में अधिनायकवाद आवश्यक मंजिल थी । कि यहाँ पाइसिसट्राट्स और उसके लड़कों की निरंकुशता थोड़े काल के लिए थी अर्थात् सोलोनी क्लाइस्थीनी सुधार के बीच का काल ।

दूसरे यूनानी नगर-राज्य इतनी सुगमता से समझौता नहीं कर पाये । कारिंथ में दिनों तक अधिनायकवाद रहा और साइराक्यूज़ में बार-बार अधिनायकवाद स्थापित हु कोरसाइरा की निरंकुशता को थ्यूसिडाइड्स ने अपने वर्णन में अमर कर दिया है ।

अन्त में हम रोम की स्थिति पर विचार करें । यह अ-यूनानी समुदाय था जो ई० ७२५–५२५ के बीच हेलेनी सभ्यता की प्रसारवादी नीति के फलस्वरूप हेलेनी संसार में सम्मि हुआ था । इस सांस्कृतिक परिवर्तन के बाद ही रोम में वे आर्थिक तथा राजनीतिक विकास आर हुए जो हेलेनी और हेलेनीकृत नगर-राज्यों में साधारणतः स्वाभाविक थे । परिणामस्व रोम को, एथेन्स के इस विकास के बाद, उन सब अवस्थाओं का डेढ़ सौ वर्षों में सामना करना पड़ समय में इतना पिछड़ जाने के कारण रोम को कटु, कठोर क्रान्ति का दण्ड भोगना पड़ा जि एक ओर तो जन्म के अधिकार से शक्ति पाये हुए अभिजात (पैट्रीशियन) एकाधिकारी (पो पोलिस्ट्स) थे और दूसरी ओर सामान्य वर्ग (प्लीबियन) जो संख्या और सम्पत्ति के ब अधिकार चाहते थे । यह रोमन क्रान्ति जो ईसा के पूर्व पाँचवीं शती से तीसरी शती तक च रही, यहाँ तक पहुँची कि अनेक अवसरों पर सामान्य वर्ग आबादी की सीमा से बाहर चला जहाँ उसने सामान्य वर्ग का शासन राज्य के विरुद्ध स्थापित कर लिया । उसने राष्ट्र के अन्दर अपनी विधान सभा बनायी, अपने अफसर नियुक्त किये । बाहरी आक्रमण के कारण ही सन् ई० पू० में रोमन राजनीतिज्ञता सफल हो पायी जब राज्य तथा राज्य-विरोधी शासन का

संचालन के लिए राजनीतिक एकता स्थापित की गयी और इस वैधानिक भीषणता का सामना किया गया। डेढ़ सौ साल बाद जब साम्राज्य की विजय हुई सन् २८७ ई० पू० के काम चलाऊ स्थिति का पता चला। अभिजात वर्ग और सामान्य वर्ग को कच्चे ढंग से मिलाकर जो ढीला-ढाला विधान रोम ने स्वीकार किया था वह नये सामाजिक सामंजस्य की उपलब्धि के लिए राजनीतिक दृष्टि से अपर्याप्त था और ग्रेची के उग्र तथा विफल शासन से परिणामस्वरूप दूसरी क्रान्ति (१३१–३१ ई० पू०) हुई जो पहले से भी भीषण थी। इस बार एक शती तक अपने को क्षत-विक्षत करने के पश्चात् रोमन शासन में स्थायी अधिनायकत्व की स्थापना हुई। इस समय तक रोमन सेना ने हेलेनी संसार पर विजय प्राप्त कर ली थी और आगस्टस तथा उसके उत्तराधिकारी नृशंस शासकों के कारण हेलेनी समाज सार्वभौम राज्य बन गया।

अपनी घरेलू समस्याओं का मूर्खता और अनाड़ीपन से बराबर सुलझाने का प्रयत्न उनकी उस योग्यता के विपरीत था जो उन्होंने अपने विदेशी पराजित अधिकृत देशों के संगठन, निर्माण और सुरक्षित रखने में दिखायी। यह ध्यान में रखने की बात है कि जिन अथेनियनों ने अपनी घरेलू राजनीति सें सफलतापूर्वक क्रान्ति को समाप्त किया, वे ही पाँचवीं शती ई० पू० में अन्तर्राष्ट्रीय सुव्यवस्था को नहीं स्थापित कर सके जिसकी उस समय वहाँ बहुत आवश्यकता थी जिसे रोमनों ने चार सौ साल बाद उसी के अनुकरण में स्थापित करके सफलता प्राप्त की।

जिस अन्तर्राष्ट्रीय कार्य में एथेन्स असफल हुआ वह उन समझौतों की दो समस्याओं में दूसरी थी जो सोलोनी क्रान्ति से उत्पन्न हुई थीं। जिस राजनीतिक सुरक्षा की आवश्यकता हेलेनी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए आवश्यक थी उसके लिए बाधा थी, पुराने नगर-राज्य की राजनीतिक प्रभुसत्ता। ईसा के पूर्व पाँचवीं शती के आरम्भ से यूनान का सारा राजनीतिक इतिहास इसी संघर्ष में व्यक्त किया जा सकता है जो उसे नगर-राज्यों की प्रभुसत्ता को समाप्त करने और उस सत्ता को स्थिर रखने की चेष्टा में चलता रहा। पाँचवीं शती की समाप्ति के पहले ही इस सत्ता की समाप्ति के विरोध में जो प्रयत्न हुआ उससे हेलेनी सभ्यता नाश हो गयी और यद्यपि रोम ने एक ढंग से इस समस्या को सुलझाया, किन्तु वह ऐसे समय तक न हो पाया कि हेलेनी समाज को विनाश की राह से रोक सके। इस समस्या का आदर्श समाधान यह था कि नगर-राज्यों के बीच आपसी स्वीकृति से उनकी प्रभुसत्ता सीमित कर दी जाय। दुर्भाग्य से इस प्रकार की सबसे प्रसिद्ध चेष्टा डीलियन लीग थी जो फारस के विरुद्ध विजय के अवसर पर एथेन्स ने अपने एजियन मित्रों के साथ बनायी थी। यह प्रयत्न इस कारण विकृत हो गया कि हेलेनी प्रभुत्व (हेजिमनी) की पुरानी परम्परा उसमें प्रवेश कर गयी थी। यह प्रभुत्व ऐसा था कि उसके मुख्य सदस्य ने जबरदस्ती मित्रता की थी। डीलियन लीग एथेनी साम्राज्य हो गया और एथेनी साम्राज्य के कारण पेलोपोनेशियाई युद्ध हुआ। चार शती के बाद रोम सफल हुआ, जहाँ एथेन्स को विफलता हुई। जो दण्ड साधारण ढंग से अपनी छोटी दुनिया को एथेनी साम्राज्य ने दिया वह, उसकी तुलना में कुछ नहीं था, जो कठोर दण्ड रोमन साम्राज्य ने दो शतियों बाद हेलेनी तथा हेलेनी-कृत समाज को दिया। यह हेनीवली युद्ध के बाद और आगस्टनी शान्ति के पहले हुआ।

पश्चिमी ईसाई समाज पर संकुचित नागरिक राजनीति का संघात

हेलेनी समाज का इसलिए विनाश हुआ कि समय से रहते हुए उसने अपनी परम्परागत राजनीति की संकीर्णता का परित्याग नहीं किया। हमारा पश्चिमी समाज इसलिए निष्फल हुआ कि

अपने सामाजिक संगठन की, जो उसकी मौलिक प्रतिभा की सबसे मूल्यवान् देन थी, रक्षा कर सका । हमारे पश्चिम के इतिहास में मध्यकाल और आधुनिक काल के संक्रमण के में सामाजिक परिवर्तन में सबसे महत्त्व की बात संकीर्ण राजनीतिक संगठन थी । अपनी में इस परिवर्तन पर तटस्थ होकर विचार करना सरल नहीं है, क्योंकि उसके कारण बड़ी बुरा हुई हैं । आज यह समय के विपरीत है और उसके कारण हमारी बहुत हानि हुई है, फिर भी देख सकते हैं कि पाँच सौ साल पुरानी (ईसाई जगत् की) मध्ययुगीन (ईसाई जगत् की) भौमिकता छोड़ देना अच्छा था । उसमें नैतिक महत्ता तो थी किन्तु वह प्राचीन काल का था जो हेलेनी समाज से उत्तराधिकार में मिला था । और इस सार्वभौमिकता के सैद्धान्ति आधिपत्य और मध्ययुगीन व्यावहारिक वास्तविक अराजकता में अशोभनीय अन्तर नयी संकीर्णता कम से कम इस बात में सफल हुई । छोटी आकांक्षाओं को वह सँभाल जो भी हो, नयी शक्ति की विजय हुई । राजनीति में इसकी अभिव्यक्ति बहुत-से स्वतन्त्र में हुई, साहित्य में अनेक जनपदीय भाषाओं (वर्नाक्युलर) में हुई और धर्म में माध्यमिक ईसाई धर्म से उसकी टक्कर हुई ।

यह अन्तिम संघर्ष इस कारण इतना प्रचण्ड था कि ईसाई धर्म पोप के धर्मतन्त्र (हायरा के कारण सुसंगठित था और वह मध्ययुगीन व्यवस्था का सबसे उच्च अधिकारी था । समस्या का सामंजस्य उसी ढंग पर हो सकता था जिसे पोपों ने, जब वे पूर्ण शक्तिशाली खोजकर निकाला था । उदाहरण के लिए स्थानीय माँगों को पूरा करने के लिए सार्व पूजन विधि में लैटिन के बजाय स्थानीय भाषाओं के प्रयोग की आज्ञा रोमन चर्च ने दे दी । को उनकी भाषा में पूजन विधि के अनुवाद की आज्ञा इसलिए मिली क्योंकि रोम जनपद की उसे परम्परावादी पूरबी प्रतिद्वंद्वी का सामना करना पड़ा, जिसने अ-यूनानी लोगों को जो परिवर्तन करके आये थे यूनानी भाषा में पूजा करने पर विवश नहीं किया किन्तु यह दिखायी कि पूजन विधि का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो गया । और भी । पोपगण, पवित्र रोमन सम्राटों से उनके सार्वभौम दावों का जी-तोड़ विरोध कर रहे थे, उन्होंने प्रभुसत्ता वाली सरकारों के पूर्वजों से उनके संकुचित शासन के दावों के सम्बन्ध में बहुत का व्यवहार किया । वे सरकारें इंग्लैंड, फ्रांस और कास्टिल की थीं । दूसरे स्थानीय को भी यह आज्ञा दे दी गयी कि अपनी-अपनी सीमा में धार्मिक संगठनों पर भी वे नियन्त्रण

ईसाई धर्ममण्डल (होली सी) उस समय तक, जिसको जितना मिलना चाहिए उसे देने की बात समझ गया था, जब संकीर्ण नव-सीजरवाद (निओ-सीजरिज्म) पूर्ण रूप से अधिकार को घोषित कर चुका था । और पोप तन्त्र अपने तथाकथित सुधार के एक सौ पहले लौकिक (सेकुलर) राजाओं से इस बात का समझौता करने में बहुत लगा रहा कि रोम संकीर्ण राजनीतिक शासकों के बीच धार्मिक शासन पर किसका कितना नियन्त्रण रहे । समझौता उन विफल अखिल ईसाई धार्मिक सम्मेलनों का अनायोजित परिणाम था जो शती के प्रथम पचास वर्षों में कान्स्टेन्स (१४१४–१८ ई०) तथा बेसेल में (१४३१–४९) हुए ।

सम्मेलन का यह आन्दोलन एक सर्जनात्मक चेष्टा थी कि सार्वभौम स्तर पर धार्मिक प्रणाली स्थापित की जाय, और उन लोगों के अधिकारों को, प्रभावहीन कर दिया जाय

अनुत्तरदायी और कभी-कभी भद्दे ढंग से उनका दुरुपयोग करते थे और अपने को ईसा मसीह का प्रतिनिधि कहते थे । इस प्रकार की धार्मिक संसदीय प्रणाली सामन्ती युग में मध्ययुगीन राजाओं के संकीर्ण शासन पर नियन्त्रण करने में सफल हुई थी । किन्तु इस सम्मेलन के आन्दोलन का जिन पोपों ने सामना किया उन्होंने अपना हृदय कठोर वना लिया और उनका दुराग्रह भयानक रूप से सफल हुआ । उसने सम्मेलन के आन्दोलन को विफल कर दिया और समझौते के इस अन्तिम अवसर को खो दिया । पश्चिमी ईसाई समाज इसके परिणामस्वरूप उस भीषण आन्तरिक फूट के कारण छिन्न-भिन्न हो गया जो प्राचीन सार्वभौम शासन की भावना और नये संकीर्ण शासन की ओर झुकाव के बीच उत्पन्न हो गयी ।

इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक अशोभनीय क्रान्तियाँ और भीषणताएँ हुईं । पहले के सम्वन्ध में इतना बता देना पर्याप्त होगा कि धार्मिक संगठन (चर्च) टूट कर अनेक संगठनों में परिवर्तित हो गया । प्रत्येक दूसरे पर यह दोषारोपण कर रहा था कि दूसरा ईसाई मत का नहीं है और अनेक युद्ध तथा एक दूसरे के प्रति अत्याचार करने लगे । दूसरे के सम्वन्ध में यह कहा जा सकता है कि लौकिक राजाओं ने 'दैवी अधिकार' (डिवाइन राइट) को अपना लिया जो पोपों का स्वत्व समझा जाता था जो पश्चिमी राज्यों में राष्ट्रीय राज्यों की प्रभुसत्ता के रूप में आज भी पूजा जाता है । डाक्टर जानसन ने व्यंग्यात्मक ढंग से कहा था कि देश-भक्ति 'गंडों की अन्तिम शरण' है और जिसे नर्स कैवेल ने अधिक विवेक से कहा, इतना ही पर्याप्त नहीं है । इस देशभक्ति ने पश्चिमी जगत् में ईसाई धर्म का स्थान ले लिया है । जो भी हो, ईसाई धर्म की आवश्यक शिक्षा के विरुद्ध इससे अधिक क्या हो सकता था जैसा पश्चिमी ईसाई समाज पर इस संकीर्ण राजनीतिक भावना के संघात का पड़ा । दूसरे उच्च ऐतिहासिक धर्मों की भी यही भावना है जो ईसाई धर्म की सार्वभौमिकता की भावना रही है ।

धर्म पर एकता की भावना का संघात

मानव के इतिहास के रंगमंच पर 'ऊँचे धर्म' जिनका मिशन सारी मानवता के लिए है अपेक्षाकृत वाद में आये हैं । आदिम समाजों को इसका ज्ञान नहीं था, ये भावनाएँ उन समाजों में भी नहीं पायी जातीं जो सभ्यता के विकास के पथ पर थे । ये उस समय के वाद आयीं जब कितनी ही सभ्यताएँ नष्ट हो चुकीं और कितनी विनाश के पथ पर आ गयीं । जब कुछ सभ्यताएँ विघटित होने लगीं तव इस चुनौती का सामना करने के लिए इन ऊँचे धर्मों का जन्म हुआ । ऐसी सभ्यताओं में, जिनका उद्गम अनिश्चित है जैसे आदिम समाजों की सभ्यताएँ, ऐसी धार्मिक संथाएँ होती हैं जिनका सम्वन्ध उन समाजों की लौकिक संस्थाओं से ही होता है और उसके आगे उनकी दृष्टि नहीं जाती । ऊँची आध्यात्मिकता के अनुकूल ऐसे धर्म नहीं होते, किन्तु उनमें निषेधात्मक विशेषता होती है । वे विभिन्न धर्मों के बीच (जीओ और जीने दो) के भाव का पोषण करते हैं । ऐसी अवस्था में संसार में जब वहुत-से राज्य होते हैं, अनेक सभ्यताएँ होती हैं तव स्वाभाविक परिणाम होता है कि वहुत-से देवता हों और वहुत-से धर्म माने जाते हैं ।

ऐसी सामाजिक परिस्थिति में आत्मा ईश्वर की सर्वव्यापकता तथा सर्वशक्तिमत्ता का अनुभव नहीं कर सकती किन्तु उस पाप का लालच उन्हें नहीं होता कि उन धर्म वालों के प्रति वे अनुदार हों, जो ईश्वर को विभिन्न रूपों तथा नामों से पूजते हैं । मानवता के इतिहास की वहुत वड़ी विडम्बना है कि जिस प्रकाश ने यह भावना उत्पन्न की कि सब धर्मों का ईश्वर एक

है, और मनुष्य मात्र भाई है, उसने इसी के साथ अनुदारता और उत्पीड़न को भी जन्म दि इसका कारण यह है कि इस धार्मिक एकता की भावना के जो आध्यात्मिक नेता हैं वे इसे उच्च समझते हैं कि वे चाहते कि ये विचार जितना जल्द हो सके वास्तविकता में प हो जायँ। जहाँ-जहाँ महान् धर्मों का प्रचार हुआ है अनुदारता तथा उत्पीड़न का भ रूप निश्चय दिखाई दिया है। यही धर्मान्धता ई० पू० चौदहवीं शती में मिस्र में दिखाई जब सम्राट् इखनातोन ने अपने एकेश्वरवाद की कल्पना को सार्थक करने का असफल किया। यहूदी धर्म के उदय और विकास में इसी धर्मान्धता का भयानक प्रकाश दिखाई प यहूदी पैगम्बरों ने धर्म में एकेश्वरवाद की जिस स्पष्ट और उदात्त आध्यात्मिक भावना उपलब्धि की उसी के साथ उसका दूसरा रूप यह था कि अन्य सीरियाई समाज की पूजा निन्दा की गयी। ईसाई धर्म के इतिहास में आन्तरिक मतभेद के साथ-साथ दूसरे धर्मों बार-बार संघर्ष देखने में आता है।

इस प्रमाण से हम देखते हैं कि एकता की भावना का संघात जब धर्म पर होता है तब ही-साथ आध्यात्मिक भीषणता भी उत्पन्न होती है। इसका नैतिक सामंजस्य उदार आचार-व्यवहार से ही हो सकता है। उदारता के लिए उचित प्रेरणा यही है कि यह मान जाय कि सभी धर्म एक आध्यात्मिक लक्ष्य की खोज में जा रहे हैं। हो सकता है कि इनमें आगे बढ़ गया हो और उचित राह पर हो, कोई ऐसा नहीं, किन्तु जो उचित राह पर है अनुचित धर्म वाले को उत्पीड़ित करे, यह परस्पर विरोधी बातें हैं। 'उचित' धर्म वाला को उत्पीड़ित करके अपने को अनुचित बना देता है और अपने ही गुणों पर आघात पहुँचाता है

इस ऊँचे स्तर की उदारता कम-से-कम एक पैगम्बर ने अपने अनुयायियों के लिए नि की थी। मुहम्मद साहब ने आदेश दिया था कि उन यहूदियों तथा ईसाइयों के प्रति ध उदारता दिखायी जाय जिन्होंने ऐहलौकिक इस्लामी सत्ता के प्रति अपनी राजनीतिक अ स्वीकार कर ली है। क्योंकि ये दो धार्मिक समाज मुसलमानों की ही भाँति 'कुरान- के लोग हैं। प्राचीन इस्लाम की उदार भावना की विशेषता है कि यद्यपि पैगम्बर ने बात का संकेत नहीं किया है, फिर भी जो पारसी धर्मावलम्बी मुसलमान शासन के अधी गये उनके प्रति भी उदारता का व्यवहार उन्होंने किया।

सत्रहवीं शती की दूसरी अर्धाब्दी में ईसाइयों ने जिस उदारता की भावना दिखायी कारण नितान्त निन्दात्मक था। उसे 'धार्मिक उदारता' केवल इस अर्थ में कह सकते हैं धर्मों के प्रति उदारता थी। यदि हम उसके कारण की ओर देखें तो वह अधार्मिक उ थी। इस अर्ध शती में कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट दलों ने एकाएक अपना संघर्ष समाप दिया इसलिए नहीं कि उनको विश्वास हो गया कि अनुदारता पाप है, बल्कि इसलि दोनों समझ गये कि एक दूसरे को हम पराजित नहीं कर सकते। साथ-ही-साथ उन्हें इस का भी आभास हो गया कि हम जो बलिदान कर रहे हैं वह किसी धार्मिक सिद्धान्त के नहीं। 'उत्साह' (एन्थूजियाज्म, व्युत्पत्ति से जिसका अर्थ होता है ईश्वरत्व से भरा हुआ परम्परागत भलाई को उन्होंने त्याग दिया था और अब उसे वह बुराई समझने लगे। इसी में एक अठारहवीं शती के विशप ने अठारहवीं शती के एक अंग्रेज मिशनरी को 'दयनीय उ कहा था।

फिर भी चाहे जिस भावना से हो उदारता धर्मान्धता का उच्चतम प्रतिकार है। और जब एकता की भावना का सिद्धान्त धर्म पर होता है तब धर्मान्धता का जन्म हो ही जाता है। ऐसा नहीं होता तो उसके बदले में या तो अत्याचार की भीषणता हो अथवा धर्म की प्रतिक्रिया में क्रान्ति हो। ऐसी प्रतिक्रिया को ल्युक्रीशियस ने विख्यात पंक्ति में कहा है—'धर्म की प्रतिक्रिया में कैसी-कैसी भीषणता हुई है।' वाल्टेयर ने कहा है 'धर्म बुरी चीज है', ग्रेमबेरा ने कहा है 'धर्म सबका वैरी है।'

जाति पर धर्म का संघात

ल्युक्रीशियस तथा वाल्टेयर के इस कथन का कि धर्म स्वयं बुराई है—और सम्भवतः मानव जीवन की मूलभूत बुराई भारतीय तथा हिन्दू इतिहास से समर्थन किया जा सकता है। इन सभ्यताओं पर धर्म का जो विषाक्त प्रभाव पड़ा है उसका परिणाम जाति की संस्था है।

यह संस्था एक प्रकार का सामाजिक विलगाव है जहाँ भौगोलिक परिस्थितियोंवश दो अथवा दो से अधिक समुदायों में एक समुदाय दूसरों पर अपना आधिपत्य जमा लेता है और पराजित समुदाय को न तो नष्ट कर पाता है, न अपने में मिला पाता है। उदाहरण के लिए यूनाइटेड स्टेट्स में दो जातियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। एक बहुसंख्यक गौर वर्ण की जाति और दूसरी अल्पसंख्यक श्याम वर्ण की जाति। इसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका में प्रभुता-सम्पन्न अल्पसंख्यक गौर वर्ण समुदाय और बहुसंख्यक नेग्रो समुदाय। उप-महाद्वीप भारत में जान पड़ता है उस समय जातियों का निर्माण हुआ जब ईसा के दो हजार वर्ष पहले के लगभग तथा-कथित सिन्धु सभ्यता के क्षेत्र में यूरेशियाई खानाबदोश आर्यों का अभियान आरम्भ हुआ।

इससे पता चलता है कि जाति की संस्था से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। संयुक्त राज्य और दक्षिण अफ्रीका में जहाँ नेग्रो लोगों ने अपना प्राचीन धर्म छोड़ दिया है और शक्तिसम्पन्न यूरोपियनों का ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है। चर्चों का विभाजन जातियों की विभिन्नता के अनुसार नहीं हुआ, यद्यपि प्रत्येक धर्म के गोरे तथा काले सदस्य अपनी धार्मिक उपासना में एक दूसरे से अलग हैं, उसी प्रकार जैसे अपने और सामाजिक कृत्यों में। इसके विपरीत, भारतीय उदाहरण में, हम यह कल्पना कर सकते हैं कि पहले से ही विभिन्न जातियों के धार्मिक आचार-व्यवहार अलग-अलग थे। किन्तु यह स्पष्ट है कि यह धार्मिक भेद उस समय तीव्र हुआ होगा जब भारतीय सभ्यता की बहुत अधिक धार्मिक भावना बढ़ गयी और वही उसने अपने उत्तराधिकारियों को सौंपी। यह भी स्पष्ट है कि जाति पर धार्मिकता के संघात के कारण यह संस्था विनाश की गति को प्राप्त हुई है। जाति सामाजिक दोष है किन्तु जब धर्म द्वारा उसका समर्थन होने लगता है और उसकी व्याख्या धर्म द्वारा होने लगती है तब यह दोष बड़ा भीषण रूप धारण करने लगता है।

जाति पर धर्म का जो संघात भारत में हुआ उसका ज्वलन्त प्रमाण अनुपम सामाजिक दोष 'अस्पृश्यता' है। और ब्राह्मणों ने, जो प्रत्येक धार्मिक कृत्यों में पुरोहित का कार्य करते हैं, कभी इसे मिटाने की चेष्टा नहीं की। यह दोष अभी तक वर्तमान है। हाँ, क्रान्ति द्वारा इस पर आक्रमण हुआ है।

जहाँ तक ज्ञात है, जाति पर पहला आक्रमण जैनधर्म के प्रवर्तक महावीर ने तथा बुद्ध ने ईसा के जन्म से ५०० वर्ष पहले किया था। बौद्ध अथवा जैन धर्म ने यदि भारतीय जगत् पर अपना

प्रभाव जमा लिया होता तो सम्भवतः जाति की संस्था समाप्त हो गयी होती। किन्तु जैसी घटी, भारतीय पतन तथा विनाश के अन्तिम अध्याय में सार्वभौम धर्म स्थापित करने का हिन्दू धर्म ने किया। यह हिन्दू धर्म नये तथा पुराने प्रयोगों का मिश्रित एक नया भव्य इस हिन्दू धर्म में पुरानी जो बातें थीं उनमें एक संस्था जाति की भी थी। इतना ही नहीं हिन्दू धर्म ने इस पुरानी संस्था को ग्रहण किया, उसने इसका विस्तार किया। और आरम्भ ही हिन्दू सभ्यता इस बोझ को अपने ऊपर धारण किये हुए है और यह बोझ इतना भारी हो जितना इसके पूर्वजों पर कभी नहीं था।

हिन्दू सभ्यता के इतिहास में जाति के विरुद्ध समय-समय पर अनेक विद्रोह हुए और दूसरे धर्मों से आकृष्ट होकर हिन्दू धर्म से अलग हो गये। इस प्रकार का बिलगाव हिन्दू ने किया और उन्होंने नया संप्रदाय (चर्च) स्थापित किये जिसमें हिन्दू धर्म के दोषों को और विदेशी धर्मों की कुछ बातें लीं। उदाहरण के लिए नानक, जिन्होंने (१४६९- ई०) सिख धर्म की स्थापना की, इस्लाम से कुछ बातें लीं, और राजा राममोहन राय (१८३३) ने ब्रह्म-समाज की स्थापना की जिसमें हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म की सम्मिलित थीं। इन दोनों धर्मों में जाति नहीं मानी जाती। दूसरे विद्रोहियों ने हिन्दू धर्म को छोड़ दिया और या तो मुसलमान हो गये या ईसाई हो गये। ऐसा परिवर्तन उन्हीं क्षेत्रों में हुआ जहाँ नीच जातियों या अछूतों की संख्या अधिक थी।

'अस्पृश्यता' की भीषणता का यही क्रान्तिकारी उत्तर है जो जाति पर धर्म के कारण हुआ है। और ज्यों-ज्यों भारत की जनता पश्चिम के आर्थिक, बौद्धिक तथा नैतिक से प्रभावित होती जाती है, अछूतों में परिवर्तन की जो क्षीण भावना है वह बढ़ती जायगी ब्राह्मणों के विरोध होने पर भी, हिन्दू समाज के कुछ ऐसे नेता धार्मिक तथा सामाजिक का सामंजस्य न स्थापित करें जो महात्मा गांधी की राजनीतिक तथा सामाजिक समर्थन करते हैं।

श्रम-विभाजन पर सभ्यता का संघात

हमने पहले ही देख लिया है कि आदिम समाज श्रम-विभाजन से अनभिज्ञ न था। उदाहरण में हमें धातु के काम करने वाले, चारण, पुरोहित, दवा देने वाले तथा इसी प्रकार के वर्ग मिलते हैं। किन्तु सभ्यता का संघात श्रम-विभाजन पर ऐसा होता है कि विभाजन इतना अधिक होने लगता है कि क्रमागत सामाजिक ह्रास ही नहीं होने लगता, कार्य असामाजिक होने लगता है। इसका प्रभाव सर्जनात्मक अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकों पर समान रूप से पड़ता है। सर्जनात्मक वर्ग रहस्यवादी होता जाता है और जनता का किसी एक ओर झुकाव (लापसाइडेडनेस) हो जाता है।

रहस्यवादिता उस असफलता का लक्षण है जो सर्जनात्मक व्यक्ति को अपने जीवन में मिलती है। और उसे 'अलग हो जाने और लौटने' की लयमान आरम्भिक गति की कह सकते हैं, जो इस कार्य को पूरा करने में सफल न हो सकी। इस प्रकार जो लोग हुए उन्हें यूनानी लोग 'इडियोट्स' कहते थे। पाँचवीं शती में यूनानी भाषा में 'इडियोट्स' महान् व्यक्ति को कहते थे जो अपने को सबसे अलग तथा अपने में ही रहने का सामाजिक

करता था और अपने गुणों से सर्वसाधारण को लाभ नहीं पहुँचाता था । पेरिक्लीज के युग के एथेन्स में इस प्रकार का व्यवहार किस दृष्टि से देखा जाता था इसी से समझा जा सकता है कि आजकल की भाषा में इस शब्द से उत्पन्न शब्द 'इडियट' का अर्थ पागल होता है । किन्तु आधुनिक पश्चिमी समाज के 'इडियोटाइ' पागलखाने में नहीं मिलते । इनमें से एक वर्ग बुद्धिमान् मानवों का, पतित होकर अर्थलोलुप मानव हो गया जिसका व्यंग्य डिकेन्स ने 'ग्रैंड ग्राइंड' तथा बौण्डरबी के रूप में किया है । दूसरा वर्ग दूसरे छोर पर है जो अपने को ज्ञान का ठेकेदार समझता है परन्तु वास्तव में वह तिरस्कार के योग्य है । ये बौद्धिक तथा कला-विशेषज्ञ दंभी और घमण्डी व्यक्ति हैं जिनका विश्वास है कि कला कला के लिए है । जिसका व्यंग्य गिलबर्ट ने बन्थार्न के रूप में किया है । डिकेन्स और गिलबर्ट के समय के अन्तर से यह प्रमाणित होता है कि ग्रैंड ग्राइंड और बौंडरबी वर्ग के लोग पूर्व विक्टोरियाई इंग्लैण्ड में वर्तमान थे, बन्थार्न वर्ग उत्तर विक्टोरियाई काल में । ये दोनों विरोधी सीमाओं पर हैं किन्तु हमारी धरती के उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों के सम्बन्ध में बताया गया है कि दोनों सुदूर विपरीत दिशाओं में हैं किन्तु दोनों के जलवायु की भीषणता समान है ।

अब हमें उस पर विचार करना है जिसे हमने झुकाव कहा है । यह वह प्रभाव है जो श्रम-विभाजन पर सभ्यता के संघात के कारण असर्जनात्मक बहुसंख्यकों के जीवन पर पड़ता है ।

जब सर्जनशील व्यक्ति अलग हो जाने के बाद फिर लौटता है और अपने साथियों से पुनः सम्पर्क स्थापित करता है तब उसके सामने यह समस्या उपस्थित होती है कि साधारण जन की आत्मा को उसी स्तर पर ऊँचा उठायें जिस स्तर पर उसकी आत्मा पहुँच चुकी है और ज्यों ही इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा करता है, उसके सामने यह तथ्य उपस्थित होता है कि इच्छा, शक्ति, हृदय और उत्साह होते हुए साधारण जनता उस ऊँचे स्तर परं नहीं उठ सकती । ऐसी स्थिति में उसे कोई सरल उपाय ढूंढ़ने का लालच हो सकता है । अर्थात् वह सारे व्यक्तित्व के विकास का प्रयत्न न करके मनुष्य के किसी एक गुण को ऊपर उठाने की चेष्टा करता है । इस कल्पना के अनुसार इसका अर्थ होता है कि मानव का विकास किसी एक झुकाव की ओर होता है । इस प्रकार का परिणाम यान्त्रिक तकनीक के धरातल पर हमें सरलता से मिलता है क्योंकि किसी संस्कृति के सब तत्त्वों में से उसकी यान्त्रिक रुझान को अलग करना तथा उससे सम्पर्क स्थापित करनां सबसे सरल है । किसी ऐसे व्यक्ति को मिस्त्री बनाना सरल नहीं है जिसकी आत्मा और दिशाओं में बर्बर तथा आदिम हो । किन्तु और शक्तियों को इसी प्रकार विशेष बना सकते हैं और अतिविस्तृत कर सकते हैं । अपनी पुस्तक 'कलचर एण्ड अनार्की' (१८६९) में मैथ्यु आर्नल्ड ने, धर्मशील मध्यवर्गीय नान-कनफर्मिस्ट अंग्रेज फिलिस्तीनों की, जो हिब्रू काल के अवरुद्ध जाल में रहते हैं, यह आलोचना की है कि इन लोगों ने ऐसे मिथ्या धार्मिक विचारों में विशेषता अर्जित की है जिसे वे ईसाई धर्म समझते हैं । और दूसरे हेलेनी गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य का सन्तुलित व्यक्तित्व निर्मित होता है ।

इस प्रकार के झुकाव को हमने उस समय देख लिया था जब हमने इस पर विचार किया था कि अल्पसंख्यकों का जब दमन किया जाता है तब वे किस प्रकार इसका सामना करते हैं । हमने देखा कि जब नृशंसतावश इन अल्पसंख्यकों को पूरी नागरिकता के अधिकार नहीं दिये जाते तब जो कार्य उनके लिए बच रहते हैं उन्हीं में वे उन्नति करते हैं और विशिष्टता प्राप्त करते हैं ।

और हमने उस असाधारण शक्ति को आश्चर्य से देखा और प्रशंसा की । इस शक्ति से जान है कि अल्पसंख्यक मानव प्रकृति की अजेयता को प्रकट करते हैं । साथ ही साथ हम नहीं भूल सकते कि इनमें से कुछ अल्पसंख्यक—लेवेनटीन, फैमेरियोट, आरमीनियन और और मनुष्यों से अच्छे नहीं हैं तो बुरे भी नहीं हैं । यहूदियों और अ-यहूदियों के अशोभनीय सम्बन्ध रहा है वह महत्त्वपूर्ण उदाहरण है । अ-यहूदी अपने अ-सेमेटिक (सेमेटिक) साथी गोथ्यिम् के व्यवहार पर जब लज्जित होता है और घृणा प्रकट करता है तब ही यह स्वीकार करने पर उसे उलझन भी होती है कि उस व्यंग्य में भी कुछ तथ्य है जो बहकाने वाले ने अपने पशुत्व के सम्बन्ध में चित्रित किया है । दुख इस बात का है कि जो की प्रतिक्रिया उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों में दमन का सामना करने का साहस उत्पन्न करती है दमन से उनकी मानव प्रकृति भी विकृत हो जाती है । जो बात उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों के में ठीक है वही उन बहुसंख्यकों के सम्बन्ध में ठीक है जिन्होंने तकनीकी विशेषता प्राप्त यह बात ध्यान में रखने की है क्योंकि हम देखते हैं कि पाठचक्रम में उदार (लिबरल) स्थान पर; जो यद्यपि कुछ अव्यावहारिक थी, तकनीकी शिक्षा स्थान लेती चली जा रही है।

पाँचवीं शती में यूनानी इस झुकाव के लिए एक शब्द 'बेवेन्डिया' का प्रयोग करते थे। 'बेवे वह व्यक्ति था जिसने किसी विशेष तकनीक में विशेष योग्यता अर्जित की थी और सा प्राणी के लिए जो अन्य साधारण गुणों की आवश्यकता होती है उसे तिरस्कृत कर दिया इस तकनीक का जो लोगों के मन में तात्पर्य था वह यही कि यह कोई हस्त-कौशल अथवा व्यापार है जिसे निजी लाभ के लिए वह व्यक्ति प्रयोग कर रहा है । किन्तु हेलेनी लो 'बेवेन्डिया' के प्रति जो घृणा थी वह इससे अधिक थी । और हेलेनियों के मन में सभी (प्रोफेशन) के प्रति घृणा हो गयी थी । उदाहरण के लिए सैनिक तकनीक में स्पार्टनों विशेषता अर्जित की थी वह 'बेवेन्डिया' का साक्षात् स्वरूप था । बड़ा राजनीति-मर्मज्ञ देश का रक्षक भी इस आरोप से वंचित नहीं हो सकता था यदि वह जीवन की कला तथा और सर्वरूपी (आल राउण्ड) गुणों से वंचित था ।

'परिष्कृत तथा सुसंस्कृत समाज में उदार शिक्षा वाले थेमिस्टाक्लीज पर यह दोष जाता था (क्योंकि उसमें सर्वरूपी योग्यताओं का अभाव था) कि वह किसी वाद्य यंत्र प्रयोग नहीं जानता था किन्तु यदि उसके हाथों में कोई छोटा और अज्ञात देश दे दिया वह उसे महान् और विख्यात देश बना देगा ।'[1] इसके विपरीत 'बेवेन्डिया' का हल्का दिया जा सकता है । कहा जाता है वियना में हेडन, मोजार्ट और बीथोवेन के स्वर्ण युग में, का एक सम्राट् और उसके प्रधान मन्त्री अवकाश के समय उनके साथ संगीत में योगदान करते

'बेवेन्डिया' के भयावह परिणाम के प्रति हेलेनियों की इस असहिष्णुता और समा संस्थाओं में भी पायी जाती है । उदाहरण के लिए यहूदियों का सबत और ईसाइयों का सात दिनों में एक दिन इसलिए अलग कर दिया गया है कि छः दिनों तक वे अपने विशेष में निरन्तर लगे रहते हैं तो एक दिन अपने कर्ता को स्मरण रखें और साधारण मानव का

---

[1] प्लूटार्क : लाइफ आव थेमिस्टाक्लीज, अध्याय २ ।

बितायें) यह केवल संयोग की घटना नहीं है कि उद्योगवाद की प्रगति के साथ-साथ इंग्लैंड में आयोजित खेल-कूद और मनोरंजन की भी उन्नति हुई । इस प्रकार के मनोरंजन जान-बूझकर आत्महन्ता तकनीकी विशेषताओं के विरुद्ध सन्तुलित करने के लिए स्थापित किये गये हैं, जो उद्योगवाद के श्रम-विभाजन के कारण उत्पन्न हो गयी हैं ।

दुर्भाग्यवश खेल-कूद द्वारा उद्योगवाद के जीवन को सन्तुलित करने की यह चेष्टा सफल न हो सकी क्योंकि खेल-कूद में भी उद्योगवाद की भावना प्रवेश कर गयी है । पश्चिमी संसार में आजकल व्यावसायिक खेलाड़ी (एथलीट) बन गये हैं जिन्होंने विशेषता प्राप्त की है और औद्योगिक विशेषज्ञों से अधिक कमा रहे हैं । 'बेवेन्डिया' के ये भीषण उदाहरण हैं । इस पुस्तक के लेखक ने संयुक्त राज्य के दो कालेजों के क्षेत्रों में दो फुटबाल के मैदानों को देखा । एक में विद्युत् के प्रकाशयन्त्र की व्यवस्था थी जिससे रात और दिन बारी-बारी से बराबर अभ्यास कराकर फुटबाल के खेलाड़ियों का निर्माण किया जाय (मैनुफैक्चर्ड) । दूसरे मैदान के ऊपर छत बनी हुई थी कि किसी भी ऋतु में खेल चलता रहे । कहा जाता है यह संसार की सबसे बड़ी छत है और इसके बनाने में कल्पनातीत धन लगा है । मैदान के चारो ओर पलंगों का प्रबन्ध किया गया है जिसमें थके अथवा घायल खेलाड़ी आराम कर सकें । इन दोनों क्षेत्रों में मैंने देखा कि इन खेलाड़ियों की संख्या सारे छात्रों की संख्या का अतिसूक्ष्म भाग था । मुझे यह भी बताया गया कि ये लड़के मैच खेलने की उसी आशंका से प्रतीक्षा कर रहे हैं जिस भय से उनके बड़े भाई १९१८ के युद्ध में खाइयों में गये थे । सच पूछिए तो यह ऐंग्लो सैक्सन फुटबाल खेल-कूद में नहीं गिना जा सकता ।

हेलेनी जगत् के इतिहास में भी इसी प्रकार के विकास का पता लगता है । जहाँ कुलीन शौकिया (अमेच्यूर) खेलाड़ियों के स्थान पर, जिनकी विजय की प्रशंसा पिंडार ने अपनी कविता में की है, व्यावसायिक खेलाड़ियों की टीम आ गयी । और सिकन्दर के पश्चात् युग में परशिया से स्पेन तक जो नाटक के खेल यूनाइटेड आरटिस्ट्स लिमिटेड द्वारा दिखाये जाते थे एथेन्स में डायोनीसियस के अपने रंगमंच पर दिखाये जाने वाले नाटकों से उतने ही भिन्न थे जितने आजकल के नवीन नाटक-गृहों के नाटक मध्ययुगीन रहस्य-नाटकों (मिस्ट्री प्ले) से ।

तब इसमें आश्चर्य नहीं है कि जब सामाजिक दोष इस निराशाजनक ढंग से सन्तुलन को असफल कर देते हैं तब दार्शनिक लोग ऐसी क्रान्तिकारी योजना की कल्पना करते हैं जिससे ये दोष लोप हो जायँ । हेलेनी सभ्यता के पतन की पहली पीढ़ी के बाद, अफलातून ने 'बेवेन्डिया' को समाप्त करने के लिए यह योजना बनायी है कि अन्तर्देशीय यूटोपिया (एक आदर्श देश) का निर्माण किया जाय जहाँ सागर द्वारा दूसरे देशों से व्यापार न हो सकेगा और देश के अन्दर भी उतनी ही आर्थिक व्यवस्था रहेगी कि भोजन भर के लिए किसान धान्य उत्पन्न कर सकें । अमरीकी आदर्शवाद के, जो दुख की बात है, अपनी राह से भटक गया है, मूल स्रोत टामस जेफरसन ने उन्नीसवीं शती के आरम्भ में ऐसा ही सपना देखा था । उसने लिखा है—'यदि मेरे सिद्धान्तों का प्रयोग हो तो मैं चाहूँगा कि लोग न तो व्यापार करें न समुद्र की यात्रा करें । बल्कि यूरोप से उनका सम्बन्ध वैसा ही होना चाहिए जैसा यूरोप से चीन का ।[1] (जिसके बन्दरगाह

---

[1] डब्ल्यू० ई० उडवर्ड द्वारा उद्धरित : ए न्यू अमेरिकन हिस्ट्री, पृ० २६० ।

१८४० तक यूरोपीय व्यापार के लिए बन्द थे) । उसी साल ब्रिटिश सेना ने वन्दरगा खोलने के लिए विवश किया । इसी प्रकार सैमुअल बटलर ने कल्पना की है कि अरव्हों रहने वाले (उसका काल्पनिक संसार) जान-बूझकर और योजनावद्ध सारे यन्त्रों को डालें जिससे वे उनके दास न बन जायँ ।

अनुकरण (माइमेसिस) पर सभ्यता का संघात

जब आदिम समाज सभ्यता की ओर विकसित होने लगता है तब अनुकरण की शक्ति लोगों से हटकर नये नेताओं की ओर उन्मुख होती है । इसका अभिप्राय यह होता है कि असर्जनात्मक समूह होता है उसे नये लोगों के स्तर पर ले जायँ । परन्तु अनुकरण की की यह प्रकृति वास्तविक बात की जगह काम चलाऊ 'सस्ती वस्तु' ही है । और लक्ष्य मृगतृष्णा ही है । जन-साधारण महात्माओं की पंक्ति में नहीं बैठ पाता । बहुधा आदिम 'राहचलतू' साधारण निकृष्ट प्राणी में ही समान्तरित हो जाता है । अनुकरण पर सभ्यता के परिणामस्वरूप एक बनावटी, दिखौवा, कृत्रिम नागरिकों का भीषण समूह बन जाता है गुणों में अपने आदिम पूर्वजों से निम्न कोटि का होता है । ऐटिक रंगशाला पर अरिस्टों क्लिओन को व्यंग्य बाणों से पछाड़ा किन्तु रंगशाला के बाहर क्लिओन ही विजयी क्लिओनी 'राहचलतू मानव' का पाँचवीं शती ईसा के पूर्व हेलेनी इतिहास में आना पतन का स्पष्ट लक्षण है । और इसने उस संस्कृति को पूर्ण रूप से तिरस्कृत करके अपनी विमुक्त किया जिस संस्कृति ने भूसे से उसका पेट भरा । विरोधी सर्वहारा का यह जिसकी आत्मा जाग्रत हुई और उसने एक ऊँचे धर्म का आविष्कार करके अपनी मुक्ति बनायी ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायगा कि सभ्यताओं के पतन में इन घटनाओं ने योगदान किया जब नयी सामाजिक शक्तियों का पुरानी संस्थाओं से सम्पर्क हुआ । बाइबिल की भाषा में नयी शराब रखने में पुरानी बोतलें असमर्थ रहीं ।

(३) सर्जन का प्रतिशोध : अस्थायी अपनत्व को आदर्श बनाना

भूमिका (रोल) का विपर्यय

हमने आत्मनिर्णय की असफलताओं के उन दो स्वरूपों के सम्बन्ध में कुछ अध्ययन है जिनके कारण सभ्यताओं का विनाश होता है । हमने अनुकरण की, यांत्रिकता (नि और संस्थाओं की असमर्थता पर विचार किया है । सर्जनात्मकता का जो बाहरी प्रतिशोध है उस पर विचार कर के यह अध्ययन हम समाप्त करेंगे ।

ऐसा जान पड़ता है कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग को यदि सभ्यता के इतिहास में दो या अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा है तो उसी सर्जनात्मक अल्पसंख्यक बरावर सफलता नहीं मिली है । इसके विपरीत यह देखा गया है कि जिस वर्ग को एक का सामना करने में सफलता मिली वही वर्ग दूसरी चुनौती का सामना करने में विफल यह विचलित करने वाली किन्तु देखने में स्वाभाविक मानवी परिस्थिति एटिक (यूनानी) का मुख्य अभिप्राय (मोटिफ) रहा है और अरस्तू ने इसे 'पोएटिक्स' में 'पैरिपैट्रीइया' के विवेचन किया है, जिसका अर्थ है भूमिका का विपर्यय ।

नये बाइबिल (टेस्टामेन्ट) की नाटकीय कथा में उसी ईसा को, जिसके सम्बन्ध में यहूदियों को आशा थी कि पृथ्वी पर अवतरित होकर मसीहा होंगे, यहूदी धर्म के व्यासों (इस्क्राइब्स) और फ़रीसियों (फ़रीसीज़) ने तिरस्कृत कर दिया था उन्हीं यहूदियों ने जिन्होंने कुछ ही पीढ़ी पहले हेलेनीकरण की विजय के विरोध का नेतृत्व किया था। जिस सचाई और अन्तर्दृष्टि ने इन धर्म के व्यासों और फ़रीसियों को पहले के संकटकाल में नेता बना दिया था वह अब अधिक संकट के समय इन्हें छोड़ गये और यहूदी जिन्होंने इसका सामना किया 'वे भटियारे और वेश्यावृत्ति वाले' समझे गये। मसीहा स्वयं 'भटियारे और वेश्यावृत्ति वाले' वर्ग से आये थे और उनके बाद उनका सबसे बड़ा शिष्य टारसस का यहूदी था। टारसस बहुमूर्ति पूजक नगर था जिसका हेलेनी करण हो चुका था और वह परम्परागत स्वर्ग की कल्पना के बाहर था। यदि इस कथा को दूसरी दृष्टि से और विस्तृत मंच पर देखें, जैसा कि चौथे गोस्पेल में लिखा है तो प्रायः सभी यहूदियों ने फरीसियों का कार्य किया और मूर्तिपूजकों ने सन्त पाल की शिक्षा को, जिसे यहूदियों ने अमान्य कर दिया था, ग्रहण किया और इन्होंने 'भटियारे और वेश्यावृत्ति वालों' की भूमिका अदा की।

'भूमिका के विपर्यय' का यही विषय बाइबिल के अनेक दृष्टान्तों में तथा घटनाओं में अंकित है। डाइव्ज और लाजरस के, फ़रीसी और भटियारे के दृष्टान्तों में यही बात दिखायी गयी है। यही बात भले समारिटन के दृष्टान्त में पुरोहित और लेवाइट की कथा के विपरीत दिखायी गयी है, और यही बात अपव्ययी पुत्र और उसके विपरीत उसके सम्मानित भाई की कहानी में है। यही विषय ईसा और रोमन-सेना नायक (सेन्यूरियन) और साइरोफोनेशियन स्त्री के सम्बन्ध में है। यदि नये और पुराने बाइबिल को एक ही शृंखला में देखें तो हम देखेंगे कि पुरानी बाइबिल की कथा में इसाऊ ने अपना जन्माधिकार याकूब (जेकब) को समर्पित कर दिया था और उसका उत्तर नयी बाइबिल में याकूब के उत्तराधिकारियों ने अपना उत्तराधिकार ईसा को तिरस्कृत करके छोड़ दिया और यह भूमिका का विपर्यय हुआ। यही अभिप्राय ईसा की उक्तियों में बार-बार आता है। 'जो अपने को ऊँचा उठायेगा वह गिराया जायेगा', 'प्रथम अन्तिम होगा और अन्तिम प्रथम होगा', 'जब तक तुम छोटे बालक के समान अपने को न बना लो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते।' और ईसा मसीह ने अपने मिशन का मूल तत्त्व गीत (साम) की ११८ वीं रचना को उद्धृत करके स्पष्ट किया है—'जिस पत्थर को मकान बनाने वालों ने फेंक दिया वही कोने का शीर्ष बना।'

यही भाव सारे हेलेनी साहित्य की महान् रचनाओं में मिलता है। और उनके इस सिद्धान्त में निहित है 'घमंडी का सिर नीचा'। हेरोडोट्स यही शिक्षा ज़रक्सीज़, क्रीसस और पोलिक्रिटीज़ की जीवनियों में व्यक्त करता है। वास्तव में उसके सारे इतिहास का विषय ही एकेमीनियाई साम्राज्य का गर्व और पतन है। एक पीढ़ी पीछे थुसिडाइडीज ने तटस्थ और 'वैज्ञानिक' भावना से लिखा है जो अधिक प्रभावकारी है क्योंकि 'इतिहास के पिता' ने एथेन्स के गर्व और पतन को उद्देश्य सहित लिखा था। यहाँ यूनानी (एटिक) ट्रेजेडी के विषयों को बताना अनावश्यक है जैसे एसकाइलस के अगामेम्नान में, सोफोक्लीज़ के ओडिपस और एजेक्स में और युरिपिडीज़ के पैन्थ्यूज़ में। चीनी पतन और विनाश के एक कवि ने यही भाव व्यक्त किया है :—

'जो अँगूठे के बल पर खड़ा होता स्थिर नहीं खड़ा हो सकता,

जो लम्बे-लम्बे डग धरता है वह बहुत तेज़ नहीं चलता
जो घमंड करता है कि मैं यह कर डालूँगा, वह कुछ नहीं कर सकता
जिसे अपने कार्य का घमंड है वह कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता जो शाश्वत हो।

सर्जनात्मकता का यह प्रतिशोध है । यदि इस ट्रेजेडी की इस प्रकार की कथा-वस्तु साधार ऐसी होती है—यदि यह सत्य है कि एक अध्याय में जो सर्जन कर्ता है उसकी वही सफलता अध्याय में सर्जन के कार्य में बाधक है, जो परिस्थिति विजयी घोड़े के पक्ष में पहले थी, वही विरोध में होकर 'अस्पर्श घोड़े के पक्ष में हो गयी—तब यह स्पष्ट है कि हमने सभ्यताओं के का एक महत्त्वपूर्ण कारण जान लिया है । हम देख सकते हैं कि यह प्रतिशोध दो ढंग से सामाजि पतन लाता है । एक ओर तो इसके कारण उन लोगों की संख्या कम हो जाती है जो चुनौती सामना करने के लिए सर्जनकर्ता की भूमिका अदा करने के लिए सम्मुख आते हैं, क्योंकि वे लोग नहीं रह जाते जो पहली चुनौती में सफल हुए थे, दूसरी ओर ये ही सर्जनकर्ता जो पहली में सर्जनकर्ता की भूमिका अदा कर चुके थे अब नयी चुनौती का सामना करने वाले नेताओं विरोधी हो जाते हैं । और ये भूतपूर्व सर्जनकर्ता अपने पहले सर्जन के महत्त्व के कारण महत्त्व स्थान ग्रहण कर लेते हैं और उस समाज में प्रभावशाली हो जाते हैं जिसमें नये शक्तिशाली सर्ज-कर्ता उत्पन्न हो जाते हैं—इस परिस्थिति में वे समाज की प्रगति में सहायक नहीं हो सकते। के दर्शक मात्र रह जाते हैं ।

इस प्रकार ये 'दर्शक' मात्र, सर्जनात्मकता के प्रतिशोध के कारण अकर्मण्य रहते हैं। मानसिक अकर्मण्यता उन्हें नैतिक अपराध से विमुक्त नहीं कर सकती । वर्तमान के प्रति प्रकार की बुद्धिहीन अकर्मण्यता का कारण होता है, प्राचीन के प्रति प्रेमान्धता और यही प्रेमान्ध मूर्तिपूजा का पाप है । मूर्तिपूजा की परिभाषा यह हो सकती है कि वह एक प्रकार का बौद्धि और नैतिक अन्धापन है जिसमें स्रष्टा के स्थान पर सृष्ट वस्तु की पूजा की जाती है । स्वरूप यह हो सकता है कि मूर्तिपूजक अपने व्यक्तित्व की पूजा करने लगे या समाज के अस्थायी स्वरूप की, जो चुनौती और सामना और फिर चुनौती और सामना की शाश्वत उत्पन्न हो जाती है, जो जीवन का चिह्न है । इसका दूसरा रूप यह हो सकता है कि सीमित से वह किसी ऐसी संस्था अथवा तकनीक की पूजा करने लगे जिससे पहले कभी उसको हुआ हो । इन विभिन्न प्रकारों की पूजा की अलग-अलग परीक्षा करना सुविधाजनक होगा पहले हम स्वयं की पूजा की परीक्षा करेंगे क्योंकि जिस पाप का अध्ययन करने हम जा रहे हैं सबसे स्पष्ट उदाहरण यह होगा । यदि यह सत्य है कि——

'मानव अपनी मृत आत्मा
की सीढ़ी बनाकर उस पर चढ़ कर ऊपर उठता है ।'[२]

तो वह मूर्तिपूजक जो यह भूल करता है कि अपनी मृत आत्मा को सीढ़ी न बनाकर सिंहा बनाता है वह अपने को जीवन से उसी प्रकार अलग कर देता है जैसे वह उपासक जो ऊपर बैठकर उपासना करता है, जो अपने को अपने साथियों से अलग कर देता है ।

---

[१] द टाओ-टे किंग, अध्याय २४ (द वे एण्ड इट्स पावर का ए० वेले द्वारा अनुवाद)।
[२] टेनिसन : इन मेमोरियम ।

अब हमने वर्तमान विषय के अध्ययन करने के लिए पूरी तैयारी कर ली है और कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करेंगे ।

यहूदी

इस प्रकार की अस्थायी आत्मा की मूर्तिपूजा का सबसे कुख्यात ऐतिहासिक उदाहरण यहूदियों की वह भूल है जो नयी बाइबिल में है । उनके इतिहास के उस युग में जो सीरियाई सभ्यता के शैशव में आरम्भ हुआ और जो पैगम्बरों के युग में समाप्त हुआ, इसरायल और जूदा के लोगों ने धर्म की एकेश्वरवादी विचारधारा को स्थापित कर अपने को सीरियाई लोगों के बहुत ऊपर उठा दिया । अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति के ज्ञान और उचित ही गर्व के कारण उन्होंने अपने आध्यात्मिक विकास के इस अस्थायी परिस्थिति की पूजा आरम्भ करने की भूल की । वास्तव में उनकी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अद्वितीय थी । किन्तु इस शाश्वत और निरपेक्ष वास्तविकता की उपलब्धि के पश्चात् एक सापेक्ष तथा अस्थायी अर्द्धसत्य के मोह में वे फँस गये । उन्होंने यह विश्वास कर लिया कि इसरायल के लोगों ने एक ईश्वर की खोज की है इसलिए इस खोज द्वारा ईश्वर ने अभिव्यक्त किया है कि इसरायल के लोग ईश्वर के विशिष्ट मनोनीत लोग हैं। इस अर्द्ध सत्य से वे इतने मुग्ध हुए कि ऐसी घातक भूल की कि कुछ काल तक अपने को आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत महान् समझने लगे । यह महत्ता उन्होंने परिश्रम और कष्ट से प्राप्त की थी, किन्तु उन्होंने समझा कि ईश्वर ने विशेषतः उन्हें यह अधिकार दिया है । उस प्रतिभा को उन्होंने धरती में छिपाकर निर्जीव कर दिया और जो सम्पत्ति ईश्वर ने नजारथ के ईसा को भेजकर उन्हें दिया उसका उन्होंने तिरस्कार कर दिया ।

एथेन्स

यदि इसरायल सर्जनात्मकता के प्रतिशोध का शिकार इसलिए हुआ कि उसने अपने को 'विशिष्ट जाति' समझा तो एथेन्स इसी प्रकार के प्रतिशोध का शिकार इसलिए हुआ कि उसने अपने को 'यूनान का शिक्षक' समझा । हम यह देख चुके हैं कि यह अस्थायी गौरव एथेन्स ने अपनी उपलब्धि के कारण सोलन के युग और पेरिक्लीज के युग के बीच प्राप्त कर लिया था । परन्तु एथेन्स की अपूर्णता यह थी, या होनी चाहिए थी, कि यह गौरव उसके अपने ही पुत्र ने प्रदान की थी । पेरिक्लीज़ ने इस वाक्य को अंत्येष्टि भाषण में गढ़ा था । थ्यूसिडाइडीज़ के अनुसार यह उन एथेनी सिपाहियों की प्रशंसा में कहा गया था जो उस युद्ध के पहले वर्ष में मरे थे, जो हेलेनी समाज के साधारणतः और एथेन्स के विशेष, ओध्यात्मिक जीवन के विनाश का बाहरी और प्रत्यक्ष चिह्न था । यह घातक युद्ध इसलिए हुआ कि सोलोनी आर्थिक क्रान्ति ने एक समस्या उपस्थित कर दी थी । समस्या यह थी कि संसार में हेलेनी राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जाय । किन्तु यह समस्या पाँचवीं शती के एथेन्स की नैतिक सीमा के लिए असम्भव थी । ४०४ ई० पू० में एथेन्स की सैनिक पराजय हुई और उससे भी बड़ी नैतिक पराजय पुनः स्थापित ऐथेनी लोकतन्त्र ने स्वयं की जब पाँच साल बाद उसके सुकरात की वैधानिक हत्या की (जुडिशियल मर्डर) । इसके परिणामस्वरूप दूसरी पीढ़ी में अफलातून ने पेरिक्लीज के युग के एथेन्स तथा उसके सारे साहित्य का खण्डन कर दिया । किन्तु अफलातून के किंचित् दुर्विनीत और कुछ-कुछ कृत्रिम संकेत का प्रभाव नागरिकों पर नहीं पड़ा । एथेनी नेताओं के अनुगामियों ने,

जिन्होंने अपने नगर को 'यूनान का शिक्षक' बना लिया था, अपनी इस अपहृत उपाधि को उन्हें ढंग से पुन: स्थापित करने की चेष्टा की । वह ढंग यह था कि उन्होंने ऐसा रूप धारण किया कि उनकी शिक्षा ऐसी दुरूह हो गयी कि कोई ग्रहण न कर पाये । और वे अपनी असंगत और प्रभावहीन नीतियों को इसी रूप में मेसेडोनियाई उत्कर्ष से लेकर एथेन्स के इतिहास के उस कटु युग तक व्यवहार करते रहे जब वह रोमन साम्राज्य का गतिहीन और निष्प्रभ केवल प्रादेशिक नगर रह गया ।

उसके पश्चात् जब एक नयी संस्कृति का उदय उन स्थानों में हुआ जो किसी काल में हेलेनी जगत् के स्वतन्त्र नगर थे, तब एथेन्स में इसका बीजारोपण नहीं हुआ । अथीनियनों तथा सन्त-पाल के बीच जिस संघर्ष का वर्णन 'अपासल्स के एक्टों, (एक्ट्स आव अपासल्स) में किया गया है, उससे पता चलता है कि सन्त पाल गैर ईसाइयों से जब कुछ कहता था तो उस नगर के शैक्षणिक वातावरण के प्रति वह असंवेदनशील नहीं था । क्योंकि वह नगर हेलेनी आक्सफोर्ड हो चुका था और जब उसने मार्स हिल पर 'शिक्षकों' (डोन) के सम्मुख भाषण किया तब अपने श्रोताओं के मनोनुकूल बोलने की भरपूर चेष्टा की । किन्तु वर्णन से स्पष्ट है कि उसका प्रचार एथेन्स में असफल रहा और यद्यपि अन्त में उसने जो चर्च यूनानी नगरों में स्थापित किये थे उन्हें पत्र लिखने का अवसर निकाला तथापि हम जानते हैं कि वह अपनी लेखनी से भी उन अथेनियनों का धर्म-परिवर्तित न करा सका जिसे अपनी वाणी से बदलने में असफल रहा ।

इटली

यदि पाँचवीं शती ई० पू० का एथेन्स 'यूनान का शिक्षक' बनने का कुछ-न-कुछ समुचित दावा कर सकता था तो न्यायत: वही उपाधि आधुनिक पश्चिमी जगत् के उत्तरी इटली के नगर-राज्यों को मिल सकती है, क्योंकि पुनर्जागरण युग (रेनेसां) की यही उपलब्धि थी । यदि हम पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग से उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग के चार सौ वर्षों के इतिहास का परीक्षण करें, तो हम देखेंगे कि उसकी वर्तमान आर्थिक तथा राजनीति दक्षता और उसकी आधुनिक कलात्मकता तथा बौद्धिक संस्कृति की उत्पत्ति स्पष्टत: इटालियाई है । पश्चिमी इतिहास के आधुनिक आन्दोलन में यह रचना इटालियाई संवेग का परिणाम थी और यह संवेग इसके पहले के युग की इटालियाई संस्कृति के प्रकाश का विकिरण था । वास्तव में पश्चिमी इतिहास का यह अध्याय उसी प्रकार इटालियाई कहा जा सकता है जिस प्रकार हेलेनी इतिहास का तथाकथित हेलेनी युग का वह काल, जिसमें पाँचवीं शती के एथेन्स की संस्कृति का प्रसार सिकन्दर की सेना के साथ-साथ भूमध्य सागर के तट से जलमग्न सुदूर आकेमीनियाई साम्राज्य की सीमान्त तक किया गया था ।[1]

---

[1] जब सिकन्दर ने आकेमीनियाई साम्राज्य को पराजित किया और आगस्टस ने शान्तिमय रोमन साम्राज्य की स्थापना की इन तीन शतियों के युग को 'हेलेनी' के स्थान पर 'अटिसिस्टिक' कहना अधिक उपयुक्त होगा । एडविन बेवन के अनुसार 'हेलेनी' शब्द हेलेनी सभ्यता के इतिहास के किसी विशेष अध्याय के लिए प्रयोग करना उपयुक्त न होगा । बल्कि उन दोनों सभ्यताओं की सारी विशेषताओं के लिए ठीक होगा जिसे इस अध्ययन में पश्चिमी तथा परम्परावादी ईसाई सभ्यता कहा गया है ।

किन्तु हमें फिर उसी विरोधाभास का सामना करना पड़ता है, क्योंकि जिस प्रकार हेलेनी युग में एथेन्स का योगदान निरन्तर अलाभकारी होता रहा उसी प्रकार आधुनिक युग में पश्चिमी समाज के जीवन में इटली का योगदान उसके आल्पस पार के शिष्यों की अपेक्षा निम्नकोटि का था।

आधुनिक युग में इटली की अपेक्षाकृत निर्जीवता मध्ययुगीन इटली की संस्कृति में घर-घर दिखाई पड़ती है—फ्लारेन्स में, वेनिस में, मिलन में, साएना में, बोलोना में और पाडुआ में। और आधुनिक युग के अन्त में परिणाम और भी उल्लेखनीय है। इतिहास के इस अध्याय के अन्त में आल्पस-पार की जातियाँ इस योग्य हो गयी थीं कि मध्ययुगीन इटली का जो ऋण उनके ऊपर था, उसे वे चुका दें। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शती में आल्पस के पार से एक नया सांस्कृतिक प्रकाश फैला। इस बार उल्टी दिशा में। इटली में आल्पस पार का यह प्रभाव इटली के पुनरुत्थान का पहला कारण था।

आल्पस के उस पार से पहली राजनीतिक शक्ति जो प्राप्त हुई उसका नेपोलियन के साम्राज्य में अस्थायी समावेश था। पहली आर्थिक शक्ति उस समय मिली जब भूमध्य सागर से भारत को व्यापारिक रास्ता बना, जो स्वेज नहर के निर्माण के पहले की बात है और अप्रत्यक्ष रूप से मिस्र पर नैपोलियन के आक्रमण का परिणाम था। आल्पस पार की इन शक्तियों का पूरा प्रभाव तब तक नहीं फलीभूत हुआ जब तक कि वे इटालियाई कार्यकर्ताओं के हाथों में नहीं आयीं। किन्तु जिन इटालियाई सर्जनात्मक शक्तियों से पुनरुत्थान का जन्म हुआ वह उस इटालियाई धरती पर नहीं हुआ जहाँ मध्ययुगीन इटालियाई संस्कृति पनपी थी।

उदाहरण के लिए आर्थिक क्षेत्र में आधुनिक सामुद्रिक व्यापार में पहला इटालियाई बन्दरगाह सफल होने वाला वेनिस, या जेनोआ या पीसा नहीं था, किन्तु लेगहार्न था। और लेगहार्न का निर्माण पुनर्जागरण के पश्चात् टसकनी के एक ग्रेंड ड्यूक ने किया था। उसने स्पेन और पुर्तगाल से प्रच्छन्न यहूदियों को लाकर बसाया था। यद्यपि लेगहार्न पीसा से कुछ ही मील दूर बसा था, उसकी समृद्धि इन परिश्रमी शरणार्थियों के कारण हुई थी जो पश्चिमी भूमध्य सागर के दूसरे तट से आये थे। उनके लिए नहीं जो मध्ययुगीन पीसा के नाविकों के दुर्बल वंशज थे।

राजनीतिक क्षेत्र में इटली का एकीकरण मूलतः आल्पस पार एक छोटे राज्य द्वारा हुआ था जिसका अस्तित्व इटली की ओर के आल्पस क्षेत्र में नगण्य था सिवाय फ्रेंच बोलने वाले वाल ड आयोस्टा प्रदेश के। सेवाय के घराने की शक्ति इटली की ओर आल्प्स क्षेत्र में तब तक शान्त नहीं हुई जब तक कि इटालियाई नगर-राज्यों की स्वाधीनता और इटालियाई पुनर्जागरण की प्रतिभा क्रमशः समाप्त नहीं हो गयी। और जब तक सारे प्रथम श्रेणी के नगर सारडिनिया के राजा के, जो अब सेवाय के घराने के शासक का नाम हो गया था, शासन में नहीं आ गये थे और जब तक नेपोलियनियाई युद्ध के पश्चात् जेनोआ भी नहीं ले लिया गया। सेवाय के घराने की विशिष्टता अब भी नगर-राज्य परम्परा से इतनी भिन्न थी कि सारडिनियाँ के राजा के शासन में जेनोआ वाले बहुत क्षुब्ध थे। यह क्षोभ उस समय सन् १८४८ में शान्त हुआ जब इस घराने ने इटालियाई राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्त्व ग्रहण किया।

सन् १८४८ में लोम्बार्डी और वेनिशिया में आस्ट्रियाई शासन को पीडमांट के आक्रमण की आशंका हुई और साथ ही आस्ट्रियाई राज्य के वेनिस, मिलन तथा इटली के और नगरों में विप्लव हुआ। इन दोनों आस्ट्रिया-विरोधी आन्दोलनों की भिन्नता के ऐतिहासिक महत्त्व पर

विचार करना मनोरंजक होगा। ये दोनों आन्दोलन एक साथ हुए और सरकारी रूप से दोनों ने इटालियाई स्वतन्त्रता के आन्दोलन के समर्थन में प्रहार किया। वेनिस और मिलन के विप्लव स्वतन्त्रता के पक्ष में अवश्य थे किन्तु जिस स्वतन्त्रता की भावना ने उन्हें उत्प्रेरित किया था वह मध्ययुगीन प्राचीनता की स्मृति का स्वप्न था। ये नगर हाहेनस्टाउफेन के विरुद्ध अपना मध्ययुगीन संघर्ष पुनः आरम्भ कर रहे थे। ये विफल हुए किन्तु इनका प्रयत्न वीरतापूर्ण था। तुलना में सन् १८४८–४९ का पीडमांट का प्रयत्न अशोभनीय था। इन्होंने (पीडमांट वालों ने) जो बुद्धिमत्तायुक्त विराम-सन्धि का उल्लंघन किया उसका दण्ड उन्हें नोवारा की लज्जाजनक पराजय में मिला। किन्तु पीडमांट का यह अपमान, वेनिस और मिलन की यशस्वी दशा से इटली के लिए कहीं अधिक कल्याणकारी हुआ। क्योंकि पीडमांट की सेना बची रही और (पर्याप्त फ्रांसीसी सहायता से) दस साल बाद मैंजेंटा में इसने बदला ले लिया। और राजा चार्ल्स आलबर्ट ने अंग्रेजी ढंग का, नये ढंग का जो संसदीय विधान प्रदान किया वही १८६० में संयुक्त-इटली का विधान बना। इसके विपरीत १८४८ में मिलन तथा वेनिस के नेताओं ने जो कीर्तिकर कारनामे दिखलाये वे फिर दोहराये न जा सके। उसके बाद ये पुराने नगर पुनःस्थापित आस्ट्रियाई शासन में आये और उनकी मुक्ति पीडमांट की सेना तथा कूटनीति के कारण हो पायी।

इस अन्तर का कारण यह जान पड़ेगा कि वेनिस तथा मिलन की १८४८ के ये कारनामे असफल होते ही, क्योंकि इनके पीछे जो आध्यात्मिक शक्ति थी वह आधुनिक राष्ट्रीयता नहीं थी, पुराने मध्ययुगीन नगर-राज्यों के अपने मृत रूप की मूर्तिपूजा थी। उन्नीसवीं शती के वेनिस वाले, जिन्होंने मैनिन की पुकार सुनी, केवल वेनिस के लिए लड़ रहे थे। वे लुप्त वेनिसी लोकतन्त्र की पुनः स्थापना करना चाहते थे। संयुक्त इटली के निर्माण में योगदान नहीं करना चाहते थे। इसके विपरीत पीडमांट के लोग अपने प्राचीन लुप्त रूप को मूर्ति बनाकर पूजना नहीं चाहते थे, क्योंकि उनकी प्राचीनता में कोई बात ऐसी नहीं थी जिसकी पूजा के लिए मूर्ति स्थापित की जा सकती थी।

दोनों का अन्तर मैनिन और कावूर के अन्तर से स्पष्ट हो जाता है। मैनिन निश्चय रूप से वेनिसी था और चौदहवीं शती के लिए बिलकुल उपयुक्त था। कावूर जिसकी मातृभाषा फ्रांसीसी थी और जिसकी दृष्टि विक्टोरियाई थी, चौदहवीं शती के इटालियाई नगर-राज्यों के वातावरण के नितान्त प्रतिकूल था, जिस प्रकार उसके आलपस पार के समकालीन पील और थायर्स थे। वह अपने संसदीय राजनीतिक तथा कूटनीतिक गुणों को और वैज्ञानिक कृषि तथा रेलवे निर्माण की रुचि का अच्छे प्रकार उपयोग करता यदि भाग्यवश वह उन्नीसवीं शती में इटली में उत्पन्न होने के स्थान पर इंग्लैंड अथवा फ्रांस में जमींदार हुआ होता।

इस प्रमाण से १८४८ का विप्लव इटली के पुनर्जागरण में निरर्थक था। यह असफलता मूल्यवान् थी और १८५९–७० की क्रान्ति की सफलता के लिए आवश्यक थी। सन् १८४८ में मिलन और वेनिस के मध्ययुगीन देवता इतने चकनाचूर तथा विकल हो गये थे कि उनके उपासकों पर से उनका प्रभाव जाता रहा। और प्राचीनता का यह विनाश यद्यपि देर में हुआ तथापि इसने संयुक्त इटालियाई राज्य की स्थापना के लिए स्थान बना दिया जिसमें किसी मध्ययुगीन स्मृति की छाप नहीं थी।

दक्षिण कैरोलिना

यदि हम अपना सर्वेक्षण पुरानी दुनिया से नयी दुनिया की ओर करें तो संयुक्त राज्य के इतिहास में सर्जन के प्रतिशोध का इसी के समान उदाहरण पायेंगे । यदि हम 'पुराने दक्षिण' के उन राज्यों के युद्धोत्तर काल के इतिहास का अध्ययन करें जो सन् १८६१–६५ के गृहयुद्ध के संघटन में सम्मिलित थे और संघटन की पराजय में भी थे, तो इस विपत्ति से उबरने के वाद हम इन राज्यों के बीच वहुत अन्तर पायेंगे । और जो अन्तर, गृहयुद्ध के पहले था ठीक उसके विपरीत उन्हीं राज्यों में युद्ध के वाद अन्तर मिलता है ।

विदेशी दर्शक जिसने वीसवीं शती के पाँचवें दशक में दक्षिण को देखा होगा वह आसानी से वरजिनिया और दक्षिण कैरोलिना को अलग कर देगा कि इन राज्यों में पुनरुत्थान का चिह्न बहुत कम है, और उसे आश्चर्य होगा कि जो महान् सामाजिक विपत्ति उन पर पड़ी थी उसका प्रभाव इतने दिनों तक उन पर जमा हुआ है । इन राज्यों में इस विपत्ति की स्मृति आज हमारी पीढ़ी में भी हरी है मानों यह विपत्ति अभी कल की वात है । वरजिनियनों तथा दक्षिण कैरोलिनियनों के मुख पर 'युद्ध' का अर्थ अब भी गृहयुद्ध है यद्यपि तव से दो महायुद्ध हो चुके हैं । वास्तव में वीसवीं शती में वरजिनिया तथा दक्षिण कैरोलिना का यह दुःखद प्रभाव होता है कि राज्यों पर कोई टोना चल गया है और समय यहाँ स्थिर हो गया है । यह धारणा और भी सजीव हो जाती है जब हम इन दोनों राज्यों के वीच के राज्य को देखते हैं । उत्तरी कैरोलिना में दर्शक को अद्यतन उद्योग-धन्धे नये-नये विश्वविद्यालय, और चहल-पहल का जीवन मिलेगा और धूमधाम का जीवन मिलेगा जिसे उसने उत्तर के 'यांकियों' से सीखा है । उसे यह भी पता चलेगा कि सक्रिय और सफल युद्ध के वाद उद्योगों के अतिरिक्त उत्तर कैरोलिना में बीसवीं शती में वाल्टर पेज की महत्ता का राजनीतिमर्मज्ञ भी पैदा हुआ है ।

क्या कारण है कि उत्तर कैरोलिना में वसन्त ऋतु के समान जीवन के अंकुर फूट रहे हैं और उसके पड़ोसियों में अभी तक 'असन्तोष' का 'शिशिर' बना हुआ है । अपने ज्ञान के लिए यदि हम प्राचीन की ओर देखें तो हमारी उलझन क्षण भर के लिए और बढ़ जायगी क्योंकि गृहयुद्ध तक उत्तर कैरोलिना निर्जीव था जबकि वरजिनिया और दक्षिण कैरोलिना में अद्वितीय जीवन संचारित था । अमरीकी संघ बनने के पहले चालीस साल के इतिहास में वरजिनिया की प्रगति की दूसरे प्रमुख राज्यों से कोई तुलना नहीं थी । यहीं से पहले पाँच राष्ट्रपतियों में से चार राष्ट्रपति हुए । यहीं जान मारशल हुए जो प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होंने फिलाडेलफिया कन्वेन्शन के निर्मित 'कागज की चिट' की अस्पष्टता को हटाकर उसे अमरीकी जीवन के उपयुक्त बनाया । और सन् १८२५ के वाद वरजिनिया पिछड़ गया, और कालहाउन के नेतृत्व में दक्षिण कैरोलिना ऐसी राह पर चला कि गृहयुद्ध में उसका विनाश हुआ । इस बीच उत्तर कैरोलिना के वारे में बहुत कम सुना जाता था । उसकी धरती उर्वर नहीं थी, उसके पास बन्दरगाह नहीं थे । यहाँ के गरीव थोड़ी भूमि वाले किसान उन प्रवासियों के वंशज थे जो वरजिनिया अथवा दक्षिण कैरोलिना में सफल नहीं हो पाये थे और उनकी तुलना वरजिनिया के जमींदारों अथवा दक्षिण कैरोलिना के रुई वोने वालों से नहीं की जा सकती थी ।

आरम्भ में उत्तर कैरोलिना अपने पड़ोसियों की तुलना में क्यों असफल रहा, इसका कारण

स्पष्ट है, किन्तु आगे चलकर ये राज्य क्यों असफल हो गये और उत्तर कैरोलिना सफल हो गया। इसका कारण यह है कि पीडमांट की भाँति उत्तर कैरोलिना के लिए कोई गौरवमय प्राचीन पू विघ्न डालने वाली न थी। गृहयुद्ध से उसकी प्रायः कुछ हानि नहीं हुई क्योंकि हानि के लि उसके पास कुछ था नहीं। और किसी विशेष ऊँचाई से पतन नहीं हुआ इसलिए उठने में कठिनाई नहीं हुई।

पुरानी समस्याओं पर नया प्रकाश

सर्जनात्मकता के प्रतिशोध के इन उदाहरणों से उन परिस्थितियों पर नया प्रकाश पड़ता है जिनपर इस अध्ययन में पहले हमारा ध्यान गया था और जिसे हमने 'नयी धरती की प्रेरणा' कहा था। यह परिस्थिति ऊपर के उदाहरणों में हमने फिर पायी। यहूदियों की तुलना में गैलीनियन और गैर-ईसाई, मिलन और वेनिस की तुलना में पीडमांट और उसके पड़ोसियों की तुलना में उत्तर कैरोलिना। इसी प्रकार की खोज यदि एथेन्स के सम्बन्ध में करते तो हमने प्रमाणित किया होता कि यूनान ने जो ई० पू० तीसरी तथा दूसरी शती में अपने नगर-राज्यों के संघ बनाने का प्रायः सफल किन्तु असाध्य प्रयत्न किया था वह अटिका में नहीं अकेइयाँ में हुआ। यह असफल प्रयत्न नगर-राज्यों की स्वतन्त्रता सुरक्षित करने के लिए उन महान् शक्तियों के विरुद्ध था जो हेलेनी जगत् की सीमा पर नये-नये राज्यों के रूप में बन गये थे। हम इस प्रकार देखते हैं कि नयी धरती की उत्कृष्ट उर्वरता ही पूर्ण रूप से, अथवा निश्चित रूप से उस धरती को जोतने की प्रेरणा का कारण नहीं होती। नयी धरती में सफलता क्यों होती है इसके लिए निषेधात्मक कारण भी है और नियति भी। अर्थात् वहाँ अहितकर प्राचीन स्मृतियाँ और परम्पराएँ नहीं हैं जिन्हें हटाया नहीं जा सकता और जो विघ्नके रूप में नहीं हैं।

एक दूसरी सामाजिक परिस्थिति का कारण भी हम समझ सकते हैं। किस प्रकार सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग शक्तिशाली अल्पसंख्यक वर्ग में परिवर्तित हो जाता है। हमने इस अध्ययन में पहले इस प्रकार के अध्ययन को अलग कर दिया था कि वह सामाजिक पतन और विनाश का एक प्रमुख कारण है। सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग इस परिवर्तन से बहुत अवनत नहीं होता, सर्ज कर्ता निश्चय ही इस अवनति की ओर जाने लगता है। सर्जन की प्रतिभा जब पहले-पहल प्रस्फुटित होती है तब चुनौती का सफल सामना करती है और बाद में स्वयं नयी और शक्तिशाली चुनौती उसी के लिए बन जाती है जिसने इस प्रतिभा का बहुत ही अच्छा उपयोग किया था।

(४) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी संस्था की भक्ति

हेलेनी नगर-राज्य

हेलेनी समाज के पतन और विघटन में इस संस्था (नगर-राज्य) की भक्ति का बहुत योगदान रहा है। अपनी सीमा में ये अत्यन्त सफल रहे किन्तु सभी मानवी सृष्टियों के अनुसार अस्थायी। हमें दो विभिन्न परिस्थितियों का अन्तर समझना पड़ेगा जिनमें यह देवता सामाजिक समस्या के सुलझाने में बाधक रहा है।

इन दो समस्याओं में पहली और जो अधिक गम्भीर थी उसे हमने दूसरे संदर्भ में पहले अध्ययन कर लिया है इसलिए उसे हम छोड़ देंगे। जिसे हमने सोलोनी आर्थिक क्रान्ति बतायी है उसके

परिणामस्वरूप एक हेलेनी संसार का संघटन आवश्यक था। इसका प्रयत्न अथीनियनों ने किया किन्तु विफल रहे और परिणामस्वरूप हेलेनी संसार का विघटन हो गया। स्पष्ट है कि इसका कारण यह था कि नगर-राज्य की प्रभुता के रोड़े को हटाने में सब सम्बन्धित लोग असफल रहे। एक ओर यह मुख्य और अनिवार्य समस्या बिना सुलझे रह गयी और एक दूसरी समस्या उत्पन्न हो गयी जो हेलेनी प्रमुख अल्पसंख्यकों की स्वयं उत्पन्न की हुई थी। यह ठीक उसी समय उत्पन्न हुई जब हेलेनी इतिहास चौथी और तीसरी शती ई० पू० में दूसरे से तीसरे अध्याय में पहुंचा।

इस संक्रमण काल का बाहरी चिह्न यह था कि हेलेनी जीवन में भौतिकता बहुत बढ़ गयी। अभी तक उनका सामुद्रिक जीवन भू-मध्यसागर के बेसिन तक सीमित था। अब वह डार्डनलीज़ से भारत तक और ओलिम्पस तथा अपेनाइन से डेन्यूब और राइन तक विस्तृत हो गये। जो समाज इतना विस्तृत हो गया हो और जिसने उन राज्यों के बीच, जो संगठित किये गये थे शान्ति और व्यवस्था की आध्यात्मिक समस्या का समाधान न किया हो, उसमें प्रभुसत्ता वाला राज्य इतना छोटा हो गया कि राजनीतिक जीवन में व्यावहारिक इकाई के रूप में वह नहीं रह सकता था। इतना बड़ा दुर्भाग्य कम नहीं था। हेलेनी समाज की यह परम्परागत संकुचित प्रभुसत्ता का नाश हो जाना एक दु:स्वप्न की समाप्ति की भाँति अच्छा ही होता। इस प्रकार इस परम्परागत संकुचित सत्ता का विनाश भगवान् की देन होती। यदि सिकन्दर, जीनो और एपीक्यूरस को मित्र बनाने के लिए जीवित रहता तब यह कल्पना की जा सकती है कि हेलेनी लोग नगर-राज्य की संकुचित सीमा से बाहर निकल कर सार्वभौमिक नगर का स्वरूप बनाते। और इस परिस्थिति में हेलेनी समाज का जीवन-काल बढ़ जाता। किन्तु सिकन्दर की अकाल मृत्यु के कारण संसार उसके उत्तराधिकारियों की दया पर रह गया। और समशक्ति वाले मैसिडोनियाई युद्ध-नायकों ने नगर-राज्य की संकुचित प्रभुसत्ता उस नये युग में भी जीवित रखी, जिसका सिकन्दर ने प्रादुर्भाव किया था। किन्तु हेलेनी जीवन में जो भौतिकता की उन्नति हो रही थी उसमें एक ही स्थिति में संकुचित प्रभुसत्ता की रक्षा हो सकती थी। प्रभुसत्ता नगर-राज्य के स्थान पर ऊँचे चरित्र बल के नये राज्य बनें।

ये नये राज्य सफलतापूर्वक बने किन्तु २२० और १६८ ई० पू० के बीच रोम ने जो आक्रमण अपने प्रतिद्वन्द्वियों के ऊपर किये उसके फलस्वरूप ये सब राज्य नष्ट हो गये और केवल एक बच गया। जिस हेलेनी समाज ने स्वेच्छा से संघटित होने का अवसर खो दिया वह जबरदस्ती एक सार्वभौम राज्य के रूप में बंध गया। किन्तु इस समय हमारी अभिरुचि की यह बात है कि जिस चुनौती ने पेरिक्लीज़ के एथेन्स को पराजित किया था और रोम ने जिसका सामना किया और वे सब वस्तुएँ जिनके कारण यह सार्वभौम राज्य बना, उन लोगों की सहायता के कारण है जिन्हें परम्परागत संकुचित प्रभुसत्ता से कोई मोह नहीं था।

हेलेनी संसार की संकीर्ण प्रभुसत्ता तथा उसी प्रकार की आज की हमारे संसार की समस्या की समानता पर यहाँ जोर देने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु इतना कहा जा सकता है कि हेलेनी इतिहास के प्रमाण पर हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे पश्चिमी जगत् की समस्या, यदि सुलझ सकती है तो उसी दिशा या दिशाओं से जहाँ की राष्ट्रीय सत्ता को निम्न श्रेणी की भक्ति का रूप नहीं दिया गया है। हमारी मुक्ति पश्चिम यूरोप के राष्ट्रीय राज्यों द्वारा नहीं

मिल सकती क्योंकि वहाँ प्रत्येक राजनीतिक विचार तथा भावना संकुचित प्रभुसत्ता से बँधी हुई है और जिसे वे वैभवपूर्ण पुरातन का प्रतीक मानते हैं। इस एपिमेथियाई मनोवैज्ञानिक वातावरण में हमारा समाज ऐसे किसी नये अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को नहीं खोज सकता जो संकुचित प्रभुसत्ता को किसी ऊँचे विधान की मर्यादा के अन्तर्गत रख सके और अन्तिम प्रहार के विनाश से, जो अवश्यम्भावी है, सुरक्षित कर सके। यदि कभी यह खोज हो सके तो जिस राजनीतिक प्रयोगशाला में हमें यह संस्था प्राप्त होगी वह इस प्रकार की कोई संस्था होगी जैसे ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल, जिसने एक प्राचीन यूरोपीय राष्ट्रीय राज्य के अनुभव को अनेक समुद्र पार विदेशी राज्यों का जो अभी निर्माण काल में है गठबन्धन किया है, या वह सोवियत यूनियन के समान कोई राजनीतिक संघटन होगा जो अनेक अ-पश्चिमी जातियों को पश्चिमी क्रान्तिकारी विचारों द्वारा नये समाज में संघटित करने का प्रयत्न कर रहा है। सोवियत यूनियन की तुलना हम सेल्युकस के साम्राज्य से कर सकते हैं और ब्रिटिश साम्राज्य का रोमन राष्ट्रमण्डल से। क्या ये अथवा पश्चिमी शृंखला की सीमा पर का कोई राजनीतिक समाज अन्त में किसी ऐसे राजनीतिक संघटन का निर्माण करेगा जिससे हमें उस अप्रौढ़ अन्तर्राष्ट्रीय संघटन के स्थान पर, जो हम युद्ध के पश्चात् के 'लीग आव नेशन्स' के बाद बनी है, वास्तविक स्थायित्व प्रदान कर सके। हम कह नहीं सकते, किन्तु हमें विश्वास है कि यदि ये नेता असफल रहे तो राष्ट्रीय प्रभुसत्ता वाले कट्टर भक्तों के द्वारा यह कभी नहीं हो सकेगा।

पूर्वी रोमन साम्राज्य

ऐसी संस्था की अन्ध भक्ति का क्लासिक उदाहरण वह है जिसके कारण समाज को दुख भोगना पड़ा, परम्परावादी ईसाई जगत् का रोमन साम्राज्य के भूत के प्रति अत्यधिक मोह था। यह प्राचीन संस्था अपना ऐतिहासिक कार्य समाप्त कर चुकी थी और हेलेनी समाज से उत्पन्न सार्वभौम राज्य के रूप की अपने जीवन की अवधि पूर्ण कर चुकी थी।

ऊपरी तौर पर ऐसा जान पड़ता है कि पूर्वी रोमन साम्राज्य एक ही संस्था के रूप में बराबर उस समय से जब कान्स्टैंटाइन ने कान्स्टैंन्टिनोपल की स्थापना की थी और ग्यारह शती बाद तक जब उसमानिया तुर्कों ने १४५३ में इस नगर पर विजय प्राप्त की, कायम रहा। अथवा कम से कम उस समय तक जब लैटिन धर्म-योद्धाओं ने १२०४ ई० में कान्स्टैंन्टिनोपल अपने अधिकार में कर लिया था और अस्थायी रूप से पूर्वी रोमन साम्राज्य की सरकार को निकाल बाहर किया था। किन्तु वास्तविकता दूसरी जान पड़ती है। इन दोनों संस्थाओं को अलग-अलग समझना ठीक होगा। इन दोनों के बीच अन्तर था और समय के हिसाब से दोनों के बीच अन्तःकाल था। मूल रोमन साम्राज्य का जिसने हेलेनी सार्वभौम राज्य का रूप ग्रहण किया था, अन्धकार काल में पश्चिम में अन्त हो चुका था। यथार्थतः चौथी और पाँचवीं शती में और आधिकारिक ढंग से सन् ४७६ ई० में जब एक बर्बर योद्धा ने इटली के अन्तिम कठपुतली सम्राट् को गद्दी से उतार दिया और उसके नाम पर वह कान्स्टैंन्टिनोपल पर शासन करता रहा। सम्भवतः इस बात को अच्छी तरह नहीं माना जाता कि वही परिणाम मौलिक रोमन साम्राज्य का पूरब में भी अन्धकार युग समाप्त होने के पहले हो चुका था। उसका विघटन उसी समय हुआ जब ५६५ ई० में जस्टीनियन का परिश्रमपूर्ण और संकटपूर्ण शासन समाप्त हुआ। इसके पश्चात् पूरब में डेढ़ सौ वर्षों का

अन्तःकाल था। इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो अपने को रोमन सम्राट् कहकर कान्स्टैन्टिनोपल से राज्य करते थे। किन्तु यह युग विघटन और जन्म का था, जिसमें मृत समाज के अवशेष को फेंका गया और उसके नये उत्तराधिकारी को जन्म दिया गया। उसके पश्चात् ईसा की आठवीं शती के पहले पचासे में लिओसाइरस की प्रतिभा से मृत रोमन साम्राज्य का भूत जगाया गया। परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहास के पहले अध्याय के पढ़ने से यह जान पड़ता है कि लिओसाइरस संकटपूर्ण किन्तु असफल शार्लिमान था। शार्लिमान की असफलता के कारण पश्चिमी ईसाई धर्मतन्त्र से मध्ययुग में अनेक संकुचित पश्चिमी राज्य उत्पन्न हुए जिनके सम्बन्ध में हमें पर्याप्त जानकारी है। लिओ की सफलता ने पुनर्जीवित सार्वभौम राज्य के तंग वासकेट को परम्परावादी ईसाई समाज को कसकर पहना दिया, इसके पहले कि वह नवजात समाज अपने अंगों का संचालन भी कर सके। किन्तु इस अन्तर से लक्ष्य में कोई अन्तर न था। शार्लिमान और लिओ दोनों उसी अस्थायी और लुप्तप्राय संस्था के ऐपिमेथियाई उपासक थे।

परम्परावादी ईसाई जगत् की अपरिपक्वता तथा घातक महत्ता राजनीतिक संरचना में पश्चिम के प्रति उत्कृष्ट होने का हम क्या कारण बता सकते हैं। एक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इन दोनों ईसाई समाजों के ऊपर एक साथ अरब के मुसलमानों का आक्रमण था। सुदूर पश्चिम में अरबों ने सीरियाई समाज के लिए उत्तरी अफ्रीका और स्पेन में उसके खोये औपनिवेशिक राज्य को फिर से लेने के लिए आक्रमण किया। उसी समय जब उन्होंने पिरेनीज को पार किया और जब वे शिशु पश्चिमी समाज के हृदय पर आघात कर रहे थे उनकी आक्रमणकारी शक्ति समाप्त प्राय हो चुकी थी और जब भूमध्यसागर के दक्षिणी और पश्चिमी किनारे पर आक्रमण करने चल रहे थे उन्हें टूर्स में आस्ट्रेशियाई ढाल के समान दीवार का सामना करना पड़ा जिस पर उनके भाले ठीक निशाने पर न बैठकर इधर-उधर छिटक गये। थके आक्रमणकारी पर यह निष्क्रिय विजय आस्ट्रेशियाई भाग्योदय के लिए पर्याप्त थी। सन् ७३२ में टूर्स की यह कीर्ति आस्ट्रेशिया के पश्चिमी ईसाई समाज की आरम्भिक शक्तियों का नेता बनाने के लिए पर्याप्त थी। यदि अरब अस्त्र का यह दुर्बल आक्रमण कैरोलिंजियनों को भरपूर तैयार कर सकने के योग्य था, तो इसमें आश्चर्य नहीं था कि परम्परावादी समाज में पूर्वी रोमन साम्राज्य का ठोस भवन बन जाय जो उस आक्रामक के जिसने परम्परावादी ईसाई समाज पर आक्रमण किया था, जोरदार और अधिक समय तक चलने वाले हमले का सामना कर सके।

इस तथा और कारणों से[1] लिओसाइरस तथा उसके उत्तराधिकारियों ने उस लक्ष्य को प्राप्त किया जहाँ तक पश्चिम में शार्लिमान नहीं पहुँच सका, या ओटो प्रथम, और तीसरा हेनरी पोप की सहमति से भी नहीं पहुँचा। और निश्चय ही बाद के सम्राट् जिन्हें पोप के विरोध का सामना करना पड़ा नहीं पहुँच सके। पूरब (ईसाई जगत्) के सम्राटों ने अपने राज्यों में धर्म को

---

[1] श्री ट्वायनबी की बड़ी पुस्तक में पूर्वी रोमन साम्राज्य के प्रति अधिक विस्तार से लिखा गया है। उतना और किसी ऐतिहासिक उदाहरण के सम्बन्ध में नहीं। देखिए, भाग ४, पृ० ३२०-४०८।—सम्पादक

राज्य का एक विभाग बना दिया और सब ईसाइयों के मुखिया (पेट्रियार्क) को एक प्रकार का धर्म का उपसचिव नियुक्त किया। इस प्रकार राज्य में और धर्म में सम्बन्ध पुनःस्थापित किया जिसे कान्स्टैन्टाइन ने आरम्भ किया था और उसके उत्तराधिकारियों ने, जस्टीनियन तक, बनाये रखा। इस कार्य के दो प्रभाव हुए। एक साधारण और दूसरा विशेष।

(साधारण प्रभाव तो यह हुआ कि परम्परावादी ईसाई समाज के जीवन से विविधता तथा परिवर्तनशीलता (एलास्टिसिटी), प्रयोगशीलता तथा सर्जनात्मकता की भावनाएँ रुक गयीं और वे निर्जीव हो गयीं।) इसका दुष्परिणाम जो हुआ उसे हम पश्चिम की सहोदरा सभ्यता से जिसकी विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं तुलना करके देख सकते हैं, जहाँ परम्परावादी ईसाइयों का प्रतिरूप नहीं है। परम्परावादी ईसाई समाज में हिलडब्रैंड के पोप तन्त्र सी कोई वस्तु नहीं है और न स्व-शासित विश्वविद्यालय है, न स्व-शासित नगर-राज्य।

इसका विशेष प्रभाव यह हुआ कि पुनर्जीवित साम्राज्य शासन ने स्वतन्त्र बर्बर राज्यों की उपस्थिति सहन नहीं की जो उस क्षेत्र में फैले हुए थे जहाँ की सभ्यता का प्रतिनिधित्व यह साम्राज्य करता था। इस असहिष्णुता का परिणाम ईसा की दसवीं शती के रोमन-बुलगारियन युद्ध में, जिसमें पूर्वी रोमन साम्राज्य को अपूरणीय क्षति पहुँची यद्यपि ऊपरी ढंग से यह विजयी था और जैसा कि दूसरे स्थान पर हम बता चुके हैं इन युद्धों से परम्परावादी ईसाई समाज का विनाश हुआ।

राजा, संसद और नौकरशाही

नगर-राज्य अथवा साम्राज्य ही ऐसी राजनीतिक संस्थाएँ नहीं हैं जिन्हें लोगों ने भक्ति और पूजा की दृष्टि से देखा है। ऐसी ही प्रतिष्ठा, राज्यों की और सत्ताओं को भी मिली है—चाहे वह 'ईश्वरीय' राजा हो अथवा 'सर्वशक्तिमान्' संसद हो। और परिणाम भी वैसा ही हुआ है। (किसी जाति, वर्ग अथवा व्यवसाय के प्रति भी, जिसके कौशल अथवा शक्ति के ऊपर किसी राज्य को निर्भर रहना पड़ा हो, वैसी निष्ठा रही है और परिणाम वैसा ही हानिकारक हुआ है।)

(ऐसी भक्ति का महत्त्वपूर्ण उदाहरण जिसमें कि एक मानव की पूजा की गयी है मिस्री समाज के पुराने राज्य-तन्त्र में मिलता है। एक दूसरे सम्बन्ध में हम पहले देख चुके हैं कि मिस्री संयुक्त राज्य के राजाओं ने ईश्वरीय प्रतिष्ठा को स्वीकार किया अथवा उसकी माँग की, और उसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे ऊँचे उद्देश्य का 'महान् तिरस्कार' किया।) मिस्री इतिहास की इस दूसरी चुनौती को स्वीकार न करने के कारण घातक असफलता इस समाज को मिली जिसके कारण मिस्री समाज का अकाल प्रौढ़ यौवन जल्दी ही समाप्त हो गया और मिस्री सभ्यता का पतन हो गया। मिस्री जीवन पर इन मानवी देवताओं ने भय देने वाले दुःस्वप्न की भाँति जो कुप्रभाव डाला उसके प्रतीक पिरामिड है जो प्रजा से जबरदस्ती श्रम कराकर बनवाये गये और इसलिए कि ये पिरामिड अमर हों। जो कौशल, धन और परिश्रम भौतिक परिस्थितियों पर नियन्त्रण करने के लिए लगाना चाहिए था, जिससे सारे समाज का हित होता, राज-पूजा की ओर गलत रास्ते पर लगाये गये।

मनुष्य में राजनीतिक सत्ता की इस प्रकार पूजा करना कैसी पथ-भ्रष्टता है, इसका उदाहरण और भी दिया जा सकता है। यदि हम इसी प्रकार का उदाहरण आधुनिक पश्चिमी संसार में खोजें तो उसका भ्रष्ट स्वरूप फ्रांस के 'सूर्यवंशी' राजा 'रे' के राजकुमार चौदहवें लुई में पा सकते

है। इस पश्चिमी सूर्य का बरसाई का महल फ्रांस की धरती पर उतना ही भारी बोझ था जितना राजा के पिरामिड मिस्र पर । 'चिओप' भी ठीक इसी तरह कह सकता था कि 'मैं ही राज्य हूँ' और द्वितीय पेपी कह सकता था 'मेरे बाद प्रलय' । किन्तु आधुनिक पश्चिमी संसार में जो सबसे मनोरंजन उदाहरण राजसत्ता की पूजा का है उस पर ऐतिहासिक फैसला अभी नहीं सुनाया जा सकता ।

वेस्टमिनिस्टर की 'संसदों की जननी' को जो देव-तुल्य माना जाता है उसमें पूजा का पात्र व्यक्ति नहीं, एक समिति है । समितियों की इस असाध्य नीरसता ने, जिद्दी तथ्यात्मक आधुनिक अंग्रेजी सामाजिक परम्परा से सहयोग कर लिया है, इस कारण वहाँ के संसद की भक्ति उचित सीमा में है और कोई अंग्रेज जो सन् १९३८ में संसार की ओर देखे तो कह सकता है कि मेरी समुचित भक्ति का जो अपने राजनीतिक देवता के प्रति है, समुचित पुरस्कार मिल रहा है । वह कहेगा कि मेरे देश की भक्ति जो 'संसदों की जननी' के प्रति है, क्या उन पड़ोसियों से अच्छी नहीं है जो दूसरे देवताओं के पीछे दौड़े हैं ? क्या महाद्वीप की उन पथभ्रष्ट दस जातियों को शान्ति अथवा सुख मिला जो विदेशी डूचे, फ्यूरार अथवा कमिसरों की विह्वल चाटुकारिता में दौड़ रहे थे ? किन्तु साथ ही उसे यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि इधर हाल में संसदीय शासन की प्राचीन संकीर्ण (इनसुलर) संस्था से महाद्वीप पर जो संस्थाएँ उत्पन्न हुई हैं वे अस्वस्थ बच्चे की भाँति हैं और मानव की जीवित पीढ़ी के अ-ब्रिटिश बहुसंख्यक जनता को उनसे त्राण नहीं मिला है और युद्ध-जनित तानाशाही से वे रक्षा नहीं कर सकी हैं ।

शायद सत्य यह है कि वेस्टमिनिस्टर की संसद की वही विशेषताएँ जिनके कारण अंग्रेज उसे प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते हैं, रुकावटें भी हैं जिनके कारण यह प्राचीन संस्था संसार के राजनीतिक रोगों की औषधि नहीं बन सकी । सम्भवतः उस नियम के अनुसार जिसके सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं कि जो एक चुनौती का सफलतापूर्वक सामना कर लेते हैं दूसरी चुनौती का सामना करने में सफल नहीं होते—वेस्टमिनिस्टर की संसद मध्ययुग में पूर्ण सफल हुई क्योंकि उसने आधुनिक (अथवा इसके पहले के आधुनिक) युग की जो अभी समाप्त हुआ है, कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की । परन्तु उत्तर-आधुनिक युग की चुनौती का जो इस समय हमारे सामने है, नवीन मौलिक परिवर्तन करके, सामना करने में असमर्थ है ।

यदि हम संसद (ब्रिटिश) की रचना की ओर ध्यान दें तो मालूम होगा कि वह मुख्यतः स्थानीय निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधियों की सभा है । जिस काल और जिस स्थान पर वह बनी उससे यही आशा की जाती है । क्योंकि मध्ययुगीन पश्चिमी संसार के राज्य ग्राम-समुदायों के समूह थे जिनके बीच-बीच छोटे-छोटे नगर थे । ऐसे तन्त्र में सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यों के लिए पड़ोसियों का संगठन ही होता था, और इस प्रकार के बने समाज में भौगोलिक समूह ही राजनीतिक संगठन की स्वाभाविक इकाई बन सकता था । किन्तु ये संसदीय प्रतिनिधित्व की मध्ययुगीन भित्तियाँ उद्योगवाद के आक्रमण से ढह गयीं । आज स्थानीय शृंखलाएँ राजनीतिक तथा और कार्यों के लिए महत्त्वहीन हो गयी हैं । आज यदि हम अंग्रेजी मतदाताओं से पूछें कि तुम्हारा पड़ोसी कौन है तो सम्भवतः उसका उत्तर होगा, 'मेरा साथी रेलवे-कर्मचारी या मेरा साथी खनिक चाहे वह लैंड्स एण्ड सै वान आव ग्रोट्स के बीच कहीं रहता हो । आज वास्तविक निर्वाचन क्षेत्र स्थानीय न होकर व्यावसायिक हो गया है । किन्तु प्रतिनिधित्व का यह आधार

वैधानिक 'अज्ञात देश' है और 'संसदों की जननी' अपने सुखी जरा जीवन में उसका पता लगाने की आवश्यकता नहीं समझती।

बीसवीं शती की संसद का प्रशंसक इसका चलता जवाब दे सकता है। अमूर्त रूप से वह कह सकता है कि बीसवीं शती के समाज के लिए तेरहवीं शती की निर्वाचन प्रणाली अनुपयुक्त है। किन्तु साथ ही यह भी कहेगा कि सिद्धान्त रूप से जो अनुपयुक्त है वह व्यवहार में ठीक चल रही है। वह कहेगा, 'हम अंग्रेजों ने जिन संस्थाओं का निर्माण किया है उनमें हम किसी भी अवस्था में काम कर सकते हैं।' रह गया विदेशियों के लिए फिर तो—और वह उदासीनता प्रकट करेगा।

हो सकता है कि अपने राजनीतिक उत्तराधिकार के विश्वास का वह सदा समर्थन करता रहे कि 'वे छोटे लोग जिनके पास विधान नहीं था' आश्चर्य करेंगे क्योंकि उन्होंने जिस गोली को सर्वोत्तम औषधि समझकर निगल लिया था, घोर अपच होने के कारण उसका तिरस्कार कर दिया। इसी उदाहरण के अनुसार यह इंग्लैंड के लिए सम्भव नहीं होगा कि जिस सत्रहवीं शती के कौशल से उसे सफलता मिली उसके अनुसार फिर वह कोई नयी राजनीतिक संस्था नहीं बना सकता जिसकी इस नये युग में आवश्यकता है। जब कोई नयी चीज बनानी होती है तो उसके दो ही ढंग हैं—सर्जन अथवा अनुकरण। अनुकरण तब तक नहीं हो सकता जब तक किसी ने सर्जन न किया हो जिसका अनुकरण किया जा सके। पश्चिम के इतिहास के चौथे अध्याय में, जो हमारे युग का अध्याय है—कौन नया राजनीतिक सर्जनकर्ता होगा? आज हमें इसका कोई प्रमाण नहीं मिल रहा है कि कोई इस पद के योग्य है, किन्तु हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वह नवीन राजनीतिक सर्जक 'संसद की जननी' का कोई उपासक नहीं होगा।

संस्था के देवता के सर्वेक्षण को, हम जातियों, वर्गों और व्यवसायों की मूर्तिपूजा पर विचार करके, समाप्त करेंगे। हमारे पास इसके लिए सामग्री है। अविकसित सभ्यताओं का अध्ययन करते समय हमें दो ऐसे समाज मिले—स्पार्टन और उस्मानली वर्ग—जिसके भवन का मूल जाति था जो वास्तव में सामूहिक देवता और देवता रूप में लेविआथन[1] था। यदि किसी जाति की भक्ति से सभ्यता का विकास रुक सकता है तो उससे उसका विनाश भी हो सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यदि हम मिस्री समाज का अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि दैवी राज्य ही भक्ति का भयावह स्वप्न नहीं था, जिसका बोझ 'पुराने राज्य' के मिस्री किसानों की पीठ पर पड़ा था, शिक्षित वर्ग की नौकरशाही का भी बोझ उन्हें वहन करना पड़ता था।

सच्ची बात यह है कि दैवी राज्य के लिए शिक्षित सचिवालय आवश्यक है। इसकी सहायता के बिना राज्य का दैवी रूप सिंहासन पर सुरक्षित नहीं रह सकता। मिस्री शिक्षित वर्ग ही गद्दी के पीछे की शक्ति था और समय के हिसाब से समय से पहले था। वे जानते थे कि हम अनिवार्य हैं। इस ज्ञान का उन्होंने फायदा उठाया और प्रजा के कन्धों पर ढोने के लिए यह बोझ रखा। मिस्री व्यास इन बोझों को उठाने के लिए 'एक उँगली भी नहीं लगाते थे।' मिस्री इतिहास के प्रत्येक युग का यही विषय है कि शिक्षित वर्ग को साधारण किसानों के ऊपर विशेषाधिकार प्राप्त है और मिस्री नौकरशाही का यशगान है। 'दि इन्स्ट्रक्शन आव दुआफ' पुस्तक में यह बात

---

१. एक विशालकाय जीव।

जोरों से लिखी गयी है, यह रचना मिस्री संकट के काल की है। हजार साल बाद की उसकी प्रतियाँ प्राप्त हैं जब 'नये साम्राज्य' में स्कूल के विद्यार्थी उसकी लिपि उतारने का अभ्यास किया करते थे। यह 'शिक्षा दुआफ ने अपने पुत्र पेपी के लिए उस समय लिखी थी जब वह जहाज से 'रेजिडेन्स' की ओर जा रहा था जहाँ वह अपने पुत्र को मजिस्ट्रेटों के लड़कों के साथ पढ़ने के लिए ले जा रहा था' विदाई के समय अपने पुत्र को महत्त्वाकांक्षी पिता की यह शिक्षा है :

'मैंने उसे देखा है जो पीटा गया है, जो पीटा गया है, तुम अपना मन पुस्तकों में लगाना। मैंने बेगार से मुक्त होने वालों को देखा है, किन्तु याद रखो पुस्तकों से बढ़कर कुछ नहीं है। जो शिल्पी छेनी से काम करता है वह उससे अधिक तक जीता है जो धरती खोदता है। संगतराश को हर प्रकार के कठोर पत्थर से काम करना पड़ता है। जब उसका कार्य समाप्त हो जाता है उसकी बाहें शिथिल पड़ जाती हैं और वह थक जाता है। खेत में काम करने वाले का हिसाब सदा बना रहता है.., वह जितना थक जाता है उसका वर्णन नहीं हो सकता। अपने करघे पर जुलाहे को किसी स्त्री से भी अधिक परिश्रम करना पड़ता है। उसकी जाँघें कमर से सटी रहती हैं और वह साँस नहीं ले सकता। हम यह भी बतला दें कि मछुए को क्या करना पड़ता है। क्या उसे नदियों में नहीं काम करना पड़ता जिसमें घड़ियाल भरे रहते हैं। देखो कोई व्यवसाय ऐसा नहीं है जिसमें कोई निर्देशक न हो। केवल लिपिक का कोई निर्देशक नहीं है। वह स्वयं अपना निर्देशक है....'

सुदूर पूर्व संसार में मिस्री 'लिपिक शाही' के ही समान मंदारिन की भयावह संस्था थी जिसे सुदूर पूर्वी समाज ने अपने पूर्वजों के अन्तिम युग में उत्तराधिकार में पाया था। कनफ्यूशियस वाले इस शिक्षित वर्ग ने लाखों श्रमिकों के परिश्रम के बोझ को हल्का करने के लिए उँगली न उठाने के लिए अपने नखों को इतना बढ़ा लिया था कि लिखने के ब्रुश के प्रयोग करने के अतिरिक्त उनका हाथ और कोई कार्य नहीं कर सकता था। और उत्तर-पूर्वी इतिहास में इतना परिवर्तन होने पर तथा इतने अवसर आने पर भी उन्होंने अपने मिस्री सहकर्मियों के समान अपनी दुखदायी स्थिति को स्थिर रखा। पश्चिमी संस्कृति के संघात से भी वह अपने स्थान से हटा नहीं। अब कनफ्यूशियाई क्लासिक्स की परीक्षाएँ नहीं होतीं किन्तु शिक्षित वर्ग किसानों पर शिकागो विश्वविद्यालय अथवा 'लन्दन-स्कूल आव एकनामिक्स एण्ड पालिटिक्स' की डिगरी दिखाकर अपना रोब जमाता है।

मिस्री इतिहास में राजसत्ता के मानवीकरण से—यद्यपि बहुत विलम्ब से—दीर्घकाल पीड़ित जनता के दुःखों में जो कमी हुई उसका सन्तुलन अनेक वर्गजनित पीड़ाओं से हुआ। नौकरशाही का बोझ वहन करना मानों पर्याप्त नहीं समझा गया, नये साम्राज्य में शक्तिशाली सर्व-मिस्री संघ के रूप में पुरोहितवाद का संगठन किया गया और सम्राट् तोतमिज्र तृतीय (१४९०-१४३६ ई० पू०) ने थीबिस में अमोन-रे को उसका अध्यक्ष बनाया। इसके बाद से मिस्री मंदारिन के साथ मिस्री ब्राह्मण भी जनता (रूपी घोड़े) की गर्दन पर सवार हो गया। उसके बाद यह मिस्री सरकस का घोड़ा जिसकी रीढ़ टूट चुकी थी अपने चिरन्तन चक्र में ठोकरें खाता रहा और फिर लिपिक तथा पुरोहित के पीछे एक शानदार सैनिक भी तीसरा सवार हो गया।

जिस प्रकार पूर्वी रोमन साम्राज्य अपने विकास काल में सैन्यवादी नहीं था उसी प्रकार मिस्री समाज अपने स्वाभाविक जीवन काल में सैन्यवाद से अलग था। और जब हाइक्सो

राजाओं से मुठभेड़ होने लगी तब झखमार कर सैन्यवाद की ओर मुड़ना पड़ा जिस प्रकार पूर्वी रोमन साम्राज्य को बुलगारिया से लड़ाई करने पर विवश होने पर सैन्यवादी होना पड़ा। अठारहवीं पीढ़ी के सम्राट् हाइक्सो लोगों को मिस्री संसार की सीमा से बाहर निकाल कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए। आत्मरक्षा से आगे बढ़कर वे आक्रमणकारी हो गये और एशिया में मिस्री साम्राज्य बनाया। इस गैर जिम्मेदार कार्य में बढ़ जाना तो सरल था, लौटना कठिन था। और जब धारा पलटी तब उन्नीसवीं पीढ़ी के सम्राटों ने देखा कि हमारे विरुद्ध धारा प्रवाहित होने लगी तो मिस्र की ही एकता स्थिर रखने के लिए उन्हे मिस्री समाज की शीघ्र क्षीण होती हुई शक्ति को दृढ़ करने के लिए विवश होना पड़ा। बीसवीं पीढ़ी के राज्य में पुरानी और जर्जर ठठरी पर फालिज गिर पड़ा। उत्तर-मिनोई जनरेला के आवेग से यूरोपीय, अफ्रीकी तथा एशियाई बर्बरों ने मिलकर जो आक्रमण किया उसे विफल करने में इस अन्तिम असाधारण शौर्य के रूप में मिस्र ने उसका मूल्य चुकाया। जब (मिस्री घोड़े का) शरीर धराशायी हो गया, वहाँ का शिक्षित वर्ग और पुरोहित अभी तक जीन पर बैठे हुए थे और गिरने से उनकी हड्डियाँ नहीं टूटी थीं। इनके साथ वही लिबियाई आक्रामक का पौत्र आ मिला, और मिस्री संसार मे उसने भाग्य की परीक्षा करने वाले सैनिक की भाँति पुन: प्रवेश किया। उसके दादा को इसी मिस्र की सीमा से उसी देश की सेना ने अपने अपूर्व बल से निकाल बाहर किया था। ग्यारहवीं शती की धन लोभी सेनाओं से जिस सैनिक वर्ग का जन्म हुआ था वह हजार वर्षों बाद तक मिस्री समाज पर सवारी करता रहा। यह वर्ग रणक्षेत्र में भले ही जैनिसारियों और स्पाटिमेंटो की अपेक्षा अपने वैरियों से कम शक्तिशाली रहा हो, किन्तु अपने देश में किसानों को अपने पाँव तले निश्चित रूप से दाबे रही।

(५) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी तकनीक पर अंधविश्वास

मछली, सरीसृप और स्तनधारी जीव

अब हम यदि तकनीकों पर अंधविश्वास के सम्बन्ध में विचार करें, तो हमें उन उदाहरणों को स्मरण करना पड़ेगा जिन्हें हम देख चुके हैं और जिन्होंने कठोरतम दण्ड भोगा है। उसमानिया तथा स्पार्टन सामाजिक प्रणाली में मूल तकनीक मानव रूपी पशुओं का गड़ेरिया बनना अथवा मानव रूपी पशुओं का शिकार खेलना था, जिन पर वहाँ के शासकों का अन्धविश्वास था और साथ ही साथ जिन संस्थाओं के द्वारा ये क्रियाएँ होती थीं, उन पर भी उनकी भक्ति थी। और जब हम उन सभ्यताओं से जो मानवी चुनौती के कारण अविकसित रह गयीं, उन सभ्यताओं की ओर देखते हैं जो भौतिक परिस्थितियों की चुनौती के कारण विकसित रही तो हम देखते हैं कि उनकी विपत्ति का कारण तकनीक पर अन्धविश्वसनीय भक्ति ही है। खानाबदोश और एसकिमो की सभ्यता इस कारण विकसित न हो सकी कि उन्होंने शिकार तथा पशुपालन के तकनीक पर अपनी सब शक्तियों को केन्द्रीभूत कर दिया। उनके एकांगी जीवन ने पशु की भाँति जीवन-निर्वाह करने को बाध्य किया, जिसके कारण मानवी बहुमुखी प्रतिभा का लोप हो गया। और यदि हम इस धरती के मनुष्य के जन्म के पहले के इतिहास को देखें तो इस नियम के अनेक उदाहरण मिलेंगे।

इस नियम को एक आधुनिक पश्चिमी विद्वान् ने, जिसने अमानवी तथा मानवी जगत् का इस विषय का तुलनात्मक अध्ययन किया है, इन शब्दों में वर्णन किया है :

"जीवन सागर से आरम्भ होता है। वहाँ वह असाधारण दक्षता प्राप्त करता है। मछलियाँ ऐसे रूपों में विकसित हो जाती हैं जो बहुत सफल होती हैं (उदाहरण के लिए जैसे शाक) कि आज तक बिना परिवर्तन के उनका अस्तित्व है। किन्तु आरोही (एसेंडिंग) विकास इस दिशा में नहीं है। विकास में डाक्टर हेंग का सूत्र सम्भवतः ठीक है : 'सफलता के समान कोई विफलता नहीं है।' जो जीवन अपने वातावरण के नितान्त अनुकूल बन गया है, जिस जन्तु ने अपनी सारी क्षमता तथा जीवनी शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित करके समाप्त कर दी है उसके पास मूल (रेडिकल) परिवर्तन के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। वह युग-युगों तक अपने प्रचलित तथा अभ्यासानुरूप जीवन का सामना करने में अपनी शक्ति को कम-से-कम व्यय करने लगता है। अन्त में यह होता है कि बिना चेष्टा किये स्वाभाविक ढंग से वह सब कुछ कर लेता है जो उसे जीवित रहने के लिए आवश्यक होता है। उस विशेष क्षेत्र में सभी प्रतिद्वंद्वियों को वह पराजित कर सकता है। किन्तु इसी के साथ यदि क्षेत्र में परिवर्तन हो जाय तो वह विलुप्त हो जाता है। दक्षता की यही सफलता है जिसके कारण जातियों की विशाल संख्या लोप हो गयी। जल-वायु में परिवर्तन हो गया। उन जीवों में अपनी सारी जीवन शक्तियाँ, जहाँ वे थे उसके अनुकूल जीवित रहने में व्यय कर डालीं। मूर्ख कुमारियों के समान उनके पास साधन शेष नहीं रह सका कि वातावरण के अनुकूल अपने को बना सकें। वे सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके और लुप्त हो गये।"[1]

मछलियों की यह पूर्ण घातक सफलता जिसे उन्होंने सागरी जीवन में प्राप्त की और धरती पर के जीवन में नहीं, उसका विवरण इसी लेखक ने इसी सन्दर्भ में बताया है : 'जिस समय जीवन समुद्रों तक ही सीमित था, मछलियों का विकास हो रहा था। उनके शरीर इस प्रकार बनने लगे कि एक रीढ़ बना और इस प्रकार उस समय के सबसे विकसित कशेरुकों (वर्टिब्रेट) में उनका स्थान था। फिर सिर की सहायता के लिए रीढ़ से दोनों ओर टोह लेने वाले पंखे उगे, जो समय पाकर अग्र-पंख (फोर-फिन) हुए। शार्क में और प्रायः सभी मछलियों में इसी टोह लेने वालों ने विशेषता प्राप्त की और वे टटोलने वाले न रहकर खेने वाले चप्पे (पैड्ल) हो गये। और ये शिकारों के सामने पहुँचने के लिए अद्भुत तथा दक्ष पंजे बन गये। शीघ्र प्रतिक्रिया ही इसका कार्य हो गया, इसका कार्य अब धीरे-धीरे का नहीं रह गया। अब यह चप्पे टटोलने वाले, परीक्षा करने वाले, खोज करने वाले नहीं रह गये, केवल पानी में गतिमान् होने की दक्षता ही पा सके और किसी काम के नहीं रह गये। ऐसा जान पड़ता है कि मत्स्य-जीवन के और रीढ़ वाले जीवन के पहले जीव छिछले गर्म तालों में रहते होंगे और तल से इनका सम्पर्क रहा होगा जिस प्रकार आज गरनेट (एक प्रकार की मछली) अपने टटोलने वाले अवयव की सहायता से तल से सम्पर्क रखती है। परन्तु बिना पूर्व-विचार किये गति ही सब कुछ हो गयी, विशेषता के कारण मछलियों को तल छोड़कर जल में ही आना पड़ा और तल से तथा ठोस धरती से सब प्रकार का सम्पर्क जाता रहा। जल ही उनके लिए आधार रह गया। इसका अर्थ यह हुआ कि नयी परिस्थितियों से किसी प्रकार की प्रतिक्रिया बहुत सीमित हो गयी····'इसलिए वे ऊँची जाति की मछलियाँ, जिनसे और उच्च प्राणियों का विकास हुआ होगा, ऐसे जीव रहे होंगे जिन्होंने इस प्रकार के पंखों

---

[1] जैराल्ड हर्ड : द सोर्स आव सिविलिजेशन, पृ० ६६–७।

(फिन) को विशेष रूप से विकसित नहीं किया होगा । पहली बात यह है कि वह ऐसा प्राणी र होगा जिसने तल से अपना सम्पर्क रखा होगा और उन मछलियों की अपेक्षा उद्दीपन (स्टिमु लेशन) का अनेक ढंग से प्रभाव पड़ा होगा, जिनका ठोस पृथ्वी से सम्पर्क छूट गया। दूसरी बात यह है कि इसी कारण वह ऐसा प्राणी रहा होगा जो छिछले-जल में रहता होगा और जिसने अपने अग्र अवयव से यह सम्पर्क बनाये रखा होगा । क्योंकि उनके चप्पे पानी हटाने वाले अवयवों की पूर्ण विशेषता नहीं प्राप्त कर सके इसलिए ये अंग साधारणत: 'अक्षम' टोह लेने वाले ढंग के रह गये । ऐसे प्राणी की ठठरी मिली है जिनके अग्र-अवयव भद्दे हाथों की भाँति हैं और पंखे के रूप में नहीं हैं । ऐसा जान पड़ता है कि इन्हीं अवयवों के सहारे छिछले तालों से वे जलमय ट तक पहुँचे । गहरा सागर छूट गया । धरती पर इनकी पहुँच हुई और जल-स्थलीय एम्फीबियन प्राणी का आविर्भाव हुआ ।'[1] चतुर तथा निश्चित मछलियों से प्रतिद्वन्द्विता में इन टटोलने वाले जल-स्थलीयों की जो विजय हुई उसमें हम ऐसे प्राचीन नाटक का खेल देख रहे हैं जो अनेक बार विभिन्न अभिनेताओं द्वारा खेला गया है । दूसरे अभिनय में, जो हमारा ध्यान आकृष्ट करता है, हम देखेंगे कि मछली का अभिनय जल-स्थलीयों की भीषण सन्तान सरीसृप (रेपटाइल) के उप ने किया । और जल-स्थलीयों का निजी अभिनय उन लोगों के सिर पड़ा जो उन स्तनपायी प्राणियों के पूर्वज हैं, जिनमें मनुष्य की आत्मा अवतरित हुई । प्रारम्भिक स्तनपायी दुर्बल और छोटे प्राणी थे जो अप्रत्याशित रूप में धरती पर आये । क्योंकि महान् सरीसृपों ने जो पहले सृष्टि के अधिकारी थे इसे त्याग किया था । एसकिमो और खानाबदोशों की भाँति मेसोजोइक काल के सरीसृप ऐसे विजेता थे जिनकी विजय अति-विशेषता की अन्धी गली में खो गयी ।

'सरीसृप का एकाएक अन्त हो जाने का जो आभास मिलता है वह धरती के सारे इतिहास में मनुष्य के आगमन से पहले सबसे विचित्र क्रान्ति है । सम्भवत: इसका सम्बन्ध उस काल से है जब हल्के गर्म वातावरण का बहुत बड़ा युग समाप्त हो गया और कठोर शीतकाल का युग आया। इस युग में ग्रीष्म-ऋतु थोड़े समय की होती थी किन्तु ताप अधिक था । मेसोजोइक काल[3] के पशु तथा वनस्पति हल्की गर्म परिस्थितियों के अनुकूल बने थे और ठंडक का सामना नहीं कर सकते थे । इसके विपरीत नये प्राणी ताप और शीत के अधिक अन्तर को सहन कर सकते थे... 'ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है. . . कि स्तनपायियों में और कम योग्य सरीसृपों में सीधे प्रतिद्वन्द्विता हुई हो. . . परामेसोजोइक काल की बहुत-सी जबड़े की हड्डियाँ मिली हैं जो स्तनपायियों की हैं। किन्तु कोई टुकड़ा, कोई ऐसी हड्डी नहीं मिली है जिससे यह संकेत मिले कि ऐसा मेसोजोइक स्तनपायी रहा हो जिसने डाइनासोर का सामना किया हो. . . (वे) छोटे-छोटे प्रभावहीन चूहों के आकार के जीव रहे होंगे ।'[4]

श्री वेल्स ने जो तर्क उपस्थित किया है वह यहाँ तक साधारणत: स्वीकार किया जाता है।

---

१. जैराल्ड हर्ड : द सोर्स आव सिविलिजेशन, पृ० ६७–६ ।
२. एच० जी० वेल्स : द आउट लाइन आव हिस्ट्री, पृ० २२–४ ।
३. विकास के इतिहास में मध्यकाल, अनु०
४. एच० जी० वेल्स : दि आउट लाइन आव हिस्ट्री, पृ० २२–४ ।

सरीसृपों के स्थान को स्तनपायियों ने ग्रहण कर लिया क्योंकि उन भारी विकटाकार जीवों में यह क्षमता नहीं रह गयी कि नये वातावरण के अनुकूल अपने को बना सकें। परन्तु जिस भीषण परिस्थिति में इन सरीसृपों का विनाश हुआ उसमें स्तनपायी किस प्रकार बच गये। इस विशेष मनोरंजक प्रश्न पर इन दो लेखकों का, जिनका विवरण हमने दिया है, मतभेद है। श्री वेल्स के अनुसार आरम्भिक स्तनपायी इसलिए जीवित रह गये कि उनके शरीर पर बाल थे जिससे आने वाली शीत से उनकी रक्षा हुई। यदि इतना ही तर्क है तो हम इससे अधिक कुछ नहीं जान सकते कि विशेष परिस्थितियों में लोम (फर) शल्क (स्केल) से अधिक रक्षा करने वाला कवच है। किन्तु श्री हर्ड का कहना है कि जिस कवच ने स्तनपायियों की रक्षा की वह शारीरिक नहीं था, मानसिक था। इस मानसिक रक्षा में शक्ति इसलिए थी कि उधर मानसिक अशक्ति थी। वास्तव में यह मानव पूर्व युग का उदाहरण है जिसमें विकास का वह सिद्धान्त है जिसे हमने अलौकिकीकरण कहा है।

मानवों के आने के पहले विशाल सरीसृपों का आशातीत रूप से ह्रास हो चुका था.... उनका जीवन छोटे चलते-फिरते प्राणियों से आरम्भ हुआ था। वह इतने भीमकाय हो गये कि वे धरती के लौह-पोत कठिनाई से चल सकते थे.... मस्तिष्क का प्रायः उनमें अभाव हो गया। उनके सिर केवल परिदर्शक (पेरिस्कोप) साँस लेने की नली, और चिमटे रह गये। 'इसी बीच जैसे वे मोटे और कठोर शरीर के हो रहे थे, जिसके कारण उनका विनाश होने वाला था, एक ऐसे प्राणी का निर्माण हो रहा था जो उस समय जीवन की सीमा निर्धारित थी उसे फाँद जाने वाला था और नयी शक्ति और नयी चेतना का जीवन आरम्भ करने वाला था। इससे अधिक उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। जीव का विकास संवेदनशीलता और चेतना से होता है; रक्षा नहीं अरक्षा से; नंगे रहने से, शक्ति से नहीं, आकार से नहीं, छोटे होने से। स्तनपायियों के पूर्वज चूहों के समान छोटे जीव थे। जिस संसार में भीषणकाय जन्तु का साम्राज्य रहा हो उसका भविष्य ऐसे प्राणियों के हाथ में आया जिन्होंने अपना समय दूसरों की गति-विधि देखने में बिताया और दूसरों को राह दे दी। वह अरक्षित था, उसके शरीर पर शल्क नहीं, लोम थे। वह विशेषित (स्पेशलाइज्ड) नहीं था, उसके अग्र-अवयव मे चेतना थी और निश्चय ही चेहरे और मुँह पर शृंग के समान जो लम्बे बाल थे उनसे सदा उद्दीपन प्राप्त होता था। कानों और आँखों का विशेष रूप से विकास हुआ था। वह समतापी (वार्म-ब्लडेड) हो गया, इसलिए कि ठंड में बराबर उसमें चेतनता रहे जबकि सरीसृप बेहोश हो जाते हैं। इस प्रकार उसकी चेतना को उत्तेजना मिली और इसका विकास हुआ। उसके सामने अनेक प्रकार के उद्दीपन आये और उसने अनेक ढंग से सामना किया क्योंकि यह प्राणी नया था और इसलिए सामना करने का एक ढंग नहीं, कई थे और कोई भी निश्चित ढंग से स्थायी न थे।'[१]

यदि यह हमारे पूर्वज का चित्र है तो हमें इससे सहमत होना चाहिए कि हमें उसका गर्व है और यह कि हम उसके योग्य नहीं हैं।

उद्योग में प्रतिशोध

सौ बरस पहले ब्रिटेन का यह दावा ही नहीं था, वह सचमुच 'संसार की कर्मशाला' (वर्क-

---

[१] जेरल्ड हर्ड : द सोर्स आव सिविलिजेशन, पृ० ७१-२।

शाप) था। आज वह संसार की अनेक कर्मशालाओं का प्रतिद्वन्द्वी है और उसका अपना हिस्सा बहुत दिनों से छोटा, अपेक्षाकृत छोटा होता जा रहा है। इस विषय पर कि 'क्या ब्रिटेन समाप्त हो गया' बहुत लोगों ने लिखा है और अनेक उत्तर मिले हैं। सम्भवत: सब बातों को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि विगत सत्तर वर्षों में हमने उससे अधिक किया जितनी आशा की जाती थी। यद्यपि निराशावादियों के और भर्त्सना करने वाले भविष्य वक्ताओं के लिए, जिसका वर्णन सेमुएल बटलर ने एक उलटे वाक्य से किया है काफी गुंजाइश है।[1] किन्तु कोई एक बात हम ले लें जिसमें हमारा बहुत दोष है, तो हम अपने उद्योग के नेताओं को बतायेंगे जो उन्हीं दकियानूसी तकनीकों की पूजा अभी तक करते हैं जिनसे उनके पूर्वजों ने सम्पत्ति अर्जित की।

इससे अधिक शिक्षाप्रद उदाहरण क्योंकि वह व्यापक नहीं है, संयुक्त राज्य का है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि उन्नीसवीं शती के मध्य में अमरीकियों ने अपने औद्योगिक आविष्कारों की विभिन्नता और कौशल में सबको पीछे कर दिया था और इन आविष्कारों का उपयोग व्यावहारिक रूप से किया था। सीने की मशीन, टाइप रायटर, जूता सीने की मशीन, मैककारनिक की खेत काटने की मशीन, कुछ यन्त्र है जो 'यांकी कल्पना' के फल हैं और हमें पहले ध्यान में आते हैं। किन्तु आविष्कार ऐसा है जिसके प्रयोग में ब्रिटिशों की अपेक्षा अमरीकी पीछे रह गये। यह पिछड़ापन और भी विचित्र जान पड़ता है, क्योंकि जिसकी अमरीकियों ने उपेक्षा की वह इन्हीं के आविष्कार का सुधार था अर्थात् भाप का जहाज। अमरीका के चप्पू-स्टीमर यातायात के लिए बहुत लाभदायक थे क्योंकि राज्य की सीमा बहुत बढ़ रही थी और देश के अन्दर की नदियों में, जिनकी अमरीका में बहुतायत है, वे हितकर सिद्ध हुए। इस सफलता का सीधा परिणाम यह हुआ कि स्क्रू से चलने वाले (स्क्रू प्रोकेलर) धूमपोतों के संचालन में जो सामुद्रिक नौ चालन के लिए अधिक उत्तम था, अमरीकी ब्रिटिशों की अपेक्षा देर में आये। क्योंकि वे पुराने अस्थायी तकनीक के प्रति अधिक भक्त थे।

युद्ध का प्रतिशोध

सैनिक इतिहास में और प्राणि-इतिहास में जो साम्य है अर्थात् छोटे कोमल लोम वाले जन्तु और भारी कवच वाले सरीसृप में जो प्रतिद्वन्द्विता है वह डेविड और गोलियथ के द्वन्द्व-युद्ध की कथा में अंकित है।

इस घातक दिन के पहले जिस दिन गोलियथ ने इसरायल की सेना को ललकारा था, उसने अपने भाले से अनेक विजय प्राप्त की थी। उसके भाले का डंडा जुलाहे के तीर (बीम) के समान था और उसका सिरा लोहे का छः सौ शैकेल[2] का था वैरी के अस्त्रों से वह अपने को पूर्ण रूप से सुरक्षित समझता था क्योंकि उसका कवच, शिरस्त्राण, वक्षत्राण, ढाल तथा पिंडलियों के रक्षक से बना था। दूसरे किसी शस्त्र-सज्जा की वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। और वह समझता था कि इस प्रकार की शस्त्र-सज्जा से मैं अजेय हूँ। उसे विश्वास था कि कोई इसरायली जो मुझसे लड़ने का दुस्साहस करेगा वह भी इसी प्रकार सिर से पाँव तक कवच से ढका रहेगा।

---

[1] अपने भविष्य वक्ताओं को छोड़कर और सब प्रकार से किसी देश का सम्मान होता है।

[2] यहूदियों की प्राचीन तोल। एक शैकेल आध सेर के लगभग होता था।—अनु०

और किसी भी प्रतिद्वन्द्वी का कवच मेरे कवच से हीन होगा। ये दोनों विचार गोलियथ के मन में इतने जम गये थे कि जब डेविड उसके सामने दौड़ा आया और उसके शरीर पर कोई कवच नहीं था और हाथ में केवल एक डंडा था तो गोलियथ डरा नहीं, उसे अपमानजनित क्रोध हुआ और वह कहता है—'क्या मैं कुत्ता हूँ—जो तू डंडा लिये आ रहा है ?' गोलियथ को यह सन्देह नहीं हुआ कि इस युवक की अशिष्टता केवल सोची-समझी सैनिक चाल है। वह यह नहीं जानता था कि उसके ही समान डेविड ने सोच लिया था कि गोलियथ की सैन्य-सज्जा के सम्मुख मैं कभी जीत नहीं सकता और इसलिए जिस कवच को पहनने के लिए साल ने उससे जिद्द किया था, उसने उसे नहीं पहना। गोलियथ ने उस झोले (स्लिंग) की ओर ध्यान नहीं दिया जो डेविड लटकाये था। न जाने क्या दुष्टता उस गड़ेरिये के झोले में छिपी हो। इस प्रकार यह अभागा फिलिस्तीन शान से अपने विनाश की ओर चला गया—किन्तु ऐतिहासिक तथ्य यह है कि उत्तर-मिनोई जनरेला का प्रत्येक हापलाइट[1]—गोथ का गोलियथ या ट्राय का हेक्टर—डेविड के झोले से या फिलावलेटीज के धनुष से नहीं हारा वल्कि मरमाइडनों[2] के व्यूह से। इनका विशाल समूह था जिसमें सैनिक कन्धे से कन्धा और ढाल से ढाल मिलाकर खड़े थे।[3] व्यूह का प्रत्येक सैनिक अपनी सैन्य-सज्जा में गोलियथ या हेक्टर के समान था। वह भावना में होमरी सैनिक के विपरीत था क्योंकि व्यूह का मूल सैनिक मर्यादायुक्त था जिसके कारण व्यक्तिगत लड़ने वाले मर्यादायुक्त सेना में परिवर्तित हो गये थे। इसके नियमबद्ध विकास से उसका दस गुना कार्य हो सकता था जितना उतने ही उसी प्रकार अस्त्र-शस्त्र सज्जित वह सेना कर सकती थी जिनमें आपसमें समन्वय नहीं था।

इस सैनिक तकनीक का कुछ पूर्वाभास हमें ईलियड में मिलता है। इसी तकनीक का वर्णन इतिहास में टाइरटिमस की कविता द्वारा मिलता है। इसी तकनीक के कारण दूसरे स्पार्टा-मेसिनियाई युद्ध में स्पार्टा की सामाजिक सर्वनाशी विजय हुई। किन्तु इस विजय से कहानी समाप्त नहीं होती है। अपने सब विरोधियों को रणक्षेत्र से हटाकर स्पार्टा का व्यूह कुछ दिनों के लिए आराम करने लगा और चौथी शती ई० पू० में अपमान के साथ उसका विनाश हुआ। पहले एथेनी पेल्टास्टों[4] द्वारा जो एक प्रकार डेविडों के समूह थे, जिसका सामना स्पार्टा के गोलियथ रूपी सैनिक नहीं कर सकते थे—और फिर थीवी सेना के समरतन्त्र के नये तकनीक से। किन्तु एथेनी और थीबी तकनीक को एक क्षण में ३३८ ई० पू० में मैसिडोनी सेना ने परास्त और समय के प्रतिकूल कर दिया। मैसिडोनी तकनीक यह थी कि व्यूह के प्रत्येक उच्च श्रेणी के प्रशिक्षित पैदल सैनिक को घुड़सवार के साथ लगा दिया गया था और इनकी एक सेना बना दी गयी थी।

---

[1] प्राचीन यूनान का भारी अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित सैनिक। —अनु०

[2] प्राचीन यूनान की एक जाति जो ट्राय के युद्ध में लड़ी थी। इसकी मर्यादा बहुत प्रशंसनीय थी।—अनु०

[3] ईलियड—१६—२, २११—१७।

[4] यूनानी पैदल सैनिक जिनके हाथों में भाला रहता था और वैरी पर फेकनें के लिए पत्थर के टुकड़े।—अनु०

मैसिडोनी युद्ध के संगठन की मूल दक्षता सिकन्दर की उस विजय से प्रमाणित होती है जो उसने एकेमीनियाई साम्राज्य पर की। और मैसिडोनी सैनिक व्यूह रचना एक सौ सत्तर साल तक सैनिक तकनीक का अन्तिम शब्द था। किरोनिया के युद्ध से, जिसमें यूनान के नगर-राज्यों की नागरिक सेना समाप्त हो गयी, पाइडना की लड़ाई तक, जिसमें मैसिडोनी व्यूह रोमन अक्षौहिणी (लीजियन) से पराजित हो गयी, मैसिडोनी सैनिक तकनीक का महत्त्व था। मैसिडोनी सेना के इस एकाएक भाग्य परिवर्तन का कारण प्राचीन अस्थायी तकनीक के प्रति भवित थी। जब मैसिडोनी लोग अपने को हेलेनी संसार की पश्चिमी सीमा को छोड़कर संसार का एकमात्र स्वामी समझते थे, और चुपचाप बैठे थे, रोमन महान् हेनीवली युद्ध के दुखपूर्ण अनुभव को दृष्टि में रखकर अपनी युद्ध कला में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रहे थे।

रोमन अक्षौहिणी मैसिडोनी व्यूह पर इस कारण विजयी हुई कि उसने हल्की पैदल सेना के व्यूह के समन्वय के साथ और आगे उन्नति की। रोमनों ने वास्तव में नये क्रम (फारमेशन) और नये ढंग के सैन्य-सज्जा का आविष्कार किया जिसके परिणामस्वरूप कोई सैनिक और कोई टुकड़ी इच्छानुसार चाहे हलके पैदल सैनिक की भाँति लड़े, या हापलाइट की भाँति, और वैरी के सम्मुख एक क्षण की सूचना पर एक से दूसरे रण कौशल में अपने को बदल दे।

पाइडना के युद्ध में यह रोमन दक्षता एक पीढ़ी से अधिक पुरानी नहीं थी। हेलेनी जगत् की इस इटालियाई उपच्छाया में पूर्व मैसिडोनी ढंग का व्यूह कैन्नी के रण में (२१४ ई० पू०) दिखाई पड़ा था। इसमें भारी रोमन पैदल सेना जो प्राचीन स्पार्टन व्यूह के ढंग पर रची गयी थी हैनीबल के स्पेनी और गैलिक भारी घुड़सवारों से घिर गयी और भारी अफ्रीकी पैदल सेना द्वारा दोनों पार्श्वों में पशुओं की भाँति बँध गयी। इसके पहले भी लेक ट्रेसिमीन में भी एक वार विपत्ति आयी थी जिसकी चोट से एक रोमन नेता ने प्रयोग करने का विचार किया और सोचा (भ्रमपूर्ण धारणा के कारण) कि इससे रक्षा होगी। कैन्नी की घोर पराजय की कठोर पाठशाला में रोमनों ने अपनी पैदल सेना की तकनीक में सुधार किया और एक क्षण में रोमन सेना हेलेनी संसार में सबसे दक्ष सेना हो गयी। फिर जामा, साइनोसिफाली, और पाइडना की विजय हुई। इसके बाद बर्बरों से, रोमनों से, और रोमनों तथा रोमनों से कितने ही युद्ध हुए जिनका संचालन मैरियस से सीजर तक बड़े-बड़े कप्तानों ने किया। और रोमन अक्षौहिणी आग्नेयास्त्र के पहले जितना सम्भव हो सकता था उतनी दक्ष सेना हो गयी। इसी समय जब अक्षौहिणी अपने ढंग की पूर्ण सेना बन गयी थी, घुड़सवार सेना ने रोमन सेना को कई बार पराजित किया। इनकी तकनीक भिन्न थी। और उन्होंने अक्षौहिणी को सेना-क्षेत्र से निकाल बाहर किया। सन् ५३ ई० पू० में कर्री में घुड़सवारों ने अक्षौहिणी पर जो विजय पायी वह युद्ध फारसेलस के क्लासिक युद्ध से पाँच साल पहले हुआ जिसमें अक्षौहिणी से अक्षौहिणी लड़ी थी। इस युद्ध में रोमन पैदल सेना की तकनीक सर्वोच्च थी। कर्री के युद्ध का अपशकुन चार सौ. साल बाद सन् ३७८ ई० में एड्रियानोप्ल में ठीक उतरा जब भाले बरदार घुड़सवारों ने अक्षौहिणी पर अन्तिम प्रहार किया। इस युद्ध में समकालीन इतिहासकार अमियानस मारसेलिनस, जो सैनिक अफसर भी था, इस बात की साक्षी देता है कि रोमनों की सेना के तीन चौथाई लोग मारे गये और मत प्रकट करता है कि कैन्नी के युद्ध के पश्चात् रोमन सेना पर ऐसी महान् विपत्ति कभी नहीं आयी थी।

इन दोनों युद्धों के बीच की ६ शतियों में से अन्तिम चार शतियों में रोमन लोग आराम ही

करते रहे। कर्री की चेतावनी के पश्चात्, और गोथिक भाला बरदार घुड़सवारों के फारसी प्रतिरूप के द्वारा जिन्होंने ३७८ ई० में वेलेन्स और उसकी अक्षौहिणी को नष्ट किया। सन् २६० ई० में बेलेरियन में और ३६३ ई० में जूलियन की बार-बार पराजय की चेतावनी के बाद भी ध्यान नहीं दिया।

एड्रियानोप्ल की दुर्घटना के बाद सम्राट् थियोडोसियस ने उन बर्बर घुड़सवारों को जिन्होंने रोमन पैदल सेना में बड़ी भारी दरार पैदा कर उसे भ्रष्ट कर दिया था, उन्हीं को उस स्थान को भरने के लिए नियुक्त करके, पुरस्कार दिया। और साम्राज्य की सरकार ने इस अदूरदर्शी नीति का मूल्य इस प्रकार चुकाया कि इन बर्बर भाड़े के टट्टुओं ने पश्चिमी प्रदेशों को विभाजित करके 'उत्तराधिकारी राज्य' बना लिया, अन्तिम समय जिस स्थानीय सेना ने, पूर्वी प्रान्तों को अलग हो जाने से बचाया, वह इसी बर्बर ढंग के भाले बरदार घुड़सवारों की थी। भारी अस्त्रों से सज्जित इन घुड़सवारों की सेना एक हजार साल तक सर्वोपरि थी। यह और भी आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार की सेना विभिन्न देशों में बनी। उसे हम हर जगह पहचान सकते हैं, चाहे वह ईसा की पहली शती में क्रीमिया के कब्रों में भित्ति चित्र के रूप में हो या तीसरी, चौथी, पाँचवीं या छठी शती में फार्स के चट्टानों में ससानियाई राजा द्वारा तराशी हो या तांग पीढ़ी (६१८–९०७) के पूरब के योद्धाओं की मिट्टी की मूर्ति हो, या ग्यारहवीं शती का बेयो (नगर का नाम) का परदा हो, जिसमें विलियम द कांकरर के नारमन वीरों (नाइट) द्वारा पुराने अंग्रेजी पैदलों की पराजय कटी हुई है।

यदि भाला बरदार घुड़सवार का यह दीर्घ जीवन आश्चर्यपूर्ण है तो यह भी ध्यान देने की बात है कि यह सर्वव्यापक सैनिक पतनोन्मुख अवस्था में है। एक प्रत्यक्षदर्शी ने उसके पराजय का इस प्रकार वर्णन किया है। 'जब वह टारटरों से लड़ने शान्ति नगर (बगदाद) के पश्चिम की ओर गया तब मैं उपमन्त्री की सेना में था। जब सन् १२५८ ई० (६५६ हिजरी) में उस नगर पर महान् विपत्ति आयी। हम लोगों का सामना नहर बशीर पर हुआ जो दुजेल के अधीन राज्य था। वहाँ हम लोगों में से एक सैनिक पूर्ण रूप से अस्त्रों से सज्जित अरबी घोड़े पर सवार द्वन्द्व-युद्ध के लिए आगे बढ़ता था। यह सवार और उसका घोड़ा ठोस पहाड़ के समान था। और हमारा सामना करने के लिए एक मंगोल सवार आता था जो ऐसे घोड़े पर सवार रहता था जो गदहे के समान था। उसके हाथ का भाला तकुए (स्पिड्ल) सा दिखाई देता था। न उसके पास लबादा था, न कवच। जो लोग उसे देखते थे उन्हें हँसी छूटती थी। किन्तु दिन ढलते-ढलते विजय उनकी थी और हमारी करारी हार हुई जो अनिष्ट की कुंजी थी और इसके बाद तो विपत्ति आयी सो आयी[1]।'

इस प्रकार गोलियथ और डेविड की पौराणिक कथा का युद्ध जो सीरियाई इतिहास के प्रभात में हुआ था तेईस शतियों के बाद सान्ध्य काल में दोहराया गया। और यद्यपि इस बार दैत्य और बौना घोड़ों पर है, परिणाम वही है।

[1] ई० जी० ब्राउन : ए लिटरेरी हिस्ट्री आव परशिया। भाग २, पृ० ४६२, फलकुद्दीन मुहम्मद बिन ऐदिमीर से उद्धृत जिसके इब्न तिकतका के किताबुल फ़ाख़री से उद्धृत किया।

अजग तातार कज्जाक जिसने इराकी भारी भरकम सिपाहियों पर विजय प्राप्त की और बगदाद पर घेरा डाला और अब्बासी खलीफा को भूखों मार डाला हल्का सवार था, उसका भाला भी हल्का था। वह खानाबदोश ढंग का था जिसने आठवीं तथा सातवीं शती ई० पू० में सिमेरियाई और साइथ के आक्रमण द्वारा दक्षिण-पश्चिम एशिया में अपना परिचय दिया था और आतंक फैलाया था। किन्तु यदि घुड़सवार डेविड ने घुड़सवार गोलियथ को यूरेशियाई स्टेप से आकर तातारी आक्रमण के आरम्भ में पराजित किया तो इस कथा की पुनरावृत्ति में युद्ध का परिणाम पहले की भाँति ठीक-ठीक था। हमने देखा कि पैदल कवचयुक्त सैनिक डेविड के झोले द्वारा परास्त हुआ। उसके पश्चात् विजयी डेविड नहीं हुआ, बल्कि गोलियथों का मर्यादा-युक्त व्यूह विजयी हुआ। हलाकू खाँ के मंगोल हल्के घुड़सवार जिन्होंने बगदाद में अब्बासी खलीफा के वीरों को पराजित किया था, मिस्र के ममलूक स्वामियों से बार-बार हारे। अपनी साज-सज्जा में ममलूक वीर जो बगदाद के बाहर पराजित हुए थे मुसलिम वीरों की अपेक्षा न तो अच्छी तरह सज्जित थे, न बुरी तरह; किन्तु अपने समरतन्त्र में वे मर्यादित थे जिसके कारण मंगोल तीव्र तीर-अन्दाजों तथा फ्रांक धर्मयुद्धकर्ताओं से वे बीस पड़ते थे। मंगोलों ने जिस गुरु से पहली शिक्षा पायी उसके दस साल पहले सन्त लूई के वीर मंसूरा में हारे थे।

तेरहवीं शती के अन्त तक ममलूक फ्रांसीसी और मंगोलों के ऊपर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर चुके थे और अपनी सीमा में सैनिक श्रेष्ठता में वैसे ही बेजोड़ थे जैसे पाइडना के बाद रोमन अक्षौहिणी। इस उच्च किन्तु दुर्बल करने वाली स्थिति में ममलूक भी अक्षौहिणी के समान निष्काम बैठ गये। और यह विचित्र संयोग है कि ये लोग भी उतने ही दिनों तक निष्काम रहे और पुराने बैरी ने नयी तकनीक के सहारे एकाएक उन पर आक्रमण किया। पाइडना और एड्रियानोप्ल के युद्ध में ५४६ वर्षों का अन्तर है, सन्त लूई पर ममलूकों ने जो विजय पायी और अपने उत्तराधिकारी नैपोलियन से ममलूक जब पराजित हुए उसके बीच ५४५ वर्षों का अन्तर है। इन साढ़े पाँच सौ वर्षों में पैदल सेना का प्रभाव बढ़ गया। इस अवधि की पहली शती समाप्त होते-होते डेविड रूपी पैदल सेना ने 'लांग बो'[1] द्वारा घुड़सवार गोलियथों को क्रेसी में हराया था। इस परिणाम को लोगों ने अच्छी तरह समझा और आग्नेयास्त्र के आविष्कार से और जानिसारियों (एक सेना) की मर्यादा से इसका समर्थन हुआ।

नैपोलियन से हारे जाने के बाद और तेरह साल के बाद जब मुहम्मद अली ने अन्तिम रूप से इसे नष्ट कर डाला तब जो बचे-खुचे थे वे ऊपरी नील के पास चले गये और अपने अस्त्र तथा तकनीक सुडान के महदी के खलीफा के कवचधारी घुड़सवारों को दान कर दिया, जो सन् १८९८ में ओमदुरमान में ब्रिटिश पैदल सेना से ध्वस्त हुए।

जिस फ्रांसीसी सेना ने ममलूकों पर विजय पायी वह जानिसरियों के पश्चिमी प्रतिरूप की पहली सेना से भिन्न थी। वह फ्रांसीसियों की सामूहिक रूप से भर्ती की हुई सेना का नवीन फल थी। वह उस पश्चिमी सेना के नये पूर्ण अभ्यासयुक्त नमूने के स्थान पर उसे सुधार कर बनी थी, जिसे फ्रेडरिक महान् ने पूर्णता प्रदान की। किन्तु जब जेना में नैपोलियन की नयी सेना ने पुरानी

---

[1] वह तीर-धनुष जिसमें तीर हाथ से छोड़ा जाता है। तीर के पीछे पर लगे रहते हैं।—अनु०

प्रशियन सेना को पराजित किया तब प्रशिया के राजनीतिक तथा सैनिक सप्तरत्नों को प्रेरणा मिली कि फ्रांसीसियों से बढ़कर असाधारण शक्ति प्राप्त की जाय । इसके लिए नये सैनिकों को पुरानी मर्यादा की शिक्षा दी गयी । सन् १८१३ में इसके परिणाम का आभास मिला और सन् १८७० में वह स्पष्ट हुआ । किन्तु दूसरे चक्र में प्रशियन सैनिक मशीन में जरमनी और उसके साथी फँस गये और अप्रत्याशित रूप से घिरकर पराजित हुए । १९१८ में १८७० की प्रणाली बेकार हो गयी । क्योंकि खाइयों तथा आर्थिक नाकेबन्दी की नयी तकनीक प्रयोग में लायी गयी । १९४५ तक यह ज्ञात हो गया कि जिस तकनीक से १९१४–१८ का युद्ध जीता गया वह युद्ध की लम्बी शृंखला में अन्तिम कड़ी नहीं थी । प्रत्येक कड़ी, आविष्कार, विजय, निष्क्रियता और विनाश के चक्र के रूप में आती रहती है । सैनिक इतिहास के तीन हजार वर्षों में डेविड और गोलियथ के युद्ध से लेकर और मेजिनो पंक्ति और पश्चिमी दीवार के भेदन तक, जिसमें यांत्रिक घुड़सवारों और बन्दूक के चालकों ने और डैने वाले घोड़ों ने (हवाई जहाजों ने) योगदान किया, हम आशा कर सकते हैं कि इस विषय के नये-नये उदाहरण मिलेंगे । और जब तक मनुष्य की युद्ध की कला के अभ्यास की दुष्प्रवृत्ति रहेगी इस प्रकार के मन को थका देने वाला इस प्रकार का चक्र आता रहेगा ।

(६) सैनिकवाद की आत्मघाती प्रवृत्ति

'कोरोस', 'यूबरीस', 'एथ'

'निष्क्रियता का हमने सर्वेक्षण कर लिया । सर्जन के प्रतिशोध का यह अकर्मण्य ढंग है । अब हम जरा क्रियाशील विपथन की ओर ध्यान दें जो तीन यूनानी शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है । 'कोरोस', 'यूबरीस', 'एथ' । इन शब्दों का आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनों अभिधार्थ है । वस्तुनिष्ठ दृष्टि से कोरोस का अर्थ है 'अति-तृप्ति', 'युबरीस' का 'अत्याचार', और 'एथ' का 'विनाश' । आत्मनिष्ठ दृष्टि से कोरोस का अर्थ सफलता से बिगड़ी हुई मानसिक परिस्थिति, यूबरीस का अर्थ है सफलता के कारण मानसिक तथा नैतिक सन्तुलन का अभाव, एथ का अर्थ है हठी अनियन्त्रित आवेग जिसके कारण असन्तुलित आत्मा असम्भव कार्य करने की चेष्टा करती है । 'पाँचवीं शती के एथेनी ट्रेजेडियों में जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण आज प्राप्य है तीन अंकों में यह मनोवैज्ञानिक विनाश दिखाना साधारण विषय था । एसकाइलस के अगामेमनान नाम के नाटक में यही विषय है, जरकसीज़ के परसी में यही विषय है, सोफोक्लीस के नाटक एजेक्स में यही विषय है, ओडिपस के ओडिपस टिरानस, क्रिओन के एन्टीगोनी और युरिपीडीज़ के बैके में पेन्थ्यूज़ की कहानी का यही विषय है । अफलातून की भाषा में :

'यदि अनुपात के नियमों के विरुद्ध कार्य करने का कोई पाप करता है और बहुत छोटी वस्तु को बहुत बड़ी वस्तु ले जाने के लिए देता है—बहुत छोटी जहाज को बहुत बड़ा पाल, बहुत छोटे शरीर को बहुत अधिक भोजन, तो परिणाम यह होगा कि सब उलट-पलट जायगा । यूबरीस के विस्फोट के कारण बहुत अधिक खाने वाला शरीर तुरत बीमार पड़ जायगा, और घमण्डी व्यक्ति असत्य की ओर चलेगा क्योंकि यूबरीस से यह उत्पन्न होता है ।"[१]

---

[१] अफलातून : विधान, ६९१ ।

विनाश की ओर जाने के सक्रिय और निष्क्रिय ढंगों का अन्तर स्पष्ट करने के लिए हम सैनिक क्षेत्र में कोरोस, यूबरीस और एथ का सर्वेक्षण करेंगे । जिस प्रकार निष्क्रियता का सर्वेक्षण अभी हमने समाप्त किया है ।

गोलियथ के व्यवहार में दोनों का उदाहरण मिलता है । एक ओर तो हम देखते हैं कि किस प्रकार अपने व्यक्तिगत भारी अस्त्रों से सज्जित सैनिक की अपराजेय शक्ति की निष्क्रियता के कारण वह विनाश को प्राप्त होता है क्योंकि वह उस नयी उच्च तकनीक को पहले से न अपनाता है न देखता है जिसका प्रयोग डेविड करता है । साथ-ही-साथ हम यह भी देखेंगे कि डेविड के हाथों गोलियथ अपना विनाश रोक सकता था यदि तकनीक की उन्नति की ओर न ध्यान देने के साथ-साथ स्वभाव में भी निष्क्रियता होती । दुर्भाग्य से गोलियथ ने सैनिक महत्ता के प्रति पुरातनपन की रक्षा करते हुए स्वभाव में संयम नहीं रखा । इसके विपरीत बेकार ललकार दिया । वह आक्रामक और अपर्याप्त सैनिक तैयारी का प्रतीक है । ऐसा सैन्यवादी अपनी योग्यता पर विश्वास रखता है कि मैं ऐसे सामाजिक या असामाजिक तन्त्र के कार्य-संचालन के योग्य हूँ जिसमें सब झगड़े तलवार के बल पर तय किये जाते हैं और वह लड़ाई में भिड़ जाता है । उसके बोझ का बल उसके अनुकूल होता है और अपनी विजय को प्रमाण मे प्ररतुत करता है कि तलवार ही सर्व शक्तिमान् है । किन्तु कहानी के दूसरे अध्याय में परिणाम यह निकलता है कि उस विशेष परिस्थिति में जिसमें उसकी अभिरुचि है वह अपने सिद्धान्त को व्यक्तिगत रूप से प्रमाणित नहीं कर पाता । क्योंकि दूसरी घटना यह होती है कि उससे अधिक बली सैन्यवादी उसे पराजित कर देता है । उसने इस सिद्धान्त को प्रमाणित कर दिया जिसका उसे आभास नहीं था—कि 'जो लोग तलवार उठाते हैं, तलवार से नष्ट होते हैं ।'

इस भूमिका को पढ़कर हम सीरियाई कथा को छोड़कर ऐतिहासिक उदाहरणों पर ध्यान दें।

असीरिया

६१४–६१० ई० पू० असीरियाई सैनिक शक्ति की जो पराजय हुई वह इतिहास में सबसे पूर्ण थी । उससे केवल असीरियाई सैनिक तन्त्र का ही विनाश नहीं हुआ असीरियाई राज्य और असीरियाई जाति का भी विनाश हो गया । वह समुदाय जो दो हजार साल तक जीवित रहा, और लगभग ढाई सौ साल तक दक्षिण-पश्चिम एशिया में प्रमुख रूप से क्रियाशील रहा पूरे तरह मिट गया । दो सौ दस वर्षों के वाद युवक साइरस की दस हजार यूनानी सेना कुनाक्सा के रणक्षेत्र से टाइग्रिस की घाटी के ऊपर ब्लैक सी के तट की ओर लौट रही थी, तब उन्होंने काला और नेनिवा का स्थान देखा और उन्हें महान् आश्चर्य हुआ, इस कारण नहीं कि वहाँ बड़े-बड़े किले थे और नगरों का बड़ा विस्तार था बल्कि इसलिए कि मनुष्य द्वारा निर्मित इतने विशाल नगर निर्जन हों । इन निर्जन घरों की विलक्षणता ऐसी थी कि किसी का निवास न होने पर भी वे दृढ़ थे । इससे प्रमाणित होता था कि उनमें रहने वाले कितने शक्तिशाली थे । इसका सजीव चित्रण यूनानी अभियान सेना के एक सैनिक ने, जिसे वहाँ की अनुभूति हुई थी, किया है। किन्तु जेनोफेन की कहानी जब आधुनिक पाठक पढ़ता है तब उसे आश्चर्य होता है—क्योंकि पुरातत्त्वविदों ने वहाँ खुदाई करके जो खोज की है उससे उसने असीरिया के भाग्य का ज्ञान प्राप्त किया है—कि ज़ेनोफेन इन दुर्ग समान नगरों के खण्डहरों के वास्तविक इतिहास का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं प्राप्त कर सका । यद्यपि ज़ेनोफेन जब उधर से गया उसके केवल दो साल पहले

सारा दक्षिण-पश्चिम एशिया जरुसलेम से अरारात तक और एलम से लीडिया तक इन नगरों के स्वामियों के अधिकार में था और संत्रस्त रहा, उसके अच्छे-अच्छे वर्णन में वहाँ के इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है। असीरिया का नाम भी उसे नहीं मालूम था।

आरम्भ में असीरिया के दुर्भाग्य का कारण ठीक समझ में नहीं आता। क्योंकि मैसिडोनियनों, रोमनों और ममलूकों की भाँति उन पर 'निष्क्रियता' का दोष नहीं लगाया जा सकता। जब इनके सैन्य-तन्त्र का विनाश हुआ तब इनका तन्त्र अप्रचलित हो गया था और उनका सुधार नहीं हो सकता था। असीरियाई सैन्य-तन्त्र में बराबर सुधार होता रहा, उनका नवीनीकरण होता रहा और वे विनाश के समय तक प्रबलित (री-इनफोर्स) होते रहे। ईसा की चौदहवीं शती के आरम्भ में असीरिया की सैनिक प्रतिभा ने दक्षिण-पश्चिम एशिया के स्वामित्व ग्रहण करने के समय भारी कवचधारी पैदल सैनिक का शिशु उत्पन्न किया था, और ईसा के पूर्व सातवीं शती में अपने विनाश के पहले उसी ने भाला बरदार घुड़सवार का शिशु उत्पन्न किया था। वह शिशु बीच की सात शतियों तक विकसित होता रहा। उत्तरकालिक असीरियों के चरित्र की विशेषता थी कि अपनी युद्धकला में वे बराबर सुधार करते रहे और नयापन लाते रहे। इसका निश्चित प्रमाण अपने मूल स्थान में अनेक नक्काशी रूप में राजमहलों में अंकित है। इनमें असीरी इतिहास के अन्तिम तीन सौ वर्षों की सैनिक साज-सज्जा तथा तकनीक का क्रमागत विकास बड़े ब्योरे, सावधानी और यथार्थता से दिखाया गया है। इनमें हम देखते हैं कि शरीर के कवच में, रथों में, आक्रमण के यन्त्रों में, विशेष कार्य की विशेष सेना में बराबर प्रयोग और सुधार होता रहा। तब असीरिया के विनाश का क्या कारण था?

पहले तो लगातार आक्रमणात्मक नीति थी और इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए शक्तिशाली साधन। इसके कारण असीरिया के युद्ध के सरदारों ने अपने चौथे तथा अन्तिम उपक्रम को उस सीमा के आगे बढ़ाया जहाँ तक उनके पूर्वज जा चुके थे। असीरिया निरन्तर अपने सैनिक साधनों का आह्वान इसलिए करता रहा कि वह वैबिलोनी संसार की सीमा तक के क्षेत्र का रक्षक बना रहे, जिससे एक ओर जागरोस तथा टारस के बर्बर पहाड़ी निवासियों से और दूसरी ओर सीरियाई सभ्यता के आरमीयन सैनिक अग्रगामियों से उन्हें सुरक्षित रख सके। इसके पहले के तीन सैनिक संघर्षों में असीरिया ने इन दोनों सीमाओं पर रक्षात्मक से आक्रमणात्मक नीति ग्रहण की थी। किन्तु इस आक्रमण में सीमा के आगे नहीं बढ़े और दूसरी दिशाओं में जाकर अपनी सेना की शक्ति नहीं क्षीण की। फिर भी तीसरे संघर्ष में जिसमें नवीं शती ई० पू० के मध्य के पचास साल लगे, सीरिया में सीरियाई राज्यों का अस्थायी सम्मिलन (कोअलिशन) बना जिसने ८५३ ई० पू० में करकार के पास असीरिया का आगे बढ़ना रोक दिया और उरार्तू का राज्य स्थापित न होने के कारण आरमीनिया में बड़ा विरोध हुआ। इन चेतावनियों के बावजूद टिगलथ पाइलेसर (७४६–७२७ ई० पू०) ने जब अन्तिम और सबसे बड़ा आक्रमण आरम्भ किया उसकी राजनीतिक आकांक्षा बढ़ गयी थी और उसका सैनिक लक्ष्य ऐसा था जिसके कारण उसे तीन नये वैरियों—वैबिलन, एलम और मिस्र का सामना करना पड़ा। इनमें प्रत्येक के पास उतनी ही सैनिक शक्ति थी जितनी असीरिया के पास।

टिगलथ पाइलेसर ने जब सीरिया के छोटे राज्य को पूर्ण रूप से जीत लिया तब उसने मिस्र से लड़ाई ठानी। उसके उत्तराधिकारियों को यह लड़ाई लड़नी पड़ी क्योंकि मिस्र इस बात पर

तटस्थ नहीं रह सकता था कि उसकी सीमा तक असीरियाई साम्राज्य फैल जाय। और उसने असीरियाई साम्राज्य निर्माता की इस चेष्टा को निष्फल कर दिया। इसे तब तक के लिए असम्भव कर दिया जब तक असीरिया मिस्र को घेर कर पूरा राज्य न ले ले। सन् ७३४ ई० पू० में टिगलथ पाइलेसर ने फिलिस्टिया पर अधिकार कर लिया। यह बड़ी कुशल रणनीति थी जिसके परिणामस्वरूप अस्थायी रूप से समरिया ने ७३३ में पराजय स्वीकार कर ली और ७३२ में डैमसकस का पतन हो गया। किन्तु इसका परिणाम यह भी हुआ कि ७२० ई० पू० में सारगन को मिस्रियों से लड़ना पड़ा और ७०० में सेनाशरीब से। इन अनिश्चित संघर्षों के वाद एसारहैडन ने तीन युद्धों ६७५, ६७४ तथा ६७१ में मिस्र पर विजय पायी और उस पर अधिकार कर लिया। इसके वाद यह स्पष्ट हो गया कि यद्यपि असीरियाई सेना के पास मिस्र पर विजय पाने की शक्ति है, वह इतना शक्तिशाली नहीं है कि मिस्र को कब्जे में रख सके। एक बार और एसारहैडन मिस्र की ओर चला किन्तु ६६९ में इसकी मृत्यु हो गयी। यद्यपि अशूरवनिपाल ने ६६७ में मिस्री विद्रोह को शान्त किया, उसे ६६३ में फिर से मिस्र को विजय करना पड़ा। इस समय तक असीरियाई सरकार ने समझ लिया होगा कि मिस्र में वह असम्भव कार्य करने में लगी है। और जब सामेटिकस ने चुपचाप असीरियाई सेना को ६५८–६५१ में निकाल वाहर किया तब अशूरवनिपाल कुछ न बोला। इस प्रकार अपनी मिस्री हानि को छोड़ देने में असीरिया ने बुद्धिमानी की किन्तु यह बुद्धि तब आयी जब यह ज्ञात हो गया कि मिस्र के पाँच युद्धों में लगायी शक्ति वेकार हो गयी। साथ ही मिस्र को छोड़ देना असीरिया के पतन की भूमिका थी जो दूसरी पीढ़ी में हुई।

टिगलथ पाइलेसर का वैबिलोनिया में हस्तक्षेप का अन्तिम परिणाम सीरिया में हस्तक्षेप के परिणाम से कहीं अधिक गम्भीर था। क्योंकि इसके कारण और कार्य की शृंखला के सीधे परिणामस्वरूप ६१४–६१० की विपत्ति थी।

वैविलोनिया में पहले आक्रमणों में असीरिया की राजनीतिक नीति नरमी की थी। विजेता ने विजित देश पर अधिकार नहीं किया, वहीं के राजाओं को अपनी छत्र-छाया में कठपुतली शासक बना दिया। ६९४–६८९ के विप्लव के बाद ही वहाँ की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गयी, सेनाशरीब ने अपने पुत्र एसारहैडन को अपना उत्तराधिकारी घोषित करके वहाँ प्रतिनिधि वना दिया। किन्तु इस नरमी की नीति से कालडियन संतुष्ट नहीं हुए और असीरियाई सेना का सामना अधिक शक्ति से करने लगे। असीरियाई सैनिक प्रहार का परिणाम यह हुआ कि कालडियनों ने अपना घर ठीक कर लिया और अपने पड़ोसी एलम से समझौता कर लिया। दूसरी बार जब राजनीतिक संयम की नीति छोड़कर ६८९ में वैविलोन पर घेरा डाल दिया गया तब असीरिया को ऐसी शिक्षा मिली जैसी आशा नहीं थी। इस भीषण कार्य से वहाँ की पुरानी नागरिक जनता में और कालडिया के खानाबदोशों में जो घृणा की अग्नि प्रज्वलित हुई उससे नागरिक और कबीले वाले अपना आपसी भेद-भाव भूल गये और नये वैविलोनियाई कृत्य को न भूल सके, न उन्हें क्षमा कर सके और जब तक आक्रामक को चित्त नहीं कर दिया, शान्त होकर नहीं बैठे।

फिर भी लगभग सौ वर्षों तक अवश्यम्भावी 'एथ' टलता रहा क्योंकि असीरियाई सैन्य तन्त्र की दक्षता बराबर बढ़ती रही। उदाहरण के लिए ६३९ में एलम पर ऐसा घातक प्रहार हुआ कि उसका विच्छृंखल राज्य पूरवी सीमा से लेकर फारस के पहाड़ी निवासियों के राज्य में वदल गया और छलाँग मारने वाला स्थान वन गया, जहाँ से अकामेनिडी लोग एक शती के बाद सारे

उत्तर-पश्चिम एशिया के स्वामी बन गये । जब ६२६ में अशूरबनिपाल की मृत्यु हो गयी बैबिलोन में नवोपोलास्सार के नेतृत्व में फिर एक बार विप्लव हुआ और उसने मीडिया से मित्रता की, जो एलम से अधिक शक्तिशाली था और सोलह साल बाद असीरिया संसार के नकशे से गायब हो गया ।

जब हम डेढ़ सौ साल पुराने इतिहास की ओर देखते हैं जिसमें लगातार भीषण युद्ध होते रहे । जो ७४५ ई० पू० से आरम्भ हुआ, जब टिगलथ पाइलेसर गद्दी पर बैठा और ६०५ में समाप्त हुआ, जब बैबिलोन के नबुदकदनज़ार ने कारचेमिश में फेरो नेको को पराजित किया । इनमें इतिहास विख्यात घटनाओं से पहली दृष्टि में पता लगता है कि बार-बार के आक्रमण से असीरियों ने समुदाय के समुदाय नष्ट कर डाले, नगरों को मिट्टी में मिला दिया और सारी जनता को बन्दी बना कर ले गये । डैमसकस को ७३२ में, समारिया को ७२२ में, मुसासिर को ७१४ में, बैबिलोन को ६८९ में, सिडोन को ६७७ में, मेक्फिसको ६७१ में, थीबीस को ६६३ में और सूसा को सम्भवतः ६३९ में । जहाँ तक असीरिया की बाहें पहुँच सकीं उन सब देशों की राजधानियों में केवल टायर जेरुसलेम उस समय तक अछूता रह गया जब ६१३ में निनेवाँ पर घेरा पड़ा । असीरिया ने अपने पड़ोसियों की जो हानि की और उन पर विपत्ति ढायी उसकी कोई गणना नहीं हो सकती । फिर भी असीरियाई सैनिक कृत्यों की उचित आलोचना उस अध्यापक के कथन के अनुसार होगी जिसने बालक को बेंत मारते समय कहा था——'तुम्हें कम पीड़ा होती है, मुझे अधिक पीड़ा होती है ।' असीरियाई योद्धाओं ने जिस निर्लज्जता और आत्मतुष्टि के साथ अपने निष्ठुर कृत्यों का बखान किया है उसका वही परिणाम हुआ । उन्हीं को अधिक पीड़ा हुई । जिन विजितों का नाम ऊपर दिया गया है वे पुनः जीवित हो गये और उनमें कुछ का भविष्य तो उज्ज्वल हुआ । केवल निनेवा जो मरा सो मरा ।

इन जातियों के भाग्यों में जो अन्तर हुआ उसका कारण खोजने के लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा । अपनी सैनिक विजयों के पीछे असीरिया धीरे-धीरे अपनी आत्महत्या कर रहा था । जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय के असीरिया के आन्तरिक इतिहास से निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि वहाँ राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक विनाश, संस्कृति का पतन और जनसंख्या का ह्रास हो रहा था । असीरिया के डेढ़ सौ साल के जीवन में वहाँ की भाषा अक्कादी के स्थान पर अरमाई भाषा की प्रगति इस बात का प्रमाण है कि जिन्हें असीरियाई सेना पूर्ण हमलों के बाद अपनी शक्ति द्वारा बन्दी करके लायी थी, वे धीरे-धीरे अपना संस्कार फैला रहे थे । जो सैनिकशक्ति अपनी वीरता के बल पर ६१२ में निनेवा में खड़ी थी वह वास्तव में मुर्दा थी । वह आत्महत्या कर चुकी थी । उसका सैनिक ढाँचा खड़ा था । जब मीडिया और बैबिलोनिया की सेना ने इसे अपने सैनिक बल से पछाड़ कर गिरा दिया तब वे यह नहीं समझते थे कि हमारा कठोर वैरी मुर्दा हो चुका है ।

असीरियां का विनाश अपने ढंग का एक ही है । उसकी समता उससे की जा सकती है जो ३७१ ई० पू० में ल्यूकट्रा के रणक्षेत्र में स्पार्टा के जत्थे की ओर जो सन् १६८३ में वियना के युद्ध के पूर्व जानिसारियों की खाई में थी । वे सैन्यवादी जो अपने पड़ोसियों को नष्ट करने के लिए उनसे उग्र युद्ध किया करते हैं अपना ही विनाश करते हैं । यह हमें कैरोलिंजियनों और तैमूरों का स्मरण दिलाता है जिन्होंने सैक्सनों और फारसियोंको तबाह करके बड़े-बड़े साम्राज्य बनाये,

जिनको स्कैंडिनेवियाई और उजबकों ने फिर लूटा । उस समय ये साम्राज्य-निर्माता एक ही जीवन-काल में शक्तिहीन हो गये और इस प्रकार अपने साम्राज्यवाद का मूल्य चुकाया । इस प्रकार साम्राज्यवादियों के भाग्य का निबटारा होता है । असीरियाई उदाहरण से एक और प्रकार की आत्महत्या उन सैन्यवादियों की याद आती है जो बर्बर अथवा उच्च सभ्यता के हों, जो सदा सार्वभौम राज्यों अथवा बड़े साम्राज्यों पर आक्रमण करते हों और उन्हें नष्ट करते हों और ऐसे राज्यों को जिनके द्वारा अपने देश को अथवा जिन देशों पर उनका शासन है, शान्ति और व्यवस्था प्राप्त हुई है । ऐसे विजेता साम्राज्य को निर्दयतापूर्वक नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं और वहाँ के लोगों के लिए जो शान्ति के वातावरण में रहते आये हैं मृत्यु और विनाश उपस्थित करते हैं परन्तु इन पर विनाश लाने वालों के ऊपर भी मृत्यु की छाया आ जाती है । विजय की महत्ता से उनका पतन हो जाता है और बलात्कृत देश के इन स्वामियों का भी हाल किलकेनी बिल्लियों के समान हो जाता है जो एक-दूसरे के लिए मित्रता का कार्य करती हैं । और इन लुटेरों में से एक भी लूट का माल भोगने के लिए नहीं रह जाता ।

हम यह भी देख सकते हैं कि जब मैसिडोनिया वालों ने अकेमीनियाई साम्राज्य को नष्ट कर डाला और उसकी सीमा के और आगे भारतवर्ष पर आये तब उसका परिणाम यह हुआ कि उन बयालीस वर्षों के बीच जो सिकन्दर की ३२३ ई० पू० में मृत्यु और २८१ में जब कोरुपीडियन में लाइसिमेकस की हार हुई तब तक एक-दूसरे से ये लड़ते ही रहे । यह विभीषका एक हजार साल बाद दोहरायी गयी जब आदिम मुसलमान अरबों ने बारह वर्षों में दक्षिण-पश्चिम एशिया के रोमन तथा सुसानियन राज्यों को तहस-नहस किया । यह लगभग उतना ही विस्तृत प्रदेश था जिसे सिकन्दर ने ग्यारह सालों में जीता था । और इस प्रकार सिकन्दर के कार्य को मिटा दिया। इस अरबों के बारह वर्षों की लूटपाट के पश्चात् चौबीस वर्षों तक वे एक-दूसरे की हत्या करते रहे । एक बार फिर देखिए कि विजयी एक-दूसरे पर तलवार चलाते रहे और सीरियाई सार्वभौम राज्य बनाने का श्रेय और लाभ अनधिकारी उम्मेयदों और अब्बासियों को मिला । पैगम्बर ने जो बिजली की गति के समान विजय प्राप्त करके राह बनायी उनके उत्तराधिकारियों को नहीं मिली । असीरियाई सैन्यवाद का आत्महत्या का ढंग उन बर्बरों में भी मिलता है जिन्होंने पतनोन्मुख रोमन साम्राज्य के त्यक्त प्रदेशों पर आक्रमण किया जैसा कि इस पुस्तक के आरम्भ में कहा जा चुका है ।

असीरियाई सैन्यवाद के अनुरूप एक दूसरा सैनिक विपथन हम उस समय भी पाते हैं जब असीरिया बड़ी सामाजिक व्यवस्था का अंग था जिसे हम बैबिलोनी समाज कहते हैं । इसमें असीरिया वह सीमा थी जिसका कार्य केवल अपनी ही सुरक्षा करना नहीं था, बल्कि उस संसार का भी जिसका वह अंग था । अर्थात् उत्तर और पूरब के उपद्रवी पर्वतियों से और दक्षिण तथा पश्चिम के सीरियाई समाज के आक्रामक पुरोगामियों से । पहले की बिना भेद वाली सामाजिक अवस्था वाले किसी देश की सीमा से इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने से सारे समाज का लाभ होता है । क्योंकि इस सीमा के कारण बाहरी दबाव रोका जाता है और अन्दर का भाग अपनी आन्तरिक परिस्थिति दूसरी चुनौतियों का सामना करने के लिए सुरक्षित रहता है । यह श्रम-विभाजन बेकार हो जाता है, यदि सीमा वाले, जिन्होंने बाहर वालों का सामना करने के लिए सैनिक शिक्षा पायी है, अन्दर वालों पर आक्रमण करके अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करने

लों। परिणाम होता है गृह-युद्ध । इसी से इस भयावह परिणाम का कारण मालूम होता है जो उस समय हुआ जब टिगलथ पाइलेसर तृतीय ने ७४५ ई० पू० में असीरियाई सेना द्वारा बैबिलोनिया पर आक्रमण किया । इस प्रकार सीमावालों का अन्दर की ओर आक्रमण करना सारे समाज के लिए विपत्ति कारक है मगर सीमा वालों की तो इसमें आत्महत्या ही है । इनका कृत्य उस हाथ के समान है जो तलवार लिए हो और उसी शरीर में भोंक दे जिस शरीर का वह हाथ है या उस लकड़हारे के समान है जो उसी डाल को चीर रहा है जिस पर वह बैठा है । वह तो डाल के साथ धम से नीचे गिर पड़ता है, पेड़ का तना खड़ा रहता है ।

शार्लमान

जिस अनुचित दिशा में शक्तियों के प्रयोग के परिणाम का ऊपर वर्णन किया गया है सम्भवतः वही अन्तर्ज्ञान था जिसने आस्ट्रेशियाई फ्रैंकों को ७५४ ई० में अपने योद्धा पेपिन को पोप स्टेफेन के निर्णय का वलपूर्वक विरोध करने को विवश किया था जब उसने उनके लम्बार्डी भाइयों से लड़ने के लिए कहा था । पोप की दृष्टि इस परा-आल्पस वाली शक्ति की ओर थी और उसने पेपिन को ७४९ में इसीलिए राजा बना दिया जिससे उसकी अभिलाषाएँ तीव्र हो गयीं और उसे वास्तविक अधिकार प्राप्त हो गया क्योंकि पेपिन के समय आस्ट्रेशिया अपनी दोनों सीमाओं की रक्षा करके प्रसिद्ध हो चुका था । अर्थात् राइन के पार सैकसन व्रात्यों से और आइबीरियन प्रायद्वीप के विजेताओं, अरब मुसलमानों से, जो पिरेनीज़ की ओर वढ़ रहे थे । सन् ७५४ में आस्ट्रेशियाइयों से अपनी शक्ति इस क्षेत्र से दूसरी ओर लगाने के लिए कहा गया कि वे लम्बार्डों को नष्ट करें जो पोप की राजनीतिक अभिलाषाओं के मार्ग के रोड़े थे । आस्ट्रेशियाइयों की सेना में इस आक्रमण के सम्वन्ध में वहुत सन्देह था और उनके नेता की अभिलाषाओं के प्रतिकूल उनका सन्देह अधिक ठीक निकला । अपनी सेना के विरोधों को ठुकराकर पेपिन ने राजनीतिक तथा सैनिक वचनवद्धता की शृंखला की पहली कड़ी बनायी । जिसके कारण आस्ट्रेशिया इटली के साथ और भी जकड़ गया । सन् ७५५–६ के उसके इटालियाई अभियान के कारण शार्लमान का ७७३–४ का अभियान हुआ । इस अभियान के कारण सैक्सनी की विजय में भयानक बाधा उपस्थित हुई । जिसके लिए वह चला था । इसके बाद उसके सैक्सनी के कठिन आक्रमण में आगे तीस साल में वार वार वाधाएँ उपस्थित हुईं क्योंकि इटली में समय-समय पर संकट उपस्थित होता रहा और इन अवसरों पर उस समय उसका रहना आवश्यक हो गया । उसके परस्पर विरोधी आकांक्षाओं के कारण शार्लमान की प्रजा पर जो बोझ पड़ा उसके कारण आस्ट्रेशिया की पीठ पर जो बोझ पड़ा वह इतना बढ़ा कि वह उठ न सका ।

तैमूर लंग

इसी प्रकार तैमूर ने अपने ट्रांस-आक्सोनिया की रीढ़ तोड़ दी । उसने ईरान, इराक और भारत, अनातोलिया और सीरिया पर बेमतलब आक्रमण करके अपनी शक्ति क्षीण की । जो थोड़ी ट्रांस-आक्सेनिया की शक्ति उसे यूरेशिया खानाबदोशों में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने में व्यय करनी चाहिए थी । ट्रांस-आक्सोनिया निश्चल ईरानी समाज के और यूरेशियाई खानाबदोश संसार के बीच सीमा थी । अपने शासन के प्रथम उन्तीस वर्ष (सन् १३६२–८० ई०) उसने सीमा की सुरक्षा में बिताये । पहले उसने चगताई खानाबदोशों को पीछे हटाया, फिर उन

पर आक्रमण किया और निचली आक्सस ख्वारिज़्म मरुद्यान (ओएसिस) को जूजियों के खानाबदोशों से मुक्त करके अपने राज्य की सीमा ठीक की । १३८० में जव यह काम वह पूरा कर चुका तैमूर को और बड़ा राज्य मिला । उसे चंगेज़ खाँ का पूरा साम्राज्य मिल गया । क्योंकि तैमूर के समय खानाबदोश लोग मरुभूमि और उपजाऊ भूमि के वीच की सीमा के सव स्थानों से पीछे हट गये । यूरेशिया के इतिहास का दूसरा अध्याय चंगेज़ खाँ के उत्तराधिकार को प्राप्त करने के लिए आस-पास के नव-जाग्रत निष्क्रिय जातियों की दौड़ का इतिहास है । इस होड़ में मोलडेवियन और लिथुएनियन इतनी दूर थे कि दौड़ में सम्मिलित नहीं हो सकते थे । मसकोवाइट[1] अपने जंगलों में और चीनी अपने खेतों से बँधे हुए थे । कज्जाक तथा ट्रांस-आवसोनियन मात्र प्रतिद्वन्द्वी रह गये थे जो अपने निश्चल जीवन के गुणों को त्यागे विना स्टेप में रहने के अभ्यस्त हो गये थे । इन दोनों में ट्रांस-आवसेनियनों की सफलता का अच्छा अवसर था । वह अधिक शक्तिशाली भी थे, स्टेप के केन्द्र के निकट थे और क्षेत्र में पहले उतरे भी । सुन्नी धर्म का रक्षक होने के कारण निश्चल मुसलिम समुदायों में उसके शक्तिशाली सहायक भी थे, जो स्टेप के सामने की सीमा पर इस्लाम के चौकीदार थे ।

कुछ क्षण के लिए तैमूर ने इस अवसर को उपयुक्त समझा और दृढ़ता से इससे लाभ उठाना चाहा । किन्तु थोड़े-से वीरतापूर्ण हमलों के बाद वह दक्षिण की ओर घूम गया और ईरानी संसार के अन्दर अपनी सेना को ले गया और अपने जीवन के अन्तिम चौबीस वर्ष उसने इस क्षेत्र में असफल तथा विनाशात्मक आक्रमण करने में लगाये ।

तैमूर का यह मूर्खतापूर्ण आचरण सैन्यवाद की आत्महत्या का सुन्दर उदाहरण है । यही नहीं कि उसका साम्राज्य उसके बाद रहा नहीं, वल्कि साम्राज्य के बाद का कोई स्पष्ट चिह्न भी नहीं रहा । उसका वाद का प्रभाव निषेधात्मक ही रहा । जो कुछ राह में आया उसको नष्ट करते हुए वह अपने विनाश की ओर तेजी से बढ़ रहा था । तैमूर के इस साम्राज्यवाद ने दक्षिण-पश्चिम एशिया में राजनीतिक और सामाजिक शून्यक (वैकुअम) वना दिया । इस शून्यक के कारण उसमानली समुदाय और सफ़ाबी लड़ गये जिसने ईरानी समाज को धराशायी कर दिया।

खानाबदोशी संसार की विरासत ईरानी समाज को नहीं प्राप्त हुई । इसका प्रभाव पहले धर्म पर पड़ा । तैमूर के समय से चार सौ साल पहले से इस्लाम पूर्वी स्टेप की सीमा पर रहने वाले निश्चल लोगों पर अपना प्रभाव क्रमशः जमाता चला आ रहा था । और जब भी खानाबदोश लोग मरुभूमि छोड़कर उर्वर भूमि मे आते थे उनके द्वारा पकड़ लिये जाते थे । चौदहवीं शती तक ऐसा मालूम होने लगा कि सारे यूरेशिया में इस्लाम धर्म फैलने से कोई रोक नहीं सकता। किन्तु तैमूर की जीवन-यात्रा की समाप्ति पर यूरेशिया में इस्लाम की प्रगति एकदम बन्द हो गयी। और दो सौ साल वाद मंगोल और कालमुक महायान बुद्ध धर्म के लामाई रूप में परिवर्तित हो गये। प्राचीन विलुप्त भारतीय (इंडिक) सभ्यता की, जो जीवाश्म (फ़ासिव) हो चुकी थी, विजय के फलस्वरूप यूरेशियाई खानाबदोशों के कारण तैमूर की मृत्यु के दो सौ वर्षों में इस्लाम की प्रतिष्ठा बहुत गिर गयी ।

---

[1] मासको के आसपास वाले ।

राजनीतिक धरातल पर, जिस ईरानी संस्कृति का तैमूर ने पहले समर्थन किया था और फिर उसके प्रति विश्वासघात किया उसका भी यही हाल हुआ। जिन निश्चल समाजों ने यूरेशियाई खानाबदोशों को राजनीतिक दृष्टि से पराजित करने का कमाल दिखाया वे रूसी और चीनी थे। खानाबदोशों के इतिहास के बार-बार दोहराये जाने वाले नाटक के अन्तिम दृश्य का भविष्य उस समय जान लिया गया जब ईसा की सत्रहवीं शती के बीच मसकोवी के कज्जाक चाकर और चीन के मंचू मालिक एक-दूसरे से भिड़ गये। ये लोग उत्तरी स्टेप की सीमा पर एक-दूसरे के आमने-सामने जा रहे थे और टकरा गये और यूरेशिया पर अधिकार करने के लिए उनकी पहली लड़ाई आमूर के ऊपरी बेसिन में चंगेज खाँ के पुराने चरागाह के पास हुई। सौ साल के वाद इन प्रतिद्वन्द्वियों के वीच यूरेशिया का विभाजन हो गया।

ऐसा विचार व्यक्त करना विचित्र जान पड़ता है कि यदि वह यूरेशिया की ओर से मुँह न मोड़ता और ईरान पर सन् १३८१ में आक्रमण न करता तो आज ट्रांस-आक्सेनिया और रूस में जो सम्बन्ध है, उसका उलटा होता। इन काल्पनिक परिस्थितियों में रूस उस साम्राज्य में होता जिसका क्षेत्र उतना ही वड़ा होता जितना आज सोवियत रूस का है, किन्तु उसका गुरुत्व केन्द्र (सेंटर आव ग्रेविटी) दूसरा होता। वह ईरानी साम्राज्य होता जिसमें समरकन्द मास्को पर [illegible] शासन करता, न कि मास्को समरकन्द पर। यह काल्पनिक चित्र विचित्र जान पड़ेगा क्योंकि पिछले पाँच सौ साल की वास्तविक घटनाएँ भिन्न हैं। पश्चिमी इतिहास के वैकल्पिक रास्ते का इस धारणा पर यदि हम नकशा खींचें कि शार्लमान का आक्रमण जो तैमूर के आक्रमण से कम तीव्र और कम घातक था, पश्चिमी सभ्यता के लिए उतना ही विनाशकारी होता जितना तैमूर का ईरान के लिए, तो कम-से-कम आश्चर्यजनक चित्र सामने आता। इस तुलना के आधार पर हम देखते हैं कि दसवीं शती के अन्धकार में आस्ट्रेशिया मागचरों द्वारा निमग्न कर लिया गया होता, न्यूस्ट्रिया वाइकिंगों द्वारा और कैरोलिंजियन साम्राज्य का केन्द्र इसी वर्बर स्वामियों के हाथ में होता। उस समय तक जब चौदहवीं शती में उसमानलियों का आगमन हुआ और उन्होंने वर्बरों से कम बुरा विदेशी शासन इन पश्चिमी ईसाई जगत् की त्यक्त सीमाओं पर स्थापित किया।

किन्तु तैमूर का सबसे विनाशकारी कार्य उसके अपने ही विरुद्ध हुआ। उसने अपने नाम को इस प्रकार अमर किया कि भावी पीढ़ियों ने उसके सब कार्यों को भुला दिया जिससे वह सदा के लिए याद किया जाता। कितने आदमी ईसाई जगत् में या दारुस्सलाम में जानते हैं कि वह वर्बरों के विरुद्ध सभ्यता के लिए लड़ने वाला था, जिसने उन्नीस वर्षों तक लड़ कर अपने देश के पुरोहितों और निवासियों के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त की। अधिकांश लोगों के लिए तैमूर लंग के नाम का कोई अर्थ है तो यही कि वह सैनिक था जिसने विनाशकारी आक्रमण किये और चौबीस वर्षों तक ऐसी भीषणता का कार्य किया जो पाँच असीरियाई राजाओं ने एक सौ बीस वर्षों में। हम उसे उस पिशाच के रूप में स्मरण करते हैं जिसने सन् १३८१ ई० में इसफ़राइन को भूमिसात् किया, जिसने सब्जावार में १३८३ में दो हजार जीवित बन्दियों का टीला बनवाया और उसे ईंटों से चुनवा दिया, जिसने उसी साल जीरों में पाँच हजार मनुष्यों के सिरों की मीनार खड़ी की, जिसने लूरी के जीवित वन्दियों को १३८६ में चट्टानों के ऊपर से नीचे फेंकवा दिया, जिसने १३८७ ई० में सत्तर हजार आदमियों को कत्ल करके इसफहान में उनके सिरों की मीनारें बनवायीं, जिसने सन् १३९८ में दिल्ली में एक लाख आदमियों को कत्ल किया, जब सन् १४०० में सीवास के

गैरिज़न ने समर्पण कर दिया तब जिसने चार हजार ईसाइयों को जीवित गड़वा दिया। और सीरिया में जिसने सन् १४०० और १४०१ में मनुष्य के सिरों की बीस मीनारें बनवायीं। हमें तैमूर इन्हीं कारनामों से याद आते हैं। और हम स्टेप का उसे दानव समझते हैं जैसे चंगेज़ खाँ और अटिला या इसी प्रकार के और विनाशकारी दैत्य जिनके विरुद्ध उसने अपने जीवन का अधिक भाग धार्मिक युद्ध लड़ने में बिताया। यह पागल व्यक्ति था जिसकी एक सनक थी कि संसार यह समझे कि मेरे समान सैनिक शक्ति वाला कोई व्यक्ति नहीं है और जिसने इस शक्ति का कुप्रयोग इसीलिए किया। इसी को अंग्रेज कवि मारलोने अत्युक्ति के साथ बड़े सुन्दर ढंग से लिखा है और उसे तैमूर के मुख से कहलाया है :—

युद्ध के देवता ने अपना स्थान मुझे दे दिया है,
कि मैं संसार का जेनरल बनूँ,
ईश्वर मुझे हथियार लिए देखकर पीला पड़ गया,
उसे भय हो गया कि मैं उसे गद्दी से उतार न दूँ।
जहाँ कहीं भी मैं जाता हूँ घातक बहनों[१] को पसीना छूटने लगता है,
और मृत्यु भय खाकर इधर-उधर दौड़ने लगती है,
कि वे सदा मेरी तलवार को श्रद्धा अर्पित करती रहें।
करोड़ों आत्माएँ स्टाइक्स[२] के किनारे बैठी रहती हैं
कि कब कैरन[३] आकर हमें उस पार नरक में ले जाता है ?
स्वर्ग और नरक उन मनुष्यों की प्रेतात्माओं से भरा है
जिन्हें मैंने रणक्षेत्र से भेजा है
वे मेरी ख्याति स्वर्ग और नरक में फैलायें[४]

गवर्नर डाकू बन गया

तैमूर और शालमान तथा पिछले असीरियाई राजाओं के जीवन-वृत्त के विश्लेषण में हमने देखा कि तीनों उदाहरणों का एक-सा हाल है। समाज जिस सैनिक शक्ति को अपनी सीमा के निवासियों में इसलिए पुष्ट करता है कि वह बाहरी बैरियों से रक्षा करे, वह यदि अवान्तर भूमि में अपने उचित क्षेत्र को छोड़कर अन्दर की ओर सीमा के निवासियों के भाइयों पर आक्रमण करने लगे तो वह अमंगलकारी और नैतिक दोष हो जाता है। इस सामाजिक बुराई के और भी उदाहरण हमें याद आते हैं।

हम मरशिया के बारे में विचार करेंगे जिसने ब्रिटेन में रोम के दूसरे उत्तराधिकारी राज्यों पर आक्रमण किया। उसने अपनी सेना इसलिए तैयार कर रखी थी कि वेल्स के विरुद्ध अंग्रेजी

---

१. प्राचीन यूरोपीय साहित्य में भाग्य की तीन बहनें मानी गयी हैं।
२. यूनानी पुराण की वैतरणी।
३. वह नाविक जो वैतरणी में नाँव खेकर आत्माओं को पार ले जाता है।
४. क्रिस्टोफर मारलो : तैमूर महान्, २, २२३२–८, २२४५–६।

सीमा की रक्षा करें, अंग्रेजी प्लैटेजेनेट राज्य का उदाहरण भी है जिसने इसके वजाय कि केल्टिक सीमा को पार करके लैटिन ईसाई संसार क्षेत्र को वढ़ाये, फ्रांस को विजय करने के लिए सौ साल तक लड़ाई की, और सिसली के नारमन राजा रोजर का उदाहरण है जिसने अपनी सैनिक शक्ति इटली के राज्यों को जीतने में लगायी और अपने पुरखों के उस कार्य को नहीं किया कि परम्परावादी ईसाई जगत् और दारुस्सलाम पर विजय प्राप्त करके भूमध्यसागर में पश्चिमी ईसाई संसार के क्षेत्र को बढ़ाये। इसी प्रकार यूरोपीय धरती पर मिनोई सभ्यता के माइसीनियन चौकीदारों ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया अपनी जन्मभूमि क्रीट को तहस-नहस करने में। यह शक्ति उन्होंने महाद्वीप के बर्बरों से रक्षा करने के लिए अर्जित की थी।

मिस्री संसार में नील नदी के पहले प्रपात के दक्षिण, दक्षिणी सीमा के लोगों ने इसलिए सैनिक शक्ति अर्जित की कि उत्तर के न्यूबियन वर्वरों के आगमन को रोक सकें किन्तु उन्होंने पीछे मुड़कर अन्दर के लोगों पर आक्रमण किया और पशुवल से दो राजाओं को मिलाकर संयुक्त राज्य वनाया। सैन्यवाद की इस घटना को इसके अपराधी ने बड़ी आत्मतुष्टि के साथ मिस्री सभ्यता के सबसे प्राचीन अनुलेखों में अंकित कराया है। नारमर के चित्र में अंकित है कि ऊपर का मिस्री योद्धा विजयोल्लास के साथ निचले मिस्र को पराजित करके आ रहा है। उसका अंकन इस प्रकार है—विजयी राजा अति-मानव की भांति फूल गया है और वह अकड़े हुए झण्डा बरदारों के पीछे-पीछे चल रहा है। और उसके सामने बैरी की सिर कटी हुई लाशों की दोहरी पंक्तियाँ हैं। इसके नीचे एक बैल के रूप में वह गिरे हुए बैरी को कुचलता है और एक नगर के किले के दरवाजे को छोड़ रहा है। इसके साथ अनुलेख है जिसमें लिखा है उसने १२०,००० मनुष्यों को ४००,००० बैलों को और १,४२२,००० भेड़ और बकरियों को बन्दी बनाया।

इस पुरातन मिस्री भीषण चित्रण में सैन्यवाद की पूरी ट्रेजेडी दिखायी गयी है जिसका अभिनय नारमन के समय से बार-बार हुआ है। इन सब अभिनयों में सबसे भयंकर वह है जिसका अपराधी एथेन्स था, जब उसने 'यूनान के मुक्तिदाता' की भूमिका छोड़कर 'अत्याचारी नगर' का रूप धारण किया। एथेन्स के इस विपथन के कारण सारे यूनान तथा एथेन्स को उस विनाश का सामना करना पड़ा जो एथेनो-पेलोपोनीशियाई युद्ध का कारण हुआ और जिससे वह कभी सँभल न सका। जिन सैनिक क्षेत्रों का सर्वेक्षण इस अध्याय में हमने किया है वे 'कोरोस-युवरीस-एथ' की घातक शृंखला के ज्वलन्त उदाहरण हैं। क्योंकि सैनिक कौशल और शक्ति दोधारी तलवार है। यदि उचित रूप से उसका प्रयोग न किया गया तो चलाने वाले को घातक हानि पहुँचा सकता है। साथ ही जो सैनिक कृत्यों के लिए सत्य है वही मानव के और क्षेत्रों के लिए भी सत्य है जो कम संकटमय है, जहाँ वह बारूद तो 'कोरोस' से 'युबरीस' होते हुए 'एथ' तक पहुँचती है उतनी तीव्र नहीं होती। जो भी मानवी शक्ति हो और जो भी उसका कार्यक्षेत्र हो यह प्रकल्पना कि एक उचित क्षेत्र में उसने सीमित कार्य में सफलता प्राप्त कर ली है तो दूसरी परिस्थिति में भी उसे अपरिमित सफलता प्राप्त होगी बौद्धिक और नैतिक विपथन के सिवाय और कुछ नहीं हैं और इसका परिणाम विनाश ही होता है। इस कार्य-कारण के परिणाम का अब हम असैनिक क्षेत्र से उदाहरण देंगे।

(७) विजय का मद

पावन धर्ममण्डल (द होली सी)

एक और साधारण रूप जो हमें 'कोरोस, युवरीस और एथ' की दुखमय श्रृंखला में मिलता है, वह है विजय का मद। चाहे वह सैनिक विजय के पुरस्कार के कारण हो या आध्यात्मिक संघर्ष में विजय का परिणाम हो। रोम के इतिहास से इन दोनों प्रकारों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। दूसरी शती ई० पू० में रिपब्लिक के नष्ट हो जाने पर सैनिक विजय का नशा और आध्यात्मिक विजय का नशा जो ईसा की तेरहवीं शती में पोपतन्त्र की समाप्ति पर हुआ। रोमन रिपब्लिक के विनाश के सम्बन्ध में हम कह चुके हैं। अब हम दूसरे विषय पर कहेंगे। पश्चिमी संस्थाओं में सबसे बड़ा रोमन धर्ममण्डल था। इसके इतिहास के जिस अध्याय से हमारा अभिप्राय है वह २० दिसम्बर, सन् १०४६ से आरम्भ होता है जब सम्राट् हेनरी तृतीय ने सूतारी के धर्म-परिषद् (साइनाड आव सूतारी) का उद्घाटन किया और बीस सितम्बर को सन् १८७० में राजा विक्टर एमानुएल की सेना ने रोम पर अधिकार कर लिया, समाप्त होता है।

मानवी संस्थाओं में पोप का यह 'ईसाइयों का जनतन्त्र' अद्वितीय है। दूसरे समाजों में जिन संस्थाओं का विकास हुआ है उनसे इनकी तुलना करना बेकार है क्योंकि उनमें और इसमें मौलिक अन्तर है। नकारात्मक रूप में ही इसका ठीक वर्णन हो सकता है। यह जनतन्त्र सीज़र-पोप शासन का ठीक उलटा था, जिस शासन की यह सामाजिक प्रतिक्रिया आध्यात्मिक प्रतिवाद थी। यह वर्णन और किसी वर्णन से अधिक ठीक हिल्डब्रैंड की सफलताओं को बताता है।

जब ग्यारहवीं शती के दूसरे चतुर्थांश में टसकनी का हिल्डब्रैंड-रोम में आ बसा, उसने अपने को पूर्वी रोमन साम्राज्य की परित्यक्त सीमा में पाया जिस पर बाइजेन्टाइन समाज की एक निकृष्ट शाखा ने अधिकार कर रखा था। इस युग के रोमन सैनिक दृष्टि से उपेक्षणीय, सामाजिक दृष्टि से उपद्रवी और आध्यात्मिक तथा आर्थिक दृष्टि से दिवालिये थे। वे अपने लोम्वार्ड पड़ोसियों का सामना नहीं कर सकते और वे अपने देश के तथा सागर पार की पोप की सारी जागीरों को खो चुके थे और जब मठ के जीवन (मोनास्टिक लाइफ) के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रश्न आया तब उन्होंने आल्प्स के पार क्लूनी से निर्देश माँगा। पोपतन्त्र की आध्यात्मिक स्थिति सुधारने का पहला प्रयत्न इस प्रकार हुआ कि उसने रोमनों को त्याग दिया और आल्पस के पार से नियुक्ति हुई। ऐसे विदेशी और तिरस्कृत रोम में हिल्डब्रैंड तथा उसके उत्तराधिकारियों ने पश्चिमी ईसाई समाज की श्रेष्ठ संस्था की स्थापना की। उन्होंने पोप के रोम के लिए ऐसे साम्राज्य की विजय प्राप्त की जिसका प्रभाव रोम के सम्राटों से अधिक मनुष्य के हृदय पर था। और जिसका क्षेत्र पश्चिमी यूरोप में राइन से डैन्यूब तक विस्तृत था जहाँ आगस्टस और मारकस आरीलियस की अक्षौहिणी ने पाँव भी नहीं रखा था।

पोप की यह सब विजय ईसाई जनतन्त्र के विधान के कारण थी, जिसकी सीमा का विस्तार पोप लोग कर रहे थे। यह ऐसा विधान था जिससे लोगों में विरोध के बजाय विश्वास होता था। इस विधान में दो नीतियों का संयोग था। चर्च सम्बन्धी केन्द्रीय शासनवादी नीति और

म्राज्य की राजनीतिक विभिन्नता और अधिकार के हस्तान्तरण की नीति का यह मिलाप था और वैधानिक सिद्धान्त में लौकिक शक्ति पर आध्यात्मिक शक्ति का प्रभुत्व मुख्य बात थी, इस संयोग में एकता प्रमुख थी । इसके कारण पश्चिमी समाज की स्वतन्त्रता और लचीलापन अक्षुण्ण बना रहा, जो विकास के लिए आवश्यक है । उन मध्य के राज्यों में भी जहाँ पोप धार्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार के अधिकारों का दावा करता था, बारहवीं शती के पोपों ने नगर-राज्यों को स्वतन्त्रता के विकास की ओर प्रोत्साहित किया । बारहवीं और तेरहवीं शती में जब इटली में नागरिक आन्दोलन पूरी शक्ति पर था, और जब पश्चिमी ईसाई जगत् में पोप का अधिकार शिखर पर था, वेल्स के एक कवि ने कहा कि कैसी विचित्रता है, जहाँ रोम में पोप की ताड़ना, एक तिनके को भी नहीं हटा सकती वह दूसरी जगह राजाओं की सन्तानों को कँपा रही है ।[1] गिराल्डस कैम्ब्रेनसिस ने अनुभव किया कि मैं एक विरोधाभास उपस्थित कर रहा हूँ जो व्यंग्य के लिए सुन्दर विषय है । इस युग में पश्चिमी ईसाई जगत् के अधिकांश राजाओं तथा नगर-राज्यों ने पोप का आधिपत्य बिना आनाकानी के स्वीकार किया । उसका कारण यह था कि यह सन्देह नहीं था कि पोप लौकिक शक्ति का अपहरण करेगा ।

उस समय जब पोपों की महन्तशाही (हायरार्की) लौकिक तथा क्षेत्रिक (टेरिटोरियल) आकांक्षाओं से तटस्थ रहने की इस राजमर्मज्ञता की नीति के साथ शासन की शक्तिशाली तथा साहसिक क्षमता मिली हुई थी । यह क्षमता रोम के पोपों को बाइजैन्टाइन से उत्तराधिकार में मिली थी । परम्परावादी ईसाई समाज में इस क्षमता का इस बात के लिए प्रयोग किया गया कि रोमन साम्राज्य के पुनर्जीवित प्रेत को यथार्थ बनाया जाय, जो प्रयत्न घातक था। इससे परम्परावादी ईसाई समाज एक भयावह संस्था के बोझ से दब गया, क्योंकि यह बोझ वह नहीं सँभाल सकता था । जब कि ईसाई जनतन्त्र के रोमन सर्जनकर्ताओं ने अपनी शासन-क्षमता, नयी योजना द्वारा और विस्तृत आधार पर, हल्की रचना में लगायी । पोप के मकड़ी के जाले के महीन धागों में, जो पहले बुना गया था मध्ययुगीन पश्चिमी ईसाई समाज स्वतन्त्रता से फँस गया जिससे प्रत्येक भाग को और सम्पूर्ण समाज को लाभ हुआ । बाद में जब संघर्ष के आघात से धागे मोटे और कठोर हो गये, ये रेशमी धागे लोहे के पट्टे बन गये । इनका स्थानीय राजाओं और जनता पर इतना अधिक दबाव पड़ा कि उन्होंने ऐसी मनस्थिति में उन्हें तोड़ा कि इस बात की परवाह नहीं की कि हम अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में उस सम्पूर्ण ईसाई जगत् की एकता को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं जिसे पोपतन्त्र ने स्थापित किया था और सुरक्षित रखा था ।

शासन की क्षमता भी भूमि प्राप्त करने की आकांक्षा का अभाव पोप के निर्मित कार्य में, मूल प्रेरक शक्ति नहीं था । पोप तन्त्र इसलिए सर्जनात्मक हो सका कि उसने एक प्रौढ़ समाज की जाग्रत इच्छा को, जो विकास और उच्च जीवन चाहती थी, बिना संकोच और प्रतिबन्ध के अपना नेतृत्व प्रदान किया उसकी अभिव्यक्ति की और उसका संगठन किया ।

---

[1] दी राइट रेवरेंड एच० के० मानसिगनर मैन : दि लाइव आव दि पोप्स इन दि मिडिल-एजेज़, खण्ड ६, पृ० ७२ ।

पोपतन्त्र ने उसका आकार स्थिर किया और कीर्तिवान् बनाया और बिखरे अल्पसंख्यकों तथा अलग-अलग व्यक्तियों के दिवास्वप्न को साकार किया। और एक मत से उन लोगों को विश्वास हो गया कि इस उद्देश्य के लिए चेष्टा करना श्रेयस्कर है। उन्हें यह जानकर और भी आनन्द हुआ जब उन्होंने देखा कि पवित्र धर्ममण्डल की बाजी लगाकर भी पोप लोग इसके लिए प्रचार कर रहे हैं। ईसाई लोकतन्त्र की विजय के लिए पोप का यह अभियान था कि पादरी वर्ग दो नैतिक प्लेग से मुक्त हों—कामुकता के व्यभिचार और आर्थिक भ्रष्टाचार से, वे यह भी चाहते थे कि लौकिक शक्तियाँ धर्म के विषयों में हस्तक्षेप न करें और पूर्वी ईसाई तथा पवित्र स्थलों को इस्लाम के तुर्की हिमायतियों से मुक्त किया जाय। किन्तु हिल्डब्रैंड के पोप तन्त्र का कुल यही काम नहीं था, क्योंकि कठिन-से-कठिन समय में जब पोपों के नेतृत्व में ये 'पवित्र युद्ध' होते रहे, उन्हें शान्ति के समय के कार्यों के लिए विचार और इच्छा थी जिसके कारण चर्च की सुन्दरतम आत्माभिव्यक्ति होती रही और उसके द्वारा सर्जनात्मक कार्य होता रहा, नवजात विश्व विद्यालय, नये ढंग का मठ का जीवन और भिक्षुओं का नया संगठन।

हिल्डब्रैंडी चर्च का पतन उतना ही विचित्र है जितना उसका उत्कर्ष था। क्योंकि जो भी गुण उसमें उस समय थे जब वह शिखर पर था वे सब उसके ठीक उलटे हो गये जब वह अधोबिन्दु पर पहुँचा। वह ईश्वरीय संस्था भौतिक शक्तियों के विरुद्ध आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के लिए लड़ रही थी और जीत रही थी। वह उन्हीं दोषों से भर गयी जिनका वह विरोध कर रही थी। जिस पवित्र धर्ममण्डल ने धार्मिक पदों के विक्रय के विरुद्ध संघर्ष किया था उसी ने अब पादरियों को विवश किया कि धार्मिक पदोन्नति के लिए रुपये देकर रोम से रसीद प्राप्त कर लें। यद्यपि रोम ने स्वयं मना कर दिया था कि किसी लौकिक अधिकारी से पदोन्नति न खरीदें। जो रोम के पोप की सरकार (क्यूरिया) नैतिक तथा बौद्धिक उन्नति का शीर्षक थी और सबके आगे थी, वही आध्यात्मिक संकीर्णता का दुर्ग बन गयी। धर्म की प्रभुसत्ता ने स्वयं अपने लौकिक अधीनस्थ लोगों अर्थात् स्थानीय राजाओं और उभरते हुए स्थानीय राज्यों के हाथों में आर्थिक और शासकीय साधन दे डाले। इन साधनों को पोप ने ही निर्मित किया था जिससे उसके अधिकार का प्रभाव रहे। अन्त में पोपतन्त्र की एक जागीर का वह स्थानीय राजा रह गया। जिस पोप के पास कभी महान् प्रभुसत्ता थी उसी को अब पोपतन्त्र के विनष्ट साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों का सबसे छोटा भाग पुरस्कार में मिला। उसे इसी थोड़े-से राज्य पर सन्तोष करना पड़ा। क्या कभी कोई संस्था इतनी पतित हुई कि ईश्वर के विरोधियों को उसकी निन्दा करने का अवसर मिले। यह कैसे हुआ और क्यों?

किस प्रकार ऐसा हुआ। यह हिल्डब्रैंड के सार्वजनिक जीवन के सम्बन्ध में सर्वप्रथम लिखित विवरण से पता चलता है।

रोमन चर्च की सर्जनात्मक आत्मा जिसने ग्यारहवीं शती में ईसाई जनतन्त्र स्थापित करके सामन्ती अराजकता से पश्चिमी समाज को मुक्त करने का जैसे प्रयत्न किया उसी प्रकार द्विविधा में पड़ गये जिस प्रकार हमारे समय में उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को दूर करने के लिए विश्व-व्यवस्था स्थापित करने में लगे हैं। उनके अभिप्राय का मूल था शारीरिक बल के स्थान पर आत्मिक अधिकार स्थापित करना। और उनकी बड़ी-बड़ी विजय आध्यात्मिक तलवार से हुई। किन्तु ऐसे अवसर भी आये जब ऐसा जान पड़ा

कि शारीरिक बल आध्यात्मिक शक्ति की मलिनता के साथ अवहेलना कर सकता है और ऐसी ही अवस्था में रोमन चर्च की सैनिक तन्त्र को चुनौती मिली कि स्फिक्स की पहेली का उत्तर दे। अर्थात् क्या ईश्वर के सैनिक को अपने आध्यात्मिक शस्त्र को छोड़कर किसी दूसरे अस्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए, चाहे उसकी गति स्थिर हो जाय ? या उसे अधिकार है कि जब शैतान ईश्वर से युद्ध करे तब बैरी के विरुद्ध उसी के अस्त्र का प्रयोग करे ? हिल्डब्रैंड ने अन्तिम विकल्प को चुना। जब ग्रेगरी षष्ठ ने उसे पोप के खजाने का संरक्षक मनोनीत किया और उसने देखा कि बराबर उसे लुटेरे लूट रहे हैं उसने सेना तैयार की और लुटेरे को सेना द्वारा पराजित किया।

जिस समय हिल्डब्रैंड ने यह कार्य किया उसके आन्तरिक नैतिक चरित्र का पता लगाना कठिन था। चालीस साल के बाद उसके अन्तिम समय भी इस पहेली का उत्तर थोड़ा-थोड़ा ही स्पष्ट होने लगा। क्योंकि जब वह सन् १०८५ में सैलेरिनों में निर्वासित होकर पोप के रूप में मर रहा था, रोम दूसरी विपत्ति के बोझ से धराशायी हो गया था और यह उस नीति के कारण जो उसके बिशप द्वारा व्यवहृत की गयी थी। सन् १०८५ में नारमनों ने रोम को लूटा और उसे जला दिया। पोप ने इन्हें इसलिए बुलाया था कि सन्त पीटर की वेदी से, जो पोप का खजाना था, उस पर जो सैनिक संघर्ष हो रहा था, उसे सहायता दें। यह संघर्ष सारे पश्चिमी ईसाई संसार में फैल गया। हिल्डब्रैंड और सम्राट् हेनरी चतुर्थ के बीच के युद्ध की चरम सीमा से कुछ उस युद्ध की बानगी मिलती है जो डेढ़ सौ साल बाद इनोसेंट चतुर्थ और फ्रेडरिक द्वितीय में हुआ और जो अधिक भीषण और विनाश करने वाला था। जब हम इनोसेंट चतुर्थ तक पहुँचते हैं, जो वकील से सैनिक बन गया था, हमारे सन्देह दूर हो जाते हैं। हिल्डब्रैंड स्वयं हिल्डब्रैंडो चर्च को ऐसी राह पर लाया जिससे उसके बैरियों की विजय हो——उसके बैरी थे संसार, शरीर और शैतान जो ईश्वर के नगर को ध्वस्त करना चाहते थे जिसे वह धरती पर लाना चाहता था——

> उसने किसी बुद्धिमान् को स्वीकार नहीं किया
> न किसी शिक्षक को; चर्च भी अपने
> पुरोहितों की सभा में इसलिए बैठा था
> कि सीज़र की गद्दी पर सन्त पीटर को बैठाये
> और इस प्रकार मानव के लिए उन वचनों को पूरा करे
> जिनके लिए ईसा को उन्होंने पूजा और उससे प्रेम किया।
> इस किसी बात ने उसके धार्मिक नियमों को
> शिथिल नहीं किया कि वह लौकिक शासन का विस्तार करे।[1]

यदि हम इस बात को समझा सके हैं कि किस प्रकार पोपतन्त्र को शारीरिक शक्ति के दैत्य ने ग्रस लिया, जिसका वह शमन करना चाहता था, तब हम उस तथ्य को भी पा गये कि किस प्रकार पोप के गुण दोषों में परिवर्तित हो गये। आध्यात्मिक तलवार की जगह भौतिक

---

[1] राबर्ट ब्रिजेज : दि टेस्टामेन्ट आव ब्यूटी, ४,२, २५९–६४।

तलवार का आना ही मुख्य परिवर्तन है, शेष सब तो स्वाभाविक परिणाम हैं। उदाहरण के लिए यह कैसे हुआ कि पवित्र धर्ममण्डल जिसका ग्यारहवीं शती में मुख्य सम्बन्ध पुरोहितों की अर्थ-व्यवस्था से केवल इतना था कि पदोन्नति के लिए धन न लिया जाय, वही तेरहवीं शती में अपने नियुक्त व्यक्तियों के लाभ के लिए धन की व्यवस्था करें ? और चौदहवीं शती में अपने लाभ के लिए उसी धार्मिक आय पर कर लगाये जिसे उसने लौकिक अधिकारियों को धार्मिक पदोन्नति के लिए घृणित कहकर वर्जित कर दिया था। इसका उत्तर है कि पोपतन्त्र सैनिकवादी हो गया और युद्ध में धन की आवश्यकता पड़ती है।

तेरहवीं शती के पोपों और हाहेनस्टाउफ़ेन के बीच जो महान् युद्ध हुआ उसका वही परिणाम हुआ जो उन युद्धों का हुआ करता है जो कटुपूर्ण अन्त तक होते हैं। नाम मात्र के विजयी ने अपने पराजित पर घातक प्रहार किया और उसी में अपने ऊपर भी घातक प्रहार कर डाला। इन दोनों योद्धाओं में वास्तविक विजयी तीसरा था। पचास साल बाद फ्रेडरिक द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् पोप बोनिफेस अष्टम ने फ्रांस पर उसी वज्र से प्रहार किया जिससे उसने (पवित्र रोमन) सम्राट् को ध्वस्त किया था। परिणाम में सन् १२२७–६८ के बीच के युद्ध के कारण पोपतन्त्र भी उतना ही नष्ट हो गया जितना उसने (पवित्र रोमन) साम्राज्य को नष्ट किया था। फ्रांस उतना बलशाली हो गया जितना पोप या साम्राज्य उस युद्ध के पहले था, जिसमें दोनों ने एक-दूसरे को नष्ट कर दिया। राजा फिलिप ला बेल ने नोत्रदाम के गिरजाघर के सामने पोप के आदेश (बुल) को जला दिया जिसमें पादरियों और जनता की सहमति थी। फिर पोप का अपहरण कर दिया और उसकी मृत्यु के बाद पोप की राजधानी रोम से एविगनान को बदलवा दी। इसके बाद (१३०५–७८) तक वह बन्दी रहा और (१३७९–१४१५) तक रोम तथा फ्रांस में विच्छेद रहा।

यह अब निश्चित हो गया कि स्थानीय लौकिक राजा, शीघ्र या विलम्ब से अपने-अपने राज्यों में उन सब शासकीय और आर्थिक संगठनों को पा जायेंगे जिन्हें पोप अपने लिए निर्मित कर रहे थे। यह स्थानान्तरण केवल समय की बात थी। सड़क के सीमा-चिह्न के रूप में देखें—इंग्लैंड की प्रोवाइज़रों की संविधि[1], (सन् १३५१) और प्रिमुनायर[2] (१३५३), वे सुविधाएँ, जो सौ साल बाद क्युरिया को विवश होकर फ्रांस और जरमनी को इसलिए देनी पड़ी कि बैसेल की परिषद् में वह समर्थन न करें, सन् १५१६ की फ्रांस तथा पोप की सन्धि और १५३४ का इंगलिश एक्ट आव सुप्रिमेसी।[3] पोप की सत्ता का लौकिक शासक के हाथों में स्थानान्तरण 'रिफार्मेशन' (धार्मिक सुधार का आन्दोलन) के दो सौ साल पहले से आरम्भ

---

[1] स्टेट्यूट आव प्रोवाइजर्स—इस कानून के अनुसार पोप किसी को किसी ऐसे स्थान पर नियुक्त नहीं कर सकता था जो रिक्त न हो।—अनु०

[2] वह कानून जिससे मजिस्ट्रेट को अधिकार होता था कि उन लोगों को तलब कर सके जो पोप की व्यवस्था इंग्लैंड में रखने का प्रयास करते थे।—अनु०

[3] वह विधि जिससे पोप का अधिकार हटाकर राजा का अधिकार स्थापित किया गया। —अनुवादक

हो गया था और वह उन सभी राज्यों में हुआ जो कैथोलिक बने रहे और जो प्रोटेस्टेंट हो गये। सोलहवीं शती में प्रक्रिया पूरी हो गयी। और यह संयोग की बात नहीं है कि उसी शती में वह नींव पड़ी जिस पर आधुनिक पश्चिमी समाज के अधिकेन्द्रित (टोटालिटेरियन) राज्य खड़े हैं। जो कुछ सीमा-चिह्न हमने बताये हैं उस प्रक्रिया में प्रमुख बात थी सार्वभौम धर्मतन्त्र (चर्च) से हटकर स्थानीय लौकिक राज्यों की ओर भक्ति का चला जाना।

उन लूट के मालों में सबसे मूल्यवान् निधि मानव-हृदय पर अधिकार था जो इस महान् तथा उच्च संस्था से इन्हें मिली थी। क्योंकि आय के लिए धन उगाहने और सेना सज्जित करने की अपेक्षा भक्ति प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर है और इसी से ये नये बने राज्य अपने को जीवित रख सके। इसी लक्षण के अनुसार, हिल्डब्रैंड का जो आध्यात्मिक उत्तराधिकार हमें मिला है, उससे जो स्थानीय राज्य एक समय निर्दोष थे वे आज सभ्यता के लिए अभिशाप बन गये हैं। क्योंकि भक्ति की भावना जो भगवान् की सेवा के कारण परोपकारी सर्जनात्मक शक्ति थी, वही जब मनुष्य के गढ़े देवताओं की ओर लगी तब विनाशात्मक शक्ति हो गयी। जैसा हमारे मध्ययुगीन पुरखे जानते थे, स्थानीय राज्य मनुष्य की बनायी संस्थाएँ हैं वे आवश्यक और लाभकारी थीं और जागरूकता किन्तु बिना जोश के, उनसे साधारण सामाजिक कर्तव्य-पालन की अपेक्षा करती थीं। जिस प्रकार आज हम नगरपालिकाओं और जिला परिषदों के प्रति कर्तव्यपालन करते हैं। इन सामाजिक तन्त्रों के प्रति देवता के समान भक्ति दिखाना विनाश को बुलाना है।

हमें सम्भवतः उस प्रश्न का कुछ उत्तर मिल गया कि किस प्रकार पोपतन्त्र को ऐसे विचित्र भाग्य परिवर्तन का सामना करना पड़ा। किन्तु प्रक्रिया के वर्णन करने में हमने कारण नहीं बताया। क्या कारण था कि मध्ययुगीन पोपतन्त्र अपने ही यन्त्रों का दास बन गया और उसने अपने ही भौतिक साधनों से अपने को ही धोखा दिया। क्यों वह आध्यात्मिक पक्ष से रह गया जिसके लिए उसका निर्माण हुआ था। इसका उत्तर इसमें जान पड़ता है कि आरम्भ की सफलता का दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव था। शक्ति और शक्ति का संघर्ष भयंकर है। किसी सीमा तक तो यह उचित है, जो अन्तरात्मा से जाना जा सकता है—कैसे यह नहीं कहा जा सकता परन्तु इसका परिणाम भयावह होता है क्योंकि आरम्भ में बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हो जाती है। पवित्र रोमन साम्राज्य से संकटमय संघर्ष में आरम्भ में विजय के मद में आकर ग्रेगरी सप्तम (हिल्डब्रैंड) ने शक्ति का प्रयोग जारी रखा और आध्यात्मिक धरातल पर की विजय अपना ही अन्त हो गयी। इस प्रकार पोप ग्रेगरी सप्तम साम्राज्य से इसलिए लड़ रहा था कि धर्मतन्त्र के सुधार में जो अड़चन है उसको हटाये, पोप इनोसेंट षष्ठ साम्राज्य से इसलिए लड़ा कि उसकी लौकिक सत्ता को नष्ट कर दे।

क्या हम उस विशेष प्रकरण का पता लगा सकते हैं जब हिल्डब्रैंड की नीति पथ से विचलित हो गयी, या पुरानी परम्परा की भाषा में संकीर्ण राह से वह हट गयी। हमें उस प्रकरण के पता लगाने का प्रयत्न कऱना चाहिए जब वह गलत रास्ते की ओर मुड़ी।

सन् १७०५ ई० तक पादरियों की काम-वासना तथा आर्थिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध दोहरी लड़ाई सारे पश्चिमी संसार में सफलता के साथ आरम्भ हुई। यह विजय रोमन धर्ममण्डल की शक्ति से हुई। यही रोमन धर्ममण्डल पचास साल पहले अपने व्यभिचार के लिए कुख्यात था।

यह विजय हिल्डब्रैंड का व्यक्तिगत कार्य था। यह लड़ाई वह आल्पस के पार लड़ा और पोप की गद्दी के पास। और अन्त में वह उस पद पर पहुँचा जिसे उसने धूल में से ऊपर उठाया। वह यह युद्ध भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी शस्त्रों से लड़ा, जिनका भी वह प्रयोग कर सका। जब वह पोप ग्रेगरी सप्तम के रूप में शासन कर रहा था, उस समय विजय की घड़ी में उसने ऐसा कदम उठाया जिसे उसके समर्थक समझते हैं कि बहुत आवश्यक था और उसके लिए तर्क उपस्थित करते हैं और उसके आलोचक भी तर्क उपस्थित करते हैं कि वह विनाशकारी था। उसी साल हिल्डब्रैंड ने अपने युद्ध-क्षेत्र को बढ़ाया। पहले तो यह युद्ध रखेलियों के रखने और धर्म-पद विक्रम के विरुद्ध था जो उचित जान पड़ता था, अब वह धार्मिक अभिषेक के विरुद्ध भी बढ़ा, जो संघर्ष विवादास्पद है।

तर्क की दृष्टि से धार्मिक अभिषेक के विरुद्ध का संघर्ष कदाचित् उचिते जान पड़े क्योंकि रखेलियों के रखने और धर्म-पद-विक्रम के विरुद्ध के संघर्ष का यह अन्तिम रूप जान पड़ता है और यदि ये तीनों संघर्ष धर्मतन्त्र की स्वतन्त्रता का संघर्ष माना जाय। हिल्डब्रैंड की दृष्टि में सारा परिश्रम व्यर्थ जान पड़ा यदि वह काम और लक्ष्मी के विरुद्ध लड़कर धर्मतन्त्र को लौकिक शक्ति के बन्धन में छोड़ देता। किन्तु इस तर्क से एक प्रश्न उठता है जिसे हिल्डब्रैंड के आलोचक पूछने के अधिकारी हैं यद्यपि वे स्वयं इसका उत्तर इसके समर्थन या विरोध में नहीं दे सकते। सन् १०७५ में क्या ऐसी परिस्थिति थी जिसमें कोई तीव्र बुद्धि और दृढ़ मन वाला व्यक्ति, जो पोप की गद्दी पर बैठा हो, यह सोच सकता था कि धर्म-तन्त्र के सुधारवादी दल में जिसका प्रतिनिधि रोमन क्यूरिया था और ईसाई राष्ट्रमण्डल की लौकिक शक्ति में, जिसका प्रतिनिधि पवित्र रोमन साम्राज्य था, किसी सच्चे और फलदायक सहयोग की सम्भावना नहीं थी? इस प्रश्न पर प्रमाण का बोझ कम-से-कम दो कारणों से हिल्डब्रैंड के समर्थकों पर है।

पहली बात यह है कि न तो हिल्डब्रैंड, न उसके समर्थक—सन् १०७५ के उस आज्ञप्ति (डिकरी) के पहले या बाद जिसमें जो पादरी नहीं थे उनकी पदोन्नति का निषेधकिया गया था—इस बात से इनकार कर सकते कि धर्मतन्त्र के, पोप से लेकर नीचे तक के, पादरी अधिकारियों के चुनाव में लौकिक अधिकारियों का भी योगदान था। दूसरी ओर १०७५ से पहले तीस वर्षों में रोमन धर्ममण्डल और पवित्र रोमन साम्राज्य रखेलियों और धर्म-व्यवस्था में पदोन्नति वाले संघर्ष में कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम कर रहे थे। यह भी स्वीकार करना होगा कि हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद और उसके पुत्र की अवयस्कता (माइनारिटी) में साम्राज्य का यह सहयोग कम हो गया और जब हेनरी चतुर्थ वयस्क हो गया उसका आचार असन्तोषजनक था। इन परिस्थितियों में पोपतन्त्र ने वह नीति अपनायी कि जो पादरी नहीं थे (ले) उनका धार्मिक नियुक्तियों में हाथ न रहे। यह उचित भले ही रहा हो, बड़ा क्रान्तिकारी कदम था और सब उत्तेजनाओं के होते हुए हिल्डब्रैंड १०७५ में युद्ध के लिए न ललकारता तो ऐसा समझा जाता है कि अच्छा सम्बन्ध फिर स्थापित हो जाता। यह धारणा बनाये बिना नहीं रहा जा सकता कि हिल्डब्रैंड असहिष्णुता के धोखे में आ गया जो 'यूब्रीस' का प्रमुख चिह्न है। साथ ही यह धारणा भी होती है कि उसके श्रेष्ठ उद्देश्य में साम्राज्य की शक्ति से बदला लेने की भावना भी मिली हुई थी, उस अपमान का बदला, जो १०४६ में सुतारी की धर्मसभा में, पतित पोपतन्त्र का

किया गया था। यह अन्तिम धारणा इस बात से और दृढ़ हो जाती है कि पोप का ताज पहनते समय हिल्डब्रैंड ने ग्रेगरी का नाम रखा जो उस पोप का था जिसे उसने गद्दी से उतारा।

पदोन्नति के इस नये प्रश्न को सैनिक बल के सहारे उठाने के कारण साम्राज्य और पोपतन्त्र के बीच संघर्ष संकटपूर्ण था क्योंकि यह तीसरा विषय पहले दोनों विषयों की अपेक्षा कम स्पष्ट था। पहले दोनों विषयों पर कुछ ही पहले साम्राज्य और पोपतन्त्र सहमत थे।

सन्दिग्धता का एक कारण इसलिए यह था कि हिल्डब्रैंड के समय तक यह निश्चित हो चुका था कि बिशप की श्रेणी के पादरी अधिकारी की नियुक्ति में अनेक दलों की सहमति आवश्यक थी। धार्मिक तन्त्र की मर्यादा का प्रारम्भिक एक नियम था कि बिशप का चुनाव पादरियों तथा उसके धर्ममण्डल के लोगों द्वारा होना चाहिए और उसका पवित्रीकरण संस्कार उसके प्रदेश के बिशपों के निश्चित कोरम द्वारा होना चाहिए। और जब से कान्स्टेंटाइन के धर्म-परिवर्तन के समय यह प्रश्न उठा, किसी लौकिक शक्ति ने बिशपों के धार्मिक विशेषाधिकार को हड़पने की चेष्टा नहीं की, न चुनौती दी। कम-से-कम सिद्धान्ततः यह अधिकार पादरियों और जनता का था। विधानतः क्या उचित है इसका विचार स्थगित करके लौकिक अधिकारियों द्वारा यथार्थतः यही होता रहा कि प्रत्याशियों को वे नामांकित करते थे और चुनाव में उन्हें प्रतिषेध (विटो) का अधिकार था। हिल्डब्रैंड ने स्वयं अनेक अवसरों पर इसे स्वीकार किया था।

इसके अतिरिक्त ग्यारहवीं शती तक व्यावहारिक दृष्टि से पादरियों की नियुक्ति पर परम्परागत लौकिक नियन्त्रण और दृढ़ हो गया था। क्योंकि पादरी बहुत दिनों से दूसरे अधिकाधिक धार्मिक कृत्यों के साथ-साथ लौकिक कार्य भी करते आये थे। सन् १०७५ तक पश्चिमी ईसाई जगत् का बहुत कुछ सिविल शासन पादरियों के हाथ में था। जो सामन्ती काल से करते आये थे। जो पादरी नहीं हैं उनके धर्म-संस्कार में पादरियों का हाथ न होने से लौकिक शक्ति के अधिकार क्षेत्र से उसके कार्यक्षेत्र का बहुत-सा भाग निकल जाता और धर्मतन्त्र सिविल और धार्मिक दोनों प्रकार का एक में ही शासक बन जाता। यह धारणा कि लौकिक शासकों के हाथों में सिविल कार्य भी सौंप दिये जाते, बेकार है। संघर्ष के दोनों दल जानते थे कि ऐसे कार्य करने वाले लौकिक कर्मचारी नहीं हैं।

१०७५ में हिल्डब्रैंड ने जो कार्य किया उसकी गम्भीरता उसके भयंकर परिणाम के आयाम (डाइमेंशन) से प्रकट होती है। इस धार्मिक पदोन्नति के विषय पर हिल्डब्रैंड ने अपनी सारी प्रतिष्ठा की बाजी लगा दी जो उसने पोपतन्त्र के लिए पिछले तीस वर्षों में प्राप्त की थी। हेनरी चतुर्थ के आल्पस पार के राज्य की ईसाई जगत् के हृदय पर बहुत प्रभाव था और उसके साथ-ही-साथ सैक्सन सेना की सहायता थी जिसके बल पर वह सम्राट् को कैनोसा[1] लाया। यद्यपि कैनोसा में सम्राट् का ऐसा अपमान हुआ जिसका फिर प्रतिकार नहीं हो सका किन्तु यह युद्ध का अन्त नहीं था, पुनरारम्भ था। पचास वर्षों के युद्ध ने पोपतन्त्र और साम्राज्य के बीच बहुत चौड़ी और गहरी खाइँ उस विशेष बात पर बना दी थी जिसके कारण संघर्ष आरम्भ हुआ।

---

[1] यह इटली का एक गाँव था जहाँ १०७७ में हेनरी चतुर्थ हिल्डब्रैंड (पोप ग्रेगरी सप्तम) के पास आया और उसने क्षमा माँगी।—अनु०

यह खाईं किसी कुशल समझौते से पट नहीं सकती थी । पदोन्नति का विवाद ११२२ की धार्मिक सन्धि के बाद भले ही मृत हो गया हो किन्तु इसके कारण जो बैर उत्पन्न हो गया था वह बढ़ता ही गया और मनुष्य के हृदय की कठोरता के कारण और उनकी आकांक्षाओं को विकृति के कारण नये-नये रूप लेता गया ।

हमने १०७५ के हिल्डब्रैंड के निश्चय पर विस्तार से विचार किया क्योंकि हमें विश्वास है जो कुछ बाद में हुआ इसी महत्त्वपूर्ण निश्चय का परिणाम है । हिल्डब्रैंड ने अपनी विजय के मद में जिस संस्था को कलंक के पंक से उठाकर वैभव की ऊँचाई पर प्रतिष्ठित किया था उसी को गलत रास्ते पर वह ले गया और उसका कोई उत्तराधिकारी उसे ठीक राह पर न ला सका। हम इस कथा के और ब्योरे में न जायँगे । इनोसेंट तृतीय पोप का कार्य काल (११९८-१२१६) एन्टोनाइन युग[1] है, हिल्डब्रैंड के पोपतन्त्र का भारतीय ग्रीष्म । किन्तु इस पोप की महत्ता परिस्थिति विशेष के कारण है । जैसे होहेनस्टाउफेन वंश की बहुत दिनों की अवयस्कता और उसका जीवन चरित इस बात का उदाहरण है कि एक उत्कृष्ट शासक अदूरदर्शी राजमर्मज्ञ (स्टेट्समैन) हो सकता है । इसके बाद पोप का युद्ध फ्रेडरिक द्वितीय और उसके पुत्र से विनाश होने तक चला, फिर अनेग्नी का दुखपूर्ण अन्त जो कैनोसा का लौकिक हाथों द्वारा घृणित बदला था, कैद और विच्छेद, धार्मिक परिषद् के आन्दोलन की अकाल प्रसूत संसदीय व्यवस्था, इटालियाई पुनर्जागरण के काल में पोपतन्त्र का अन-ईसाईपन (पेगेनाइजेशन), सुधार आन्दोलन से (रिफार्मेशन) से कैथोलिक धर्मतन्त्र का विघटन, प्रति-सुधार (काउन्टर रिफार्मेशन) जनित अनिर्णीत किन्तु भयानक संघर्ष अठारहवीं शती में पोप की नगण्यता और उन्नीसवीं में उसकी सक्रिय अनुदारता।

किन्तु यह अपूर्व संस्था जीवित[2] है । आज जिस समय हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं, यह उचित है कि पश्चिमी संसार में जितने पुरुष और स्त्री जीवित हैं और जिन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार किया है वे 'वचन के अनुसार' उत्तराधिकारी हैं । और हमारे साथ जितने गैर-ईसाई हैं, जिन्होंने पश्चिमी जगत् के जीवन का अनुकरण कर लिया है, वे भी उसी 'वचन' के 'उत्तराधिकारी' हैं। उन्हें चाहिए ईसा के पुरोहित (पोप) से विनती करें कि अपनी महान् पदवी की प्रतिष्ठा स्थापित करें । क्या पीटर के स्वामी (ईसा मसीह) ने पीटर से नहीं कहा था कि जिसे अधिक दिया गया है, उससे अधिक लिया जयगा, जिसे मनुष्य ने बहुत सौंपा है उससे उतना ही अधिक वे माँगेंगे? रोम के देवदूत (पोप) को हमारे पूर्वजों ने पश्चिमी ईसाई जगत् का भाग्य सौंप दिया था, जो उनकी सारी संपत्ति थी । जब ईश्वर के सेवक ने 'जो उसकी इच्छा जानता था, 'अपने को उसकी इच्छा के अनुसार सन्नद्ध नहीं किया' तब उसे 'अनेक कोड़ों का दण्ड' मिला । इसका आघात,

---

[1] यह काल रोम साम्राज्य का स्वर्ण काल माना जाता है । इसमें टाइटस एन्टोनीनस तथा उसके पुत्र ने राज्य किया (सन् १३८ से १८० तक) ।—अनु०

[2] एक विख्यात रोमन कैथोलिक विद्वान् ने एक बार निजी बात-चीत में कहा (इसके लिए उसका नाम नहीं बताया जा सकता)—'मेरा विचार है कि कैथोलिक धर्मतन्त्र ईश्वरीय है। उसके ईश्वरीय होने का प्रमाण मैं यह समझता हूँ कि कोई मानवी संस्था जिसका संचालन इस प्रवंचनापूर्ण पागलपन से किया जाता, पन्द्रह दिन भी नहीं टिक सकती थी ।—सम्पादक

'उन पुरुषों और स्त्रियों' पर भी पड़ा जिन्होंने अपनी आत्मा ईश्वर के दासानुदास को सौंप दी। दास के 'यूबरीस' का दण्ड हमें मिला। अब जिसके कारण दण्ड मिला उसका कर्तव्य है कि, चाहे कैथोलिक हो या प्रोटेस्टेंट, ईसाई या गैर-ईसाई, सबका उद्धार करे। यदि इस संकटकाल में दूसरा हिल्डब्रैंड जन्म ले तो क्या वह उस पीड़ा से शिक्षा लेगा जो शिक्षा पोप ग्रेगरी सप्तम के विजय के मद के विनाश के कारण उत्पन्न होनी चाहिए। और उससे सचेत होकर हमारा रक्षक हमारी रक्षा करेगा।

५

सभ्यताओं का विघटन

१७. विघटन का रूप

(१) साधारण सर्वेक्षण

सभ्यताओं के पतन के पश्चात् उनके विघटन पर विचार करते समय हमें वैसे ही प्रश्न का सामना करना पड़ेगा जैसा सभ्यताओं के जन्म तथा उनके विकास पर विचार करते समय करना पड़ा था। विघटन नयी समस्या है अथवा पतन का स्वाभाविक और अवश्यम्भावी परिणाम है ? हमने जब पहले की समस्या पर विचार किया था कि क्या सभ्यताओं के विकास की समस्या उसकी उत्पत्ति से भिन्न है तब हमें स्वीकारात्मक उत्तर मिला था। इसका कारण यह था कि हमें इस बात की जानकारी हो गयी कि अनेक अविकसित सभ्यताएँ हैं जिन्होंने उत्पत्ति की समस्या तो सुलझा ली, किन्तु विकास की समस्या न सुलझा सके। अब हम ऊपर के उसी प्रकार के प्रश्न का उत्तर भी स्वीकारात्मक देंगे। हम दिखायेंगे कि कुछ सभ्यताओं का विकास पतन के बाद रुक गया और बहुत काल तक वे अश्मीकरण (पेट्रिफिकेशन) की अवस्था में रहीं।

अश्मीकृत सभ्यता का क्लासिकी उदाहरण मिस्री सभ्यता के इतिहास के एक समय से मिलता है, जिस पर हम विचार कर चुके हैं। जब पिरामिड निर्माताओं के बोझ से मिस्री समाज का पतन हो गया और जब विघटन की पहली से दूसरी और दूसरी से तीसरी अवस्था में वह पहुँच गया, जो इस प्रकार थी। संकट की स्थिति, सार्वभौम राज्य और अन्त:काल। और तब यह समाज जो मृतप्राय दिखाई देता था, अप्रत्याशित रूप से एकाएक दूसरी ओर मुड़ गया। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि वह अपना जीवन पूरा कर रहा है। यदि हम अस्थायी रूप में हेलेनी उदाहरण को मानक मानें, पहले-पहल यह प्रक्रिया हमें दिखाई दी थी तो हम देखेंगे कि मिस्री समाज अन्त:काल के बाद दूसरी राह पर चला गया। उसका विघटन नहीं हुआ और उसका जीवन दुगना हो गया। यदि हम मिस्री समाज के समय-विस्तार को उस समय ले लें जब उस पर ईसा के पहले सोलहवीं शती के प्रथम चतुर्थांश में हाइक्सों के आक्रमण से गैलवीनी (गैलवेनिक) प्रतिक्रिया हुई थी और उस समय तक जब ईसवी संवत् की पाँचवीं शती आयी और मिस्री संस्कृति का अन्तिम चिह्न मिट गया तो हम देखते हैं कि यह दो हजार साल उतना ही लम्बा है जितना मिस्री समाज की उत्पत्ति, विकास, पतन और पूर्ण विघटन का काल। यदि हम विपरीत ढंग से इसकी गणना करें तो ईसा के पूर्व सोलहवीं शती से मिस्र पुन:संगठन से लेकर ई० पू० चार हजार वर्ष पहले, किसी अज्ञात तिथि तक जब आदिम स्तर से वह पहले-पहले उठा, इतना ही समय होता है। परन्तु दूसरे युग में मिस्री समाज का जीवन-काल मृत्यु के समान ही था। इन दो हजार

वर्षों में जो फालतू थे, वह सभ्यता जो पहले सजीव और सार्थक थी, बिना विकास और शक्ति के जैसे-तैसे जीवन-यापन कर रही थी।

केवल यही उदाहरण नहीं है। यदि हम सुदूर पूर्व समाज के मुख्य देश चीन के इतिहास को देखें और उसके पतन-काल को देखें तो उसकी समता ईसा की नवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश में तांग साम्राज्य के पतन काल से कर सकते हैं। फिर 'संकटकाल' से होते हुए सार्वभौम राज्य वनते हुए विघटन की प्रक्रिया हम देख सकते हैं और फिर एकाएक प्रतिक्रिया होती है जो उसी प्रकार की है जो हाइक्सों के आक्रमण के वाद मिस्रियों की हुई। मिका वंश के स्थापक हुंग बू के नेतृत्व में दक्षिण चीन का विप्लव सुदूर पूर्वी सार्वभौम राज्य के विरुद्ध था जिसे वर्बर मंगोलों ने स्थापित किया था। यह वन-विप्लव की याद दिलाता है जो आठवें वंश के प्रतिष्ठापक अमोसिस के नेतृत्व में हुआ था। यह उस 'उत्तराधिकारी राज्य' के विरुद्ध था जो वर्बर हाइक्सों ने त्यक्त और निर्जीव मिस्री सार्वभौम राज्य (तथाकथित मध्य साम्राज्य) के एक भाग पर स्थापित किया था। परिणाम में भी समानता है। क्योंकि सुदूर पूर्व समाज जल्दी से सार्वभौम राज्य बनकर अन्त:काल व्यतीत कर विघटित होकर विनष्ट नहीं हुआ। इसके विपरीत अश्मीभूत रूप में वहुत दिनों तक रहा।

इन दो उदाहरणों के साथ हम और विलुप्त अश्मीभूत सभ्यताओं का नाम जोड़ दें, जो हमारी दृष्टि में आये हैं; भारत में जैन, लंका, वर्मा, श्याम और कंबोडिया में हीनयानी बौद्ध, तिब्वत और मंगोलिया के लामा ढंग के महायानी वौद्ध। ये सब भारतीय सभ्यता के अश्मीभूत टुकड़े हैं, इसी प्रकार यहूदी, पारसी, नेस्टोरी और मोनोफाइसाइट सीरियाई सभ्यता के अश्मीभूत टुकड़े हैं।

हम अपनी सूची और नहीं बढ़ा सकते, मगर इतना कह सकते हैं कि मेकाले के विचार से इस प्रकार का अनुभव ईसा की तीसरी और चौथी शती में हेलेनी सभ्यता को होते-होते रह गया। 'दो प्राचीन विख्यात राष्ट्रों की भावना विशेष ढंग से वहिष्कारवादी थी। ऐसा तथ्य जान पड़ता है कि यूनानी केवल अपने ऊपर मुग्ध थे और रोमन अपने ऊपर तथा यूनानियों पर मुग्ध थे।... इसका परिणाम विचारों की संकीर्णता और तद्रूपता थी। यदि हम इस प्रकार कहें तो कह सकते हैं कि उनकी वुद्धि अन्दर की ओर ही प्रकाशित रही और इसलिए वह वंध्या हो गयी, उसका अध:पतन हो गया। सीज़रों की निरंकुशता, उनका धीरे-धीरे सब राष्ट्रीय विशेषताओं का मिटाना और दूर-से-दूर प्रदेशों को एक-दूसरे में आत्मसात् करना—इनके कारण अनिष्ट और वढ़ गया। ईसा की तीसरी शती की समाप्ति के बाद मानवता का भविष्य भयानक रूप से विषादमय हो गया था। यह महान् समाज़ उससे भी भयावह विपत्ति में पड़ने वाला था, जो राष्ट्रों पर एकाएक भस्म कर देने वाली विनाशकारी व्याधि के रूप में आया करती है। वह व्याधि स्ट्रल्डब्रुगों[1] के समान चीनी सभ्यता पर आने वाली थी। यह व्याधि लड़खड़ाता, राल टपकाता पक्षाघात से पीड़ित दीर्घजीवन था। डायोक्रीशियन[2] की प्रजा और चीनी साम्राज्य

[1] स्ट्रल्डब्रुग—'गुलिवर की यात्रा' में वह जाति जिसे अमरता का अभिशाप मिला था। —अनुवादक

[2] रोम का सम्राट् जो नितान्त निरंकुश शासक था।—अनुवादक

के लोगों में अनेक समानताएँ दिखायी जा सकती हैं जहाँ शतियों तक लोगों ने न कुछ सीखा है, न कुछ अनसीखा है। जहाँ शासन, शिक्षा और जीवन की सारी व्यवस्था केवल रस्म रह गयी। जीवन की वहाँ न वृद्धि है, न विकास और जिस प्रकार कोई सिक्का धरती में गाड़ दिया जाय या रूमाल में लपेट कर रख दिया जाय, उसी प्रकार उनके अनुभव न घटते हैं, न वढ़ते हैं। इस जड़ता को दो क्रान्तियों ने दूर किया—एक नैतिक और दूसरी राजनीतिक, एक अन्दर से हुई और एक बाहर से।[1]

इस प्रकार का दयापूर्ण छुटकारा, जिसके लिए मेकाले के अनुसार साम्राज्यवादी युग का हेलेनी समाज धर्मतन्त्र और बर्बरों का ऋणी था, सुखमय ही था, निश्चय रूप से कहा नहीं जा सकता था। जब तक प्राण रहता है सदा यह सम्भव है कि मृत्यु की कैंची से निर्दयता से कतरे जाने के बजाय वह पक्षाघात के आक्रमण से शिथिल होकर जीवन में ही मुरदा हो जाय। और हमारे पश्चिमी समाज की यही दशा न हो यह विचार कम-से-कम वर्तमान पीढ़ी से एक इतिहासकार के मस्तिष्क में मँडराता रहा है।

'मैं नहीं समझता कि हमारे सामने अराजकता का भय है। भय है निरंकुशता का, आत्मिक स्वतन्त्रता के ह्रास का, एकदलीय शासन का, और कदाचित् संसार भर के सार्वभौम एक दलीय शासन का। राष्ट्रों और वर्गों के संघर्ष के कारण स्थानीय अथवा अस्थायी अराजकता हो सकती है, किन्तु वह कुछ काल तक के लिए होगी। अराजकता अनिवार्य रूप से दुर्बल होती है और अराजक संसार में कोई भी शक्तिशाली दल जिसका संगठन बौद्धिक और वैज्ञानिक ढंग से हुआ है पूरा प्रभुत्व जमा सकता है। और अराजकता की जगह निरंकुश शासन का स्वागत करेगा। तब संसार आत्मिक 'अश्मीकरण' के युग में पहुँच जायगा। यह ऐसी अवस्था होगी जब मानव की सभी उच्च आध्यात्मिक क्रियाओं की मृत्यु हो जायगी। रोमन साम्राज्य और चीन के सामने यह अश्मीकरण कम कठोर रहा होगा क्योंकि हमारे युग में हमारे शासकों के पास शक्ति के अनेक वैज्ञानिक साधन हैं। क्या आपने मेकाले के इतिहास पर निबन्ध पढ़ा है? उसका तर्क है बर्बरों का आक्रमण। अन्त में वरदान निकला क्योंकि उसने अश्मीकरण को नष्ट किया। 'यूरोप को चीन की दुखावस्था से बचने में एक सहस्र वर्षों तक बर्बरता का सामना करना पड़ा।' भविष्य के एक दलीय राज्य को नष्ट करने के लिए कोई बर्बर प्रजाति नहीं हैं।

'मुझे ऐसा जान पड़ता है कि ऐसे एक दलीय राज्य में दर्शन और काव्य का ह्रास होगा और वैज्ञानिक खोज की वृद्धि नये-नये आविष्कारों से होगी। यूनानी विज्ञान के पनपने के लिए टोलेमी[2] के राज्य का वातावरण अनुपयुक्त नहीं था और साधारणतः मैं कह सकता हूँ कि प्राकृतिक विज्ञान निरंकुश शासन में विकसित होता है। शासक दल के लाभ की यह बात है कि ऐसी शक्ति की वृद्धि को प्रोत्साहन दे जिससे उनकी शक्ति बढ़े। क्रान्ति नहीं, यही मेरे लिए भविष्य का दुःस्वप्न है, यदि हम आज के भाई-भाई के संघर्ष को समाप्त नहीं करते। किन्तु ईसाई धर्मतन्त्र है,

---

[1] लार्ड मेकाले: एसे आन हिस्ट्री।

[2] मिस्र का ज्योतिषी और भूगोल वेत्ता। १२७–५१ उसने बताया था कि पृथ्वी अचल है और उसकी चारो ओर सूर्य, चाँद आदि घूमते हैं।—अनु०

जिस पर भरोसा किया जा सकता है। भविष्य के विश्व-राज्य (वर्ल्ड स्टेट) में उसे अपनी आहुति भले ही देनी पड़े परन्तु जिस प्रकार उसने रोमन-विश्व राज्य को, कम-से-कम औपचारिक रूप से, अपने को ईसा के सुपुर्द कर देने को विवश किया, उसी प्रकार अपना बलिदान करके वह भविष्य के बौद्धिक और वैज्ञानिक विश्वराज्य पर विजय कर सकता है।'[1]

ये विचार बताते हैं कि सभ्यताओं के विघटन से जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उन पर हमें ध्यान देना चाहिए। सभ्यताओं के विकास के अध्ययन के समय हमने देखा कि उन्हें हम चुनौती और सामना करने के नाटक के क्रम का विश्लेषण कर सकते हैं। एक के बाद दूसरा इसलिए आया कि प्रत्येक सामना चुनौती का उत्तर ही नहीं था, बल्कि वह नयी चुनौती भी उपस्थित कर देता था। क्योंकि चुनौती पर विजय प्राप्त करने के बाद नये सामना के आगे नयी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती थी। इस प्रकार सभ्यताओं के विकास की प्रकृति के मूल में एक सजीवता है जो चुनौती दिये गये समाज को सामना करने की प्रक्रिया में सन्तुलन से कुछ अधिक शक्ति प्रदान कर देती है और यह बढ़ी शक्ति नयी चुनौती के रूप में उपस्थित होती है। चुनौती का बारम्बार दोहराना विघटन की संकल्पना में भी है, किन्तु इस परिस्थिति में दोहराना विफल हो जाता है। परिणामस्वरूप इसके विपरीत कि एक चुनौती पराजित हो जाय, और वह इतिहास की वस्तु हो जाय, और उसके स्थान पर दूसरे प्रकार की चुनौती आये, हमारे सामने वही-वही चुनौती फिर-फिर आती है। उदाहरण के लिए हेलेनी संसार के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इतिहास में, उस समय से जब सोलोनी आर्थिक क्रान्ति का हेलेनी समाज को सामना करना पड़ा कि संसार में एक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जाय। तब डेलियन लीगन द्वारा यह समस्या सुलझाने में एथीनियन असफल रहे, मेसेडन के फिलिप की चेष्टा कारिंथियन लीग द्वारा समस्या सुलझाने का भी प्रयत्न असफल रहा और रोमन साम्राज्य का रोम द्वारा शान्ति-स्थापन का प्रयत्न भी विफल रहा। इस प्रकार उसी चुनौती का बार-बार उपस्थित होना इस परिस्थिति की प्रकृति है। जब प्रत्येक सामना का परिणाम विजय न होकर पराजय होता है तब वह चुनौती, जिसका उत्तर हम नहीं दे सके, टाली नहीं जा सकती। वह बार-बार उपस्थित होती है। तब तक जब उसे या तो उसका विलम्ब से और दोषपूर्ण ढंग से सामना किया जाता है, या चुनौती द्वारा उस समाज का नाश हो जाता है जो उचित ढंग से उसका सामना करने में असमर्थ रहा।

तब क्या हम कह सकते हैं कि अश्मीकरण का एक ही विकल्प है—पूर्णरूप से विनाश। इसका स्वीकारात्मक उत्तर देने के पहले हम प्रजनित तथा संवद्धित प्रक्रिया को स्मरण करें जिसके सम्बन्ध में इस अध्ययन के आरम्भ में हमने विचार किया है। इसलिए संप्रति बुद्धिमानी की बात यह होगी कि हम सोलन के अन्तिम उपाय को और अपने निर्णय को स्थगित रखें।

जब हम सभ्यताओं के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन कर रहे थे, हम प्रक्रिया के विश्लेषण के पहले विकास की कसौटी खोज रहे थे, यही ढंग हम विघटन के अध्ययन में रखेंगे। इस तर्क में सीढ़ी का एक डंडा हम छोड़ देंगे। हमने यह निश्चय किया था कि मानवी अथवा भौतिक परिस्थितियों पर अनुशासन की क्रमशः वृद्धि में सभ्यताओं के विकास की कसौटी नहीं मिलती,

---

[1] डा० एडविन बिवन, लेखक को एक पत्र में।

हम पूरी तरह यह भी कल्पना कर सकते हैं कि ऐसे अनुशासन का अभाव विघटन का कारण नहीं है। परन्तु जहाँ तक प्रमाण मिलते हैं कि परिस्थितियों पर जितना ही अधिक अनुशासन होगा उतना ही विकास नहीं, विघटन होगा। सैनिकवाद पतन तथा विघटन दोनों का समान गुण है। और इसके द्वारा जाग्रत समाज तथा प्रकृति की निर्जीव शक्तियों पर समाज का अनुशासन बढ़ता है। किसी सभ्यता के जीवन की पतनोन्मुख अवस्था में आयोनियन दार्शनिक हिराक्लाइटस के कथन में सत्य हो सकता है कि 'युद्ध सब चीजों का पिता है'। चूँकि मानव की सम्पन्नता का अनुमान साधारण लोग शक्ति और सम्पत्ति से लगाते हैं, ऐसा बहुधा होता है कि किसी समाज के पतन की प्रारम्भिक अवस्था महान् विकास की पराकाष्ठा समझी जाती है। कभी-न-कभी इस भ्रम का निवारण हो जाता है, क्योंकि जिस समाज में ऐसा भेद हो गया है जो मिट नहीं सकता, वह अपने सारे मानवी और भौतिक अतिरिक्त साधनों को युद्ध में लगायेगा। क्योंकि इसी युद्ध से वे साधन प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए जो धन और मानव-शक्ति सिकन्दर को विजय द्वारा प्राप्त हुए उन्हें उसके उत्तराधिकारियों ने गृहयुद्ध में लगाया, और जो मानव तथा धन की शक्ति रोमनों ने दूसरी शती ई० पू० में अर्जित की थी उन्हें उन्होंने ई० पू० की अन्तिम शती के गृहयुद्ध में व्यय किया।

विघटन की प्रक्रिया की कसौटी हमें कहीं और ढूँढ़नी पड़ेगी। इसका रहस्य हमें समाज के उस विभाजन और फूट में मिलता है जो वातावरण पर अनुशासन की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ते जाते हैं। इसी की हम आशा भी करते हैं, क्योंकि हमने देखा है कि विघटन के पूर्व, पतन के जो मुख्य कारण होते हैं वे आन्तरिक फूट के परिणाम हैं। इनके कारण समाज के आत्मनिर्णय की क्षमता जाती रहती है।

इस फूट की अभिव्यक्ति अंशतः सामाजिक भेदों में होती है जिसके कारण पतित समाज दो आयामों में विभाजित हो जाता है। भौगोलिक कारणों से विच्छिन्न समुदायों में शिरोवृत्त (वर्टिकल) भेद होता है और भौगोलिक कारणों से मिश्रित समुदायों में क्षैतिज (हारिजेंटल) भेद होता है।

जहाँ तक शिरोवृत्त भेद का प्रश्न है, हमने देखा है कि ऐसे समाज के लोग नासमझी से अन्तर-राज्यों की लड़ाई में रत रहते हैं और इस प्रकार अपनी आत्महत्या के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। किन्तु शिरोवृत्त भेद ही झगड़े की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं है, जिससे सभ्यताओं का पतन होता है। समाज का स्थानीय समुदायों में विभाजन मानव-समाज के सभी वंशों (जीनस) का गुण है, चाहे वे सभ्य हों या असभ्य। और अन्तर-राज्य युद्ध उस शक्तिशाली आत्म-विनाशी यन्त्र का दुरुपयोग है जो कोई समाज किसी समय कर सकता है। इसके विपरीत किसी समाज का क्षैतिज भेद, समाज के ही वर्गों के बीच, केवल सभ्यता की विशेषता ही नहीं है, बल्कि सभ्यताओं के पतन के समय उसका आविर्भाव होता है। पतन और विघटन का यह विशेष चिह्न है और सभ्यता की उत्पत्ति तथा विकास के समय ये नहीं पाये जाते।

इस प्रकार के क्षैतिज भेद को हमने देखा है। जब हम अपने पश्चिमी समाज को समय-आयाम के विचार से विलोम दिशा में विस्तृत कर रहे थे, हमें इस प्रकार का भेद मिला। हम ईसाई धर्मतन्त्र तक पहुँचे और हमने अनेक बर्बर युद्ध के जत्थों को देखा जो रोमन साम्राज्य की नत्तरी सीमा में पश्चिमी यूरोप से ईसाई तन्त्र से भिड़े। और हमने युद्ध के जत्थों और धर्मतन्त्र,

दोनों संस्थाओं में देखा कि जिस समाज के दल ने इनका निर्माण किया था वह हमारा पश्चिमी समाज नहीं था। यह निर्माण हमारे पहले के समाज–हेलेनी सभ्यता का निर्माण था। हमने ईसाई धर्मतन्त्र के निर्माताओं को आन्तरिक सर्वहारा बताया था, और बर्बर युद्ध के दल को हेलेनी समाज का वाहरी सर्वहारा कहा था।

जव हमने अपने अन्वेषण को और आगे वढ़ाया, तव हमने देखा कि ये दोनों सर्वहारा हेलेनी समाज से 'संकटकाल' में अलग हो गये थे। इस समय हेलेनी समाज सर्जनात्मक नहीं था, ह्रासोन्मुख था। थोड़ा और पीछे चलकर हमने देखा था कि यह अलगाव इस कारण हुआ था क्योंकि हेलेनी समाज के शासक वर्ग में परिवर्तन हो गया था। जिस सर्जनात्मक अल्पसंख्या की असर्जनात्मक जनता स्वेच्छा से भक्त थी, क्योंकि सर्जनशीलता में भक्त वना लेने का गुण होता है, वही अब शक्तिशाली अल्पसंख्या वन गयी क्योंकि वह सर्जनात्मक नहीं रह गयी। यह शक्तिशाली अल्पसंख्या बल से अपने स्थान को सुरक्षित रखने में समर्थ रही। ईसाई समाज तथा युद्ध का गिरोह इसकी निरंकुशता के कारण अलग हुआ। अनुचित ढंग से यह शक्तिशाली अल्पसंख्या सबको एकता के सूत्र में वाँधे रखने का प्रयत्न करती रही, किन्तु असफल रही। शक्तिशाली अल्पसंख्या की केवल यही उपलव्धि हमारे सामने नहीं है। उसने रोमन साम्राज्य के रूप में अपनी यादगार छोड़ दी है। रोमन साम्राज्य धर्मतन्त्र और युद्ध के गिरोह से पहले जन्मा। जिस वातावरण में इन दोनों ने जन्म लिया उसी में रोमन साम्राज्य भी था और इन संस्थाओं के विकास में इसका भी हाथ था, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। जिस सार्वभौम राज्य ने हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्या को अपने में परिवेष्टित कर लिया था वह उसी प्रकार था जैसे विशाल कछुए का ऊपरी खोल। वर्बरों ने अपने युद्ध करने वाले गिरोह को उसी कछुए की पीठ पर अपना पंजा तीव्र करने की शिक्षा दी।

अन्त में अपने अध्ययन के वाद एक स्थान पर हमने स्पष्ट रूप से यह समझना चाहा कि अल्पसंख्या की सर्जनात्मक शक्ति लोप हुई और यह वहुसंख्यकों को गुणों से आकृष्ट कर शक्ति द्वारा जीतने लगी, इसमें क्या कारण–कार्य सम्बन्ध है? और यहाँ हमें सर्जनात्मक अल्पसंख्या के सामाजिक अभ्यास की ओर संकेत करना पड़ता है क्योंकि असर्जनात्मक जनता को अपने साथ ले चलने का यही सरल उपाय है। विकास की परिस्थिति में यही सामाजिक अभ्यास अल्पसंख्या और वहुसंख्या के सम्वन्ध का दुर्वल स्थल है। इस दृष्टि से अल्पसंख्यकों और वहुसंख्यकों के वीच उस समय भेद वहुत वढ़ जाता है जव सर्वहारा अलग हो जाता है। यह सम्वन्ध-विच्छेद उस कड़ी के टूटने का परिणाम है, जो विकास-काल में भी अनुकरण की शवित का अभ्यास कराके सुरक्षित रखी जाती है। इसमें आश्चर्य नहीं कि जव नेताओं की सर्जन-शवित समाप्त हो जाती है तव अनुकरण-शक्ति भी समाप्त हो जाती है। क्योंकि विकास-काल में भी अनुकरण की कड़ी पराश्रित रहती है। इस समय अविश्वसनीय द्वैत भावना होती है अर्थात् अतीच्छुक दास की भावना होती है जो किसी भी यांत्रिक कौशल के साथ पायी जाती है।

क्षैतिज भेद की खोज से हमें ये सूत्र मिले जो हमारे हाथ में हैं। आगे की खोज के लिए सबसे आशापूर्ण ढंग यह होगा कि इन सूत्रों को एकत्र करके हम रस्सी बटें।

हमारा पहला कदम यह होगा कि हम तीन भागों का अर्थात् शवितशाली अल्पसंख्या और

आन्तरिक तथा बाहरी सर्वहारा का निकट से और विस्तृत सर्वेक्षण करें। हेलेनी उदाहरण तथा और दूसरे उदाहरणों से जिनका हमने इस अध्ययन में विचार किया है, हमें प्रतीत हुआ है कि पतनोन्मुख समाज में, जब क्षैतिज फूट पड़ जाती है तब वह समाज छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसके बाद हम पूर्ण (मैक्रोकाज्म) से सूक्ष्म (माइक्रोकाज्म) की ओर विचार करेंगे जैसा हमने विकास के समय किया था। और उसमें हम देखेंगे कि विघटन के साथ-साथ आत्मा के विकास में भी अवरोध हो जाता है। इस खोज में, पहली दृष्टि में हमें ऐसी वात मिलेगी जो विरोधाभास है। अर्थात् विघटन की प्रक्रिया में हमें पुनर्जीवन का आभास मिलता है जिसमें अपने पूर्वजों के गुण दिखाई देते हैं। तर्कतः यह क्रिया विघटन से प्रतिकूल है।

अपने विश्लेषण की समाप्ति के बाद हम देखेंगे कि विघटन के साथ गुणों का जो परिवर्तन होता है, यह विकास के परिवर्तन में जो गुण उत्पन्न होते हैं, उसके विपरीत है। विकास की प्रक्रिया में हमने देखा है कि अनेक विकासोन्मुख सभ्यताएँ एक-दूसरे से वहुत भिन्न होती हैं। इसके विपरीत विघटन में एक-समानता आ जाती है।

एक-समानता की ओर की प्रवृत्ति और भी स्पष्ट हो जाती है, जब हम देखते हैं कि उसे कितनी विभिन्नताओं पर विजय प्राप्त करना होता है। पतन वाली सभ्यताओं का जब विघटन होने लगता है तब उनके साथ विभिन्न प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जैसे कला की ओर, यन्त्रों (मशीनों) की ओर या इसी प्रकार की और बातों की ओर जो उन्होंने विकास के समय अर्जित की थी। वे एक-दूसरे से और भी अधिक भिन्न हो जाती हैं क्योंकि पतन उनके जीवन के विभिन्न कालों में होता है। उदाहरण के लिए सीरियाई सभ्यता का पतन सोलोमन की मृत्यु के बाद हुआ, जो सम्भवतः ९३७ ई० में हुई। यह समय कदाचित् उस समय से दो सौ साल से कम है जब मिनोई सभ्यता के बाद के अन्तःकाल में पहले-पहल इस (सीरियाई) सभ्यता का जन्म हुआ। इसके विपरीत उसी अन्तःकाल में एक ही समय हेलेनो सभ्यता का भी जन्म हुआ था। इस सभ्यता का पतन पाँच सौ साल बाद नहीं हुआ। एथेनी-पेलोपोनीशियन युद्ध के बाद हुआ। परम्परावादी ईसाई सभ्यता का पतन महान् रोमानो-बुलगारियन युद्ध के समय ९७७ ई० में हुआ और उसी के साथ हमारी सभ्यता अनेक शतियों तक विकसित होती रही और जहाँ तक हम समझते हैं अभी उसका पतन नहीं हुआ है। यदि समकालीन सभ्यताओं का जीवनकाल भिन्न-भिन्न होता है तो स्पष्ट है कि सभ्यताओं के विकास का जीवन समान अवधि का नहीं होता। इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि विकासोन्मुख सभ्यताओं का अन्तर गम्भीर और विस्तृत होता है। किन्तु हम यह देखेंगे कि सभ्यताओं के विघटन की प्रक्रिया समान ढंग की होती है। अर्थात् क्षैतिज भेद जिससे समाज तीन भागों में, जिनका विवरण बताया गया है, टूट जाता है। और इन तीन में से प्रत्येक भाग द्वारा अलग-अलग विशेष संस्थाओं का निर्माण होता है—सार्वभौम राज्य, सार्वभौम धर्मतन्त्र और बर्बर योद्धा-दल।

यदि हम सभ्यताओं के विघटन का पूर्ण अध्ययन करना चाहते हैं तो इन संस्थाओं का और इनके रचयिताओं के सम्बन्ध में समझना होगा। किन्तु सरल यह होगा कि प्रत्येक संस्था का अध्ययन अलग-अलग पुस्तकों में करें।[1] क्योंकि ये संस्थाएँ विघटन की प्रक्रिया से कुछ और अधिक

---

[1] द्वायनबी की उन पुस्तकों में जो अभी छपी नहीं हैं। —सम्पादक

हैं। यह भी सम्भव है कि एक सभ्यता के दूसरी सभ्यता से सम्बन्ध स्थापित करने में भी इनका योगदान रहा हो। जब हम सार्वभौम धर्मतन्त्रों का अध्ययन करेंगे तब हम यह प्रश्न उठाने को विवश होंगे कि इन तन्त्रों को हम पूर्ण रूप से उन सभ्यताओं के इतिहास के ढाँचे में समझ सकते हैं, जिनमें उनका उदय हुआ या हम उन्हें किसी दूसरी जाति (स्पीसीज़) के समाज का प्रतिनिधि समझें जो उन जाति वाली सभ्यता से उसी प्रकार भिन्न हैं जिस प्रकार ये सभ्यताएँ आदिम समाजों से।

इतिहास के अध्ययन में यह महत्त्व का प्रश्न है किन्तु हमने जिस प्रकार की खोज का वर्णन किया है, उसकी दूसरी छोर पर यह है।

(२) भेद और पुनर्जीवन

जर्मन यहूदी कार्ल मार्क्स (१८१८–८३) ने एक अगृहीत धार्मिक परम्परा के इलहामी स्वप्न से रंग उधार लेकर विशाल चित्र खींचा है जिसमें उन्होंने सर्वहारा के अलग होने और परिणामस्वरूप वर्ग-संघर्ष का चित्रण किया है। मार्क्स के भौतिकवादी इलहामी ने करोड़ों लोगों पर प्रभाव डाला है। इसका कारण कुछ तो मार्क्सवादी चित्र में राजनीतिक युद्धप्रियता है। इस चित्र का मूल तो साधारणतः इतिहास का दर्शन है, साथ ही वह क्रान्तिकारी युद्ध के लिए ललकार भी है। इस वर्ग-संघर्ष के मार्क्सवादी सूत्र के आविष्कार और चलन को हम इस बात का संकेत समझें कि हमारी पश्चिमी सभ्यता विघटन के पथ पर है, हम इस अध्ययन के अन्त में देखेंगे जब हम अपनी पश्चिमी सभ्यता के भविष्य पर विचार करेंगे। यहाँ पर हमने मार्क्स को और कारणों से उद्धृत किया है। पहला कारण यह है कि हमारे युग में वर्ग-संघर्ष का वह क्लासिक व्याख्याकार है और दूसरा यह कि उसका सूत्र परम्परावादी जरथूष्ट्री, यहूदी और ईसाई इलहामी आदर्शों से मिलता है जो हिंसात्मक पराकाष्ठा के बाद कोमल अन्त का चित्र दिखलाता है।

इस साम्यवादी पैगम्बर की अन्तःप्रज्ञा की संक्रिया का परिणाम ऐतिहासिक भौतिकवाद या नियतत्ववाद है। उसके अनुसार सर्वहारा की क्रान्ति द्वारा वर्ग-संघर्ष निश्चित है जिसमें सर्वहारा विजयी होगा। परन्तु संघर्ष का यह रक्तमय परिणाम उसका अन्त भी, क्योंकि सर्वहारा की विजय निश्चित और पूर्ण होगी। और सर्वहारा का अधिनायकवाद जो क्रान्ति के बाद स्थापित होगा स्थायी संस्था नहीं होगा। एक समय आयेगा जब एक नया समाज प्रकट होगा जो जन्म से ही वर्गविहीन होगा और इतना प्रौढ़ और शक्तिशाली होगा कि अधिनायकवाद को हटा दे। अन्तिम और स्थायी आनन्द इस नये मार्कसी स्वर्णयुग का यों होगा कि सर्वहारा का अधिनायकवाद ही नहीं हट जायगा, किसी भी संस्था का आधार न होगा और राज्य भी नहीं रह जायगा।

इस अध्ययन के सन्दर्भ में मार्कसी प्रलय विज्ञान का इतना ही सम्बन्ध है कि आश्चर्य की बात है कि एक लुप्त धार्मिक विश्वास की छाया वर्ग-संघर्ष के ठीक राह का चित्र बनाती है या पतित समाज में क्षैतिज भेद की राह का ठीक-ठीक चित्र खींचती है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि पतित समाज यही राह अपनायेगा। इतिहास हमें बताता है कि विघटन की प्रक्रिया युद्ध से शान्ति की ओर है, यांग से यिन की ओर। स्पष्टतः मूल्यवान् वस्तुओं का बर्बरतापूर्ण विनाश होता है और उसी विनाश की ज्वाला में से नया सर्जन होता है जिसकी विशेषता उसी अज्ञान के कारण होती है जिसमें वे बने हैं।

भेद स्वयं दो नकारात्मक आन्दोलनों का परिणाम है । दोनों अशिव आवेगों से प्रेरित होते हैं । पहले, शक्तिशाली अल्पसंख्या उस अधिकार के स्थान को बल से ग्रहण किये रहती, जिसमें उसमें क्षमता नहीं रह गयी है । तब सर्वहारा अन्याय का उत्तर क्रोध से देता है, भय का घृणा से और हिंसा का हिंसा से । परन्तु सारे आन्दोलन का परिणाम सर्जनात्मक होता है, सार्वभौम राज्य सार्वभौम धर्मतन्त्र और बर्बर योद्धा-दल ।

इस प्रकार सामाजिक भेद केवल भेद नहीं है । सारे आन्दोलन को हम भेद—और पुनर्जीवन कह सकते हैं । और यह समझकर कि समाज-त्याग एक विशेष ढंग से अलग होना है हम भेद और पुनर्जीवन की दोहरी गति को उसी परिस्थिति का एक उदाहरण माने जिसे हमने 'अलग होने और लौटने' के शीर्षक में साधारण ढंग से पहले अध्ययन किया है ।

एक बात है जिसमें अलग होने और लौटने का यह नवीन रूप उन उदाहरणों से भिन्न है जिनका हमने पहले अध्ययन किया है । क्या वे सर्जनात्मक संख्या अथवा व्यक्तियों की उपलब्धियाँ नहीं थीं और समाज त्यागने वाले सर्वहारा बहुसंख्यक हैं जो शक्तिशाली अल्पसंख्या के विरोधी हैं ? एक क्षण विचार करने के पश्चात् यह जान पड़ता है, और जो वास्तव में सच्चा चित्र है कि यद्यपि समाज-त्याग बहुसंख्या द्वारा होता है, सार्वभौम धर्मतन्त्र की स्थापना उन अल्पसंख्यक सर्जनशील दलों या व्यक्तियों की है जो इस बहुसंख्या में रहते हैं । ऐसी अवस्था में असर्जनशील बहुसंख्या, शक्तिशाली अल्पसंख्या और सर्वहारा से मिलकर बनी होती है। यह भी स्मरण होगा कि हमने बताया था कि विकासोन्मुख अवस्था में सर्जनात्मक अल्पसंख्या का सर्जनशील तत्त्व सारी-की-सारी अल्पसंख्या नहीं थी, बल्कि उसमें का कोई दल था। दोनों में अन्तर यह है : विकासकाल में असर्जनशील बहुसंख्या में ऐसी जनता रहती है जिस पर सरलता से प्रभाव पड़ सकता है और वह नेताओं की राह का अनुकरण करती है, विघटन काल में असर्जनशील बहुसंख्या में प्रभाव्य जनता रहती है (सर्वहारा के शेष) और कुछ भाग शक्तिशाली अल्पसंख्या का जो विपथित व्यक्तियों को छोड़कर सगर्व हठपूर्वक अलग रहती है ।

१८. सामाजिक जीवन में भेद

(१) शक्तिशाली अल्पसंख्यक

शक्तिशाली अल्पसंख्यक में भी भिन्नता के तत्त्व हो सकते हैं। इस तथ्य के होते हुए भी लोकाचार की एक निश्चित स्थिरता एवं एकरूपता ही इसका विशेष लक्षण है। शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने रंगरूटों के अनुर्वर संघभाव को अनुर्वरीकरण के आश्चर्यजनक नमूनों के रूप में परिवर्तित करने का कार्य सम्पादन कर सकता है। लगातार इन रंगरूटों को शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने ह्रासोन्मुख दल में जबरदस्ती भरती करता है। शक्तिशाली अल्पसंख्यक इस दल की उस रचनात्मक शक्ति को क्रियान्वित करने में स्वतः बाधक नहीं हो सकता, जो केवल सार्वभौम राज्य में ही नहीं, वरन् दार्शनिक सम्प्रदायों में भी दिखाई देती है। तदनुसार हम देखते हैं कि यह शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने में उन अनेक सदस्यों को मिलाने के लिए बाध्य है, जो अद्भुत रीति से उस समुदाय के विशिष्ट गुणों से अलग हो जाते हैं, जिसके वे सदस्य रहे हैं।

ये विशिष्ट गुण उन सैन्यवादी एवं निकृष्ट शोषकों के हैं जो उनके दल का अनुसरण करते हैं। हेलेनी इतिहास से इसका उदाहरण देना अनावश्यक है। हम सिकन्दर में इन सैन्यवादियों का उत्तम रूप तथा 'वेरेस' में शोषकों का निकृष्ट रूप देखते हैं। इनके सिसिली के अन्यायी शासन के सम्बन्ध में वास्तविकता का उद्घाटन सिसरो की पुस्तिकाओं एवं भाषणों के संग्रहों में है। किन्तु, रोमन सार्वभौम राज्य के अधिक दिनों तक टिके रहने का कारण यह था कि उसके सैन्यवादियों तथा शोषकों ने, आगस्टी व्यवस्था के पश्चात् असंख्य गुमनाम सैनिकों तथा उन असैनिक अधिकारियों ने, जिन्होंने अपने पूर्वजों के कुकृत्यों का प्रायश्चित्त अपने गतिहीन समाज को अनेक पीढ़ियों तक भारतीय ग्रीष्म की तीव्र धूप में तपाकर किया।

इसके अतिरिक्त रोमन कर्मचारी परार्थवादी रूप में हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के न तो एक मात्र ही और न आरम्भिक अवतारणा हैं। 'सेवेरी' युग में स्टोइक सम्राट् मारकस आरीलियस रोमन इतिहास के सर्वविदित तथ्य हैं। जब 'स्टोइक' जूरी लोग 'स्टोइक' आचार का रूपान्तर रोमन विधान में कर रहे थे, रोमन भेड़िये को अफलातूनी पहरेदार कुत्ते में रूपान्तरित करना यूनानी दर्शन का अद्भुत कार्य प्रकट हुआ। यदि रोमन प्रशासक हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक की व्यावहारिक कुशलता के परार्थी प्रतिनिधि थे तो यूनानी दार्शनिक यूनान के बौद्धिक नेता। यूनानी रचनात्मक दार्शनिकों की उस स्वर्णिम शृंखला ने, जो अफलातून (२०३ ई०-६२ ई०) की पीढ़ी में समाप्त होती है, रोमन सार्वजनिक सेवा को ध्वस्त होते हुए देखा। यह शृंखला सुकरात (४७० ई० पू०–३९९ ई० पू०) से आरम्भ होती है। जब रोमन सभ्यता का पतन हुआ था, तब इसका विकास हुआ। यूनानी दार्शनिक और रोमन प्रशासक के सम्पूर्ण जीवन का प्रयत्न इस पतन के दुखद परिणाम की क्षतिपूर्ति करना या किसी हद तक उसे कम करना था। दार्शनिकों के श्रम से प्रशासकों के प्रयत्नों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और टिकाऊ

परिणाम उत्पन्न हुआ । ऐसा इसलिए था कि वे विघटित सामाजिक जीवन के भौतिक ताने-बाने के सम्पर्क में नहीं थे । जब रोमन प्रशासकों ने हेलेनी सार्वभौम राज्य का निर्माण किया, तब दार्शनिकों ने अपनी सन्तति को एकेडेमी में शिक्षा प्रदान की और उन्हें अरस्तू ने स्टोआ तथा गार्डेन ऐसी प्रतिभाएँ दीं । अपनी भावी पीढ़ी को दार्शनिकों ने 'सैनिकों' की स्वतन्त्रता के प्रशस्त मार्ग और अफलातून के नये अनुयायियों को 'हार्दिक इच्छाओं की अलौकिक धरतों' प्रदान की ।

यदि हम अन्य पतनोन्मुखी सभ्यताओं के इतिहासों का सर्वेक्षण करें, तो हम परमार्थवाद की उच्च भावना को शोषकों एवं सैन्यवादियों की निकृष्ट तथा भयानक भावना के समानान्तर पायेंगे । उदाहरणार्थ, जिन्होंने हैन राज्यवंश के अन्तर्गत चीनी सार्वभौम राज्य में शासन (२०२ ई० पू०–२२१ ई०) किया था, उन कन्फूशियस के अनुयायियों में वह सेवा का भाव एवं संघभाव था, जिसे उन्हें रोमन असैनिक अधिकारियों के साथ एक ही नैतिक स्तर पर ला दिया था । ये रोमन असैनिक अधिकारी कन्फूशियस के अनुयायियों के समकालीन तथा उनकी क्रियाशीलता के पूर्वार्ध में संसार की दूसरी ओर थे । पीटर महान् के शासन से लेकर दो शतियों तक चिनोवनिकों (रूस में नौकरशाही के प्रतीक उच्च अधिकारियों) ने परम्परावादी ईसाई सार्वभौम राज्य का प्रशासन किया और अपनी अयोग्यता तथा भ्रष्टाचार के कारण अपने घर के साथ-ही-साथ पश्चिम के देशों में कुख्यात हुए । वे स्वयं इस बदनामी से इतने निन्द्य रूप से मुक्त न हो सके जितनी बदनामी [illegible] कल्पना बहुधा इस महान् दोहरे कार्य के करने में की जाती थी । यह दोहरा कार्य गतिशील रूसी साम्राज्य का पोषण करना तथा उसी समय पश्चिमी नमूने की नयी नीति में उसे रूपान्तरित करना था । परम्परावादी ईसाई साम्राज्य के मुख्य भाग में उसमानिया बादशाह के गुलाम परिवार को एक ऐसी संस्था के रूप में कदाचित् याद किया जायगा जिसने कम-से-कम एक प्रमुख सेवा रूढ़िवादी समाज के लिए की है । यह परम्परावादी ईसाई साम्राज्य इसी तरह अपनी रियाया का शोषण करने के लिए बदनाम हुआ था। दो युगों की अराजकता के बीच स्वतः पीड़ित संसार में उसमानिया शान्ति लाकर इन दासों ने समाज की सेवा की । जापान के सुदूर पूर्वी समाज में सामन्तों और उनके 'सैमुराई' दासों ने समाज को शिकार बनाया । टोकुगावा शोगुनेट साम्राज्य की स्थापना के आरम्भ से चार शतियों तक एक-दूसरे का शिकार करने में बिताया । सामन्तवादी निरंकुशता को सामन्तवादी व्यवस्था में परिणत करने के आइयासु के सर्जनात्मक कार्य में हाथ बटाकर उन्होंने अपना अतीत पुनर्जीवित किया । जापानी इतिहास के नये अध्याय के आरम्भ में वे आत्मसंयम की दिव्य पराकाष्ठा पर पहुँचे । उन्होंने स्वतः अपनी सुविधाओं को तिलांजलि दे दी, क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया था कि उनसे इस त्याग की कामना की जाती है । वह जापान को उस पश्चिमी संसार में अपनी धाक जमाने के योग्य बनाने में समर्थ कर रहे थे जिससे वह स्वयं को अलग नहीं रख सकता था ।

स्वभाव की सज्जनता एक गुण है जो जापानी समुराई में दिखाई देता है । यह गुण शत्रुओं द्वारा भी दो अन्य शासक अल्पसंख्यक पर आरोपित किया जाता है । ये दो शासक अल्पसंख्यक हैं,—एडियन सार्वभौम राज्य के 'इनका' तथा वे फारसी अभिजात लोग, जिन्होंने सीरिया के सार्वभौम राज्य पर शासन एकेमेनिआ के राजाओं के राजा के उपशासकों के रूप में किया था।

स्पेनी मैक्सीको विजेताओं ने भी इनका के इन गुणों का अनुमोदन किया। यूनानियों द्वारा चित्रित फारसियों के इस चित्र में हिरोडोट्स ने फारसी बाल-शिक्षा का सार दिया है—'वे ५ वर्ष की अवस्था से २० वर्ष की अवस्था तक के लोगों को तीन कार्य करने का—केवल तीन कार्य करने का प्रशिक्षण करते हैं। ये तीन कार्य थे—घुड़सवारी, चाँदमारी तथा सत्य बोलना। इस फारसी बालशिक्षा का रूप वैसा ही है जैसा हिरोडोट्स ने फारसी बालकों का उनकी युवावस्था का बताया है। फारस के राजा जरक्सीज़ के अनुयायियों के सम्बन्ध में हिरोडोट्स की एक कहानी है। इसमें समुद्र में तूफान आने पर सृष्टि के स्वामी की प्रार्थना करना तथा जहाज को हल्का करने के लिए सागर में कूद पड़ना, दिया है। किन्तु सिकन्दर फारसी गुणों का सबसे प्रभावशाली प्रमाण है। परिचित हो जाने के बाद वह फारसी लोगों के सम्बन्ध में कितने उच्च विचार रखता था, इसका प्रदर्शन उसने अपनी गम्भीर करनी से किया न, कि हल्की कथनी से। फारसियों की घोर विनाशकारी प्रतिक्रिया की परीक्षा को ज्यों ही उसने जान लिया, त्यों ही उसने निर्णय किया, जिस निर्णय ने मकदूनिया के लोगों को ही असन्तुष्ट नहीं किया, वरन् उनकी भावना को भी उत्तेजित किया। यद्यपि जान-बूझकर उसने ऐसा नहीं किया। अपने उस साम्राज्य की सरकार में फारसियों को साझीदार बनाने का निश्चय कर चुका था, जिसे मकदूनियावासियों के शौर्य ने फारसियों से छीना था। उसने अपनी इस नीति को पूर्ण रूप से कार्यान्वित किया। उसके एक फारसी दरवारी की लड़की से शादी की। वह मकदूनी अधिकारियों को अपना अनुयायी बनाने के लिए या तो घूस देता था या धमकाता था। वह अपने मकदूनी रेजिमेन्ट में फारसियों को जवरदस्ती भरती करता था। ऐसे लोगों में, जो अपने पैतृक शत्रुओं के नेता से सम्मानित होते हैं, अपनी पूर्ण पराजय के समय भी 'शासक जाति' के प्रतिष्ठित गुण अवश्य स्पष्ट रूप से रहते हैं।

शक्तिशाली अल्पसंख्यक के प्रशंसनीय शासक वर्ग को उत्पन्न करने की क्षमता के सम्बन्ध में हमने अधिक-से-अधिक प्रमाण देने की व्यवस्था की है। ये प्रमाण उन अनेक सार्वभौम राज्यों से लिये गये हैं, जिनका निर्माण उन्होंने किया है। वीस पतित सभ्यताओं में से कम-से-कम पन्द्रह इस अवस्था से होकर विनाश की ओर जाने वाले मार्ग पर गयी हैं। निम्नलिखित राज्यों में हम इस सत्य का मिलान कर सकते हैं। रोमन राज्य में हेलेनी सार्वभौम राज्य, इनका साम्राज्य में एडियन, चीनी राज्य में हैन तथा त्सिन वंश, 'मिनोस के सागर राज्य' में मिनोई, सुमेर तथा अक्काद साम्राज्य में सुमेरी, नेबूकाडनजार के नवीन बैबिलोनी साम्राज्य में बैबिलोनिया, माया के प्राचीन साम्राज्य में माया, ११ वें तथा १२ वें राजवंश के 'मध्य साम्राज्य' में मिस्री राज्य, एकेमेनियाई साम्राज्य में सीरियाई राज्य, मौर्य साम्राज्य में भारतीय, मुगल महान् के साम्राज्य में हिन्दू, मस्कोवी साम्राज्य में परम्परावादी रूसी राज्य, उसमानिया साम्राज्य में परम्परावादी ईसाई का सार्वभौम राज्य और सुदूर पूर्वी संसार में चीन में मंगोल साम्राज्य और जापान में टोकुगावा शोगुनेट।

राजनीतिक क्षमता केवल एक सर्जनात्मक शक्ति ही नहीं है जो शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का सामान्य गुण है। हम पहले ही देख चुके हैं कि हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यकों ने केवल रोमन प्रशासन की ही उत्पत्ति नहीं की, वरन् यूनानी दर्शन की भी सृष्टि की। हम तीन और ऐसे उदाहरण पा सकते हैं जिनमें शक्तिशाली अल्पसंख्यक ने ही दर्शन की उत्पत्ति की।

उदाहरणार्थ, बैबिलोनिया के इतिहास में ई० पू० आठवीं शती के संकट-काल ने ज्योतिष-शास्त्र का अचानक विकास तथा बैबिलोनिया और असीरिया के शतवर्षीय युद्ध का आरम्भ देखा। इस युग में बैबिलोनिया के वैज्ञानिकों ने अनादि काल से होते रहने वाले दिन और रात की क्रमबद्धता तथा चाँद के घटने और बढ़ने का अन्वेषण किया तथा ग्रहों की गतियों का बड़े पैमाने पर दिग्दर्शन कराया। ये तारे अनुशासन में वैसे ही बँधे हैं जैसे सूर्य, चाँद और आकाश का 'ध्रुव'। इन तारों का परम्परित नाम अपनी कक्षा में अस्थिर दिखाई पड़ने के कारण 'ग्रह' पड़ा है।

अविघटित तथा अपरिवर्तित प्रणाली जो नक्षत्रीय सृष्टि को नियन्त्रित करती हुई पायी गयी थी, वही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भौतिक एवं आध्यात्मिक और निर्जीव एवं सजीव दृष्टि से नियन्त्रित करती हुई मान ली गयी। सूर्यग्रहण या शुक्र का संक्रमण अतीत में सैकड़ों वर्ष पहले एक निश्चित समय में कैसे हुआ था, इसकी गणना की जा सकी तथा सुदूर भविष्य में ठीक समय पर कब होना निश्चित है, इसकी भी भविष्यवाणी वैसी ही दृढ़ता के साथ की गयी। इसी प्रकार क्या मानवीय क्रिया-कलाप को मानना उचित नहीं है ? क्या ये भी वैसे ही दृढ़ एवं गणनीय नहीं हैं ?

ब्रह्माण्ड का अनुशासन इंगित करता है कि विश्व के सभी ग्रह आपस की दृढ़ एकरूपता के साथ गतिशील हैं। तो क्या यह मान लेना अनुचित होगा कि सितारों की नवीन उद्घाटित गति मानवीय भाग्य की पहेली की कुंजी नहीं है ? जिसके हाथों में ज्योतिष का यह सूत्र है, वह निरीक्षक अपने पड़ोसी की जन्म तिथि तथा जन्म समय जानकर उसके भाग्य के सम्बन्ध में क्या भविष्यवाणी करने में समर्थ होगा ? यह युक्तिपूर्ण हो या न हो, किन्तु ये धारणाएँ बड़ी सूक्ष्मता के साथ बनायी गयीं। इस प्रकार एक सनसनीपूर्ण वैज्ञानिक खोज ने नियतिवादी हेत्वाभास मूलक दर्शन को जन्म दिया, जिसने एक सामाजिक जीवन के बाद दूसरे सामाजिक जीवन को आकृष्ट किया। प्राय: २७०० वर्षों के बाद भी इस आस्था को बिलकुल अस्वीकार नहीं किया जाता।

ज्योतिष-शास्त्र की संमोहन शक्ति उसके उस मिथ्या प्रचार में है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को स्पष्ट करने वाले सिद्धान्त को उस आभास के साथ मिलाती है जिसमें लल्लू-बुद्धू सभी को बताया जा सकता है कि डर्बी में कौन जीतेगा। इस दोहरे आकर्षण के कारण बैबिलोनी समाज के विनाश होने पर भी बैबिलोनी दर्शन ईसा के पूर्व की अन्तिम शती में जीवित रहने में समर्थ हुआ। कालडिया के गणितज्ञों ने धराशायी हेलेनी समाज को वह दर्शन दिया जिसे कल तक पीकिंग के दरबारी ज्योतिषियों तथा इस्तम्बोल के मुनज्जिम बाशी प्रदर्शित करते रहे।

हम लोगों ने बैबिलोनी नियतिवादी दर्शन पर विचार किया है, क्योंकि इसमें हेलेनी दर्शन की अपेक्षा वर्तमान कार्टेसी (कार्टेसियन) युग के पश्चिमी संसार के अपरिपक्व दर्शन में सादृश्य अधिक है। दूसरी ओर करीब-करीब सभी हेलेनी विचारों के सम्प्रदायों का प्रतिरूप भारतीय एवं चीनी दर्शनों में पाया जाता है। विघटित भारतीय सभ्यता के शक्तिशाली अल्पसंख्यकों ने महावीर के अनुयायियों का जैन धर्म, सिद्धार्थ गौतम के आरम्भिक अनुयायियों का आदि बौद्ध धर्म तथा महायान का रूपान्तरित बौद्ध धर्म उत्पन्न किया। (यह बौद्ध धर्म प्राचीन बौद्ध धर्म से वैसे ही भिन्न था, जैसे ४०० शती पूर्व का सुकरात का दर्शन नये अफलातूनी दर्शन से) इस बौद्ध दर्शन

में जो विभिन्न शाखाएँ आयीं, वे बुद्ध से प्रभावित होने के बाद के हिन्दू धर्म के विचारों का अंग थीं। चीनी सभ्यता के प्रभावशाली अल्पसंख्यकों ने कन्फूशियस के नीतिसंगत कर्मकाण्डवाद तथा कर्मकाण्डी नैतिकता और टाओ के विरोधाभासी उस ज्ञान को जन्म दिया जो लाओत्से की पौराणिक प्रतिभा द्वारा आरोपित किया गया था।

(२) आन्तरिक सर्वहारा

हेलेनी आदिरूप

जब हम प्रभावशाली अल्पसंख्यक से सर्वहारा की ओर अग्रसर होते हैं, तब तथ्यों के सूक्ष्म परीक्षण से हमारी धारणा दृढ़ होती है कि विघटित समाज के उन खण्डों में से प्रत्येक में रूप की विभिन्नता है। इस आध्यात्मिकता के क्षेत्र में बाहरी सर्वहारा एवं आन्तरिक सर्वहारा को हम दो विरोधी छोरों पर पाते हैं। आन्तरिक सर्वहारा की व्याप्ति बहुत अधिक विस्तृत है, जब कि बाहरी सर्वहारा की व्याप्ति उस प्रभावशाली अल्पसंख्यक वर्ग से संकीर्ण है। विस्तृत क्षेत्र का हमें पहले सर्वेक्षण करना चाहिए।

यदि हम यूनानी आन्तरिक सर्वहारा की उत्पत्ति आरम्भिक भ्रूण अवस्था से जानने की इच्छा करें तो हमारे लिए थुसीडाइड्स के एक अवतरण को उद्धृत करने से उत्तम और कुछ नहीं हो सकता। इस अवतारणा में हेलेनी समाज के पतन का दिग्दर्शन कराने वाले इतिहासकार ने अनुवर्ती सामाजिक भेद का वर्णन उसके आरम्भिक रूप में किया है, जैसा कि कोरसाइरा में यह सर्वप्रथम दिखाई दिया।

'कोरसाइरा के वर्ग-युद्ध' (स्थैतिकता) की बर्बरता ऐसी थी कि जब वह विकसित हुई तब उसने अपने ढंग का गहरा प्रभाव उत्पन्न किया। अन्त में यह उथल-पुथल सम्पूर्ण यूनानी संसार में करीब-करीब फैल गयी। प्रत्येक देश में सर्वहारा के उन नेताओं और उनके उन प्रतिक्रियावादियों में संघर्ष था जिन्होंने एथेन्स तथा लेसीडेमोनिया के लोगों में हस्तक्षेप के लिए प्रयत्न किया था। शान्ति के समय उनके पास विदेशियों को बुलाने का न तो अवसर था और न उनकी इच्छा थी। किन्तु जब युद्ध हुआ, तब दोनों दलों के किसी भी क्रान्तिकारी आत्मबल वाले को किसी भी विदेशी से अपने दल के बलवर्धन तथा अपने विरोधियों को पराजित करने के लिए सहायता प्राप्त करना आसान हो गया। वर्ग-युद्ध की अभिवृद्धि एक के बाद दूसरी विपत्ति यूनानी देशों में लाती रही। ये विपत्तियाँ तब तक आती रहीं, जब तक मानव स्वभाव में परिवर्तन नहीं हुआ, यद्यपि ये विपत्तियाँ बढ़ायी या घटायी जा सकती हैं या लगातार परिवर्तित परिस्थितियों से इन्हें सुधारा जा सकता है। शान्ति के समय की अनुकूल दशा में देश तथा व्यक्ति दोनों मधुर औचित्य प्रदर्शित करते हैं, क्योंकि ये घटनाओं से उत्पन्न तर्कों से प्रभावित नहीं होते। किन्तु, युद्ध सम्पूर्ण जीवन का धीरे-धीरे क्षय कर देता है तथा अधिकांश लोग अपने स्वभाव को युद्ध के क्रूर प्रशिक्षण के नये पर्यावरण से नियन्त्रित करते हैं। अतएव यूनान के देश वर्ग-युद्ध की छूत से ग्रसित हुए। एक के बाद एक वर्ग-युद्ध से उत्पन्न संवेदना अपना पूंजीभूत प्रभाव दूसरे पर छोड़ती गयी।[1]

---

[1] थुसीडाइड्स की पुस्तक, तृतीय परिच्छेद ८२।

इन क्रियाकलापों की दशा का पहला सामाजिक प्रभाव 'राज्य-विहीन' निर्वासित चलमान जनसंख्या को अधिक-से-अधिक उत्पन्न करना था। हेलेनी इतिहास के विकास काल में ऐसी दुर्दशा असाधारण थी और भयानक रूप से असामान्य समझी जाती थी। निकाले हुए विरोधियों को शान्ति के समय घर लौटा लाने के लिए उस समय के नगर-राज्यों के शासक वर्गों को राजी कराने के सिकन्दर के उदार प्रयत्नों के द्वारा भी यह बुराई समाप्त न हुई। यह अग्नि स्वयं अपना ईंधन बनाती रही। एक बात यह थी कि निर्वासित लोगों को भाड़े के सैनिकों के रूप में ही भरती होने का मौका मिलता था। सैनिक जनशक्ति की इस बाढ़ ने युद्ध में नयी उत्तेजना जाग्रत की, जिससे नये निर्वासित पैदा हुए, जो अधिक भाड़े के सैनिक होते थे।

युद्ध ने विनाशकारी आर्थिक शक्ति की क्रिया-प्रणाली उत्पन्न की जिसके द्वारा यूनान के लोगों में से युद्ध की भावना के नैतिक पतन के प्रभाव का प्रत्यक्ष उन्मूलन करके शक्तिशाली ढंग से उनका बलवर्धन किया गया। उदाहरणार्थ, दक्षिण-पश्चिमी एशिया में सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों के युद्धों ने यूनान के गृहविहीनों के एक दल को सेना में दल के नैतिक पतन के प्रभाव का उन्मूलन करने के लिए नौकरी दी। दो शताब्दियों से संग्रहीत अकेमेनियाई खजानों के धन से इन भाड़े के सैनिकों को वेतन देकर एकत्र धन संचरण में लाया गया। मुद्रा की इस अचानक वृद्धि ने कृषकों और कारीगरों में तबाही मचा दी। दाम बढ़े। इस वित्तीय क्रान्ति ने समाज में एक अंश को भिखारी बना दिया जो अब तक सापेक्ष सुरक्षा में था। सौ साल बाद पुनः हैनिबली युद्ध के आर्थिक परिणामों के फलस्वरूप वही पैसे-पैसे की मुहताजी का प्रभाव उत्पन्न हुआ। उस समय इटली की धरती से कृषकों को उखाड़ दिया गया, पहले हैनिबल के सैनिकों द्वारा बरबादी और फिर बहुत दिनों तक रोम की सैनिक सेवा के कारण। इस घोर दुर्दशा में इटालियाई कृषक वर्ग के मुहताज उत्तराधिकारियों के लिए, जिन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध उखाड़ डाला गया था, सैनिक व्यवसाय के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। यह व्यवसाय उनके पूर्वजों पर बेगारी के रूप में लादा गया था।

'अ-प्रजातिकरण' (डीरेसिनेशन) के इस कठोर तरीके में हम निःसन्देह यूनानी आन्तरिक सर्वहारा की उत्पत्ति का अवलोकन कर रहे हैं। इस तथ्य के होते हुए भी आरम्भिक पीढ़ियों में, किसी भी मात्रा में, इस तरीके के शिकार आरम्भिक अभिजात लोग थे। क्योंकि सर्वहारावाद भावना है, न कि बाह्य परिस्थितिजन्य स्थिति। प्रथम जब हमने 'सर्वहारा' शब्द का प्रयोग किया, तब हमने अपने उद्देश्य के लिए सामाजिक तत्त्व या समूह के रूप में इसकी परिभाषा दी। ये सामाजिक तत्त्व या समूह किसी भी तरह समाज में या समाज के इतिहास में समाज 'में' थे कि नहीं। यह परिभाषा स्पार्टा के निर्वासित जनरल क्लीमरकस, साइरस दि यंगर के दूसरे कुलीनवर्गीय कप्तानों के यूनान के भाड़े की सेना पर लागू होती है। इन सभी पूर्ववर्तियों का तथा निकृष्ट बेकार मजदूरों का चित्रण ज़ेनोफन ने किया है। ये मजदूर मिस्र के मैसोडोनियन राजाओं तथा रोम के जनरलों के नेतृत्व में भाड़े के सैनिकों के रूप में भरती हुए। इस सर्वहारा का वास्तविक प्रमाण-चिह्न न तो गरीबी है और न नीच जाति में जन्म लेना है, वरन् यह एक चेतना है जो समाज में अपने पूर्वजों से प्राप्त की जाती है और यह चेतना क्षोभ को उत्तेजित करती है।

इस प्रकार हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा में सर्वप्रथम विघटित यूनानी राज्य निकायों के स्वतन्त्र

नागरिकों में से यहाँ तक कि कुलीनवर्गीय लोगों में से भी भरती किये गये। इन पहले रंगरूटों से सर्वप्रथम आध्यात्मिक जन्मसिद्ध अधिकार छीनकर इन्हें उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया। किन्तु, निश्चित रूप से इनकी आध्यात्मिक विपन्नता ने भौतिक धरातल पर आर्थिक मुहताजी का बहुधा साथ दिया। यह आर्थिक मुहताजी करीब-करीब सदैव आध्यात्मिक विपन्नता के बाद आयी। दूसरे वर्गों से रंगरूटों को भरती करके शीघ्र ही सर्वहारा का बलवर्धन किया गया। ये दूसरे वर्ग के रंगरूट आरम्भ से ही जैसे आध्यात्मिक थे वैसे ही भौतिक सर्वहारा के थे।

मकदूनिया के विजय-प्रयाणों ने हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा की संख्या बहुत अधिक बढ़ा दी। इन युद्धों ने सम्पूर्ण सीरिया, मिस्र तथा बैबीलोनिया के जन-समूहों को यूनानी शक्तिशाली अल्पसंख्यकों के जाल में फँसा दिया जब कि रोम की बाद की विजयों ने यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका के आधे जंगली लोगों को समाप्त कर दिया।

हेलेनी सर्वहारा की बलवृद्धि में अपनी इच्छा के विरुद्ध आये। विदेशी आरम्भ में कदाचित् यूनान के वास्तविक निवासी सर्वहारा से एक दृष्टि में अधिक भाग्यशाली थे। यद्यपि वे नैतिक दृष्टि से उत्तराधिकार से वंचित किये गये और भौतिक दृष्टि से लूट लिये गये, फिर भी शारीरिक दृष्टि से निर्मूल नहीं किये गये। किन्तु विजेताओं के बाद दासों का व्यापार आरम्भ हुआ और ईसा पूर्व की दो शताब्दियों तक भूमध्यसागरी तटों के क्षेत्र की जनसंख्या इटली के दासों के बाजार की अतृप्त माँगों की पूर्ति के लिए थी। इस जनसंख्या में पश्चिमी असभ्य तथा पूर्वी सभ्य दोनों प्रकार के लोग थे।

अब हम देखते हैं कि यूनानी विघटित समाज का आन्तरिक सर्वहारा तीन विभिन्न तत्त्वों से बना है। ये तत्त्व हैं:—(१) समाज के सदस्य जो उत्तराधिकार से वंचित तथा सामाजिक जीवन से उन्मूलित हैं, (२) विदेशी सभ्यताओं के उत्तराधिकार से आंशिक रूप में वंचित तथा उस आदिम समाज के सदस्य जो बिना निर्मूल किये पराजित और शोषित किये गये थे, (३) दोहरे उत्तराधिकार से वंचित तथा बाध्य होकर उस प्रजावर्ग से बने सैनिक जिनको केवल उन्मूलन ही नहीं किया, वरन् जिन्हे दास बनाया गया और मृत्यु तक कार्य करने के लिए सुदूर उपनिवेशों को निर्वासित किया गया। इन तीनों प्रकारों के विपद्ग्रस्त दलों की यातना वैसी ही भिन्न-भिन्न थी, जैसी उनकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न थी, किन्तु सामाजिक उत्तराधिकार से वंचित होने के अत्यन्त साधारण अनुभव एवं शोषण से समाज बहिष्करण द्वारा ये भिन्नताएँ सीमा से अधिक हो गयी थीं।

जब हम परीक्षण करते हैं कि इन अन्याय के शिकार हुए लोगों की प्रतिक्रिया अपने भाग्य के साथ कैसी होती है, तब हमें आश्चर्य नहीं होता कि उनकी प्रतिक्रियाओं में से एक अपनी बर्बरता का उद्घाटन है। यह बर्बरता हिंसा में अपने शोषक एवं अत्याचारियों की निर्मम निष्ठुरता को भी मात दे देती है। निराश सर्वहारा के उपद्रव के कोलाहल में आक्रोष के स्वर की एकरूपता गूंजती है। हम इस गूंज को निरन्तर क्रम में मिस्र के मैसीडोनी राजाओं के शोषण के विरुद्ध की जनता के विद्रोह में तथा जूडास मैकाबियस १६६ ई० पू० के उत्थान से लेकर बार कोकाबा (१३२ ई० पू०-३५ ई०) के नेतृत्व की परित्यक्त आशा तक में सुनते हैं। यही आक्रोष का स्वर पश्चिमी एशिया माइनर के अर्द्ध यूनानी तथा अत्यन्त सभ्य लोगों में दो बार,

अटालिड अरिस्टोनिक्स (१३२ ई० पू०) तथा पोन्टस के राजा मिथ्राडेटिस (८८ ई० पू०) के नेतृत्व में रोम के बदला लेने वालों पर प्रचण्ड क्रोध प्रदर्शित करने की प्रेरणा में था। सिसिली और दक्षिणी इटली में भी दास विद्रोह की एक शृंखला है। यह विद्रोह थ्रेस (यूनान का प्राचीन नगर) के पेशेवर फरार सैनिक एवं दासों के विद्रोही नेता स्पार्टक्स् के उग्र कार्यों में चरम सीमा पर था। स्पार्टक्स ने सम्पूर्ण इटली प्रायद्वीप में सर्वत्र इस विद्रोह का संगठन किया और रोम के भेड़िये को उसके माँद में ही ललकारा (७३ ई० पू० से ७१ ई० पू० तक)।

इन विद्रोहों की उग्रता सर्वहारा के केवल विद्रोही तत्त्वों में ही नहीं थी। गृह-युद्ध में रोम के नागरिक सर्वहारा ने बर्बरता द्वारा रोम के धनिकतन्त्र को बदल दिया और उस पर अधिकार कर लिया। विशेष रूप से यह बर्बरता ९१ ई० पू०—८२ ई० पू० के आवेग में थी। यह बर्बरता जुडास मैक्रेबियस या स्पार्टक्स की बर्बरता के समान ही थी। रोम के क्रान्तिकारी नेता—सारटोरियस्, सेक्सटस्, पाम्पियस् मैरियस् और कैटेलाइन—जो अपने भाग्य-चक्र के कुछ असाधारण परिवर्तनों के द्वारा स्वतः मुँह के बल सिनेट के बाहर गिरे, सबसे अधिक शैतान थे। इन शैतानों की काली आकृति की अशुभ प्रतिच्छाया संसार को आक्रान्त करने वाली विद्रोह की ज्वाला से निर्मित हुई थी।

हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा की प्रतिक्रिया केवल आत्महत्यात्मक हिंसा ही नहीं थी। प्रतिक्रिया की एक दूसरी प्रणाली पूर्ण रूप से थी, जिसकी उच्च अभिव्यक्ति ईसाई धर्म में पायी गयी। दल से अलग होने की इच्छा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति वैसी ही उदार एवं अहिंसक प्रतिक्रिया है, जैसी हिंसात्मक प्रतिक्रियाएँ।

उच्च कुलोत्पन्न शहीद यहूदियों के फरीसी सम्प्रदाय के आदि गुरु थे, और फरीसी[1] वे हैं, जो स्वयं को अलग रखते हैं। इसी से ये 'विच्छेदवादी' कहलाते हैं। यह उपाधि उन्होंने स्वयं धारण कर ली है। फरीसी रोमी भाषा की व्युत्पत्ति के अनुसार 'सेसेशनिस्ट' (विच्छेदवादी) का रूपान्तर है। इन उच्च कुलोत्पन्न शहीदों को मकाबियों की द्वितीय पुस्तक में वृद्ध धर्मलिपिक एलीजर और सात भाई तथा उनकी माँ के रूप में स्मरण किया गया है। ईसा पूर्व द्वितीय शती के बाद से हेलेनी संसार के पूर्वी आन्तरिक सर्वहारा के इतिहास में हम हिंसा तथा सौम्यता को आत्मा के उत्कर्ष के लिए भगीरथ प्रयत्न करते हुए तब तक देखते हैं जब तक हिंसा स्वयं अपना नाश नहीं कर लेती और सौम्यता को क्षेत्र में अकेला ही नहीं छोड़ देती।

आरम्भ में यह बात उठी। सभ्यता का वह मार्ग जो आदि शहीदों के द्वारा १६७ ई० पू० में अपनाया गया था, हिंसक जुडास (ईसा के १२ शिष्यों में से एक जिसे हिंसक होने के कारण नरक मिला।) द्वारा शीघ्र छोड़ दिया गया। इस सर्वहारा की 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली भौतिक सफलता ने भावी पीढ़ी को इतना चकाचौंध कर दिया, यद्यपि यह भौतिक सफलता चाकचिक्यपूर्ण होते हुए भी क्षणभंगुर थी कि ईसा के सर्वप्रिय साथी भी अपने गुरु की नियति सम्बन्धी भविष्यवाणियों पर बदनाम किये गये। जब ये भविष्यवाणियाँ सत्य होती थीं, तब वे प्रणम्य होते थे। तिस पर भी ईसा के बलिदान के कुछ ही महीने बाद गैमेलिएल (सन्तपाल का

---

[1] कट्टर यहूदी।—अनु०

यहूदी उपदेशक) ने ईसा के चमत्कारिक रूप से एकत्र शिष्यों को ऐसे मनुष्यों की भाँति देखा जो सिद्ध कर सकते थे कि ईश्वर उनकी ओर है। कुछ साल बाद गैमेलिएल के शिष्य पाल ईसा की भाँति उपदेश दे रहे थे।

ईसा की प्रथम पीढ़ी में हिंसा के मार्ग से शान्ति के मार्ग को परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन भौतिक आशाओं को आघात से छिन्न-भिन्न करने के मूल्य पर खरीदा गया। ईसा को सूली पर लटका कर ईसा के अनुयायियों के साथ वैसा ही किया गया जैसा ७० ई० में जेरूसलम को नष्ट कर परम्परावादी यहूदियों के साथ हुआ। 'जुडाइज़म' (यहूदियत) के नये सम्प्रदाय का उदय हुआ। इस सम्प्रदाय ने यह धारणा त्याग दी कि वस्तुओं की बाह्य अवस्था ही ईश्वर का राज्य है जो शीघ्र ही प्रकट किया जाने वाला है।[1]

वे ईश्वर-ज्ञान सम्बन्धी लेख पैगम्बरों तथा धार्मिक कानून के सामान्य नियमों से अलग कर दिये गये, जिनमें यहूदियों के हिंसात्मक तरीके की साहित्यिक अभिव्यक्ति पायी जाती थी। डैनियल की विशिष्ट पुस्तक ही केवल इसका अपवाद है। इसके विपरीत मानवीय हाथों से इस संसार में ईश्वरीय इच्छा के पूर्ण करने की धारणा के विकास के सभी प्रयत्नों से स्वयं को अलग रखने का सिद्धान्त यहूदियों की परम्परा में इतने शीघ्र घुल-मिल गये कि कट्टर अंधविश्वासी अगुडाथ इसरायल ने यहूदीवादी आन्दोलन को सन्देहास्पद दृष्टि से देखा और बीसवी शती के फिलस्तीन के यहूदियों ने राष्ट्रभूमि के निर्माण-कार्य से स्वयं को एकदम अलग रखा।

यदि अन्धविश्वासी यहूदियों का हृदय-परिवर्तन परम्परावाद के रूप में उन्हें जीवित रखने में समर्थ हुआ तो इसी के साथ ही ईसा के साथियों के हृदय-परिवर्तन ने ईसाई धर्मतन्त्र की विजय के लिए मार्ग प्रशस्त किया। ईसा को सूली पर चढ़ाना ईसाई धर्मतन्त्र को चुनौती की प्रतिक्रिया इलीजर तथा सात भाइयों की सौम्य पद्धति में व्यक्त हुई। इसका पुरस्कार हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के परिवर्तन तथा इसके बाद वाह्य सर्वहारा के जंगली तथा लड़ाकू दलों के परिवर्तन के रूप में मिला।

प्रथम शती के अपने विकास में ईसाइयत का प्रत्यक्ष विरोधी हेलेनी समाज का आदिम धर्म अपने नवीनतम छद्मवेष में था। धर्म का यह छद्मवेष डाइक्स सीजर के व्यक्तित्व में हेलेनी सार्वभौम राज्य की मूर्तिपूजा में था। अपने सदस्यों को मूर्तिपूजा की अनुमति देने से धर्मतन्त्र का इनकार करना भद्र होते हुए भी दुराग्रही था। यद्यपि यह केवल दिखावटी और रिवाजी तरीका था जिससे राजकीय दण्ड की शृंखला आरम्भ हुई। अन्त में रोम की साम्राज्य-सरकार को उस आध्यात्मिक शक्ति के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए वाध्य किया गया जो सरकार को वाध्य करने में स्वयं समर्थ नहीं थी। किन्तु, यद्यपि साम्राज्य का आदि राजधर्म सरकार के सभी अधिकारियों की सम्पूर्ण शक्ति से बनाये रखा गया, फिर भी मानव हृदय पर उसका प्रभाव नहीं के बराबर था। राजधर्म के प्रति पारम्परिक सम्मान प्रारम्भ और अन्त में था। इस सम्मान को रोम के मजिस्ट्रेट ईसाइयों को धार्मिक पूजा के कृत्यों को प्रदर्शित कर दिखाने की आज्ञा देते थे। इसमें उन गैर-ईसाइयों के लिए इससे कुछ और अधिक नहीं था कि उनसे जो

---

[1] वर्कीट, एफ० सी० : जेविस एण्ड क्रिसियन एपोकालिप्सेस्, पृष्ठ १२।

कुछ कहा जाय वे वही करें। ये नहीं समझते थे कि ईसाई मामूली रीति-रिवाज के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा आत्मबलिदान पर क्यों जोर देते हैं। ईसाई धर्म के प्रतिद्वन्द्वी जो स्वयं शक्तिशाली थे, न तो राज-पूजा थे और न तो धर्म का कोई आदि रूप ही थे। एक प्रकार का—'उच्चतर धर्म' था जिसका उदय हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा से ईसाई मत की भाँति हुआ था। ईसाई धर्म का यह प्रतिद्वन्द्वी स्वयं स्थानीय आकर्षण के कारण शक्तिशाली था तथा उसे राजनीतिक बाध्यता के समर्थन की आवश्यकता न थी।

विभिन्न सूत्रों को स्वयं स्मरण कर हम इन प्रतिद्वन्द्वी 'उच्चतर धर्मों' की कल्पना कर सकते हैं जिनसे हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के पूर्वी सैन्यदल की उत्पत्ति हुई। ईसाई धर्म सीरियाई जनता के पूर्वजों से आया। सीरियाई संसार के आधे ईरानियों ने मिथ्रावाद को योगदान किया। आधे उत्तरी मिस्र की दरिद्रता में डूबने से 'आइसिस' की पूजा का प्रादुर्भाव हुआ। इनातोल के 'ग्रेट मदर साईबिली' की पूजा सम्भवतः उस हिताइती समाज के योगदान से आयी हुई समझी जा सकती है, जो धर्म को छोड़कर समाज के प्रत्येक धरातल से वहुत पहले ही समाप्त हो चुकी थी।

यदि हम स्वयं 'ग्रेट मदर' की मूल उत्पत्ति का पता लगाना आरम्भ करें, तब इसे अपने मूल रूप में इशतार नाम से सुमेरी संसार में सुपरिचित पायेंगे।—एमातोलिया में पेसिनस में 'साइबिली' के रूप में स्थापित करने के पहले या हिरापोलिस में 'डी साइरा' की भाँति अथवा उत्तरी सागर या बाल्टिक सागर के 'पवित्र द्वीप' के कुंजों में टयूटोनी भाषी पुजारियों की 'धरती माता' की भाँति—यह ग्रेट मदर—पायी जाती है।

मिनोई काल की रिक्तता तथा कुछ हिताइत अवशेष

जब हम अन्य विघटित समाजों में आन्तरिक सर्वहारा के इतिहासों को खोजते हैं तब हमको स्वीकार करना पड़ता है कि कुछ स्थितियों में अल्प प्रमाण मिलते हैं या एकदम नहीं मिलते। उदाहरणार्थ, हम 'माया' समाज के सर्वहारा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। मिनोई समाज के मामले में कुछ वस्तुओं के अवशेष की, जो ऐतिहासिक 'ओरफिक धर्मतन्त्र' के विजातीय तत्त्वों में सुरक्षित रखे जा सकते हैं, तृष्णा उत्तेजित करने वाली आशा की टिमटिमाहट की सम्भावना में हमारा ध्यान खिंच जाता है। इन कुछ अवशेषों को मिनोई सार्वभौम धर्मतन्त्र कहा जा सकता है। ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के बाद हेलेनी इतिहास में 'ओर्फिक' धर्मतन्त्र का अस्तित्व आरम्भ होता है। हम किसी प्रकार निश्चित नहीं कर सकते कि ओरफीवाद के धार्मिक विश्वास तथा अभ्यास मिनोई धर्म से निकले हैं। पुनः इसके बाद हम हिताइती सभ्यता के आन्तरिक सर्वहारा के बारे में कुछ भी नहीं जानते, जो असामान्य रूप से अपनी आरम्भिक अवस्था में ही नष्ट हो चुका है। हम इतना ही कह सकते हैं कि हिताइती समाज के अवशेष आंशिक रूप से सीरियाई समाज में तथा आंशिक रूप से हेलेनी समाज में आत्मसात् कर लिये गये हैं। अतएव हिताइती समाज के किसी भी अवशेष के लिए हमें इन दो विदेशी समाजों के इतिहासों की खोज करनी चाहिए।

वहुत-से विघटित समाजों में से एक हिताइती समाज है, जिसे विघटन की प्रणाली से पूर्ण होने से पहले ही उसके एक पड़ोसी ने निगल लिया। ऐसे मामलों में यह स्वाभाविक है कि एक आन्तरिक सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्या के भविष्य के भाग्य का सम्मान उपेक्षा की दृष्टि से

या सन्तोष के साथ करें। जब स्पेनी विजेताओं ने अचानक आक्रमण किया, तब इन्डियन सर्वव्यापी राज्य के आन्तरिक सर्वहारा का व्यवहार परीक्षा की बात (टेस्ट-केस) है। अब तक जितने विघटित समाज पैदा हुए थे, उनमें 'ओरेजोन्स' ही कदाचित् सबसे अधिक उदार शक्तिशाली अल्पसंख्यक था, किन्तु इसकी उदारता परीक्षा के समय कुछ भी काम न आयी। इसी प्रकार उनके (ओरेजेन्स के) सावधानी से पालित मनुष्यों के झुंडों ने बिना किसी हिचकिचाहट के स्पेनी विजय को स्वीकार किया जिस प्रकार उन्होंने 'इनका'[1] की सार्वभौम शान्ति को स्वीकार किया था।

हम उन स्थितियों की ओर भी संकेत कर सकते हैं जिनमें आन्तरिक सर्वहारा वर्ग ने अपने प्रभावी अल्पसंख्यक वर्ग के विजेताओं का अदम्य उत्साह के साथ स्वागत किया है। उन नये बैबिलोनी साम्राज्य के फारसी विजेता का स्वागत 'डिउटरों इसैहा' के भाषणों के संग्रहों में मुखरित है। इस विजेता ने यहूदियों को बन्दी बनाया था। दो सौ वर्षों बाद बैबिलोनी लोगों ने हेलेनी सिकन्दर का स्वागत एकेमेनियाई प्रभुत्व से मुक्ति दिलाने वाले के रूप में स्वतः किया।

जापानी आन्तरिक सर्वहारा

सुदूर पूर्वी समाज के जापान के इतिहास में जापानी आन्तरिक सर्वहारा के पार्थक्य के कुछ स्पष्ट चिह्न पाये जा सकते हैं। पश्चिमी समाज के द्वारा इस सर्वहारा के समाप्त होने से पहले भी ये विपत्तियों के समय दिखाई देते हैं और अपने सार्वभौम राज्य में प्रविष्ट हो जाते हैं। यदि हम उदाहरण के लिए हेलेनी नगर-राज्य के उन नागरिकों के प्रतिरूपों को देखें, जिनका उन्मूलन निरन्तर युद्ध एवं क्रान्तियों ने किया—ये युद्ध तथा क्रान्तियाँ ४३१ ई० पू० से आरम्भ हुई थीं—इस समय नगर-राज्य के नागरिकों ने भाड़े के सैनिक होकर एक राह पायी—तो हम इसके एकदम समानान्तर उदाहरण 'रोनिन' या स्वामी विहीन बेकार सैनिकों में पायेंगे। ये सैनिक सामन्ती अराजकता के द्वारा जापानी संकटकाल में नष्ट किये गये थे। पुनः विचारार्थ 'एटा' या 'नीच जाति' को ले सकते हैं, जो आज भी बहिष्कृत जाति के रूप में जापानी समाज में बचे हैं, तथा जो मुख्य द्वीप के 'एनू' बर्बर जाति में आत्मसात् होने से आज भी बच गये हैं। ये अवशिष्ट अंश वैसे ही जापानी आन्तरिक सर्वहारा में मिला लिये गये जैसे यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के जंगली हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा में रोम के सैनिकों द्वारा मिला लिये गये थे। तीसरा उदाहरण हम उन 'उच्चतर धर्मों' के जापानी पर्यायों में पा सकते हैं जिनमें हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा ने अपनी उन यातनाओं की शक्तिशाली प्रतिक्रिया खोजी और पायी जो उन्हें सहनी पड़ी थी।

ये धर्म जोडो, जोडो शिशु, होक्को और ज़ेन थे। ये सभी ११७५ ई० के पश्चात् उसी शती में स्थापित किये गये थे। ये सभी धर्म उन हेलेनी पर्यायों के सदृश हैं जो विदेशी प्रेरणा से उत्पन्न हुए थे। ये चारों महायान के विभिन्न रूप थे। यौन विषय की आध्यात्मिकता की समानता की शिक्षा देने के क्षेत्र में इन चारों धर्मों में से तीन ईसाई धर्म से मिलते थे। सरल

---

[1] एक पुरानी सभ्यता की जाति।—अनुवादक

जनता को अपना धार्मिक उपदेश करते हुए इन धर्मों के प्रचारकों ने चिर क्लासिकी चीनी लिपि का बहिष्कार किया। जब लिखना पड़ा, सरल जापानी लिपि में लिखा। धर्म संस्थापकों के रूप में उनकी मुख्य दुर्बलता यह थी कि अधिक-से-अधिक जनता के परित्राण की इच्छा में उन्होंने अपनी माँगों को अत्यन्त कम कर लिया था। कुछ ने कर्मकाण्ड करने की पद्धति का केवल सूत्र निश्चित किया और दूसरों ने अपने शिष्यों पर नैतिक बोझ कुछ भी नहीं डाला। किन्तु यह स्मरण रखना होगा कि 'पापों को क्षमा करने' के ईसाइयत के मुख्य सिद्धान्त का विभिन्न कालों और स्थानों में अपने आप बने ईसाई नेताओं द्वारा दुरुपयोग किया गया या गलत ढंग से समझा गया। इन ईसाई नेताओं ने उपर्युक्त एक या दोनों आरोपों का उद्घाटन किया। उदाहरणार्थ 'लूथर' ने रोमन धर्मतंत्र द्वारा किये जाने वाले पाप से मुक्ति की बिक्री पर आक्रमण किया। लूथर ने अपने युग की रोमन धर्म की 'पाप से मुक्ति' की बिक्री की प्रथा का विरोध किया और कहा कि यह कर्मकाण्ड के परदे में व्यापारिक लेन-देन ही है। किन्तु साथ-ही-साथ उसने पाल के विश्वास वाले सिद्धान्त का और उसके पाप से निवृत्ति के ढंग का समर्थन किया। और इस प्रकार नैतिकता के प्रति उदासीनता का अपराधी बना।

विदेशी सार्वभौम राज्य के अन्तर्गत आन्तरिक सर्वहारा

विघटित सभ्यताओं के एकदल द्वारा एक विचित्र दृश्य उपस्थित होता है। स्थानीय शक्तिशाली अल्पसंख्यक के नष्ट या पराजित कर दिये जाने के बाद बाह्य घटनाओं का क्रम सामान्य अवस्था में होता चलता है। तीन समाजों के——हिन्दू, सुदूर पूर्वी चीनी तथा निकटवर्ती पूर्वी परम्परावादी ईसाई—लोग पतन के मार्ग से विघटन की ओर बढ़े। यह सार्वभौम राज्य उन तीनों समाजों ने स्वयं नहीं बनाया था, वरन् उन्हें विदेशी लोगों से वरदान के रूप में मिला था या विदेशियों द्वारा उन पर लादा गया था। एक 'सार्वभौम राज्य' ईरानी लोगों से परम्परावादी ईसाई राज्य के मुख्य अंश को उसमानिया साम्राज्य के रूप में तथा दूसरा हिन्दू संसार में तैमूरी साम्राज्य के रूप में मिला था। अंग्रेजों ने शीघ्र निर्मित मुगल राज्य का पुनर्निर्माण नींव से किया। चीन में वे मंगोल थे जिन्होंने मुगलों या उसमानिया लोगों की भूमिका अदा की। भारत में पुनर्निर्माण का कार्य जिस दृढ़ आधार पर अंग्रेजों ने किया वैसे ही चीन में मंचुओं ने किया।

जब विघटनोन्मुख समाज में कुछ विदेशी राज्यनिर्माता सार्वभौम राज्य के निर्माण के लिए प्रवेश कर लेते हैं, तब विघटनोन्मुख समाज का शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने को पूर्ण अयोग्य एवं निर्जीव स्वीकार कर लेते हैं। अपमानजनक मनवंचन (डिसफ्रेंचाइज़मेंट) इस अकालिक वृद्धता का अपरिहार्य दण्ड है। जो विदेशी शक्तिशाली अल्पसंख्यक का कार्य करने आते हैं, वे स्वभावतः प्रभावशाली अल्पसंख्यक के अधिकारी होने का कार्य अपने ऊपर ले लेते हैं। विदेशियों द्वारा निर्मित सार्वभौम राज्य में सम्पूर्ण स्थानीय अल्पसंख्यक आन्तरिक सर्वहारा के रूप में अवनत कर दिये जाते हैं। मंगोल या मंचू खाकान और उसमानिया बादशाह, मुगल तथा ब्रिटिश कैसरे हिन्द को चीनी विद्वानों या हिन्दू ब्राह्मणों या ग्रीक के 'फैनारियोट' को सेवा के लिए नियुक्त करने में सुविधा होती थी। किन्तु, इन एजेन्टों से यह सत्य छिपाया नहीं जा सकता था कि उन्होंने अपनी आत्मा तथा अपनी प्रतिष्ठा को खो दिया है। ऐसी स्थिति में जब शक्तिशाली अल्पसंख्यक आन्तरिक सर्वहारा के समान गिर चुका है, जिसे वह पहले घृणा की दृष्टि से देखता था, तब विघटन की यह कार्यप्रणाली स्वाभाविक ढंग से नहीं हो सकती।

अपनी पीढ़ी में हिन्दू समाज के आन्तरिक सर्वहारा में हम सर्वहारा की दो प्रकार की हिंसक तथा अहिंसक प्रतिक्रियाओं का भेद कर सकते हैं। हिंसावादी बंगाली क्रान्तिकारियों द्वारा की गयी हत्याएँ तथा गुजराती महात्मा गांधी के अहिंसात्मक उपदेश, ये दोनों प्रतिक्रियाएँ एक दूसरे की विरोधी हैं। अनेक धार्मिक आन्दोलनों से सर्वहारा की उत्तेजना के लम्बे बीते उस इतिहास से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं जिसमें ये दो विरोधी प्रवृत्तियाँ समान रूप से दिखायी गयी हैं। सिख धर्म में हम हिन्दू तथा इस्लाम के युद्धात्मक सर्वहारा का तथा ब्रह्म-समाज में हिन्दू धर्म तथा उदार प्रोटेस्टैन्ट ईसाई धर्म की अहिंसा की संहति देखते हैं।

चीन के सुदूर पूर्वी समाज में, मंचू शासन के अन्तर्गत आन्तरिक सर्वहारा में वह कार्य टैपिंग आन्दोलन में देखते हैं जो प्रोटेस्टेन्ट ईसाई धर्म की उदार भावना के लिए ब्रह्म-समाज का ऋणी है, किन्तु वह सिख धर्म का भी युद्धात्मक प्रवृत्ति के लिए आभारी है। इसी उपर्युक्त सर्वहारा ने ईसाई युग की १९ वीं शती के मध्य सामाजिक रंगमंच को प्रभावित किया था।

ईसाई युग के १४ वीं शती के पाँचवें दशक में परम्परावादी ईसाई साम्राज्य के मुख्य अंश के सर्वहारा में हुई सैलेनिका की 'जीलट'[1] क्रान्ति में हमें सर्वहारा की हिंसात्मक प्रतिक्रिया की झांकी परम्परावादी ईसाई धर्म के घोर संकटकाल में मिलती है। यह संकटकाल उसमानिया विजेता के कठोर अनुशासन द्वारा परम्परावादी ईसाई समाज के सार्वभौम राज्य में मिलाये जाने के पहले की अन्तिम पीढ़ी में आया था। तात्कालिक सभ्य प्रतिक्रियाएँ आगे बहुत दूर तक नहीं बढ़ीं। १८ वीं तथा १९ वीं शती की मोड़ पर यदि पश्चिमीकरण की प्रणाली का अनुसरण उसमानिया साम्राज्य के साथ-ही-साथ नहीं किया गया होता तो हम अनुमान कर सकते हैं कि 'बेकटासी' आन्दोलन पूरे निकट पूर्व में स्वतः वह स्थिति प्राप्त कर लेता जिसे अल्बेनिया में उसे प्राप्त करने में वास्तविक सफलता मिली।

बैबिलोनी तथा सीरियाई आन्तरिक सर्वहारा

यदि अब हम बैबिलोनी संसार को देखें तो हम पायेंगे कि आन्तरिक सर्वहारा की दुखमय आत्मा में धार्मिक अनुभव तथा खोज की उत्तेजना वैसी ही सक्रिय थी, जैसी ईसा से सातवीं तथा आठवीं शतियों पूर्व असीरियाई आतंक के अन्तर्गत दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में तथा जैसी उपर्युक्त घटना के लगभग छः शतियों बाद रोमनी आतंक के अन्तर्गत भूमध्य सागर के हेलेनी समुद्रतटों पर थी। असीरियाई सैनिकों द्वारा विघटित बैबिलोनी समाज का विस्तार भौगोलिक दृष्टि से वैसे ही दो ओर हुआ जैसे मैसिडोनी तथा रोमन विजयों द्वारा विघटित हेलेनी समाज का हुआ था।

ईरान में पूरब की ओर जैग्रोस के आगे असीरियाई लोगों ने एपेनाइन के परे यूरोप में रोम द्वारा अनेक आदिम समाजों को जीत कर शोषण की आशा कर ली थी। पश्चिम की ओर दजला नदी के आगे डार्डेनल्स के एशिया की ओर दो विदेशी सभ्यताओं को पराजित कर मैसिडोनी शोषण की असीरियाई लोगों ने आशा कर रखी थी। ये सीरियाई तथा मिस्री लोग वास्तव

---

[1] यहूदियों का वह कट्टर वर्ग जिसने रोमनों का विरोध किया था।—अनुवादक

में समान थे। उपर्युक्त चार में से दो समाज सिकन्दर के सामरिक अभियान के वाद हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा में मिला लिये गये। बैबिलोनी सैन्यवाद के विदेशी शिकार विना निर्मूल किये जीत लिये गये थे। पराजित जनसंख्या को निर्वासित करके इसरायली लोग असीरिया के युद्ध के सरदार 'सारगन' द्वारा पुनःस्थापित किये गये। नये बैबिलोनी युद्ध सरदार नेवुकदनजार के द्वारा यहूदियों का बैबिलोनी संसार के मध्य बैबिलोनिया में पुनःस्थापन किया गया।

पराजित लोगों का उत्साह भंग करने के लिए बैबिलोनी साम्राज्यवाद की मुख्य युक्ति जनसंख्या का अनिवार्य परिवर्तन थी और निष्ठुरता विदेशी तथा बर्बरों पर ही आरोपित नहीं की गयी। बैबिलोनी संसार में भ्रातृहन्ता युद्ध की प्रभावशाली शक्तियाँ आपस में वैसा ही व्यवहार करने में जरा भी नहीं हिचकिचायीं। सैमैरिटन समुदाय जिसके कुछ प्रतिनिधि अभी गंरिज्रिम पर्वत की छाया में पाये जा सकते हैं, जनसंख्या के पुनःस्थापन के स्मारक हैं। ये पुनःस्थापित लोग असीरियनों द्वारा बैबिलोनिया सहित अनेक बैबिलोनी नगरों से निर्वासित किये गये थे।

यह देखा जायगा कि उत्साही असीरियाई तब तक समाप्त नहीं हुए, जब तक उन्होंने उस बैबिलोनी सर्वहारा का अस्तित्व स्थापित नहीं किया जो अपनी उत्पत्ति, वनावट एवं अनुभव में हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के समान था। इन दोनों वृक्षों में समान ही फल लगे, जब सीरियाई समाज का हेलेनी सर्वहारा में बाद के समावेशन ने यहूदी धर्म से ईसाइयत का फल पैदा किया, उसी सीरियाई समाज के बैबिलोनी आन्तरिक सर्वहारा के आरम्भिक समावेशन ने स्थानीय समुदाय के आदि धर्म से यहूदी धर्म के फल की उत्पत्ति तब की थी, जब सीरियाई समाज ने उसे स्वीकार किया।

यह देखा जा सकता है कि तब तक यहूदी धर्म तथा ईसाई धर्म दार्शनिक दृष्टि से समकालीन तथा बराबर हैं जहाँ तक वे दो विदेशी समाजों के इतिहासों के समान अवस्था की उत्पत्ति समझे जाते हैं। एक दूसरी दृष्टि और भी है, जिसमें ये एक-दूसरे के बाद की अवस्था को आध्यात्मिक प्रबोधन की एक ही प्रणाली में उपस्थित हैं। इस बाद के चित्र में ईसाई धर्म यहूदी धर्म के साथ-ही-साथ नहीं खड़ा है, वरन् उसके कन्धे पर है, जब कि ये दोनों आदिम इसराइल धर्म से ऊँचे हैं। ईसा के पूर्व आठवीं शती में अथवा उसके बाद जिसका ऐतिहासिक उल्लेख हमारे पास है आदिम का ईसाई धर्म अथवा ओहोवा की पूजा का संकेत या उल्लेख है। पैगम्बरों के समक्ष तथा उनके बाद बाइबिल की परम्परा में मूसा उपस्थित होते हैं। और मूसा के समक्ष अबराहम की आकृति उपस्थित होती है। इन धुंधली आकृतियों को हम जिस भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से देखें, यह स्पष्ट है कि परम्परा उसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अबराहम तथा मूसा को रखती हैं जिसमें पैगम्बरों और ईसा को रखा था। मिस्र में मूसा की प्रतीति तथा 'नये साम्राज्य' का ह्रास साथ-ही-साथ हुआ। उस सुमेरी सार्वभौम राज्य के अन्तिम दिनों के साथ अबराहम की प्रतीति हुई जिसकी क्षणिक पुनर्रचना 'हेमु रब्बी' द्वारा हुई थी। इस प्रकार ये सभी चार अवस्थाएँ, जो अबराहम, मूसा, पैगम्बरों तथा ईसा के द्वारा उपस्थित की गयी हैं, विघटित सभ्यताओं और धर्म की नवीन प्रेरणाओं से सम्बन्धित हैं।

उच्च यहूदी धर्म की उत्पत्ति ने स्वयं अपने सम्बन्ध में इसरायल तथा जूडा के पूर्व निर्वासित पैगम्बरों की पुस्तकों में अद्वितीय ढंग से पूर्ण तथा स्पष्ट उल्लेख किया है। अत्यन्त आध्यात्मिक

भगीरथ प्रयत्न के इन जीवित अभिलेखों में हम एक ज्वलन्त प्रश्न देखते हैं जो हमें अन्य स्थानों पर मिला है । यह प्रश्न है हिंसा और अहिंसा में से एक के चुनाव की कठोर परीक्षा का । इस मामले में अहिंसा ने धीरे-धीरे हिंसा के ऊपर और भी विजय पायी । संकटकाल जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा और उसे पार कर गया, तब उसी संकटकाल ने लगातार प्रखर आघात किया । इस आघात ने 'हिंसा के उत्तर में हिंसा' की निस्सारता जूडा के घोर संघर्षशील हिंसावादियों को सिखायी । नवीन उच्चतर धर्म जो सीरिया में आठवीं शती में आरम्भ हुआ था, बैबिलोनिया के निर्मूलित, निर्वासित तथा आक्रान्त लोगों में छठीं तथा पाँचवीं शती ई० पू० में ही प्रौढ़ हो चुका था । सीरिया के धर्म के बीजों को असीरिया के मूसल से कूट-कूटकर यह 'उच्चतर धर्म' के रूप में शुद्ध किया गया ।

रोमन इटली में पूर्वी निर्वासित दासों की भाँति नेबुकदनजार के बैबिलोनिया में निर्वासित यहूदी अपने विजेताओं के लोकाचार के अनुसार स्वयं को सरलता से ढालने में असमर्थ सिद्ध हुए ।

'हे जेरुसलम्, यदि मैं तुम्हें भूल जाऊँ तो मेरे दाहिने हाथ का कौशल काम न आये ।'
'यदि मैं तुम्हें स्मरण न कर सकूँ तो मेरी जिह्वा मेरे तालू से सट जाय ।'[1]

अपने घर की वह स्मृति, जिसे ये निर्वासित नवीन भूमि पर भी अपने मस्तिष्क में सँजोये रहते थे, केवल नकारात्मक छाप नहीं थी । यह निश्चित रूप से सकारात्मक क्रिया द्वारा प्रेरित काल्पनिक सृष्टि थी । अलौकिक प्रकाश की इस दृष्टि में आँसुओं के बीच ध्वस्त दुर्ग दिखाई पड़ा जो चट्टान पर बसे उस 'पवित्र नगर' में रूपान्तरित हो गया था, जिसके सम्मुख नरक का द्वार बन्द था । पराजित लोगों ने विजेताओं के सायन के गीत को गाकर सुनाने की सनक अस्वीकार कर दी और अपनी वीणा फरात की धारा के किनारे के वृक्ष पर दृढ़तापूर्वक लटका दी । ये पराजित लोग उसी समय नवीन न सुनाई देने वाले गीत अदृश्य हृदतंत्री पर गा रहे थे ।

'हे सायन, जब हमने तुम्हें स्मरण किया तब हम बैबिलोनी धारा के किनारे बैठे और रोये ।'[2]
और उस रुदन में यहूदियों की भूमि ने प्रकाश पाया ।

यह स्पष्ट है कि सीरियाई अनिवार्य फौजी भरती की लगातार धार्मिक प्रतिक्रियाओं में तथा बैबिलोनी और हेलेनी इतिहास में समानता बहुत निकट है । किन्तु, बैबिलोनी चुनौती से उत्तेजित प्रतिक्रिया उन विपद्ग्रस्त लोगों में नहीं पायी गयी जो विदेशी सभ्यताओं के सदस्य थे, वरन् जो बर्बर भी थे । यूरोपी तथा उत्तरी अफ्रीका के बर्बरों ने, जिन्हें रोमनों ने जीता था किसी भी अपने निजी धर्म का अन्वेषण नहीं किया । उन्होंने अपने साथी पूर्वी सर्वहारा द्वारा बोये धर्म के बीजों को केवल स्वीकार किया । जो असोरयाई राजा के आधिपत्य में बर्बर ईरानी लोग थे, जिनमें एक जरथूष्ट्र नाम के स्थानीय पैगम्बर पैदा हुए । ये पारसी धर्म के संस्थापक थे । जरथूष्ट्र की तिथि विवादास्पद है । हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि उनका पारसी धर्म असोरियाई चुनौती की स्वतन्त्र प्रतिक्रिया थी या इनकी ध्वनि इसरायल के विस्मृत उन

---

[1] साम १३७, ५–६ ।
[2] वही, १३७–१ ।

पैगम्बरों के पुकारों की केवल प्रतिध्वनि मात्र थी जो 'मीडीस'[१] के नगरों में वीरान छोड़ गये थे। यह कुछ हद तक स्पष्ट है कि इन दोनों 'उच्चतर धर्मों' में जो भी मौलिक सम्बन्ध हो सकते थे, उनके अनुसार पारसी धर्म तथा यहूदी धर्म अपनी प्रौढ़ता में समान दिखाई पड़े।

किसी प्रकार जब बैबिलोनिया का संकटकाल असीरिया के पतन से समाप्त हुआ और बैबिलोनी संसार नवीन बैबिलोनी साम्राज्य के रूप में सार्वभौम राज्य से गुजरा, तब ऐसा ज्ञात हुआ मानों यहूदी धर्म और पारसी धर्म इस राजनीतिक ढाँचे में सार्वभौम धर्मतन्त्र की स्थापना की सुअवसर प्राप्ति के लिए होड़ लगा रहे हों। ऐसी ही होड़ ईसाई धर्म तथा मिथ्रवाद ने रोमन साम्राज्य के ढाँचे में सुअवसर प्राप्ति के लिए लगायी थी।

यह पर्याप्त कारण नहीं था कि नवीन बैबिलोनी सार्वभौम राज्य रोमन सार्वभौम राज्य की तुलना में अस्थायी सिद्ध हुआ। ट्राजन, सेवेरस और कान्स्टैन्टाइन ने शतियों तक बैबिलोनिया के अगस्टस, नेबुकदनजार का अनुसरण नहीं किया। इसके तत्कालीन उत्तराधिकारी नेबोनिडस तथा बेलशाजार थे, जिनकी तुलना जुलियन तथा वैलेन्स से की जा सकती थी। एक शती के भीतर ही नवीन बैबिलोनी राज्य 'मीडीस' तथा फारस के लोगों को दे दिया गया। यह अकेमेनियन साम्राज्य राजनीतिक दृष्टि से ईरानी तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सीरियाई ढंग का था। इस प्रकार शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा आन्तरिक सर्वहारा के क्रियाकलाप एक-दूसरे के विरोधी थे।

इन परिस्थितियों में यहूदी धर्म तथा पारसी धर्म की विजय अत्यन्त शीघ्र तथा निश्चित समझी जाती थी, किन्तु दो सौ वर्षों बाद भाग्य बीच में आया और घटनाओं की श्रृंखला को दूसरा अप्रत्याशित मोड़ दिया। अब भाग्य ने मेडोनी विजेताओं के हाथों में 'मीडीस' तथा फारस के लोगों का राज्य दिया। सीरियाई सार्वभौम राज्य के जीवन समाप्त होने के पहले ही सीरियाई संसार में हेलेनी समाज के हिंसात्मक प्रवेश ने सीरियाई सार्वभौम राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके कारण दो ऊँचे धर्म (जैसा कुछ प्रमाणों से इंगित है) अकेमीनियाई अभेद्य सुरक्षा के भीतर शान्तिपूर्वक फैलते रहे और अपने उचित धार्मिक कृत्यों को राजनीतिक भूमिका में बदलकर विनाशकारी रूप से पथभ्रष्ट हो गये। वे ऊँचे धर्म अपने-अपने धरातल पर हेलेनीवाद के प्रवेश के विरुद्ध सीरियाई सभ्यता के संघर्ष के समर्थक बने। भूमध्य सागरी क्षेत्र में, अपनी बढ़ी हुई पश्चिमी स्थिति में यहूदी धर्म अनिवार्य रूप से निराशा में बदल गया और रोमवासियों तथा यहूदियों के ई० ६६–७०, ई० ११५–१७, और ई० १३२–३५ में हुए युद्धों में यह यहूदी धर्म रोम की भौतिक शक्तियों के विरुद्ध पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न हो गया। जैगरोस के पूरब अपने किले में पारसी धर्म ने ईसा की तीसरी शती की विषम परिस्थितियों में संघर्ष आरम्भ किया। जितना यहूदी धर्म मकाबीयों के छोटे-छोटे राज्यों में हेलेनी विरोधी संघर्ष करने में समर्थ हुआ उसकी अपेक्षा ससानियाई राजतंन्त्र में हेलेनीवाद के विरुद्ध पारसी धर्म अधिक शक्तिशाली रूप में पाया गया। ससानियाइयों ने धीरे-धीरे चार सौ वर्षों के संघर्ष में रोमन साम्राज्य की शक्ति नष्ट कर दी। यह संघर्ष ई० ५७२–९१ तथा ई० ६०३–२८ के रोम और फारस के

---

[१] मीडीस—फारस की जनता के निकट सम्बन्धी वे लोग जो पहले एशिया माइनर में रहते थे। जिनके जिला मीडिया के नाम पर ही उनका यह नाम पड़ा।—अनुवादक

परस्पर ध्वंसकारी युद्ध में चरम सीमा पर था । यहाँ तक कि ससानिया की शक्ति अफ्रीका और एशिया से हेलेनीवाद को उखाड़ने के कार्य को पूरा करने में अद्वितीय सिद्ध हुई । यहूदियों को राजनीति की जोखिम के लिए जितना अधिक उधार लेना पड़ा, पारसी धर्म को उसी मात्रा में अन्त में चुकाना भी पड़ा । संप्रति पारसी भी विश्रृंखलित यहूदियों की भाँति जीवित रहे । ये जीवाश्मित हुए धर्म जिन्होंने अब तक दो समुदायों के बिखरे हुए सदस्यों को बड़े शक्तिशाली ढंग से बाँधकर रखा था मृतक सीरियाई समाज के अवशेष के रूप में शेष रह गये ।

विदेशी सांस्कृतिक शक्तियों के घात-प्रतिघात ने इन उच्च धर्मों को केवल राजनीतिक मार्ग पर परिवर्तित ही नहीं किया, वरन् उन्हें टुकड़ों में बिखेर दिया । राजनीतिक विरोध के साधनों द्वारा यहूदी धर्म तथा पारसी धर्म के परिवर्तन के वाद सीरिया की धार्मिक प्रतिभाओं ने सीरियाई जनसंख्या के उस अंक में शरण ली जो हेलेनी चुनौती का हिंसात्मक तरीके द्वारा नहीं, वरन् शान्तिपूर्वक विरोध कर रहे थे । सीरियाई धर्म ने अपनी आत्मा और धारणा के लिए वह नयी अभिव्यक्ति पायी जिसे यहूदी धर्म और पारसी धर्म ने छोड़ दिया था । सीरियाई संसार के हेलेनी विजेताओं को अपनी सद्भावना की शक्ति से पराजित करने के बाद ईसाई धर्म अपने नये रूप में तीन शाखाओं में विभाजित हो गया । इन शाखाओं में से एक था कैथोलिक तन्त्र जिसने हेलेनीवाद से सन्धि का करार किया था और दो थे नेस्टोरियनवाद (बुद्धिमानीवाद) तथा मोनोफाइसिटवाद (ईसा की केवल एक प्रकृति को मानने वालों का सम्प्रदाय) के प्रतिपक्षी अपधर्म जिन्होंने हेलेनीवाद को सीरियाई क्षेत्र से निकाल वाहर करने में अधिक पूर्ण सफलता प्राप्त किये विना ही पारसी धर्म तथा यहूदी धर्म के सैन्यवादी राजनीतिक क्रिया-कलापों को ग्रहण किया ।

इन दो लगातार असफलताओं ने हेलेनीवाद के सीरियाई सैन्यवादी विरोधियों में किसी भी प्रकार मानसिक जड़ता एवं निराशा कम नहीं थी । एक तीसरा प्रयत्न किया गया । इसे सफलता मिली । एक दूसरे सीरियाई समाज को हेलेनीवाद पर यह अन्तिम राजनीतिक विजय मिली । अन्त में इस्लाम ने दक्षिण-पश्चिम एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका से रोमन सांम्राज्य को उखाड़ दिया और सीरियाई सार्वभौम राज्य के पुर्ननिर्माण के लिए अब्बासी खलीफों के रूप में सार्वभौम धर्मतन्त्र बना ।

भारतीय तथा चीनी आन्तरिक सर्वहारा

भारतीय समाज सीरियाई समाज की भाँति अपने विघटन के बीच हेलेनी प्रदेश से प्रचण्ड रूप से विताड़ित हुआ । इस सम्वन्ध में यह देखना मनोरंजक है कि किस सीमा तक एक समान चुनौती द्वारा समान प्रतिक्रिया उत्तेजित हो सकती है ।

उस समय जब सिन्धु घाटी पर सिकन्दर के आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय तथा हेलेनी समाज का प्रथम सम्पर्क हुआ तब भारतीय समाज सार्वभौम राज्य में प्रवेश करने ही वाला था और भारतीय शक्तिशाली अल्पसंख्यक वहुत दिनों से जैन-धर्म तथा बुद्ध-धर्म के रूप में दो दार्शनिक सम्प्रदायों का निर्माण करके विघटन रोकने का घोर प्रयत्न कर रहे थे । किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है कि उसके आन्तरिक सर्वहारा ने कोई उच्च धर्म उत्पन्न किया । बौद्ध धर्म के दार्शनिक राजा अशोक ने, जिसने २७३ ई० पू० से २३२ ई० पू० तक सार्वभौम राज्य की गद्दी पर अधिकार रखा, अपने हेलेनी पड़ोसी को अपने दर्शन के अनुसार परिवर्तित करने की असफल चेष्टा की ।

यह केवल पिछले दिनों में था कि बौद्ध धर्म ने सिकन्दर के बाद हेलेनी संसार के महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत प्रान्तों पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। ये प्रान्त बैक्ट्रिया के यूनानी राज्यों द्वारा शासित थे।

किन्तु जब तक बौद्ध धर्म में आमूल परिवर्तन नहीं हो गया तब तक उसने पुनः आध्यात्मिक विजय नहीं प्राप्त की। यह बौद्ध धर्म सिद्धार्थ गौतम[1] के आरम्भिक अनुयायियों के प्राचीन दर्शन द्वारा नये 'महायान' धर्म में परिवर्तित किया गया था।

'महायान सत्यतः नया धर्म है। आरम्भिक बौद्ध धर्म से इसका इतना मौलिक भेद है कि इसने बाद के ब्राह्मण धर्म के सम्पर्क सम्बन्धी समानता में अनेक संकेत वैसे दिखाये थे जैसे महायान के अपने पूर्ववर्ती धर्मों के साथ दिखाये थे। यह पूर्ण रूप से कभी अनुभव नहीं किया गया कि उग्र सुधारवादी क्रान्ति ने बौद्ध धर्म के रूप का उस समय कितना परिवर्तन किया, जब ईसा की प्रथम शती में उसकी नयी आत्मा पूर्ण विकसित हुई। यह नयी आत्मा किसी प्रकार बहुत समय तक छिपी थी। व्यक्तिगत निर्वाण सम्बन्धी नास्तिक तथा आत्मा को अस्वीकार करने वाले पूर्ण निर्वाण तथा मानव निर्माता की स्मृति की साधारण पूजा की भावना-सम्बन्धी दार्शनिक उपदेश को जब हम देखते हैं तथा जब हम अगणित देवताओं तथा ऋषियों से घिरे हुए महान् ईश्वर के साथ विशाल उच्च धर्म द्वारा इसे अतिक्रमित होते देखते हैं, तब भक्ति से, धार्मिक कृत्यों से तथा कर्मकाण्ड से परिपूर्ण एक धर्म सभी जीवों की सर्वव्यापी मूर्ति के आदर्श के साथ पाते हैं, बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की दैवी कृपा से मुक्ति। यह मुक्ति जीवन के विनाश में नहीं, वरन् चिरन्तन जीवन से मुक्ति है। यह कहना न्यायोचित होगा कि धर्मों के इतिहासों ने नये और पुराने के बीच अपनी सीमाओं में ऐसा व्यतिक्रमण नहीं देखा है। ये नवीन तथा प्राचीन धर्म उसी धर्म संस्थापक द्वारा स्थापित हुए हैं।'[2]

यह परिवर्तित बुद्ध-धर्म जो विस्तृत हेलेनी संसार के उत्तर-पूर्व में पुष्पित तथा पल्लवित हुआ, वास्तव में भारतीय 'उच्चतर धर्म' था जिसकी तुलना अन्य उन धर्मों के साथ है जो उसी युग के हेलेनी समाज में प्रवृष्ट हो रहे थे। उस व्यक्तिगत धर्म का मूल क्या था जो महायान

---

१. यह विवादग्रस्त प्रश्न है जिसका उत्तर कदाचित् निश्चयपूर्वक कभी नहीं दिया जा सकता है कि बौद्ध दर्शन (जिसका वर्णन रूसी विद्वान् की कृति से लिये हुए निम्नलिखित गद्यांश में है) जिसके विरुद्ध महायान ने क्रान्ति की, सिद्धार्थ गौतम की व्यक्तिगत शिक्षा की प्रतिकृति था या भ्रामक अभिव्यक्ति। कुछ विद्वानों का मत है, जहाँ तक हम बुद्ध के उस व्यवस्थित दर्शन की सतह से नीचे उनकी व्यक्तिगत शिक्षा की कुछ झलक पाते हैं, जो हमारे लिए हीनयान के धर्म-ग्रन्थों में हैं, तब हम अनुभव करते हैं कि बुद्ध ने स्वयं आत्मा की नित्यता तथा यथार्थता में अविश्वास नहीं किया था। हम अनुमान लगा सकते हैं कि उनके आध्यात्मिक अभ्यास का उद्देश्य निर्वाण जीवन से चिपकी हुई वासना की पूर्ण परिसमाप्ति की एक अवस्था केवल थी, जीवन की ही परिसमाप्ति की अवस्था नहीं थी। यह वासना ही जीवन को समग्र रूप से जीवित रहने से रोकती है। —ए० जे० टी०।

२. थ० शरबाट्स्की: द कन्सेप्शन आव बुद्धिस्ट निर्वाण, पृष्ठ ३६।

का विशेष लक्षण तथा उसकी सफलता का रहस्य, दोनों था। इस नये धार्मिक प्रभाव ने बौद्ध धर्म की आत्मा को ही गम्भीर रूप से परिवर्तित कर दिया। यह नया धार्मिक प्रभाव भारतीयता से दूर वैसा ही विदेशी था जैसा यह हेलेनी दर्शन से दूर था। क्या यह भारतीय आन्तरिक सर्वहारा के अनुभव का फल था या यह सीरियाई अग्नि से निकली एक चिनगारी थी जिसने पारसी धर्म और यहूदी धर्म को प्रज्ज्वलित किया। दोनों दृष्टियों के पक्ष में प्रमाण दिये जा सकते हैं, किन्तु वास्तव में हम दोनों में से एक को भी चुनने की स्थिति में नहीं हैं। इतना कहना पर्याप्त है कि बौद्ध उच्चतर धर्म के सामने भारतीय समाज का धार्मिक इतिहास उसी प्रणाली से आरम्भ होता है जैसा सीरियाई समाज में हुआ था, जिसे हम देख चुके हैं।

उच्चतर धर्म उस समाज के मध्य से आगे बढ़ा जिसमें यह धर्म ईसू के सुसमाचार के प्रचार के लिए हेलेनी कृत संसार में विकसित हुआ। यह उच्चतर धर्म प्रत्यक्ष रूप से भारतीय था और ईसाई धर्म तथा मिथ्रवाद की प्रतिमूर्ति था। अपने हाथ की इसी कुंजी से हम हेलेनी प्रिज़्म पर पड़े हुए सीरियाई धर्म की उन किरणों को सरलतापूर्वक पहचान सकते हैं जो भारतीय 'उच्चतर धर्म' की प्रतिमूर्ति थी। यदि हम सीरियाई समाज के पूर्व हेलेनी राज्य के उन जीवाश्मों के भारतीय धर्मों पर दृष्टि डालें, जो यहूदियों एवं पारसियों में बच गये थे तो हम वह पायेंगे जिन्हें लंका, वर्मा, श्याम और कम्वोडिया के बाद के हीनयानी बौद्ध धर्म में हम खोजते हैं। ये पूर्व-महायानी बौद्ध धर्म के अवशेष हैं। सीरियाई समाज को इस्लाम के उत्थान की प्रतीक्षा उस धर्म पर अधिकार जमाने के लिए करनी पड़ी जो हेलेनीवाद को उखाड़ फेंकने के लिए प्रभावशाली साधन के रूप में समर्थ था। ठीक उसी प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज से हेलेनी भावना के प्रवेश के पूर्ण तथा अन्तिम निष्कासन का कार्य बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के बाद हिन्दुत्व के विशुद्ध भारतीय धार्मिक तथा अ-हेलेनी आन्दोलन के द्वारा बौद्धवादी हिन्दू धर्म के बाद सम्पन्न हुआ, न कि महायान के द्वारा।

जहाँ तक हमने उसे वर्तमान स्थिति में देखा है महायान का इतिहास उस कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय के इतिहास के इस बात में समान है कि जिस अ-हेलेनी समाज में वे पैदा हुए थे उसे परिवर्तित करने के बजाय दोनों ने अपने कार्य-क्षेत्र हेलेनी संसार में बनाये। किन्तु, महायान के इतिहास का एक दूसरा अध्याय वह है, जिसमें ईसाई धर्मतन्त्र का इतिहास अप्रतिम दिखाई देता है। ईसाई धर्म ने ध्वंसोन्मुख हेलेनी समाज के क्षेत्र में शरण ली और अन्ततोगत्वा वह दो सभ्यताओं को ईसाई सम्प्रदाय प्रदान करने के लिए जीवित रहा। इन ईसाई सम्प्रदायों में एक हमारा सम्प्रदाय और दूसरा परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय था। ये दोनों हेलेनी से सम्बन्धित थे। दूसरी ओर महायान मध्य एशिया के उच्च प्रदेशों को पार कर नश्वर हेलेनी बैक्टरियाई राज्य में होता हुआ ध्वंसोन्मुख चीनी संसार में पहुँचा और अपनी जन्मभूमि से दो ओर बढ़कर चीनी आन्तरिक सर्वहारा का सार्वभौम धर्म बन गया।

सुमेरी आन्तरिक सर्वहारा वर्ग की विरासत

वैबिलोनी तथा हिताइती, दोनों समाज 'सुमेरी समाज से सम्बन्धित हैं', किन्तु इस विषय में हम 'सुमेरी आन्तरिक सर्वहारा' के मध्य किसी उस सर्वव्यापी धर्मतन्त्र का अन्वेषण नहीं कर सकते हैं जिसका निर्माण किया गया हो तथा जिसने अपनी सम्बन्धित सभ्यताओं को विरासत

में कुछ दिया हो। बैबिलोनी समाज सुमेरी शक्तिशाली अल्पसंख्यक का धर्म ग्रहण करते हुए ज्ञात होता है और हिताइती धर्म का कुछ अंश इसी उद्‌गम से निकला हुआ मालूम पड़ता है। किन्तु हम सुमेरी संसार के धार्मिक इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कम जानते हैं। यदि तम्मूज़[1] तथा इश्तार की पूजा सुमेरी आन्तरिक सर्वहारा के अनुभव का स्मारक है तो हम कह सकते हैं कि इस पूजा के सर्जन की चेष्टा सुमेरी समाज में अकाल प्रसूत थी और इसका फल कहीं और मिला।

इन सुमेरी देवी-देवताओं के लम्बे जीवन थे तथा यात्रा के लिए विस्तृत क्षेत्र था। उनके परवर्ती इतिहास का एक मनोरंजक लक्षण उनके सापेक्षित महत्त्व की भिन्नता है। इन दोहरे देवताओं की पूजा के हिताइती संस्करण में देवी की प्रतिमा ने उस देवता को महत्त्वहीन तथा निष्प्रभ कर दिया, जिसने एक साथ ही पुत्र तथा प्रेमी एवं संरक्षक और विपद्‌ग्रस्त की विरोधात्मक भूमिका देवी के समक्ष अदा की थी। सीबेलेइश्तर के समक्ष एटिस-तम्मूज़ तुच्छ मालूम पड़ता है और सुदूर उत्तर-पश्चिम सागर से घिरे अपने द्वीप में नेर्थस इश्तर बिना किसी पुरुष (देवता) के अकेली वैभवसम्पन्न मालूम पड़ती है। किन्तु, सीरिया और मिस्र के दक्षिण-पश्चिम यात्रा के बीच तम्मूज का महत्त्व बढ़ता है तथा इश्तर का कम होता है। जिस एटारगेटिस की पूजा बैंबाइस से एसकैलोन तक प्रचलित है, नाम से ही उसका इश्तर होना ज्ञात होता है। इसका सम्मान ऐंटी की संगिनि के कार्यों पर आधृत था। फोनिसिया में एडोनिस 'तम्मूज़' देवता था। जिसका निधन दिवस एस्टारटे इश्तर दुख के साथ मनाता था। मिस्री संसार में ओसाइरिस ने अपनी स्त्री और बहिन को निश्चित रूप से वैसे ही निष्प्रभ किया जैसे आइसिस ने बाद में ओसाइरिस को निष्प्रभ किया जबकि इसके बाद उसने हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के हृदय में अपने लिए एक साम्राज्य बना लिया। सुमेरी धार्मिक विश्वास के इस संस्करण में विलाप करने वाली देवी की नहीं; वरन् नश्वर देवता था जिसकी उपासक पूजा करते थे। यह सुमेरी धार्मिक विश्वास सुदूर उस स्कैन्डेनेवियाई बर्बरों में फैला हुआ ज्ञात होता है, जहाँ वाल्डर तम्मूज़ की देवता कहा जाता था, जबकि उसकी प्रभावहीन पत्नी नाना का नाम सुमेरी 'मातदेवी' के रूप में अब तक प्रचलित था।

(३) पश्चिमी संसार के आन्तरिक सर्वहारा

आन्तरिक सर्वहारा के सर्वेक्षण की समाप्ति करते हुए हम उस क्षेत्र का परीक्षण कर रहे हैं जो हमारे घर के निकट है। क्या पश्चिम के इतिहास में वे ही लक्षण पुनः दिखाई देते हैं। जब हम पश्चिम के आन्तरिक सर्वहारा के अस्तित्व का प्रमाण खोजते हैं, तब हम प्रचुर प्रमाणों के संवेग से आविर्भूत हो जाते हैं।

हम पहले देख चुके हैं कि आन्तरिक सर्वहारा का एक सामान्य उद्‌गम प्रचुर परिणाम में हमारे पश्चिमी समाज से नये रंगरूटों की भरती है। पिछले चार सौ वर्षों में, कम-से-कम दस विघटोन्मुख सभ्यताओं की मानवीय शक्तियों का पश्चिमी समाज में बलात् विलयन किया गया है। हमारे पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा को मिलाने में उनका इतना मानवीकरण हो गया है

---

[1] तम्मूज़—बैबिलोनिया का सूर्य देवता जो यूनानियों में एडोनिस के नाम से विख्यात है।
—अनुवादक

कि उनकी विशिष्टताएँ धूमिल हो गयी हैं, कुछ तो नष्ट हो गयी हैं जिनके द्वारा यह अनमिल समुदाय एक-दूसरे से भिन्न था। हमारा समाज अपने ही समान सभ्य समाज को लूटने में सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसने करीब-करीब सभी आदिम जीवित समाजों को पराजित किया जैसे टासमेनियन तथा उत्तरी अमेरिका के अधिकांश इंडियन कबीले। उनमें से कुछ इस आघात से नष्ट हो गये। दूसरी जातियों ने, जैसे उष्णकटिबन्धीय अफ्रीका के नेग्रो, जीवित रहने की व्यवस्था की और नाइजर को हडसन की ओर तथा कांगो को मिसीसीपी की ओर वैसे ही बहने दिया जैसे उन्हीं पश्चिमी दानवों ने यांगटसी को मलक्का[१] जलडमरूमध्य की ओर बहने दिया। नेग्रो दासों को जहाजों में बैठाकर अमरीका में तथा तमिल या चीनी कुलियों को भूमध्यरेखीय क्षेत्र या हिन्द महासागर की दूसरी ओर लाया गया। ये तमिल तथा चीनी कुली उन दासों के प्रतिमूर्ति थे जिन्हें ईसा के पूर्व की दो शतियों में भूमध्य सागर के सभी तटों से लेकर रोमन इटली के क्षेत्रों में भेज दिया गया था।

हमारे पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा में अनिवार्य भरती किये जाने वाले विदेशियों का एक और अंश है। जिनका निर्मूलन तथा आमूल रूप से परिवर्तन भौतिक रूप से उनके अन्य स्थानों से हटाये बिना आध्यात्मिक रूप से किया गया। किसी भी समुदाय को जो अपने जीवन को विदेशी सभ्यता के अनुरूप बनाने का प्रयत्न कर रहा हो, एक विशेष सामाजिक वर्ग की आवश्यकता होती है जो ट्रान्सफार्मर की भाँति विद्युत् के एक वोल्टेज से दूसरे वोल्टेज में परिवर्तित हो सके। यह वर्ग जो अचानक तथा कृत्रिम रूप से इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए आता है रूसी नाम 'बुद्धिजीवी' वर्ग के नाम से कहा जाता है। यह बुद्धिजीवी वर्ग एक प्रकार का सम्पर्क अधिकारियों का वर्ग है जिसने सभ्यताओं के प्रवेश करने की युक्ति वहाँ तक सीखी है कि जिस सभ्यता में प्रवेश किया जाय वे अपने सामाजिक जीवन को छोड़कर प्रवेश करने वाली सभ्यता के जीवन के अनुरूप उसे बना दें। इस प्रकार उन विदेशियों पर जो विजयी सभ्यता अधिक-से-अधिक अपनी सभ्यता लाद देता है।

इस बुद्धिजीवी वर्ग में पहले प्रवेश करने वाले सैनिक तथा नाविक अधिकारी थे। ये प्रभावशाली समाज के युद्ध-कौशल को उतना जानते थे, जितना रूस के पीटर महान् को पश्चिमी स्वीडन द्वारा पराजित होने से रोकने तथा बाद के युगों में तुर्की और जापान को रूस द्वारा पराजित होने से रोकने के लिए आवश्यक था। इस समय तक आक्रामक का जीवन-यापन आरम्भ करने में स्वतः समर्थ होने के लिए रूस का सन्तोषप्रद रूप से पश्चिमीकरण हो गया था। अब हम कूटनीतिक लोगों पर आते हैं जो पश्चिमी सरकारों के समझौतों के अनुसार व्यवहार करना जानते हैं, जो युद्ध में असफल होने के बाद उनके समुदाय पर लादा जाता है। हम देख चुके हैं कि उसमानली राजवंश के लोगों ने अपनी रियाया को राजनीतिक कार्य के लिए तब तक भरती किया, जब तक उसमानली वंश स्वयं इस अरुचिपूर्ण कार्य में प्रवीण न हुए। इसके बाद व्यापारी आते हैं, हांग सौदागरों को कैण्टन में और भूमध्यसागर के पूर्वी किनारे के तथा ग्रीक और अमरीकी

---

[१] रोमन लेखक जुवेनल ने अपने समय में (ईसा के बाद की दूसरी शती का आरम्भ) अर्द्ध हेलेनी कृत सीरियाई पूर्वी लोगों के रोम में अन्तःप्रवेश को लिखा है कि 'ओरोन्टस् टाइबर में मिल चुकी है।'

सौदागरों को उसमानिया बादशाह के साम्राज्य में देखिए । अन्ततो गत्वा बुद्धिजीवी वर्ग अपने चरित्रगत विशेषताओं को उस समाज में विकसित करता है जिसके सामाजिक जीवन में पश्चिमीकरणवाद का 'खमीर' और विषाणु गम्भीर रूप से प्रभाव करता रहता है । वह समाज आत्मसात् तथा लिप्त हो जाने की प्रणाली में रहता है । ये बुद्धिजीवी वर्ग के लोग हैं, अध्यापक जो पश्चिमी विषयों के पढ़ाने की कला जानते हैं, नागरिक अधिकारी जो पश्चिम के अनुसार नागरिक प्रशासन की कला का अभ्यास करते हैं तथा वकील जिन्हें फ्रांस की न्याय-कार्य-प्रणाली के अनुसार 'नेपोलियन कोड' के संस्करण लागू करने की दक्षता प्राप्त है ।

जहाँ कहीं हम बुद्धिजीवी वर्ग को पाते हैं, हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि केवल दो सभ्यताएं ही सम्पर्क में नहीं आतीं, किन्तु दो में से एक अपने विरोधी आन्तरिक सर्वहारा में आत्मसात् होने की प्रणाली में हैं । हम बुद्धिजीवी वर्ग के जीवन में एक दूसरे तथ्य का और निरीक्षण कर सकते हैं जो प्रत्येक बुद्धिजीवी के मुखमण्डल पर सबके पढ़ने के लिए अंकित रहता है कि बुद्धिजीवी दुखी रहने के लिए ही पैदा हुआ है ।

यह सम्पर्क वर्ग ऐसा वर्णसंकर है, जन्मजात दुःख के रोग से पीड़ित है, जो उन दोनों परिवारों से बहिष्कृत रहता है, जिनसे उनका जन्म हुआ है । बुद्धिजीवी वर्ग अपनी ही जनता द्वारा घृणित एवं तिरस्कृत किया जाता है, क्योंकि बुद्धिजीवी वर्ग का अस्तित्व ही उनके लिए भर्त्सनापूर्ण होता है । उनके बीच ये बुद्धिजीवी वर्ग घृणाभरी विदेशी सभ्यता के अटल एवं जीवित स्मारक हैं। इस विदेशी सभ्यता को हटा नहीं सकते, इसलिए उसे प्रसन्न किया जाता है । जब फरीसी पबलिकन से मिलता है तो प्रत्येक बार उसे यह स्मरण दिलाया जाता है, जीलाट प्रत्येक बार हिरोडियन से मिलता है तो उसे स्मरण दिलाया जाता है । इस प्रकार बुद्धिजीवी अपने घर में ही लोगों को प्रसन्न नहीं करते । उसे उस देश में भी सम्मान नहीं दिया जाता जिसके रीति-रिवाज तथा कौशल को परिश्रम और बुद्धिमत्ता से उसने नकल की है ।[१] भारत और इंग्लैण्ड के ऐतिहासिक सम्पर्क के आरम्भिक दिनों में वे हिन्दू बुद्धिजीवी अंग्रेजों के उपहास के पात्र थे, जिनको ब्रिटिश राज्य ने अपनी प्रशासनिक सहूलियत के लिए पाला था । भारतीय बाबुओं का जितना अधिक अधिकार अंग्रेजी भाषा पर होता था उतना ही अधिक अंग्रेज साहब बाबुओं की भाषा में अनिवार्य रूप से आयी बेमेल गलतियों पर व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसते थे । ये व्यंग्य मधुर होते हुए भी चोट पहुँचाते थे । इस प्रकार बुद्धिजीवी दोहरे रूप में हमारे सर्वहारा की परिभाषा के अनुकूल होता है। यह सर्वहारा केवल एक समाज में नहीं, दोनों समाजों 'में' होते हैं उन समाजों 'के' नहीं होते। बुद्धिजीवी वर्ग अपने इतिहास के प्रथम अध्याय में यह अनुभव करते हुए स्वयं सान्त्वना दे सकता है कि हम दोनों समाजों के अनिवार्य अंग हैं, जबकि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है उसे सान्त्वना भी नहीं मिलती । जहाँ मानव स्वयं व्यापारिक वस्तु है और समय पाकर बुद्धिजीवी मानव अधिक उत्पादन तथा बेकारी से पीड़ित होते हैं, वहाँ माँग और पूर्ति की व्यवस्था मनुष्य की बुद्धि से परे है ।

---

[१] कदाचित् पाठकों को याद होगा कि १९३९–४० ई० के विश्वयुद्ध के समय राजनीतिक जीव को 'देश-द्रोही' शब्द से श्री ट्वायनबी ने वर्णन किया था, उसी के सामाजिक रूप से समानान्तर 'बुद्धिजीवी' शब्द का प्रयोग किया गया है ।

पीटर महान् को अनेक रूसी उच्च पदाधिकारियों की या ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अनेक क्लर्कों की या मुहम्मद अली को अनेक मिस्री मिल मजदूरों और जहाज बनाने वाले कारीगरों की आवश्यकता थी। इन कुम्हारों (पीटर महान्, मुहम्मद अली, तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी) ने मानवी मिट्टी से ही तुरन्त उनके (उच्च पदाधिकारी, क्लर्क और मजदूर आदि) निर्माता का कार्य आरम्भ किया, किन्तु बुद्धिजीवी के निर्माण की प्रणाली का अन्त होना उसके आरम्भ होने से अधिक कठिन है, क्योंकि घृणा से वे उस सम्पर्क वाले वर्ग को देखते हैं जो उनकी सेवाओं से लाभान्वित होता है। उनकी दृष्टि में इस घृणा की क्षतिपूर्ति उनकी उस प्रतिष्ठा द्वारा होती थी जो उन्हें सम्पर्क वर्ग में भरती होने के अधिकारी होने में प्राप्त होती थी। इन प्रार्थियों की संख्या अवसर के अनुसार बढ़ती जाती है। नियुक्त हुए बुद्धिजीवी से उस बौद्धिक सर्वहारा की संख्या अधिक होती है जो बेकार अनाथ तथा बहिष्कृत है। ये थोड़े-से रूसी उच्च पदाधिकारी क्रान्तिकारियों (निहिलिस्टों) की अपार संख्या द्वारा पुनः शक्तिशाली बनाये जाते हैं और काम चलाने वाले बाबुओं की संख्या बी० ए० फेल लोगों से बढ़ायी जाती है। बुद्धिजीवी वर्ग में आपस की कटुता आरम्भिक अवस्थाओं की अपेक्षा बाद की अवस्थाओं में अधिक होती है। वास्तव में हम इस प्रकार का एक सामाजिक कानून बना सकते हैं कि अंकगणितीय अनुपात में बढ़ते हुए समय के साथ बुद्धिजीवी वर्ग में जन्मजात अप्रसन्नता ज्यामितीय अनुपात में बढ़ती जाती है। १९१७ की विध्वंसात्मक रूसी क्रान्ति में बुद्धिजीवी वर्ग ने बहुत दिनों से एकत्र हुई उस घृणा को प्रकट किया, जिसका आरम्भ ईसा की १७ वीं शती में हुआ था। जिसका आरम्भ १८ वीं शती के अन्तिम भाग में हुआ था वह बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग आज भी उस हिंसात्मक क्रान्ति की मनोवृत्ति का प्रदर्शन करता है, जिसे ब्रिटिश भारत के दूसरे भागों में नहीं देखा जा सकता। इन भागों में ५० या १०० वर्षों बाद भी स्थानीय बुद्धिजीवी अस्तित्व में नहीं आये।

यह सामाजिक सिवार वहीं तक सीमित नहीं थी जिसमें यह उगी थी, यह बाद में पश्चिमी संसार के हृदय में अर्द्धपश्चिमी रूप में दिखाई दी। इस निम्न मध्यम वर्ग ने माध्यमिक शिक्षा ही नहीं, उच्च शिक्षा भी ग्रहण की थी। यह वर्ग बिना अपनी प्रशिक्षित योग्यता प्रदर्शित किये इटली में फासिस्टी दल और जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवादी दल का मेरुदण्ड था। वे दैवी संचालक शक्तियाँ जिन्होंने मुसोलिनी और हिटलर को शक्ति के लिए उत्तेजित किया था, बुद्धिजीवी सर्वहारा के आक्रोष से यह जानकर पैदा हुई थीं कि आत्मसुधार के कष्टपूर्ण प्रयत्न स्वतः उन्हें संगठित पूँजी तथा संगठित क्रम की चक्की के ऊपर तथा नीचे के पाटों के बीच से बचाने में पर्याप्त नहीं थे।

वास्तव में पश्चिमी समाज के स्थानीय गठनों से पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा का संवर्द्धन देखने के लिए वर्तमान शती तक हमें राह नहीं देखना होगा क्योंकि पश्चिमी तथा हेलेनी संसार में ये सर्वहारा लोग केवल पराभूत विदेशी लोग नहीं थे जिनका जड़ से उन्मूलन कर दिया गया था। १६ वीं तथा १७ वीं शती के धर्मयुद्धों ने उन प्रत्येक देश से कैथोलिकों को निकाल दिया या उन्हें कष्ट दिया, जहाँ शक्ति प्रोटेस्टैन्टों के हाथ में थी तथा जहाँ शक्ति कैथोलिकों के हाथ में थी वहाँ से प्रोटैस्टैन्ट निकाले गये या दण्डित हुए। इसीलिए फ्रांस के प्रोटेस्टैन्ट (हिगुनोट) उत्तराधिकारी प्रशा से लेकर दक्षिण अफ्रीका तक फैले हुए हैं और आयरलैण्ड के कैथोलिकों के उत्तराधिकारी आस्ट्रिया से चीली तक फैले हैं। यह रोग थकान की शान्ति और उस मानव

द्वेषवाद के द्वारा नहीं समाप्त हुआ जिसका अन्त धार्मिक युद्धों में हुआ था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति से और उसके बाद धार्मिक विद्वेष ने राजनीतिक गत्यावरोध के आरम्भ के लिए प्रेरणा दी और नये निर्वासित लोग निर्मूल हुए। ये निर्वासित १७८९ में फ्रांस के कुलीन, १८४८ के यूरोपीय उदारवादी, १९१७ के श्वेत रूसी, १९२२ तथा १९२३ के जर्मन तथा इटालियाई प्रजातान्त्रिक, १९३२ के आस्ट्रिया के कैथोलिक और यहूदी तथा १९३९ से ४५ तक के युद्ध में शिकार हुए लाखों लोग हैं।

पुनः हम हेलेनी संकटकाल में देखते हैं कि इटली तथा सिसिली में किस प्रकार स्वतन्त्र जनता को कृषि की व्यवस्था में आर्थिक क्रान्ति द्वारा ग्रामों से निर्मूल कराके नगरों की ओर भगाया गया। दासों के उपनिवेशों के द्वारा जीविका के लिए छोटे पैमाने पर मिश्रित खेती की पुनःस्थापना की गयी। यह पुनःस्थापना विशिष्ट खेती की वस्तुओं के सामूहिक उत्पादन के स्थान पर हुई। अपने आधुनिक पाश्चात्य इतिहास के प्रायः हम ठीक ऐसा ही सामाजिक संकट उस ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति में पाते हैं, जिसमें नेग्रो दास स्वतन्त्र श्वेत अमरीकी संघ में कपास के क्षेत्र में लाये गये थे। ये श्वेत 'कतवार' जिनका पतन इस प्रकार सर्वहारा की श्रेणी तक हो गया, रोमन इटली के अधिकार भ्रष्ट एवं दरिद्र 'स्वतन्त्र कतवारों' के समान थे। उत्तरी अमरीका में इस ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति का कैन्सर की भाँति दोहरा विकास, नाइजीरिया के दासों एवं श्वेत भिखारियों के रूप में हुआ। वैसी ही ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति शीघ्र और क्रूर ढंग से उत्तरी अमरीका में ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति के रूप में हुई। इस क्रान्ति का विस्तार तीन शतियों तक अंग्रेजी इतिहास में था। अंग्रेजों ने दासों का प्रयोग नहीं किया, किन्तु उन्होंने रोमवालों का अनुकरण किया और अमरीकी किसानों तथा ढोर पालने वालों की पहले से ही कल्पना की और स्वतन्त्र किसानों को निर्मूल करके उनके खेतों तथा चरागाहों के स्थान पर कुछ धनवानों के लिए बाड़े बनवाये। पश्चिमी संसार में गाँवों से नगरों की ओर जनसंख्या के जाने का मुख्य कारण कोई आर्थिक क्रान्ति नहीं थी। इसके पीछे मुख्य प्रेरणा किसानों के छोटे खेतों को बड़े कृषि क्षेत्रों में बदलने की नहीं थी, बल्कि भाप से चलने वाली मशीनों के द्वारा हस्त-कौशल को हटा करके नागरिक औद्योगिक क्रान्ति को आगे बढ़ाने में थी।

करीब १५० वर्ष पहले जब पश्चिमी औद्योगिक क्रान्ति पहली बार इंग्लैण्ड में फैली, तब इसकी उपयोगिता इतनी विस्तृत दिखाई दी कि इस परिवर्तन का प्रगतिशील लोगों ने उत्साह के द्वारा स्वागत किया तथा इसे आशीर्वाद दिया। यद्यपि बच्चों और औरतों का कारखानों में मजदूरों की प्रथम पीढ़ी का लम्बे घण्टों से पीड़ित होने का विरोध किया गया, औद्योगिक क्रान्ति के प्रशंसकों ने इन मजदूरों के घर तथा कारखानों की हीन दशा को वह क्षणिक बुराई कहा जो दूर की जा सकती है और दूर की जायेगी। यह भाग्य की विडम्बना का प्रतिफल है कि यह सुन्दर भविष्यवाणी विस्तृत रूप से सत्य निकली, किन्तु उतने ही विश्वास के साथ धरती को स्वर्ग बनाने का आशीर्वाद उस अभिशाप द्वारा निष्फल हो गया जो एक शती पहले आशावादियों तथा निराशावादियों की आँखों में समान रूप से छिपा था।[१] एक ओर बाल-श्रम समाप्त किया

---

[१] मैकाले के निबन्ध 'सदेज कालोक्विज' (१८३०) में आशावाद और निराशावाद की सम-रूप से प्रतिष्ठित व्याख्या मिलती है।—संपादक

गया। स्त्रियों का श्रम उनकी शक्ति के अनुसार निर्धारित हुआ। श्रमिकों के घण्टे कम किये गये। सभी मान्यताओं के अनुसार भी घरों में तथा कारखानों में जीवन की दशाएँ सुधारी गयीं जिन्हें हम पहचान भी नहीं सकते। औद्योगिक मशीनों के जादू के द्वारा सम्पत्ति आयी। इसी समय यह संसार बेकारी के भूतों से निष्प्रभ भी हुआ। प्रत्येक बार नागरिक सर्वहारा अपना 'बेकारी का अनुदान' पाता है और उसे याद दिलाया जाता है कि वह समाज 'में' है, समाज 'का' नहीं है।

अनेक स्रोतों में से यह दिखाया गया है कि किस प्रकार हमारे आधुनिक पश्चिमी संसार में आन्तरिक सर्वहारा की भरती की गयी। अब हमें विचार करना है कि यहाँ भी, जिस प्रकार और देशों में, हिंसा और अहिंसा के दो विशिष्ट गुण अपने पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा की कठिन परीक्षा की प्रतिक्रिया में दिखाई देते हैं और यदि दोनों विशेषताएँ देखी जायँ तो इन दोनों में कौन प्रवल होगी ?

अपने पश्चिमी संसार के निम्नस्तरीय लोगों में सैन्यवादी प्रवृत्ति तुरन्त दिखाई देती है। अन्तिम १५० वर्षों की रक्तरंजित क्रान्ति की गणना करना आवश्यक है। जब हम उसके विपरीत अहिंसात्मक भावनाओं का प्रमाण खोजते हैं तब दुख के साथ कहना पड़ता है कि इसके सम्बन्ध में कोई भी संकेत नहीं मिलता। यह सत्य है कि इस अध्याय के आरम्भिक अनुच्छेद में लिखित अन्याय से पीड़ित धार्मिक या राजनीतिक उत्पीड़ित या निष्कासित अफ्रीकी दासों, उजड़े किसानों ने पहली पीढ़ी में नहीं तो दूसरी पीढ़ी में अनुकूल परिस्थिति में अपनी अवस्था को सुधार लिया था। यह हमारी सभ्यता की यौवनशील प्रवृत्ति का उदाहरण हो सकता है, किन्तु हमारी खोजों पर इसका प्रभाव नहीं है। यह सर्वहारा वर्ग की समस्या का समाधान है कि हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक प्रवृत्तियों को न चुनकर, सर्वहारा वर्ग से ही निकल भागे। आधुनिक पश्चिम में अहिंसात्मक सामना करने वालों में अपनी खोज में हम अंग्रेजी क्वैकर[१] और डच मेननाइट[२] में और मोराविया में जर्मनी के ऐनाबाप्टिस्ट[३] शरणार्थी पाते हैं। ये दुर्लभ नमूने हमसे छूट गये थे। क्योंकि हम देखेंगे कि ये सर्वहारा न हो सके।

इंगलिश सोसायटी आव फ्रेण्ड्स के जीवन की प्रथम पीढ़ी में हिंसात्मक प्रवृत्ति का कुछ प्रभाव इंग्लैंड तथा मसाचुसेट्स में दिखाई पड़ा। यह हिंसात्मक प्रवृत्ति भविष्यवाणियों में तथा चर्च में पूजा के समय मर्यादाविहीन शोरगुल में अभिव्यक्त हुआ। किसी प्रकार यह हिंसा शीघ्र ही और स्थायी रूप से उस शिष्टता द्वारा हटा दी गयी जो क्वैकर के जीवन का खास अंग बन गयी। ऐसा जान पड़ा कुछ समय के लिए सोसायटी आव फ्रेण्ड्स पश्चिमी संसार में आरम्भिक ईसाई धर्मतन्त्र की भूमिका अदा कर सकता है, जिसकी भावना तथा व्यवहार ईसा के शिष्यों के धार्मिक कानून के रूप में दिया गया है, उसी के अनुसार उन्होंने (क्वैकर, एनाबाप्टिस्ट आदि) ईसाई धर्म की आध्यात्मिकता तथा धार्मिक कृत्यों पर अपने जीवन का निर्माण किया।

---

१. सोसायटी आव फ्रेंड्स के सदस्य जो शान्ति और सरलता के उपासक थे।—अनुवादक।

२. एक प्रकार के प्रोटेस्टेंट, जो क्वैंकरों के समान थे।—अनुवादक

३. जिसका दो बार बपतिस्मा हो।—अनुवादक

किन्तु ये मित्र अहिंसा के नियमों से कभी नहीं हटे और सर्वहारा के प्रतिकूल रास्ते पर दृढ़ होकर चलते रहे । एक प्रकार अपने गुणों के ही शिकार हुए । यह कहा जा सकता है कि विद्वेष में उन्होंने भौतिक उन्नति प्राप्त की क्योंकि व्यापार में उनकी सफलता उनके उन महान् निश्चयों में देखी जाती है जिसे वे लाभ के लिए नहीं, वरन् आन्तरिक प्रेरणा से करते हैं । भौतिक उन्नति के मन्दिर की अनिच्छित तीर्थयात्रा का प्रथम चरण बिना सोचे-समझे तब उठा, जब ये ग्रामों से नगरों की ओर आये । नागरिक लाभों के प्रलोभनों से नहीं, वरन् यही एक सत्य राह एपिसकोपेलियन[1] चर्च को अपनी आय का दसवाँ भाग कर देने से बच सकें और इस टैक्स के वसूल करने वालों का शक्तिपूर्वक विरोध कर सकें । उसके बाद जब क्वैकर कोको बनाने लगे, क्योंकि वे नशे का विरोध करते थे, उन्होंने फुटकर दुकानदारों के सामानों पर उनके निश्चित दामों का उल्लेख कराया क्योंकि वे बाजार के उतार-चढ़ाव में मूल्यों की अस्थिरता नहीं चाहते थे । वे जान-बूझकर अपने धार्मिक विश्वास के लिए सम्पत्ति को जोखिम में डाल रहे थे । इसके फलस्वरूप उन्होंने इस कथन की सत्यता प्रमाणित की 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है' और इस स्वर्गिक आनन्द का उद्घाटन किया कि विनम्र धरती का शासन करेंगे । इन्हीं संकेतों के द्वारा उन्होंने अपने विश्वासों को सर्वहारा के धर्मों की सूची से हटाया । ये ईसा के अनुकरणीय शिष्यों के समान नहीं थे । ये अब भी उत्साही धर्मावलम्बी नहीं थे । ये चुने लोग बने रहे, यदि क्वैकर अपनी श्रेणी से अलग विवाह करते तो नियमानुसार उन्हें समाज का सदस्य नहीं होने दिया जाता था ।

एनाबाप्टिस्ट के दोनों दलों का इतिहास यद्यपि अनेक दृष्टियों से क्वैकरों से भिन्न है, एक दृष्टि से उनमें समानता है । इसी से यहाँ मेरा सम्बन्ध है । हिंसा के आरम्भ होने के बाद जब उन्होंने अहिंसा के नियमों का पालन किया, तब वे शीघ्र ही सर्वहारा नहीं रह गये ।

पश्चिमी सर्वहारा के अनुभव पर प्रकाश डालने वाले नये धर्म के सम्बन्ध में हमारा अन्वेषण अभी कोरा है । हमें स्मरण रहे कि चीनी आन्तरिक सर्वहारा ने महायान के रूप में नया धर्म पाया था । अनजान में ही यह महायान पिछले बौद्ध दर्शन का परिवर्तित रूप था । मार्क्सवादी साम्यवाद में हम अपने आधुनिक पश्चिमी दर्शन के बीच एक कुख्यात प्रमाण पाते हैं । यह आधुनिक पश्चिमी दर्शन अपने जीवनकाल में एकदम प्रच्छन्न रूप से सर्वहारा के धर्म में बदल लिया गया । ऐसा करने में हिंसा का मार्ग ग्रहण किया गया और नये जेरुसलेम की रचना रूस के धरातल पर बलपूर्वक तलवार के जोर से हुई ।

यदि कार्ल मार्क्स से अपने आध्यात्मिक नामकरण तथा पता देने के लिए कुछ विक्टोरियन सेन्सर अधिकारियों द्वारा माँग की गयी होती तो उसने अपने को आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में हिगेल के द्वन्द्ववाद का प्रयोग करने वाला हिगेल का शिष्य बताया होता, किन्तु जिन तत्त्वों ने साम्यवाद का निर्माण विस्फोटक शक्ति के रूप में किया वे हिगेल की सृष्टि नहीं थे । इन तत्त्वों पर स्पष्ट रूप से पश्चिम के पूर्वजों के धार्मिक विश्वास का प्रमाण अंकित है । यह धार्मिक विश्वास उस ईसाई धर्म का है, जिसे डेकार्ट[2] की धार्मिक चुनौती के तीन सौ वर्षों बाद भी पश्चिम

---

[1] वह ईसाइयों का धर्मतन्त्र जिसमें बिशप द्वारा शासन हो ।—अनुवादक

[2] १५९६–१६५० फ्रांस का दार्शनिक ।—अनुवादक

का प्रत्येक बालक अपनी माता के दूध के साथ ही ग्रहण करता है और पश्चिम के प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष में स्वांस के रूप में प्रवाहित है। इन तत्त्वों का पता यदि ईसाई धर्म में कहीं लग सकता तो यहूदी धर्म में लगाया जा सकता है। ये तत्त्व ईसाई धर्म के अवशिष्ट रूप हैं जो यहूदी ईस्पोरा द्वारा सुरक्षित रखे गये थे। ये अवशिष्ट यहूदियों के गेटो[1] के स्थापन तथा मार्क्स के पूर्वजों की पीढ़ी में पश्चिमी यहूदियों की मुक्ति की भावना द्वारा भाप की भाँति उड़ा दिये गये। मार्क्स ने अपने देवी-देवताओं के लिए जेहोवा के स्थान पर 'ऐतिहासिक आवश्यकता' नामक देवी को ग्रहण किया। अपनी चुनी हुई जनता के लिए यहूदियों के स्थान पर पश्चिमी संसार के आन्तरिक सर्वहारा को स्वीकार किया था। अपने 'मसीहाई राज्य' को सर्वहारा की तानाशाही के रूप में सोचा। यहूदियों के ईश्वर-ज्ञान का प्रमुख लक्षण इसके पीछे स्पष्ट रूप में दिखाई देता है।

ऐसा मालूम होता है कि यह धार्मिक रूप साम्यवाद के विकास में अस्थायी होगा। ऐसा जान पड़ता है कि स्टालिन के अनुदार राष्ट्रीय साम्यवाद ने पूर्णरूप से ट्राट्स्की के सार्वभौम क्रान्तिकारी साम्यवाद को पराजित कर दिया। सोवियत संघ अब बहिष्कृत संसार नहीं है। निकोलस या पीटर के समय जैसा रूसी साम्राज्य था, वैसा ही रूस पुनः हो गया। आदर्शों की अपेक्षा किये बिना रूस ने महान् शक्ति के रूप में अपने मित्र और शत्रु का चुनाव राष्ट्रीयता के आधार पर किया। यदि रूस 'दाहिने' मुड़ चुका है तो उसके पड़ोसी 'बायें'। जर्मनी का राष्ट्रीय समाजवाद और इटली का फासिस्ट आरम्भ में तड़क-भड़क दिखाकर केवल समाप्त ही नहीं हुआ, वरन् उसके प्रत्यक्ष रूप से प्रजातान्त्रिक देशों की असंगठित अर्थव्यवस्था की योजना पर अबाधित अतिक्रमण किया। इन प्रजातान्त्रिक देशों ने सुझाव दिया कि निकट भविष्य में सभी देशों की सामाजिक बनावट सम्भवतः राष्ट्रीय और समाजवादी दोनों होगी। पूंजीवादी तथा साम्यवादी शासन एक साथ जारी रहते सम्भवतः नहीं दिखाई देते। यह हो सकता है कि पूंजीवाद तथा साम्यवाद एक वस्तु के ही दो भिन्न नाम हों, जैसा टैलेरैण्ड के व्यंग्यात्मक कथन के अनुसार हस्तक्षेप और अहस्तक्षेप एक ही बात थी। यदि ऐसा है तो हमारा निश्चय है कि साम्यवाद की जो उन्नति क्रान्तिकारी सर्वहारा के धार्मिक रूप में हुई थी, उससे साम्यवाद वंचित हो गया। इसमें पहली बात यह है कि मानव मात्र के कल्याण के बजाय यह स्थानीय राष्ट्रीयता रह गयी। दूसरी बात यह कि उसने अपने समकालीन विश्व के दूसरे राज्यों को लगभग मानक बनकर आत्मसात् कर लिया है।

मेरी इस खोज का निष्कर्ष यह मालूम होता है कि आन्तरिक सर्वहारा में नये रंगरूटों की भरती के प्रमाण कम-से-कम उतने ही प्रचुर हैं जितने हमारे पश्चिमी संसार के आधुनिक इतिहास में हैं या जितने किसी भी सभ्यता के इतिहास में हैं। जहाँ तक सर्वहारा के सार्वभौम धर्मतन्त्र की स्थापना का प्रश्न है, हमारे पश्चिम में, पश्चिमी इतिहास में एक भी प्रमाण नहीं है। यहाँ तक कि किसी प्रभावशाली सर्वहारा का उत्थान भी नहीं दिखाई देता, जिसने उच्चतर धर्म की नींव रखी हो। इस तथ्य का निरूपण कैसे किया जाय।

---

[1] नगर में यहूदियों के रहने का महल्ला।—अनुवादक

हमने अपने तथा हेलेनी समाज के बीच बहुत-सी तुलनाएँ की हैं, किन्तु इनमें एक मौलिक भेद है। हेलेनी समाज ने अपने मिनोई पूर्वजों से कोई भी सार्वभौम धर्म नहीं पाया। व्रात्य-वाद (पेगानिज्म) की दशा में ई० पू० पाँचवीं शती में हेलेनी समाज पैदा हुआ था उसीमें वह समाप्त हो गया, किन्तु वास्तव में स्थानीय व्रात्यवाद प्रथम अवस्था नहीं थी, चाहे हमारी अपनी सभ्यता की वर्तमान स्थिति के निकट यह हो। जो अपने को पश्चिमी सभ्यता कहने का अधिकारी था। तिस पर भी यदि हम ईसाइयत के उत्तराधिकार को फेंक देने में सफल हुए, धर्मच्युत होने की यह प्रणाली मन्द तथा श्रमसाध्य हो चुकी है। दृढ़ संकल्प होने पर भी हम इस प्रणाली को पूरा करने में जैसा चाहते हैं, सफल नहीं हो सकते। इतना होने पर भी उस परम्परा से मुक्त होना इतना सरल नहीं है जिसमें हमारे पूर्वज पैदा हुए थे तथा १२ सौ वर्षों से हम पाले गये हैं। उस समय पश्चिमी ईसाई साम्राज्य कमजोर शिशु के रूप में 'चर्च'[1] के गर्भ से पैदा हुआ था। जब डेकार्टे, वाल्टेयर, मार्क्स, मैकियावेली, हाब्स, मुसोलिनी तथा हिटलर ने हमारे पश्चिमी जीवन को गैर-ईसाई बनाने का भरसक प्रयत्न किया, तब भी हम इतना कह सकते हैं कि उनका मार्जन तथा शुद्धिकरण आंशिक रूप से प्रभावशाली हुआ। ईसाइयत का विषाण या अमृत हमारे पश्चिमी रक्त में है (इस अनिवार्य द्रव के लिए दूसरा नाम उपयुक्त नहीं है।) यह कल्पना करना कठिन है कि पश्चिमी समाज की आध्यात्मिक रचना कभी विशुद्ध हेलेनी व्रात्यवाद के रूप में हो सकती है।

इसके अतिरिक्त हमारी व्यवस्था में ईसाइयत के तत्त्व केवल सर्वव्यापी ही नहीं हैं, वरन् बहुमुखी भी हैं। ईसाइयत ने अपने जीवन-रस के तीव्र टिंचर को उन निःसंक्रामक विरोधी तत्त्वों में धीरे-धीरे प्रविष्ट कराया जो बड़े शक्तिशाली ढंग से ईसाई धर्म को बाँझ बना रहे थे। निर्मूल होने से अपने को बचाने के लिए ईसाइयत के प्रिय उपायों में से यह एक था। हमने साम्य-वाद में ईसाइयत के तत्त्वों को पहले ही देख लिया है। साम्यवाद आधुनिक पश्चिमी दर्शन का ईसाइयत विरोधी प्रयोग का रूप मालूम होता है। टालस्टाय और गांधी पाश्चात्य विरोधी आधुनिक नम्रता के देवदूतों में हैं। उन्होंने ईसाई धर्म से प्राप्त प्रेरणा को छिपाने का बहाना नहीं किया।

पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा की सूची में आने के लिए कठोर प्रयत्न करने वाले पैतृक सम्पत्ति से वंचित स्त्रियों और पुरुषों के अनेक विभिन्न सैन्यदलों में सबसे अधिक पीड़ित अफ्रीका के आदिम नेग्रो लोग थे। इन नेग्रो लोगों को दास बनाकर अमरीका लाया गया था। उनमें हम पश्चिम के समान ही प्रवासी दासों को पाते हैं। ये प्रवासी दास भूमध्यसागर के सभी दूसरे किनारों से रोमन इटली में ईसा के पूर्व की दो शतियों में लाये गये थे। हम देखते हैं कि इटैलो-ओरियेन्टल की भाँति अमेरिको-अफ्रीकन पुनःस्थापित दासों ने महान् सामाजिक चुनौती धार्मिक प्रतिक्रिया के साथ स्वीकार की। इस अध्ययन के आरम्भ में हमने दोनों की तुलना करते हुए अनेक सादृश्य दिखाये हैं, किन्तु उनमें ठीक वैसा ही एक विशेष अन्तर भी है। मिस्री, सीरियाई और एशिया माइनर के प्रवासी दास उस धर्म से सन्तुष्ट थे जिसे वे अपने साथ लाये थे, किन्तु अफ्रिकी दास अपने स्वामियों के पैतृक धर्म को स्वीकार करने में ही सन्तुष्ट हुए।

---

[1] धर्मतन्त्र।—अनुवादक

इसका समाधान कैसे दिया जाय ? नि:सन्देह दासों के दोनों दलों के सामाजिक इतिहासों में अन्तर है । रोमन इटली के पुनःस्थापित दास प्राचीन और संस्कृत पूर्वी जन-वर्ग से लिये गये थे । इन पूर्वी लोगों के बच्चे अपनी पूर्वजों की संस्कृति के अनुयायी हो सकते थे, किन्तु अफ्रीका के नेग्रो दासों का पैतृक धर्म अपने गोरे स्वामियों की अधिक अच्छी सभ्यता का सामना नहीं कर सकती थी । इस सम्वन्ध में दोनों स्वामियों की सांस्कृतिक विभिन्नता की पूर्ण व्याख्या का ध्यान रखना होगा ।

रोमन इटली में ये पूर्वी दास वास्तव में अपने पैतृक धार्मिक उत्तराधिकार के वाहर कहीं भी धार्मिक सान्त्वना नहीं खोजते थे, क्योंकि इनके रोमन स्वामी की आध्यात्मिकता शून्यता थी । इन दासों के मामले में धार्मिकता का यह अमूल्य मोती उन्हें अपने उत्तराधिकार के रूप में मिला था न कि उनके स्वामियों के उत्तराधिकार में । पश्चिमी अवस्था में सम्पूर्ण सांसारिक शक्ति तथा सम्पत्ति के साथ आध्यात्मिक खजाना दासों को संचालित करने वाले प्रभावशाली अल्पसंख्यक के हाथों में था ।

आध्यात्मिक कोश का रखना एक वात है और उसका दूसरे को देना दूसरी वात है । जब हम इस पर और अधिक विचार करते हैं, तब आश्चर्यचकित होकर देखते हैं कि इन दासों के ईसाई स्वामियों को अपने द्वारा विधर्मी किये गये प्रताड़ित लोगों को आध्यात्मिक भोजन देने में समर्थ होना चाहिए था । यह आध्यात्मिक भोजन अपने साथियों को दास बनाने के अपवित्र कार्य द्वारा धर्म-भ्रष्ट करने का भरसक प्रयत्न है । जिन दासों को उन्होंने घोर सन्तप्तकारी गलती करके नैतिक रूप से परिवर्तित किया है, ईसाई धर्म प्रचारक स्वामी अपने उन दासो का हृदय-स्पर्श कैसे कर सके ।[१] ईसाई धर्म में अजेय आध्यात्मिक शक्ति होनी चाहिए यदि वह विजय प्राप्त करना चाहता है । वस्तुत: धर्म का स्थान धरती पर नहीं वरन् मनुष्य की आत्मा मे होता है इसलिए हमारे नये नव-व्रात्यवादी धर्मावलम्बी संसार में अनेक स्त्री-पुरुष ईसाई जीवित होंगे । संभवत: नगर में पचास सचरित्र होंगे । अमेरिका के दास मिशन पर दृष्टि डालने पर हम अपने कार्य में संलग्न अचल रूप से कुछ ईसाई दिखाई पड़ेंगे । वस्तुतः अमरीका के धर्म परिवर्तित नेग्रो अपने धर्म-परिवर्तन के लिए अपने धर्म-पुरोहितों के ऋणी हैं । उनके नहीं जो समुद्र पार पुनःस्थापित दासों के दलों के लिए एक हाथ में बाइबिल तथा दूसरे हाथ मे चाबुक लिये हुए थे । ये दल जान, जी० फीस तथा मीटर क्लैवर के ऋणी हैं ।

अपने स्वामियों के धर्म द्वारा दासों के इस धर्म-परिवर्तन के चमत्कार में हम आन्तरिक सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसंख्यक के बीच स्पष्ट भेद देखते हैं । पश्चिमी समाज में यह भेद उस ईसाइयत द्वारा समाप्त किया गया, जिसका खण्डन करने की चेष्टा हमारे शक्तिशाली अल्पसंख्यक ने की थी । ईसाई मिशनरी के अन्तिम दिनों के क्रिया-कलापों में से एक अमरीकी नेग्रो का धर्म परिवर्तन है । हमारी युद्ध से संत्रस्त पीढ़ी में जहाँ नव-व्रात्यवादी अल्पसंख्यक का उज्ज्वल भविष्य धुंधला हो गया, एक बार फिर जीवन का रस पश्चिमी ईसाई साम्राज्य की सभी

---

[१] पिलिस्तीन के प्राचीन नगर सोडम की रक्षा के लिए अब्राहम ने जेहोवा से प्रार्थना की थी : जेनीसिस १८, २४ ।

शाखाओं में व्यक्त रूप से प्रवाहित हुआ । इस दृश्य से ऐसा ज्ञात होता है कि इन सबके बाद पश्चिमी इतिहास का अगला अध्याय कदाचित् हेलेनी इतिहास के अन्तिम अध्याय का अनुसरण नहीं कर सकता । नष्ट हुई तथा विघटित सभ्यता के अवशिष्ट विरासत पाये लोगों की भाँति हम आन्तरिक सर्वहारा की जोती गयी धरती से उत्पन्न नये ईसाई धर्म का सिंहावलोकन करने के स्थान पर उस सभ्यता का अध्ययन करेंगे जिसने अपने पैतृक धर्मतन्त्र के उन्हीं हाथों सुरक्षित होने की संभावना समझी । जिसे उसने दूर रखने की असफल चेष्टा की । इस क्रिया में भौतिकता पर दिखावटी विजय के नशे में लड़खड़ाती हुई सभ्यता ने आध्यात्मिक उन्नति के लिए दूसरे की सम्पत्ति (धर्म) ईश्वर की ओर ध्यान किये बिना अपने ही लिए रख ली । उसे उस अपराध से मुक्त किया जा सकता है, जो उसने अपने ऊपर आरोपित किया—अर्थात् कोरोस-यूबरीस-ऐथे का मार्ग । हेलेनी भाषा में, त्यागा पश्चिमी ईसाई समाज सार्वभौम ईसाई समाज के रूप में फिर से जन्म ले जो उसका पहले का तथा उत्तम आदर्श था ।

क्या ऐसा आध्यात्मिक पुनर्जन्म सम्भव है ? यदि मैं निकोडेमस का प्रश्न प्रस्तुत करूं कि क्या एक मनुष्य दूसरी बार पुनः माता के गर्भ में जा सकता है और पैदा हो सकता है, तो उसके प्रशिक्षक का ही उत्तर दिया जा सकता है कि "मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि वह मनुष्य जो आध्यात्मिक जल से नहीं पैदा होता, वह ईश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता ।"[1]

(४) बाहरी सर्वहारा

आन्तरिक सर्वहारा के समान बाहरी सर्वहारा भी शक्तिशाली पतित सभ्यता के अलग होने से उत्पन्न होता है । जिससे अलगाव होता है वह भेद स्पष्ट है । आन्तरिक सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्यक के साथ भौगोलिक दृष्टि से आपस मे मिलते रहते हैं, जिनसे नैतिक खाईं द्वारा यह विभाजित हो जाते हैं । बाहरी सर्वहारा न केवल नैतिक दृष्टि से परिवर्तित किया जाता है, वरन् शक्तिशाली अल्पसंख्यक द्वारा भौतिक रूप से सीमाओं में विभाजित किया जाता है । यह सीमा मानचित्र पर देखी जा सकती है ।

यह सीमा ही वास्तव में वह स्पष्ट चिह्न है, जिससे यह विभाजन होता है । जब तक सभ्यता विकासोन्मुख रहती है, उसके अग्रभाग के अतिरिक्त उसकी कोई निश्चित सीमा नहीं रहती । जहाँ वह दूसरी सभ्यता और उसकी जातियों से टकराती है । दो या अधिक सभ्यताओं की ऐसी टक्करें ऐसा आभास उत्पन्न करती हैं जिसके परीक्षण का अवसर हमें इस अध्ययन के अन्तिम भाग में मिलेगा ।[2] किन्तु, इस समय हम इस पर विचार करना छोड़ देंगे और अपना ध्यान उस स्थिति पर ही केन्द्रित करेंगे जिसमें सभ्यता का पड़ोसी दूसरी सभ्यता नहीं है, बल्कि आदिम जातियों का समाज है । इस परिस्थिति में हम देखेंगे कि जब तक सभ्यता विकासोन्मुख रहती है, उसकी सीमाएँ अस्पष्ट रहती हैं । हम विकासोन्मुख सभ्यता के विकास तथा उसकी विकास-यात्रा की प्रणाली पर अपने को केन्द्रित करें और बाहर की ओर चलें तो कभी-न-कभी हम ऐसे

---

[1] जान ३, ४–५

[2] उस खण्ड में जो अबतक अप्रकाशित हैं ।

वातावरण में पहुँच जायेंगे जो निश्चित रूप से आदिम हैं। ऐसी यात्रा में कहीं भी हम एक रेखा खींच कर नहीं कह सकते कि "यहाँ सभ्यता समाप्त होती है और हम आदिम समाज में प्रविष्ट होते हैं।"

वस्तुतः जब एक क्रियाशील अल्पसंख्यक सभ्यता के विकास के जीवन में अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता है और एक ऐसी चिनगारी प्रज्ज्वलित करता है जो घर की सभी वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए दीपक जलाती है, तब इस ज्योति की किरणें बाहर भी जाती हैं। ये घर की दीवारों से बड़ी नहीं बनायी जा सकतीं। क्योंकि वास्तव में कोई दीवार है नहीं और बाहरी पड़ोसियों से प्रकाश छिप नहीं सकता। स्वभावतः प्रकाश तब तक चमकता रहता है, जब तक वह लोप बिन्दु (वैनिंशिग पाइंट) पर नहीं पहुँच जाता। इसका क्रम सूक्ष्म है। गोधूली की धुँधली कहाँ समाप्त होती है और अन्धकार कहाँ से आरम्भ होता है, इसकी विभाजन-रेखा खींचना असम्भव है। वस्तुतः विकासोन्मुख सभ्यताओं के विकिरण की संचालक शक्ति इतनी महान् है कि बहुत पहले ही, कम-से-कम कुछ अंशों में, वह शक्ति जीवित आदिम समाजों की सम्पूर्ण व्यवस्था में व्याप्त होने में सफल हो चुकी है। यद्यपि सभ्यताएँ सापेक्ष रूप से मानव की अत्यन्त आधुनिक उपलब्धि हैं। कहीं भी ऐसे आरम्भिक समाज की खोज करना असम्भव होगा जो किसी एक या दूसरी सभ्यता के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो। उदाहरणार्थ १९३५ में पापुआ[1] (ब्रिटिश न्यूगियाना द्वीप का दक्षिणी-पूर्वी भाग) के आन्तरिक भाग में एक ऐसे समाज की खोज हुई जो पहले पूर्ण रूप से अज्ञात था। यह समाज प्रधान खेती की वह तकनीक जानता था जो किसी अज्ञात काल में किसी अज्ञात सभ्यता से अवश्य सीखी गयी होगी।

आदिम समाजों का जो कुछ शेष है उससे हम जब इस विशेष स्थिति का निरीक्षण करते हैं तब हमें आदिम समाज के प्रभाव की व्यापकता सभी सभ्यताओं में दिखाई पड़ती है। दूसरी ओर यदि हम एक सभ्यता की दृष्टि से इसका निरीक्षण करें तो हम इस तथ्य द्वारा शक्तिशाली ढंग से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते कि जैसे ही क्षेत्र बढ़ता जाता है वैसे ही प्रभाव की शक्ति का विकिरण कम होता जाता है। जब हम उस सिक्के पर हेलेनी कला के प्रभाव को देखकर अपने आश्चर्य को समाप्त करते हैं जो ईसा के पूर्व की अन्तिम शती में ब्रिटेन में ढाला गया था अथवा युग की प्रथम शती में अफगानिस्तान के कब्र की तराशी शव पेटी को देखते हैं तब पता चलता है कि ब्रिटिश सिक्का मैसेडोनिया का व्यंग्य चित्र है और अफगानिस्तान की वह शव-पेटी व्यापारी कला का नकली उत्पादन है। उच्च कोटि की अनुकृति भी उपहास की वस्तु हो जाती है। अनुकृति का आह्वान आकर्षण से होता है। इसे क्रम से अनेक सर्जनात्मक अल्पसंख्यक काम में लाते हैं। उससे केवल यही नहीं कि घर में विभाजन से रक्षा होती है, अपने पड़ोसियों द्वारा आक्रमण से रक्षा होती है, जहाँ तक यह आदिम समाज पड़ोसी हैं। सर्जनशील अल्पसंख्यक के क्रमिक अनुगमन द्वारा ही यह आकर्षण सभ्यता के विकास में दिखाई देता है। जब कभी विकासोन्मुख सभ्यता आदिम समाजों के सम्पर्क में आती है, तब उसका सर्जनशील अल्पसंख्यक उनकी अनुकृति को आकृष्ट करता है, साथ ही असर्जनशील बहुसंख्यक वर्ग की

---

[1] दि टाइम्स, १४ अगस्त १९३६, और पापुअन वन्डर लैण्ड : जे० जी० हाइडस्।

अनुकृति को भी आकृष्ट करता है। किन्तु, यदि चारों ओर के आदिम समाजों और सभ्यता के बीच यह सामान्य सम्बन्ध तब तक है, जब तक सभ्यता विकासोन्मुख रहती है। तब उस समय महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता है, जब सभ्यता का पतन होता है, तब वह विघटित हो जाती है। सर्जनशील अल्पसंख्यक ने आकर्षण द्वारा स्वेच्छा से राजभक्ति पायी है। सर्जनशील अल्पसंख्यक ने अपने से भक्ति प्राप्त की है, क्योंकि उनमें सर्जनात्मकता है, शक्तिशाली बहुसंख्यक में सर्जनशीलता नहीं है इसलिए उसे शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। इनके चारों ओर के आदिम समाज के लोगों पर आकर्षण नहीं होता, वे अलग कर दिये जाते हैं। विकासोन्मुख सभ्यता के ये सरल अनुयायियों ने शिष्यता का परित्याग कर दिया और ये वे बन गये जिन्हें बाहरी सर्वहारा कहा जाता है। ये विघटित सभ्यता 'में' होते हैं, कभी उस 'के' नहीं होते।[१]

किसी सभ्यता के विकिरण का विश्लेषण तीन तत्त्वों में हो सकता है, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक। जब तक समाज विकास की अवस्था में होता है ये तीनों तत्त्व समान शक्ति से विकीर्ण होते हुए समान आकर्षक मालूम होते हैं। मैं यह बात भौतिक दृष्टि से नहीं, वरन् मानवी दृष्टि से कर रहा हूँ। किन्तु, सभ्यता का विकास ज्यों ही बन्द हो जाता है, उसकी संस्कृति का आकर्षण भाप की भाँति उड़ जाता है। उसकी आर्थिक और राजनीतिक विकिरण की शक्तियाँ वास्तव में पहले की अपेक्षा अधिक तेजी से विकसित होती हैं। यह विकास अर्थ, युद्ध और राक्षस के बनावटी धर्मों के सफलतापूर्वक संवर्धन के लिए होता है जो पतनोन्मुख सभ्यताओं के विशिष्ट लक्षण हैं। किन्तु सांस्कृतिक तत्त्व सभ्यता का सार है और आर्थिक तथा राजनीतिक तत्त्व अपेक्षित रूप से उस जीवन की नगण्य अभिव्यक्ति है, जो उनमें है। ऐसा मालूम होता है कि आर्थिक और राजनीतिक विकिरण की अत्यधिक प्रदर्शनीय विजय अपूर्ण तथा खतरनाक है।

यदि हम आदिम जनता की दृष्टि से इस परिवर्तन पर ध्यान दें तो हम पूर्वोक्त सत्य की ही अभिव्यक्ति करेंगे कि पतित सभ्यता की शक्ति की कला की उनकी अनुकृति समाप्त हो जाती है, किन्तु वे उसके सुधारों तथा उनकी प्राविधिक युक्तियों की नकल करना जारी रखते हैं। ये उद्योग-धन्धे युद्ध और राजनीति में उनकी नकल करते हैं इसलिए नहीं कि वे उनके साथ एक हो सकें, वरन् इसलिए कि उनकी हिंसा के विरुद्ध वे अपनी रक्षा प्रभावशाली ढंग से कर सकें क्योंकि यही अब उनका विशिष्ट गुण हो जाता है।

आन्तरिक सर्वहारा की प्रतिक्रियाओं और अनुभवों के पहले सर्वेक्षण में हमने देखा है कि किस प्रकार हिंसा के मार्ग ने उन्हें आकृष्ट किया तथा किस प्रकार इस आकर्षण के कारण अपने विनाश को पहुँचे। थियूडास और जूडास ऐसे लोग अवश्य ही तलवार से नष्ट हुए। जब वे नम्रता के पैगम्बर का अनुसरण करते हैं तभी आन्तरिक सर्वहारा अपने विजेताओं को वही बना पाते हैं। यदि बाहरी सर्वहारा हिंसा की प्रतिक्रिया करना चाहता है तो वह ऐसा नहीं

---

१. जब हम इस 'में' कहते हैं, तब हमारा तात्पर्य भौगोलिक दृष्टि से नहीं होता। बाहरी कहे जाने पर भी स्पष्ट रूप से वे बाहर नहीं होते, वरन् 'उनमें' ही तब तक रहते हैं, जब तक वे स्वेच्छा से सक्रिय सम्बन्ध की स्थिति में रहना जारी रखते हैं।

कर सकता । सम्पूर्ण आन्तरिक सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्यक के निकट ही रहता है । किसी सीमा तक बाहरी सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्यक की सैनिक क्रिया के प्रभाव क्षेत्र से बाहर रहता है । अब जो संघर्ष होता है उसका परिणाम यह है कि पतित सभ्यता अनुकृतियों को नहीं आकृष्ट करतीं, शक्ति का विकिरण करती हैं । इस परिस्थिति में बाहरी सर्वहारा के निकटतम सदस्य सम्भवतः जीत लिये जाते हैं और आन्तरिक सर्वहारा में उन्हें शामिल किया जाता है । किन्तु एक समय ऐसा आता है, जब शक्तिशाली अल्पसंख्यक की सैनिक शक्ति उनके सम्पर्कों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हो जाती है ।

जब यह अवस्था आती है तब सभ्यता और उसके बर्बर पड़ोसियों के बीच परिवर्तन क्रिया पूरी होकर सम्पर्क स्थापित हो जाता है । जब तक एक सभ्यता विकासोन्मुख अवस्था में ही रहती है, तब तक वह अपनी पूरी शक्ति से व्याप्त रहती है और उसका घर छिपा रहता है, । और उस पर असभ्यों का आक्रमण नहीं होता क्योंकि दोनों के बीच एक दीवार होती है जहाँ-जहाँ सभ्यता क्रमशः क्षीण होते-होते असभ्यता में बदल जाती है । दूसरी ओर जब सभ्यता पतित हो जाती है और उसमें भेद पैदा हो जाता है, और जब शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा बाहरी सर्वहारा के बीच का लगातार संघर्ष समाप्त हो जाता है और ये युद्ध की खाईं में सुव्यवस्थित हो जाती हैं, तब हमें अन्तस्थ क्षेत्र अदृश्य हो जाता है । सभ्यता से बर्बरता की ओर भौगोलिक परिवर्तन कभी धीरें-धीरे नहीं होता, वरन् अचानक होता है । इन दोनों प्रकारों के सम्पर्कों के विरोध तथा सम्बन्ध को पूर्ण रूप से व्यक्त करने वाला लैटिन शब्द 'लिमेन' (अवसीमा) या अंग्रेजी शब्द थ्रेशहोल्ड (देहली) है । यह पहले एक क्षेत्र था जो अब सैनिक सीमा द्वारा बन गया है । जिसमें लम्बाई है, पर चौड़ाई नहीं । इस रेखा के पार पराजित शक्तिशाली अल्पसंख्यक और अपराजित बाहरी सर्वहारा शस्त्रों द्वारा एक-दूसरे का सामना करते हैं । यह सैनिक मोरचा सैनिक तकनीक को छोड़कर सभी सामाजिक विकिरण को रोकता है । इस सैनिक तकनीक का तात्पर्य सामाजिक आदान-प्रदान की उन वस्तुओं से है जो शान्ति के लिए नहीं, वरन् उनके युद्ध के लिए बनायी जाती है, जिनके बीच इन वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है ।

यह सामाजिक आभास तब होता है, जब युद्ध सैनिक मोरचे की 'अवसीमा' पर रुक जाता है । इस आभास पर हमारा ध्यान बाद में जायगा ।[1] यहाँ इस मुख्य तथ्य का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा कि समयानुसार यह अस्थायी खतरनाक शक्ति का सन्तुलन अनिवार्य रूप से असभ्यों के पक्ष की ओर झुकता है ।

एक हेलेनी दृष्टान्त

हेलेनी इतिहास के विकास की दशा अन्तस्थ क्षेत्र तथा अवसीमा के अनेक दृष्टान्तों से सम्पन्न है, जो विकासोन्मुख सभ्यता के घर में बहुत मिलते हैं । यूरोप महाद्वीप में यूनान का सार थरमोपिली के उत्तर अर्ध-हेलेनी थेसली में, डेसफी के पश्चिम अर्ध-हेलेनी एतोलिया में मिल गया है । अर्द्ध हेलेनीवाद, थ्रेस तथा इलीरिया की पूर्ण बर्बरता से पूर्ण रूप से ढँक लिया

---

[1] उस खण्ड में, जो अब तक प्रकाशित नहीं है ।

गया। पुनः एशिया माइनर की ओर, एशिया के तट के ग्रीक नगरों के निकट प्रदेशों में हेलेनीवाद का ह्रास हो गया है। ये नगर कैरिया, लीडिया और फ्राइजिया हैं। एशिया की इस सीमा पर हेलेनीवाद को अपने बर्बर विजेताओं को बन्दी बनाते हुए हम देख सकते हैं। यह इतना शक्तिशाली था कि ईसा से पूर्व छठीं शती के द्वितीय चतुर्थांश में लीडिया की राजनीति यें यूनान प्रेमियों तथा यूनान से डरने वालों का पहली बार युद्ध सामने आया। जब लीडिया के राज्य का यूनान-प्रेमी महत्त्वाकांक्षी पैन्टालिओन अपने सौतेले भाई क्रीसस द्वारा पराजित किया गया, तब हेलेनी विरोधी दल का नेता हेलेनी पक्ष के ज्वार के विरुद्ध तैरने में ऐसा नपुंसक सिद्ध हुआ कि वह हेलेनी तीर्थों का उदार संरक्षक बन गया, जिस प्रकार वह हेलेनी भविष्यवक्ताओं की सलाह में विश्वास करता था।

समुद्रपार की पृष्ठभूमि में शान्तिपूर्ण सम्बन्धों तथा धीरे-धीरे परिवर्तन के नियम जान पड़ते हैं। हेलेनीवाद शीघ्रता से इटली के महान् ग्रीस-मैगना ग्राइसिया की पृष्ठभूमि में फैला। रोम के प्रारम्भिक विस्तृत साहित्य में अफलातून के शिष्य हेराक्लीडीस पान्टिकस के हाथों की कृति का अवशेष है, जिसमें यह 'लैटिन' राष्ट्रमण्डल हेलेनी नगर के नाम से वर्णित है।

इस प्रकार हेलेनी संसार की सभी सीमाओं पर अपने विकास की अवस्था में ओरफियूज की सुन्दर आकृति हमें दिखाई देती हैं। यह ओरफियूज चारों ओर के बर्बर लोगों पर प्रभाव डालता हुआ और उन्हें अपने जादू भरे संगीत को पुनः सुनने के लिए अनुप्राणित करता हुआ दिखाई देता है। अपने अनगढ़ बाजे के जादूभरे संगीत से वह अपनी पितृभूमि की पृष्ठभूमि के आदिम मानव को अनुप्राणित करता मालूम पड़ता है। किन्तु हेलेनी सभ्यता के पतन पर उसी क्षण इस प्रबन्ध गीत का स्वर-चित्र नष्ट हो जाता है। जिस क्षण संगीत की लय कर्कश ध्वनि में बदलती है, मोहित श्रोता (असभ्य लोग) एकाएक तन्द्रा से जागते दिखाई देते हैं और अपने निर्दय रूप में पुनः लौट आते हैं। वे दुष्ट असैनिकों के विरुद्ध प्रबल वेग से कूद पड़ते हैं जो सदल ईशदूतों के परदे के बाहर आते हैं।

हेलेनी सभ्यता के पतन के लिए बाहरी सर्वहारा की सैनिक प्रतिक्रिया महान् ग्रीस में अत्यन्त हिंसात्मक और प्रभावशाली थी। वहाँ ब्रूटिया और लुकानिया के लोगों ने ग्रीक नगरों पर आक्रमण किया और एक के बाद दूसरे पर कब्जा किया। ईसा पूर्व ४३१ से सौ वर्षों तक के युद्ध का आरम्भ हेलेनी लोगों के लिए महान् दोषों का आरम्भ था। महान् ग्रीस के सम्पन्न प्रारम्भिक समुदायों में से कुछ जीवित रह गये। इन्हें समुद्र की ओर भगाये जाने से सुरक्षा करने के लिए कुछ भाड़े के सैनिकों को अपनी मातृभूमि से बुलाया गया। यह सैनिकों का अव्यवस्थित प्रवलन (रि-इनफोर्समेंट) इटली के आदिम निवासियों के वेग को रोकने में पूरा असमर्थ हुआ, क्योंकि बर्बरों ने मेसिना का जलडमरूमध्य पार कर लिया था, इसके पहले ही हेलेनी कृत रोमन सगोत्री इटालियाई आदिमवासियों के बीच-बचाव से सम्पूर्ण आन्दोलन अचानक समाप्त कर दिया गया। रोमन राजमर्मज्ञता तथा उसकी सेना ने 'महान् ग्रीस' को ही नहीं, हेलेनीवाद के लिए सारे इटली प्रायद्वीप को, ओसकनों पर पीछे से हमला करके बचा लिया और इटालियाई बर्बरों तथा इटालियाई यूनानियों, दोनों में शान्ति स्थापित की।

इस प्रकार हेलेनीवाद और बर्बरता के बीच का दक्षिणी इटालियाई मोरचा नष्ट हो गया। इसके बाद रोमन सैनिकों के चरणों ने हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के साम्राज्य का विस्तार यूरोप महाद्वीप तथा उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में किया। ऐसा ही विस्तार एशिया में मेसेडोनिया के सिकन्दर के द्वारा हो चुका था। इन सैनिक विस्तारों का प्रभाव बर्बरों के विरोधियों के मोरचों को हटाना नहीं था, किन्तु उनका विस्तार करना तथा शक्ति के केन्द्र से दूर-दूर तक फैलाना था। कई शतियों तक उन्हें स्थिर किया गया, किन्तु नियमानुसार समाज के विघटन की क्रिया चलती रही, जब तक कि अन्तिम रूप से बर्बरों ने आक्रमण कर दिया।

अब हम यह देखना चाहते हैं कि हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक पर बाहरी सर्वहारा के दबाव की प्रतिक्रिया क्या रही? अहिंसक तथा हिंसक कोई भी प्रतिक्रिया का चिह्न दिखाई देता है? और क्या बाहरी सर्वहारा में किसी प्रकार की रचनात्मक क्रियाशीलता थी?

पहली ही दृष्टि में यह देखा जा सकता है कि हेलेनी स्थिति में इन दोनों प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक होगा। हम हेलेनी विरोधी बर्बरों का अनेक अवस्थाओं और परिस्थितियों में निरीक्षण कर सकते हैं। एरिओविसटस के रूप में सीजर द्वारा वह रणक्षेत्र से भगा दिया जाता है, आरमिनिअस के रूप में अगस्टस का सामना करता है, आडोवेसर के रूप में वह रोमुलस अगस्टस से बदला लेता है। सभी युद्धों में जय, पराजय और बराबरी के तीन ही विकल्प हैं। सभी विकल्पों में हिंसा का ही शासन होता है और सर्जनात्मक शक्ति मन्द पड़ जाती है। हमें यह देखकर और स्मरण करके उत्साह प्राप्त होता है कि आन्तरिक सर्वहारा भी अपनी आरम्भिक प्रतिक्रियाओं में ऐसी ही हिंसा और अनुर्वरता दिखाते हैं। अन्त में 'उच्चतर धर्म' ऐसे शक्तिशाली निर्माण में जो अहिंसा द्वारा अभिव्यक्त होता है, और सार्वभौम धर्म को सामान्य रूप में प्रमुखता प्राप्त करने के लिए, समय तथा कठोर श्रम दोनों की आवश्यकता होती है।

उदाहरणार्थ, विभिन्न बर्बर-गिरोहों के युद्धों में अहिंसा को भिन्न-भिन्न मात्राओं में हम अनुभव करते हैं। अर्ध-अर्ध हेलेनी विसिगाथ ऐलेरिक द्वारा रोम की ४१० ई० की बरबादी, उसी नगर की वांडलों और बर्बरों द्वारा की गयी जो ४५५ ई० की बरबादी से कम क्रूर थी। यह वह बरबादी थी जो रेडागाइसम (४०६ ई०) द्वारा हुई थी। अलारिक की सापेक्षित अहिंसा का सन्त आगस्टाइन ने वर्णन किया है :

"क्रूर नृशंसता इतनी हल्की दिखाई देती है कि विजेताओं ने चर्चों में विश्राम के लिए पर्याप्त अवसर दिया था। आज्ञा दी गयी थी कि इस पुण्यस्थली में किसी पर भी तलवार से प्रहार न हो और कोई भी बन्दी न बनाया जाय। वास्तव में कोमल-हृदय शत्रुओं द्वारा अनेक ऐसे बन्दी इन चर्चों में लाये गये थे। किसी पर भी दास बनाने की गरज से क्रूर शत्रुओं ने अस्त्र से प्रहार नहीं किया।"[1]

अलारिक के साले और उत्तराधिकारी अतावुल्फ से सम्बन्धित एक विचित्र प्रमाण और है

---

[1] संत अगस्टाइन : डि सिवाइटेट डेइ, पुस्तक १, अध्याय ७।

जिसका उल्लेख आगस्टाइन के शिष्य ओरोसियस ने नरबोन के एक सज्जन के कथन के आधार पर किया था जो थियोडोसियस सम्राट् की सेना में काम करता था।

"इस सज्जन ने हमसे कहा कि नारबोन में अतावुल्फ का मैं घनिष्ठ मित्र हो गया हूँ। और उसने अनेक बार मुझसे कहा है—और इस गम्भीरता से मानो साक्षी दे रहे हों—अपने सम्बन्ध की कहानी, जो इस बर्बर की, जो उत्साह, शक्ति और सजीवता का उदाहरण है, जिह्वा पर सदा रहती है। अतावुल्फ की अपनी जीवन की कहानी के अनुसार रोम के नाम की सम्पूर्ण स्मृति को मिटा देने की प्रवल इच्छा के साथ उसने अपना जीवन आरम्भ किया था। उसकी इच्छा सम्पूर्ण रोमन राज्य को ऐसे साम्राज्य में बदलने की थी जो गोथों साम्राज्य में लीन हो जाय।"

"समय पाकर अनुभव से उसे विश्वास हो गया कि एक ओर तो अपनी बर्बरता के कारण नियन्त्रित जीवन के लिए गोथ अनुपयुक्त हैं, दूसरी ओर राज्य से कानून का शासन नष्ट करना अपराध होगा। जब कानून का शासन समाप्त हो जाता है, राज्य समाप्त हो जाता है। जब अतावुल्फ को सत्य का ज्ञान हो गया, तब उसने वैभव की प्राप्ति का प्रयत्न किया। यह ऐश्वर्य उसकी पहुँच में था। उसने सबके लिए रोमन नाम के पुन: स्थापनार्थ गोथों की शक्ति का प्रयोग किया। रोम के नाम की पुन: स्थापना उसके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी।"[1]

यह उद्धरण हेलेनी बाहरी सर्वहारा के लोकाचार में हिंसा से अहिंसा के परिवर्तन का प्रामाणिक दृष्टान्त है और उसके प्रकाश में हम आध्यात्मिक रचनात्मक शक्ति के तात्कालिक निश्चित लक्षण देख सकते हैं, जिसने किसी प्रकार बर्बर आत्माओं की मौलिकता का आंशिक रूप से उद्धार किया था।

उदाहरणार्थ, स्वयं अतावुल्फ अपने साले एलारिक के समान ईसाई थे, किन्तु उनकी ईसाइयत सन्त आगस्टाइन और कैथोलिक धर्मतन्त्र की ईसाइयत नहीं थी। यूरोप के मोरचे पर उस पीढ़ी के बर्बर आक्रामक 'एरियन' लोग थे। सम्भवत: वे बिलकुल विधर्मी (पैगन) नहीं थे। यद्यपि उनका कैथोलिक धर्म में न होकर एरियन धर्म में परिवर्तन संयोग मात्र था। इस विधर्मी भावना की समाप्ति जान-बूझकर हुई थी। इसके पश्चात् एरियन धर्म विशिष्ट चिह्न था जिसे जान-बूझकर धारण किया गया था। कभी-कभी अहंकार के साथ इसका प्रदर्शन विजेता और विजित जनता में सामाजिक अन्तर दिखाने के लिए होता था। रोमन साम्राज्य के बहुसंख्यक ट्युटोनी उत्तराधिकारी राज्यों में से अधिकांश के एरियन धर्म दो शासनों के अन्त:काल के अधिक बड़े भाग में जीवित रहा। यह समय ३७५ ई० – ६७५ ई० का था। पोप ग्रेगरी ने, (५९० ई०–६०४ ई०) जो किसी एक आदमी की अपेक्षा पश्चिमी ईसाई साम्राज्य की नयी सभ्यता जो शून्य से निकली, के संस्थापक के माने जा सकते हैं, लोमबार्डी रानी थियोडेलिन्डा के कैथोलिक धर्म का परिवर्तन करके बर्बरों के इतिहास का एरियन अध्याय समाप्त किया। फ्रांक कभी एरियन नहीं थे, किन्तु विधर्मियों से सीधे कैथोलिक बनाये गये थे। ऐसा क्लोविस के रीमस (४९६ ई०) में ईसाई धर्म की दीक्षा के बाद हुआ था। विधर्मियों से कैथोलिक बनाया जाना दो शासनों के अन्त:काल में उन्हें जीवित रहने में सहायक हुआ और ऐसे राज्य-निर्माण में सहायता दी जो नयी सभ्यता की राजनीतिक नींव बना।

[1] पी० ओरोसियस : एडवरसम् पैगानोस, पुस्तक ७, अध्याय ४३।

एरियन धर्म में जो बर्बर परिवर्तित हो गये, उन्हें उसी रूप में स्वीकार कर लिया । किन्तु साम्राज्य की दूसरी सीमाओं पर दूसरे बर्बर लोग थे, जो अपने-अपने धार्मिक जीवन के प्रति विशिष्ट गौरव का अनुभव करते थे जो जाति की भावना से कहीं अधिक था । ब्रिटिश द्वीपों की सीमाओं पर 'केल्टिक किनारे' के असभ्य लोग एरियन ईसाई धर्म में नहीं, वरन् कैथोलिक धर्म में परिवर्तित किये गये थे । उन्होंने अपने बर्बर विरासत के अनुरूप इसे ढाला और सीमा पर अरब वर्ग के अफ्रेशियाई स्टेप सीमा के बर्बरों के सामने अपनी मौलिकता बहुत अधिक मात्रा में दिखायी । मुहम्मद साहब की रचनात्मक आत्मा में यहूदी धर्म तथा ईसाई धर्म का विकिरण आध्यात्मिक शक्ति में रूपान्तरित हो गया था जो स्वयं इस्लाम के 'उच्च धर्म' के रूप में प्रकट हुआ ।

यदि हम अपनी खोज थोड़ी दूर तक ले जायँ तो हम देखेंगे कि अभी-अभी उल्लिखित ये धार्मिक प्रतिक्रियाएँ पहली नहीं थीं, जो हेलेनी सभ्यता के विकिरण से आदिम जातियों में हुई थीं । अपने असली तथा पूर्ण रूप में सभी आदिम धर्म भिन्न-भिन्न रूपों में 'उर्वर' धर्म थे । आदिम समाज मुख्य रूप से रचनात्मक शक्ति का पूजक था । यह शक्ति प्रजनन में, तथा अनाज के उत्पादन में दिखाई देती थी । विनाशक शक्ति की पूजा या तो नहीं थी या न्यून थी । चूँकि आदिम समाज के मानव का धर्म सदा उसकी सामाजिक दशाओं की छाया है, जब उसका सामाजिक जीवन विरोधी तथा विदेशी समाजों के सम्मुख आता है और जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, तब उसके धर्म में क्रान्ति होती है । जब एक आदिम समाज धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक विकासोन्मुख सभ्यता के लाभप्रद प्रभावों को ग्रहण करता है, तब इस आदिम समाज को मोहक वीणा के साथ ओरफियुस की प्रभावशाली आकृति दिखायी नहीं देती और उसके स्थान पर नष्ट होती शक्तिशाली अल्पसंख्यक की भयप्रद भद्दी आकृति अशिष्ट प्रतिकूलता के साथ सामने आती है ।

इस घटना में आदिम समाज बाहरी सर्वहारा के एक अंश में परिवर्तित हो जाता है और इस अवस्था में बर्बर समुदाय के जीवन में सर्जनात्मक और विनाशक क्रियाओं का सापेक्ष रूप में एक क्रान्तिकारी विपर्यय होता है । अब युद्ध पूर्ण रूप से समुदायों का कार्य हो जाता है । जब युद्ध दैनिक कार्य और भोजन प्राप्त करने के सामान्य कार्य की अपेक्षा अधिक सरलता से बहुत अधिक उत्तेजक होने के साथ-साथ लाभप्रद हो जाता है, तब डेमीटर या एफ्रोडाइट अपने को एरेस के विरुद्ध ईश्वर की महत्तम अभिव्यक्ति के रूप में रखने की कैसे आशा कर सकता है ? ईश्वर को दैवी युद्ध के नेता के रूप में पुनः गढ़ा जाता है । हम ओलिम्पियन बहु-देवता पूजा में इस बर्बर जाति के देवी-देवताओं को पाते हैं । इनकी पूजा मिनोई सागर राज्य के एकियन बाहरी सर्वहारा में हम देख चुके हैं; हमने यह भी देखा कि ओलिम्पस के डाकू देवता के रूप में असगर्ड के निवासियों की प्रतिमूर्ति थे, जिनकी पूजा स्कैन्डेनेविया के कैथोलिक साम्राज्य के बाहरी सर्वहारा करते थे । इस प्रकार के दूसरे देवालयों की पूजा एरियन या कैथोलिक धर्म में परिवर्तित होने के पहले रोमन साम्राज्य की सुदूर यूरोपीय सीमाओं के ट्युटोनी बर्बरों द्वारा होती थी । ये लुटेरे देवी-देवता अपने सैनिक बने पुजारियों के ही प्रतिबिम्ब थे । इन देवी-देवताओं की गणना रचनात्मक कार्यों में की जानी चाहिए । ये हेलेनी संसार के ट्युटोनी बाहरी सर्वहारा की यशस्वी कृति समझे जाने चाहिए ।

धर्म के क्षेत्र से रचनात्मक कार्यों को एकत्र करते हुए क्या हम एक बार फिर इसी दृष्टान्त से कुछ और जोड़ सकते हैं ? 'उच्चधर्म' जो आन्तरिक सर्वहारा की शक्तिशाली खोज थी,

वह कला के क्षेत्र में कुख्यात ढंग से कुछ सम्बन्धित है। क्या बाहरी सर्वहारा के निम्न धर्म में तत्सम्बन्धी कलाकृतियाँ देखने के लिए मिलती हैं ?

इसका उत्तर निश्चित रूप से सकारात्मक होगा, क्योंकि हम ज्यों ही ओलिम्पियाई देवताओं का निरीक्षण करते हैं त्यों ही हम उन्हें होमर के महाकाव्यों में चित्रित देखते हैं। यह काव्य उस धर्म से उतना ही निश्चित रूप से सम्बद्ध है, जितना ग्रेगोरी का मरसिया या गोथिक वास्तुकला मध्ययुगीन पश्चिमी कैथोलिक ईसाइयत से सम्बद्ध है। आपोनिया के ग्रीक महाकाव्य की प्रतिमूर्ति इंग्लैंड के ट्युटोनी महाकाव्य में तथा स्कैन्डेनेविया के आइसलैंड के गद्य साहित्य में दिखाई देती है। स्कैन्डेनेविया की गद्य-कथा असगार्ड के साथ संलग्न है; अंग्रेजी महाकाव्यों में जिनमें बेडवुल्फ मुख्य जीवित श्रेष्ठ रचना है वोडेन तथा उसके दैवी सामन्त उसी प्रकार संलग्न हैं, जैसा होमर का महाकाव्य ओलिम्पस के साथ। वास्तव में महाकाव्य बाहरी सर्वहारा की प्रतिक्रियाओं के अत्यन्त लाक्षणिक तथा विशिष्ट फल हैं जो मानवता को वसीयत के रूप में दी गयी हैं। कोई काव्य जो सभ्यता से उत्पन्न हुआ है "होमर की तीव्रता और भव्यता को न कभी पा सकता है न पायेगा।"[१]

हमने महाकाव्य के तीन उदाहरणों का उल्लेख किया है। इस सूची को बढ़ाना तथा इसके प्रत्येक उदाहरण को उस सभ्यता के लिए बाहरी सर्वहारा की प्रतिक्रिया बताना आसान है, जिसके साथ बाह्य सर्वहारा का संघर्ष होता है। उदाहरणार्थ, चैन्सन डि रोलैण्ड सीरी सार्वभौम राज्य के यूरोपी बाहरी सर्वहारा की कृति है, जो अर्द्ध असभ्य फ्रान्सीसी धर्म-युद्ध करने वाले अंडालूशियाई उम्मेयद खलीफों के पाइरेनियन मोर्चे को तोड़कर ईसाई युग की ११वीं शती में आगे बढ़े, उन्होंने एक कलाकृति को प्रोत्साहन दिया जो उस समय तक पश्चिमी संसार की सभी जन-भाषाओं में रचित काव्यों की जननी थीं। 'चैन्सन डि रोलैण्ड' ऐतिहासिक महत्ता में 'बेडवुल्फ' से उतना ही आगे था, जितना साहित्यिक महत्ता में वह इससे पीछे है।[२]

(५) पश्चिमी संसार के बाहरी सर्वहारा

जब हम अपने पश्चिमी संसार के और उसका सामना करने वाले आदिम समाजों के सम्पर्क के इतिहास पर आते हैं, तब हम आरम्भिक अवस्था में हेलेनीवाद के विकास की दशा के समान उस पश्चिमी ईसाई समाज को पहचान सकते हैं, जिसने स्वधर्मत्यागियों को अपने

---

[१] सी० एस० लेविस : ए प्रिफेस टु पैराडाइज लास्ट, पृ० २२।

[२] जहाँ तक प्रमाण उपलब्ध होते हैं श्री ट्वायनबी ने सभी सभ्यताओं के बाहरी सर्वहारा का विवेचन किया है। मैं अन्यों को छोड़ कर सीधे पश्चिमी समाज के बाहरी सर्वहारा पर उपसंहार करने की ओर बढ़ा हूँ। इस तथ्य के लिए न तो कुछ कहने की आवश्यकता है और न क्षमायाचना की। मैंने अन्य स्थलों पर भी कुछ कम तीव्रता के साथ ऐसी ही योजना का अनुसरण किया है। उदाहरणार्थ, आन्तरिक सर्वहारा के अध्याय में श्री ट्वायनबी सभी की परीक्षा करते हैं। मैंने उनमें से वर्तमान रुचि के स्वरूपों पर विचार करते हुए आधे को छोड़ दिया है।—संपादक

जादू से आकृष्ट किया था । इनमें अत्यन्त विशिष्ट वे आरम्भिक धर्मत्यागी लोग थे जो स्कैन्डेनेविया की अकालप्रसूत सभ्यता के सदस्य थे । अन्ततः ये आरम्भिक धर्मत्यागी लोग उस सभ्यता के आध्यात्मिक शौर्य से झुकने के लिए विवश हुए, जिस सभ्यता पर सैनिक शक्ति से वे आक्रमण कर रहे थे । यह पराजय सुदूर उत्तर में उनके स्थानीय निवासस्थानों में, इनके पड़ाव से दूर आइसलैण्ड में तथा डेनला और नारमण्डी की ईसाई धरती पर इनके शिविर में हुई । समकालीन खानाबदोश मागयरों और जंगलनिवासी पोलों का धर्म-परिवर्तन वैसा ही स्वतः प्रेरित था, किन्तु आरम्भिक अवस्था में पश्चिमी विस्तार दमनकारी हिंसात्मक आक्रमणों से भी पूर्ण था, जो उत्पीड़न उससे कहीं अधिक था, जितना यूनानियों ने अपने पड़ोसियों के प्रति किया था । हम सैक्सनों के विरुद्ध 'शार्लमान' का धर्मयुद्ध देखते हैं, और दो शतियों बाद एल्ब और ओडर के बीच स्लावों के विरुद्ध सैक्सनों का युद्ध है, और इससे भी अधिक भयंकर तेरहवीं तथा चौदहवीं शती का युद्ध है, जिसमें टच्युटोनी सरदारों ने प्रशियनों को विसचूला के पार निकाल दिया ।

ईसाई साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर यही कहानी दुहराई जाती है । प्रथम अध्याय में रोमन मिशनरी द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से अंग्रेजों के धर्म-परिवर्तन का है, किन्तु इसका अनुसरण सुदूर पश्चिमी ईसाइयों में बलपूर्वक हुआ । जो निश्चय ६६४ ई० में ह्विटबी की सभा (साइनोड) में आरम्भ हुआ तथा आयरलैण्ड पर पोप की स्वीकृति के साथ इंग्लैंड के हेनरी द्वितीय के ई० ११७१ के सशस्त्र आक्रमण में पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुँचा । यहीं कहानी समाप्त नहीं होती । वीभत्सता की ये आदतें अटलान्टिक के पार गयीं और उत्तरी अमरीका के इण्डियनों में विस्तार करने में इसका अभ्यास किया गया । बीभत्सता के ये ढंग स्काटलैंड के पहाड़ों के केल्टिक किनारों तथा आयरलैण्ड के दलदलों में ग्रेट ब्रिटेन ने सीखे थे ।

आधुनिक शतियों में सम्पूर्ण धरती पर पश्चिमी सभ्यता का विस्तार-वेग इतना तीव्र था तथा इसके आदि प्रतिद्वन्द्वियों में असमानता के स्रोत इतने अधिक थे कि यह आन्दोलन अबाधित रूप में तबतक चलता रहा जबतक यह न केवल अस्थिर अवसीमा तक ही नहीं पहुँचा, प्राकृतिक सीमा की अन्तिम छोर तक पहुँच गया । आदिम समाजों के पार्श्व में पश्चिमी लोगों का संसारव्यापी मूलोच्छेदन या बलपूर्वक शासन या शोषण नियम-सा हो गया है और धर्म-परिवर्तन केवल अपवाद । वास्तव में ऐसे आदिम समाजों की गणना हम एक हाथ की उँगलियों पर कर सकते हैं । जिसे आधुनिक पश्चिमी समाज ने अपने साथ लिया हो । स्काटी पहाड़ी लोग हैं जो प्राचीन बर्बरों के अवशेष आधुनिक पश्चिमी समाज और मध्ययुगीन ईसाई संसार के बीच पड़े हुए हैं, न्यूजीलैंड के माओरी हैं, एन्डियन सार्वभौम राज्य के चीली के आन्तरिक बर्बर प्रान्त के 'अराओकैनियन' हैं, जिनसे स्पेन वालों ने कुव्यवहार किया क्योंकि इनकी पराजय के बाद से इन लोगों का सम्बन्ध था ।

इतिहास में सबसे बड़ा प्रमाण वहं है जब जैकोबाइट (जेम्स द्वितीय तथा उसके पुत्र 'दि प्रिटेण्डर' के अनुयायी) विप्लव (१७४५) के बाद स्काटी पहाड़ी लोग इंग्लैंड में मिला लिये गये, जब इन उजले वर्बरों का अन्तिम लात चलाना निष्फल हो गया । डॉ० जान्सन या हौरेस बालपोल और उन लड़ाकू गिरोहों के बीच, जो राजकुमार चार्ली को डरबी ले गये, की सामाजिक खाईं पाटना उतना कठिन नहीं था, जितना न्यूजीलैंड के यूरोपीय विस्थापितों या चीली और माओरी

या आराओकैनियो के बीच। आज राजकुमार चार्ली के पौत्र और विग पहने, पाउडर लगाये लोलैंडों[1] तथा अंग्रेजों के जिन्होंने अन्त में विजय पायी, वंशज निश्चय रूप से समान सामाजिक स्तर के हैं और यह लड़ाई अभी दो सौ साल ही पहले हुई थी। यह संघर्ष ऐसा हुआ कि ऐसी कथाएं बन गयीं कि पहचानी नहीं जातीं। स्काटलैण्ड के निवासियों ने अपने को नहीं तो अंग्रेजों को प्रेरित किया कि स्काटलैण्ड का ऊनी चारखाना स्काटलैण्ड की राष्ट्रीय पोशाक है। उसी प्रकार जैसे इंडियन के सिर की पर लगी उनकी टोपी। और आज लोलैंड के मिठाई बनाने वाले 'एडिनबरा राक' को चारखाने से ढके डब्बे में बेचते हैं।

ऐसी बर्बर परिसीमाएँ जो हमारे आज के पश्चिमीकृत संसार में पायी जाती हैं, अब तक पूर्ण रूप से पश्चिमी समाज में आत्मसात् न हुए अपश्चिमी सभ्यताओं की देन हैं। इनमें भारत के उत्तर पश्चिम की सीमा विशेष महत्त्व की है, कमसे कम पश्चिम के स्थानीय राज्यों के नागरिकों के लिए जिन्होंने विघटोन्मुख हिन्दू सभ्यता को सार्वभौम राज्य बनाने का काम अपने ऊपर ले रखा है।

हिन्दुओं के संकटकाल में (सम्भवतः ११७५–१५७५) यह सीमा तुर्की और ईरानी लुटेरों द्वारा बार-बार तोड़ी गयी। एक समय इसकी सुरक्षा हिन्दू संसार के सार्वभौम राज्य को मुगल राज्य के रूप में स्थापित करके की गयी। जब मुगल राज्य समय के पूर्व ही १८ वीं शती के आरम्भ में समाप्त हुआ, तब पूर्वी ईरानी रुहेला और अफगानी बर्बर भीतर घुसे। ये विदेशी सार्वभौम राज्य के विरुद्ध मराठा नेताओं की सैन्यवादी हिन्दू प्रतिक्रिया के एकमात्र शव को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। जब अकबर का कार्य विदेशियों ने पुनः किया और हिन्दू सार्वभौम राज्य ब्रिटिश राज्य के रूप में पुनः स्थापित किया गया, तब उत्तर पश्चिम की सीमा की सुरक्षा सम्बन्धी वचनबद्धता सबसे अधिक महत्त्व की सिद्ध हुई। सीमा-सुरक्षा सम्बन्धी जिम्मेदारी ब्रिटिश राज्य के निर्माताओं को लेनी पड़ी थी। अनेक सीमा-नीतियाँ निर्धारित हुईं, पर उनमें से कोई भी पूर्ण रूप से सन्तोषजनक सिद्ध न हुई।

पहला विकल्प जिसके द्वारा ब्रिटिश राज्य के निर्माताओं ने प्रयत्न किया, सम्पूर्ण पूर्वी ईरानी सीमा को जीतना तथा उसे हिन्दू संसार में मिलाना था। यह कार्य ठीक उसी तरह था जैसे मुगल राज्य अपने पूर्ण विकास पर अपने राज्य में उजबक उत्तराधिकारी राज्यों के ओक्सस-जैक्सार्टस् के दोआबे तथा सफावी साम्राज्य के साथ पश्चिमी ईरान को मिलाने की चेष्टा की थी। यह साहसिक कार्य अलेक्जेन्डर बरनेस द्वारा १८३१ से लेकर और आगे तक चलाया गया था। इसके बाद सन् १८३८ में ब्रिटिश इंडियन सेना को अफगानिस्तान में भेजकर खतरनाक कदम उठाकर संघर्ष किया गया। किन्तु, उत्तर पश्चिमी सीमा समस्या का 'एकदलीय' शासन के रूप में समाधान इस महत्त्वाकांक्षी प्रयास का विनाशकारी अन्त हुआ। १७९९ और १८१८ के बीच सिन्ध के बेसिन के दक्षिण-पूर्व में सम्पूर्ण भारत की सफलतापूर्ण विजय के प्रथम आनन्द में ब्रिटिश राज के निर्माताओं ने अपनी शक्ति को अधिक आँका और अपने विरोधियों की शक्ति और प्रभाव को कम। इन विरोधियों की आक्रामकता ने उन उच्छृंखल बर्बर लोगों को उत्तेजित किया जिन्हें

---

[1] लोलैंड—हालैंड, बेलजियम।

वे अधीन बनाना चाहते थे। वास्तव में ई० १८४१–२ में आक्रमण उससे भी अधिक विनाश पर समाप्त हुआ, जितना १८९६ में अबीसिनिया के पहाड़ी प्रदेश में इटालियाई विनाश में हुआ था।

इस पहाड़ी प्रदेश पर स्थायी विजय प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा को इस प्रसिद्ध पराजय के बाद ब्रिटिश शासकों ने कभी प्रयोगात्मक रूप से जीवित नहीं किया। १८४९ ई० में पंजाब की विजय के बाद सीमा नीति की भिन्नताएँ युद्धनीतिक होने की अपेक्षा सामरिक कौशल की अधिक थीं। वस्तुतः यहाँ वैसी ही राजनीतिक विन्यास सम्बन्धी 'अवसीमा' हम देखते हैं, जैसी ईसाई युग की आरम्भिक शती में राइन और डैन्यूब से निश्चित रोमन साम्राज्य की अवसीमा थी। जब ब्रिटिश-इण्डियन अल्पसंख्यक हिन्दू आन्तरिक सर्वहारा के अनुशासन की ओर झुके और अपने बढ़ते हुए व्यर्थ के श्रम को उन्होंने समाप्त कर दिया, तब यह देखना मनोरंजक है कि इस मुक्ति में आन्तरिक सर्वहारा को उत्तर-पश्चिम की सीमा-समस्या सुलझाने में कहाँ तक समर्थ हो सकता है, जब अपने घर में वे अपने मालिक हो जायेंगे।

यदि अब हम यह पूछें कि इतिहास की भिन्न अवस्थाओं में पश्चिमी संसार ने जो दुनिया के विभिन्न भागों में बाहरी सर्वहारा को जन्म दिया है उन्हें कविता तथा धर्म के क्षेत्र में रचनात्मक कार्यों के लिए भी प्रेरित किया है? तो हमें शीघ्र ही केल्टिक सीमा में तथा स्कैण्डेनेविया में किये गये बर्बर पृष्ठ भाग के दलों के सुन्दर रचनात्मक कार्यों का स्मरण हो जाता है। ये बर्बर सभ्यताओं को जन्म देने के लिए भरसक प्रयत्न करते थे, किन्तु पश्चिम के ईसाई साम्राज्य की नवजात सभ्यता के साथ इनके संघर्ष में ये असफल हो गये। इस अध्ययन के दूसरे सन्दर्भों में इन संघर्षों पर पहले ही विचार किया जा चुका है। आधुनिक युग के विस्तृत पश्चिमी संसार से पैदा हुए बाहरी सर्वहारा पर हम अब विचार कर सकते हैं। इस विशाल क्षेत्र के सर्वेक्षण में हमें दोनों भू-खण्डों में बर्बरों की रचनात्मक शक्ति का एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगा। इन दोनों भू-खण्डों की हमें परीक्षा करनी पड़ेगी।

काव्य के क्षेत्र में हमें 'वीर' काव्य पर ध्यान देना होगा। ये काव्य ईसाई युग की १६ वीं तथा १७वीं शती में डैन्यूबी हैप्सबुर्ग राजतन्त्र की दक्षिण-पूर्वी सीमा से दूर बोसनिया के बर्बरों द्वारा रचे गये थे। यह उदाहरण मनोरंजक है क्योंकि पहली दृष्टि में यह उस नियम का अपवाद दिखाई देगा कि विघटोन्मुख सभ्यता का बाहरी सर्वहारा तब तक वीर काव्य के निर्माण की प्रेरणा देने योग्य नहीं होता, जब तक विचाराधीन सभ्यता सार्वभौम राज्य की स्थिति से नहीं गुजरता और अन्तःकाल नहीं आता जिसमें बर्बर जनरेला के लिए अवसर मिलता है। लन्दन और पेरिस की दृष्टि में डैन्यूबी हैप्सबुर्ग का राजतन्त्र पश्चिमी संसार की राजनीतिक विभक्त परिस्थिति अनेक स्थानीय राज्यों में से एक के अतिरिक्त और कुछ भले ही न रहा हो, न ही इनकी प्रजा तथा अपश्चिमी पड़ोसियों और विरोधियों की दृष्टि में इस राजतन्त्र में पश्चिमी सर्वव्यापी राज्य की सभी योग्यताएँ एवं विशेषताएँ जान पड़ती थीं जिनके विरोध में उन्होंने सम्पूर्ण पश्चिमी ईसाई समाज के लिए ढाल बनायी थी। पश्चिमी ईसाई समाज के सदस्यों को इसने शरण दी और उन्हें अपने विश्वव्यापी मिशन से सहायता भी की।

बोसनियाई यूरोप महाद्वीप के बर्बरों के पीछे के दस्ते थे, जिन्हें पश्चिमी ईसाई समाज तथा

परम्परावादी ईसाई समाज की दो आक्रामक सभ्यताओं की ज्वालाओं के बीच उत्पन्न हुए असामान्य दुखद अनुभव को असाधारण रूप से पहले सहना पड़ा था । परम्परावादी ईसाई सभ्यता का विकिरण बोसनियाई लोगों तक पहले पहुँचा । इन लोगों ने उसके परम्परावादी स्वरूप को अस्वीकार किया और उन्होंने इसकी स्थापना बोगोमिलवाद के सम्प्रदायवादी रूप में स्वत: की । इस अधार्मिकता ने दोनों ईसाई सभ्यताओं का ध्यान आकृष्ट किया । इन परिस्थितियों में, जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है, मुसलिम उसमानलियों के आगमन का स्वागत किया और बोगोमिल धर्म को त्याग कर ये तुर्क हो गये । इसके बाद उसमानिया सुरक्षा में युगोस्लाविया के परिवर्तित मुसलमान निवासियों ने उसमानिया-हैप्सबुर्ग सीमा पर वही कार्य किया जो हैप्सबुर्ग की ओर युगोस्लाविया के ईसाई शरणार्थियों द्वारा उस क्षेत्र में किया गया जो उसमानिया शासन में चला गया था । युगोस्लाविया के दो विरोधी वर्गों का आक्रमण में एक-सा ही कार्य था । एक ओर उसमानिया साम्राज्य था और दूसरी ओर हैप्सबुर्ग राज्यतन्त्र । उसी सीमा-युद्ध की उर्वर मिट्टी में वीर काव्य के दो स्वतन्त्र सम्प्रदाय पैदा हुए और स्पष्ट रूप में बिना एक-दूसरे पर प्रभाव डाले साथ ही पनपे । दोनों प्रकार के वीर काव्यों में 'सर्वो-क्रोट' भाषा का प्रयोग किया गया ।

धर्म के क्षेत्र में बाहरी सर्वहारा की सर्जनात्मकता के दृष्टान्त अनेक स्थानों से मिलते हैं, १९ वीं शती में रेड इण्डियनों के विरुद्ध यूनाइटेड स्टेट की सीमा पर के अनेक दृष्टान्त दिये जायेंगे ।

यह ध्यान देने की बात है कि उत्तरी अमरीका के इण्डियनों के यूरोपियन आक्रमण पर भी सर्जनात्मक धार्मिक प्रतिक्रिया रेड इण्डियनों में होती । यह देखते हुए कि अंग्रेज अधिवासियों के प्रथम आगमन से लेकर सीयो के युद्ध (१८९०) में जब इण्डियनों ने अन्तिम सैनिक विरोध किया और जब वह कुचल दिये गये अर्थात् दो सौ अस्सी साल तक वे लड़ते ही रहे । यह भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि इण्डियनों की प्रतिक्रिया अहिंसात्मक ढंग की थी । हम इण्डियनों के युद्धक दलों से ऐसी आशा करते थे कि ये या तो अपने इच्छानुसार वहुदेवतावादी धर्म इरोक्वाय ओलिम्पस या असमार्ड के रूप में निर्माण करेंगे या अपने आक्रामकों के काल्विनिस्टिक प्रोटेस्टैन्ट धर्म के विशिष्ट सैनिक तत्त्वों को स्वीकार करेंगे । परन्तु १७६२ ई० के डेलाबार के अज्ञात पैगम्बर से लेकर १८८५ ई० के करीब नेवाडा में आविर्भूत वोवोका तक ने एक-दूसरे ही प्रकार का धार्मिक उपदेश दिया । उन्होंने शान्ति का उपदेश दिया तथा अपने शिष्यों से उन तकनीकी भौतिक विकासों को त्याग देने के लिए कहा जिन्हें उन्होंने अपने श्वेत शत्रुओं[1] से बन्दूकों के युद्ध में आरम्भ में पाया था । उन्होंने घोषणा की कि यदि उनकी शिक्षाओं का अनुसरण किया जाता है, तो धरती के स्वर्ग में ही उन इण्डियनों को आनन्द का जीवन बिताने का सौभाग्य प्राप्त होगा । इस धरती के स्वर्ग में उनका जीवन अपने पूर्वजों की आत्माओं से सम्बन्धित होगा और यह रेड इण्डियन मसीहाई राज्य टोमहाको (उत्तरी अमेरिका के रेड इण्डियनों का एक अस्त्र) से, गोली से नहीं, जीता जा सकता । इस प्रकार की शिक्षाओं के ग्रहण करने का क्या परिणाम हुआ हम कह नहीं

[1] यह स्पष्ट रूप से भारत के स्वदेशी आन्दोलन के समान है ।—सम्पादक

सकते। जिन्हें इस प्रकार की शिक्षाएँ दी गयी थीं, उन बर्बर वीरों के लिए ये शिक्षाएँ अधिक कठिन तथा ऊँची सिद्ध हुईं। किन्तु, अन्धकार से पूर्ण तथा भयानक क्षितिज पर अहिंसा के प्रकाश की झिलमिलाहट में हम आदिम मानव के हृदय में ईसाई धर्म के सामाजिक जीवन का आकर्षक दृश्य देखते हैं।

वर्तमान समय में ऐसा जान पड़ता है कि कुछ बर्बर समाज नकशे पर शेष रह गये हैं। उनके जीवित रहने की एक मात्र सम्भावना उन अबोट्राइटों और लिथुआनियनों की नीतियों को अपनाने में है, जिन्होंने हमारे पश्चिमी विस्तार के इतिहास के मध्य अध्याय में, पहले से ही आक्रामक सभ्यता की संस्कृति को स्वेच्छा से स्वीकार कर लेने की शक्तिशाली दूरदर्शिता दिखलायी। यह आक्रामक सभ्यता उनके विरोध को रोकने में बड़ी शक्तिशाली थी। आज जो हमारे प्राचीन बर्बरों के संसार के अवशेष हैं उनमें बर्बरता के दो गढ़ घिरे हुए मौजूद हैं। उनमें से प्रत्येक में जोखिम सहने वाले बर्बरों के सैनिक सरदार शक्तिशाली प्रयत्न कर रहे हैं कि उस स्थिति को जो अभी बिलकुल बेकाबू नहीं हो गयी है, सांस्कृतिक आक्रमण से, जो सुरक्षा भी होगी बचा लें।

पूर्वी ईरान में यह सम्भव प्रतीत होता है कि भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा की समस्या का समाधान हो जाय। भारत अफगानिस्तान सीमा पर असभ्य बर्बरों के विरुद्ध किसी उग्र कार्य द्वारा नहीं, वरन् स्वेच्छा से अफगानिस्तान के पश्चिमीकरण द्वारा। क्योंकि यदि अफ़गानों का प्रयास सफल हो जाय तो इसका एक परिणाम यह होगा कि भारत की ओर के सैनिक दो आक्रमणों के बीच पड़ जायेंगे और इस प्रकार इनकी स्थिति अरक्षणीय हो जायेगी। अफगानिस्तान में पश्चिमीकरण का आन्दोलन सम्राट् अमानुल्लाह (१९१९–२९) द्वारा अधिक बौद्धिक उत्साह से आरम्भ हुआ। इसके परिणामस्वरूप बादशाह ने गद्दी से हाथ धोया। किन्तु अमानुल्लाह की व्यक्तिगत असफलता से अधिक महत्त्व इसका है कि इस अवरोध के कारण आन्दोलन नहीं रुका। १९१९ तक पश्चिमीकरण की प्रणाली इतनी दूर तक चली गयी कि बच्चा सक्का ऐसे लुटेरों के कार्य को वे सहन नहीं कर सकते थे। राजा नादिर तथा उसके उत्तराधिकारियों के शासन में पश्चिमीकरण की यह प्रणाली बराबर जारी रही।

किन्तु अवरुद्ध बर्बरता के किले को अधिक पश्चिमीकरण करने वाले नज्द और हजाज़ के राजा अब्दुल अज़ीज अल साउद हैं जो राजमर्मज्ञ और सैनिक हैं। इनका जन्म देश के बाहर हुआ था। सन् १९०१ से जब ये राजनीतिक वनवास में थे इन्होंने अपने को रब्बलखाली के पश्चिम से लेकर यमन के उत्तर के सेना के राज्य तक अरब का स्वामी बना लिया। बर्बरों के युद्ध के सरदार के रूप में इब्न साउद की तुलना बौद्धिक दृष्टि से विसिगोथ अतावुल्फ से हो सकती है। उन्होंने आधुनिक पश्चिमी वैज्ञानिक तकनीक की शक्ति का अनुभव किया और उसके उपयोगों के प्रति अपनी निर्णायक दृष्टि दिखायी। यह दृष्टि पाताल तोड़ कुआँ, मोटरगाड़ियाँ और वायुयानों के प्रयोग में दिखाई दी। ये सभी मध्य अरब के स्टेप में प्रभावशाली हुए। किन्तु, इन सबसे ऊपर उन्होंने दिखाया कि पश्चिमी जीवन का अनिवार्य आधार शान्ति और व्यवस्था है।

किसी प्रकार जब अन्तिम विरोधी पश्चिमीकृत संसार के नकशे से अलग हो जायगा, तब क्या हम अपने को बधाई देंगे कि बर्बरता अन्तिम रूप से समाप्त हो गयी। बाहरी सर्वहारा की

असभ्यता का पूर्ण विनाश केवल साधारण आनन्द दे सकता है, क्योंकि इस अध्ययन में हमें विश्वास हो गया है, (यदि इस अध्ययन से कुछ लाभ है) कि अनेक सभ्यताओं के विनाश का कारण कोई बाहरी शक्ति नहीं थी, बल्कि आत्महत्या की ही प्रक्रिया थी।

"जो हममें आन्तरिक त्रुटियाँ हैं हम उन्हीं से धोखा खाते हैं।"[१] पुराने ढंग के बर्बर उस अवान्तरभूमि से नष्ट हो गये हों जो बर्बर विरोधी सीमाओं के आगे पड़ती हैं और जहाँ तक भौतिक विजय हमने कर ली है। किन्तु यह विजय किसी काम की नहीं है यदि विनाश के समय ये हमारे बीच घुस आये हैं। क्या ऐसा नहीं है कि हम बर्बरों को इस प्रकार मोरचेबन्दी करते हुए पाते हैं? प्राचीन सभ्यताएँ बाहरी असभ्यों द्वारा नष्ट कर दी गयी थीं। 'हम स्वयं अपने बर्बर पैदा करते हैं।'[२] क्या हम अपनी ही पीढ़ी में नहीं देखते कि अनेक नये बर्बरों के सैनिक दल एक देश के बाद दूसरे देश में हमारे सामने आये और वे भी सीमाओं पर नहीं, हमारे ईसाई जगत् के बीच। ये फासिस्टी तथा नाज़ी लड़ाकू लोग बर्बरों के अतिरिक्त और क्या थे? क्या उन्हें यह सिखाया नहीं गया कि वे उस समाज के सौतेले पुत्र हैं, जिसके हृदय से वे पैदा हुए हैं? क्या उन्हें यह नहीं सिखाया गया कि वे पीड़ित दल के हैं, जिन्हें बदला लेना है तथा वे नैतिक रूप से संसार में शक्ति के प्रयोग द्वारा अपने लिए सौर मण्डल में स्थान पाने के अधिकारी हैं? क्या यही शिक्षा बाहरी सर्वहारा के सैनिक सरदार 'जेन्सेरिक तथा अटिला' अपने बहादुरों को नहीं देते रहे जिन्हें संसार की लूट-पाट में वे ले जाते थे। जो संसार अपनी ही गलती से अपनी रक्षा की शक्ति खो बैठा था। काली चमड़ी नहीं वरन् काली कमीज (फासिस्टी दल के लोगों की पोशाक) इटली-अबिसीनिया युद्ध में (१९३५-६) निश्चित रूप से बर्बरता का चिह्न था, और काली कमीज वाले अधिक भयानक और अनिष्टकारक थे। ये काली कमीज वाले क्रूर थे, क्योंकि जानबूझकर उत्तराधिकार में मिले सांस्कृतिक प्रकाश के विरुद्ध पाप कर रहे थे। अपने पापों के कारण वे भयावह हो गये थे। उनके पास उत्तराधिकार में मिली वह तकनीक थी जिसे वे परमात्मा की सेवा से हटाकर शैतान की सेवा में लगाने के लिए स्वतन्त्र थे। किन्तु, उपसंहार के लिए हम विषय को जड़ तक नहीं ले गये हैं, क्योंकि हमने अपने से अभी यह नहीं पूछा है कि किस उद्‌गम से इटली की नव-बर्बरता पैदा हुई थी।

एक बार मुसोलिनी ने यह घोषित किया था कि मैं इटली के सम्बन्ध में वैसा ही सोचता हूँ जैसा ब्रिटिश राज्य के महान् निर्माताओं ने इंग्लैंड के लिए सोचा था या जैसा महान् फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों ने फ्रांस के लिए सोचा था।[३] इसके पहले कि हम इटली के पूर्वजों के इस व्यंग्य चित्र को संक्षेप में तिरस्कृत कर दें हमें विचारना चाहिए कि यह व्यंग्य चित्र उज्ज्वल चित्र हो जाये। सभ्यता के मार्ग से विचलित इटली के नये बर्बरों की घृणास्पद आकृति में इन कुछ अधिक सम्मानित अंग्रेजों की आकृति पहचानने और स्वीकार करने के लिए हम बाध्य होते हैं। ये सम्मानित अंग्रेज हैं, क्लाइव, ड्रेक तथा हाकिन्स।

---

[१] जी० मेरेडिथ : लव्ज ग्रेव।

[२] डब्ल्यू० आर० इंगे : दि आइडिया आव प्रोग्रेस, पृ० १३।

[३] मुसोलिनी से हुए फ्रांसीसी पत्रकार ए० डि० करलिस के साक्षात्कार से १ अगस्त १९३५ के 'द टाइम्स' में उद्धृत।

इस अत्यावश्यक प्रश्न पर क्या और अधिक विचार नहीं करना चाहिए ? क्या हम अपने को स्मरण नहीं दिलाते कि इस अध्याय में प्रस्तुत प्रमाणों के आधार पर शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा बाहरी सर्वहारा के बीच के युद्धों में मूल रूप से आक्रामक शक्तिशाली अल्पसंख्यक ही पाया जाता है। हमें स्मरण रखना पड़ेगा कि सभ्यता तथा बर्बरता के संघर्ष का इतिहास करीब-करीब एकमात्र सभ्य लोगों द्वारा ही लिखा गया है। बाहरी सर्वहारा द्वारा वर्ग का यह क्लासिकी चित्र जो अपनी बर्बरतापूर्ण मारकाट को निर्दोष सभ्यता के प्रदेश में ले जाने का बना है, वह सत्य की वस्तुपरक अभिव्यक्ति नहीं है। किन्तु 'सभ्य' दल के उस आक्रोश की अभिव्यक्ति है कि उसे आक्रमण का निशाना बनाया जाता है, जिस आक्रमण का कारण वह स्वयं है।

(६) विदेशी तथा देशी प्रेरणाएँ

क्षितिज का विस्तार

विवेचन करने के बाद, इस अध्ययन के आरम्भ में ही अंग्रेजी इतिहास से उदाहरण दिया गया था कि राष्ट्रीय राज्य का इतिहास केवल अपने में बोधगम्य नहीं है। हमारी ऐसी धारणा है कि सम्बद्ध समुदायों के अध्ययन के लिए जिन्हें हम समाज कहते हैं, इन समाजों का अध्ययन आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, हमारी धारणा थी कि सभ्यता की जीवन-प्रणाली स्वतः निश्चित होती है किसी विदेशी सामाजिक शक्ति की प्रक्रिया के बिना ही स्वतः इसका अध्ययन किया जा सकता है तथा इसे समझा जा सकता है। सभ्यताओं के विकास और उनकी उत्पत्ति के अध्ययन से ही हमारी यह धारणा पुष्ट हुई है। सभ्यताओं के पतन और विघटन के हमारे अध्ययन का खण्डन नहीं होता। यद्यपि पतनोन्मुख समाज टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाता है। प्रत्येक टुकड़े पुरानी लकड़ी के ही टुकड़े होते हैं। बाहरी सर्वहारा भी पतनोन्मुख समाज के क्षेत्र के ही तत्त्वों से निकलते हैं। साथ ही साथ समाजों के विघटित टुकड़ों के सर्वेक्षण में—और यह विदेशी सर्वहारा की ही बात नहीं है, आन्तरिक सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसंख्या की भी बात है—हमें देशी तथा विदेशी शक्तियों पर भी विचार करना पड़ा है।

वस्तुतः यह स्पष्ट हो चुका है कि अध्ययन की सरलता के लिए समाज की यह परिभाषा, कि वह अध्ययन का क्षेत्र है, बिना किसी प्रतिबन्ध के तभी तक स्वीकार की जा सकती है जब तक समाज विकासोन्मुख रहता है। इस परिभाषा को हम प्रतिबन्ध के साथ तब स्वीकार कर सकते हैं, जब हम विघटन की अवस्था में आते हैं। यह सत्य है कि सभ्यताओं का पतन आन्तरिक आत्मविश्वास के नष्ट होने से होता है, बाहरी आघातों से नहीं। यह सत्य नहीं है कि पतित समाज के विघटित होकर विनाश की अवस्था का बिना बाहरी शक्तियों तथा क्रियाओं के जाने हम अध्ययन कर सकते हैं। सभ्यता के विघटन के समय के इतिहास के अध्ययन के लिए 'बोधगम्य क्षेत्र' अधिक विस्तृत है। केवल एक समाज का विस्तार अध्ययन के लिए उतना नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि विघटन की प्रणाली में सामाजिक जीवन का झुकाव केवल उन तीन अंगों को अलग करने मात्र से नहीं होता जिनका अध्ययन हम कर चुके हैं, किन्तु विघटन की प्रणाली में सामाजिक जीवन को विदेशी तत्त्वों के योग से नवीन संगठनों के निर्माण की स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह धरती ही हमारे पैर के नीचे से खिसक गयी है, जिस पर हम अध्ययन के आरम्भ में दृढ़ होकर खड़े थे। आरम्भ में हमने

सभ्यताओं को अपने अध्ययन के लिए चुना, क्योंकि वे अध्ययन के लिए बोधगम्य क्षेत्र जान पड़ीं जिनका अध्ययन अलग-अलग हम कर सकते थे। अब हम अपने को इस दृष्टि से दूसरी दृष्टि की ओर जाते हुए पाते हैं जिस पर हम उस समय विचार करेंगे जब हम सभ्यताओं के एक-दूसरे के सम्पर्क की परीक्षा करेंगे।

इस बीच विदेशी और देशी प्रेरणाओं के प्रभावों की तुलना करने और उनके भेद दिखाने में सुविधा होगी। ये प्रेरणाएँ उन अनेक इकाइयों के कार्यों में दिखाई देती हैं, जिनमें सामाजिक जीवन का विघटन होता है। हम देखेंगे कि शक्तिशाली अल्पसंख्या एवं बाहरी सर्वहारा के कार्यों में विदेशी प्रेरणा मतभेद और विनाश उत्पन्न करने में समर्थ होती है जब कि आन्तरिक सर्वहारा के कार्यों में समन्वय और सर्जन का प्रभाव डालती है।

शक्तिशाली अल्पसंख्या और बाहरी सर्वहारा

हम देख चुके हैं कि सार्वभौम राज्य में शक्तिशाली अल्पसंख्या होती है जो देश के समाज के लिए मूल्यवान् सेवा करती है। वे देशी साम्राज्य निर्माता बाहरी सीमा के मनुष्य हो सकते हैं जहाँ राजनीतिक एकता स्थापित कर वे उन्हें शान्ति स्थापित करते हैं। किन्तु, इससे यह नहीं मालूम होता कि उनकी संस्कृति विदेशी रंग है। हमारे पास ऐसे उदाहरण हैं जिनमें शक्तिशाली अल्पसंख्या की नैतिक पराजय इतनी तीव्र है कि इसके पहले विघटनोन्मुख समाज सार्वभौम राज्य के लिए परिपक्व हो, शक्तिशाली अल्पसंख्या का कुछ भी शेष नहीं रह जाता जिसमें साम्राज्य निर्माता के गुण हों। ऐसी स्थिति में सार्वभौम राज्य प्रदान करने का कार्य साधारणतः अपूर्ण नहीं रहने दिया जाता, कुछ विदेशी साम्राज्य निर्माता आ जाते हैं और वे आक्रान्त समाज के लिए वह कार्य करते रहे जिसे वहाँ के लोगों के हाथों होना चाहिए था।

विदेशी तथा देशी सभी सार्वभौम राज्य समान रूप से धन्यवाद और उदासीनता से स्वीकार किये जाते हैं यद्यपि उत्साह के साथ नहीं। भौतिक दृष्टि से इससे एक प्रकार संकट-काल की अवस्था से सुधार ही होता है। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, 'नया राजा' सामने आता है। 'जो जोसेफ को नहीं जानता' सीधी भाषा में संकट-काल और उसके आतंक की स्मृति लोग भूल जाते हैं। वर्तमान में जब सारी सामाजिक धरती पर सार्वभौम राज्य हो जाता है, लोग ऐतिहासिक सन्दर्भ भूल जाते हैं। इस अवस्था पर देशी तथा विदेशी सार्वभौम राज्यों के भाग्य अलग-अलग हो जाते हैं। देशी सार्वभौम राज्य, चाहे जो भी उसके गुण हों अपनी पूजा द्वारा स्वीकार किये जाने योग्य बनने लगता है और सामाजिक जीवन के ढाँचे में अधिक-से-अधिक उपयुक्त समझा जाता है। दूसरी ओर विदेशी सार्वभौम राज्य बहुत अधिक अप्रिय हो जाता है। उसकी प्रजा उसके विदेशी लक्षणों पर बहुत अधिक नाराज हो जाती है और अपनी आँखें दृढ़तापूर्वक उसकी उस लाभदायक सेवा की ओर से मूँद लेती है जिसे वे राज्यों के लिए कर चुके होते हैं या करते रहते हैं।

इस विरोधी उदाहरण में एक रोमन साम्राज्य है जिसने हेलेनी संसार को सार्वभौम राज्य दिया तथा ब्रिटिश राज्य जिसने हिन्दू सभ्यता को विदेशी सार्वभौम राज्य दिया। अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं जिनसे मालूम होता है रोमन साम्राज्य की बाद की प्रजा की साम्राज्य के प्रति कितनी भक्ति तथा प्रेम था। उस समय के बाद भी जब यह अपना कार्य समुचित दक्षता से

समाप्त कर देती है जब यह प्रत्यक्षतः नष्ट हो जाती है । ४०० ई० में सिकन्दरिया के क्लाडियन द्वारा लैटिन की षट्पदी में रचित 'डि कोन्सुलेट स्टी स्टीलिकोनिस' नामक कविता के इस अंश में कदाचित् रोमन साम्राज्य के लिए अत्यन्त प्रभावोत्पादक सम्मान दिखाया गया है—

वह-दूसरे विजेताओं से अधिक गर्वीली थी
अपने बन्दियों को आलिंगन करती थी
माँ की भाँति, प्रियतमा की भाँति नहीं, मित्रों को दास बनाती
अपने बाहुपाश में उसने सारे राष्ट्रों को भर लिया
कौन आज विश्व भर के राज्यों पर शासन करता है
और उसका (रोम का) ऋणी नहीं है ।[1]

यह सिद्ध करना सरल होगा कि ब्रिटिश राज अनेक दृष्टियों से बहुत ही उदार तथा रोमन साम्राज्य की अपेक्षा अधिक लाभप्रद था, किन्तु हिन्दुस्तान के किसी क्लाडियन रूपी कवि ने उसकी प्रशंसा में रचना नहीं की ।

यदि हम दूसरे विदेशी सार्वभौम राज्यों के इतिहास पर ध्यान दें तो हम उनकी प्रजा में विपरीत भावनाओं को वैसा ही उठता हुआ ज्वार देखेंगे जैसा हमने ब्रिटिश भारत में देखा है । बैबिलोनी समाज पर साइरस द्वारा आरोपित विदेशी सीरियाई सार्वभौम राज्य घृणा का ऐसा पात्र हुआ कि अस्तित्व में आने के बाद वह दो ही शती पूरी कर सका कि ई० पू० ३३१ में बैबिलोनी पुरोहित वैसे ही विदेशी विजेता मकदुनिया के सिकन्दर के हार्दिक स्वागत के लिए तैयार हो गये जैसा कि इस युग में भारत के कुछ उग्र राष्ट्रवादी किसी जापानी क्लाइव के स्वागत की योजना बनाते । ईसा की १४वीं शती के प्रथम चतुर्थांश में परम्परावादी ईसाई संसार में जिस विदेशी उसमानिया राज्य का मारमोरा सागर के एशियाई किनारे के उसमानिया राष्ट्रमण्डल के यूनानी समर्थकों ने स्वागत किया वही १८२१ ई० में राष्ट्रवादी यूनानियों की घृणा का पात्र बन गया । पाँच शतियों ने यूनानियों में भावना का परिवर्तन कर दिया । इसके ठीक विपरीत भावना का परिवर्तन गआल में वरसिनगेटोरिक्स के रोमन-आतंक और सिडोनिअस अपोलिनेरिस के रोमन प्रेम में हुआ ।

विदेशी संस्कृति के साम्राज्य निर्माताओं द्वारा उत्पन्न घृणा का दूसरा प्रसिद्ध उदाहरण उन मंगोल विजेताओं के प्रति चीनियों की घोर घृणा का है, जिन्होंने सुदूर पूर्वी संसार में बहुत आवश्यक सार्वभौम राज्य बनाया । यह घृणा उस सहनशीलता का विचित्र विरोध जान पड़ती है जो ढाई शतियों के मांचू शासन के बाद उसी समाज ने स्वीकार किया था । इसका कारण यह है कि मांचू लोग सुदूरपूर्वी संसार के जंगली थे । इनमें किसी विदेशी संस्कृति का स्पर्श नहीं था । जब कि मंगोलों की बर्बरता सीरियाई संस्कृति के मिलने से, जो नेस्टोरी ईसाई अग्रगामियों के लाने से कम हो गयी थी और कुछ उस उदारता के कारण, जिससे उन्होंने योग्य तथा अनुभवी लोगों की सेवाओं को ग्रहण करके प्राप्त किया था । चीन ने मंगोली शासन की अप्रियता का

---

[1] आर० ए० नाक्स का अनुवाद—सी० आर० एल फ्लेचर द्वारा—द मेकिंग आफ वेस्टर्न यूरोप, पृ० ३ । हिन्दी अनुवाद ।—अनुवादक

वास्तविक विवेचन चीनी प्रजा और परम्परावादी ईसाई सैनिकों तथा मंगोल खाकान के मुसलमान शासकों के बीच विस्फोटक सम्पर्क सम्बन्धी मार्कोपोलो के विवरण से स्पष्ट है।

यह कदाचित् सुमेरी संस्कृति का ही मिश्रण है जिसने मिस्री प्रजा के लिए हाइक्सो को असह्य बनाया जब कि लिबिया के बर्बरों का मिस्र में बाद के अनधिकारी प्रवेश बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया गया। वास्तव में हम सामान्य सामाजिक नियम बनाने का साहस इसलिए कर सकते हैं कि वे बर्बर आक्रामक जो बिना किसी विदेशी प्रभाव के आते हैं अपना भाग्य निर्माण करने में समर्थ होते हैं और जो जनरेला के पहले विदेशी या अधर्मी प्रभाव लिये होते हैं, उन्हें अपने को किसी-न-किसी प्रकार शुद्ध रखना पड़ता है नहीं तो या तो वे निष्कासित कर दिये जाते हैं या निर्मूल कर दिये जाते हैं।

अमिश्रित बर्बरों को पहले लें। आर्य, हिताइत और अरकियन में से प्रत्येक ने सभ्यता के द्वार पर रुकते हुए अपने लिए बर्बर देवस्थान का निजी रूप से आविष्कार किया और आक्रमण के बाद भी इस बर्बर उपासना पर डटे रहे। उनमें से प्रत्येक सफल हुए अज्ञान पर भी और नयी सभ्यता संस्थापित की जैसे भारतीय, हिताइत और हेलेनी और फ्रैंम, अंग्रेज, स्कैंडिनेवियाई, पोलैण्डवासी और मगयार लोग जो स्थानीय बहुदेवतावाद से पश्चिमी कैथोलिक धर्म में परिवर्तित हुए तथा पश्चिमी ईसाई साम्राज्य के निर्माण के सम्पूर्ण और पश्चिमी ईसाई समाज के मुख्य निर्माता हुए। इसके विपरीत हाइकसा जो 'सेट' के उपासक थे वे मिस्री संसार से तथा मंगोल लोग चीन से उखाड़ फेंके गये।

अरब के आदिम मुसलमान हमारे नियम का अपवाद हैं। यहाँ हेलेनी समाज के बाहरी सर्वहारा का एक बर्बर दल था जिसे उस जनरेला में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई जिसके साथ ही उस समाज का विघटन हो गया यद्यपि वे सीरियाई धर्म के विद्रूप को ग्रहण किये हुए थे और उस प्रजा के मोनोफाइसाइट ईसाई धर्म को स्वीकार नहीं किया, जिनका देश उन्होंने रोमन साम्राज्य से छीना था। जब रोमन साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशों के आक्रमण के साथ सारा ससानियाई साम्राज्य पराजित हो गया, रोमन साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों ने, जिन्हें अरबों ने सीरियाई धरती पर स्थापित किया था, अपने को सीरियाई सार्वभौम राज्य में परिवर्तित कर दिया, जो असमय ही एक हजार साल पहले उस समय नष्ट हो गया था, जब सिकन्दर ने अकेमिनीडी को पराजित किया था। और अरबी मुसलिमों के सामने इस्लाम के लिए नया क्षितिज सामने आया।

ऐसा जान पड़ता है कि इस्लाम का इतिहास असाधारण उदाहरण है जिससे हमारी खोज का सामान्य परिणाम अमान्य नहीं ठहरता। सामान्य रूप में यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि बाहरी सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसंख्यक के लिए विदेशी प्रेरणा बाधक है, क्योंकि उन दोनों टुकड़ों के व्यवहार में यह कुंठा तथा संघर्ष उत्पन्न करता है, जिनमें विघटनोन्मुख समाज बँट जाता है।

आन्तरिक सर्वहारा

शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा बाहरी सर्वहारा के सम्बन्ध में निकाले गये निष्कर्षों के विपरीत हम देखते हैं कि आन्तरिक सर्वहारा के लिए विदेशी प्रेरणा अभिशाप नहीं है, वरन् वरदान है। जिन लोगों को यह प्राप्त होती है वे अपने विजेताओं को महान् शक्ति द्वारा वश

में कर लेते हैं तथा और उस उद्देश्य को प्राप्त करते हैं, जिसके लिए वे पैदा हुए हैं । इस वक्तव्य की जाँच उन उच्चतर धर्मों तथा सार्वभौम धर्मतन्त्रों की परीक्षा से की जा सकती है जो आन्तरिक सर्वहारा के विशेष कार्य रहे हैं । इस सर्वेक्षण से हम जानते हैं कि यह शक्ति उनकी आत्मा में उपस्थित विदेशी शक्ति और उसके अनुपात की चिनगारी पर निर्भर है ।

उदाहरणार्थ, ओसाइरिस की पूजा मिस्री सर्वहारा का 'उच्चतर धर्म' रहा है । इसके पहले का पता लगाया जा सकता है कि यह तम्मूज की सुमेरी पूजा की विदेशी उत्पत्ति है । हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के उच्चतर धर्मों के विभिन्न रूपों का पता हम पिछले अनेक विदेशी मूलों में निश्चित रूप से पा सकते हैं । आइसिस की पूजा में मिस्री, सिबेले की पूजा में हिताइत, ईसाइयत तथा मित्रवाद में सीरियाई और महायान में भारतीय प्रभाव है । इन 'उच्चतर धर्मों' में से प्रथम चार मिस्री, हिताइत तथा सीरियाई लोगों द्वारा संस्थापित किये गये थे । जो सिकन्दर की विजयों से हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा में बलात् सम्मिलित किये गये थे । पाँचवाँ 'उच्चतर धर्म' भारतीय जनता की उत्पत्ति थी । इसे भी ईसा पूर्व दूसरी शती में उपर्युक्त पद्धति से इयुथि डेमिक बैक्ट्रिया के यूनानी राजकुमारों की भारतीय संसार में विजय द्वारा बलात् सम्मिलित किया गया था । यद्यपि गम्भीरतापूर्वक ये आन्तरिक आध्यात्मिक तत्त्व की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं तो भी उनमें से पाँचों कम-से-कम ऊपरी दृष्टि में मूलरूप से विदेशी हैं ।

कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें समाज पर विजय प्राप्त करने का 'उच्चतर धर्म' का प्रयत्न असफल रहा है । इन दृष्टान्तों से हमारे निष्कर्ष विफल नहीं हो सकते । उदाहरणार्थ उसमानिया शासन में इस्लाम के शिया सम्प्रदाय को परम्परावादी ईसाई संसार में सार्वभौम धर्म के रूप में निर्मित करने का निष्फल प्रयत्न किया गया । चीन में ऐसा ही निष्फल प्रयत्न किंग राज्यवंश के अन्तिम और मांचू राज्यवंश की प्रथम शती में कैथोलिक ईसाई धर्म को सार्वभौम धर्म बनाने में तथा जापान में संकट-काल से टोकुगावा शोजुनेट के संक्रमण के समय तक किया गया । उसमानिया साम्राज्य के शिया तथा जापान के कैथोलिक धर्मावलम्बी अपनी सम्भावी आध्यात्मिक विजयों से धोखा खा गये और अपने नकली राजनीतिक उद्देश्य के लिए शोषित किये गये । सुदूर पूर्वी दर्शन और संस्कृति की परम्परागत भाषा में विदेशी कैथोलिक धर्म के व्यवहारों के रूपान्तर के कार्य को चलाते रहने के लिए जेजुइट मिशनरी को पोपतन्त्र की अनुमति न देना ही चीन में कैथोलिकवाद की असफलता का कारण था ।

हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि धर्म परिवर्तित लोगों को जीतने में विदेशी 'झलक' उच्चतर धर्म के लिए सहायक हैं बाधक नहीं । कारण खोजने के लिए दूर नहीं जाना होगा । उस पतनोन्मुख समाज से जिससे वह अलग हो रहा है, आन्तरिक सर्वहारा अपनी नयी अभिव्यक्ति खोजता है । और इसी तरह विदेशी चिनगारी प्राप्त होती है । उसकी नवीनता ही आकृष्ट करती है । किन्तु इसके आकर्षक हो सकने के पहले ही नये सत्य को समझना पड़ता है और जब तक अभिव्यक्ति का यह आवश्यक कार्य नहीं हो जाता, तब तक नवीन सत्य लोगों को आकृष्ट नहीं कर सकता । यदि सन्त पाल से लेकर बाद के धर्मतन्त्र पादरी स्वयं पहली चार या पाँच शतियों तक दृढ़ न होते तो रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म की विजय नहीं हो सकती थी । ईसाई सिद्धान्त को हेलेनी दर्शन में रूपान्तरित करने, रोमन असैनिक सेवाओं के नमूने पर ईसाई धार्मिक शासन का निर्माण करने, ईसाई संस्कार-पद्धति को यूनानियों एवं रोमवासियों के गुप्त धार्मिक कृत्यों

के अनुसार ढालने तथा बहुदेवतावादी धर्म को ईसाई त्योहारों में परिवर्तित और ईसाई सन्तों के सम्प्रदायों द्वारा बहुदेवतावादी नायकों के सम्प्रदायों में स्थानान्तरित करने में उन ईसाई पादरियों ने दृढ़ता दिखायी। यह ऐसा कार्य था जो चीन के जेजुइट मिशनरी के पोप शासन के निर्देश द्वारा जड़ से नष्ट कर दिया गया। यदि सन्त पाल के विरोधी यहूदी ईसाई सम्मेलनों और संघर्षों में विजयी होते—जैसा ईसा के शिष्यों के सिद्धान्तों तथा सन्त पाल के आरम्भिक धर्मपत्रों में वर्णित है—तो अहिंसा के धरातल पर ईसाई मिशनरियों की प्रथम चढ़ाई के वाद हेलेनी संसार का धार्मिक परिवर्तन विनाशात्मक ढंग से रोका जा सकता था।

हमारे 'उच्चतर धर्मों' में यहूदीवाद, पारसी धर्म तथा इस्लाम स्थानीय प्रेरणा है। इन तीनों धर्मों का कार्यक्षेत्र सीरियाई संसार में था और इन्होंने प्रेरणाएँ भी उसी क्षेत्र से ग्रहण कीं। हिन्दू धर्म भी स्पष्ट रूप से प्रेरणा तथा कार्यक्षेत्र से भारतीय था। हिन्दू धर्म तथा इस्लाम दोनों हमारे नियम के अपवाद रूप में अवश्य समझ जाने चाहिए, किन्तु यहूदी तथा पारसी धर्म अन्ततः हमारे नियम के उदाहरण हैं। ई० पू० आठवीं से लेकर छठी शती के बीच यहूदी एवं पारसी धर्म से उत्पन्न हुई सीरियाई जनता के रूप में वे विच्छृंखल लोग थे जिनकी बैबिलोनी समाज के आन्तरिक सर्वहारा में बैबिलोनी प्रभावशाली अल्पसंख्यकों की असीरी सेना द्वारा बलात् भरती की गयी। यह वह बैबिलोनी आक्रमण था जिसने यहूदी तथा पारसी धार्मिक प्रतिक्रियाओं का आह्वान उस सीरियाई आत्मा से किया था जिसकी कठोर परीक्षा अपेक्षित थी। इतना देखने पर हमें यहूदीवाद तथा पारसी धर्म का उन धर्मों के रूप में स्पष्ट वर्गीकरण करना पड़ता है, जिनका आरम्भ बैबिलोनी समाज के आन्तरिक सर्वहारा में सीरियाई रंगरूटों की अनिवार्य भरती द्वारा किया गया था। यहूदीवाद 'बैबिलोनिया के जल से' उत्पन्न हुआ जैसे ईसाई धर्म ने हेलेनी संसार की पाल की सभाओं में अपना रूप ग्रहण किया था।

यदि बैबिलोनी सभ्यता का विघटन वैसा ही हुआ जैसा हेलेनी सभ्यता का हुआ था और यदि ये सभ्यताएं उन्हीं अवस्थाओं से गुजरी हैं तो यहूदी तथा पारसी धर्म का जन्म तथा विकास ऐतिहासिक दृष्टि से वैसा ही है जैसी बैबिलोनिया की घटनाओं की कहानी है तथ्यतः वैसी ही हेलेनी इतिहास की घटनाएँ हैं। ऐसा ही ईसाई धर्म तथा मिथ्रवाद के जन्म तथा विकास में हुआ। बैबिलोनी इतिहास की समाप्ति समय से पूर्व हो गयी। इस तथ्य से हमारी दृष्टि बिलकुल बदल जाती है। बैबिलोनी सार्वभौम राज्य को नष्ट करने का काल्डियन प्रयास विफल हो गया और अपने आन्तरिक सर्वहारा में भरती सीरियाई रंगरूट केवल परम्परा तोड़ देने में ही समर्थ नहीं हुए, वरन् उन्होंने बैबिलोनी विजेताओं को शारीरिक के साथ-ही-साथ आत्मिक रूप से भी बन्दी बनाकर नकशा ही बदल दिया। ईरानी लोग सीरियाई धर्म में परिवर्तित हुए, बैबिलोनी संस्कृति में नहीं। साइरस द्वारा निर्मित अकैमेनी साम्राज्य ने सीरियाई सार्वभौम राज्य की भूमिका अदा करने लगा। यह इस दृष्टि से हुआ कि यहूदी तथा पारसी धर्मों ने अपना वर्तमान आविर्भाव देशी प्रेरणाओं के साथ सीरियाई धर्मों के रूप में किया। अब हम देख सकते हैं कि ये धर्म अपने मूल रूप में बैबिलोनी आन्तरिक सर्वहारा के धर्म थे जिनमें सीरियाई प्रेरणा विदेशी थी।

यदि 'उच्चतर धर्म' में विदेशी प्रभाव हो तो स्पष्ट रूप से उस धर्म की प्रकृति को दो सभ्यताओं के सम्पर्कों पर ध्यान दिये बिना कभी भी नहीं समझा जा सकता। हम देखते हैं कि इस नियम के दो मुख्य अपवाद हैं। इन दो सभ्यताओं में से एक वह है जिसमें आन्तरिक सर्वहारा द्वारा नया

धर्म पैदा होता है तथा दूसरा वह है जिससे विदेशी प्रेरणा या प्रेरणाएँ ली जाती हैं। इस तथ्य के विचार के लिए नयी बौद्धिक प्रवृत्ति की आवश्यकता है क्योंकि हमें वह आधार ही त्याग देनें की आवश्यकता है जिंस पर अब तक हमारा अध्ययन स्थापित था। जहाँ तक हमने सभ्यता शब्द की व्याख्या की है हम स्वीकार कर चुके हैं कि कोई अकेली सभ्यतापूर्ण सामाजिक इकाई के रूप में अध्ययन का व्यावहारिक क्षेत्र प्रस्तुत करने में सक्षम होगी। ऐसी कोई भी सभ्यता विदेश की सीमाओं से बाहर किसी भी सामाजिक तत्त्व के रूप में किसी विशेष समाज से पृथक् होने पर भी अध्ययन की जा सकती है। किन्तु हम स्वयं वैसे ही जाल में उलझे हुए पाते हैं जैसा इस पुस्तक के आरम्भिक पृष्ठों में उलझे थे कि पृथक् राष्ट्रीय इतिहास बोधगम्य होता है। इसके पश्चात् हमें उन सीमाओं को पार करना पड़ेगा जिनमें हम अब तक कार्य करने में समर्थ थे।

१९. सामाजिक जीवन में आत्मा का भेद

(१) आचरण, भावना और जीवन का विकल्प

जिस सामाजिक निकायों में भेद की अब तक हम परीक्षा कर रहे थे वह सामूहिक अनुभूति है, इसीलिए वह ऊपरी है। इसका महत्त्व इसलिए है कि यह आन्तरिक तथा आध्यात्मिक भेद का बाहरी चिह्न है। मानव की आत्माओं में भेद की वृत्ति अपने अन्दर किसी उस भेद को छिपाये हुए पायी जाती है जो समाज के धरातल पर स्वतः स्पष्ट होता रहता है। समाज ही मानव का तत्सम्बन्धी क्रिया-क्षेत्र का सामान्य स्थल है और उसके उन विविध रूपों पर हम अब ध्यान देंगे, जिनमें आन्तरिक भेदवृत्ति पैदा होती है।

विघटनोन्मुख समाज के सदस्यों की आत्माओं में भेद स्वतः अनेक रूपों में दिखाई देता है, क्योंकि प्रत्येक में यह जीवन, भावना और आचरण की भिन्नताओं के साथ उत्पन्न होता है, जिसे हम मानव की क्रियाशीलता के लक्षण के रूप में पा चुके हैं, जो अपनी भूमिका सभ्यताओं की उत्पत्ति एवं विकास में अदा करता है। विघटन की अवस्था में इनमें से प्रत्येक की क्रिया पारस्परिक विरोधात्मक तथा विभिन्नतापूर्ण रूपों में अलग हो जाती है। इसमें चुनौती की प्रतिक्रिया दो विकल्पों का रूप धारण करती है। उनमें एक सक्रिय है और दूसरी निष्क्रिय, किन्तु इनमें से कोई भी सर्जनात्मक नहीं है। उस आत्मा के लिए इतनी ही स्वतन्त्रता है कि निष्क्रिय एवं सक्रिय विकल्पों के बीच केवल एक को चुन ले। जो सामाजिक विघटन के दुखान्त नाटक में अपनी सर्जनात्मक क्रिया के लिए अवसर (यद्यपि क्षमता को नहीं) खो चुकी है। विघटन की प्रणाली जैसे-जैसे कार्य करती रहती है यह विकल्प अपनी सीमा में अधिक दृढ़, अपने रास्ते से विचलित होने में अधिक तीव्र और उसके परिणामों में महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह कहना पड़ता है कि आत्मा में भेद का आध्यात्मिक अनुभव गत्यात्मक आन्दोलन है, स्थैतिक नहीं।

व्यक्तिगत आचरण के दो मार्ग हैं जो सर्जनात्मक शक्ति के अभ्यास के लिए विकल्प हैं। ये दोनों आत्माभिव्यक्ति का प्रयत्न करते हैं। निष्क्रिय प्रयत्न समर्पण में होता है, जिसमें आत्मा अपने को छोड़ देती है, इस विश्वास पर कि वह अपनी इच्छाओं और अनिच्छाओं पर बन्धन न लगाकर प्रकृति के अनुसार रहेगी तथा वह रहस्यपूर्ण देवी से सर्जनात्मकता का मूल्यवान् उपहार फिर पा जायेगी जिसे वह जानती है कि खो जायेगा। सक्रियता का विकल्प आत्म-निग्रह का प्रयास है, जिसमें आत्मा नियन्त्रित होती है, और अपने स्वाभाविक आवेगों को मर्यादित रखती है। ऐसा करने में उसे दूसरा विश्वास है कि प्रकृति क्रियाशीलता में बाधक है, वह क्रियाशीलता का उद्गम नहीं है। और प्रकृति पर अधिकार करना ही खोई हुई मनःशक्ति की सर्जनात्मकता को पुनः प्राप्त करना है।

इस प्रकार सामाजिक आचरण के दो मार्ग हैं, जो उन सर्जनात्मक व्यक्तियों के अनुकरणों के विकल्प हैं जिन्हें हमने खतरनाक होने पर भी सामाजिक विकास के लिए सरल मार्ग समझा

है। अनुकरणों के ये दोनों विकल्प उस व्यूह से अलग करने का प्रयत्न है जो 'सामाजिक अभ्यास' में असफल हो चुका है। सामाजिक गतिरोध को तोड़ने का यह निष्क्रिय प्रयत्न भगदड़ का रूप ले लेता है। सैनिक व्याकुलता के साथ अनुभव करता है कि टुकड़ी अपनी मर्यादा खो चुकी है जो अब तक अपने मनोबल दृढ़ किये थी। इस अवस्था में उसका ऐसा विश्वास हो जाता है कि वह अपने सैनिक कर्तव्यों से मुक्त कर दिया गया है। इस निम्न मनोवृत्ति में वह अपने साथियों को मँझधार में छोड़कर अपनी सुरक्षा की व्यर्थ की आशा में श्रेणी से पीछे की ओर भागता है। इसी कठिन परीक्षा का सामना करने का एक दूसरा विकल्प है जिसे बलिदान कहते हैं। वास्तव में शहीद वह सैनिक है जो कर्तव्य की प्रेरणा से अपनी पंक्ति से आगे बढ़ जाता है। जब कि सामान्य परिस्थिति में कर्तव्य की माँग है कि सैनिक को अपनी जान की जोखिम वहीं तक उठानी चाहिए जहाँ तक बड़े अफसरों के आदेशों के पालन के लिए आवश्यक हो। शहीद अपने आदर्श के पालन का प्रसाद प्राप्त करने के लिए मृत्यु का आलिंगन करता है।

जब हम आचरण के धरातल से भावना की ओर बढ़ते हैं, तब हमें व्यक्तिगत भावना के दो मार्गों पर ध्यान देना चाहिए, जो जीवन-शक्ति के उस आन्दोलन के विपरीत विकल्प हैं जिसमें विकास की प्रवृत्ति प्रकट होती है। ये दोनों अनुभूतियाँ वे वेदनापूर्ण चेतनाएँ हैं जो उन पाशव शक्तियों से भाग जाने में प्रकट होती हैं जो आक्रामक हो गयी हैं और जिन्होंने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। इस क्रमबद्ध और निरन्तर नैतिक पराजय की चेतना की निष्क्रिय अभिव्यक्ति टालमटोल में है। अपने वातावरण को नियंत्रित करने की असफलता के ज्ञान से पराजित आत्मा दुर्बल हो जाती है। यह विश्वास करने लगती है कि सारा विश्व और आत्मा भी उस शक्ति की कृपा पर है, जो उतनी ही अविवेकी है जितनी अजेय जो देवत्वहीन देवी है दोहरे मुख वाली जिसका नाम है, या जिसे 'आवश्यकता' के नाम से पुकारा जाता है। थामस हार्डी के 'डाइनास्ट्स' के कोरसों में देवियों के इस जोड़े का साहित्यिक रूप दिया गया है। वैकल्पिक रूप से जो नैतिक पतन पराजित आत्मा को त्याग देता है, आत्मा को नियंत्रित नहीं कर सकता। इस दृष्टि से टालमटोल की जगह पाप की भावना है।

हमें सामाजिक भावना के दो मार्गों को भी देखना है जो उस ज्ञान के विकल्प हैं जो सभ्यताओं के विकास के अन्तर की वस्तुपरक प्रक्रिया के आत्मपरक रूप हैं। ये दोनों भावनाएँ रूप (फार्म) का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकीं। यद्यपि चुनौती का सामना करने में वे एक-दूसरे के नितान्त विपरीत हैं। निष्क्रिय प्रतिक्रिया संकीर्णता की वह भावना है जिसमें आत्मा स्वयं रूपान्तरित होने के लिए आगे बढ़ती है। भाषा, साहित्य और कला के माध्यम में यह संकीर्णता की भावना देश भाषा (लिंगुआ फ्रांका) के रूप में प्रकट होती है और उसी प्रकार साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला को मानक रूप देने में प्रकट होती है। यही संकीर्णता दर्शन और धर्म के क्षेत्र में संहतिवाद को पैदा करती है। सक्रिय प्रतिक्रिया जीवन के उस रूप को नष्ट करती है जो स्थानीय और नश्वर होती है। सक्रिय प्रतिक्रिया का आह्वान जीवन की दूसरी शैली का अनुसरण करती है जो विश्वव्यापी और शाश्वत है। जो सर्वव्यापी है, जो सब जगह है, जो पूर्ण है। यह सक्रिय प्रतिक्रिया एकता की भावना को जाग्रत करती है, जो ज्यों-ज्यों मानवता की एकता का विस्तार होता है, मानव की एकता से सृष्टि के द्वारा ईश्वर की एकता को पहुँचती है।

यदि हम तीसरी बात में जीवन के धरातल पर आयें तो हमें पुनः वैकल्पिक प्रतिक्रियाओं के दो जोड़े दिखेंगे। किन्तु, इस धरातल पर चित्र पिछले नमूने से तीन दृष्टियों से भिन्न है। पहली बात यह है कि विकास का मुख्य लक्षण एक ओर की गति है, उसके स्थान पर जो विकल्प होता है, वह गति का स्थान नहीं लेता, गति में परिवर्तन करता है। दूसरी बात यह है कि विकल्पों के जोड़े उसी एक गति के भिन्न रूप होते हैं। इस एक मात्र गति को हम ब्रह्माण्ड से सूक्ष्म जगत् की ओर की गति का क्षेत्र कह सकते हैं। तीसरी बात यह है कि दोनों जोड़ों में इतना अन्तर है कि उनके दोहरे होने का कारण स्पष्ट हो जाता है। एक जोड़े में प्रतिक्रिया हिंसात्मक है और दूसरे में अहिंसात्मक। हिंसात्मक जोड़े में निष्क्रिय प्रतिक्रिया को पुरातनवाद कहा जा सकता है, और सक्रिय प्रतिक्रिया को भविष्यद्वाद। अहिंसात्मक जोड़े में निष्क्रियता को अलग होने तथा सक्रियता को रूपान्तरण कहा जा सकता है।

पुरातनवाद और भविष्यद्वाद समय के आयाम में विकल्प मात्र प्रयत्न हैं। यह उस कार्य-क्षेत्र की एक आध्यात्मिक धरातल से दूसरे धरातल की ओर ले जाने के परिवर्तन का विकल्प है, जो गतिशीलता की विशेषता है। दोनों में, ब्रह्माण्ड के स्थान पर सूक्ष्म जगत् में रहने का प्रयत्न छोड़ दिया जाता है और यूटोपिया की खोज की जाती है—मान लीजिए, वास्तविक जीवन में वह मिल भी जाय—और आध्यात्मिकता के देश में जाने की कठोरता का सामना नहीं किया जाता। यह यूटोपिया—आदर्शलोक—'परलोक' के स्थान पर बनाया गया। किन्तु यह परलोक छिछला और असन्तोषदायक है क्योंकि वह वर्तमान अवस्था में ब्रह्माण्ड के नकारात्मक होने की भावना है। आत्मा वह कार्य करना चाहती है, जिसकी उसे विघटित समाज की वर्तमान अवस्था से ऐसे लक्ष्य की ओर गतिशील होने के लिए आवश्यकता होती है, जो साधारण तौर पर वही समाज है जो कभी अतीत में रहा है या किसी समय भविष्य में बन सकता है।

पुरातनवाद की परिभाषा समकालीन सर्जनात्मक व्यक्तियों के अनुकरणों को छोड़कर कबीलों के पूर्वजों का अनुकरण करना कहा जा सकता है। अर्थात् इसे सभ्यता की गत्यात्मक क्रिया से हटकर स्थैतिक दशा में आना कहा जा सकता है जिसमें आदिम मानव-समाज आज दिखाई पड़ता है। इसकी परिभाषा यह भी की जा सकती है कि यह बलपूर्वक परिवर्तन को रोकने का प्रयत्न है जो यदि सफल हुआ तो सामाजिक पापों की उत्पत्ति है। तीसरे उस पतित और विघटित समाज को स्थिर करने की चेष्टा है, जिसे हमने दूसरे सन्दर्भ में यूटोपिया ऐसी पुस्तकों के लेखकों का सामान्य लक्ष्य पाया है। इसी भाषा में भविष्यद्वाद की परिभाषा, यह कर सकते हैं कि किसी के अनुकरण को न स्वीकार किया जाय तथा परिवर्तन को शक्तिशाली ढंग से पूरा किया जाय और ये प्रयत्न यदि सफल हों तो ऐसी सामाजिक क्रान्तियाँ हों जिनसे ऐसी प्रतिक्रिया हो कि अपना ही उद्देश्य सफल न हो।

जिनका विश्वास इनमें से किसी विकल्प पर होता है, जो कार्य-क्षेत्र ब्रह्माण्ड से सूक्ष्म जगत् की ओर ले जाता है, उनके लिए सामान्य दुर्भाग्य बैठा रहता है। अपने विकल्प में सरल मार्ग चुनने के कारण ये पराजित लोग अपने को उस हिंसात्मक उपसंहार से दण्डित करते हैं जो उनके लिए निश्चित हैं, क्योंकि वे ऐसा करना चाहते हैं, जो प्रकृति के विरुद्ध है। आन्तरिक जीवन की खोज कठिन हो सकती है, परन्तु असम्भव नहीं है। किन्तु जो आत्मा बाहरी जीवन बिना रही है, उसके लिए यह कठिन है कि वर्तमान की सदा प्रवाहित धारा में से निकल कर अतीत की ओर

छलांग मार सके या भविष्य की ओर जा सके । पुरातनवादी तथा भविष्यद्वादी दोनों आदर्श हैं और आदर्श होने के कारण कहीं नहीं हैं । इन दो मोहित करने वालों को जो वर्तमान में नहीं हैं, पहले ही समझा जा सकता है कि उनमें से किसी ओर जाना संकट उपस्थित करना है, जिसके साथ हिंसा अनिवार्य है और जो ओषधि नहीं है ।

अपने दुखद उत्कर्ष में भविष्यद्वाद पैशाचिकता के रूप में प्रकट होता है ।

"इस विश्वास का सार यह है कि संसार की व्यवस्था पाप और झूठ है । अच्छाई और सच्चाई उत्पीड़ित विद्रोही हैं । यह विश्वास अनेक ईसाई सन्तों, शहीदों, विशेषतः एपोकेलिप्स[1] के लेखक का है । किन्तु हमें ध्यान देना चाहिए कि करीब-करीब सभी महान् नैतिक दार्शनिकों के उपदेश इसके घोर विरोधी हैं । अफलातून, अरस्तू और स्टोइक, सन्त आगस्टाइन, सन्त थामस एक्वीनास, कान्ट और जे० एस० मिल, काम्टे तथा टी० एच० ग्रीन, सभी तर्क देते हैं कि विश्व में कोई दैवी व्यवस्था और क्रमबद्धता है : अच्छाई एक स्वरता में है और बुराई उसके विरुद्ध असंगति में है । मैं देखता हूँ कि ज्ञानवादी सम्प्रदायों में एक हिपोलाइट्स चर्च के पादरी ने शैतान की परिभाषा यह बतायी है कि वह "संसार की व्यवस्था के विरुद्ध कार्य करने वाली शक्ति है" जो विद्रोही या विरोधी है जो सम्पूर्ण की इच्छा के विरुद्ध कार्य करता है तथा वह उसी समुदाय की अवहेलना करने की चेष्टा करता है जिसका वह सदस्य है ।"[2]

क्रान्ति की भावना का परिणाम उन सभी स्त्रियों और पुरुषों को मालूम है जो स्वयं क्रान्तिकारी नहीं है, इस आध्यात्मिक नियम की क्रिया के ऐतिहासिक दृष्टान्तों को खोजना कठिन नहीं है ।

उदाहरणार्थ, सीरियाई समाज में भविष्यद्वाद का मसीहाई रूप प्रथम बार अहिंसात्मक मार्ग पर चलता हुआ दिखाई दिया । असीरियाई सैनिक आक्रमण के विरुद्ध, अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित करने के लिए भीषण प्रयत्न करने के बजाय इसरायल निवासियों ने उस समय राजनीतिक दासता में अपनी गर्दन झुका दी और अपनी सारी राजनीतिक सम्पत्ति दुखी होकर समर्पित कर दी, इस आशा से कि भविष्य में कोई त्राता-राजा आयेगा जो गिरे राष्ट्र को फिर ऊँचा उठायेगा । जब हम मसीहाई आशा के इतिहास का पता यहूदी समुदाय में लगाते हैं तब हम देखते हैं कि ५८६ ई० पू० से लेकर चार सौ वर्षों से भी अधिक तक यह अहिंसात्मक ढंग से कार्य करता रहा । उस समय से जब यहूदियों को नबुकद्नजार बैबिलोनिया में बन्दी बनाकर ले गया था और १८६ ई० पू० तक जब एटिओकस एपिफेनीज द्वारा हेलेनी उत्पीड़न के वे शिकार हुए विश्वासपूर्ण और सुखद सांसारिक भविष्य और अतीव दुखपूर्ण सांसारिक वर्तमान के बीच असंगति के कारण वे अन्त में हिंसात्मक हो गये । 'एलीजर' तथा 'सेवेन' भाइयों के आत्मोत्सर्ग का अनुसरण जूडास मैकावियस के सशस्त्र विद्रोह द्वारा दो वर्षों में हुआ । अधिक धर्मोन्मत्त सैन्यवादी यहूदियों की पद्धति का मैकाबीस ने आरम्भ किया । गैलिली के असंख्य यहूदी तथा थिपुडेस भी इसी प्रकार के थे जिनकी हिंसा ई० ६६–७० और ई० ११५–१७ तथा ई० १३२–५ की पाशव यहूदी क्रान्ति में भयानक पराकाष्ठा पर पहुँची ।

---

[1] संत जान को जो इलहाम हुआ था ।

[2] गिलबर्ट मरे : 'सेटानिजम् एण्ड दि वर्ल्ड आर्डर, एसे और एड्रेस, पृ० २०३

भविष्यवाद का प्रतिशोध जिसका यह क्लासिकी उदाहरण है अज्ञात नहीं है। किन्तु यह और भी आश्चर्य की बात है कि पुरातनवाद, जो विरोधी प्रतिक्रिया है उसके अन्त में भी इसी प्रकार का प्रतिशोध देखने में आता है। यह विरोधाभास-सा लगता है कि इस पुरोगामी प्रक्रिया का परिणाम भी हिंसात्मक ढंग का होता है। किन्तु ऐतिहासिक तथ्य यही बताते हैं।

हेलेनी समाज के राजनीतिक विघटन के इतिहास में पुरातनवादी प्रथम राजममंज्ञ स्पार्टा में राजा एजीस चतुर्थ और रोम में जनरक्षक टाइबीरियस ग्रेकस थे। दोनों असामान्य चेतना और सज्जनता के व्यक्ति थे। दोनों ने सामाजिक भूलों को सुधारने का कार्य किया। इस विश्वास से कि पतन के पहले के स्वर्णयुग का कोई विधान था उसी को वे पुनःस्थापित करना चाहते थे। उनका उद्देश्य था एकरसता की पुनःस्थापना। फिर भी अनिवार्य रूप से वे हिंसा की ओर गये क्योंकि उनकी पुरातनवादी नीति सामाजिक जीवन की धारा के विपरीत प्रयत्न थी। उनकी निजी नम्रता उस हिंसा के हिमानी वेग को नहीं रोक सकी, जिसे उन्होंने अनजान में गति प्रदान कर दी थी। वे उस प्रतिहिंसा के संघर्ष में चरम सीमा पर जाने की अपेक्षा आत्मबलिदान के लिए तत्पर हो गये जो हिंसा के विरुद्ध विवश होकर उभाड़ दी गयी थी। उनके आत्मबलिदान से केवल एक उत्तराधिकारी को उनका कार्य आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिली और क्रूर हिंसा द्वारा उसे सफलता मिली। इस हिंसा में शहीद स्वयं हतोत्साहित दिखायी दिये। अहिंसक राजा एजीस चतुर्थ के बाद हिंसात्मक राजा क्लिओमिनीस तृतीय आया और अहिंसात्मक प्रजारक्षक टाइबीरियस ग्रैकस के बाद हिंसात्मक भाई गैअस आया। दोनों की कहानी का अन्त यहीं नहीं था। इन दोनों अहिंसक पुरातनवादियों के कारण हिंसा की बाढ़ उभड़ आयी। यह बाढ़ तब तक शान्त नहीं हुई जब तक इसने उन मण्डलों के सम्पूर्ण ढाँचे को बहा नहीं दिया जिनमें उन्होंने अपनी सुरक्षा करने की कोशिश की थी।

यदि हम अब अपने हेलेनी और सीरियाई उदाहरणों के, उनके इतिहासों के दूसरे अध्यायों पर, ध्यान दें तो हम देखेंगे कि एक ओर पुरातनवादियों ने, दूसरी ओर भविष्यवादियों ने हिंसा की जो उच्छृंखलता उत्पन्न कर दी थी, वह आश्चर्यजनक ढंग से उसी अहिंसा के पुनरागमनद्वारा कम हुई जिसे हिंसा की बाढ़ ने डुबो दिया था और समाप्त कर दिया था। जैसा हम देख चुके हैं, हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के इतिहास में ई० पू० की अन्तिम दो शतियों में क्रूरों के गिरोह के बाद सजग तथा योग्य सार्वजनिक कार्यकर्ता उत्पन्न हुए, जिन्होंने सार्वभौम राज्य का संगठन किया और उसकी रक्षा की। इसी समय हिंसात्मक पुरातनवादी सुधारकों के उत्तराधिकारी अभिजात दार्शनिकों के रूप में बदल गये। ये अभिजात दार्शनिक एरिया, कैसिनापीटस, थ्रेसिया पीटस, सेनेका, हेलवीडिअस प्रिसकस थे, जिन्होंने जनता की भलाई के लिए भी अपनी वंशपरम्परा के प्रभाव का प्रयोग नहीं किया और यहाँतक आत्मत्याग किया कि निरंकुश सम्राटों की आज्ञा से अपनी आत्महत्या तक कर दी। हेलेनी संसार के आन्तरिक सर्वहारा के सीरियाई भाग में ठीक इसी प्रकार इसी संसार में 'मकीबियाई सेना की मसीहाई राज्य' की स्थापना की चेष्टा नितान्त असफल हो गयी और उसके बाद यहूदियों के उस राजा की विजय हुई जिसका राज्य अलौकिक था। दूसरी पीढ़ी में यहूदी सैन्यवादी उत्साहियों की बर्बरतापूर्ण वीरता जब विनाश पर थी, उस समय उसकी संरक्षा ऊँचे वीरतापूर्ण अहिंसापूर्ण ढंग से रब्बी जोहानन बिन ज़क्काई ने की और यहूदी ज़ेलटों से इसलिए अलग हुआ था कि युद्ध के बाहर अपनी शिक्षा को जारी रख

सके। जब अनिवार्य विनाश का समाचार उनके पास लाया गया और समाचार लाने वाला शिष्य दारुण दुख से चिल्लाया,—'हम लोगों पर वज्र गिरा है, क्योंकि वह स्थान नष्ट हो गया, जहाँ हम इसरायल के पापों के लिए आराधना करते थे।' स्वामी ने उत्तर दिया—'मेरे बेटे, इसके लिए दुखी मत हों। हमारे पास आराधना का एक और ढंग है, वह है दया का दान। यह लिखा भी गया है, "मैं दया की इच्छा करता हूँ। वलिदान की नहीं।"

इन दोनों विषयों में हिंसा का आवेग जो जान पड़ता था कि राह की सभी वस्तुओं को बहा ले जायगा, कैसे रुका और शान्त हुआ। दोनों अवस्थाओं में इस आश्चर्यजनक परिवर्तन का कारण जीवन के ढंग का परिवर्तन है। हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के रोमन भाग की आत्माओं में पुरातनवाद के आदर्श के स्थान पर अनासक्ति की भावना थी। हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के यहूदी भाग की आत्माओं में भविष्यवाद के आदर्श को हटाकर ईसा का आदर्श स्थापित किया गया।

हम कदाचित् इन दो अहिंसात्मक व्यक्तियों के जीवन के गुणों को उसी दृष्टि से समझ सकते हैं जैसे उनकी उत्पत्ति हुई थी, यदि हम एक विख्यात धर्म-परिवर्तित व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा जीवन को देखें। उदाहरणार्थ रोमन पुरातनवादी केटोमाइनर जो स्टोइक दार्शनिक हो गया था तथा यहूदी भविष्यवादी साइमन बार जोनास हैं जो ईसा के शिष्य पीटर हुए। इन दोनों महापुरुषों मे एक धार्मिक अन्धविश्वास था, जिसने उनकी शक्तियों को गलत रास्ता दिखाकर उनके वड़प्पन को धुंधला कर दिया था। जब तक वे अपनी शक्तियों को गलत राह पर यूटोपिया—(काल्पनिक आदर्श) के फेर में पड़े हुए थे, जिसे उन्होंने उचित समझा था। और प्रत्येक का जब धर्म-परिवर्तन हुआ उनकी इतने दिनों की चकित और भ्रमित आत्माओं को पता चला कि उसमें कितनी शक्ति है।

ऐसे काल्पनिक रोमन राजतन्त्र की कल्पना का समर्थन करने के कारण केटो हास्यास्पद-सा हो गया था। ऐसी पीढ़ी की राजनीति में वह बराबर छाया का पीछा करता रहा और वास्तविकता से अलग रहा। जिस रूप में उसे राजनीति मिली उसने स्वीकार नहीं किया। अन्त में जब उसे घरेलू युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा, जिसके लिए वह उत्तरदायी था, यद्यपि उसने इसे स्वीकार नहीं किया, उसकी राजनीतिक कल्पना चूर हो गयी क्योंकि जो शासन उनके उन सहयोगियों के विजय के वाद होता, वह कम-से-कम केटो के पुरातनवादी आदर्शों के उतना ही प्रतिकूल होता जितना, अन्त में, विजयी सीजर का अधिनायकवाद। इस द्विविधा में सनकी राजनीतिक को स्टोइक दार्शनिकों ने मूर्खता के दोष से बचा लिया। जो व्यक्ति पुरातनवाद में अपना जीवन विता रहा था उसे स्टोइक के रूप में इतनी अच्छी मृत्यु मिली कि अन्त में उसने सीजर तथा सीजर के वाद एक शती से भी अधिक तक उसके उत्तराधिकारियों को इतना कष्ट दिया कि कोई भी रिपब्लिकन दल इतना कष्ट नहीं दे सकता था। केटो के अन्तिम दिनों की कहानी ने अपने समकालीनों पर इतना प्रभाव डाला जो आज भी प्लूटार्क का कोई भी पाठक पढ़ सकता है। अपनी प्रतिभा से सीजर ने उस आघात की गम्भीरता का अनुभव कर लिया था जो उसके विरोधी स्टोइक की मृत्यु के कारण राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के रूप में हुई थी और जिस पर उसने कभी गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया था और जब वह गृहयुद्ध की आग बुझा कर नये सिरे से एक संसार वना रहा था इस विजयी अधिनायक ने केटो की तलवार का उत्तर अपनी कलम से

दिया। यह अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अच्छी तरह जानता था कि जो आक्रमण सेना से हटाकर दार्शनिक स्तर पर लाया गया था, और जिसके फलस्वरूप केटो ने स्वयं अपने हृदय में तलवार भोंकी, उसका उत्तर कलम से ही दिया जा सकता है। फिर भी सीजर अपने वैरी को नष्ट करने में असफल रहा, जिसने चलते-चलाते यह आघात किया था। केटो की मृत्यु ने सीजरवाद के विरुद्ध नये दार्शनिक सम्प्रदाय को जन्म दिया। सीजरवाद के विरोधी अपने संस्थापक के उदाहरण के अनुसार अपने को नष्ट करके नये अत्याचार से मुक्त हुए। क्योंकि इस स्थिति को न वे स्वीकार कर सकते थे और न इसको सुधार सकते थे।

पुरातनवाद से अनासक्ति का परिवर्तन विस्तृत रूप से मार्क्स ब्रूटस की कहानी में वर्णित है। यह कहानी प्लूटार्क द्वारा कही गयी थी तथा शेक्सपीयर द्वारा दुहरायी गयी। ब्रूटस का विवाह केटो की पुत्री से हुआ था। वह जुलियस सीजर की मृत्यु का भी साझीदार था जो हिंसात्मक पुरातनवाद का ही कार्य था। तिस पर भी हम ऐसा सोचते हैं कि हत्या के पहले उसे सन्देह था कि मैं ठीक रास्ते पर हूँ या नहीं। हत्या का परिणाम देख लेने पर उसे और भी सन्देह हो गया। फिलिप के युद्ध के बाद उन अन्तिम शब्दों में, जिसे शेक्सपीयर ने उसके मुख से कहलाया है, उसने केटो वाले समाधान को स्वीकार किया जिसकी वह पहले निन्दा कर चुका था। आत्महत्या करते समय वह कहता है--

सीजर ! अब तुम शान्त हो जाओ,
मैंने बहुत प्रसन्नता से तुम्हें नहीं मारा है।

पीटर का भविष्यवाद वैसा ही अनुपयुक्त मालूम पड़ा जैसा केटो का पुरातनवाद। वह ईसा का पहला शिष्य था जिसने उसे मसीहा के रूप में माना। उसने अपने स्वामी के इस इलहाम का भी विरोध किया कि मसीहाई राज्य साइरस के ईरानी विश्व-साम्राज्य का यहूदी संस्करण नहीं है। और अपने निश्चित विश्वास के पुरस्कार के रूप में विशेष आशीर्वाद भी प्राप्त किया और इस कारण अपने इस विश्वास के लिए कि उसके स्वामी की राज्य की कल्पना शिष्य की ही कल्पना के अनुसार होनी चाहिए, तीव्र भर्त्सना भी सहन करनी पड़ी। अर्थात्—"शैतान, मेरे पीछे जाओ। तुम मेरे लिए अभिशाप हो। ईश्वर की वस्तुओं की तुम प्रशंसा नहीं करते, बल्कि मानवी वस्तुओं की प्रशंसा करते हो।"

यहाँ तक कि जब पीटर की भूलें उसके स्वामी के भयानक धिक्कार के कारण उसकी आँखों के सामने आयीं शिक्षा का इतना कम प्रभाव हुआ कि वह दूसरी परीक्षा में पुनः असफल हो गया। जब वह रूपान्तरण का तीन में से एक साक्षी हुआ, तब उसने देखा कि मूसा तथा इलियास उसके स्वामी की बगल में खड़े हैं। और यह एक संकेत था। इस दृश्य का अर्थ गलत समझकर उसने शिविर का केन्द्र स्थापित किया (तीन खेमे बनाकर) जैसा बन में गैलिली के यहूदियों और थियुडासों ने उसके बहुत पहले ही स्थापित किया था जब रोमन अधिकारियों को यह सूचना मिल गयी और उन्हें तितर-बितर करने के लिए अपनी सेना भेज दी। इस असंगत ध्वनि को सुनकर दृश्य लोप हो गया, यह चेतावनी देते हुए कि मसीहा ने जो स्वयं राह दिखायी है, उसे स्वीकार करना चाहिए। इस दूसरी शिक्षा ने भी पीटर की आँखें नहीं खोलीं यहाँ तक कि प्रभु के जीवन के चरम उत्कर्ष पर जब जो कुछ प्रभु ने कहा था सत्य उतरता जा रहा था—यह कट्टर

भविष्यवादी गेथ्समैन के बाग में लड़ने के लिए तैयार हो गया और हो सकता है कि बाद में उसी संध्या को अपने प्रभु के प्रति विश्वासघात उसके मस्तिष्क की उलझन का परिणाम रहा हो जो भविष्यवाद पर विश्वास हट जाने के कारण और उसके बदले किसी बात पर विश्वास न होने के कारण उत्पन्न हुई हो ।

अपने जीवन के इस सर्वोच्च अनुभव के बाद भी जब ईसा को शूली पर चढ़ाया जाना, उनका पुनरुज्जीवन और आरोहण ने अन्ततः उसे बता दिया था कि ईसा का राज्य इस संसार का राज्य नहीं है, पीटर का फिर भी विश्वास था कि इस रूपान्तरित राज्य में यहूदियों के लिए ही मताधिकार होना चाहिए, जैसा भविष्यवादी मसीहाई आदर्शलोक में होगा । अर्थात् एक ऐसा समाज जिसने स्वर्ग में ईश्वर के राज्य को मान लिया था पृथ्वी पर इस प्रकार सीमित कर दिया जाता जिसमें एक के अतिरिक्त और सभी ईश्वर की सन्तान बहिष्कृत होती । 'अपासिल्स के एक्टो' के एक अन्तिम दृश्य में जिसमें पीटर आता है वह विरोध करता है जो स्वर्ग से उतरा है । फिर भी पीटर कहानी में पाल को समर्थकों में तब तक स्थान नहीं देता, जब तक कथा के अनुसार वह बात समझ नहीं लेता जो फरीसी (यहूदियों की एक शाखा) पाल ने क्षण भर में आध्यात्मिक अनुमति द्वारा लिया था । पीटर की प्रबुद्धता का कार्य तब पूरा हुआ जब ऊपरी झाँकी के बाद कारनीलियस के सन्देशवाहक द्वार पर आ गये । कारनीलियस के घर पर धर्म की स्वीकृति और जेरूसलम में लौटने के पहले यहूदी-ईसाइयों के समुदाय के सामने अपने कार्य के समर्थन के रूप में पीटर ने ईश्वर के राज्य का उपदेश जिन शब्दों में किया, उसका तिरस्कार ईसा नहीं कर सकता था ।

जीवन के वे दो मार्ग क्या हैं, जिन्होंने ऐसे आध्यात्मिक प्रभाव उत्पन्न किये ? जो पुरातनवाद के स्थान पर केटो ने और भविष्यवाद के स्थान पर पीटर द्वारा स्वीकार किये गये । एक और सामान्य अन्तर की ओर हम ध्यान दें जो एक ओर अनासक्ति और रूपान्तरण के बीच है और दूसरी ओर पुरातनवाद और भविष्यवाद के बीच है ।

रूपान्तरण और अनासक्ति समान रूप से भविष्यवाद तथा पुरातनवाद दोनों से इस रूप में भिन्न है कि वे आध्यात्मिक क्षेत्र में परिवर्तन करते हैं । रूपान्तरण और अनासक्ति का भविष्यवाद और पुरातनवाद में समय के विस्तार का केवल अन्तर नहीं है, इनका विशेष कार्यक्षेत्र ब्रह्माण्ड से सूक्ष्म जगत् में परिवर्तन के रूप में रहा है । इसी को हम सभ्यता के विकास की कसौटी मानते हैं ।. वे दोनों राज्य जिनकी प्राप्ति उनका उद्देश्य है पारलौकिक हैं, इस दृष्टि से कि उनमें किसी का भी काल्पनिक अतीत में एवं भविष्य में लौकिक अस्तित्व नहीं है । सामान्य अलौकिकता उनकी एक मात्र समानता है और दूसरी दृष्टियों से वे एक-दूसरे के भिन्न हैं ।

जिसे हम 'पृथक्करण' या अनासक्ति कहते हैं भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों द्वारा हुआ है । विघटनोन्मुख हेलेनी संसार से स्टोइक 'अभेद्यता' में जाते थे तथा एपिकुरीअन (इन्द्रिय-सुखानुरागी) 'शान्तचित्तता' में अलग होते थे । जैसा कवि होरेस के आत्मचेतनायुक्त भोगवादी घोषणा द्वारा ऐल्सा प्रदर्शित किया गया है । वह कहता है 'विनष्ट हुए संसार के टुकड़े से हमें शान्ति मिलती है।' विघटनोन्मुख भारतीय संसार से बौद्धों का अलगाव 'निर्वाण' के रूप में हुआ । निर्वाण एक मार्ग है जो हमें संसार के बाहर ले जाता है । उसका उद्देश्य एक शरण-स्थल है । वह शरण-स्थल इस संसार का बहिष्कार करता है । यही तथ्य इसे आकर्षक बनाता है ।

यह आवेग दार्शनिक यात्री को विरक्ति की ओर आगे बढ़ाता है, न कि आसक्ति की ओर खींचता है। वह 'विनाश के नगर' की पाँव में लगी धूल को झाड़ता है, किन्तु 'सामने चमकीले प्रकाश' पर उसकी दृष्टि नहीं रहती। सांसारिक मनुष्य कहता है, 'ओ सीक्राप्स के मेरे प्रिय नगर' क्या तुम नहीं कहोगे—'ओ जीयूस के प्रिय नगर'[1] किन्तु मारकस का 'जीयूस का नगर' वैसा नहीं है जैसा अगस्टाइन का 'ईश्वर का नगर' जो जीवित देवता का नगर है। और यात्रा योजनानुसार धार्मिक विश्वास से अनासक्ति है न कि विश्वास से प्रेरित तीर्थयात्रा। दार्शनिक के लिए इस संसार से सफलतापूर्वक अलग हो जाना अपने आप में पूर्ति है। और इससे कोई मतलब नहीं। दार्शनिक शरण वाले नगर के पार जाकर क्या करता है। हेलेनी दार्शनिकों ने अनासक्त विद्वानों की स्थिति आनन्दपूर्ण चिन्तन की बतायी है। बुद्ध (यदि इनके सिद्धान्त हीनयान की पुस्तकों में ईमानदारी के साथ दिखाये गये हैं) स्पष्टतः कहते हैं कि जब तक लौटने की सभी सम्भावनाएँ सदा के लिए समाप्त नहीं हो जातीं, तब तक इसका कोई अर्थ नहीं है कि तथागत जिस शान्ति की अवस्था में आये हैं वह किस प्रकार की है।

यह अज्ञेय तथा उदासीन निर्वाण था 'जीयूस का नगर' जो पृथक्करण का उद्देश्य है कि यह स्वर्ग के राज्य का विरोधी है। यह स्वर्ग का राज्य रूपान्तरण के धार्मिक अनुभवों के मार्ग द्वारा प्राप्त होता है। दार्शनिक दूसरे संसार का तात्पर्य, एवं संसार है जो नितान्त हमारी धरती पर ही है। दैवी 'दूसरा संसार' मनुष्य के सांसारिक जीवन के पार है, किन्तु मानव-जीवन उसमें सम्मिलित है।

"और जब फैरीसिया ने पूछा कि ईश्वर का राज्य कब आयेगा, तब उसने उन्हें उत्तर दिया और कहा—'ईश्वर का राज्य' देखते हुए नहीं आता है और न तो वे कहेंगे—यहाँ देखो, वहाँ देखो। क्योंकि ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर ही है।"[2]

यह स्पष्ट है कि ईश्वर का राज्य अपनी प्रकृति में उतना ही सकारात्मक है जितना जीयूस का नगर नकारात्मक। पृथक्करण का मार्ग जब केवल अलग होता है वहीं रूपान्तरण का मार्ग वह क्रिया जिसे 'अलग होना और लौटना' हम पहले कह चुके हैं।

अब तक हम जीवन, आचरण तथा भावना के वैकल्पिक मार्गों के छः जोड़े संक्षेप में बता चुके हैं जो मनुष्यों की आत्माओं के सम्मुख प्रकट होते हैं, जो विघटनोन्मुख समाजों में रहते हैं। इसके पहले कि उनमें से प्रत्येक जोड़े की हम ब्योरेवार परीक्षा करें, हम कुछ समय के लिए आत्मा के इतिहास और समाज के इतिहास के बीच की श्रृंखला का निरीक्षण करें।

यह स्वीकार करते हुए कि प्रत्येक आत्मीय अनुभव अवश्य किसी-न-किसी मनुष्य का निजी होता है, क्या हम देखेंगे कि उन मनुष्यों में से कुछ के अनुभव, जिनका हम निरीक्षण कर चुके हैं, ऐसे हैं जो विघटनोन्मुख समाज के कुछ भागों के सदस्यों मे ही हम पाते हैं? हम देखेंगे कि आचरण और भावना के वे चारों वैयक्तिक मार्ग अर्थात् निष्क्रिय त्याग और सक्रिय आत्मनिग्रह निष्क्रिय संचरण तथा पाप की सक्रिय भावना शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा सर्वहारा दोनों में समान रूप से पायी जा सकती है। दूसरी ओर जब हम आचरण और भावना के सामाजिक ढंगों को

---

[1] मार्कस आरीलियस आन्टोनियस : मेडिटेशन्स, पुस्तक ४, अध्याय २३।
[2] ल्यूक—१७, २०–१।

देखें तब, हमें अपने वर्तमान उद्देश्य के लिए, निष्क्रिय तथा सक्रिय जोड़े में अन्तर करना पड़ेगा। दो निष्क्रिय सामाजिक परिस्थितियाँ––पलायनवाद और असामंजस्य को समर्पण––पहले सर्वहारा की श्रेणियों में दिखाई पड़ती हैं और फिर शक्तिशाली अल्पसंख्यकों की श्रेणियों में फैलती हैं। यह शक्तिशाली अल्पसंख्यक अन्त में सर्वहारा बन जाता है। इसके विपरीत दो सक्रिय सामाजिक परिस्थितियाँ––प्राणोत्सर्ग की खोज तथा एकता की भावना की प्रेरणा–– पहले शक्तिशाली अल्पसंख्यक में दिखाई देती हैं और यहाँ से सर्वहारा में फैलती हैं। अन्त में जब हम जीवन के अपने चार विकल्पों पर विचार करेंगे, तब हम इसके विपरीत पायेंगे कि सक्रिय जोड़ा पुरातनवाद और अनासक्ति पहले उदाहरण में शक्तिशाली अल्पसंख्यक से तथा सक्रिय जोड़ा––भविष्यवाद और रूपान्तरण––सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित है।

(२) 'त्याग' और आत्मनिग्रह

त्याग और आत्मनिग्रह का, जो विघटनोन्मुख समाजों के मुख्य गुण हैं, प्रकाश में आना कठिन है, क्योंकि ये वैयक्तिक आचरण के दो ढंग प्रत्येक सामाजिक परिस्थिति में दिखाई पड़ते हैं। आदिम समाजों के जीवन में भी हम आनन्दोत्सव तथा तपस्वी जीवन का अन्तर देख सकते हैं। तथा मौसम के अनुसार वार्षिक चक्र में इन भावों में कबीलों के सदस्यों की सामूहिक अभिव्यक्ति हमें देखने को मिलती है, किन्तु विघटनोन्मुख सभ्यताओं के जीवन में सर्जनात्मकता के स्थान पर त्याग को हम इस आदिम भावना से कुछ अधिक समझते हैं। हमारा तात्पर्य मस्तिष्क की वह अवस्था है जिसमें स्वेच्छाचार सर्जन का विकल्प मान लिया जाता है––चाहे जान में या अनजान में, सिद्धान्त में या व्यवहार में––त्याग के उदाहरण का आत्मनिग्रह के साथ साम्य निश्चय रूप से दिखाया जा सकता है यदि हम संक्षेप में देखें क्योंकि आत्मनिग्रह सर्जन का विकल्प है।

उदाहरणार्थ, हेलेनी संकटकाल में पतन के बाद पहली पीढ़ी में त्याग तथा आत्मनिग्रह की मूर्तियों का जोड़ा अफलातून ने सुकरात तथा अल्प सिबियाडीस के चित्र 'द सिम्पोजियम' में और थ्रैसिमेकस और सुकरात के चित्र रिपब्लिक में उपस्थित किये हैं। वासना का दास अलसिबियाडीस व्यवहार में त्यागी है और थ्रेसिमेकस सिद्धान्त रूप में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का समर्थक है।

हेलेनी कहानी के दूसरे अध्याय में हम देखते हैं कि इन आत्माभिव्यक्तियों के भाष्यकार सर्जन के स्थान पर अपने-अपने आचार का समर्थन इस प्रकार करते हैं कि हमारा जीवन प्रकृति के अनुसार है। त्याग के लिए इस विशेषता का दावा साधारण आनन्दवादियों ने किया। और उन्होंने व्यर्थ में एपिक्यूरस को बदनाम किया। आनन्दवादियों के इस अपराध के लिए तपस्वी ऐपिक्यूरी कवि ल्युक्रीशियस ने भर्त्सना की। दूसरी ओर हम देखते हैं कि सिनिकों ने तपस्वी जीवन के लिए 'प्राकृतिक होने का' दावा किया, जिसका उदाहरण नाँद में बैठा डोयोजिनीज़ है और जिसे कम भद्दे ढंग से दूसरे स्टोइक मानते थे।

यदि हम हेलेनी से सीरियाई संसार की ओर उनके संकटकाल में चलें तो हमें त्याग और आत्मनिग्रह के बीच वैसा ही विरोध मिलेगा। यह विरोध एकलेजिआस्टीज की पुस्तक के अनुसार शान्तिमय संवेदना का सिद्धान्त और एसेनियों के मठ वाले संप्रदाय के तपोमय आचार के जीवन में दिखाई देता है।

सभ्यताओं का एक और वर्ग है । यह वर्ग भारतीय, बैबिलोनी, हिताइत और माया का है। ये सभ्यताएँ विघटित होते समय आदिम मानव की प्रकृति की ओर लौटती दिखाई देती हैं, क्योंकि उनके धर्म के काम भावना के त्याग और उनके दर्शन की अतिशय तप-भावना में बहुत अन्तर था, जिसे वह समझ न सके । भारतीय सभ्यता में एक विरोधाभास मालूम पड़ता है जिसका पहले समाधान नहीं जान पड़ता । वह है योग तथा लिंग-पूजा का सामंजस्य । उसी प्रकार विघटनोन्मुख बैबिलोनी समाज के नक्षत्रीय दर्शन और मन्दिरों में व्यभिचार, माया सभ्यता के मनुष्य के बलिदान के बीच और तपःपूर्ण आत्म-दमन के बीच तथा हिताइत के आनंदोत्सव और साधनामय उपासना, जो सिबिले और अनीस की पूजा में वे करते थे, सम्भवत: यह अतिशय पर-पीड़न की सामान्य प्रवृत्ति थी जो उनके त्याग के अभ्यास तथा आत्मविग्रह में समान रूप से प्रविष्ट हुई । जिसने इन चारों विघटित सभ्यताओं के सदस्यों की आत्माओं में अभ्यासों के बीच भावात्मक समरसता बनाये रखा । किन्तु जब विदेशी दर्शक की उदासीन विश्लेषणात्मक दृष्टि उनकी परीक्षा करती है, तब वे उनमें सामंजस्य नहीं देख पाते ।

हमारे पश्चिमी समाज के इतिहास के आधुनिक अध्याय में क्या आचरण के ये दो विपरीत ढंग, विस्तृत रंगमंच पर वही कार्य पुनः कर रहे हैं ? त्याग के प्रमाणों की कमी नहीं है । सिद्धान्त के क्षेत्र में त्याग के पैगम्बर रूसो ने प्रकृति की ओर लौटने का मोहक निमन्त्रण दिया है । और व्यवहार में चारों ओर उदाहरण मिलते हैं । दूसरी ओर हम तपस्या के पुनरुज्जीवन की खोज में असफल होंगे और इस कारण हम इस मानवता विमुख परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि यदि हमारी पश्चिमी सभ्यता सचमुच पतित हो चुकी है तो अभी उसका विघटन बहुत दूर तक नहीं पहुँचा है ।

(३) पलायन तथा प्राणोत्सर्ग

पलायन तथा प्राणोत्सर्ग, दोनों सामान्य अर्थ में, क्रमशः कायरता के कलंक तथा साहस के गुणों के परिणाम हैं । और इसलिए सभी समाजों और सभी युगों में मानव आचरण के समान गुण हैं । पलायन एवं प्राणोत्सर्ग, जिन पर हम विचार कर रहे हैं जीवन के प्रति विशिष्ट भावना द्वारा प्रेरित होते हैं । केवल कायरता के पलायन अथवा विशुद्ध साहस के प्राणोत्सर्ग से हमारा अभिप्राय नहीं है । पलायित आत्मा जिसकी हम खोज कर रहे हैं, वह आत्मा है जो इसलिए पलायन करती है कि वह सचमुच यह समझती है कि जिस उद्देश्य के लिए वह कार्य कर रहा है वह इस योग्य नहीं है कि उसके लिए कार्य किया जाय । उसी प्रकार शहीद आत्मा जिसकी हम खोज कर रहे हैं वह आत्मा है जो मुख्यत: या केवल उद्देश्य की पूर्ति के लिए आत्मोत्सर्ग नहीं करती, बल्कि उसकी इच्छा होती है कि वह

"इस अबोधगम्य संसार को
गम्भीर और क्लांत भार[1] से"

मुक्ति प्राप्त करे । ऐसा शहीद सज्जन हो सकता है, किन्तु मनोवैज्ञानिक रूप से वह अर्द्ध आत्म-

---

[1] वर्डस्वर्थ : टिंटर्न ऐबे ।

हत्ता है। वह आधुनिक गवारूँ भाषा में पलायनवादी है, जिस प्रकार हमारा पलायनवादी भी निम्न कोटि का पलायनवादी है। इस दृष्टि से रोमन पुरातनवादी जो अनासक्तिवाद के दर्शन को ग्रहण कर चुके थे, शहीद थे। अपने इस महान् कार्य से वे अनुभव करते थे कि हम जीवन से हाथ नहीं धो रहे हैं, उससे स्वतन्त्र हो रहे हैं। और यदि उसी वर्ग और इतिहास के उसी युग से पलायन का कोई उदाहरण खोजे तो हम रोम के पलायनवादी मार्क एन्टानी का उदाहरण दे सकते हैं। जो रोम तथा रोमनों के गम्भीर आदर्शों को छोड़कर अर्धपूर्वी क्लिओपेट्रा की गोद में चला गया।

दो शतियों बाद, ईसाई युग के द्वितीय शती के बीतने वाले अन्धकारपूर्ण दर्शकों में हम साक्षात् मार्क्स आरीलियस राजकुमार को देखते हैं जिसको शहीदों के सिरमौर की पदवी देना अनुचित न होगा क्योंकि मृत्यु की किसी अन्तिम प्रहार का इस पर वश नहीं चला। मार्क्स के पुत्र और उत्तराधिकारी कोमोडस में हम साम्राज्य के पलायनवादी को पाते हैं जो अपने कन्धे पर उत्तराधिकार का भार वहन करने का प्रयत्न नहीं करता और सीधे नैतिकता से पलायन कर जाता है और सर्वहारा की अधम राह पर चल देता है। सम्राट् के रूप में पैदा होकर शौकिया अखाड़िया होना उसे अधिक पसन्द आया।

हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक का अन्तिम समय ईसाई धर्मतन्त्र पर आघात था, जो मृत्यु की पीड़ा के समय सभ्यता से परे हो गया, क्योंकि यह मरणासन्न अन-ईसाई शासक वर्ग इस हृदय विदारक सत्य को स्वीकार न कर सका कि अपने पतन और विनाश का वह स्वयं उत्तरदायी है। मरते समय भी उसने यही कहकर अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने का प्रयत्न किया कि सर्वहारा के कायरतापूर्ण आक्रमण के कारण ही मेरा विनाश हो रहा है। और जब बाहरी सर्वहारा भीषण युद्ध गिरोहों में परिवर्तित हो गये, जो साम्राज्य के शासन के उन आक्रमणों से बचकर निकल जाते थे, जो शासन उनके हमलों के जवाब में करता था, तो सारी चोट ईसाई चर्च को सहनी पड़ी जो भीतरी सर्वहारा की प्रमुख संस्था थी। इस कठोर परीक्षा में ईसाई गोठ की भेंड़े स्पष्ट रूप से उन बकरों से अलग की गयीं और उन्हें यह चुनौती दी गयी कि अपना धर्म छोड़ो या अपनी जान से हाथ धोओ। धर्म छोड़ने वालों की संख्या बहुत थी। वास्तव में इनकी संख्या इतनी अधिक थी कि जब अत्याचार समाप्त हुआ तब धार्मिक राजनीति की बड़ी समस्या हो गयी कि इनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। किन्तु प्राणोत्सर्ग करने वालों का यह छोटा-सा दल अपनी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक शक्तिशाली था। इन वीरों के शौर्य को धन्यवाद है कि ठीक संकट के समय ईसाई दलों से आगे आये और जान देकर उनके लिए साक्षी दी और धर्मतन्त्र विजयी हुआ। यह छोटी किन्तु महान् स्त्री-पुरुषों की सेना इतिहास में विश्वासघातियों के विरुद्ध उच्चकोटि के शहीदों के नाम से अमर है। इनका उचित से अधिक सम्मान नहीं हुआ। इतिहास में इन्हें बहुत बड़ा शहीद कहा गया है, इसके विरोध में दूसरों को विश्वासघाती कहा गया है जिन्होंने अन-ईसाई साम्राज्य के अधिकारियों की माँग पर पवित्र धर्मग्रन्थ तथा चर्च का पुनीत पात्र अर्पित कर दिया।

यह आपत्ति की जा सकती है कि एक ओर केवल कायरता है और दूसरी ओर विशुद्ध उत्साह इसीलिए यह दृष्टान्त वर्तमान उद्देश्य के लिए व्यर्थ है। जहाँ तक भगोड़ों का सम्बन्ध है हमारे पास इस आपत्ति का उत्तर देने के लिए साधन नहीं है। उन्होंने ऐसा क्यों किया जो कलंक-

पूर्ण विस्मृति में दबा है। किन्तु, प्राणोत्सर्गियों की प्रेरणा को सिद्ध करने के लिए प्रचुर प्रमाण हैं कि कम या बेश जैसा पाठक समझे, निःस्वार्थ उत्साह ही उनकी प्रेरणा का मुख्य स्रोत है। पुरुष और स्त्रियों ने उत्साहपूर्वक शहीद होना स्वीकार किया और इसे द्वितीय बार बपतिस्मा समझा जिससे उनके पापों को क्षमा मिलेगी और स्वर्ग के लिए राह निश्चित हो जायगी। एन्टिओक का इगनेशियस, द्वितीय शती का एक प्रसिद्ध शहीद अपने को 'ईश्वर का गेहूँ' कहता है और उस दिन की आकांक्षा करता है, जब वह 'जंगली जानवरों के दाँतों द्वारा पीसा जायगा और ईसा के लिए शुद्ध रोटी बनेगी।'

अपने आधुनिक पश्चिमी संसार में क्या हम सामाजिक आचरण के ऐसे दो विरोधी ढंग पा सकते हैं? निश्चित रूप से हम पश्चिम के पलायन के अनिष्टसूचक परिणाम के लिए 'पादरियों के विश्वासघात' (ला ट्राहिजन डि क्लर्क) में देख सकते हैं। इस विश्वासघात की जड़ें इस गहराई से निकली हैं जिस गहराई का पता इन शब्दों का निर्माता प्रतिभासम्पन्न फ्रांसीसी लेखक कदाचित् न लगा सके[1]। यद्यपि वह स्वीकार करता है कि दोष कितनी गहराई तक पहुँच चुका है क्योंकि उसने आधुनिक बुद्धिजीवियों को दोषी ठहराने के लिए मध्ययुगीन धार्मिक नाम चुना है। विश्वासघाती कार्यों के उस जोड़े के साथ उनका विश्वासघात आरम्भ नहीं हुआ था, जिन्हें उन्होंने उसी काल में किया है जो भूला नहीं गया है। यह आधुनिक स्थापित सिद्धान्तों का अविश्वास तथा उदारतावाद के नये प्राप्त लाभों का कायरतापूर्ण समर्पण है। यह पलायन, जिसका नवीनतम प्रदर्शन हुआ है, शतियों पहले आरम्भ हो चुका था, जब पादरियों ने पश्चिमी ईसाई सभ्यता के विकासोन्मुख भवन को धर्म के स्थान पर धर्म-निरपेक्षता के आधार पर लाने की चेष्टा की। यह 'युबरीस' का पहला कार्य था, जो आज के 'ऐथ' के रूप में बदल रहा है, जो शतियों से चक्रवृद्धि ब्याज के समान बढ़ रहा है।

यदि हम चार सौ वर्षों पीछे देखें और पश्चिमी ईसाई संसार के उस खण्ड पर ध्यान दें जो इंगलैंड के नाम से विख्यात है तो हम वहाँ टामस, उल्ज़े को पायेंगे। इस विलक्षण बुद्धि के आधुनिक विचारों वाले पादरी ने, राजनीतिक अपमान के समय अपना अपराध स्वीकार किया कि हमने ईश्वर की सेवा राजा की सेवा से बहुत कम की। टामस उल्ज़े पलायनवादी था। जिसका पलायन पूरे कलंक के साथ पाँच वर्षों के भीतर ही, उनके समकालीन शहीदों सन्त जान फिशर और सन्त टामसमूर के आत्मोत्सर्ग से प्रकट हो गया।

(४) विचलन का भाव तथा पाप का भाव

विचलन का भाव उस समय होता है, जब विकास की शक्ति समाप्त हो जाती है। यह ऐसी भारी विपत्ति है जो उन स्त्रियों और पुरुषों पर आ पड़ती है, जो सामाजिक विघटन के युग में रहते हैं। यह पीड़ा सम्भवतः उस भक्ति के पाप का दण्ड है, जिसमें सर्जक के स्थान पर सर्जित वस्तु की पूजा की जाती है। क्योंकि यह उन कारणों में से एक है जिसे हम देख चुके हैं, जिसके कारण सभ्यताओं का विघटन पतन के बाद होता है।

---

[1] इसी नाम की पुस्तक जूलियन बेंडा लिखित देखिए।

संयोग और आवश्यकता उस शक्ति के वैकल्पिक रूप हैं जो विचलन के भाव वालों की आँखों के सामने संसार पर शासन करते दिखाई देते हैं। यद्यपि पहली दृष्टि में दोनों एक-दूसरे के विपरीत दिखाई देते हैं, किन्तु सूक्ष्म परीक्षा के बाद दोनों एक ही भ्रम के दो विभिन्न पहलू मिलेंगे।

मिस्री संकटकाल के साहित्य में संयोग की उपमा घूमते हुए कुम्हार के चक्र से दी गयी है। और हेलेनी संकटकाल के साहित्य में उसकी उपमा लहरों और हवा के झोकों की कृपा पर छोड़े गये चालक विहीन जहान से दी गयी है।[1] यूनान के नर देवत्व ने 'संयोग' को देवी का रूप दिया—'हमारी स्वयं चालित देवी' साइराक्यूज के मुक्तिदाता टिमोलियन ने उसके लिए उपासना-गृह बनाया, जिसमें उसने बलि की और होरेस ने उसके लिए कविता लिखी।[2]

जब हम अपने दिलों में देखते हैं हम इस हेलेनी देवी को ठीक उसी प्रकार सिंहासनारूढ़ पाते हैं, जैसा एच० ए० एल० फिशर ने अपनी पुस्तक 'यूरोप के इतिहास' की भूमिका में अपना विश्वास प्रकट किया है :—

"एक बौद्धिक उद्दीपन मुझे नहीं मिला। मुझसे चतुर तथा बुद्धिमान् लोग इतिहास में एक कथावस्तु, एकलय तथा एक पूर्व निश्चित नमूना देख चुके हैं। यह समरसता मुझे नहीं प्राप्त हुई। मैं केवल यह देखता हूँ कि एक संकटकाल दूसरे के बाद वैसे ही आता है जैसे एक लहर दूसरे के बाद आती है। यही तथ्य है जिसका समान्यीकरण नहीं हो सकता, क्योंकि वह बेजोड़ है : इतिहासकार के यही निरापद नियम हैं कि मानव के भाग्यों के विकास को अदृश्य और संयोग का खेल मानना चाहिए।"

सर्वशक्तिशाली 'संयोग' में आधुनिक पश्चिमी विश्वास का जन्म उन्नीसवीं शती में हुआ। जब पश्चिम के साथ अहस्तक्षेप की नीति के कारण सब ठीक से चलता जान पड़ता था। यह जीवन दर्शन का व्यावहारिक रूप था जो स्वार्थ की अद्‌भुत प्रबुद्धता पर अवलंबित था। अस्थायी संतोषप्रद अनुभव के कारण हमारे उन्नीसवीं शती के पितामहों ने इस ज्ञान का दावा किया कि सभी वस्तुएँ उन लोगों की भलाई करती हैं, जो 'संयोग' की देवी को प्यार करते हैं। और बीसवीं शती में भी जब इस देवी ने अपना विकराल रूप दिखाना आरम्भ किया, तब वह इंग्लैंड की वैदेशिक नीति की देवी रही। १९३१ के शरद से आरम्भ होने वाले इंग्लैंड के महत्त्वपूर्ण साल में जो बात इंग्लैंड की जनता के साथ ही साथ वहाँ की कैबिनेट में भी प्रमुख थी, वह बात एक बड़े अंग्रेजी उदारवादी समाचार-पत्र से लिये गये एक अग्रलेख की निम्नलिखित पंक्तियों में ठीक-ठीक से अभिव्यक्त है।

"कुछ वर्षों की शान्ति का अर्थ है कुछ वर्ष प्राप्त हो गये और जिस युद्ध के बारे में सोचा जाता है कि कुछ दिनों में होगा, वह शायद कभी न हो।"[3]

मानव के ज्ञान-भाण्डार में अहस्तक्षेप के सिद्धान्त को पश्चिम की मौलिक देन स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि दो हजार वर्ष पहले यह चीनी दुनिया में प्रचलित था। मगर 'संयोग'

---

[1] अफलातून की पालिटिक्स, २७२, डी० ६—२७३ ई०।

[2] होरेस : ओड्स, पुस्तक १, ओड ३५।

[3] द मैनचेस्टर गार्जियन, १३ जुलाई १९३६।

की चीनी पूजा हमारी अधम प्रकार से उत्पन्न पूजा से भिन्न थी । १८ वीं शती के फ्रांसीसी बूर्जुआ अहस्तक्षेप एवं अबाध्य प्रवेश में विश्वास करने लगे, क्योंकि उन्होंने अपने विरोधी अंग्रेजों की सम्पन्नता देखी, उसकी स्पर्द्धा की और उसका विश्लेषण किया तथा इस परिणाम पर पहुँचे कि बूर्जुआ फ्रांस भी उसी प्रकार उन्नति कर सकता है यदि सम्राट् लुई भी सम्राट् जार्ज का अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय कि बूर्जुआ जो चाहे उसका उत्पादन बिना बाधा के करे, और बिना चुंगी के जिस बाजार में चाहे माल भेज सके । दूसरी ओर ईसा के जन्म से पहले दूसरी शती के आरम्भिक दशकों में थका हुआ चीनी संसार विचलन के मार्ग पर चल रहा था । यह सरल मार्ग यह नहीं कि मिल से तैयार माल व्यस्त बाजार में चलतू रास्ते से टट्टुओं द्वारा पहुँचाया जाय, किन्तु वह राह जो जीवन को शाश्वत मार्ग और सत्य है । यह शाश्वत मार्ग है 'ताओ' । जिसका अर्थ है—वह प्रणाली जिसमें विश्व का कार्य होता है और अन्त में कुछ-कुछ ईश्वर के समान, जिसे हम अमूर्त और दार्शनिक रूप में समझते हैं ।[1]

> महान् ताओ एक नौका है, जो विचलन के पथ पर चलती है
> यह इधर भी जा सकती है, उधर भी जा सकती है ।[2]

किन्तु अहस्तक्षेप की देवी का एक दूसरा रूप भी है, जहाँ वह 'संयोग' के रूप में नहीं, वरन् 'आवश्यकता' के रूप में पूजी जाती है । आवश्यकता और संयोग के सम्बन्ध में दो विचार एक ही बात को दो ढंगों से देखना है । उदाहरणार्थ, अफलातून की दृष्टि में पतवारहीन नौका की गति उस विश्व की अव्यवस्था के समान है, जिसे ईश्वर ने त्याग दिया है, किन्तु ऐसे व्यक्ति की दृष्टि में, जिसे गति-विज्ञान (डाइनेमिक्स) और भौतिक-विज्ञान (फिजिक्स) का ज्ञान है, पर इसे हवा तथा जल के माध्यम में लहरों तथा धाराओं का बहुत ही व्यवस्थित उदाहरण समझेगा । जब विचलन के पथ पर मनुष्य की आत्मा यह अनुभव करती है कि धोखा देने वाली शक्ति आत्मा की केवल नकारात्मक इच्छा नहीं है, बल्कि स्वयं एक वस्तु है, तब इस अपूर्व देवी का चेहरा आत्मपरक अर्थात् नकारात्मक स्वरूप से वस्तुपरक और सकारात्मक रूप में बदल जाता है । इसके आत्मपरक और नकारात्मक रूप को संयोग और इसके वस्तुपरक तथा सकारात्मक रूप को 'आवश्यकता' के नाम से पुकारते हैं । किन्तु इससे देवी की मुख्य प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता, न देवी से जो विपद्ग्रस्त लोग हैं उनकी दशा में परिवर्तन होता है ।

जीवन के भौतिक धरातल पर आवश्यकता के सर्वशक्तिशाली मन को दार्शनिक डीमोक्रिटस ने हेलेनी विचारों में प्रवेश किया । इस दार्शनिक की लम्बी जिन्दगी (सम्भवतः ई० पू० ४६०-३६०) तक थी । इसे अपनी यौवनावस्था में हेलेनी सभ्यता का पतन देखने का अवसर मिला और इसके बाद ७० वर्षों तक वह उसके विघटन की प्रणाली देखता रहा, किन्तु भौतिक क्षेत्र से नैतिक क्षेत्र पर नियतिवाद के साम्राज्य के विस्तार की सभी समस्याओं की उसने अवहेलना की । भौतिक नियतिवाद बैबिलोनी संसार के शक्तिशाली अल्पसंख्यक के ज्योतिष दर्शन का आधार था और कालडियनों ने उसी सिद्धान्त का मानव जीवन और भाग्यों में विस्तार करने में संकोच नहीं किया । सम्भव है कि स्टोइक दर्शन के प्रतिष्ठापक ज़ीनो ने, अपने भाग्यवाद को,

---

[1] ए० वैली : द वे एण्ड इट्स पावर, पृ० ३० ।

[2] टाओ टे किंग, अध्याय ३४ (वैली के अनुवाद से)

जिसे उसने अपने सारे सम्प्रदाय को प्रभावित कर दिया था, डिमोक्रिटस से नहीं बैबिलोनी स्रोतों से पाया हो। यह ज़ीनो के सबसे विख्यात शिष्य सम्राट् मार्क्स आरीलियस के 'चिन्तनों' में सर्वत्र दिखाई देता है।

आधुनिक पश्चिमी जगत् ने 'आवश्यकता' के साम्राज्य का आर्थिक जगत् में विस्तार करने के लिए नयी बात पैदा की। आर्थिक क्षेत्र वास्तव में सामाजिक जीवन का ऐसा क्षेत्र है, जिसे प्रायः उन सभी विचारकों ने छोड़ दिया जिन्होंने दूसरे समाजों के विचारों को निर्दिष्ट किया था। आर्थिक नियतिवाद की क्लासिकी अभिव्यक्ति निश्चित रूप से काल मार्क्स का दर्शन या धर्म है, किन्तु आज के पश्चिमी जगत् में मार्क्सवादी ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो जान में या अनजान में अपना कार्य आर्थिक नियतिवाद के विश्वास पर करते हैं, उन लोगों की अपेक्षा जो मार्क्सवाद को स्वीकार करते हैं और उनमें अनेक विशिष्ट पूँजीपति लोग भी हैं।

मानसिक क्षेत्र में भी 'आवश्यकता' की सत्ता आधुनिक पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों के कम-से-कम एक नये गुट ने घोषित की है जिसके व्यक्तित्व की भावना में आत्मा का नियति की भावना में आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार किया है। यह इस कारण कि आत्मा को मनोविषयक आचरण की प्रणाली के विश्लेषण में उन्हें आरम्भिक सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि मनोविश्लेषण का विज्ञान अभी नया है, आत्मा के माध्यम में 'आवश्यकता' की पूजा ने इस युग के सबसे कुख्यात राजनीतिक को उसके अल्पकालीन विजय के क्षण में अपना अनुगामी बना लिया।

"निद्राचर (सोमनैंबुलिस्ट) के विश्वास के साथ मैं अपने रास्ते पर चल रहा हूँ जिस मार्ग को परमात्मा ने मेरे लिए निश्चित किया है।"

१४ मार्च १९३६ को म्युनिख में दिये गये एडाल्फ हिटलर के भाषण से ये शब्द उद्धृत किये गये हैं। इन शब्दों ने तीसरे जर्मन साम्राज्य की सीमाओं से दूर के (और कदाचित् साम्राज्य के भीतर भी) लाखों यूरोपीय नर-नारियों में कँपकँपी उत्पन्न कर दी, जिन्हें अभी सात दिन पहले जर्मन सेना का राइन-भूमि पर पुनः कब्जा होने से धक्का लगा था और जो उस धक्के से सँभल नहीं पाये थे।

मनोवैज्ञानिक नियतिवाद के मत का दूसरा रूप भी है जो संसार में एक मानव-जीवन के समय के संकुचित विस्तार की सीमा को तोड़ देता है और कारण और कार्य की श्रृंखला को समय में भूत तथा भविष्य में ले जाता है। भूत में धरती पर मानव के आगमन की ओर और भविष्य में उसके अन्तिम विसर्जन की ओर। इस सिद्धान्त के दो रूप हैं, जो अलग-अलग उत्पन्न हुए हैं। एक रूप ईसाई धर्म के मूल पाप की धारणा है, दूसरा रूप भारतीय कर्म की धारणा है, जिसने हिन्दू धर्म तथा बौद्ध दर्शन में प्रवेश किया है। एक ही सिद्धान्त के दोनों स्वरूप कारण और कार्य की आध्यात्मिक श्रृंखला की मूल बात पर सहमत हैं और ये निरन्तर एक लौकिक जीवन से दूसरे लौकिक जीवन तक चलते रहते हैं। ईसाई और भारतीय दोनों दृष्टियों में आज के मनुष्य का चरित्र और आचरण अतीत के जीवनों या एक पहले के जीवन से बने हुए हैं। यहाँ तक हिन्दू और ईसाई विचार मेल खाता है, किन्तु इसके आगे वह एक-दूसरे से भिन्न हो जाता है।

मूल पाप का ईसाई सिद्धान्त कहता है कि मानव जाति के पुरखा के एक विशेष वैयक्तिक पाप ने अपने सभी वंशजों पर उत्तराधिकार के रूप में आध्यात्मिक दुर्बलता प्रदान की है और यदि आदम अपने ईश्वर की कृपा से तिरस्कृत न होता—और आदम की प्रत्येक सन्तान को आदम

का यह पाप विरासत में मिला है —यद्यपि प्रत्येक आत्मा का अलग व्यक्तित्व है और उसकी निजी मनोवैज्ञानिक प्रकृति है, और ईसाई धर्म के ये मुख्य मत हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार आदम में यह क्षमता थी कि अर्जित आध्यात्मिक गुण को अपने वंशजों में संचारित कर सके और केवल वही उस प्रजाति को ये गुण दे सकता था जिसका वह पूर्वज था।

मूल पाप के सिद्धान्त का यह अन्तिम रूप कर्म की कल्पना में नहीं पाया जाता है। इस भारतीय सिद्धान्त के अनुसार कोई भी विशेषता जिसे कोई भी व्यक्ति अपने कर्मों से प्राप्त करता है, और भला या बुरा, बिना अपवाद के आरम्भ से अन्त तक संचारित होता है। इस संचारित आध्यात्मिक उत्तराधिकार का प्राप्तकर्ता कोई वंश वृक्ष नहीं है, जिसमें विभिन्न व्यक्तियों की श्रृंखला है, बल्कि यह एक आध्यात्मिक अटूट क्रम है, जो बोधजगत् में बराबर आता-जाता रहता है, पुनर्जन्म के रूप में। बौद्ध दर्शन के अनुसार कर्म की निरन्तरता 'आत्माओं के पुनर्जन्म' का कारण है, धर्म का एक मूल सिद्धान्त है।

अन्त में हमें नियतिवाद का ईश्वरीय रूप देखना है। यह रूप कदाचित् अत्यधिक उटपटांग और सभी में पतित है, क्योंकि इस ईश्वरीय नियतिवाद में मूर्ति के रूप में सच्चे ईश्वर की पूजा होती है। इस प्रकार के प्रच्छन्न मूर्तिपूजक उपासना की वस्तु में ईश्वर के सर्व गुणों को आरोपित किये रहते हैं और साथ-ही-साथ एक गुणातीतत्त्व पर इतना अधिक जोर देते हैं कि उनका ईश्वर अज्ञेय, अनाराध्य एवं व्यक्तित्वहीन हो जाता है जैसे स्वयं 'आवश्यकता की देवी।' सीरियाई समाज के आन्तरिक सर्वहारा से उद्भूत 'उच्चतर धर्म' ऐसे आध्यात्मिक क्षेत्र हैं, जिनमें इस प्रकार के गुणातीत विकृत ईश्वरवाद की मूर्तिपूजा बहुत दिखाई पड़ती है। इसके दो क्लासिकी उदाहरण इस्लाम की किसमत की कल्पना है और कालविन के नियतिवाद का सिद्धान्त है। कालविन जीनेवा के उग्र प्रोटेस्टेन्ट धर्म के संस्थापक तथा व्यवस्थापक थे।

कालविनवाद ने ऐसी समस्या उत्पन्न की जिसने अनेक लोगों को उलझन में डाल दिया। इसके लिए हमें कुछ समाधान ढूंढ़ निकालना चाहिए। हमने बताया है कि नियतिवादी मत उस विचलन की भावना की अभिव्यक्ति है जो सामाजिक विघटन का एक मनोवैज्ञानिक लक्षण है। किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अनेक नियतिवादी लोगों में वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप में भी असाधारण शक्ति तथा क्रियाशीलता उद्देश्यपूर्णता तथा असाधारण उत्तरदायित्व के गुण रहे हैं।

"धार्मिक नीति का एक मुख्य विरोधाभास है कि उन्हीं लोगों में संसार को उलट देने की शक्ति है जिनको विश्वास है कि यह पहले से ही निश्चित है कि सबसे अच्छी तरह यह कार्य ऐसी शक्ति द्वारा होता है जिसके हाथ की वे केवल कठपुतली हैं—यह कालविन वाद में विशेष रूप से पाया जाता है।"[१]

भाग्यवादी मत के अनेक कुख्यात उदाहरणों में से कालविनवाद केवल एक है, किन्तु उस मत के अनेक विचारकों के आचरण उससे भिन्न हैं। कालविनवादियों (जेनेवी ह्यूजिनो, स्काटी, अंग्रेजी और अमेरिकन) की मनोवृत्ति इसी प्रकार ईश्वरवादी दूसरे नियतिवादियों के समान

---

१. आर० एच० टानी : रिलीजन एण्ड दि राइज़ आव कैपिटैलिज्म, पृ० १२६।

दिखाई पड़ती है। यहूदी ज़ीलाट, अरब के आदिम मुसलमान, और दूसरे युगों के तथा दूसरी जाति के मुसलमान जैसे उसमानिया साम्राज्य के जानिसारी और सूडान महदियों को इसी उदाहरण में लिया जा सकता है। और १९ वीं शती के पश्चिमी उदार प्रगतिवादी २० वीं शती के रूस के साम्यवादी मार्क्सवादियों में हमें दो वास्तविक भाग्यवादी मिलते हैं। इन नास्तिकों की प्रकृति उनके साथी 'आवश्यकता' की देवी के आस्तिक पुजरियों के समान है। साम्यवादियों और कालविनवादियों की समानता अंग्रेजी इतिहासकार ने, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, सुन्दरता से चित्रित किया है।

"यह कहना नितान्त काल्पनिक नहीं है कि संकीर्ण क्षेत्र में किन्तु शक्तिशाली ढंग से, कालविन ने १६ वीं शती में बूर्जुआ के लिए वही किया जो १९ वीं शती में मार्क्स ने सर्वहारा के लिए किया या नियतिवादी सिद्धान्त ने एक आश्वासन की भूख की तृप्ति की कि विश्व की शक्तियाँ ईश्वर के द्वारा मनोनीत लोगों के साथ रहती हैं। एक दूसरे युग में इसी प्रकार ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त ने ढाढ़स दिलाया था। उसने उन्हें यह अनुभव कराया कि वे विशिष्ट लोग हैं और यह कि ईश्वर की योजना में उन्हें योगदान करना है, इसको उन्हें समझना चाहिए।"[१]

सोलहवीं शती के कालविनवाद और २० वीं शती के साम्यवाद के बीच की ऐतिहासिक कड़ी १९ वीं शती का उदारवाद (लिबरालिज्म) है।

'इस समय तक नियतिवाद का अधिक प्रचलन था, किन्तु नियतिवाद का मत अवसादी क्यों होना चाहिए? जिस विधान से हम मुक्त नहीं हो सकते, वह प्रगति का शुभ नियम है, वह उन्नति जिसे हम आँकड़ों में नाप सकते हैं।' ऐसी परिस्थिति में रखने और शक्तिपूर्वक विकास की उस राह का अनुसरण करने के लिए हमें अपने नक्षत्रों को धन्यवाद देना चाहिए, जिसे प्रकृति ने हमारे लिए निश्चित कर रखा है और जिसका विरोध करना अपावन और बेकार है। इस प्रकार प्रगति का अंधविश्वास दृढ़ रूप से स्थापित हो गया। लोकप्रिय धर्म होने के लिए केवल अन्धविश्वास को दर्शन के अधीन कर देने की आवश्यकता है। प्रगति के अन्धविश्वास का ऐसा विशिष्ट भाग्य था कि उसने कम-से-कम तीन दर्शनों को अधीन कर लिया था। ये तीन दर्शन हैं हिगेल, कामटे और डारविन के। आश्चर्यजनक बात यह है कि इन दर्शनों में से कोई वास्तविक रूप से उस विश्वास के पक्ष में नहीं है जिसका वह समर्थन करता है।"[२]

क्या हमें तब इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि नियतिवादी दर्शन की स्वीकृति स्वयं वह प्रेरणा है जो कार्य की सफलता के लिए उत्तेजित करता है? नहीं, हम ऐसा निर्णय नहीं कर सकते क्योंकि नियतिवादी मतावलम्बियों पर उनके धार्मिक विश्वास का दृढ़ और प्रेरणात्मक ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्होंने समझा कि उनकी इच्छा और ईश्वर की इच्छा या प्रकृति का विधान या 'आवश्यकता' के आदर्श सब एक हैं, इसीलिए वे निश्चय रूप से होंगे ही। कालविनवादी जेहोवा वह ईश्वर है जो अपने विशेष लोगों की रक्षा करता है। मार्क्सवादी ऐतिहासिक आवश्यकता अवैयक्तिक शक्ति है जो सर्वहारा की तानाशाही स्थापित करती है। इस प्रकार की धारणा हमें उस विजय में विश्वास दिलाती है जो नैतिकता का एक स्रोत है और अपना औचित्य

---

१. वही, पृ० ११२।

२. डब्ल्यू० आर० इंगे : दि आइडिया आव प्रोग्रेस, पृ० ८–९।

इसीलिए स्थापित करती है, जैसा कि युद्ध का इतिहास हमें बताता है और वह इस परिणाम पर पहुँचती है जिसे पहले ही सोच रखा है । 'पोसंट क्रिया पोएसे विडेन्ट्यूर'[1] 'वह अमुक कार्य कर सकते हैं, क्योंकि इनका विश्वास है कि हम कर सकते हैं ।' यही वरजीलियन नौका के दौड़ में विजयी दल की सफलता के रहस्य का यह सूत्र है कि 'वे कर सकते हैं क्योंकि उन्हें ऐसा विश्वास है कि वे कर सकते हैं ।' संक्षेप में, आवश्यकता सशक्त सहायक हो सकती है, जब वह ऐसा मान ली जाती है, किन्तु वास्तव में यह धारणा 'यूबरीस' और बड़े रूप में है––जो बाद के परिणामों से पता चलता है कि यह धारणा झूठी है । विजय का विश्वास अन्त में गोलियथ के विनाश से सिद्ध हुआ जब उसके सफल युद्धों की लम्बी शृंखला टूट गयी तथा डेविड के साथ युद्ध में समाप्त हो गयी । मार्क्सवादी करीब सौ वर्षों तक अपने इसी विश्वास में रह चुके हैं और कालविनवादी चार शतियों तक यद्यपि अभी उनकी पराजय नहीं हुई । किन्तु मुसलमानों ने तेरह शतियों के पहले ऐसे ही गौरवपूर्ण विश्वास में अपने आरम्भिक काल में कम महान् कार्य नहीं किये । किन्तु अन्त में उनका बुरा समय आया । आपत्ति के बाद के दिनों में उनकी प्रतिक्रिया की दुर्बलता हमें बताती है कि जब तक चुनौतियाँ अपनी प्रभावशाली प्रतिक्रिया के क्षेत्र में स्वयं भिड़ती रहती हैं, तब तक नियतिवाद प्रतिकूल रूप में सदाचार की जड़ खोखली करने में ठीक उतना ही समर्थ होता है, जितना वह उसे उत्तेजित करने में । भ्रान्तिपूर्ण नियतिवादी को अपने कठोर अनुभव के द्वारा यह शिक्षा मिली है कि उनका ईश्वर अन्ततो गत्वा उनके पक्ष में नहीं है और अन्त में वह दुर्भाग्यपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वह और उसके बौने मित्र :

> असहाय मोहरे हैं उस खेल के जिसे वह (परमात्मा) खेलता है,
> रात और दिन के सतरंज की बिसात पर
> वह इधर-उधर चलता है, शह लगाता है और गोटियाँ मारता है
> और एक के बाद एक अपने डब्बे में रखता जाता है ।[2]

विचलन की भावना निष्क्रिय है और उसका प्रतिरूप तथा उलटा पाप की भावना है जो नैतिक पराजय की भावना की ठीक प्रतिक्रिया है । मूल में और भावना में पाप तथा विचलन की भावना एक-दूसरे के विरोधी हैं । क्योंकि विचलन की भावना में अफीम का नशा-सा होता है जिससे आत्मा बुराई को स्वीकार कर लेती है, क्योंकि वह उस व्यक्ति के नियन्त्रण से परे है और बाहरी परिस्थितियों में रहती है । पाप की भावना में उत्तेजक प्रभाव होता है, क्योंकि वह पापी से कहती है कि पाप अन्ततो गत्वा बाहरी नहीं है । यह व्यक्ति में ही है । इसीलिए व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है । केवल यदि वह परमात्मा के उद्देश्यों की पूर्ति करे और अपने को ईश्वर की कृपा पर छोड़ दे । यहीं पर उन दोनों भावों में अन्तर है जब ईसाई निराशा के दलदल में फँसा था और जब वह फाटक की ओर दौड़ा था ।

किन्तु एक प्रकार की अवान्तर भूमि है जिसमें दो भावनाएँ एक दूसरे से मिल जाती हैं जैसा भारतीय कर्म की धारणा में यह स्पष्टत: होता है । कर्म 'मूल पाप' की भाँति उत्तरा-

---

[1] वर्जिल : एनीड, पुस्तक, पंचम, १, २३१ ।
[2] ई० फिट्जेराल्ड : रूबाइयात आव उमर खैय्याम, (चौदहवाँ संस्करण) २६६ ।

धिकार की आध्यात्मिक विरासत माना गया है। जिससे आत्मा लदी हुई है और आत्मा उसे हटा नहीं सकती, किन्तु यह बोझ व्यक्ति के निजी कार्यों से किसी भी क्षण घटाया या बढ़ाया जा सकता है। उस ईसाई धर्म में भी इसी प्रकार का रास्ता अजेय भाग्य से जेय पाप तक है। क्योंकि ईसाई धर्म में आत्मा को मूल पाप से शुद्ध होने की सम्भावना प्रदान की गयी है जो पाप आदम से उत्तराधिकार में मिला है। परमात्मा की कृपा को ढूंढने और उसके पाने पर उस पाप से हम शुद्ध हो सकते हैं और मानव के प्रयत्न और ईश्वर की कृपा से हो सकता है।

मिस्री संकटकाल में, मृत्यु के बाद जीवन में पाप की भावना का पता लगता है, किन्तु क्लासिकी उदाहरण इसरायल के पैगम्बर तथा सीरियाई संकटकाल में जूडा का आध्यात्मिक अनुभव है। जब ये पैगम्बर सत्य की खोज कर रहे थे और अपना सन्देश उस समाज को दे रहे थे जिससे वे निकले थे, तथा जिसके सदस्यों को उपदेश दे रहे थे, वह समाज असीरियाई शेर के पंजों में असहाय होकर कष्ट में पड़ा था। उन आत्माओं के लिए उन कष्टों की प्रत्यक्ष रूप से अवहेलना करना महान् और अद्भुत आध्यात्मिक कार्य था कि वे अपने कष्ट के कारण को बाहरी और भौतिक अनिवार्य कारण न समझकर यह समझे कि बाहरी आभास के बावजूद उनका ही पाप था जो उनके कष्टों का कारण था और उन पर सच्ची मुक्ति प्राप्त करना उनके अपने ही हाथों में था।

इस सत्य का जिसे सीरियाई समाज ने अपने पतन और विघटन के कठोर परीक्षाकाल में पाया है, इसरायल के पैगम्बरों से उत्तराधिकार के रूप में मिला था तथा उसका प्रचार हेलेनी संसार के सीरियाई आन्तरिक सर्वहारा द्वारा ईसाई मत के रूप में किया गया। इस विदेशी सिद्धान्त के बिना जिसे उन अ-हेलेनी विचारों वाले सीरियाई लोगों ने जिसे ग्रहण किया था हेलेनी समाज वह शिक्षा न ग्रहण कर पाता जो उसकी अपनी प्रकृति के विपरीत थी। साथ ही हेलेनियों ने उस शिक्षा को बहुत अधिक कठिन पाया होता यदि वे स्वयं उसी दिशा में अपने से न चलते होते।

जब सीरियाई धारा के साथ हेलेनी प्रवाह ईसाई धर्म की सरिता में मिला इसके शतियों पहले से ही पाप की भावना की चेतना को हेलेनीवाद के आध्यात्मिक इतिहास में खोजा जा सकता है।

यदि ओरफीवाद के उद्देश्य, प्रकृति और उद्भव की हमारी व्याख्या ठीक है तो प्रमाण है कि हेलेनी सभ्यता के पतन के पूर्व कम-से-कम कुछ हेलेनी आत्माओं ने अपनी स्वाभाविक सांस्कृतिक विरासत में आध्यात्मिक रिक्तता का अनुभव किया कि उन्होंने कृत्रिम रूप से 'उच्चतर धर्म' का आविष्कार करने में असाधारण शक्ति लगायी जो उनसे उत्पन्न मिनोई सभ्यता उन्हें देने में असफल रही। किसी भी तरह यह निश्चित है कि ई० पू० ४३१ के पतन के बाद सबसे पहली पीढ़ी में ओरफीवाद का प्रयोग एवं दुरुपयोग किया जा रहा था। ऐसा उन आत्माओं को सन्तोष देने के उद्देश्य से किया जा रहा था जो पहले से ही पापग्रस्त थीं और किसी प्रकार उससे मुक्ति के लिए अन्धकार में रास्ता ढूंढ़ रही थीं। इसके लिए प्रमाणस्वरूप अफलातून का एक उदाहरण है। ऐसा ही लूथर की लेखनी से निकल सकता था :

"नीमहकीम और ज्योतिषी अपना सौदा अमीरों के हाथ बेचते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि हमारे पास परमात्मा से प्राप्त शक्ति है तथा यह शक्ति हमने बलिदान और जादू-टोने से

प्राप्त की है। ये किसी भी पाप का शमन मनोरंजन एवं उत्सवों से करते हैं जिन्हें उन्होंने, स्वयं या उनके पूर्वजों ने किया है। वे इन पुस्तकों (म्युसियस या ओरफियुज की) के गोरखधन्धे का अनुसरण करते हैं। वे सरकार के साथ ही साधारण जनता को भी बहकाते हैं कि पाप से मुक्ति तथा शुद्धि बलिदान से या सुखद बच्चे के खेल से प्राप्त की जा सकती है। वे यह भी कहते हैं कि ये धार्मिक 'कृत्य' (जैसा वे इन्हें इस सन्दर्भ में कहते हैं) मरे हुए लोगों के लिए उतने ही लाभकारी हैं जितने जीवित के लिए। मृत्यु के बाद के संसार की घोर यन्त्रणा से मुक्त करते हैं यदि हम यहाँ और अब, बलिदानों की उपेक्षा करते हैं तो हमें भयावह दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा।"[1]

हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक की आत्माओं में पाप की भावना की यह प्रथम झलक उतनी ही निराशाजनक दिखाई देती है, जितनी वह घृणापूर्ण है। तिस पर भी चार शतियों के वाद हम हेलेनी पाप की भावना पाते हैं जो कष्ट की अग्नि में इतनी शुद्ध हो गयी कि पहचानी नहीं जाती, क्योंकि आगस्टन युग के हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक की आवाज में करीब-करीब ईसाई मत की प्रतिध्वनि है, जो स्वयं वर्जिल की कविता में सुनी जा सकती है। पहली जार्जिक कविता के अन्त में विख्यात प्रार्थना है कि दुखदायी विचलन के पथ से मुक्ति हो और यह प्रार्थना पाप की स्वीकृति का रूप हो जाती है और यद्यपि यह पाप जिससे मुक्ति की कवि ईश्वर से अर्चना करता है, मूल पाप ही है जो पौराणिक ट्रोजन पूर्वजों से दाय के रूप में प्राप्त हुआ है। पदों की सम्पूर्ण शक्ति पाठकों को यह मानने के लिए बाध्य करती है कि वह एक दृष्टान्त है और जिस पाप को रोमन वर्जिल के समय में वास्तविक रूप से नियोजित कर रहे थे, वह दो शतियों की लम्बी प्रगति में किया गया पाप था, जब वे हेनिबली युद्ध में अग्रसर थे।

वर्जिल की कविता के रचने के एक शती भीतर ही, जो भाव इस कविता में है, हेलेनी समाज के एक क्षेत्र में शक्तिशाली हो चुकी थी। यह हेलेनी समाज अभी-अभी ईसाई धर्म के प्रभाव में आया था। सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि प्लूटार्क और सेनेका तथा एपिक्टेटस और मार्क्स आरीलियस की पीढ़ियाँ सर्वहारा के उद्गम से आये प्रकाश तक पहुँचने के लिए अनजाने ही तैयार हो रही थीं। यद्यपि इन चतुर हेलेनी बौद्धिक लोगों ने कभी इस स्रोत से किसी अच्छी वात के होने का अनुमान नहीं किया था। दोनों ने, हृदय की अज्ञात तैयारी में तथा इस चुने गये विषय में, सर्वहारा की इस प्रदत्त प्रबुद्धता को चतुराई से अस्वीकार किया। इसका चित्रण रावर्ट ब्राउनिंग के पात्र 'क्लिओन' में बड़ी ही अन्तर्दृष्टि एवं खूबी के साथ किया गया है। ईसाई युग की प्रथम शती में हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक का क्लिओन काल्पनिक दार्शनिक था। अपने ऐतिहासिक अध्ययन से उसके मन की ऐसी दशा हो गयी जिसे वह 'गम्भीर निरुत्साह' कहता है। फिर भी जब यह उसे बताया गया कि वह अपनी समस्याओं को जिन्हें वह स्वयं सुलझा न सका था, किसी एक 'पालस' को बताना चाहिए, तब उसने स्वीकार किया कि उसका आत्मसम्मान उत्तेजित हो उठा है।

तुम नहीं सोच सकते कि एक बर्बर यहूदी,
जैसा पालस, जिसका खतना हुआ है,

---

[1] प्लेटो : रिपबलिक, ३६४ बी–३६५ ए।

उस रहस्य को जानता है, जो हम लोगों से छिपा है ।[१]

हेलेनी और सीरियाई समाज ही केवल वे सभ्यताएँ नहीं हैं, जिनमें सामाजिक ढाँचे के नष्ट होने के आघात से पाप की भावना का जागरण हुआ है । ऐसे समाजों की सूची बनाने का प्रयत्न किये बिना, उपसंहार में हम कह सकते हैं कि हमारे अपने समाज को उस सूची में सम्मिलित होना चाहिए ।

निश्चय रूप से पाप की भावना ऐसी है जिससे आधुनिक पश्चिमी बौना जगत् अच्छी तरह परिचित है । यह परिचय उस पर लादा गया है, क्योंकि पाप की भावना 'उच्चतर धर्म' का महत्वपूर्ण रूप है, जो हमें उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है । इस स्थिति में किन्तु, घनिष्ठता से उतनी घृणा नहीं, विरक्ति अधिक उत्पन्न हुई । आधुनिक पश्चिमी संसार के और इसके विपरीत छठीं शती के हेलेनी संसार के स्वभाव के बीच मानव स्वभाव में भ्रष्टता दिखाई देती है । हेलेनी समाज ने अपना जीवन, बर्बर बहुदेव-पूजा की नीरस और असन्तोषपूर्ण धार्मिक विरासत से आरम्भ किया था । वह समाज अपनी आध्यात्मिक दरिद्रता के प्रति सचेत दिखाई पड़ा और उसने उस रिक्तता को पूरा करने के लिए ओरफीवाद के उच्चतर धर्म का आविष्कार किया, जैसा दूसरी सभ्यताओं ने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया था । ओरफीवाद के संस्कार और सिद्धान्त से स्पष्ट होता है कि पाप की भावना अवरुद्ध धार्मिक भावना है, जिससे छठीं शती के हेलेनी सामान्य स्वाभाविक ढंग से प्रकट करने के लिए बहुत उत्सुक थे । हेलेनी समाज के विपरीत हमारा पश्चिमी समाज ऐसी उदारतापूर्ण सभ्यता है जो सभ्यताएँ उच्चतर धर्म की छत्रछाया तथा सार्वभौम धर्म की प्रारम्भिक अवस्था में विकसित हो चुकी है । और चूँकि पश्चिमी मनुष्य अपने को जन्म-सिद्ध ईसाई समझता है । उसने बहुधा ईसाई धर्म का अवमूल्यन किया है और अस्वीकार करने की सीमा तक पहुँच गया है । वास्तव में हेलेनीवादी पन्थ इटालियाई पुनर्जागरण के बाद से पश्चिमी धर्मनिरपेक्ष संस्कृति में बहुत शक्तिशाली तथा अनेक दृष्टियों से सफल रहा है । इसे हेलेनीवाद के रूढ़िवादी विचार के अनुसार कुछ अंशों में पुष्ट किया गया है और जीवित रखा गया है । इसे जीवन का ढंग बनाया गया है जिसमें सब आधुनिक पश्चिमी गुणों का समावेश है जिसमें पश्चिम का मानव जो सरलता से अपने को पाप की भावना से मुक्त कर देता है और अब बड़े परिश्रम से ईसाइयत के आध्यात्मिक विरासत से शुद्ध कर रहा है । यह संयोग की बात नहीं है कि प्रोटेस्टेन्टवाद के अनेक अद्यतन रूपों ने स्वर्ग की धारणा रखे रहने पर भी नरक की धारणा का बिलकुल तिरस्कार किया और शैतान की धारणा हास्य-अभिनेताओं और व्यंग्यकारों के लिए छोड़ दी है ।

आज हेलेनीवाद को भौतिक विज्ञान कोने में ढकेलता जा रहा है, किन्तु पाप की भावना से मुक्ति का उससे सुधार नहीं हुआ । हमारे सुधारक और उदारवादी लोग गरीबों के पाप को

---

[१] उपर्युक्त अनुच्छेद में उद्धृत प्रमाण के अनुसार ब्राउनिंग का काल्पनिक कवि क्लीओन का औचित्य इस तथ्य से अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि किंग प्रोट्स द्वारा क्लीओन के समक्ष उठायी गयी ईश्वरपरक समस्या केवल पाप की भावना से ही सम्बन्धित थी, वरन् आत्मा की अनश्वरता से भी सम्बन्धित थी ।

बाहरी परिस्थितियों के कारण से उत्पन्न दुर्भाग्य बताते हैं। 'गन्दी बस्ती में पैदा हुए मनुष्य से आप क्या आशा कर सकते हैं ?' और हमारे मनोविश्लेषणकर्ता अपने रोगियों के पापों को आन्तरिक परिस्थितियों, ग्रन्थियों एवं नाड़ियों के विकार के कारण उत्पन्न दुर्भाग्य रूप में मानते हैं। पाप का यही कारण माना जाता और रोग के रूप में उसका शमन करने की चेष्टा की जाती है। इसी प्रकार का विचार सैमुएल बटलर के अरह्वोन के दार्शनिकों द्वारा पहले ही बताया गया है। अरह्वोन में, जैसा पाठकों को याद होगा, गरीब श्री नासनिबोर को पारिवारिक चिकित्सक को बुलाना पड़ा क्योंकि वह गबन के रोग से पीड़ित था।

क्या आज का पश्चिम का मानव 'ऐथ' के प्रतिशोध के पहले अपने 'यूबरीस' से दूर रहकर उसके लिए पश्चात्ताप करेगा ? इसका उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता, किन्तु हम किसी निदान के लिए व्यग्रतापूर्वक आध्यात्मिक जीवन के आध्यात्मिक धरातल की सूक्ष्म परीक्षा कर सकते हैं। इस निदान से हमें यह आशा प्राप्त हो सकती है कि हम उस आध्यात्मिक मनःशक्ति के प्रयोग को पुनः प्राप्त कर रहे हैं, जिसे हम करीब-करीब निर्जीव कर चुके हैं।

(५) असामंजस्य की भावना

(अ) व्यवहार में बर्बरता तथा अभद्रता

व्यवहार में बर्बरता तथा अभद्रता के असामंजस्य की भावना उस मनोवृत्ति का निष्क्रिय विकल्प है, जो सभ्यता के विकास के साथ-साथ विकसित होती है। मन की इस अवस्था का व्यावहारिक रूप तब प्रकट होता है, जब वह व्यावहारिक अनिर्णयात्मक रूप में रहती है और सामाजिक विघटन की क्रिया में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकट होता है। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्र, धर्म, साहित्य, भाषा, कला के साथ-ही-साथ अधिक विस्तृत एवं अनिश्चित 'व्यवहार एवं रीति-रिवाज' के क्षेत्र में भी यह प्रकट होता है। अन्तिम क्षेत्र से ही विचार करना सरल होगा।

इसका प्रमाण खोजने के लिए हम सम्भवतः महान् आशा के साथ अपनी दृष्टि आन्तरिक सर्वहारा की ओर मोड़ेंगे, क्योंकि हम पहले से ही देख चुके हैं कि आन्तरिक सर्वहारा की मूल तथा सामान्य विपत्ति जड़ से निर्मूल होने का संकट है। सामाजिक उन्मूलन का यह भयावह अनुभव और अनुभवों से अधिक पोड़ित आत्माओं में असामंजस्य की भावना उत्पन्न कर देती है। यह पहले से ही सोची सम्भावना तथ्यों से प्रमाणित नहीं होती। क्योंकि बहुधा जिस कठिन विपत्ति में आन्तरिक सर्वहारा पड़ता है, वह अधिकतम कठिनाई प्रेरणा का कार्य करती है और हम देखते हैं कि निर्मूलित, निर्वासित एवं अरक्षित लोग जिनसे आन्तरिक सर्वहारा बना है अपनी सामाजिक विरासत को मजबूती से पकड़े ही नहीं हैं बल्कि प्रभावशाली अल्पसंख्यक में प्रसारित भी कर रहे हैं जिनसे यह सम्भावना कि अपनी संस्कृति इन लावारिसों और आश्रयहीन लोगों पर लादेंगे, जिन्हें उन्होंने अपने जाल में फँसाया है और अपने अधीन रखा है।

यह और भी आश्चर्यजनक है, जैसा हम देखते हैं, कि शक्तिशाली अल्पसंख्यक बाहरी सर्वहारा के सांस्कृतिक प्रभाव को इसी प्रकार ग्रहण करते हैं। यह विचार करते हुए कि ये लड़ाकू दल शक्तिशाली अल्पसंख्या से सीमा पर सैनिकों द्वारा अलग रहते हैं, ऐसी सम्भावना होती है

कि इनके बर्बर एवं सामाजिक विरासत में आकर्षण और सम्मान दोनों की कमी होती है। यद्यपि यह सम्मान और आकर्षण स्पष्ट रूप से उन जीर्ण सभ्यताओं से अब भी सम्बद्ध है, आन्तरिक सर्वहारा जिनका कम-से-कम कुछ रंगरूटों के रूप में वारिस है।

फिर भी हम देखते हैं कि तीन विभागों में, जिनमें विघटित सभ्यता वँट जाती है शक्तिशाली अल्पसंख्या ही है जो शीघ्र असामंजस्य की भावना ग्रहण करती है। शक्तिशाली अल्पसंख्यक के सर्वहाराकरण का अन्तिम परिणाम यह होता है कि सामाजिक जीवन में भेद समाप्त हो जाता है, जो सामाजिक पतन के दण्ड की सूचना है। अन्त में शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने पाप का प्रायश्चित्त उस भेद को समाप्त करके करता है जो उसी के कारण हुआ था और अपने ही सर्वहारा में मिल जाता है।

सर्वहाराकरण की यह प्रणाली दो समानान्तर रेखाओं में चलती है, एक तो आन्तरिक सर्वहारा से सम्पर्क के कारण अभद्रता तथा बाहरी सर्वहारा के सम्पर्क के कारण बर्बरता। यह उचित होगा कि साम्राज्य निर्माताओं की ग्रहणशीलता के प्रमाण को हम देखें क्योंकि शायद यह क्षमता परिणाम का कुछ समाधान कर सके।

वे सार्वभौम राज्य जिनके निर्माता साम्राज्य शिल्पी हैं अधिकांश सैनिक विजय द्वारा बने हैं। इसीलिए हम सैनिक तकनीक के क्षेत्र में ग्रहणशीलता के उदाहरण देखने की चेष्टा करें। उदाहरणार्थ, पालीबियस के अनुसार, रोमनों ने अपनी स्थानीय रिसालों की सेना की सज्जा समाप्त कर ग्रीकों की अपनायी जिन्हें वे पराजित कर रहे थे। मिस्र के 'नये साम्राज्य' के थीबी संस्थापकों ने अपने पराजित खानावदोश हाइक्सों से घोड़े और रथ को लड़ाई का आयुध लिया था। विजयी उसमानलियों ने पश्चिम की आविष्कार की हुई बन्दूकों को ग्रहण किया और जब इस विशेष लड़ाई का तख्ता पलटा तब पश्चिमी संसार ने उसमानलियों से अनुशासित अभ्यासयुक्त और युनिफार्मयुक्त पेशेवर पैदल सेना को अपनाया।

किन्तु ऐसा ऋणादान सेना तक ही सीमित नहीं है। हिरोडोटस ने लिखा है कि परशियनों ने, जो अपने को अपने पड़ोसियों से श्रेष्ठ समझते थे, मीडीस से उनकी वेशभूषा ली और अनेक विदेशी विलास की बातें ग्रहण कीं जिनमें यूनानियों का अस्वाभाविक व्यभिचार भी था। पांचवीं शती में एथेन्स की उग्र आलोचना करते हुए बूढ़े धनिक तन्त्री ने कहा है कि सामुद्रिक प्रभुत्व के कारण उसके देशवासियों का विदेशी रीति-रिवाजों द्वारा अधिक पतन हुआ है। और जो यूनानी समुदाय कम बाहर जाने वाले थे उनका पतन कम हुआ। हमारा धूमपान उत्तरी अमेरिका के आदिम रेड इंडियनों के उन्मूलन का स्मारक है, हमारा काफी तथा चायपान, पोलो खेलना, पायजामा पहनना, तुर्की स्नान, यूरोपीय व्यापारियों का उसमानिया कैसरे-रूम और मुगलों के कैसरे-हिन्द की गद्दी पर फिरंगी व्यापारियों के विजय की याद दिलाता है। हमारा जैज़ नृत्य अफ्रीकी नेग्रो को दास बनाने, अटलान्टिक के पार निर्वासित होकर अमरीका की धरती पर श्रम करने तथा तम्बाकू की खेती की याद दिलाता है। जिसने रेड इंडियनों के विनाश करने का स्थान लिया है।

विघटित समाज के शक्तिशाली अल्पसंख्यक की ग्रहणशीलता के कुछ अधिक कुख्यात प्रमाणों के बाद जब हम अपना सर्वेक्षण पहले उस आन्तरिक सर्वहारा के शान्तिमय सम्पर्क से

उत्पन्न शक्तिशाली अल्पसंख्यक से करें जो उसकी दया पर आश्रित है, तब वाहरी सर्वहारा के यौद्धिक सम्पर्क से जिससे उसमें बर्बरता उत्पन्न होती है जिसका अनुशासन वह हटा देता है।

जब शक्तिशाली अल्पसंख्यक का सम्पर्क आन्तरिक सर्वहारा के साथ शान्तिमय होता है इस रूप में कि सर्वहारा पर विजय प्राप्त हो चुकी है, तब बहुधा ऐसा होता है कि शासकों और शासितों का पहला सम्पर्क इस भूमिका के रूप में होता है कि सर्वहारा के रंगरूट साम्राज्य बनाने वालों की सेना में भर्ती होते हैं। उदाहरणार्थ रोमन साम्राज्य की स्थायी सेना का इतिहास क्रमागत मिश्रण की कहानी है जो तदर्थ और शौकिया सेना में भर्ती होने वालों से बदलकर उसके बाद ही स्थायी और पेशेवर सेना में आगस्टस द्वारा हुई। कुछ शतियों में जो सेना मूल में सम्भवतः पूरी-की-पूरी शक्तिशाली अल्पसंख्यकों से बनायी गयी थी अब आन्तरिक सर्वहारा की बनने लगी और अन्त में अधिकांश बाहरी सर्वहारा की भी। रोमन सेना का ही इतिहास ब्योरे के अन्तर के साथ ईसाई युग की सत्रहवीं शती के मांचू साम्राज्य निर्माताओं द्वारा निर्मित सुदूरपूर्वी सार्वभौम राज्य की सेना का है तथा अरब के इतिहास में उम्मेयद और अब्बासी खलीफाओं की अरब की सेना का है।

यदि हम उस महत्त्व के मूल्यांकन करने का प्रयत्न करें जो शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा आन्तरिक सर्वहारा के बीच का भेद मिटाने के लिए सेना ने किया है, तो हम देखेंगे, जैसी हम आशा भी करते हैं—कि यह तथ्य वहाँ बड़े महत्त्व का है, जहाँ शक्तिशाली अल्पसंख्यक साम्राज्य निर्माता रहे हैं और जो केवल सीमावर्ती नहीं थे, बल्कि विदेशी सीमा के लोग थे अर्थात् बर्बर वंश के साम्राज्य-निर्माता। क्योंकि सीमा वाले जीवन की सुविधाओं को ग्रहण करने में जितने कुशल हैं उससे कहीं अधिक बर्बर विजेता अधिक ग्रहणशील हैं, उन लोगों के बीच जिन पर उन्होंने विजय पायी है। ऐसा कुछ-न-कुछ मंचुओं तथा मुँचुरियाई चीनी प्रजा के बीच सेना के सम्पर्क से हुआ निष्कर्ष था। मांचू पूर्ण रूप से चीनियों में मिल गये और दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के विजेता आदिम अरब मुसलमानों के इतिहास में भी यही झुकाव दिखाई देता है कि कानूनी अलगाव को छोड़कर वास्तविक सहजीवन ग्रहण किया, और ये अनजाने ही सीरियाई सार्वभौम राज्य को पुनःस्थापित कर रहे थे, जिसे उन्होंने अर्द्ध परिपक्व रूप में पराभूत एकेमेनिडी साम्राज्य से पहले पाया था।

जब हम विकासोन्मुख समाज में विकसित होते हुए शक्तिशाली अल्पसंख्यक के इतिहास की ओर, जैसा कि प्रभावशाली अल्पसंख्यक सामान्यतः विकसित होता है, दृष्टि डालते हैं तब सैनिक तथ्य को छोड़ नहीं सकते। किन्तु, हम देखेंगे कि सैनिक समागम के स्थान पर व्यापार की साझेदारी आ जाती है। प्राचीन धनतन्त्री ने कहा है कि सागरतन्त्री एथेन्स में गलियों के निम्न-वर्ग के नागरिकों तथा विदेशी दासों में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता था। रोम गणराज्य के बाद के दिनों में रोमन अभिजात परिवारों की व्यवस्था उनके असंख्य नौकरों तथा विस्तृत संगठन के साथ अनेक योग्यतम स्वामियों के स्वतन्त्र किये हुए दास अतिरिक्त अंग के रूप में कर रहे थे और जब सीजर का परिवार सिनेट और रोमन सार्वभौम राज्य की व्यवस्था करने वाले लोगों के साथ हो गया, तब सीजर के मुक्त दास केबिनेट के मन्त्री हो गये। आरम्भिक रोमन साम्राज्य के मुक्त दास उसमानिया साम्राज्य के घरेलू दासों के समान ही थे, जिन्हें बहुत शक्ति मिल गयी थी और जो प्रधान मन्त्री के शक्तिशाली तथा खतरनाक पद तक पहुँच गये थे।

शक्तिशाली अल्पसंख्यक और आन्तरिक सर्वहारा के बीच के सहजीवन के सभी उदाहरणों में दोनों दल प्रभावित होते थे। प्रत्येक पर प्रभाव ऐसा होता था कि एक वर्ग दूसरे से मिल जाने की ओर अग्रसर होता था। 'व्यवहार' के ऊपरी धरातल पर आन्तरिक सर्वहारा मताधिकार की ओर चलता था और शक्तिशाली अल्पसंख्यक अभद्रता की ओर। ये दोनों गतियाँ पूरक हैं और हर समय होती रहती हैं। किन्तु सर्वहारा का मताधिकार आरम्भिक काल में अधिक स्पष्ट है, यही वाद में शक्तिशाली अल्पसंख्यक की अभद्रता हमारा ध्यान बलपूर्वक आकृष्ट करती है। रोमन शासक वर्ग के 'रजत युग' की अभद्रता इसका क्लासिकी प्रमाण है। इस निम्न स्तर की ट्रेजडी का उल्लेख अथवा व्यंग्य चित्रण—एक लैटिन साहित्य में किया गया है, जिसमें दूसरी शैलियों की प्रेरणा समाप्त हो चुकने पर भी व्यंग्य चित्रण की प्रतिभा अब भी सुरक्षित है। रोमन विलास की प्रगति (अंग्रेज चित्रकार) होगार्थ के चित्रों में देखी जा सकती है। जिनमें मुख्य नायक केवल कोई अभिजात कुल का ही नहीं है, वरन् सम्राट् जैसे हैं, कैलीगुला, नीरो, कोमोडस और कैराकैला।

अन्तिम के विषय में हम गिबन्न के इतिहास में पढ़ते हैं: "कैराकैला का व्यवहार उद्धत एवं अहंकारपूर्ण था, किन्तु अपनी सेना के साथ तो उसे अपने पद तथा श्रेणी तक का ध्यान नहीं रहता था तथा बदतमीजी से भरी हुई मित्रता को प्रोत्साहित करता था। जनरल के आवश्यक कर्तव्यों की उपेक्षा करता तथा साधारण सैनिक के शिष्टाचार तथा वेश की नकल करता था।"

सर्वहारा बनने का कैराकैला का ढंग उतना न भावनात्मक था न इतना रोगमूलक, जितना संगीत कलाकार नीरो का या तलवार के धनी कोमोडस का। किन्तु इनका महत्त्व सामाजिक निदान के रूप में है। हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के, जिसने अपने सामाजिक विरासत को अस्वीकार कर दिया था, प्रतिनिधि का चित्रण एक सम्राट् के रूप में किया गया है जो एकेडेमी और स्टोआ की स्वतन्त्रता से अलग हटकर सर्वहारा के बैरकों के कमरों की स्वतन्त्रता में आया। इस एकेडेमी तथा स्टोआ की स्वतन्त्रता को उसने बरदाश्त नहीं किया, क्योंकि वह जानता था कि वह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। वास्तव में इस समय तक आगस्टन समाहरण के बाद हेलेनी समाज के पुनःस्खलन के पहले दो विरोधी धाराएँ वेग गति तथा परिणाम के साथ शक्तिशाली अल्पसंख्या और आन्तरिक सर्वहारा से चलकर सर्वहारा की धारा में बदल गयीं। और वह भी यहाँ तक कि आज का देखने वाला यह समझ सकता है कि मैं एक ही धारा की गति देख रहा हूँ और जो अब दूसरी दिशा में बदल गयी है।

यदि हम अपनी दृष्टि सुदूर पूर्वी संसार की ओर डालें, तो रोमन शासक वर्ग के सर्वहाराकरण की कहानी के प्रथम अध्याय में हम देखेंगे कि वर्तमान समय वह फिर जन्म ले रहा है। एक जीवित पश्चिमी विद्वान् ने निम्नलिखित लेख में बताया है कि एक ही पीढ़ी में मताधिकार के स्थान पर सर्वहाराकरण हो रहा है। मंचू बना चीनी पिता अपने सर्वहारा हुए बच्चे से अलग है।

'मंचूरिया में यह सम्भव था कि मुख्य चीन का कोई चीनी अपने जीवन काल में ही पूर्ण रूप से मंचू बन जाय। इसका एक उदाहरण मुझे उस समय मिला, जब एक चीनी सैनिक अधिकारी तथा उसके बूढ़े पिता से मेरी जान-पहचान हुई। बूढ़ा पिता, होनान में पैदा हुआ था और अपनी

यौवनावस्था में मंचूरिया में गया। तीन प्रान्तों के सुदूर प्रदेशों की उसने यात्रा की तथा अन्त में सित्सिहार में बस गया। एक दिन मैंने उस जवान से पूछा––'सित्सिहार में पैदा होकर भी तुम सामान्यतः मंचूरी चीनियों-जैसे क्यों बोलते हो ? जब कि तुम्हारे पिता जो होनान में पैदा हुए थे, केवल बोलते ही नहीं हैं बल्कि मंचूरिया के बूढ़ो की भाँति व्यवहार एवं हाव-भाव भी है।' वह हँसा और बोला––'जब मेरे पिता जवान थे तब मिनजेन (राजवंशी नहीं वरन् मामूली चीनी, जन-साधारण नागरिक) के लिए उत्तरी क्षेत्र में जीवन बिताना कठिन था। मांचू लोगों का प्रभाव सब पर था। किन्तु जब मैं तरुण हुआ तब राजवंशी होना किसी काम का नहीं था। अतएव मैं अपनी पीढ़ी के अन्य नवजवानों की भाँति हो गया।' यह एक कहानी है जो अतीत और वर्तमान की प्रक्रिया को बताती है क्योंकि मंचूरिया के युवक मंचूरिया में पैदा हुए चीनियों के साथ एक समान हो गये हैं।[1]

किन्तु १९४६ ई० में किसी अंग्रेज को सर्वहाराकरण की प्रणाली के अध्ययन के लिए न तो गिबन के इतिहास पढ़ने की आवश्यकता है और न ट्रान्ससाइबेरियन रेल में यात्रा करने की। वह अपने घर में यह कर सकता है। सिनेमा में वह देख सकता है कि सब लोग ऐसे फिल्म देखते हैं जो बहुसंख्यक सर्वहारा के मनोरंजन के लिए बनी हैं। और क्लबों में भी येलो प्रेस का बहिष्कार नहीं होता है। यदि हमारे आधुनिक काल का 'जुवेनाल' पारिवारिक मनुष्य होता, घर के अन्दर रहता, फिर भी उसकी प्रतिमूर्ति मिल जाती यदि वह अपने कान खोलता (जो बन्द करने से सरल होता) तो वह जाज़ अथवा विविध कार्यक्रम रेडियो पर सुनता जिसे उसके लड़के सुनते हैं। और छुट्टियों की समाप्ति पर जब वह अपने बच्चों को 'पब्लिक स्कूल' में जाते देखता जो सामाजिक अलगाव के कारण लोकतन्त्रियों की घृणा का पात्र था, तब इन बच्चों से यह कहना न भूलता कि उसके स्कूल में कितने अभिजात कुल के हैं। और जब हमारे विचित्र कुल पिता युवक सजीव कोमोडस को देखते तो उन्हें पता चलता कि हैट किस बाँकपन से लगायी गयी है और गुंडों के ढंग का रूमाल, जो देखने में मालूम पड़ता है यों ही गले में डाल लिया गया है, वास्तव में चतुराई से इस प्रकार रखा गया है कि आवश्यक सफेद कालर को छिपा ले। यह निश्चित प्रमाण है कि सर्वहारा का फैशन चल रहा था। जैसे तिनके से वास्तव में हवा का रुख मालूम पड़ता है वैसे ही व्यंग्यकार का साधारण मजाक इतिहासकारों की चक्की के लिए अनाज का काम देता है।

जब हम शक्तिशाली अल्पसंख्यक का सर्वहारा के साथ शान्तिपूर्ण समागम द्वारा उत्पन्न अभद्रता की ओर देखते हैं और उसके बाद सीमा के परे बाहरी सर्वहारा के युद्धजनित सम्पर्क से बर्बरता उत्पन्न होते देखते हैं, तब हमें पता चलता है कि दोनों नाटकों का कथानक समान है। इसमें दूसरे का दृश्य और साज-सज्जा कृत्रिम सैनिक सीमा है––सार्वभौम राज्य की सीमा-जिसके पार शक्तिशाली अल्पसंख्या तथा बाहरी सर्वहारा एक-दूसरे के सामने परदा उठते समय दिखाई देते हैं और इस रूप में कि एक-दूसरे से अलग हैं और विरोधी हैं। जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता है, अलगाव घनिष्ठता में बदल जाता है, किन्तु इससे शान्ति नहीं होती, और जैसे-जैसे युद्ध

---

[1] ओ. लैटिमोर : मंचूरिया, क्रैडिल आफ कान्फ्लिक्ट (१९३२) पृ० ६२–३।

बढ़ता है समय बर्बरता के अनुकूल रहता है । अन्त में सीमा टूट जाती है, तब तक उस राज्य पर विजय होती जिसकी शक्तिशाली अल्पसंख्या अबतक रक्षा कर रही थी ।

पहले अंक में बर्बर शक्तिशाली अल्पसंख्या के देश में बन्धक और फिर वैतनिक सैनिक के रूप में आता है और दोनों स्थितियों में वह स्वयं को थोड़ा-बहुत विनम्र बना लेता है । दूसरे अंक में वह आक्रमणकारी, अनियन्त्रित तथा अवांछित हो जाता है, जो अन्त में उपनिवेशक या विजयी के रूप में बस जाता है । इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय अंकों के बीच सैनिक प्रभुता बर्बरों के हाथों में चली जाती है । इस प्रकार शक्ति और ऐश्वर्य का शक्तिशाली अल्पसंख्यकों से बर्बर लोगों के पास जाना शक्तिशाली अल्पसंख्यकों की धारणा को विशेष रूप से प्रभावित करता है । बर्बरता की पुस्तक का एक के बाद दूसरे पृष्ठ से वह अपनी शीघ्र ह्रासोन्मुख सैनिक तथा राजनीतिक दशा सुधारना चाहता है । और अनुकृति तो चापलूसी है ही ।

इस प्रकार नाटक के कथानक का वर्णन करते हुए हम आरम्भ की ओर लौट सकते हैं और मंच के पहले ही दृश्य में बर्बरों को शक्तिशाली अल्पसंख्यक के शिष्य के रूप में देखते हैं । फिर हम शक्तिशाली अल्पसंख्यक को मिलने-जुलने की ओर अग्रसर होते हुए पाते हैं । और थोड़े समय में ही हम दोनों विरोधियों की ऐसी झलक पाते हैं कि एक-दूसरे के उधार लिये पंखों को धारण करके वे अनाड़ी की भाँति विकृत बन जाते हैं । और नकल करते-करते काइमेरा (शेर के मुख, बकरे की धड़ और साँप की पूँछ वाला विशाल काल्पनिक जन्तु) के समान मिश्रित वस्तु बन जाते हैं । अन्ततो गत्वा पहले वाले शक्तिशाली अल्पसंख्यक का अपना अन्तिम चिह्न भी खो देते हैं । और शक्तिशाली अल्पसंख्यक बर्बरता के साधारण धरातल पर आ जाता है ।

बर्बर युद्ध गिरोह की सूची में जो सभ्य शक्तियों के हाथ में बन्धक होकर प्रसिद्ध हुए हैं उनमें कुछ ये हैं : कान्स्टैन्टिनोपल के रोमन कोर्ट में थियोडोरिक ने बन्धक के रूप में ही शिक्षा पायी । एड्रियानोपुल के उसमानिया दरवार में स्कैंडरवर्ग को भी इसी प्रकार शिक्षा मिली । मैसेडान के फिलिप ने युद्ध और शान्ति की कला इयैमिनोनडास से थीवेस में सीखी थी । मोरक्को सरदार अब्दुल करीम ने जिसने अनवाल में स्पेन की अभियानी सेना का नाश सन् १९२१ में किया था तथा, चार वर्षों वाद मोरक्को में फ्रांसीसी शक्ति को जड़ से हिला दिया, स्पेन के मेलिला जेल में ११ महीने तक शिक्षा पायी ।

उन वर्बरों की सूची लम्बी है जो विजयी के रूप के पहले वेतनभोगी सैनिक थे । ईसवी पाँचवीं और सातवीं शती में रोमन प्रदेशों के टयुटोनी और अरब बर्बर विजेता के उन अनेक पीढ़ियों के वंशज थे, जिन्होंने रोमन सेना में सेवा की थी । ईसा की नवीं शती में अब्बासी खलीफा के तुर्की अंगरक्षक ने तुर्की उन समुद्री दस्युओं के लिए मार्ग बनाया, जिन्होंने ११ वीं शती में खलीफा के उत्तराधिकारी राज्यों के लिए जगह बनायी । और उदाहरण भी दिये जा सकते हैं । और हमारी सूची और भी बड़ी होती यदि सभ्यताओं के अन्तिम पीड़ाओं का ऐतिहासिक उल्लेख इतना कम न होता । किन्तु हम कम-से-कम अनुमान कर सकते हैं कि समुद्रों में विचरण करने वाले उन बर्बरों ने—जो मिनोई समुद्री राज्य की सीमाओं पर चक्कर काटा करते थे और जिन्होंने सम्भवत: १४०० ई० पू० में नासास को लूटा था—अपना प्रशिक्षण मिनोस के भाड़े के टट्टू के रूप में ग्रहण किया था । ऐसा उन्होंने उनका विनाश करने के पहले

किया था, और किंवदन्ती है कि केन्ट के ब्रिटिश राजा वोर्टिगर्न ने सैक्सन वैतनिक सैनिकों को नौकरी में रखा था, उसके पहले जब वह हेंगिस्ट तथा होरसा-जैसे असमर्थनीय लुटेरों द्वारा हराया गया।

हम उन अनेक प्रमाणों का भी पता लगा सकते हैं, जिनमें बर्बर लोलुप अपनी आकांक्षा तक नहीं पहुँच सके। उदाहरणार्थ, पूर्वी रोमन साम्राज्य वरेंजियों (वैरेंजी नारवे के डाकू होते थे। यूरोप के पूर्वी तथा दक्षिणी सम्राटों के अंगरक्षक प्रायः वैरेंजी ही होते थे) का शिकार हो जाता, यदि उन्हें नारमन तथा सालजुकों ने पराजित न कर दिया होता और अन्त में उसमानलियों द्वारा पूरा-का-पूरा हड़प न लिया गया होता। इधर उसमानिया साम्राज्य निश्चित रूप से बोसनियकों तथा अलबेनियन धनलोलुपों में विभाजित हो गया होता, जो प्रान्तीय पाशाओं तथा तुर्की सरकार पर भी ईसा की अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शती में शीघ्रता से अधिकार कर रहे थे। किन्तु फिरंगी व्यापारियों ने उसमानिया इतिहास के अन्तिम अध्याय को लेवांट (पूर्वी भूमध्य सागर) में पश्चिमी राजनीतिक विचारों तथा मैनचेस्टर के सामानों की बाढ़ से अप्रत्याशित ढंग से मोड़ दिया। ओसकन धनलोलुप जिन्हें कैमेनिया के यूनानी नगर-राज्यों में और महत्तर यूनान तथा सिसिली में सेवाओं के लिए अच्छा अवसर मिला था, अपने यूनानी मालिकों को जब भी अवसर होता था हटा देते थे या निकाल देते थे। और इसमें सन्देह नहीं कि ग्रीक मालिकों के उन्मूलन का कार्य तब तक चलता जब तक ओट्रान्टो के जलडमरूमध्य के पश्चिम एक भी यूनानी समुदाय बच जाता। यदि संकट के समय रोमनों ने ओसकनों को उन्हीं के देश में पीछे से आक्रमण न किया होता।

इन उदाहरणों से हम समकालीन परिस्थिति का संकेत करते हैं जिसके सम्बन्ध में हम ठीक नहीं कह सकते कि ये धनलोलुप लुटेरे बन जायेंगे और यदि बन गये तो उनका यह कार्य ओसकन और अलबेनियनों के समान आरम्भ में ही नष्ट हो जायगा कि ट्युटनों और तुर्कों की भाँति सफल होगा। आज के भारतीय देश के भाग्य के प्रति उन बर्बरों की भविष्य की भूमिका के सम्बन्ध में सोच सकता है जो भारत सरकार की प्रशासन की सीमा से परे स्वतन्त्रता के गढ़ में रहते हैं और जिनमे से १९३० के युद्ध में भारतीय सेना में एक बटे सात भाग थे। क्या उन दिनों के धनलोलुप गोरखा तथा आक्रमणकारी पठान बर्बरों के विजयी पिता और पितामह के रूप में इतिहास में याद किये जायेंगे जो ब्रिटिश राज के उत्तराधिकारी राज्यों के निर्माता हिन्दुस्तान में बनेंगे?

इस उदाहरण में हम नाटक के दूसरे अंक से अपरिचित हैं। इस अवस्था में नाटक की प्रगति देखने के लिए हमें हेलेनी सार्वभौम राज्य तथा रोमन साम्राज्य की उत्तरी परिसीमा से परे यूरोपीय बर्बरों के बीच के सम्बन्ध की कहानी की ओर अवश्य लौटना पड़ेगा। इस ऐतिहासिक मंच पर हम आरम्भ से अन्त तक समानान्तर क्रियाएँ देखते हैं जिनसे शक्तिशाली अल्पसंख्यक बर्बरता में परिणत हो जाते है और बर्बर उनके बलिदान पर अपने भाग्य चमकाते हैं।

प्रबुद्ध स्वार्थं के उदार वातावरण में नाटक आरम्भ होता है।

'बर्बरों के लिए साम्राज्य घृणा का पात्र नहीं था। वास्तव में वे बहुधा उसकी सेवा करने के लिए लालायित रहते थे। उन्हें अलारिक या अतावुल्फ के समान ऊँचे सैनिक अधिकारी

के रूप में भरती होने के अतिरिक्त और कोई आकांक्षा नहीं थी । दूसरी तरफ रोमन चाहते थे कि युद्ध में बर्बरों को सेना में भर्ती किया जाय ।'[१]

ईसा की चौथी शती के करीव-करीव मध्य में यह दिखाई देता है कि रोमन सेवा में नियुक्त जर्मनों ने अपने निजी नामों को ही रखने का अभ्यास आरम्भ कर दिया था । शिष्टाचार का यह परिवर्तन जो अचानक हो गया, बर्बर अधिकारियों के मन में आत्मविश्वास का द्योतक है, जो पहले बिना हिचकिचाहट के रोमन बनने में सन्तुष्ट थे । उनके सांस्कृतिक व्यवितत्व को इस नये आग्रह के विपरीत रोमनों ने कोई अ-बर्बर कार्य नहीं किया । इसके विपरीत इसी समय बर्बर रोमनों की सेना में कौंसल होने लगे । यह सवसे वड़ा पद था जो सम्राट् दे सकता था ।

इस प्रकार जब बर्बर अपना पाँव रोम की सामाजिक सीढ़ी पर सबसे ऊपर रख रहे थे, तब रोमन स्वयं इसकी विपरीत दिशा की ओर चल रहे थे । उदाहरणार्थ, सम्राट् ग्रैशियन (३७५–३८३ ई०) को रईसी के विपरीत सनक सूझी । यह अभद्रता नहीं, बर्बरता थी कि उसने बर्बर ढंग के वस्त्रों को धारण किया और बर्बर खेल-कूद में सम्मिलित होने लगा । एक शती के बाद हम रोमनों को वास्तविक रूप से स्वतन्त्र युद्ध के बर्बर सरदारों के दलों में सम्मिलित होते देखते हैं । उदाहरणार्थ, सन् ५०७ ई० में गआल को प्राप्त करने के लिए वोयले में विसीगोथों तथा फिरंगियों में जब लड़ाई हो रही थी, विसीगोथो की ओर सिडोनियस एपोलिनारीस के उस पौत्र की हत्या हो गयी, जो अपनी पीढ़ी में भी सांस्कृतिक क्लासिकी साहित्यिक के रूप में जीवन-यापन कर रहा था । इसका प्रमाण नहीं है कि ईसवी छठीं शती के आरम्भ में प्रान्तीय रोमनों के वंशजों ने युद्ध की ओर अधिनायक के अनुसरण करने में कम उत्सुकता दिखायी, जितनी समकालीन बर्बरों के वंशजों ने दिखायी थी । जिनके लिए शतियों पहले से ही युद्ध का खेल प्राणस्वरूप हो गया था । इस समय तक दोनों दल वर्बरता में सांस्कृतिक समानता प्राप्त कर चुके थे । हम पहले ही देख चुके हैं कि चौथी शती में रोम की सेवा में लगे बर्बर अधिकारी अपने वर्बरी नाम का प्रयोग करने लगे थे । बाद की शती में इसके विपरीत प्रयास हुआ और असली रोमन गआल में जर्मन नाम रखने लगे और आठवीं शती के अन्त के पहले यह प्रयोग व्यापक हो गया । शार्लमान के समय तक गआल का प्रत्येक निवासी जर्मन नाम रख रहा था चाहे उसके पूर्वज जो भी रहे हों ।

यदि हम रोमन साम्राज्य की अवनति और विनाश के साथ-ही-साथ चीनी संसार की बर्बरताकरण की कहानी प्रस्तुत करें, जिसका मुख्य समय दो सौ साल पहले पड़ता है, तो अन्तिम विषय में विशेष अन्तर हमें देख पड़ेगा । चीनी सार्वभौम राज्य के उत्तराधिकारी बर्बर राज्यों के संस्थापक चीनी नाम का शुद्ध रूप ग्रहण करके अपनी बर्बरता की नग्नता को छिपाने में बहुत सतर्क थे । और यह केवल कल्पना नहीं है कि इस साधारण प्रयोग तथा चीनी सार्वभौम राज्य के पुनर्जीवन के अन्तर में कुछ गहरा सम्बन्ध है जो उस समानता में नहीं है जो शार्लमान द्वारा स्थापित छायास्वरूप रोमन साम्राज्य में पायी जाती है ।

शक्तिशाली अल्पसंख्यक के बर्बरताकरण की जाँच समाप्त करने के पहले हम थोड़े समय के

---

[१] एस० डिल : सोसाइटी इन द लास्ट सेंचुरी आव द वैस्टर्न एम्पायर, पृ० २९१ ।

लिए यह प्रश्न करने के लिए रुक सकते हैं कि क्या इस सामाजिक स्थिति का कोई लक्षण हमारे अपने पश्चिमी संसार में दिखाई देता है ? प्रथम बार विचार करने पर कदाचित् हम यह सोचेंगे कि हमारे प्रश्न का निश्चय रूप से उत्तर मिल जायगा, इस बात से कि हमारा समाज सम्पूर्ण संसार को अपने में समेट चुका है और बाहरी सर्वहारा अधिक परिमाण में हमें बर्बर बनाने के लिए नहीं छोड़ा गया है । किन्तु हमें विकल करने वाले इस तथ्य को याद रखना चाहिए कि हमारे पश्चिमी समाज की नयी दुनिया, उत्तरी अमेरिका, के बीच आज भी बहुत-से इंग्लैंड तथा मैदानी स्काटलैंड के वंशज रहते हैं जो प्रोटेस्टेंट पश्चिमी ईसाई सामाजिक पीढ़ी के हैं जो यूरोप की 'केल्टिक सीमा' पर कुछ दिनों तक निर्वासित रहकर अपालेशियन जंगलों में आवारा होकर बर्बर हो गये हैं ।

इस विषय के प्रमुख विद्वान्, अमरीकी इतिहासकार ने अमरीकी सीमा पर बर्बरताकरण के प्रभाव का यों वर्णन किया है--

'अमरीका की बस्ती में हमें देखना है कि यूरोप का जीवन कैसे महाद्वीप में आया । और किस प्रकार अमरीका ने उस जीवन को परिवर्तित और विकसित किया और यूरोप पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई । हमारा आरम्भिक इतिहास यूरोपीय कीटाणुओं का अमरीकी वातावरण में विकास का इतिहास है । सीमावर्ती प्रदेश में अति शीघ्रता से प्रभावशाली अमरीकीकरण हुआ है । जंगल उपनिवेशकों पर प्रभुत्व जमा लेता है । वह यूरोपीय वेश, उद्योग, यन्त्र, यात्रा के साधन तथा यूरोपीय विचार के सामने आता है । वह उसे रेलगाड़ी से उतार कर सकड़ी (बर्च) की डोंगी (कैनू) में लाता है । सभ्यता के वस्त्रों को उतरवा देता है तथा शिकारी कमीज और मृगचर्म के जूते पहनाता है । चिरोकी और इरोक्वाइस के लकड़ी के झोपड़ों में उन्हें रखता है तथा रेड इंडियनों के समान उनके चारों ओर घेरे बनाता है । शीघ्र ही वह मक्का की खेती आरम्भ करता है और नुकीली लकड़ी से खेत जोतता है । युद्ध घोष करता है सच्चे रेड इंडियनों की भाँति वैरी के शीश को ग्रहण करता है । संक्षेप में सीमा पर वातावरण मनुष्य के लिए बहुत शक्तिशाली होता है । धीरे-धीरे वह जंगल को बदलता है, किन्तु इसका परिणाम पुराना यूरोप नहीं होता । तथ्य यह है कि नया परिणाम होता है जो अमरीकी है ।'

यदि यह वक्तव्य ठीक हैं, तो हम यह कहने के लिए विवश है कि कम-से-कम उत्तरी अमरीका में अपरिमित सामाजिक शक्ति बाहरी सर्वहारा के एक भाग द्वारा हमारे शक्तिशाली अल्पसंख्यक के एक भाग पर पड़ी है । अमरीकी उपक्रम के इस प्रकाश में यह सोच लेना गलत होगा कि बर्बरता की यह आध्यात्मिक व्याधि एक उपक्रम है जिसका हमारी आधुनिक पश्चिमी अल्पसंख्या पूर्ण उपेक्षा कर सकती है । यह दिखाई देता है कि विजित एवं विनष्ट बाहरी सर्वहारा अपना बदला ले सकते हैं ।

(व) कला में अभद्रता तथा बर्बरता

यदि हम व्यवहार और रीति-रिवाज के सामान्य क्षेत्र से कला के विशेष क्षेत्र की ओर चले तो हम यहाँ फिर असामंजस्य की भावना पायेंगे चाहे वह अभद्रता हो या बर्बरता । उस एक

---

१. एफ० जे० टर्नर : द फ्रांन्टियर इन अमेरिकन हिस्ट्री, पृ० ३--४ ।

था दूसरे रूप में विघटनोन्मुख सभ्यता की कला अपनी शैली की विशिष्टता को, जो अच्छे गुणों का लक्षण है, छोड़कर विस्तृत और असामान्य रूप से व्यापक हो जाती है ।

अभद्रता के दो क्लासिकी उदाहरण हैं वे फैशन जिन्हें विघटनोन्मुख मिनोई तथा विघटनोन्मुख सीरियाई सभ्यता ने बारी-बारी से अपनी कला के रूप में भूमध्यसागर के तटों के चारों ओर फैलाया । अन्तःकाल (सम्भवतः ई० पू० १४२५–११२५) जो मिनोई सागर तन्त्र के बाद आया उसे 'बाद का तीसरा मिनोई' के अभद्र फैशन के नाम से पुकारते हैं, जो सब पुरानी मिनोई शैली का सत्यानाश कर डालती है । इसी प्रकार संकटकाल (लगभग ई० पू० ९२५–५२५) जो सीरियाई सभ्यता के विघटन के बाद आयी फीनिशायी कला उतनी ही अभद्र हैं और उसका साभिप्राय भी यान्त्रिक मिलावट से मुक्त है । हेलेनी कला के इतिहास में जो कोरिथियन वास्तुकला के साथ रवाज में आया, यह अतिशयता हेलेनी प्रतिभा की विशेषता के विपरीत है । और जब हम इस फैशन का विशेष उदाहरण खोजते हैं जो रोमन साम्राज्य के काल में उच्च शिखर पर था, तब हम उसे हेलेनी संसार के हृदय में नहीं, वरन् वालवक के अ-हेलेनी देवताओं के मन्दिरों के खँडहरों में या कलात्मक कब्रों में पाते हैं जो सुदूर पूर्वी ईरानी पठारों के किनारे बर्बर युद्ध सरदारों की लाशों को गाड़ने के लिए हेलेनी स्मृति गृह-निर्माताओं ने बनायी थी ।

यदि हम हेलेनी समाज के विघटन के समय के पुरातत्त्व को छोड़कर साहित्यिक प्रमाणों की ओर मुड़ें तो हम देखेंगे कि ई० पू० ४३१ के पतन के बाद प्रथम कुछ पीढ़ियों के विचारकों ने हेलेनी संगीत की अभद्रता के लिए विलाप किया था । हम एक अन्य सन्दर्भ में 'यूनाइटेड आर्टिस्ट लिमिटेड' के हाथों में 'एटिक नाटक' की अभद्रता देख चुके हैं । आधुनिक पश्चिमी संसार में हम देख सकते हैं कि यह केवल भड़कीला ह्रास था, न कि विशुद्ध हेलेनी कला की क्लासिकी शैली, जिसने हमारे पश्चिमी हेलेनी बैरोक (१७ वीं तथा १८ वीं शती की कला की विशेष शैली) और रोकोको (कला की अलंकृत शैली) को प्रेरणा प्रदान की और हमारी विक्टोरियन व्यापारिक आर्ट की तथाकथित 'चोकोलेट बाक्स' शैली में हम 'बाद के तीसरे मिनोई' के समान कला देख सकते हैं यह पश्चिमी शैली अपनी विशिष्ट तकनीक द्वारा अपने व्यापारिक सामानों से सम्पूर्ण संसार पर विजय प्राप्त करना चाहता है—

'चोकोलेट बाक्स' शैली की मूढ़ता उतनी उदासीपूर्ण है कि यह हमारी पीढ़ी को निरुत्साही बनने के लिए प्रेरित करती है । बाइजैंतीवाद से पूर्व-रेफेल तक की प्राचीन प्रयोगवादी उड़ान पर विचार अगले अध्यायों में किया जायगा । किन्तु यहाँ हम अभद्रता से बर्बरता की ओर समकालीन उड़ान उसके स्थान पर देखते हैं । आज के आत्म-सम्मानी पश्चिमी मूर्तिकलाविदों ने अपनी निगाहें बेनिन की ओर मोड़ी है जिन्होंने बाइजैंती कला में सुखमय शरण नहीं पायी । केवल नक्काशी की कला में ही पश्चिमी संसार की मौलिकता का स्रोत सूख गया और वह अफ्रीका के बर्बरों से नयी प्रेरणा ले रहा है । पश्चिमी अफ्रीका का संगीत तथा नृत्य और वास्तुकला भी अमरीका की राह से यूरोप के हृदय में प्रवेश कर रहा है ।

साधारण मनुष्य की दृष्टि में बेनिन तथा बाइजैंटियम की ओर की उड़ान से पश्चिमी कलाकारों को उनकी खोई आत्मा प्राप्त नहीं हो सकती । इसपर भी, यदि वह अपने को नहीं बचा सकता तो दूसरों की मुक्ति का साधन हो सकता है । बर्गसों कहता है—कि साधारण बुद्धि

का अध्यापक जो उस विज्ञान की जिसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने रचा है, यन्त्रवत् शिक्षा देता है अपने शिष्यों को इतना जाग्रत कर सकता है कि वे ऐसा कार्य करें जिसका उसने कभी अनुभव नहीं किया था। और यदि विघटनोन्मुख हेलेनी संसार की 'व्यावसायिक कला' द्वारा महायानी बौद्ध धर्म ने भारतीय धरतीपर दूसरे विघटनोन्मुख संसारके मिलने के फलस्वरूप वहुत ही मौलिक कला उत्पन्न की तो इसी तर्क पर हम यह नहीं कह सकते कि आधुनिक पश्चिमी जगत् की 'चोकोलेट बाक्स' की शैली वैसा ही चमत्कार दिखाने में अक्षम्य है जब कि वह संसार भर में वड़े तड़क-भड़क के साथ विज्ञापन बाजों के तख्तों पर तथा ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर वह दिखाई पड़ रही है।

(स)सामान्य भाषा (लिंगुआ फ्रांका)

भाषा के क्षेत्र में असामंजस्य की भावना स्थानीय विशेषता को छोड़कर बोलियों के मिश्रण के फलस्वरूप अस्तव्यस्तता प्रकट करती है।

यद्यपि भाषा की स्थापना मानव के बीच विचारों के आदान-प्रदान के उद्देश्य से की गयी है किन्तु मानव के इतिहास में इसका सामाजिक प्रभाव अब तक वास्तविक रूप से सम्पूर्ण मानव को विभाजित करने तथा न मिलने देने के लिए रहा है, क्योंकि भाषाओं के इतने विभिन्न रूप हो गये कि ऐसी भी भाषा जो बहुत चलती है मानव समाज के छोटे-से अंश से अधिक में समान रूप से नहीं रही। भाषा का न समझना विदेशी होने का प्रमुख लक्षण है।

विघटनोन्मुख सभ्यताओं के विनाश की ओर बढ़ी अवस्था में भाषाओं को भी उन्हीं लोगों की भाँति आपस में विनाशकारी संघर्ष करते हुए तथा एक-दूसरे पर विजय प्राप्त करते हुए देखते हैं, जिनकी ये भाषाएँ हैं, और इसका विजेता भी अपनी भाषा का विस्तार करता जाता है। यदि बोलियों के मिश्रण की उस कथा में कुछ भी तथ्य है जो शिनार में अपूर्ण मन्दिर के नीचे हुई थी तो यह कहानी सम्भवतः हमें बैबिलोन के उस युग में ले जाती है जिसमें सुमेरी सार्वभौम राज्य का पतन हो रहा था। क्योंकि सुमेरी इतिहास के संकट-कालिक अन्तिम अध्याय में सुमेरी संस्कृति को वहन करने वाली मूल भाषा के रूप में अपनी ऐतिहासिक भूमिका पूरी करने के बाद सुमेरी भाषा मर गयी थी और अक्कादी भाषा को जो अभी उन्नति करके सुमेरी भाषा के समान हुई थी, बाहरी सर्वहारा के दलों की बोलियों के साथ भिड़ना पड़ा था। ये बोलियाँ स्वामी विहीन राज्य में बर्बर युद्धकारी दल लाये थे। बोलियों के सम्मिश्रण की कहानी जीवन में सत्य है क्योंकि नवीन और अभूतपूर्व सामाजिक संकटकाल में यह अबोध गम्यता सामाजिक एकता के कार्य में बाधक होती है। भाषा की विभिन्नता तथा सामाजिक जड़ता साथ-साथ होती है, सके उदाहरण विशिष्ट रूप से इतिहास में दिखाई देते हैं।

हमारी अपनी पीढ़ी के पश्चिमी संसार में यह कमजोरी डैन्यूबी हैप्सबुर्ग के राजाओं की जिनकी समाप्ति पहले विश्वयुद्ध (१९१४–१८) में हो गयी, घातक दुर्बलताओं में से एक थी। यह बोलियों की कमजोरी १६५१ ई० में अपनी प्रौढ़ावस्था में उसमानिया बादशाहों के अमानवीय रूप से समर्थ दासों में भी थी। हम बैबेल का अभिशाप उत्तराधिकार के रूप में इख-ओगलानों के ऊपर देखते हैं जब वे रनिवास के प्रांगण में दरबारी क्रान्ति के संकट के क्षणों में अशक्य हो जाते हैं। घबराहट में बच्चे कृत्रिम रूप से सीखे उसमानलियों के मुहावरे भूल जाते हैं। 'दर्शकों के आश्चर्यचकित कान विभिन्न ध्वनियों और भाषाओं के कोलाहल से फट जाते हैं। कोई जार्जी,

कोई अलबेनी, कोई बोसनियाई, कोई मिंग्रेली, कोई तुर्की, कोई इटालवी बोलता है ।[१] उसमानिया इतिहास की इस साधारण घटना की स्थिति 'पवित्र आत्मा' के अवतरण की महान् घटना के बिलकुल विपरीत है जैसा 'ऐक्टस आव अपासिल' में लिखा है । उस दृश्य में जो बोलियाँ बोली जाती हैं उन्हें बोलने वाले खुद नहीं समझते । अपढ़ गैलीलियन जिन्होंने अपनी स्थानीय एरामी भाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा न सुनी है, न उसे बोला है । दूसरी बोलियों में अचानक उनका बोलना ईश्वर के चमत्कार का वरदान समझा जाता है ।

इस रहस्यपूर्ण अंश की व्याख्या विभिन्न रूप से की गयी है, किन्तु जिससे हम सम्वन्धित हैं उसमें कोई विवाद नहीं है । यह स्पष्ट है कि एक्टस के लिखने वालों की दृष्टि में भाषा का वरदान उनकी प्राकृतिक मनःशक्तियों की पहली वृद्धि थी जिसकी ईसा के शिष्यों को आवश्यकता थी क्योंकि इनके सामने नये प्रकाशित 'उच्चतर धर्म' को फैलाकर सम्पूर्ण मानव-समाज को बदल देने का महान् कार्य था । किन्तु जिस समाज में ये ईसा के शिष्य पैदा हुए थे, वह समाज सामान्य भाषा की दृष्टि से आज के संसार की अपेक्षा दरिद्र था । गैलीलियनों की एरामी मातृभाषा उत्तर में एकानस तक, पूर्व में जाग्रोस तक तथा पश्चिम में नील तक ही जा सकती थी, किन्तु यूनानी भाषा जिसमें एक्ट्स लिखे गये थे वह रोम और रोम से समुद्र पार ईसाई मिशनरियों द्वारा जा सकती थी ।

यदि हम स्थानीय मातृभाषा के सम्पूर्ण ईसाई जगत् की सामान्य भाषा में परिवर्तन के कारणों एवं परिणामों की परीक्षा आरम्भ करें तो हम देखेंगे कि जिस भाषा को इस प्रकार की विजय अपने विरोधियों पर प्राप्त होती है उसका कारण यह है कि उस भाषा ने सामाजिक विघटन के समय किसी समुदाय की सेवा की है और वह युद्ध अथवा व्यापार में शक्तिशाली रही है । हम यह भी देखेंगे कि मानव की भाँति भाषा भी विना कीमत चुकाये विजय प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती । सामान्य भाषा बनने के लिए भाषा को अपनी निजी विशेषताओं का वलिदान करके मूल्य चुकाना पड़ता है । क्योंकि वही लोग पूर्ण शुद्धता से कोई भाषा बोल सकते हैं, जिन्हें उन्होंने वचपन से सीखा है । यह शुद्धता प्रकृति की देन है, कला इसे नहीं सिखा सकती । इस निष्कर्ष की सचाई प्रमाणों से सिद्ध की जा सकती है ।

हेलेनी समाज के विघटन के इतिहास में हम दो भाषाएँ एक-दूसरे के वाद देखते हैं—पहली 'एटिक ग्रीक' और बाद में लैटिन । ये भाषाएँ एटिका और लैटिअस दो छोटे जिलों की मातृभाषाओं के रूप में आरम्भ हुई थीं । बाद में ये बाहरी दुनिया में फैलती रहीं यहाँ तक कि ईसाई युग के आरम्भ में हम एटिक ग्रीक को झेलम के तट पर दरबार में और लैटिन को राइन के किनारे खेमों में प्रयोग होते देखते हैं । एटिक ग्रीक भाषा का विस्तार ई० पू० पाँचवीं शती में एथेनी सागरतन्त्र की संस्थापना के साथ आरम्भ हुआ था । बाद में मेसेडोनी फिलिप ने एटिक भाषा को अपने क्षेत्र की सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार किया । इससे इसका विस्तार बढ़ गया । जहाँ तक लैटिन का प्रश्न है यह विजयी रोमन सेनाओं की ध्वजा के साथ चलती गयी । इन भाषाओं के विस्तार की सराहना करने के बाद यदि हम भाषा-वैज्ञानिक तथा साहित्य पारखी की दृष्टि से उनके समकालिक विकास का अध्ययन करें तो हम उनकी विवृति से भी उसी प्रकार

---

[१] पी० राइकाट : द प्रेजेन्ट स्टेट आव दि ओटमन एम्पायर (१६६८) पृ० १८ ।

प्रभावित होंगे । अफलातून तथा सोफोक्लीस सुन्दर स्थानीय एटिक ग्रीक सेप्टु आजिन्ट और पोलीवियस तथा नयी बाइबिल में बदल कर विकृत हो करके 'कोइन्ह' हो गयी । और सिसरो और वर्जिल का साहित्यिक माध्यम अन्त में भ्रष्ट लैटिन हो गया । १८ वीं शती के आरम्भ तक यही 'भ्रष्ट लैटिन' अपने सम्बन्धी पश्चिमी ईसाई समाज में अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के गम्भीर कार्यों में व्यवहार की जाती थी । उदाहरणार्थ, मिल्टन क्रामवेल शासन का लैटिन सचिव था। १८४० तक हंगरी संसद में 'भ्रष्ट लैटिन' लेन-देन के माध्यम के रूप में चलती रही । इस त्याग का एक कारण था जिसके परिणामस्वरूप सन् १८४८ की मिश्रित राष्ट्रों की भ्रातृहन्ता लड़ाई आरम्भ हुई ।

सीरियाई तथा बैबिलोनी सभ्यताओं के विघटन के साथ-ही-साथ दो मरणासन्न समाजों का विनाश भी मिल गया जिनका अन्तर नहीं जान पड़ता था, जितना ही अधिक उनका विस्तार सामान्य भाषा पर होता था । इस अस्त-व्यस्त मलबे के टूटे धरातल पर एरामी भाषा झंखाड़ की भाँति फैली । यद्यपि लैटिन और ग्रीक के समान इसे अपने सफल विजेताओं का संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ । यह एरामी भाषा अपने समय में यद्यपि अच्छी तरह प्रचलित थी, किन्तु वर्णमाला तथा लिपि की अपेक्षा कम चली और क्षेत्रों में चली । इसका एक रूप भारत तक पहुँचा । बौद्ध सम्राट् अशोक द्वारा इसका प्रयोग अपने प्राकृत चौदह अभिलेखों के प्रचार में दो में इस लिपि का प्रयोग किया गया था । उस लिपि का दूसरा रूप सोगडियन कहा जाता है। यह धीरे-धीरे उत्तर-पूरब की ओर जैक्सॅटीज़ से आमूर की ओर बढ़ी । १५९९ ई० तक यह मांचू लोगों की वर्णमाला बनी । एरामी वर्णमाला का तीसरा रूप अरबी भाषा की लिपि बनी ।

पश्चिमी ईसाई साम्राज्य के तथाकथित 'मध्ययुग' में विकसित उत्तरी इटली पर विशेष ध्यान देते हुए यदि हम नगर-राज्यों की अपरिपक्व व्यवस्था की ओर पुनः मुड़ें तो हम इटली की टसकन बोली को अपनी प्रतिद्वन्द्वी वोलियों पर वैसे ही छोप लेते देखेंगे जैसे एटिक वोली ने अपनी प्राचीन ग्रीक की प्रतिद्वन्द्वी वोलियों को अच्छादित कर लिया था । उसी समय यह बोली भूमध्यसागर के सभी तटों पर वेनिस तथा जेनेवा के व्यापारियों तथा साम्राज्य निर्माताओं द्वारा प्रचलित हुई । इटली की टसकन बोली के सारे भूमध्य सागर के प्रदेशों में चलने के कारण यह इटली के नगर-राज्यों की स्वतन्त्रता के वाद तक भी जीवित रही। सोलहवीं शती में इटालियाई भाषा उसमानिया नौ-सेना की भाषा रही, जो इटालियाइयों को पूर्वी भूमध्यसागर से भगा रही थी । पुनः १९ वीं शती में यही इटालियाई भाषा हैप्सवुर्ग नौ-सेना की भाषा हुई, जिसके राजा सन् १८१४ से १८५९ तक इटली की राष्ट्रीय आज्ञाओं को निष्फल करने में सफल रहे । लेवांट की (भूमध्यसागर का पूर्वी भाग) यह सामान्य भाषा जिसका इटालियाई आधार विभिन्न विदेशी भाषा की वृद्धियों के भार से करीब-करीब दब गया था, भाषा के वर्ग का ऐसा प्रशंसनीय उदाहरण है, उसका ऐतिहासिक नाम वर्ग के नाम को व्यक्त करता है ।

बाद में, किसी प्रकार यह विकृत टसकन भाषा लेवांट के अनुकूल क्षेत्र से भी विकृत फ्रांसीसी भाषा द्वारा हटायी गयी । फ्रांसीसी भाषा का भाग्य इस कारण उदय हुआ कि इटालियाई, जर्मन और फ्लेमिश नगर-राज्यों की व्यवस्था के पतन के संकटकाल में फ्रांस ने इन महाशक्तियों पर विजय प्राप्त की जो विनाशोन्मुख केन्द्र पर शासन करने के लिए परिधि पर अपना विस्तार कर रहे थे । इन नगर-राज्यों की व्यवस्था उन समाजों के उस विघटन के इतिहास की एक घटना थी,

जो १४ वीं शती के अन्त से आरम्भ हुई थी और १८वीं शती के अन्त तक चलती रही। १४ वें लुई के युग के बाद से फ्रांसीसी संस्कृति ने आकर्षण उत्पन्न किया जिसके साथ ही फ्रांसीसी सेना का भी विकास हुआ। और जब नैपोलियन वे बूर्बोन पूर्वजों की आकांक्षा को सभी नगर-राज्यों के टुकड़ों को फ्रांसीसी डिजाइन के अनुसार मिलाकर पूरा किया, जो टुकड़े राष्ट्र के द्वार पर, उत्तरी महासागर से लेकर वाल्टिक सागर तक यूरोप में विखरे हुए थे, आ गये। उस समय नैपोलियन का साम्राज्य सैनिक प्रणाली के साथ-साथ सांस्कृतिक शक्ति भी बन गया।

यह वास्तव में फ्रांस का सांस्कृतिक मिशन था, जिसने नैपोलियन के साम्राज्य का विनाश किया था। क्योंकि जिन विचारों का उसने प्रसार किया (रोग के अर्थ में) वह आधुनिक पश्चिमी संस्कृति की अभिव्यक्ति थी, जिसका अभी विकास हो रहा था। नैपोलियन का उद्देश्य पश्चिमी ईसाई राज्य के बीच नगर-राज्यों की व्यवस्था के समान उप-समाज के लिए उप-सार्वभौम राज्य बनाना था, किन्तु संकटकाल से वहुत दिनों तक पीड़ित समाज के लिए शान्ति प्रदान करना सार्वभौम राज्य का कार्य है। सार्वभौम राज गत्यात्मक तथा क्रान्तिकारी विचारों से प्रेरित हो विरोध मूलक वातें हैं, जैसे तुरही पर लोरी गाना। 'फ्रांसीसी क्रान्ति के विचार' इटालियनों, फ्लेमिंग, राइन प्रदेश निवासी, जर्मन, और हैंसिआटकों[1] को शान्त करने या इसलिए कि फ्रांसीसी साम्राज्य-निर्माताओं के बोझ को वरदाश्त कर लें, जिन्होंने इन विचारों को प्रवाहित किया था नहीं चलाया गया था। इसके विपरीत नैपोलियन के फ्रांस की क्रान्ति ने इन देशों की गतिरुद्ध जनता को एक उत्तेजक धक्का दिया, जिससे उनकी जड़ता भागी तथा जाग्रत होने और फ्रांसीसी साम्राज्य नष्ट करने की उन्हें प्रेरणा दी। आधुनिक पश्चिमी संसार में नव-निर्मित राष्ट्रों को उचित स्थान दिलाने का यह पहला कदम था। इस प्रकार नैपोलियन के साम्राज्य के अन्दर अपनी निश्चित विफलता के प्रोमीथियन[2] बीज मौजूद थे, क्योंकि वह ऐसे पतनोन्मुखी संसार में सार्वभौम राज्य की सेवा करना चाहता था। जब कि उसका मध्याह्नकाल फ्लोरेन्स और वेनिस तथा ब्रूजेज और ल्यूबेक के वैभव के साथ वीत चुका था।

अज्ञात रूप से नैपोलियनी साम्राज्य ने यह किया कि माध्यमिक नौ-सेना के टूटे-फूटे विखरे जहाजों को पश्चिमी जीवन की धारा में खींच लाया और साथ उसके बेचैन नाविकों को उनके जहाजों को समुद्र में चलने योग्य बनाने की प्रेरणा दी। फ्रांसीसियों का यह वास्तविक कार्य इस विषय में अल्पकालीन और व्यर्थ हो जाता यदि नैपोलियन दूसरे राष्ट्र राज्यों को जैसे ब्रिटेन, रूस, स्पेन—जो नगर-राज्यों की व्यवस्था से दूर थे, और जो सचमुच उसका कार्यक्षेत्र था, वैरी न भी वनाता। फिर भी आज के इस महान् समाज में दो सौ वर्ष पुराने ढंग की एक विरासत

---

[1] वह संघ जिसमें उत्तरी यूरोप के कई नगर शामिल थे। यह संघ व्यापार के लिए बना था।—अनुवादक

[2] प्रोमीथ्यूस का विशेषण। यूनानी पुराण में कथा है कि प्रोमीथ्यूस स्वर्ग में चला गया और वहां से सूर्य से अग्नि चुरा लाया कि मनुष्यों को जीवन-दान दे। उसे यह दण्ड दिया गया कि काकेशस पहाड़ पर बाँध दिया गया। एक गिद्ध आकर रोज उसके फलेजे को खाता था। —अनुवादक

नैपोलियन के संक्षिप्त उत्कर्ष के साथ मिली है जिसे फ्रांस ने नगर-राज्यों की व्यवस्था को अन्तिम दशा में कायम रखा। फ्रांसीसी भाषा ने पश्चिमी संसार के केन्द्र में सामान्य भाषा के रूप में स्थापित होने में सफलता पायी और सुदूर स्पेनी और उसमानिया साम्राज्यों की सीमा तक अपना विस्तार किया। फ्रांसीसी भाषा का ज्ञान अब भी किसी यात्री को बेल्जीयम, स्विटज़रलैंड, आइबीरियन प्रायद्वीप, लैटिन अमेरिका, रूमानिया, ग्रीक, सीरिया, तुर्की और मिस्र में ले जा सकता है। मिस्र के सम्पूर्ण ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र में मिस्री सरकार के प्रतिनिधियों तथा उनके ब्रिटिश सलाहकारों के बीच फ्रेंच भाषा व्यवहार में सदा रही। और जब ब्रिटिश हाई कमिश्नर लार्ड एलेनबी ने २३ नवम्बर १९२४ को मिस्री प्रधानमन्त्री को अंग्रेजी में पढ़कर दो सूचनाएँ सुनायी थीं जो सरदार की हत्या के परिणामस्वरूप अन्तिम चेतावनियाँ थीं और भाषा का यह चुनाव निस्सन्देह अप्रसन्नता का सूचक था। किन्तु इन ब्रिटिश सूचनाओं की लिखित प्रतिलिपियाँ फ्रांसीसी भाषा में भी उसी समय जमा की गयीं। इस दृष्टि से विचार करने पर मध्ययुगीन इटालियाई समुद्री यात्रियों की भाँति नैपोलियन की मिस्र पर चढाई करना, जो साधारणतः बेकार तथा इस यूरोपीय विजेता के जीवन-पथ से विचलन समझा जाता है, एक प्रकार वह सफल चेष्टा समझी जाती है कि फ्रांसीसी संस्कृति का बीज सुदूर किन्तु ग्रहण करने वाली भूमि पर उसने लगाया।

यदि पश्चिमी सामाजिक जीवन में फ्रांस की सामान्य भाषा मध्ययुगीन उप-समाज के पतन और विनाश का चिह्न है तो हम अंग्रेजी सामान्य भाषा को संकरता की उस महान् प्रणाली के फल के रूप में देख सकते हैं, जिसने हमारे आधुनिक पश्चिमी संसार को महान् समाज में विस्तृत किया और सरल करके फैलाया है। अंग्रेजी भाषा की यह विजय स्वयं ग्रेट-ब्रिटेन के सैनिक, राजनीतिक और व्यापारिक विजयों का स्वाभाविक परिणाम थी। ब्रिटेन ने यह विजय समुद्र पार नयी दुनिया में पूर्व और पश्चिम दोनों ओर स्वामित्व स्थापित करके की है। अंग्रेजी उत्तरी अमेरिका की निजी भाषा और भारत उप-महाद्वीप की शक्तिशाली सामान्य भाषा हो गयी। इसका चीन और जापान में विस्तृत चलन है। इटली के विरोधी देशों की नौ-सेना की कामकाज की भाषा के रूप में इटालिया भाषा का प्रयोग हम पहले ही देख चुके हैं। उसी प्रकार १९२३ के चीन में रूस के साम्यवादी एजेन्ट बोरोडिन ने कोमिंतांग पार्टी के चीनी प्रतिनिधियों के साथ विचारों के माध्यम के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग इसलिए किया था कि वह सन्धि-बन्दरगाहों (ट्रीटी पोर्ट) से उन्हें भगा दें। पढ़े-लिखे लोगों में बातचीत का माध्यम अंग्रेजी भाषा ही है, जहाँ अनेक चीनी बोलियाँ बोली जाती हैं। विदेशियों के मुख से क्लासिकी टसकन और एटिक भाषा उसी प्रकार खराब हो जाती है जिस प्रकार भारत में बाबू-इंगलिश और चीन में पिजिन इंगलिश।

अफ्रिका में अरबी के सर्वजन भाषा होने की प्रगति हम यों देख सकते हैं कि वह हिन्द महासागर के पश्चिमी तट से होते हुए पश्चिम में झीलों की ओर गयी और दक्षिण की ओर सहारा के दक्षिणी तट से सुडान में गयी। यह अर्धअरबी ढोर पालने वाले और दासों का व्यापार करने वालों द्वारा फैली। इस क्रिया का भाषा सम्बन्धी परिणाम आज भी वहाँ के जीवन में देखा जा सकता है। जहाँ अरब आक्रामकों का भौतिक संघात यूरोपीय लोगों के प्रवेश से समाप्त हो गया, अरबी भाषा का संघात वहाँ की स्थानीय बोलियों पर अफ्रिका के खुल जाने पर पड़ा, उसी अफ्रिका में जो अरबों के हाथों से ले लिया गया। यूरोपीय झण्डे के नीचे, जिसका अर्थ है पश्चिमी

शासन, पहले की अपेक्षा अरबी भाषा की प्रगति के लिए अधिक सुविधाएँ हैं। यूरोपीय उपनिवेशी शासन से अरबी का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मिली-जुली भाषा को सरकारी प्रोत्साहन मिला, क्योंकि उन्हें शासन के लिए इसकी आवश्यकता थी। ये संकर भाषाएँ अरबी के साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों में धीरे-धीरे प्रवेश कर रही थीं। ऊपरी नाइगर में, फ्रेंच साम्राज्य में, निचली नाइगर में, ब्रिटिश साम्राज्य में और जांजिबार की पूर्वी अफ्रीकी पृष्ठभूमि में, क्रमशः फुजानी, हाउसा तथा स्वाहिली का विकास होता रहा है। ये भाषाएँ मिश्रित हैं जिनका मूल अफ्रीकी है और अरबी मिलावट है, तथा इन्हें अरबी लिपि में लिपिबद्ध किया गया है।

(द) धर्म में संहतिवाद

धर्म में संहतिवाद या धार्मिक कृत्यों, उपासना पद्धतियों और विश्वासों का मिलन आन्तरिक अ-सामंजस्य की बाहरी अभिव्यक्ति है। और यह सामाजिक विघटन के काल में आत्म-भेद से उत्पन्न होती है। यह परिस्थिति सामाजिक विघटन का लक्षण कुछ विश्वास के साथ समझी जा सकती है, क्योंकि सामाजिक विकास के समय सभ्यताओं के इतिहास में धार्मिक संहति के उदाहरणों के जो आभास मिलते हैं वे भ्रामक सिद्ध होते हैं। क्योंकि जब हम अनेक नगर-राज्यों की स्थानीय पौराणिक कथाओं को एक सर्व-हेलेनी व्यवस्था में हेसियोद तथा और प्राचीन कवियों द्वारा, एक साथ सम्मिलित करतें और एकरूपता देते देखते हैं तब केवल हमें नामों का इन्द्रजाल मिलता है। विभिन्न धार्मिक आवेगों, विभिन्न धार्मिक कृत्यों का विलयन तदनुसार नहीं मिलता। और जब हम लैटिन देवताओं को ओलिंपियाई देवताओं के साथ समता करते देखते हैं जैसे ज्युपिटर का जीयूस के साथ, और जूनो का हीरा के साथ तब हम यह देखते हैं कि वास्तव में आदिम लैटिन जीववाद को हटा कर उनके स्थान पर यूनानी, मानव देव कुल को स्थापित किया जा रहा है।

देवताओं के नाम में एक दूसरे ढंग की समता भी है, जिसमें विघटन के काल की शाब्दिक समता है जिससे सामंजस्य की भावना भी प्रकट होती है, किन्तु परीक्षा करने पर वे वास्तविक धार्मिक परिस्थितियाँ नहीं हैं, केवल राजनीतिक आवरण में धार्मिक है। विभिन्न स्थानीय देवताओं के नामों में इस प्रकार की समता उस समय लायी जाती है, जब विघटनोन्मुख समाज में स्थानीय राज्यों को, युद्ध में पराजित कर राजनीतिक धरातल पर जबरदस्ती मिलाया जाता है, जो विकास-काल में पहले समाज से विभाजित हो गये थे। उदाहरण के लिए जब सुमेरी इतिहास के अन्तिम अध्यायों में निप्पर के स्वामी (बेल) एनलील को बैबिलोन के मारडूक से मिला दिया गया था और जब बैबिलोन के मारडूक—बेल कुछ समय के लिए खारबे के नाम से अन्तर्धान हो गये, इस प्रकार देवताओं का एकीकरण विशुद्ध राजनीतिक था। पहला परिवर्तन उस समय हुआ, जब बैबिलोनी वंश द्वारा सुमेरी सार्वभौम राज्य बना, और दूसरा जब कस्साइट सेनानायकों ने सार्वभौम राज्य पर विजय पायी।

विभिन्न स्थानीय राज्यों के सम्मिलित हो जाने के कारण अथवा ऐसे साम्राज्य में राजनीतिक अधिकार एक सेना-सरदार से दूसरे सेना-सरदार के पास चले जाने के कारण, समाज का विघटन हुआ और इस विघटन के परिणामस्वरूप स्थानीय देवताओं की तद्रूपता स्थापित हुई। बात यह थी कि एक ही शक्तिशाली अल्पसंख्या के वर्गों के ये प्राचीन देवता थे और इस कारण इनमे सादृश्य

था। इसलिए राजनीतिक कारणों से देवताओं का सम्मिलन धार्मिक प्रवृत्ति तथा भावना के के प्रतिकूल नहीं था। ऐसी धार्मिक संहति के उदाहरण खोजना जिनकी गहराई राजनीतिक कारणों के सम्मिलन से अधिक थी और जो धार्मिक आचार तथा विश्वास को अधिक स्पर्श करते थे, हमें अपना ध्यान, उस धर्म से जो प्राचीन सुखमय दर्शन से शक्तिशाली अल्पसंख्या को विरासत में मिलता है, दूसरी ओर मोड़ना चाहिए। यह दर्शन संकट-काल की चुनौती का परिणाम होता है और हमें इसपर ध्यान देना चाहिए कि दर्शन की प्रतिद्वंद्वी शैलियाँ आपस में ही एक-दूसरे से टकराती और मिलती नहीं, आन्तरिक सर्वहारा द्वारा विकसित दार्शनिक शैलियों से भी टकराती हैं और उनमें सम्मिलित होती हैं। चूँकि ये ऊँची श्रेणी के धर्मदर्शन से टकराने के साथ-साथ आपस में भी संघर्ष करते हैं। पहले इस पर विचार करना सुविधाजनक होगा कि उनके अलग सामाजिक क्षेत्रों में ऊँचे धर्मों में आपस में क्या सम्बन्ध है और दर्शनों में आपस में क्या सम्बन्ध है। और तब हम उस गत्यात्मक आध्यात्मिक परिणाम पर विचार करेंगे जो धर्म तथा दर्शन का आपस में संघर्ष होने का कारण होता है।

हेलेनी समाज के विघटन में पोसिडीनियस की पीढ़ी (लगभग १३५–५१ ई० पू०) से एक युग का आरम्भ होता है, जिसमें दर्शनों की अनेक विचारधाराएँ जो अभी तक आपस में तीव्रता से लड़ रही थीं, सब, एपिक्युरियनों को छोड़कर उन बातों पर जोर देने लगीं, जिनकी उनमें समता थी और उन्हें छोड़ दिया जिनमें भेद था। और रोमन साम्राज्य की पहली तथा दूसरी शती में एक ऐसा समय आया, जब एपिक्युरियनों को छोड़कर हेलेनी संसार के सभी दार्शनिक, अपने को चाहे जिस नाम से पुकारते हों, एक सर्व-मत-दर्शन के सिद्धान्तों को मानने लगे। इसी युग में चीनी समाज के विघटन के इतिहास में ऐसे ही दार्शनिक असामंजस्य की ओर झुकाव की प्रवृत्ति दिखाई देती है। ईसा के पूर्व दूसरी शती में जो हैन के साम्राज्य की पहली शती थी, टाओवाद में भी सर्वमतवाद पाया जाता है। सम्राट् का राजदरबार भी इसे मानता था और कनफूशियसवाद भी, जो बाद को चीन का राजधर्म हुआ।

प्रतिद्वन्द्वी दर्शनों का यह संहतिवाद प्रतिद्वन्द्वी उच्च धर्मों में भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए सीरियाई संसार में सोलोमन की पीढ़ी से आगे इसरायली यहोवा की पूजा में पड़ोसी सीरियाई समुदायों के स्थानीय बआलिम की पूजा मे सामंजस्य की प्रवृत्ति हमें मिलती है। यह समय महत्त्व का है, क्योंकि सोलोमन की मृत्यु से सीरियाई समाज का पतन आरम्भ होता है। निश्चय ही इसरायली धार्मिक इतिहास में विशेष महत्त्व की यह बात है कि उस युग में ईश-दूतों को असामंजस्य की भावनाओं से लड़ने में विशेष सफलता प्राप्त हुई और उन्होंने इसरायली धार्मिक विकास को संहतिवाद की सरल राह से हटाकर नये और कठिन मार्ग की ओर मोड़ा जो इसरायलियों की विशेषता थी। फिर भी जब हम सीरियाई आपसी धार्मिक प्रभाव के हिसाब में खर्च की ओर न देखकर आमदनी की ओर देखते हैं तब हम स्मरण करेंगे कि सीरियाई संकटकाल में पश्चिमी ईरान के लोगों की धार्मिक भावना पर यहोवा की उपासना का प्रभाव पड़ा होगा, क्योंकि इसी पश्चिमी ईरान में असीरियाई सैन्यवादियों ने इसरायली निर्वासितों को ले जाकर बैठा दिया था। जो भी हो, यह निश्चित-सा है कि अकेमिनियाई साम्राज्य के समय और उसके बाद भी यहूदी धार्मिक भावनाओं पर ईरानी धर्म का बलशाली प्रतिघात हुआ था। ईसा के पूर्व दूसरी शती तक यहूदी तथा जरथूष्ट्री धर्म आपस में इतने मिल-घुल गये थे कि आधुनिक पश्चिमी

इतिहासकारों के लिए इन दोनों सरिताओं से मिलकर जो नदी प्रवाहित हुई उसमें से यह निकालना बहुत कठिन हो गया कि किसकी कितनी देन है ।

यही भारतीय संसार के आन्तरिक सर्वहारा के उत्कृष्ट धर्मों के विकास का भी हाल है । ऐसा मिलन हो गया है कि केवल नाम का ही समीकरण नहीं है, जैसे कृष्ण की उपासना में और विष्णु की उपासना में ।

विघटन के समय धर्म-धर्म में और दर्शन-दर्शन की दीवार में इस प्रकार के विच्छेद के कारण दर्शनों और धर्मों में एक-दूसरे से मिलने की राह बन जाती है और इस धर्म-दर्शन की संहति में, हम देखेंगे कि आकर्षण दोनों ओर से होता है और दोनों ओर से मिलने की गति होती है । जिस प्रकार हमने देखा कि सार्वभौम राज्य की सैनिक सीमा पर सम्राट् के गैरिसन के सैनिक तथा बर्बर सेना-सरदारों के सिपाही अपने सामाजिक जीवन के ढंग में एक-दूसरे के निकट आते हैं और अन्त में अन्तर मिट जाता है, उसी प्रकार हम देखते हैं कि सार्वभौम राज्य के अन्दर दार्शनिक विचारधारा के अनुगामी और लोकधर्म के अनुयायी आकर एक-दूसरे से मिलते हैं । यह समानता बहुत ठीक है, क्योंकि जैसे उसमें, उसी प्रकार इसमें भी, यद्यपि सर्वहारा के प्रतिनिधि शक्तिशाली अल्पसंख्या से मिलने के लिए थोड़ी दूर बढ़ते हैं, शक्तिशाली अल्पसंख्या अपने ढंग के सर्वहाराकरण की राह में इतना आगे बढ़ जाती है कि अन्त में सर्वहारा के रूप मे ही मिलन होता है । दोनों ओर की मिलन की इस चेष्टा का अध्ययन करने के लिए पहले सर्वहारा की छोटी आध्यात्मिक यात्रा का सर्वेक्षण करना सुविधाजनक होगा और उसके बाद शक्तिशाली अल्पसंख्या की लम्बी यात्रा का अध्ययन हम करेंगे ।

जब आन्तरिक सर्वहारा के उत्कृष्ट धर्म शक्तिशाली अल्पसंख्या के आमने-सामने आ जाते हैं, तब कभी-कभी वे पहले ही कदम पर ठहर जाते हैं और शक्तिशाली अल्पसंख्या की कला की नकल करते हैं जिससे इस अल्पसंख्या का ध्यान उधर आकृष्ट होता है । जब हेलेनी संसार का विघटन होने लगा ईसाई धर्म के सब असफल प्रतिद्वंद्वियों ने अपने मिशनरी परिश्रम को सफल बनाने के लिए सारे चाक्षुष ईश्वरीय तत्त्वों को हेलेनी आँखों को प्रसन्न करने के लिए, हेलेनी रूप में बनाने लगे । किन्तु इसके आगे वे नहीं बढ़े कि अन्दर और बाहर से समाज का हेलेनीकरण करें । ईसाई धर्म ही था जिसने अपने को हेलेनी दर्शन के माध्यम से अभिव्यक्त किया ।

ईसाई धर्म का, जिसका मूल सीरियाई था, बौद्धिक हेलेनीकरण होने का आभास पहले ही मिल गया था, क्योंकि नयी बाइबिल की भाषा एटिक बनायी गयी, आरामेइक नहीं, क्योंकि इस भाषा की शब्दावली में ही अनेक दार्शनिक तात्पर्य निहित थे ।

'सिनाप्टिक सुसमाचारों में' (मैथ्यु, मार्क तथा ल्यूक के सुसमाचार, गोसपेल) ईसू को ईश्वर का पुत्र बताया गया है और यह विश्वास चौथे सुसमाचार में भी लिया गया है और अधिक दृढ़ किया गया है । किन्तु चौथे सुसमाचार के आमुख में यह विचार भी व्यक्त किया गया है कि संसार का त्राता ईश्वर का सर्जनात्मक वाक्य (लांगोस) भी है । स्पष्ट नहीं, फिर भी संकेत रूप से बता दिया गया है कि ईश्वर का पुत्र और ईश्वर का वाक्य एक ही है, पुत्र को ईश्वर का वाक्य कहकर ईश्वर के सर्जनात्मक उद्देश्य को एक ही बताया गया है और वाक्य का ईश्वर के पुत्र से

साम्य करके पिता के व्यक्तित्व के साथ एक और व्यक्तित्व का देवतनु स्थापित किया गया। और एक छलाँग में 'वाक्य' का दर्शन धर्म हो गया ।"[१]

धर्म का दार्शनिक भाषा में प्रचार करना ईसाई धर्म को यहूदियों की विरासत थी। अलेकजेंड्रिया के यहूदी दार्शनिक फिलो (लगभग ३० ई० पू०—४५ ई० पू० तक) ने इसका वीजारोपण किया जिससे उसके ईसाई सह-नागरिक क्लिमेंट और ओरिगेन ने दो सौ साल वाद अच्छी फसल काटी । और सम्भवतः चौथे सुसमाचार के लेखक ने उसी ओर से ईश्वरीय वाक्य की भावना ली जिसकी ईश्वर के अवतार के साथ वह एकता स्थापित करता है । सिकन्दर के युग के इन ईसाई पिताओं का यह यहूदी अग्रगामी यूनानी भाषा के माध्यम से हेलेनी दर्शन तक पहुँचा। यह संयोग की बात नहीं थी कि फिलो ऐसे नगर में रहता था और अपनी दार्शनिकता का प्रचार करता था जहाँ स्थानीय यहूदी समुदाय की बोल-चाल की भाषा एटिक थी, वह हिब्रू और अरामी भाषा भूल गया था, यहाँ तक कि उसने धर्मग्रन्थों का अनुवाद भी अ-यहूदी.भाषा मे किया। किन्तु यहूदी धर्म के इतिहास में भी ईसाई दर्शन का यह यहूदी पिता अकेला व्यवित है और उसकी चतुर चेष्टा कि अफलातून का दर्शन मूसा के कानूनों पर आधारित है, विना किसी परिणाम के, यहूदी धर्म की विशेष शक्ति रही है ।

ईसाई धर्म के आगे जब हम ईरानी धर्म—सूर्य की उपासना (मिथ्राइज्म) की ओर चलते हैं जो हेलेनी संसार के आध्यात्मिक विजय में ईसाई धर्म का प्रतिद्वन्द्वी था, हम देखते हैं कि अपने ईरानी घर की ओर लौटते समय मिथ्रा ने अपनी जहाज पर बैबिलोनी नक्षत्रीय दर्शन का भारी सामान लाद रखा था । इसी प्रकार भारत के उच्च हिन्दू धर्म ने जर्जर बौद्ध दर्शन में से विचारों का अपहरण किया, जिससे उसके पास वह शस्त्र मिल गया जिसको उसने बौद्ध धर्म को उसके घर से निकाल बाहर किया । और कम-से-कम एक आधुनिक मिस्रवेत्ता (एजिप्टालोजिस्ट) का का कथन है कि ओसाइरिस की सर्वहारा द्वारा उपासना ने मिस्र की शक्तिशाली अल्पसंख्या के किले में रे की नैतिक भूमिका को ग्रहण करके प्रवेश किया । पहले यह ओसीरियाई धर्म में नहीं था । वह ऐसा देवता है जो सत्यता की अभिव्यक्ति करता है और उसका पोषण करता है। परन्तु 'मिस्र के अपहरण' का मूल्य सर्वहारा के धर्म के लिए मँहगा पड़ा क्योंकि ओसीरियन धर्म वालों को अपने को उन लोगों के हाथ में रखना पड़ा, जो उन्हें रे धर्म में नहीं लेना चाहते थे। मिस्री पुरोहितों की बड़ी चाल थी कि अपने को उस उभरते हुए धार्मिक आन्दोलन के सुपुर्द कर दें जिसे न दबाया जा सकता था, न रोका जा सकता था । इस प्रकार वे उसके नेता भी बन गये और शक्ति के ऐसे ऊँचे शिखर पर उसे पहुँचाया जहाँ वह कभी नहीं पहुँचा था ।

जिस प्रकार पुराने मिस्री देवकुल के पुरोहितों ने ओसीरियाई धर्म का अपहरण किया, उसी के समान ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म का और मागी ने जरथूष्ट्र धर्म का अपहरण किया । किन्तु एक और तथा कपटपूर्ण ढंग है जिससे सर्वहारा का धर्म शक्तिशाली अल्पसंख्या के हाथों में चला जाता है । क्योंकि जो पुरोहित समुदाय सर्वहारा-धर्म पर अपना अधिकार कर लेते हैं और तब

---

१. पी० ई० मोर : क्राइस्ट द वर्ड : द ग्रीक ट्रेडिशन फ्राम द डेथ आव सोक्रिटीज टु द कौंसिल आव कालसिडोन, खण्ड ४, पृ० २९८ ।

शक्तिशाली अल्पसंख्या की भावनाओं तथा रुचि के अनुसार उस पर शासन करने लगते हैं, उनके लिए आवश्यक नहीं है कि पुराने पुरोहित हों जो शक्तिशाली अल्पसंख्या के उत्तराधिकारी हों। ऐसा भी सम्भव है कि वे सर्वहारा धर्मतन्त्र के ही प्रमुख नेता हों।

रोमन साम्राज्य के राजनीतिक इतिहास के प्रारम्भिक अध्याय में अभिजात तथा अकुलीन वर्गों के बीच का अवरोध इस प्रकार समाप्त किया गया कि अभिजात वर्ग ने अकुलीन वर्ग के नेताओं को इस स्पष्ट समझौते पर अपने साथ लिया कि अधिकारविहीन वर्गों के नेता अपने साथियों को छोड़ देंगे और उनके प्रति विश्वासघात करेंगे। उसी प्रकार धार्मिक धरातल पर यहूदियों के जनसाधारण को धोखा दिया गया और उनका साथ ईसा के आने के पहले, उनके नेताओं—लिपिकों और फरीसियों ने—छोड़ दिया था। ये यहूदी 'अलग होने वाले', इसी नाम से जीते रहे, यही नाम उनके अनुकूल भी था, यद्यपि जिस भावना से उन्होंने अपना यह नाम रखा था, वह इसके प्रतिकूल थी। आरम्भ में ये फरीसी यहूदी विशुद्धवादी थे, जिन्होंने अपने को उन यहूदियों से अलग कर लिया था जो अपना हेलेनीकरण कर रहे थे और जब ये धर्म-त्यागी विदेशी शक्तिशाली अल्पसंख्या में सम्मिलित हो रहे थे। ईसा के समय फरीसियों की विशेषता यह थी कि वे यहूदी समुदाय की भक्त और धर्मात्मा जनता से अलग हुए थे यद्यपि पाखण्ड से अब भी वे यही कह रहे थे कि हम अच्छा उदाहरण रख रहे हैं। यह उस घोर भर्त्सना की ऐतिहासिक पूर्व-पीठिका है, जिसकी प्रतिध्वनि सुसमाचारों में मिलती है। फरीसी यहूदियों के वही धार्मिक रूप हैं जो रोमन राजनीतिक स्वामियों के यहूदी थे। 'पैशन आव क्राइस्ट' के ट्रेजेडी नाटक में हम देखते हैं कि वे (फरीसी) रोमन अधिकारियों के बगल में खड़े होते हैं और अपनी ही जाति के उस ईशदूत की मृत्यु में सहायक होते हैं, जो उन्हें लज्जित करता रहा।

यदि अब हम साथ के उस आन्दोलन का परीक्षण करें जिसमें शक्तिशाली अल्पसंख्या का दर्शन आन्तरिक सर्वहारा के धर्म की ओर बढ़ता है तो हम देखेंगे कि इस ओर प्रक्रिया आगे बढ़ने के साथ ही पहले भी आरम्भ होती है। पतन के बाद पहली पीढ़ी में यह प्रक्रिया आरम्भ होती है, कौतूहल से धर्मनिष्ठा में परिवर्तित होती है, फिर अन्धविश्वास में बदल जाती है।

धार्मिक रंग पहले-पहले कब चढ़ता है इसका उदाहरण अफलातून के 'रिपब्लिक' के चित्रण में मिलता है। दृश्य पाइरियस का है—एथोनोपैलोपोनीशियाई घाट तक युद्ध के पहले का—जो हेलेनी संसार के सामाजिक सम्मिलन की प्राचीनतम घड़ियाँ हैं। जिस घर में संवाद की कल्पना है उसका स्वामी विदेशी है और कथा कहने वाला सुकरात है। वह इस प्रकार आरम्भ करता है कि मैं एथेन्स नगर से बन्दरगाह तक पैदल चलकर आया हूँ कि थ्रेस की देवी बेन्डीस के प्रति अपनी वन्दना अर्पित करूँ और कौतूहलवश यह भी देख लूँ कि लोग उसके सम्मान में किस प्रकार उत्सव मना रहे हैं क्योंकि पाइरीयस में यह पहले-पहल हो रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हेलेनी दर्शन के आधार पर धर्म की भावना वातावरण में आ गयी है, वह भी धर्म विदेश का और विदेशी ढंग का। यह वह भूमिका है जो हमें परिणाम के लिए तैयार करती है। इस परिणाम का वर्णन एक पश्चिमी विद्वान् ने निम्नलिखित शब्दों में किया है: 'विचित्र बात यह है कि नयी (ईसाई) कथा का स्रोत विदेशी होने पर भी, यूनानी पिताओं का धर्म और दर्शन मुख्य बातों में पूर्णत: अफलातूनी है, या इसे अधिक ठीक शब्दों में कहें, तो बहुत थोड़े परिवर्तनों के साथ अफलातून से ले लिया गया है। इस प्रकार के सम्मिलन से हम ऐसी कल्पना कर सकते

हैं कि जिन कथाओं को अफलातून ने पुरानी देवताओं की कहानी के स्थान पर रखने की चेष्टा की वे ईसाई धर्म की विरोधी नहीं, अपूर्ण थीं। इधर-उधर के संकेतों से पता चलता है कि अफलातून को स्वयं होने वाले ईश्वरीय अवतार का धुँधला भान था और उसके दृष्टान्त भविष्य-वाणियाँ थीं। सुकरात ने 'अपालोजी' में एथीनियनों को चेतावनी दी थी कि आत्मा के दूसरे साक्षी उसकी मृत्यु के बाद आ सकते हैं जो उसकी मृत्यु का बदला ले सकते हैं। दूसरे स्थल पर उसने स्वीकार किया है कि मैंने बहुत तर्क किये हैं और अनेक दार्शनिकता की वात कहीं है, परन्तु पूरा सत्य तब तक नहीं जाना जा सकता, जब तक मनुष्य के लिए उसकी अभिव्यक्ति ईश्वर की कृपा से न हो।"[1]

दर्शन के धार्मिक रूप में परिवर्तन होने का ऐतिहासिक वर्णन हेलेनी संसार में इतना अधिक मिलता है कि उसके बाद की परिस्थितियों की प्रक्रिया को हम भलीभाँति परख सकते हैं। जिस प्रकार अफलातून के सुकरात ने थ्रेस के बेंडीस के धर्म के प्रति अपना शान्त, बौद्धिक कौतूहल दिखाया है, उसी प्रकार ऐतिहासिक सुकरात के समकालीन हेरोडोटस ने धर्म के तुलनात्मक अध्ययन में प्रासंगिक लेखों में बताया है। उसने इन बातों को वैज्ञानिक ढंग से देखा है। जो भी हो, जब अकेमीनियाई साम्राज्य को सिकन्दर ने पराजित किया और उत्तराधिकारी राज्यों के हेलेनी शासकों को मिली-जुली प्रजा की धार्मिक आवश्यकताओं के लिए कुछ उपासना की विधि खोजनी पड़ी, तब धार्मिक समस्याओं की व्यावहारिक आवश्यकता शक्तिशाली अल्पसंख्या के सामने आयी। उसी समय स्टोइक तथा एपिक्युरियन दर्शनों के संस्थापक और प्रचारक व्यक्तिगत रूप से उन लोगों की आध्यात्मिक भूख के लिए भोजन की व्यवस्था कर रहे थे जो आध्यात्मिक जंगल में खोये भटक रहे थे। किन्तु यदि हम इस युग की हेलेनी दार्शनिक प्रवृत्ति का माप अफलातून की दार्शनिक विचारधारा को मानें तो हम देखेंगे कि इसके शिष्य सिकन्दर की मृत्यु के बाद दो सौ सालों में संशयवाद की ओर आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

धारा का प्रवाह निश्चयात्मक ढंग से उस समय मुड़ा, जब सीरियाई यूनानी दार्शनिक अपामिया के पोसिडोनियस (लगभग १३५–५१ ई० पू०) ने लोकप्रिय धार्मिक विश्वासों के स्टोइकवाद का द्वार खोल दिया। दो सौ वर्षों के कुछ पहले ही स्टोइक विचारधारा का नेतृत्व गेलियों के भाई सेनेका के हाथों में चला गया, जो सन्त पाल का समकालीन था। सेनेका की दार्शनिक पुस्तकों में ऐसे स्थल हैं जो ऐसे विचित्र ढंग से सन्त पाल के पत्रों का भाव प्रकट करते हैं कि कुछ छोटे ढंग के आलोचक यह कल्पना करते हैं कि रोमन दार्शनिक और ईसाई मिशनरी के बीच पत्राचार होता रहा। ऐसी कल्पनाएँ वेकार हैं और असम्भव भी, क्योंकि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि एक ही युग में जब एक ही सामाजिक युग की अभिव्यक्ति हो तब यदि दो आध्यात्मिक संगीत हों तो समान स्वर निकले।

जब पहले अध्याय में पतनोन्मुख सभ्यता की सीमा के संरक्षकों और उसके आगे की बर्बर सेनाओं के सम्बन्ध में हमने अध्ययन किया था, तब हमने देखा था कि वे इतने निकट पहुँच गये कि पहचानना कठिन था और दूसरे अध्याय में वे मिल जाते हैं तथा बर्बरता के स्तर पर आ

---

[1] पी० ई० मोर : क्राइस्ट द वर्ड, पृ० ६–७।

जाते हैं। इसी के समान वह घटना भी है जब शक्तिशाली अल्पसंख्या के दार्शनिकों और सर्वहारा धर्म के उपासकों का समागम होता है, ऊँचे धरातल पर सेनेका और सन्त पाल एक-दूसरे के निकट पहुँचते हैं। यहाँ पहला अध्याय समाप्त होता है। दूसरे अध्याय में दर्शन कम ज्ञानवर्धक धार्मिक प्रभावों में आ जाता है, और धार्मिक भक्ति अन्धविश्वास में बदल जाती है।

शक्तिशाली अल्पसंख्या के दर्शन का यह दुखदायी अन्त होता है। यह उस समय भी होता है जब दर्शन अपनी सारी शक्ति लगाकर सर्वहारा की उर्वर आध्यात्मिक भूमि पर पहुँचने की जी जान से चेष्टा करते हैं, जहाँ उच्च धर्म का बीजारोपण हो सकता है। इन दर्शनों को इससे कोई लाभ नहीं होता कि अन्त में यह भी सुमनों की भाँति खिल गये क्योंकि विलम्ब से और अनिच्छा से खिले ये सुमन अपने से ही प्रतिशोध लेते हैं और वढ़कर पतित और अनुपयोगी झाड़-झंखाड़ बन जाते हैं। सभ्यता के विघटन के अन्तिम अंक (ऐक्ट) में दर्शनों की मृत्यु हो जाती है और उच्च श्रेणी के धर्म जीवित रहते हैं और भविष्य के दावेदार होते हैं। ईसाई धर्म का अस्तित्व वना रहा और नव-अफलातूनी (निओ-प्लेटोनिक) दर्शन को उसने निष्कासित कर दिया, क्योंकि बुद्धिवाद को हटाकर इसमें जीवन के लिए कोई संजीवनी नहीं रह गयी। वास्तविकता यह है कि जब दर्शन और धर्म का सम्मिलन होता है, धर्म का उन्नयन होता है और दर्शन का अवनयन। हम इस अध्ययन से, इस प्रश्न पर विचार किये बिना नहीं हट सकते कि जब ये दोनों मिलते हैं तब क्या कारण है कि हम पहले से ही समझ लेते हैं कि इसका परिणाम दर्शन की पराजय होगी।

तब वे कौन-सी दुर्बलताएँ हैं जो दर्शन की पराजय करा देती हैं जब वह धर्म का प्रतियोगी बनकर अखाड़े में प्रवेश करता है? सबसे घातक और मूल दुर्बलता है, जिसके कारण अन्य दुर्बलताएँ भी आ जाती हैं, आध्यात्मिक शक्ति का अभाव। इस सजीवता के अभाव के कारण दर्शन दो ढंग से लँगड़ा हो जाता है। इनके कारण जनता का आकर्षण कम हो जाता है और जिसे उसका आकर्षण भी होता है उसे यह उत्साह नहीं होता कि उसके प्रति मिशनरी कार्य करे। सच वात यह है कि दर्शन कुछ बौद्धिक श्रेष्ठ लोगों के प्रति जो 'योग्य किन्तु अल्प' होते हैं अनुराग दिखाता है, उस बौद्धिक कवि के समान जिसके पाठक कम होते हैं और इस कारण को वह अपनी रचना की श्रेष्ठता का प्रमाण समझता है। सेनेका की पहली पीढ़ी में होरेस ने अपने 'रोमन गान' के दार्शनिक देशभक्तिपूर्ण अभ्यर्थना को इस प्रकार आरम्भ करने में कोई असंगति नहीं समझा—

> अग्रगामियों, कलुषित समूहो !
> चुप रहो ! कोई अपवित्र मुख
> गीत के पवित्र संस्कार को अशान्त मत करो,
> जब मैं, नवों देवियों का श्रेष्ठ पुरोहित,
> केवल युवक और युवतियों के लिए
> नवीन और ऊँचे गीत लिख रहा हूँ।[१]

ईसू के दृष्टान्त से यह बहुत दूर की आवाज है जिसने कहा था—

---

[१] होरेस : खण्ड, ३, गीत १,२, १–४—सर स्टेफेन डि वियर का अनुवाद।

'सड़कों पर और झाड़ियों में जाओ और उनको यहाँ आने के लिए विवश करो, जिससे मेरा घर भर जाये ।'

इस प्रकार ऊँची-से-ऊँची अवस्था में दर्शन धर्म की शक्ति पाने की कभी आकांक्षा नहीं कर सकता । जिस धर्म की प्रेरणा ने सेनेका और एपिक्टिस की पीढ़ी में हेलेनी बौद्धिक मूर्तियों में कुछ समय के लिए सजीवता का संचार किया था, वह मारकस आरीलियस की पीढ़ी में मिथ्या धार्मिक आडम्बर में परिवर्तित हो गया और दार्शनिक परम्परा के उत्तराधिकारी दो कुर्सियों के बीच गिर पड़े । उन्होंने बौद्धिक आह्वान का तिरस्कार कर दिया. हृदय तक पहुँचने की राह नहीं निकाली । वे ज्ञानी न होकर साधु नहीं हुए, सनकी हो गये । सम्राट् जूलियन अपने दार्शनिक आदर्श के लिए सुकरात को छोड़कर डायोजिनीज की ओर मुड़ा । वही पौराणिक डायोजिनीज जिससे—ईसा मसीह से नहीं—सन्त सीमिओन एटालाइट्स तथा उसके सह-तपस्वियों की 'ईसाई तपस्या' का आविर्भाव हुआ है । वास्तव में इस दुख-सुख पूर्ण अन्तिम अंक में, अफलातून और ज़ीनो के शिष्यों ने अपने स्वामियों की अपूर्णता को स्वीकार किया और उसका उदाहरण स्वयं आन्तरिक सर्वहारा का अनुकरण करके उपस्थित किया । यह और कुछ नहीं था, वास्तव में उस जनसाधारण की सच्ची चाटुकारिता थी, जिस जनता को होरेस ने अपने श्रोताओं से अलग कर दिया था । अन्तिम नव-अफलातूनवादी, आयमब्लिक्स और प्रोक्लस उतने दार्शनिक नहीं हैं जितने एक काल्पनिक अस्तित्वविहीन धर्म के पुरोहित । जूलियन जिसका संस्कार और उपासना के प्रति बहुत उत्साह था, इनकी योजना का कार्यवाहक था । उसकी मृत्यु के समाचार के बाद उसके राज्य-सहायता-प्राप्त धार्मिक संस्थान का तुरन्त समाप्त हो जाना उस विवेचन की सत्यता को प्रमाणित करता है जो आधुनिक मनोविज्ञान के प्रतिष्ठापक ने व्यक्त किया है :

> 'बड़े-बड़े प्रवर्तन ऊपर से नहीं आते, वे सदा निचले वर्ग से आते हैं (उनसे) जो देश के शान्त और तिरस्कृत लोग हैं—जिन पर शास्त्रीय पक्षपात का प्रभाव नहीं पड़ा है, जो प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर पड़ा करता है ।'

(च) शासक धर्म का निर्णय करता है[2]

ऊपर के अध्याय के अन्त में हमने देखा कि सम्राट् जूलियन अपनी प्रजा को उस मिथ्या-धर्म को मानने के लिए विवश न कर सका, जिसका वह दार्शनिक होने के कारण अनुगामी था । इससे यह साधारण प्रश्न उठता है कि क्या अधिक अनुकूल परिस्थिति में शक्तिशाली अल्पसंख्या अपनी आध्यात्मिक दुर्बलता की कमी को पूरा करने के लिए भौतिक शक्ति का प्रयोग कर सकती है और राजनीतिक दबाव से किसी दर्शन या धर्म को अपनी प्रजा पर लाद सकती है और जो

---

१. सी० जी० जुंग—माडर्न मैन इन सर्च आव ए सोल—पृ० २४३-४४.।

२. यह वाक्य सन् १५५५ की आग्सबुर्ग की सन्धि का संक्षेप है । उसमें निर्णय हुआ था कि प्रत्येक स्थानीय जर्मन राज्य के शासकों को अधिकार था कि वह चाहे रोमन कैथोलिक धर्म या लूथरी धर्म स्वीकार करे । और वह चाहे (शासक के) धर्म पर चलने को प्रजा को विवश कर सकता था । यह सन्धि पहली अनिर्णीत जर्मन धार्मिक लड़ाई के बाद हुई ।

अवैधानिक होने पर भी प्रभावकारी हो सकती है। यद्यपि यह प्रश्न हमारे अध्ययन के मूल विषय के वाहर है, फिर भी आगे बढ़ने के पहले इसका उत्तर ढूंढ़ने की हम चेष्टा करेंगे।

इस विषय का ऐतिहासिक प्रमाण यदि हम खोजेंगे तो हमें पता चलेगा कि साधारणतः ऐसे प्रयत्न असफल हुए हैं, समय पाकर। यह निष्कर्ष प्रबुद्धता के सामाजिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है, जो हेलेनी संकटकाल में प्रतिपादित हुई थी, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार धार्मिक आचार जान-बूझकर ऊपर से नीचे की ओर लादे गये थे। ये न तो असाधारण वातें थीं, न असम्भव। समाजों की सभ्यता की प्रक्रिया में धार्मिक संस्थाओं के आरम्भ का यही ढंग था। रोम के धार्मिक जीवन के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त लागू कर दिया गया है और पोलीबियस ने (लगभग २०६–१३१ ई० पू०) उसका इस प्रकार वर्णन किया है :

'मेरी राय में रोमन संविधान जिन वातों में दूसरे संविधानों से उत्कृष्ट है वह इसका धर्म के प्रति निर्वाह है। मेरी राय में रोमनों ने अपनी सामाजिक व्यवस्था को उन चीजों से वाँधा है जिससे सारा संसार घृणा करता है, मेरा अभिप्राय है अन्धविश्वास से। उन्होंने अपने अन्धविश्वास को नाटक का रूप दिया है और उसे निजी तथा सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर दिया है, और इस कार्य में रोमन लोग उतनी दूर तक चले गये हैं जहाँ तक बुद्धि जा सकती है, यह बात बहुत लोगों को विचित्र लगेगी। मेरी राय में रोमनों ने जनता को ध्यान में रखकर ऐसा किया है। यदि ऐसा सम्भव होता कि सब निर्वाचक विद्वान् होते तो यह प्रवंचना आवश्यक न होती कि वास्तव में जनता सदा अस्थिर रहती है, गैर कानूनी आवेगों, अविवेकपूर्ण प्रकृति तथा हिंसात्मक क्रोध से भरी रहती हैं, इसलिए उन्हें नियन्त्रित रखने के लिए 'अज्ञात के भय' का अथवा ऐसे ही नाटक की स्थापना आवश्यक है। मैं समझता हूँ कि इसी कारण हमारे पूर्वजों ने जनसाधारण के बीच उन धार्मिक विश्वासों तथा तर्क की कल्पना को प्रस्तुत किया है जो अब परम्परा बन गये हैं, और मेरी यह भी धारणा है कि ऐसा करने में हमारे पूर्वज अटकल-पच्चू कार्य नहीं कर रहे थे, किन्तु सब समझ-बूझकर कर रहे थे। अधिक उचित होगा यदि हम अपने समकालीन लोगों पर यह आरोप लगायें कि जिस कार्य को करते हुए हम उन्हें देख रहे हैं धर्म को मिटाने में वे अनुत्तरदायित्व तथा बुद्धिहीनता से कार्य कर रहे हैं।"[1]

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त सत्य से उतनी ही दूर हैं जितना राज्यों की उत्पत्ति से सामाजिक अनुबन्ध। यदि हम प्रमाणों की परीक्षा करें तो हमें पता चलेगा कि राजनीतिक शक्ति आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित करने में बिलकुल असमर्थ तो नहीं है, किन्तु इस क्षेत्र में उसके कार्य करने की क्षमता विशेष परिस्थितियों के मिल जाने के कारण सम्भव होती है, और तब उसका क्षेत्र सीमित होता है। सफलता अपवाद के रूप में होती है, असफलता ही अधिक होती है।

पहले हम अपवादों को लें। राजनीतिक अधिपति किसी पंथ को संस्थापित करने में कभी-कभी सफल हो जाते हैं, जब वह पंथ वास्तव में किसी धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति नहीं होता बल्कि धर्म की आड़ में राजनीतिक मनोभाव होता है। उदाहरण के लिए कोई ऐसा मिथ्या धार्मिक कर्मकाण्ड जो उस समाज में राजनीतिक एकता की पिपासा को शान्त करता है,

---

[1] पोलीबियस : हिस्ट्री, खण्ड ६, अध्याय ५६।

जो (समाज) संकट-काल का कड़ुआ प्याला आकण्ठ पी चुका है। ऐसी परिस्थिति में जिस शासक ने अपनी प्रजा का हृदय उनका त्राता बनकर जीत लिया है पंथ की संस्थापना करके अपने को तथा अपने वंश को पूजा का विषय बना सकता है।

इस प्रकार की महान् शक्ति का क्लासिकी उदाहरण रोमन सम्राटों को देवता की भाँति मानना है। सीजर की पूजा शान्ति के समय का धर्म था, किन्तु वास्तविक धर्म का उलटा था, जो 'सामयिक विपत्ति के समय सहायक' होता है। सीजर की दैविकता, दूसरी तथा तीसरी शती ई० पू० के बाद जब रोमन साम्राज्य का पहली बार पतन हुआ, ठहर न सकी। और इस जुटाव के सब योद्धा सरदार इधर-उधर बिखरने लगे कि उनके अपयश-प्राप्त साम्राज्यवादी प्रतिभा के समर्थन में कोई अलौकिक समर्थन मिल जाता। आरीलियन और कांसटैंटियस क्लोरियस एक अमूर्त और सार्वभौम नेता सौल इनविक्टस के झण्डे के नीचे आये और एक पीढ़ी के बाद कांसटैंटाइन महान् (३०६–३७ ई०) ने अपनी भक्ति उस आन्तरिक सर्वहारारूपी ईश्वर को अर्पित कर दी जो सौल या सीज़र दोनों से शक्तिमान् था।

यदि हम हेलेनी से सुमेरी संसार की ओर दृष्टि डालें तो सीजरपूजा के समान ही व्यक्तित्व पूजा इसमें (सुमेरी राज्य में) देखेंगे। यह पूजा इस सार्वभौम राज्य के संस्थापक उर-एनगूर ने नहीं चलायी थी, उसके उत्तराधिकारी डंगी (लगभग २२८०–२२३३ ई० पू०) ने चलायी। किन्तु यह भी शान्ति के समय की युक्ति मात्र थी। जो भी हो, अमोराइट हमूरबी, जिसका स्थान सुमेरी इतिहास में वही है जो रोमन साम्राज्य में कांसटैंटाइन का था, देवता बनकर राज्य नहीं करता था, अलौकिक देवता मारडुक बेल का दास बनकर राज्य करता था।

इसी प्रकार के सीजर-पूजा के चिह्न दूसरे सार्वभौम राज्य में भी पाये जाते हैं, जैसे एंडियाई, मिस्री या चीनी में, जो हमारे इस विचार का समर्थन करते हैं कि राजनीतिक शासकों द्वारा ये चलाये पंथ जन्मजात दुर्बल होते हैं। उस समय भी जब ये पंथ धर्म के आवरण में मूल रूप से राजनीतिक ही होते हैं, और जब ये सार्वजनिक भावना के अनुकूल भी होते हैं तब भी इनमें तूफानों से बचने की शक्ति नहीं होती।

एक और वर्ग होता है जिसमें राजनीतिक शासक कोई पंथ चलाता है जो धार्मिक आवरण में राजनीतिक संस्था नहीं होती, सचमुच धार्मिक पंथ होता है। इस क्षेत्र में भी हम दिखा सकते कि इस प्रयोग को कुछ सफलता मिली है उसमें धर्म को 'चलता हुआ' होना चाहिए, कम-से-कम राजनीतिक शासक की प्रजा की अल्पसंख्यक आत्मा में, और जब यह शर्त पूरी हो जाती है और सफलता मिलती है तब इसका जो मूल्य चुकाना पड़ता है वह बहुत अधिक होता है। क्योंकि जो धर्म राजनीतिक अधिकार के बल पर शासक द्वारा अपनी प्रजा के शरीर और आत्मा पर सफलतापूर्वक लादा जाता है वह इस थोड़े-से भाग पर तो चल जाता है, किन्तु इसका मूल्य यह चुकाना पड़ता है कि वह सार्वभौम धर्म नहीं हो सकता।

उदाहरण के लिए ई० पू० दूसरी शती में जब मक्काबी लोग बलपूर्वक हेलेनीकरण के विरोध में यहूदी धर्म के सैन्यवादी समर्थक होने के स्थान पर सेल्यूकस के उत्तराधिकारी एक राज्य के संस्थापक और शासक हो गये तब ये उत्पीड़न का हिंसात्मक विरोध करने वाले, स्वयं उत्पीड़क हो गये और अहिंसावादी यहूदियों पर, जिन्हें उन्होंने जीता था, जबरदस्ती जूडावाद लादने लगे। इस नीति ने विजय पायी और जूडावाद का क्षेत्र इडयूमिया, 'अ-यहूदियों के गैलिली',

और ट्रांसजारडोनियाई पीरिया तक विस्तृत हो गया। इतने पर भी शक्ति की विजय संकीर्ण क्षेत्र में ही थी। क्योंकि यह समरिटनों की विशिष्टतावाद पर न तो विजय पा सकी न उन हेलेनीकृत नगर-राज्य के नागरिक गर्व को चूर कर सकी जो मक्काबी राज्य की दोनों ओर फैले थे, एक मध्यसागर के किनारे फिलस्तीन और दूसरा डिकापोलिस में मरुस्थल के किनारे। वास्तव में शक्ति द्वारा यह विजय अधिक नहीं थी और यहूदी धर्म का सारा भविष्य इसके मूल्य में चुकाना पड़ा। यहूदी इतिहास की यह महान् विडम्बना है कि अलेक्जेंडर जैनिअस (१०२–७६ ई० पू०) ने जूडावाद के लिए जो नया देश विजय किया था, वहीं सौ साल के भीतर ही गैलीलिया के यहूदी देशदूत का जन्म हुआ जिसके सन्देश में पहले के यहूदी धर्म की सारी अनुभूतियों का एकीकरण हो गया और जबरदस्ती परिवर्तित किये हुए गैलीली अ-यहूदी के इस उत्प्राणित वंशज को उसके युग के यहूदी धर्म के जूडाई नेताओं ने तिरस्कृत कर दिया। इस प्रकार जूडावाद ने अपने प्राचीन को ही नहीं हास्यास्पद बनाया, भविष्य को भी नाश कर दिया।

अब हम यदि यूरोप के धार्मिक नकशे की ओर ध्यान दें तो स्वभावतः हम यह जानना चाहेंगे कि मध्ययुग के ईसाई जनतन्त्र के स्थानीय उत्तराधिकारियों में कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट राज्यों की सीमाओं में कितनी कूटनीति से बनी हैं और कितनी सेना के बल से? इसमें सन्देह नहीं कि सोलहवीं और सत्रहवीं शती के धार्मिक संघर्ष में बाहरी सैनिक और राजनीतिक बातों पर बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए। क्योंकि दो चरम उदाहरणों पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि कोई राजनीतिक शक्ति बाल्टिक राज्यों को कैथोलिक धर्मतन्त्र में या भूमध्यसागर के देशों को प्रोटेस्टेन्ट तन्त्र में नहीं रख सकती थी। उसी के साथ एक बीच का विवादास्पद क्षेत्र था जिसमें सैनिक शक्ति अवश्य ही प्रभावशाली थी—वे क्षेत्र हैं, जरमनी, निचले देश (लो कंट्रीज), फ्रांस और इंग्लैंड। जरमनी में विशेषतः इस सूत्र का आविष्कार और प्रयोग हुआ था कि 'शासक धर्म का निर्णय करता है।' हमें इस बात को मानना होगा कि कम-से-कम मध्य यूरोप में राजाओं ने, अपनी शक्ति से सफलतापूर्वक अपनी प्रजाओं पर ईसाई धर्म का वह रूप, जिस पर उनका विश्वास था, जबरदस्ती लादा। हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इस राजनीतिक संरक्षण के कारण और इस राज्य की अधीनता से पश्चिमी ईसाई धर्म के दोनों रूपों—कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट—को हानि हुई है।

पहला मूल्य यह चुकाना पड़ा कि जापान से कैथोलिक धर्म के मिशन को हटाना पड़ा। कैथोलिक ईसाई धर्म के बीज को जेसुइट मिशनरियों ने जो सोलहवीं शती में बोये थे उन्हें सत्रहवीं शती के मध्य में नये जापानी सार्वभौम राज्य के शासकों ने उखाड़ फेंका क्योंकि ये राजमर्मज्ञ इस परिणाम पर पहुँचे थे कि कैथोलिक धर्म के माध्यम से स्पेन का सम्राट् साम्राज्य का विस्तार चाहता है। मिशनरियों के इस क्षेत्र का चला जाना उस हानि के सामने कुछ भी नहीं था जो 'शासक धर्म का निर्णय करता है' की नीति से अपने देश में आध्यात्मिक दरिद्रता उपस्थित हुई और पश्चिमी ईसाई धर्म को उससे हानि हुई। धर्म के युद्ध के युग में पश्चिमी ईसाई धर्म के सभी प्रतिद्वन्द्वी इस बात पर तत्पर थे कि अपने विचार के अनुसार धर्म चलाने का कोई सरल मार्ग निकल आये और इसके लिए राजनीतिक शक्ति के प्रयोग पर वह तरह दे जाते थे, और कभी उसकी माँग भी करते थे। और इसके परिणामस्वरूप आत्मा में विश्वास की सारी जड़ उन्होंने सुखा दी, जिस विश्वास को जमाने की वे ही चेष्टा करते थे। सोलहवें लुई की बर्बरतापूर्ण प्रणाली ने फ्रांस

की आध्यात्मिक धरती से प्रोटेस्टेंट ईसाई धर्म को निष्कासित कर दिया और अनेक प्रकार के संशयवाद को जन्म दिया। नेन्टीज़ के एडिक्ट के निरसन के नौ साल के बाद वाल्टेयर का जन्म हुआ। इसी प्रकार के संशयवाद की भावना प्युरिटन क्रान्ति के धार्मिक सैन्यवाद के कारण इंग्लैंड में उत्पन्न हुई। एक नयी प्रबुद्धता की भावना उत्पन्न हुई जो उसी के समान थी। इस अध्ययन के इस अध्याय के आरम्भ में पोलीवियस के कथन में व्यक्त की गयी है। उस प्रकार के विचार के लोग हो गये जो धर्म का मजाक उड़ाते थे। यहाँ तक कि सन् १७२६ में विशप बटलर को अपनी पुस्तक—'एनालोजी आव रिलिजन, नेचुरल एण्ड रिवील्ड, टु द कान्स्टिट्यूशन एण्ड कोर्स आव नेचर', की भूमिका में लिखना पड़ा—

'मैं कह नहीं सकता कि यह कैसे हुआ, किन्तु ऐसा बहुत लोगों का निश्चित मत है कि ईसाई धर्म के सम्बन्ध में बहुत खोज करने की आवश्यकता नहीं है, यह पता चल गया है कि यह धर्म काल्पनिक है। और इसलिए वे मान लेते हैं कि सब समझने वाले लोग इस बात पर सहमत हैं कि इसमें कुछ तथ्य नहीं है और यह केवल हँसी-दिल्लगी और परिहास का विषय है। ऐसा जान पड़ता है कि यह इसका बदला है जो इस धर्म ने अब तक सांसारिक आनन्द को रोक रखा है।'

यह मनोवृत्ति, जिसने बुझते हुए धार्मिक विश्वास के मूल्य पर धर्मान्धता का विसंक्रमण किया है, सत्रहवीं से बीसवीं शती तक चलती आयी है और हमारे पश्चिमी महान् समाज में इस सीमा तक पहुँच गयी है कि लोग उसकें ठीक रूप को समझने लगे हैं। अर्थात् लोग समझने लगे हैं कि यह केवल आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए ही नहीं विनाशकारी है, पश्चिमी समाज के भौतिक जीवन के लिए भी भयकारी है। यह उससे भी भयंकर है जो राजनीतिक और आर्थिक रोग हमारे समाज में आ गये हैं जिनके बारे में नित्य हम लोगों का ध्यान आकृष्ट करते रहते हैं और विज्ञापित करते रहते हैं। यह आध्यात्मिक रोग इतना बढ़ गया है कि इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किन्तु रोग का निदान सरल है, औषधि बताना कठिन है। क्योंकि धार्मिक विश्वास व्यापार की कोई स्टैण्डर्ड वस्तु नहीं है कि माँग होने पर तुरत बना दी जाय। ढाई सौ साल से धार्मिक विश्वास के क्रमशः ह्रास से पश्चिम के दृश्य में जो आध्यात्मिक शून्यक उत्पन्न हो गया है उसे भरना कठिन है। हम अब भी धर्म को राजनीति का अनुचर मानते हैं जो हमारे सोलहवीं और सत्रहवीं शती के पूर्वजों का अपराध था।

यदि हम पश्चिमी ईसाई धर्म के वर्तमान रूपों पर साधारण ढंग से विचार करें, और प्रत्येक की शक्ति का तुलनात्मक विवेचन करें तो हम देखेंगे कि शक्ति उसी के अनुसार घटती-बढ़ती मिलेगी कि किस धर्म का कितना राजनीतिक नियन्त्रण रहा है। निस्सन्देह पश्चिमी ईसाई धर्म का कैथोलिक रूप आज सबसे शक्तिशाली दीखता है। इसके होने पर भी कि कुछ देशों में और कुछ कालों में अपने देशों के अन्दर कैथोलिक राजाओं ने अपनी प्रजा पर अपने विचार के अनुसार धर्म लादा, कैथोलिक धर्मतन्त्र का यह गुण कभी लोप नहीं हुआ कि वह एक महान् धार्मिक अधिकारी के नियन्त्रण में रहा। कैथोलिक तन्त्र के बाद शक्ति के हिसाब से हम प्रोटेस्टेंट धारा के 'स्वतन्त्र धर्म तन्त्रों' को रखेंगे जिन्होंने राजनीतिक शासनों के बाहर अपने को निकाल रखा है। और सबसे नीचे वे प्रोटेस्टेंट 'संस्थापित तन्त्र' है जो किसी-न-किसी सीमित राज्य के अधीन हैं। और अन्त में यदि हम विभिन्न धार्मिक विचारों और विश्वासों की शक्तियों की तुलना करें जो चर्च आव इंग्लैंड तन्त्र में विस्तार से फैले हुए हैं तो अंग्रेजी धर्मतन्त्र में सबसे

शक्तिशाली रूप, ऐंग्लो-कैथोलिक शाखा है, जो १८७४ ई० के कानून के बाद, 'जनता को बहलाने के लिए बनाया गया था, राजनीतिक विधान को तिरस्कारपूर्ण उदासीनता से देखता है।

इस कुत्सित तुलना की शिक्षा स्पष्ट है। आधुनिक युग में पश्चिमी ईसाई धर्मतन्त्र की विभिन्न शाखाओं की विभिन्न परिस्थितियों से हमारे इस कथन का समर्थन होता है कि धर्म को कोई लाभ नहीं होता बल्कि हानि होती है, यदि वह राजनीतिक सहायता की याचना करता है या अपने को राजनीतिक शक्ति को समर्पित कर देता है। इसका एक ही अपवाद है जिसका कारण हमें देखना पड़ेगा, इसके पहले कि इस नियम को हम उचित और व्यापक मान लें। वह है इस्लाम। क्योंकि सीरियाई समाज के विघटन को इसने सार्वभौम धर्मतन्त्र में परिवर्तित किया यद्यपि उसके पहले ही वह राजनीति में सम्मिलित हो गया था, और किसी दूसरे धर्म की अपेक्षा वह निश्चित रूप से राजनीति में सम्मिलित हो गया था और उसे राजनीति में उसके संस्थापक ने ही प्रविष्ट किया।

पैगम्बर मुहम्मद का सार्वजनिक जीवन निश्चय रूप से दो भागों में विभाजित होता है और दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। पहले भाग में वह शान्तिमय देवदूत के रूप मे इलहामी धर्म का प्रचार करते हैं, दूसरे अध्याय में राजनीतिक तथा सैनिक शक्ति का निर्माण करते हैं और इन शक्तियों का उसी प्रकार प्रयोग करते हैं, जो प्रयोग और लोगों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुए। इस मदीना वाले अध्याय में मुहम्मद ने अपनी नवीन भौतिक शक्ति को इस कार्य के लिए प्रयोग किया कि, जिस धर्म की संस्थापना उन्होंने मक्का से मदीना आने के पहले की थी कि उसमें कम-से-कम बाहरी ढंग से एकरूपता आ जाय। इस प्रकार तो हिजर में इस्लाम का विनाश होना चाहिए और न कि इस धर्म की प्रतिष्ठापना की तिथि। इसका क्या कारण हम बता सकते हैं कि जो धर्म संसार में बर्बर युद्धप्रिय गिरोह द्वारा सैन्यवादी रूप में संस्थापित हुआ था, वह सार्वभौम धर्मतन्त्र बनने में सफल हुआ। यद्यपि जब वह स्थापित हुआ उसमें आध्यात्मिकता की कमी थी, जिसके कारण और धर्मों से तुलना करते हुए उसकी असफलता जान पड़ती थी।

जब हम इस प्रश्न को इन रूपों में रखते हैं तो हमें अनेक आंशिक उत्तर मिलते हैं। सम्भव है सबको एकत्र कर लेने पर समाधान मिल जाय।

पहले तो हमें इस विचारधारा को, जो ईसाई संसार में प्रचलित है, अधिक बल नहीं देना चाहिए कि इस्लाम धर्म शक्ति के बल पर फैलाया गया है। पैगम्बर के उत्तराधिकारियों ने इस धर्म के लिए थोड़ी ऐसी बाहरी विधियों को पालन करने पर अवश्य जोर दिया था जो बहुत कठोर नहीं थी, और यह भी उन बहु-मूर्तिपूजक समुदायों की सीमा के बाहर नहीं जो अरब की उस अवान्तर भूमि में रहते थे, जहाँ इस्लाम का जन्म हुआ था। जिन रोमन तथा ससानियाई साम्राज्यों के प्रदेशों को इन्होंने जीता, वहाँ यह विकल्प इन्होंने नहीं रखा कि 'इस्लाम या मृत्यु', इन्होंने यह कहा—'इस्लाम या अधिकार' और इस नीति की प्रबुद्धता की प्रशंसा परम्परागत की गयी थी जब उसके बहुत दिनों बाद इंग्लैंड में निरुत्साही महारानी एलिजाबेथ ने उसे प्रचलित किया था। उमैयदी शासन में अरबी खलीफों के गैर-मुस्लिम प्रजा पर यह विकल्प ईर्ष्यामय नहीं था क्योंकि उमैयदी (पीढ़ी के एक शासक को छोड़कर जिसने केवल तीन साल तक शासन किया) सब उत्साहहीन थे। सच पूछिए तो उम्मैयदी प्रच्छन्न बहुमूर्ति-पूजक

थे और इस्लाम धर्म के प्रचार के प्रति उदासीन या विरोधी भी थे, जिसके नेतृत्व की पदवी उन्होंने धारण कर रखी थी।

इन विचित्र परिस्थितियों में खिलाफत के गैर-अरबी प्रजाओं में इसकी प्रगति अपने धार्मिक गुणों के कारण हुई। उसका विस्तार धीरे-धीरे किन्तु निश्चित ढंग से हुआ। भूतपूर्व ईसाइयों और भूतपूर्व पारसियों ने अपने शासक उमैयदी खलीफों के विरोध न सही तो उदासीनता के वातावरण में यह धर्म स्वीकार किया और इन लोगों के हृदयों में इस्लाम उस इस्लाम से भिन्न था जो अरब योद्धाओं ने प्रचलित किया था और जो विशेषाधिकार प्राप्त राजनीतिक प्रतिष्ठा का चिह्न था। नये गैर-अरबों ने जिन्होंने इस्लाम कबूल किया था, अपनी बौद्धिक धारणा के अनुरूप इस धर्म को स्वीकार किया और पैगम्बर के अपरिष्कृत तथा अनियत कथनों को ईसाई धर्म और हेलेनी दर्शन के सूक्ष्म और संगत रूप में परिवर्तित किया और इस वेश में इस्लाम उस सीरियाई संसार के एकीकरण करने में शक्तिशाली हुआ, जो अभी तक अरबों की सैनिक विजय द्वारा केवल ऊपरी ढंग से एकता के रूप में था।

मुआवियों की शक्ति प्राप्ति के सौ साल के भीतर ही खिलाफत की गैर-अरब मुस्लिम प्रजा इतनी शक्तिशाली हो गयी थी कि उदासीन उमैयदों को उसने निकाल बाहर किया और ऐसे वंश को गद्दी पर बैठाया जो धर्म में दृढ़ था और जिन लोगों ने उसे गद्दी पर आसीन किया उनका समर्थक था। सन् ७५० ई० में, जब गैर-अरब मुसलमानों ने उमैयदों को हराकर अब्बासियों को गद्दी पर बैठाया, इस वर्ग की जनसंख्या जिसने यह विजय प्राप्त करायी, अरब साम्राज्य की पूरी आबादी के अनुपात में उतनी ही थी जितनी रोमन साम्राज्य में ईसाइयों की जनसंख्या का अनुपात उस समय था जब कांस्टैंटाइन ने मैक्सेंटियस को हराया था। डा० एन० एच० बेन्स ने अनुमान लगाया है कि यह दस प्रतिशत थी।[1] खिलाफत की प्रजा का सामूहिक धर्म-परिवर्तन ईसा की नवीं शती के पहले आरम्भ नहीं हुआ और तेरहवीं शती तक जब अब्बासी साम्राज्य का विनाश हुआ, समाप्त नहीं हुआ था। और यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि इस्लामी मिशन के क्षेत्र में विलम्ब से यह परिणाम राजनीतिक दबाव के कारण नहीं था, लोकप्रिय और स्वतः प्रिय आन्दोलन था क्योंकि थियोडोसियस और जस्टीनियन का, जिन्होंने अपनी राजनीतिक शक्ति का अपने तथाकथित धार्मिक उत्साह में कु-प्रयोग किया था, पाँच शती के अब्बासी खलीफों के बीच कोई प्रतिरूप नहीं था।

हमने जो नियम प्रस्तुत किया कि राजनीतिक शक्ति को जबरदस्ती धर्म के प्रसार में थोड़ी सफलता मिल जाना असम्भव नहीं है, आगे चलकर इस राजनीतिक समर्थन का मूल्य इतना अधिक चुकाना पड़ता है कि वह उससे अधिक हो जाता है जितना धार्मिक प्रसार होता है, उसका अपवाद इस्लाम क्यों हुआ, ऊपर के तथ्यों को पढ़ने से समझ में ठीक-ठीक आ जाता है।

जब राजनीतिक समर्थन से तुरत कोई लाभ नहीं होता, तब उस राजनीतिक शक्ति को वह दण्ड भुगतना पड़ता है। जो कुख्यात उदाहरण ऐसे हैं जहाँ धर्म को राजनीतिक बल से सहायता मिली है और धर्म की निश्चित रूप से क्षति हुई है उनमें से कुछ ये हैं। जस्टीनियन टारस पर्वत

---

[1] एन० एच० बेन्स : कांस्टैंटाइन द ग्रेट एण्ड द क्रिश्चियन चर्च, पृ० ४।

के पार अपने मोनोफाइसाइट प्रजा के ऊपर अपना कट्टर कैथोलिक धर्म नहीं लाद सका, लिओ साइरस तथा कांस्टैंटाइन पंचम यूनान और इटली में अपनी मूर्ति-प्रिय प्रजा में अपनी मूर्ति भंजकता का प्रचार नहीं कर सका, अंग्रेजी राजा अपनी आयरलैण्ड की कैथोलिक प्रजा में प्रोटेस्टैंट धर्म नहीं फैला सके, और औरंगजेब अपनी हिन्दू प्रजा पर अपना इस्लाम नहीं लाद सका। जब उस धर्म का यह हाल है जो 'चलता सिक्का' है तब यह और भी कठिन है कि राजनीतिक शक्ति शक्तिशाली अल्पसंख्या के दर्शन को लाद सकेगी। हम सम्राट् जूलियन के सम्बन्ध में कह चुके हैं, वास्तव में वहीं से हमने यह खोज आरम्भ की। इसी प्रकार सम्राट् अशोक अपना हीनयानी बौद्धधर्म अपनी भारतीय प्रजा पर स्थापित नहीं कर सका, यद्यपि उसके समय बौद्ध दर्शन अपनी बौद्धिकता और नैतिकता के यौवनकाल में था। और उसकी तुलना हम मारकस आरीलियस के स्टोइकवाद से कर सकते हैं, न कि जूलियन के नव-प्लेटोवाद से।

अब हम उन उदाहरणों पर विचार करेंगे जहाँ कि किसी शासक ने अथवा शासक समुदाय ने किसी ऐसे धर्म की संस्थापना की चेष्टा नहीं की जो 'चलता सिक्का' था, न शक्तिशाली अल्पसंख्या के दर्शन को प्रसारित करने का प्रयत्न किया, बल्कि नये सिरे से अपनी कल्पना के धर्म का प्रसार करना चाहा। उन असफलताओं को ध्यान में रखते हुए जहाँ ऐसे धर्म का दर्शन के, जिनमें जन्मजात शक्ति थी, लादने की चेष्टा की गयी, हम यदि यह परिणाम मान लें कि इन निजी कल्पना वाले धर्मों के प्रसार में भी असफलता ही मिलेगी, तो अनुचित न होगा। इसमें प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं होगी। और सचमुच ऐसा ही हुआ भी है। 'परन्तु ये कल्पना वाले धर्म' इतिहास की विचित्रताएँ हैं। और किसी कारण से नहीं तो इस कारण सरसरी दृष्टि उन पर डाल देना ठीक होगा।

सबसे चरमसीमा का उदाहरण विरोधी इस्मायली शियाई खलीफ़ा अलहकीम (९९६-१०२० ई०) का है। जो कुछ विचार इन्होंने बाहर से लिया हो इनके 'ड्रूस' धर्म की विशेषता यह है कि अलहकीम को ही पूजा जाय और ईश्वर के दस अवतारों में यही सबसे पूर्ण हैं। यह ईश्वरीय अमर मसीहा है जो विजयी होकर उस संसार में फिर लौटेंगे जहाँ से पहली बार अवतरित होने के वाद रहस्यमय ढंग से वह लोप हो गये। इस नये धर्म के मिशनरियों को केवल एक सफलता मिली कि उन्होंने सन् १०१६ में हरमोन पहाड़ की तलेटी में वादिल-तेम जिले के सीरियाई शिष्य 'दरजी' (नाम है) का परिवर्तन किया। पन्द्रह साल बाद इस नये धर्म में सारी दुनिया को परिवर्तित करने का विचार त्याग दिया गया और उस दिन से ड्रूस समुदाय में न तो परिवर्तन कर नये लोग मिलाये गये, न किसी को धर्म छोड़ने की आज्ञा दी गयी। वह सीमित वंशानुगत धार्मिक समुदाय वन गया है जिसके सदस्य उस देवता का नाम नहीं धारण करते जिसकी वे पूजा करते हैं, बल्कि उस मिशनरी का जिसने पहले-पहल अलहकीम के विचित्र धर्म से उन्हें परिचित किया। हरमोन और लेबानान के पहाड़ों में बसकर ड्रूस धर्मतन्त्र 'किले में पथराये' धर्म का पूर्ण उदाहरण है। और इसी चिह्न से अलहकीम का कल्पना का धर्म असफल हो गया।

अलहकीम का धर्म कम-से-कम जीवाश्म के रूप में वर्तमान है किन्तु सीरिया के पथभ्रष्ट वैरियस एविटस बैसेनिम के प्रगल्भ प्रयत्न का कुछ भी परिणाम नहीं हुआ, जब उसने रोमन साम्राज्य के वहुसंख्यक देवताओं में 'अपने को नहीं, अपने स्थानीय देवता—एमेसन सूर्यदेवता—

एलागेबालस को मूर्धन्य रूप में प्रतिष्ठित किया और उसका वह महन्त बन बैठा और जब भाग्यवश वह सन् २१८ ई० में रोमन साम्राज्य की गद्दी पर बैठ गया, यही नाम उसने धारण किया। चार साल बाद उसकी हत्या कर दी गयी। और उसका धार्मिक प्रयोग एकाएक समाप्त हो गया।

सम्भवत: इस बात पर आश्चर्य न होगा कि किसी एलागेबालस या अलहकीम की राजनीतिक शक्ति द्वारा अपने धार्मिक सनक के प्रसार में असफलता मिली हो, किन्तु हम उन लोगों की कठिनाइयों को अच्छी तरह समझ सकते हैं जिन्होंने अपनी राजनीतिक क्रियाओं द्वारा ऊपर से नीचे की ओर धर्म और मतों के प्रसार की चेष्टा की और असफल हुए, यद्यपि यह धार्मिक भावना उनकी केवल वैयक्तिक सनक नहीं थी, उसमें गम्भीर प्रेरणा थी। ऐसे शासक हुए हैं जिन्होंने राज्य को दृष्टि में रखकर 'कल्पना वाले धर्म' के प्रसार की चेष्टा की और असफल रहे। यह भावना धार्मिक भले ही रही हो उच्च राजमर्मज्ञता की दृष्टि से उसे हम अनुचित या निन्द्य नहीं कह सकते। ऐसे भी शासक हुए हैं जिन्होंने 'कल्पना वाले धर्म' के प्रसार में असफलता प्राप्त की यद्यपि वे स्वयं उस धर्म में पूर्ण रूप से विश्वास करते थे और अपना दायित्व समझते थे कि जितनी भी शक्ति उनके पास थी उसका पूरा उपयोग अपनी प्रजा में उस धर्म के प्रसार में करें, जिससे उन्हें अन्धकार में प्रकाश मिले और वे शान्ति के पथ पर चल सकें।

राजनीतिक प्रयोजन की पूर्ति के लिए नये धर्म की संस्थापना का क्लासिकी उदाहरण सेरामिस की मूर्ति तथा उसका पंथ है जिसका आविष्कार टोलेमी सोटर ने किया था। टोलेमी सोटर मिस्र के अकामीनियाई साम्राज्य के उत्तराधिकारी हेलेनी राज्य का संस्थापक था। उसका उद्देश्य यह था कि अपनी मिस्री तथा हेलेनी प्रजा के बीच का भेद इसके द्वारा दूर हो। और उसने विशेषज्ञों के जत्थे का जत्था इस योजना की पूर्ति के लिए नियुक्त किया। इस संश्लेषात्मक धर्म के बहुत-से अनुयायी दोनों वर्गों में हो गये, जिनके लिए यह चलाया गया था किन्तु भेद दूर न हो सका। जैसे और बातों में उसी प्रकार सेरामिस की पूजा में भी प्रत्येक अपने मनमाने ढंग से चला। टोलेमी साम्राज्य में दोनों समुदायों के बीच का आध्यात्मिक भेद अन्त में एक-दूसरे धर्म द्वारा मिटा। यह धर्म सर्वहारा के हृदय से अपने से टोलेमियाई प्रदेश कोएलेसीरिया में उत्पन्न हुआ जब टोलेमियाई साम्राज्य के पूर्ण विनाश के बाद एक पीढ़ी बीत चुकी थी।

टोलेमी सोटर के राज्य के एक हजार वर्ष पहले मिस्र के एक दूसरे शासक फेरो इखनाटन ने परम्परावादी मिस्री देवकुल के स्थान पर अलौकिक तथा एक ही ईश्वर की पूजा की संस्थापना की जिसकी अभिव्यक्ति मानव के लिए 'एटान' अथवा सूर्य के चक्र के रूप में की गयी। जहाँ तक पता है इस देवता की स्थापना किसी राजनीतिक भावना से नहीं की गयी थी जैसे टोलेमी सोटर ने की थी, न यह किसी अर्धविक्षिप्तता या सनक के फलस्वरूप थी जैसे अलहकीम और एलागेबालस ने की थी। वह उच्च धार्मिक भावनाओं से प्रेरित हुआ था, और अशोक की भाँति उसने अपने दार्शनिक विश्वासों को धार्मिक कार्यों में परिणत किया। इखनाटन विशुद्ध धार्मिक भावना से प्रेरित हुआ था, उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था, और यह उसका निजी विश्वास था। कहा जा सकता है कि उसे सफलता मिलनी चाहिए थी, फिर भी वह पूर्ण रूप से असफल रहा। इस असफलता का कारण यही था कि एक राजनीतिक शासक ने अपने काल्पनिक धर्म को ऊपर

से नीचे की ओर प्रसारित करना चाहा। वह सर्वहारा के हृदय को स्पर्श न कर सका और शक्तिशाली अल्पसंख्या के कठोर विरोध का भाजन हुआ।

ओरफिज्म की विफलता का कारण भी इसी प्रकार बताया जा सकता है। यदि यह सत्य है, जिस पर न विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि पहले-पहले ओरफिज्म का प्रसार पाइसिसट्रेटर के घराने के एथेनी निरंकुशवादियों से आरम्भ हुआ था। जो कुछ सफलता ओरफिज्म को मिली वह हेलेनी सभ्यता के पतन के बाद मिली, और हेलेनी आत्माओं की उस अव्यवस्था की परिस्थिति के कारण जो विदेशी समाजों के मूल्य पर हेलेनी समाज में भौतिक विस्तार हो जाने के कारण हो गयी थी।

यह कहना कठिन है कि टोलेमी सोटर की राजनीतिक कूटनीति थी कि इखनाटन का आदर्शवाद था जिसने तैमूरी मुगल सम्राट् को अपने साम्राज्य में अपने 'कल्पना के धर्म' दीन इलाही को प्रचारित करने को प्रेरित किया। प्रेरणाओं का यह मिश्रण समझ में नहीं आता। क्योंकि यह असामान्य व्यक्ति महान् व्यावहारिक राजमर्मज्ञ था और साथ-ही-साथ अलौकिक रहस्यवादी भी था। जो भी हो उसका धर्म पनपा नहीं और उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया। निरंकुशवादियों के इस प्रकार के बेकार सपनों के सम्बन्ध में अकबर के पहले एक शासक के मन्त्री ने बताया था और सम्भवतः अकबर को उसका पता भी था। एक मन्त्रणा सभा में जब अलाउद्दीन खिलजी ने उसी मूर्खतापूर्ण कार्य के लिए अपना विचार प्रकट किया, जिसे तीन सौ साल बाद अकबर ने किया तो एक मन्त्री ने जो कहा था वह इस विषय में अन्तिम शब्द है—

'बादशाह के मन्त्री ने इस अवसर पर कहा था—धर्म, विधान और पन्थ के सम्बन्ध में बादशाह सलामत को विवाद नहीं करना चाहिए क्योंकि ये विषय पैगम्बरों के हैं, बादशाहों के नहीं। धर्म और विधान का स्रोत ईश्वरीय अभिव्यक्ति है। इनकी स्थापना मनुष्य की योजना और मनसूबे से नहीं होती। आदम के काल से आज तक ये पैगम्बरों और उनके शिष्यों के मिशन रहे हैं, जिस प्रकार शासन और राज्य राजाओं का कार्य रहा है। पैगम्बरों के काम से बादशाहों का सम्बन्ध नहीं होता और न जब तक संसार है, रहेगा, यद्यपि कुछ पैगम्बरों ने बादशाह का काम किया है। मेरी सलाह यह है कि श्रीमान् इन विषयों पर कभी बात न करें।'[1]

हमने आधुनिक पश्चिमी समाज के इतिहास से कोई उदाहरण नहीं लिया है जिसमें राजनीतिक शासकों ने अपनी कल्पना के धर्म को प्रजा पर लादने का प्रयत्न किया है और असफल हुए हैं। किन्तु फ्रांस की राजक्रान्ति में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। अठारहवीं शती के अन्त के उत्तेजनापूर्ण अन्तिम दशक में फ्रांस के अनेक क्रान्तिकारियों ने, बारी-बारी से, कैथोलिक धर्मतन्त्र को प्राचीन और बेकार मानकर, १७९१ के सिविल विधान के अनुसार जनतान्त्रिक ईसाई संगठन को अथवा १७९४ में रोब्सपियर के 'एत्रा सुप्रीमा' को अथवा निदेशक लारेनीलियर लेपा के 'ईश्वर और मनुष्य के प्रेम को सम्बन्धित करने वाले धर्म' (थियोफिलैंथ्रोपी) को प्रचारित किया। किन्तु कोई सफल नहीं हुआ। कहा जाता है कि एक बार इस निदेशक ने अपने मन्त्रिमण्डल में अपने धर्म की व्याख्या करते हुए निबन्ध पढ़ा। सभी मन्त्रियों

---

[1] बी० ए० स्मिथ : अकबर द ग्रेट मोगल, पृ० २१०।

ने बधाई दी । उसके बाद वैदेशिक मन्त्री टैलेरैंड ने कहा——‘जहाँ तक मैं समझता हूँ मुझे एक ही बात कहनी है । अपने धर्म को संस्थापित करने के लिए ईसू मसीह शूली पर चढ़े और फिर जी उठे । आपको भी कुछ इसी प्रकार करना चाहिए ।’ टैलेरैंड ने थियोफिलैं थ्रोफियों को जो व्यंग्यात्मक शब्दों में उत्तर दिया वह वही था जो अलाउद्दीन खिलजी के मन्त्री ने सीधे शब्दों में दिया था । यदि लारवीलियर लेपा को सफलतापूर्वक अपने धर्म को चलाना था, तो उसे निदेशकों का पद छोड़कर सर्वहारा का पैगम्बर बनना चाहिए था ।

अन्त में पहले कौंसल बोनापार्ट ने देखा कि फ्रांस कैथोलिक है और इसलिए उसने निश्चय किया कि यह सरल भी होगा, राजनीतिक भी होगा कि कोई नया धर्म फ्रांस में न चलाया जाय, ज्यों का त्यों रहने दिया और नया शासक उसी धर्म को स्वीकार कर ले ।

यह अन्तिम उदाहरण केवल यही नहीं बताता कि ‘जो धर्म राजा का है वही प्रजा का होना चाहिए ‘धोखा और फरेब है’, वह उसका दूसरा रूप भी बताता है कि ‘जो प्रजा का धर्म हो वही राजा का भी होना चाहिए’ के सिद्धान्त में बहुत कुछ सचाई है । शासकों ने उस धर्म को स्वीकार कर लिया है जो उनकी प्रजा की अधिक संख्या का रहा है या जो अधिक शक्तिशाली रहा है और इसमें उन्हें सफलता मिली है । चाहे यह धार्मिक सचाई के कारण किया गया हो या राजनीतिक कारणों से, जैसे हेनरी क्वाटरा ने कहा था—‘पेरिस का मूल्य एक प्रार्थना है ।’ ऐसे शासकों की सूची जिन्होंने जनता का धर्म अपनाया, काफी है । उनमें हैं—रोमन सम्राट् कांस्टैंटाइन जिसने ईसाई धर्म स्वीकार किया, चीनी सम्राट् हैनवूती जिसने कनफूशियस धर्म स्वीकार किया । इसी सूची में क्लोविस, क्वाटरा, नैपोलियन भी हैं किन्तु इसका सबसे विशिष्ट उदाहरण ब्रिटिश शासन का विचित्र विधान है जिसके अनुसार वहाँ का शासक इंग्लैंड में विशप धर्म संघ (एपिसकोपेलियन) का अनुयायी है और सीमा पार स्काटलैंड में पादरी संघ शासित (प्रेसिबिटीरियन) है । सन् १६८९ और १७०७ के बीच राजनीति और धर्म के सम्बन्ध में जो समझौते हुए हैं और उनके परिणामस्वरूप ब्रिटिश राजा को जो धार्मिक स्थान प्राप्त हुआ है वह उसके बाद ब्रिटिश विधान का संरक्षक रहा है । क्योंकि कानून की दृष्टि में दोनों देशों में धार्मिक संस्थानों की समानता का प्रतीक इस प्रकार स्थापित किया गया है जो दोनों देशों के लोग समझ सकते हैं । इसका प्रत्यक्ष रूप यह है कि राजा उस धर्म को स्वीकार करता है जो सरकारी रूप में देश का धर्म है और इससे धार्मिक समता निश्चित रूप से हो गयी । इस भावना का उस शती में अभाव था जो दोनों राज्यों के सम्मिलित होने और दोनों पार्लिमेंटों के सम्मिलित होने के बीच (१६०३-१७०७) बीती । इस धार्मिक समता के द्वारा दोनों राज्यों में स्वतन्त्रता और समान राजनीतिक सम्मिलन की मनोवैज्ञानिक नींव पड़ी, नहीं तो इन दोनों देशों में परम्परागत विरोध था और वैमनस्य के कारण ये अलग थे और जो सदा से सम्पत्ति तथा जनसंख्या में एक-दूसरे से भिन्न चले आ रहे हैं ।

(६) एकता की भावना

हमने व्यवहारों के विभिन्न वैकल्पिक ढंगों के सम्बन्ध का प्रारम्भिक सर्वेक्षण किया । यह व्यवहार हमने ऐसा पाया कि सामाजिक विघटन की कठिन परीक्षा में भावना और जीवन पर मानव की आत्मा की प्रतिक्रिया होती है । हमने इसमें असामंजस्य भी देखा जिसकी

अभिव्यक्तियों के अनेक रूपों का हमने अध्ययन किया। यह असामंजस्य व्यक्ति की स्पष्ट रेखाओं के अस्पष्ट हो जाने और मिल जाने का मनोवैज्ञानिक उत्तर है। जब सभ्यताएँ विकास के पथ पर ही रहती हैं, ये व्यक्तिगत रेखाएँ प्रकट होती हैं। हमने यह भी देखा कि उसी अनुभूति का दूसरा उत्तर भी हो सकता है जो ऐसी एकता की भावना उत्पन्न करे जो अ-सामंजस्य से भिन्न ही नहीं, उसके बिलकुल विपरीत हो सकती है। परिचित रूप जब नष्ट होने लगते हैं तब हम उद्विग्न और दुखी हो जाते हैं। दुर्बल आत्माएँ इससे यह समझती हैं कि अन्तिम सत्ता केवल दुरवस्था के अतिरिक्त कुछ नहीं है। किन्तु स्थिर बुद्धि वालों को और अधिक आत्मिक दृष्टि वालों को यह सचाई प्रकट होती है कि इस प्रपंचयुक्त संसार का अस्थिर महत्त्व केवल छलना है जो उस शाश्वत एकता को ठग नहीं सकता जो उसके पीछे है।

दूसरी सत्यताओं की भाँति आत्मिक सत्यता भी किसी बाहरी और प्रत्यक्ष वस्तु की सामान्यता से सरलता से पहले समझी जा सकती है। इस एकता की, जो आत्मिक और अन्तिम है, झलक हमें समाज के सार्वभौम राज्य में परिवर्तित हो जाने में मिलती है। सच बात यह है कि चाहे रोमन साम्राज्य हो या कोई दूसरा साम्राज्य हो, कभी सार्वभौम राज्य न बनता, न बना रहता यदि उसमें राजनीतिक एकता की भावना उस समय न हुई होती जब संकट चरम सीमा को पहुँच गया। हेलेनी इतिहास में यह भावना—अथवा सम्भवतः विलम्ब से आया हुआ सन्तोष—आगस्टी काल के लैटिन काव्य में जाग्रत है, और पश्चिमी समाज की हम सन्तान आज की परिस्थिति में अपने ही अनुभव से इस बात से कितने अवगत हैं कि हमारी कितनी प्रबल इच्छा है कि संसार में सुव्यवस्था स्थापित हो। जब हम देख रहे हैं कि मानव की एकता के लिए विफल चेष्टा हो रही है।

सिकन्दर महान् की एकता की कल्पना उस समय तक हेलेनी जगत् से नहीं मिटी, जब तक हेलेनीवाद का कुछ भी चिह्न शेष रहा। सिकन्दर की मृत्यु के तीन सौ साल बाद हम देखते हैं कि आगस्टस ने अपनी मुद्रा की अँगूठी पर सिकन्दर का सिर अंकित कराया था। इसमें यह स्वीकृति थी कि इसी स्रोत से हमने रोमन साम्राज्य के शासन की प्रेरणा पायी है। प्लूटार्क ने सिकन्दर का एक कथन उद्धृत किया है—ईश्वर सब मानव का समान रूप से पिता है, किन्तु उनमें जो विशिष्ट है उन्हें वह विशेष रूप से अपना बना लेता है। यदि यह युक्ति ठीक है तो इससे पता चलता है कि सिकन्दर ने समझ लिया था कि मानव के बन्धुत्व की कल्पना यह स्वीकार कर लेती है कि ईश्वर सबका पिता है। इस सत्यता में इसका विपरीत भाव भी निहित है कि यदि मानव-परिवार में से ईश्वर को हटा दिया जाय, तो केवल मानव-समाज के संगठन में आपस में एक-दूसरे को बाँधने की कोई शक्ति नहीं रह जाती। सारी मानवता को एक में बाँधने के लिए कोई समाज है तो वह अतिमानवीय ईश्वरीय समाज है। ऐसे समाज की कल्पना जिसमें मनुष्य ही मनुष्य है, कोरा धोखा है। स्टोइक दार्शनिक एपिक्टिटस इस महान् सत्य को जानता था और ईसाई देवदूत पाल भी इसे जानता था। अन्तर इतना था कि एपिक्टिटस ने दार्शनिक परिणाम के तथ्य के रूप में इसे प्रकट किया है, और सन्त पाल ने इसे ईश्वर की वाणी के रूप में प्रस्तुत किया जो ईसामसीह के जीवन और मृत्यु के माध्यम से मानव को भेजी गयी थी।

चीनी संकटकाल के समय एकता की भावना केवल सांसारिक स्तर पर नहीं प्रकट हुई थी।

‘चीनियों के लिए इस काल में ‘एक’ शब्द (एकता, एकत्व) का अभिप्राय गम्भीर भावनात्मक था । इसका प्रतिबिम्ब राजनीति पर भी पड़ा था और टाओ की तत्त्वमीमांसा पर भी । और वास्तव में जो अभिलाषा थी, या और सच पूछिए तो जो मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी, वह राजनीतिक एकता की अपेक्षा विश्वास की एकरूपता थी जो अधिक गम्भीर तथा आवश्यक थी । सब मिलाकर मनुष्य, बिना धर्मपरायणता और बिना ईश्वरीय विश्वास के निश्चित आदर्श के जी नहीं सकता ।’[१]

यदि चीनियों का एकता की खोज का यह व्यापक ढंग मानक के रूप में मान लिया जाय और मनमाने ढंग से अलग की हुई मानवता का हमारा पश्चिमी सम्प्रदाय अपवाद स्वरूप था, व्याधि का रूप समझ कर हटा दिया जाय, तो हम देखेंगे कि मानवी एकता और विश्व की एकता का साथ-साथ आत्मिक प्रयत्न हुआ है । यह आत्मिक प्रयत्न केवल इसलिए कि एक समय विभिन्न क्षेत्रों में हुआ, इसलिए विभिन्न नहीं माना जा सकता । वास्तव में हम देख चुके हैं कि जब स्थानीय समुदाय सार्वभौम राज्य मे मिल जाते हैं तब साथ-साथ स्थानीय देवता भी मिलकर एक कुल-देवता हो जाते हैं, जिसमें से एक देवता का प्रादुर्भाव होता है जैसे थीबीज का एमान-रे, अथवा बैबिलोन का मारदुक-बेल । यह संसार के राजाओं के आत्मिक समानार्थी राजाओं के राजा और महाराजाओं के महाराज हैं ।

परन्तु यह मालूम होगा कि मानवी कार्यों की जिन परिस्थितियों के जिन कारणों से अति-मानव प्रतिबिम्ब के स्वरूप में इस प्रकार के देवताओं का उदय होता है वे तभी उपस्थित होती हैं जब सार्वभौम राज्य का जन्म होता है । उस संगठन के कारण नहीं, जो इस प्रकार के राजतन्त्र का परिणाम है, क्योंकि सार्वभौम राज्य का अन्तिम संगठन वह शासन नहीं होता जिसमें केवल विभिन्न अंगों को सुरक्षित रखा जाय और विभिन्न सत्ताओं को सम्मिलित करके उनमें से एक सबसे ऊपर शासन करे । समय के साथ-साथ वह ठोस एकात्मक साम्राज्य (यूनिटरी एम्पायर) बन जाता है । वास्तव में परिपक्व सार्वभौम साम्राज्य में दो प्रमुख विशेषताएँ होती हैं, जो सारे सामाजिक भूदृश्य पर अपना प्रभुत्व बनाये रखती हैं, वे दो हैं—सर्वोच्च व्यक्ति राजा के रूप में और सर्वोच्च अवैयक्तिक कानून । जिस संसार का शासन इस योजना के अनुसार होता है, उसी ढाँचे के अनुसार विश्व के शासन की भी कल्पना होती है । यदि सार्वभौम का मानवी शासक इतना शक्तिशाली और साथ-ही-साथ इतना परोपकारी है कि उसकी प्रजा उसे ईश्वर का अवतार समझकर उसकी पूजा करे तो प्रवल युक्ति से वह उस शासक को धरती पर स्वर्ग के ईश्वर का प्रतिरूप समझेंगे जो वैसा ही शक्तिशाली और दयालु है । यह ईश्वर अमान-रे या मारदुक-बेल के समान केवल ईश्वरों-का-ईश्वर नहीं है । यह वह है जो अकेले सच्चे ईश्वर के समान शासन करता है । दूसरे, जिस कानून में सम्राट् की इच्छा कार्यान्वित हो जाती है, वह कानून सार्वभौम और अनिवार्य शक्ति है । तुलनात्मक दृष्टि से इसके द्वारा प्रकृति के अवैयक्तिक कानून का भी संकेत होता है । जिस कानून द्वारा भौतिक विश्व का ही शासन नहीं होता, अपितु मानव जीवन के गहरे तल में सुख और दुख, भलाई और बुराई, पुरस्कार

---

[१] ए० वेले : द वे एण्ड इट्स पावर, भूमिका, पृष्ठ ६८–७० ।

और दण्ड का भी रहस्यमय रूप से वितरण होता है। जिसे कोई समझ नहीं सकता और जहाँ 'सीज़र की आज्ञा नहीं चलती।'

ये दो संकल्पनाएँ—सार्वभौम तथा शक्तिशाली कानून और अद्वितीय तथा सर्वशक्तिमान् देवता—विश्व के उन सभी प्रतिरूपों में पायी जाती हैं जिनकी मनुष्य की बुद्धि ने कभी कल्पना की है और जो किसी भी सामाजिक परिस्थिति में सार्वभौम राज्य के रूप में प्रकट हुए हैं। किन्तु इन संसृति-विज्ञानों के सर्वेक्षण से पता चलता है कि ये दो विभिन्न स्वरूपों (टाइप) में से किसी एक या दूसरे के निकट पहुँचते हैं। एक स्वरूप वह है जिसमें ईश्वर की उपेक्षा करके कानून की प्रतिष्ठा होती है, दूसरा वह जिसमें कानून की उपेक्षा करके ईश्वर को प्रतिष्ठापित किया जाता है। और हम देखेंगे कि शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का दर्शन है कानून की प्रतिष्ठा और आन्तरिक सर्वहारा कानून को ईश्वर की सत्ता के सम्मुख गौण मानते हैं। किन्तु यह अन्तर इतना ही है कि किस पर अधिक बल दिया जाय। सभी संसृति-विज्ञानों में दोनों संकल्पनाएँ पायी जाती हैं। दोनों एक साथ रहती हैं और मिली-जुली रहती हैं, उनका अनुपात जो भी हो।

जो अन्तर हम स्थापित करने जा रहे हैं, उनके सम्वन्ध में इतना प्रतिबन्ध लगाकर अब हम क्रम से पहले विश्व की एकता के उन प्रतिरूपों का सर्वेक्षण करें, जिनमें ईश्वर की उपेक्षा करके कानून को ऊँचा किया गया है और तव उन प्रतिरूपों का जिनमें ईश्वर की प्रतिष्ठा है और उसके वनाये कानूनों की उपेक्षा।

उन प्रणालियों में जिनमें 'कानून ही सवका राजा है'[1] हम देखेंगे कि ईश्वर का व्यक्तित्व धुंधला होता जाता है और विश्व पर शासन करने वाला कानून स्पष्ट होता जाता है। उदाहरण के लिए हमारे पश्चिमी संसार में एथेनेशियन मत के अनुसार त्रयातम ईश्वर का रूप धीरे-धीरे पश्चिमी मन से अधिकाधिक मन्द पड़ता गया है। ज्यों-ज्यों भौतिक विज्ञान ने अपने बौद्धिक साम्राज्य की सीमा जीवन के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बढ़ायी है, और जब हमारे युग में विज्ञान आध्यात्मिक तथा भौतिक संसार पर अपना अधिकार स्थापित कर रहा है, वह ईश्वर जो गणित था, शून्यक ईश्वर को हटाकर उसके स्थान पर कानून के लिए स्थान वनाने की प्रक्रिया को आठवीं शती ई० पू० में बैबिलोनी संसार ने पहले ही सोच लिया था, जब नक्षत्रों की गति के क्रम का आविष्कार उन्होंने किया। और उससे मुग्ध होकर कालडिया के गणितज्ञों ने ज्योतिष के नये विज्ञान के ज्ञान के उत्साह में मारद्रुक-बेल के स्थान पर सात ग्रहों को प्रतिष्ठापित किया। भारतीय संसार में भी जब बौद्ध दर्शन कर्म के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के तर्क-संगत परिणाम के गम्भीर निश्चयों पर पहुँचा, तव इस आत्मिक नियतिवाद के आक्रमणकारी सर्वसत्तावादी प्रणाली के शिकार वैदिक देवता हुए। बर्बर योद्धा दल के इन वर्बर देवताओं को अपनी अ-रोमान्टिक अधेड़ अवस्था में आकुल यौवन की मानवी चंचलता के लिए कष्टकारी परिणाम भोगना पड़ा। बौद्ध संसार में जहाँ सारी चेतना, इच्छा और उद्देश्य सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में परिवर्तित हो जाते थे और जो अपनी परिभाषा के अनुसार स्थायी या अबाध्य व्यक्तित्व में सम्मिलित नहीं हो सकते थे, देवता मनुष्य के आत्मिक आकार में संकुचित कर दिये गये और उनका मूल्य कुछ नहीं रह गया। सच पूछिए तो ईश्वर के और बौद्ध दर्शन की प्रणाली के मनुष्यों की मर्यादा में

---

[1] हिरोडोटस : पुस्तक ३, अध्याय ३८, पिंडार को उद्धृत करते हुए।

जो कुछ भेद रहा वह इन्हीं मानवों के हित में रहा, क्योंकि यदि तप की कठिन परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो गया तो यह साधारण मनुष्य बौद्ध भिक्षु तो बन ही सकता था और भौतिक सुखों को त्याग कर वह जीवन-चक्र से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त कर सकता था।

बौद्धों ने जो दण्ड अपने वैदिक भाइयों के देवताओं को दिया उससे हेलेनी संसार के ओलिंपस के देवता अच्छे रहे। क्योंकि हेलेनी दार्शनिकों ने विश्व की परा-भौमिक (सुप्रा-टेरेस्ट्रियल) आयामों के 'महान्-समाज' के रूप में कल्पना की। इसमें एक दूसरे सदस्य का सम्बन्ध 'होमोनिया' या सुसंगत के अनुप्राणित कानून के आधार पर था। इस विश्व में ज़ीयुस को, जिसने अपना जीवन ओलिंपियाई योद्धा-दल के कुख्यात सरदार के रूप में आरम्भ किया था, लोगों ने फिर से प्रतिष्ठित करके सार्वभौम नगर (कास्मोपोलिस) को अध्यक्ष बनाकर अच्छी-सी पेन्शन दे दी और उसकी स्थिति कुछ वैसी ही बना दी जैसी आज के युग के वैधानिक राजा की होती है जो 'प्रभु तो है, किन्तु शासन नहीं करता।' ऐसा राजा जो भाग्य की आज्ञाओं पर चुपचाप हस्ताक्षर कर देता है और प्रकृति की क्रियाओं पर अपना नाम दे देता है।[१]

हमारे सर्वेक्षण से पता चला है कि जो कानून ईश्वर का स्थान ले लेता है उसके अनेक रूप हो सकते हैं। गणित के नियमों के रूप में उसने बैबिलोनी ज्योतिषियों और आधुनिक वैज्ञानिकों को दास बना लिया है, मनोवैज्ञानिक विधान के रूप में उसने बौद्ध तपस्वियों को दास बनाया है और सामाजिक कानून के रूप में हेलेनी दार्शनिक को दास बनाया। चीनी संसार में जहाँ कानून की संकल्पना को लोगों ने नहीं ग्रहण किया, वहाँ भी हम देखते हैं कि ईश्वरत्व को एक व्यवस्था ने ढक लिया है। यह व्यवस्था चीनियों के मन में मनुष्य के आचरण और उसके वातावरण की इन्द्रजाली अनुरूपता है अथवा इनके बीच की सहानुभूति है। वातावरण का प्रभाव मनुष्य के ऊपर, भू-शकुन की चीनी विद्या द्वारा प्रकट होती है किन्तु इसका उल्टा अर्थात् मनुष्य का प्रभाव वातावरण के ऊपर कुछ संस्कार तथा उपचारों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। और

---

१. किन्तु वहाँ ज़ीयुस था भी ? क्या यह सत्य नहीं होगा कि जिन दार्शनिकों ने दिवालिये ओलिंपियाई संस्थान के लिए अ-वैयक्तिक आदाताओं को नियुक्त किया, उन्होंने एक फालतू ज्येष्ठ साझीदार का कारोबार के लिए प्रयोग किया। श्री ट्वायनबी ने एक दूसरे स्थल पर अपनी पुस्तक में मारकस आरीलियस का हवाला दिया है और उस पर टिप्पणी की है : 'सार्वभौमिक नगर' के एक भक्त नागरिक की दुखदायी पुकार में हम सुनते हैं कि ज़ीयुस सभापति का पद छोड़कर भाग गया। किन्तु मारकस के ईसाई पाठकों को उसके प्रति कठोर विचार नहीं लाना चाहिए। क्योंकि जीयुस ने कभी नहीं कहा कि हमें सार्वभौम जनतन्त्र का सभापति चुनो। उसने बर्बर योद्धा दल के सरदार के रूप में जीवन आरम्भ किया और जहाँतक हम समझते हैं, इस जीवन से वह प्रसन्न था। यदि ज़ीयुस को दार्शनिकों ने विलम्ब से पकड़कर बन्द कर दिया, और उसे स्टोइक सुधार-गृह में ज्येष्ठ साझीदार बनाकर जबरदस्ती सम्मान प्रदान किया तो यदि उसे यह शाश्वत बन्दी-गृह अच्छा नहीं लगा तो उस बेचारे का क्या दोष ? परन्तु शायद स्क्रूज के साझीदार मारले के समान वह न दोष का भागी है, न प्रशंसा का, क्योंकि 'बहुत पहले वह मर चुका है।'—सम्पादक

थे उतने ही विस्तृत और महत्त्वपूर्ण होते हैं जितनी विश्व की संरचना—जो इन उपचारों में प्रतिबिम्बित रहती है और जिनका कभी-कभी रूप भी बदल देते हैं। संस्कारों का पुरोहित, जो संसार को घुमाता है, वह चीनी सार्वभौम राज्य का राजा है। और उसका कार्य अतिमानव का है इसलिए सम्राट् को विधानतः ईश्वर का पुत्र कहते हैं, किन्तु यह ईश्वर, जो चीनी व्यवस्था में मुख्य पुरोहित का गोद लिया हुआ पिता है, उतना ही दुर्बल और अवैयक्तिक है जितना जाड़े के पाले में उत्तरी चीन। चीनी मन में ईश्वरीय व्यक्तित्व की संकल्पना का इतना अभाव है कि जेजुइट मिशनरियों को 'दीउस' शब्द का चीनी भाषा में अनुवाद करने में बड़ी कठिनाई हुई।

अब हम विश्व की दूसरी प्रतिमूर्तियों पर विचार करेंगे जिनमें एकता सर्वशक्तिमान् ईश्वर की दी हुई है। जहाँ कानून ईश्वर की इच्छा की अभिव्यक्ति है, न कि ऐसी सत्तात्मक शक्ति जो मनुष्य और देवताओं के कार्यों को व्यवस्थित करती है।

हम देख चुके हैं कि यह संकल्पना कि सब प्रकार की एकता ईश्वर द्वारा प्राप्त होती है और इसकी वैकल्पिक संकल्पना कि सब प्रकार की एकता कानून द्वारा स्थापित होती है, मनुष्य की बुद्धि में संविधान से समानता करने के कारण उत्पन्न होती है। इस प्रकार का संविधान उस समय बनता है, जब सार्वभौम राज्य अपने अन्तिम रूप में स्थिर हो जाता है। इस प्रक्रिया में वह मानव शासक जो पहले राजाओं का राजा था, और राजाओं को जो उसके साथी और सहकर्मी थे, निकाल बाहर करता है और, ठीक अर्थ में 'राजा' बन जाता है। इसी के साथ अब यदि हम उन लोगों और देशों की ओर देखें, जिन देशों को और लोगों को सार्वभौम राज्य ने आत्मसात् कर लिया है तो इन देवताओं का भी वही हाल है। उस देव-तन्त्र में जिसमें एक उच्च देवता, उन देवताओं के समुदाय पर सत्ता स्थापित कर रखा है, जो देवता एक समय उसकी बराबरी के थे किन्तु उन्होंने स्वतन्त्रता खोकर भी अपना देवत्व नहीं खोया था। अब वही देवता एक ईश्वर के रूप में प्रकट होता है और उसका मूल गुण यह है कि वह अद्वितीय है।

यह धार्मिक क्रान्ति उस समय साधारणतः आरम्भ होती है, जब देवता और उनके उपासकों के सम्बन्ध में परिवर्तन होने लगता है। सार्वभौम राज्य के ढाँचे के अन्दर देवतागण उन बन्धनों को त्यागने लगते हैं, जिनसे उनमें प्रत्येक किसी स्थानीय समुदाय से बँधा था। वह देवता जो आरम्भ में किसी विशेष कुल, नगर, पहाड़ या नदी का संरक्षक था, अब विस्तृत कार्यक्षेत्र में प्रवेश करता है और एक ओर व्यक्तियों की आत्मा को आकृष्ट करने लगता है, दूसरी ओर सारी मानवता को। इस दूसरी स्थिति में वह देवता जो एक समय स्थानीय था, स्थानीय नेता का दिव्य प्रतिरूप था, उस सार्वभौम राज्य के शासकों के गुणों को ग्रहण कर लेता है, जिसमें समुदाय मग्न हो गये हैं। उदाहरण के लिए हम अकेमीनियाई राज्य को देख सकते हैं, जिसने राजनीतिक दृष्टि से जूडिया को छोप लिया और उसका प्रभाव यहूदियों के इसरायल के ईश्वर की संकल्पना पर पड़ा। येहोवा की यह नयी संकल्पना सन् १६६–६४ ई० पू० तक पूरी हो गयी। यह लगभग वही समय है, जब डेनियल की पुस्तक का इलहामी अंश लिखा गया था।

'मैं देखता रहा कि सिंहासन फेंक दिये गये, और ईश्वर बैठा था। उसका वस्त्र बर्फ के समान उज्ज्वल था, उसके सिर का बाल विशुद्ध ऊन-सा था। उसका सिंहासन अग्नि-शिखा के समान था, जिसका पहिया भी प्रज्वलित अग्नि-सा था। आग की नदी निकली और उसके सामने आयी।

हजारों उसकी सेवा कर रहे थे और लाखों उसके सामने खड़े थे, न्याय आरम्भ हुआ और पुस्तकें खोली गयीं ।"[१]

इस प्रकार अनेक पुराने स्थानीय देवता नये प्रतिष्ठापित सांसारिक राजा का अधिकार चिह्न धारण करते हैं और तब एकाधिपत्य के लिए, जो इन अधिकारों का अर्थ होता है, एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं । और अन्त में एक प्रतियोगी दूसरे प्रतियोगियों का विनाश कर देता है और एक सच्चे ईश्वर होने के अधिकार को स्थापित करता है । किन्तु एक विशेष बात है, जिसमें इन 'देवताओं के युद्ध' और इस संसार के राजाओं के युद्ध की प्रतियोगिता में अन्तर है । और सब समानता है ।

सार्वभौम राज्य के वैधानिक विकास में जिस राजा के बारे में हमने कहा है कि अन्त में वह सब पर राज्य करने लगता है, वह वैधानिक क्रम में सीधा—बिना शृंखला टूटे हुए बादशाह का उत्तराधिकारी होता है । वह सारे राजाओं का अधिराज होता है । जैसे जब आगस्टस, जो स्थानीय राजाओं या राज्यपालों (जैसे अंग्रेजी राज में भारतीय राजा) पर निरीक्षण करते हुए कैपाडोशिया या फिलस्तीन पर अपना अधिकार अनुभव करा देने से सन्तुष्ट था, उसका उत्तराधिकारी हैड्रियन हुआ जो पहले प्रदेशों पर स्वयं शासन करता था । इस प्रकार प्रमुख शासन की शृंखला टूटी नहीं । किन्तु इसी प्रकार धार्मिक परिवर्तन में क्रमबद्धता नियम नहीं, अपवाद ही है । और कोई एक ऐतिहासिक उदाहरण देना सम्भव नहीं । इस अध्ययन के लेखक को एक भी ऐसा उदाहरण याद नहीं है, जिसमें देवता-मण्डल का कोई भी बड़ा देवता उस ईश्वर का अवतार बन गया हो जो सर्वशक्तिमान् प्रभु और सबका सर्जनकर्ता है । न तो थीबीज का अमोन-रे; न बैबिलोनी का मारदुक-बेल, न ओलिम्पस का जीयुस अपने परिवर्तनशील परदे के भीतर उस एक सच्चे ईश्वर का रूप दिखला सका । सीरियाई सार्वभौम राज्य में भी, जहाँ साम्राज्य के वंश के लोग जिस ईश्वर की उपासना करते थे, वह ऐसा नहीं था जो अनेक देवताओं को मिलाकर बना हो, या जो राजनीति के अभिप्राय से गढ़ लिया गया हो । जिस देवता में एक सच्चे ईश्वर के लक्षण हों वह ज़रथूष्ट्रों का अहूरमज़दा नहीं था, जो अकेमिनीदियों का देवता था । वह था येहोवा जो अकेमिनीदियों की साधारण प्रजा का देवता था ।

दोनों प्रतियोगी देवताओं का यह अन्तर और उनके अनुगामियों का क्षणिक अच्छा या बुरा भाग्य, स्पष्टत: बताता है कि सार्वभौम राज्य की राजनीतिक परिस्थिति में जो लोग उत्पन्न हुए उनकी अनेक पीढ़ियों का धार्मिक जीवन ऐतिहासिक अध्ययन का विषय है । वे इस बात के भी उदाहरण हैं कि भाग्यों में कितनी जल्दी परिवर्तन होता है । इस विषय पर सिन्ड्रेला की भाँति अनेक लोक-कथाएँ बनी हैं, साथ-ही-साथ निम्नता या अस्पष्टताएँ ही ऐसी विशेषताएँ नहीं हैं जिनके कारण देवता, विश्वव्यापकता तक उठे हों ।

जब हम येहोवा के चरित्र को देखते हैं, जैसा उसका चित्रण पुराने बाइबिल में हुआ है, तो

---

[१] डेनियल, ७, ९–१० ।

दो और बातें हमें दिखाई देती हैं। एक तो यह कि येहोवा स्थानीय देवता के रूप में उत्पन्न हुआ, शाब्दिक अर्थ में सेवक। यदि हम इस पर विश्वास करें कि पहले-पहल वह इसरायलियों में एक 'जिन' के रूप में आया जो उत्तर-पश्चिम अरब में एक ज्वालामुखी पर्वत में रहता था और उसे जगाये रहता था। कम-से-कम वह ऐसा देवता था जिसका एक विशेष जनपद की धरती से सम्बन्ध था और एक स्थानीय समुदाय के लोग उसके भक्त थे। और जब वह एफ्रेम और जूदा के पहाड़ी प्रदेश में गया जहाँ वह बर्बरों के योद्धा-समूह का संरक्षक था, जिसने चौथी शती ई० पू० में मिस्र के 'नये साम्राज्य' फिलस्तीनी राज्य पर आक्रमण किया। दूसरी ओर येहोवा ईर्ष्यालु देवता है। अपने उपासकों को उसकी पहली आज्ञा है 'सिवाय मेरे किसी दूसरे देवता की पूजा मत करो।' इसमें आश्चर्य नहीं होता कि एक साथ दोनों विशेषताएँ प्रान्तीयता और बहिष्कार वृत्ति येहोवा में पायी जाती है। वह देवता जो अपने ही राज्य में रहता है, दूसरों को चेतावनी दे सकता है कि इधर मत आओ। आश्चर्य इसमें है—और घृणास्पद भी है, कम-से-कम पहली दृष्टि में—कि अपने प्रतियोगियों के प्रति बहुत अनुदारता का भाव उसमें है जिससे वह उस समय लड़ने के लिए भी तैयार होता है, जब इसरायल और जूदा के राज्य पराजित हो जाते हैं और सीरियाई सार्वभौम राज्य स्थापित होता है। यह पहले वाला दो उच्च भूमियों (हाइलैंड) का देवता विस्तृत संसार में प्रवेश करता है और अपने पड़ोसियों के समान यह चाहता है कि सारा मानव हमारी पूजा करे। सीरियाई इतिहास की इस विश्वव्यापक स्थिति में येहोवा की इस प्रकार की अनुदार भावना, जो उसे प्राचीन संकीर्णता से उत्तराधिकार में मिली थी, समय के विपरीत थी। यह उस युग की प्रचलित भावना के प्रतिकूल थी, जो येहोवा के समान और पहले के देवताओं में व्याप्त थी। यह अप्रिय असामयिकता उसकी विशेषता थी जिसके कारण उसे आश्चर्यजनक विजय प्राप्त हुई।

इस प्रान्तीयता और बहिष्कार वृत्ति के गुणों को अधिक ध्यान से देखना श्रेयस्कर होगा। पहले हम प्रान्तीयता पर विचार करें।

एक प्रान्तीय देवता को उस ईश्वर का अवतार समझना, जो सर्वव्यापक और अद्वितीय है, पहले विरोधाभास जान पड़ता है, जो बात समझ में नहीं आती। क्योंकि यह सच है कि ईश्वर की यहूदी, ईसाई और इस्लामी संकल्पना कबायली येहोवा से आयी है। जहाँ यह ऐतिहासिक तथ्य है, साथ ही यह भी निश्चित है कि ऐतिहासिक उद्‌गम को छोड़कर इनमें ईश्वर के सम्बन्ध में जो धार्मिक तत्त्व है और जो तीनों धर्मों में समान है, वह येहोवा की प्रारम्भिक संकल्पना से बहुत भिन्न है। वह अनेक दूसरी संकल्पनाओं के समान है जिनके लिए यहूदी, ईसाई और इस्लामी इसके या तो बहुत कम ऋणी हैं या बिलकुल ऋणी नहीं हैं। विश्वव्यापकता की दृष्टि से इस्लामी ईसाई-यहूदी धर्मों की ईश्वर की संकल्पना प्रारम्भिक येहोवा की कल्पना से बहुत भिन्न है। बल्कि कुछ उस उच्च देवता के समान है, जैसे अमोन-रे या मारदुक-बेल जो एक प्रकार सारे विश्व पर शासन करता है। या यदि आध्यात्मिकता को आदर्श मानें तो इस्लामी-ईसाई-यहूदी संकल्पना दार्शनिक सम्प्रदायों के विचारों के अधिक अनुकूल है जैसे स्टोइक ज़ीयुस या नव-प्लेटोनिक हीलिओस। तब क्या कारण है कि उस रहस्य-नाटक (मिस्ट्री प्ले) में, जिसकी कथा-वस्तु मनुष्य के मन में ईश्वर की अभिव्यक्ति है, मुख्य भूमिका दिव्य हीलिओस

या साम्राज्यवादी अमोन-रे को नहीं दी गयी, बल्कि वर्बर और प्रान्तीय देवता येहोवा को जिसकी योग्यता, ऊपर के वर्णन के अनुसार, अपने असफल प्रतियोगियों से स्पष्टत: कम जान पड़ती है।

इसका उत्तर यहूदी-ईसाई-इस्लामी संकल्पना के एक तथ्य को याद करने पर मिलेगा, जिसका वर्णन हमने अभी नहीं किया। हमने सर्वव्यापकता और एक अद्वितीयता के गुणों पर विचार किया है। किन्तु इनकी अलौकिकता के बावजूद ईश्वरीय प्रकृति के ये गुण मानव की बुद्धि के ही परिणाम हैं, ये मानव हृदय की अनुभूतियाँ नहीं हैं। क्योंकि जन-समुदाय के लिए ईश्वर का मूल तत्त्व यह है कि वह सजीव ईश्वर है, जिससे जीवित मनुष्य अपना सम्बन्ध जोड़ सकता है और वह ऐसा है जिससे मनुष्य वही आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है जो वह अपने साथी मनुष्यों के साथ स्थापित कर सकता है। जो ईश्वर के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, उसके लिए ईश्वर का जीवित रूप में होना आवश्यक है। आज जिस प्रकार यहूदी, ईसाई और मुसलिम ईश्वर की उपासना करते हैं उसका मूल ईश्वर को व्यक्ति के रूप में मान कर है। यह येहोवा का भी मूल है जैसा पुरानी बाइबिल में लिखा है। येहोवा के विशिष्ट लोगों की गर्वोक्ति है—'कौन माँस का शरीर वाला है जिसने आग में से सजीव ईश्वर की वाणी सुनी है, जैसी हमलोगों नें, और जीवित है।'[1] जब इसरायल के इस सजीव ईश्वर की अनेक दार्शनिकों के विचारों से भेंट होती है, तब स्पष्ट है कि ओडेसी के शब्दों में 'वही जीवित है और सब छाया है।' येहोवा के इस प्रारम्भिक व्यक्तित्व ने दार्शनिकों के बौद्धिक गुण बिना उनका ऋण स्वीकार किये ले लिया और उनका नाम लेने की भी ईमानदारी नहीं दिखायी और वह ईसाइयों की संकल्पना का ईश्वर बन गया।

जीवित रहने वाला गुण यदि येहोवा की आदिम प्रान्तीयता का प्रतिवर्तन (आववर्स) है तो हमें यह भी पता चलेगा कि वहिष्कारिता भी, येहोवा के चरित्र का स्थायी और आदिम गुण है और यह गुण उस ऐतिहासिक भूमिका में महत्त्व का है जो इसरायल के ईश्वर ने मनुष्य को अपनी ईश्वरीय प्रकृति के अभिव्यक्त करने में अदा की है।

यह गुण तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम 'ईर्ष्यालु देवता' की अन्तिम विजय की तुलना दो पड़ोस के महान् देवताओं की पूर्ण पराजय से करते हैं, जिन्होंने आपस के संघर्ष से सीरियाई संसार को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। तब हमें उसकी विशिष्टता मालूम होती है। चूंकि ये धरती से बँधे हुए थे और जीवन के रस से परिपूर्ण थे। अमोन-रे और मारदुक-बेल दोनों येहोवा से लड़ाई में बराबर होते। उन्हें यह भी लाभ था कि थीबीज़ और बैबिलोन पर सांसारिक सफलता के कारण उन्होंने अपने उपासकों के हृदय में घर कर लिया था। और येहोवा उनका अपमानजनक बन्दी बनकर पड़ा रहा और जहाँ तक वन पड़ा, उस कवीली देवता के गुणों के प्रतिष्ठापन की चेष्टा करता रहा जिससे, ऐसा जान पड़ता था, आवश्यकता के समय अपने कबीले के लोगों को छोड़ दिया था। उनके पक्ष में इस बात के होते हुए यदि 'देवताओं के युद्ध' में अमोन-रे और मारदुक-बेल अन्त में बेतरह हार गये तो उनकी पराजय का कारण हम यही कह सकते हैं कि वह येहोवा की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति की निर्दोषता ही थी। भला हो या बुरा इन नामों के बीच के डैश में, जो दो संश्लिष्ट देवताओं को जोड़ता है, बहिष्कारिता से स्वतन्त्र होने की

---

[1] ड्युटरोनोमी ५, २६।

भावना सन्निहित है। इसमें आश्चर्य नहीं कि अमोन-रे तथा मारदुक-बेल उसी प्रकार अपने ढीले बन्धन की सीमा के बाहर बहु देवतावाद (पोलीथीइज्म) के प्रति उदार थे, जिस प्रकार अपनी परिवर्तनशील अनेकता से। दोनों का जन्म इस प्रकार हुआ था—या अधिक ठीक यह होगा कि एक साथ लाये गये थे—कि वे अनेक जीवों पर, जो उनसे शक्तिशाली भले ही न रहे हों किन्तु जिनमें देवत्व तो उतना था ही, आदिम ढंग के शासन से सन्तुष्ट रहें। इस आकांक्षा के जन्मजात अभाव के कारण उन्हें ईश्वरत्व के एकाधिकार की प्रतियोगता से हट जाना पड़ा। येहोवा की घोर ईर्ष्या ने उसे उस दौड़ में सबसे आगे बढ़ जाने को प्रेरित किया जिसमें सभी सम्मिलित थे।

प्रतियोगियों के प्रति यही निर्दय अनुदारता उस समय भी प्रकट हुई जब इसरायल का ईश्वर ईसाई धर्मतन्त्र का भी ईश्वर हुआ और उसने बाद के देवताओं के युद्ध में जो रोमन साम्राज्य के भीतर हुआ था, सब प्रतियोगियों को मार भगाया। उसके प्रतिद्वन्द्वी—सीरियाई मिथ्रा, मिस्री आइसिस और हत्ती साइबील—एक-दूसरे से, तथा और जो मत उनके सम्मुख आये उनसे, समझौता करने के लिए तैयार थे। यही आलस्यपूर्ण समझौते वाली भावना 'टरटूलियन के ईश्वर' के प्रतियोगियों के लिए घातक थी, जब उन्हें ऐसे बैरियों का सामना करना पड़ा जो 'पूर्ण' विजय से कुछ भी कम से सन्तुष्ट नहीं थे। क्योंकि यदि कम होता तो ईश्वर के लिए उसके मूल को ही अस्वीकार करना होता।

येहोवा की इस ईर्ष्यालु प्रकृति का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण भारतीय संसार से नकारात्मक ढंग से मिलता है। और देशों की भाँति यहाँ भी सामाजिक विघटन के साथ-साथ धार्मिक धरातल पर एकता की भावना का विकास हुआ। भारतीय आत्माओं में ईश्वर के एकत्व को अनुभव करने की भावना तीव्र थी, और आन्तरिक सर्वहारा के करोड़ों देवता धीरे-धीरे शिव या विष्णु में सम्मिलित हो गये। ईश्वर की एकता के बोध की राह की यह उपान्तिम मंजिल पर कम-से-कम डेढ़ हजार वर्ष पहले हिन्दू पहुँच गये थे। परन्तु इतना समय बीतने पर भी हिन्दू धर्म ने वह अन्तिम कदम नहीं उठाया जो सीरियाई धर्म ने उठाया था कि एक भी प्रतिद्वन्द्वी को येहोवा ने सहन नहीं किया और अहूरमजदा को सम्पूर्ण रूप से निगल गया। हिन्दू-धर्म में सर्वशक्तिमान् ईश्वर की संकल्पना में देवता एक नहीं किये गये। दो बराबर शक्तिवाले विरोधी, किन्तु पूरक देवताओं को हिन्दू धर्म ने एक-दूसरे के प्रति सहनशील बना दिया है।

इस विचित्र परिस्थिति में हम यह पूछेंगे कि हिन्दू धर्म ने ईश्वर की एकता की समस्या को क्यों इस प्रकार सुलझाया। यह समझौता कोई समाधान नहीं है। क्योंकि ऐसी संकल्पना असम्भव जान पड़ती है कि कोई देवता सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् हो—जैसे शिव तथा विष्णु माने जाते हैं और फिर भी वह एक न हो। इसका उत्तर यह है कि शिव और विष्णु एक दूसरे के ईर्ष्यालु नहीं हैं। वे एक-दूसरे के साझीदार होने में सन्तुष्ट हैं और इसीलिए आज तक वर्तमान हैं, जब कि उनके ही समान हेलेनी संसार के मिथ्र, आइसिस और साइबील समाप्त हो गये। इसका कारण यह है कि हिन्दू धर्म में उनसे लड़ने के लिए येहोवा नहीं था। हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जब उपासकों का देवता ऐसा हुआ है कि उसमें अनुदार बहिष्कारिता की भावना हुई है तभी उसके माध्यम द्वारा ईश्वर के एक होने की भावना मानव के हृदय में स्थापित हुई है।

(७) पुरातनवाद (आरकेइज्म)

हमने इस बात पर विचार कर लिया कि सामाजिक विघटनोन्मुख संसार में जो आत्माएँ जन्म लेती हैं उनकी भावनाएँ और व्यवहार क्या होते हैं और उनका विकल्प क्या होता है। अब हम जीवन के उन वैकल्पिक ढंगों पर विचार करेंगे जो वैसी ही चुनौती वाली परिस्थिति में उपस्थित होते हैं। हम उस विकल्प से आरम्भ करेंगे जिसे प्रारम्भिक सर्वेक्षण में हमने 'पुरातन' कहा था और इसकी परिभाषा की थी। यह वह अवस्था है कि लोग पुराने आनन्द के युग में लौट जाना चाहते हैं। संकटकाल में उस युग के लिए घोर सन्ताप होता है और जितने ही पीछे होते जाते हैं उतना ही अनैतिहासिक ढंग से उन पर भक्ति बढ़ती जाती है।

ओह! कितनी इच्छा होती है कि पीछे लौट चलूँ
और फिर पुरानी राह को स्पर्श करूँ।
कि फिर एक बार उस मैदान में पहुँचूँ
जहाँ मैंने अपने महान् साथियों को छोड़ा था
जहाँ से प्रबुद्ध आत्माएँ देख रही हैं
पाम के पेड़ों की छाया वाला नगर

कुछ लोग आगे बढ़ना चाहते हैं
किन्तु मैं पीछे मुड़कर पीछे चलना पसन्द करता हूँ

इन पंक्तियों से सत्रहवीं शती के कवि हेनरी वान ने प्रौढ़ व्यक्ति की अपनी बाल्यावस्था की स्मृति को व्यक्त किया है। यही भाव बल्टिट्यूड भी व्यक्त करते हैं जो नयी पीढ़ी से कहा करते हैं 'तुम्हारे स्कूल के दिन जीवन के सबसे सुखमय दिन हैं' ऊपर की पंक्तियाँ पुरातन पंथियों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए भी उपयुक्त हैं जो समाज की प्राचीन अवस्था फिर से लाना चाहते हैं।

पुरातनवाद के उदाहरणों का सर्वेक्षण करने के लिए इस क्षेत्र को भी चार भागों में बाँटेंगे, जैसे संकीर्णता की भावना पर विचार करते समय हमने किया था। अर्थात् आचार, कला, भाषा और धर्म। संकीर्णता की भावना स्वत: और अचेतन भावना से उत्पन्न होती है। और पुरातनवाद जीवन की धारा के विरुद्ध तैरने के प्रयत्न के लिए आयोजित और जानी-बूझी नीति होती है। वास्तव में वह एक असाधारण शक्ति होती है। इस कारण हम देखेंगे कि आचार के क्षेत्र में पुरातनवाद स्वाभाविक आचार-व्यवहार न होकर औपचारिक संस्थाओं और रूढ़िवादी विचारों में अभिव्यक्त होता है और भाषा के क्षेत्र में शैली और विषयवस्तु के रूप में प्रकट होता है।

यदि हम संस्थाओं और विचारों का सर्वेक्षण करें तो सबसे अच्छी योजना यह होगी कि संस्थाओं के पुरातनवाद के उदाहरणों को ब्योरेवार देखें और तब पुरातनवादी मानसिक स्थिति का विस्तृत क्षेत्र में विस्तार करें और आदर्शवादी पुरातनवाद तक पहुँचे जो बहुत व्यापक होता है क्योंकि यह आदर्श सिद्धान्त पर बना होता है।

उदाहरण के लिए प्लूटार्क के समय, जो हेलेनी सार्वभौम का उत्कर्ष काल था, आर्टेमिस ओरथिआ के सामने स्पार्टी बालकों को कोड़ा लगाया जाता था। स्पार्टा के यौवन काल में यह

दण्ड एक आदिम प्रसवन-उपासना-पद्धति से लिया गया था और लाइकरजियन खेल-कूद में सम्मिलित कर लिया गया था। उसे पुनः विकृत अत्युक्ति के साथ आरम्भ किया गया। इस प्रकार की अत्युक्ति पुरातनवाद का लक्षण है। इसी प्रकार २४८ ई० में जब एक अराजकता के बाद, जिससे उसका क्षय हो रहा था, कुछ क्षण के लिए रोमन साम्राज्य को साँस लेने का अवसर मिला सम्राट् फिलिप ने धर्म निरपेक्ष खेलों का उत्सव मनाया जिसे आगस्टस ने स्थापित किया था। दो साल बाद सेंसर की प्रथा फिर स्थापित की गयी। अपने ही समय में इटालियन फासिस्टों ने 'समवेत राज्य' (कारपोरेट स्टेट) की स्थापना की और बताया गया, यह इटली के मध्ययुगीन नगर-राज्यों का ही प्रत्यावर्तन है। उसी देश में ई० पू० दूसरी शती में ग्राची जनता का रक्षक बन बैठा। यह पद दो सौ साल पूर्व आरम्भ हुआ था। वैधानिक पुरातनवाद का एक सफल उदाहरण और है। रोमन साम्राज्य के संस्थापक आगस्टस ने अपने साझीदार सिनेट के प्रति सम्मान की भावना प्रदर्शित की। यह साझीदारी नाम की थी, सिनेट रोमन शासन में सम्राट् के पहले की संस्था थी। इसकी तुलना हम ग्रेट-ब्रिटेन के सम्राट् के पार्लिमेंट के प्रति व्यवहार से कर सकते हैं, जो विजयी थी। दोनों उदाहरणों में शक्ति का हस्तान्तरण था। रोमन उदाहरण में अल्पतन्त्र (ओलिगार्की) से राजा को और ब्रिटेन में राजा से अल्पतन्त्र को। दोनों उदाहरणों में परिवर्तन प्राचीन उपचारों के आवरण से ढका था।

यदि हम विघटनोन्मुख चीनी संसार में देखें तो वहाँ व्यापक उद्देश्य का वैधानिक पुरातनवाद प्रकट होता दिखाई देगा, जो सार्वजनिक से निजी जीवन तक फैला हुआ था। चीनी संकटकाल की चुनौती के समय चीनियों के मन में आत्मिक विक्षोभ उत्पन्न हुआ, जो पाँचवीं शती ई० पू० कनफ्युशियस के मानवतावाद में भी प्रकट हुआ और बाद के और क्रान्तिकारी 'राजनीतिज्ञों', 'सोफिस्टों' और 'वकीलों' में प्रकट हुआ। किन्तु यह उद्वेग अस्थायी था। इसके बाद पुरातन के प्रति जुगुप्सा हो गयी। इसे हम स्पष्ट रूप से उस स्थिति में देख सकते हैं, जिसने कनफ्युशियस के मानवतावाद पर विजय पायी। मानव-प्रकृति के अध्ययन के स्थान पर उसका पतन औपचारिक शिष्टाचार में हो गया। शासन के क्षेत्र में परम्परा यह हो गयी कि प्रत्येक शासन के कार्य के लिए ऐतिहासिक नजीर आवश्यक हो गयी।

सैद्धान्तिक पुरातनवाद का एक उदाहरण और दूसरे क्षेत्र में मिलता है। यह अधिकार काल्पनिक घुटनवाद का सम्प्रदाय है। यह आधुनिक पश्चिमी समाज के साधारण पुरातन रोमांटिकवाद के आन्दोलन का प्रदेशीय फल है। उन्नीसवीं शती के कुछ अंग्रेज इतिहासकारों को सन्तोष प्रदान कर और कुछ अमरीकी मानव-जाति-विज्ञानियों को जातीय आत्माभिमान प्रदान कर, आदिम घुटन के काल्पनिक गुणों की पूजा जरमन देश के राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन का धर्म बन गयी। हमें यहाँ ऐसा पुरातनवाद मिलता है जो बड़ा दुखदायी होता, यदि वह इतना कुटिल न होता। एक महान् पश्चिमी राष्ट्र, आधुनिक युग के आत्मिक रोग के कारण, प्रायः असाध्य राष्ट्रीय मृत्यु के समीप आ गया था और वर्तमान इतिहास की गति ने बहका कर उसे जिस जाल में डाल दिया था उससे बचने के जी-तोड़ प्रयत्न में वह उस काल्पनिक ऐतिहासिक अतीत के वैभवपूर्ण बर्बरता की ओर लौट गया।

बर्बरता की ओर लौटने के और पहले का एक रूप है। रूसो का 'प्रकृति की ओर लौटने' का और 'भद्र बर्बर' का प्रतिष्ठापन। अठारहवीं शती के पुरातनवादी उस रक्त-प्रियता के

रिक्तता उत्पन्न होगी उसे पूर्ण करने के लिए तुर्क विवश होंगे और स्वयं वे सब कार्य करने लगेंगे जो अभी तक प्रमादवश उन्होंने दूसरों के कन्धों पर छोड़ दिया था। उसी सिद्धान्त पर गाज़ी ने बाद में फारसी-अरबी शब्दों को उसमानिया तुर्की शब्द भण्डार से निकाला। इस उग्र कार्य ने प्रमाणित कर दिया कि मानसिक आलस्य वालों को भी कितनी आश्चर्यजनक बौद्धिक प्रेरणा मिलती है, जब वे देखते हैं कि हमारी जीवन की नित्य-प्रति आवश्यकताओं के लिए हमारे मुँह और कान बन्द हैं। इस विषम परिस्थिति में तुर्क लोग क्यूमन शब्दावली, ओरखोन के अभिलेख, युइगूर के सूत्र, तथा चीनी वंशावली के इतिहास में ऐसे शब्दों को ढूंढ रहे हैं, जो फारसी और अरबी के शब्द निकाल दिये गये हैं, उनका वास्तविक तुर्की पर्याय प्राप्त करें।

अंग्रेजी पर्यवेक्षक के लिए इस प्रकार का शब्दों के चुनने का पागल प्रयत्न डरावना मालूम होता है। क्योंकि वे डरते हैं कि यदि इस प्रकार की चेष्टा कभी हुई और 'हमारे समाज के रक्षकों को' 'शुद्ध अंग्रेजी' बनाने की सनक हुई तो कैसा भयंकर भविष्य होगा। सच पूछिए तो इस प्रकार का प्रयत्न एक दूरदर्शी शौकीन ने किया भी है। तीस वर्ष के लगभग हुआ एक सज्जन ने जो अपने को सी० एल० डी० कहते हैं, एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम है'वर्ल्ड बुक आव इंगलिश टंग'। यह उन लोगों के पथ-प्रदर्शन के लिए है जो 'नारमन जूए को अपने कन्धे से हटाना चाहते हैं,' क्योंकि वह बहुत भारी लग रहा है। उनका कहना है—'आज बहुत-से लेखक और वक्ता जिसे अंग्रेजी कहते हैं, वह बिल्कुल अंग्रेजी नहीं है, वह फ्रेंच है। सी० एल० डी० के अनुसार हम 'पराम्बुलेटर' को 'चाइल्डवेन' और 'आम्निबस' को 'फोकवेन' कहेंगे। किन्तु जब वह ऐसे विदेशी शब्दों को निकालने की बात कहते हैं जो बहुत पुराने हैं, तब बहुत अनुपयुक्त जान पड़ता है। उनका प्रस्ताव है कि 'डिस अप्रूव' के स्थान पर 'हिस', 'बू' या 'हूट' रखा जाय तो वह ठीक नहीं जँचता और स्वीकार करने को मन नहीं करता। और 'लाजिक' की जगह 'रीडी-क्रफ्ट' 'रेटार्ट',की जगह 'बैंकजा' और 'एमिग्रांट' की जगह 'आउटगैंगर' तो भद्दा और बेहूदा मालूम पड़ता है।[१]

यूनानियों की स्थिति उसमानिया तुर्की साम्राज्य के साथ वैसी ही थी जैसी नारवीजियनों की डेनों के शासन में और आयरिशों की ब्रिटिश शासन में। जब यूनानियों में राष्ट्रीय चेतना आयी, तब नारवीजियनों के समान उनके पास भी ग्रामीण जनबोली के अतिरिक्त कुछ नहीं था और सौ साल बाद आयरिशों के समान अपनी जन-बोली को अपनी पुरानी भाषा के शब्दों को मिला-मिलाकर गढ़ने लगे। किन्तु इस प्रयोग में उनको ऐसी कठिनाई का सामना करना पड़ा जो आयरिशों को नहीं मिली। पुराने गैलिक शब्दों का भांडार कम था, और क्लासिकी यूनानी भाषा का भाण्डार बहुत अधिक। सच पूछिए तो यूनानियों के सामने यह लालच था कि अधिक-से-अधिक शब्दों को वे लें और इसी लालच के जाल में वे फँस गये। और उन्होंने पुरानी भाषा से बड़ी उदारता से शब्दों का चयन किया। इसकी प्रतिक्रिया आधुनिक जन-साधारण में हुई। आधुनिक यूनानी भाषा 'शुद्धतावादियों की भाषा' और 'लोक भाषा' का युद्ध है।

---

१. जे० पी० स्क्वायर : बुक्स इन जेनरल में सी० एल० डी० की पुस्तक की पृ० २४६ में आलोचना है।

हमारा पाँचवाँ उदाहरण हिब्रू भाषा का नित्य की बोलचाल की भाषा में प्रयोग का है। यह उन जायनिस्ट यहूदियों की भाषा है जो फिलस्तीन में बस गये हैं। इसमें सबसे अधिक विशेषता है। क्योंकि नारवीजियनों तथा आयरिशों में उनकी जनबोली मृत नहीं हुई थी, बोली जाती थी। फिलस्तीन में हिब्रू तेईस शतियों से मृत भाषा थी। उस समय उसका स्थान नेहीमिया के पहले अरामाई भाषा ने ले लिया था। इतने समय तक और आज तक हिब्रू केवल यहूदी धर्म में पूजा में प्रयोग होती रही है और वे विद्वान् इसका प्रयोग करते रहे हैं, जिनका सम्बन्ध यहूदी कानून से है। और तब एक ही पीढ़ी में यह 'मृत भाषा' यहूदियों के उपासना घर से निकल कर पश्चिमी संस्कृति के संचारण का माध्यम बन गयी। पहले इसका प्रयोग पूर्वी यूरोप में यहूदियों के विनाश में समाचार-पत्रों में हुआ, फिर फिलस्तीन में घरों और स्कूलों में। यहाँ यूरोप के यिड्डिश बोलने वाले आगन्तुक, अमरीका के अंग्रेजी बोलने वाले आगन्तुक, यमन के अरबी बोलने वाले आगन्तुक, बोखारा के फारसी बोलने वाले आगन्तुक, अपनी सामान्य भाषा समझकर इसका एक साथ प्रयोग करते हैं। वह भाषा ईसा की पीढ़ी के पाँच सौ साल पहले 'मर' चुकी थी।

यदि हम हेलेनी संसार की ओर दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि यहाँ भाषा का पुरातनवाद केवल संकीर्ण राष्ट्रीयतावाद का सहायक नहीं था, बल्कि अधिक व्यापक था।

यदि इन पुस्तकों की ऐसी सन्दूक देखें जिनमें सातवीं ईसवी शती तक की सारी पुस्तकें यूनानी भाषा में लिखी गयी रखी हों, और आज तक सुरक्षित हों, तो हमें दो बातें देखने को मिलेंगी। पहली बात तो यह कि इस संग्रह में अधिकांश पुस्तकें एटिक (एकीनियनों द्वारा बोली जाने वाली) भाषा में लिखी हैं, कि यदि तिथिवार इन पुस्तकों का वर्गीकरण किया जाय तो ये दो विभिन्न वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। पहला वह जिसमें मौलिक एटिक साहित्य है जो पाँचवीं और चौथी शती ई० पू० में एथेन्स में अथीनियनों द्वारा रचा गया, जो अपनी स्वाभाविक भाषा में लिख रहे थे। दूसरा वर्ग उन पुस्तकों का होगा पुराने ऐटिक साहित्य का, जिसकी रचना ई० पू० अन्तिम शती से लेकर ईसा की छठीं शती तक—छ या सात सौ वर्षों में हुई। ये उन लेखकों की रचनाएँ हैं जो न एथेन्स में रहते थे, न जिनकी भाषा एटिक थी। इन नव-लेखकों का विस्तार उतना ही बड़ा है जितना हेलेनी सार्वभौम राज्य। क्योंकि उनमें यरूशलेम के जोजेफस, प्रेनेसटे के एलियन, रोम के मारकस आरीलियस, सोमोसाटा के लूशियन और सिजारिया के प्रोकोपियस हैं। किन्तु यद्यपि इन लेखकों का उद्‌गम भिन्न है, उनकी शब्दावली, उनकी पद-योजना, उनकी शैली आश्चर्यजनक रूप से एक ढंग की है, क्योंकि ये सब निर्लज्जता तथा दासतापूर्वक ऐटिक साहित्य के सर्वोच्चकाल के अनुगामी हैं।

उनके पुरातनवाद ने उनकी रक्षा निश्चित कर दी। क्योंकि हेलेनी समाज के विघटन के समय प्रत्येक यूनानी लेखक का अस्तित्व उस युग के साहित्य की रुचि के अनुसार निर्णीत हो रहा था। लिपिकों के सामने यह प्रश्न नहीं था कि 'यह महान् साहित्य है।' वे यह देखते कि यह विशुद्ध एटिक है कि नहीं।' परिणामस्वरूप हमें बहुत-सी पुस्तकें नव-एटिक साहित्य की मिलती हैं जिन्हें हम बड़ी प्रसन्नता से केवल थोड़े-से उन खोये हुए अन-एटिक साहित्य से बदलने के लिए तैयार हैं, जो तीसरी तथा दूसरी शती ई० पू० में रचे गये।

हेलेनी साहित्य के पुरातन काल में केवल एटिकवाद के साहित्य की ही विजय नहीं हुई।

एक प्रकार की नव-होमरी कविता भी कुछ पुरातत्त्ववादियों ने लिखी। दूसरी शती ई० पू० में अपोलोनियस रोडियस से लेकर ईसवी सन् की पाँचवीं-छठीं शती में नोन्नस पेनोपोलिटेनस तक यह सिलसिला चलता रहा। अलेकजेन्ड्राइन[1] में यूनानी साहित्य के बाद की अ-पुरातनवादी रचनाएँ केवल दो प्रकार की हैं। तीसरी और दूसरी शती ई० पू० के ग्राम्यगीत, जो पुरानी मूल्यवान् यूनानी भाषा के लिए सुरक्षित हैं, और ईसाई तथा यहूदी धर्मग्रन्थ।

यूनानी एटिक के पुनर्जीवित करने को पुरातनवाद के समान भारतीय इतिहास में संस्कृत के पुनर्जीवन का उदाहरण है। मूल संस्कृत उन यूरेशियाई खानाबदोश आर्यों के गिरोह की बोली थी जो स्टेप को छोड़कर उत्तरी भारत, दक्षिण-पश्चिम एशिया और उत्तरी मिस्र में दो हजार साल ई० पू० फैल गये। भारत में यह भाषा वेदों में सुरक्षित है, जो भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं। किन्तु जब भारतीय सभ्यता पतनोन्मुख होकर विघटित होने लगी, संस्कृत प्रचलित भाषा नहीं रह गयी और क्लासिकी भाषा हो गयी, जिसका अध्ययन इसलिए होता है कि उसमें शाश्वत साहित्य भरा है। इस समय संस्कृत का स्थान अनेक स्थानीय बोल-चाल की भाषाओं ने ले लिया। इन सबका स्रोत संस्कृत है, किन्तु उनमें प्रत्येक में इतना अन्तर है कि प्रत्यक स्वतन्त्र भाषा हो गयी है। इनमें से एक का प्राकृत लंका की पाली—हीनयानी बौद्धधर्म-ग्रन्थों में व्यवहार किया गया, कइयों का अशोक ने (२७२–२३२ ई० पू०) अपनी घोषणाओं में प्रयोग किया। अशोक की मृत्यु के पश्चात् या कुछ पहले संस्कृत के पुनरुद्धार का कृत्रिम प्रयत्न आरम्भ हुआ और उसका विस्तार होता रहा। ईसा की छठीं शती तक नव-संस्कृत भाषा ने प्राकृतों पर विजय पायी और सारे देश में फैली। पाली केवल साहित्यिक कौतुकता के रूप में लंका में रह गयी। इस प्रकार हमारा प्रचलित संस्कृत वाङमय प्रचलित यूनानी वाङमय के समान दो भागों में है। एक पुराना भाग-जो मौलिक है, एक नवीन जो अनुकरण किया गया है और पुरातनवादी है।[1]

भाषा और कला की भाँति धर्म के क्षेत्र में भी आधुनिक पश्चिमी सर्वेक्षक को पुरातनवाद मिलेगा जो अपने सामाजिक वातावरण में चल रहा है। उदाहरण के लिए ब्रिटिश एंग्लो-कैथोलिक आन्दोलन इस विश्वास पर आधारित है कि सोलहवीं शती का सुधार (रिफार्मेशन) बदले हुए अंग्रेजी रूप में भी, बहुत अधिक था। और इस आन्दोलन का उद्देश्य यह है कि मध्ययुगीन विचार और धार्मिक रीतियाँ पुनः स्थापित की जायँ, जो चार सौ साल हुए, (इनके हिसाब से बिना विचारे) समाप्त कर दी गयी थीं।

हेलेनी इतिहास में आगस्टस की धार्मिक नीति में हमें एक उदाहरण मिलता है।

'राजधर्म का आगस्टस द्वारा पुनःस्थापित करना रोमन इतिहास में विशिष्ट घटना है, सम्भवतः सारे धार्मिक इतिहास में विशिष्ट है। शिक्षक वर्ग में पुरानी पूजा की उपयोगिता पर विश्वास हट गया था।····संकर नागरिक पुराने देवताओं की खिल्ली उड़ाते थे···और धर्म का बाहरी आचार नष्ट हो गया था। इसलिए हम लोगों को यह असम्भव जान पड़ता था कि ऐसे आचार और किसी सीमा तक, ऐसे विचार, केवल एक व्यक्ति की इच्छा से पुनर्जीवित किये जायँ। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह पुनर्जीवन वास्तविक था

---

[1] अलेकजेन्ड्राइन एक प्रकार का पुराना यूनानी छन्द है।—अनुवादक

और देवता द्वारा शान्ति और ईश्वर की उपस्थिति एक बार फिर शक्तिशाली शब्द हो गये । पुराना धर्म कम-से-कम तीन सौ सालों तक चलता रहा और कुछ सीमा तक उस पर लोगों का विश्वास भी था ।[1]

यदि हम हेलेनी संसार के सुदूर पूर्वी समाज की जापानी शाखा की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि वर्तमान काल में जापानियों ने आदिम मूर्ति-पूजा के एक स्थानीय स्वरूप को पुनर्जाग्रत करने का प्रयत्न किया है जिसे शिन्तो कहते हैं । यह धार्मिक पुरातनवाद को चलाने का प्रयास है जो आगस्टस की धार्मिक नीति से और जरमनों की ट्यूटनी मूर्तिपूजा को फिर से स्थापित करने के प्रयत्नों से मिलता-जुलता है । यह कार्य रोमन असाधारण शक्ति की अपेक्षा जरमन प्रयत्न के अधिक समान है । क्योंकि आगस्टस ने जो रोमन मूर्तिपूजा चलायी वह यद्यपि बहुत कुछ नष्ट हो गयी थी, फिर भी चालू थी । जापान में तथा जरमनी में पुरानी मूर्तिपूजा का धर्म हजार साल हुए समाप्त हो चुका था । जापान में उसका स्थान महायानी बौद्ध धर्म ने ले लिया था । इस आन्दोलन का पहला रूप शास्त्रीय था । क्योंकि शिन्तो के पुनर्जीवन का प्रयत्न पहले-पहले एक बौद्ध भिक्षु केइचू (१६४०–१७०१) ने किया था । उसकी रुचि केवल शब्द-शास्त्र की दृष्टि से इसमें थी । किन्तु दूसरों ने उसके काम को उठा लिया । हिराता अत्सुताने (१७७६–१८४३) ने महायान तथा कनफूशियस के धर्मों का विरोध यह कह कर किया कि ये दोनों विदेशी हैं ।

ज्ञात रहे कि शिन्तो का पुनर्जीवन आगस्टी पुनर्जीवन के समान उसी समय आरम्भ हुआ, जब जापान में संकटकाल समाप्त हुआ और वहाँ सार्वभौम राज्य बन गया । नव-शिन्तों आन्दोलन संघर्षात्मक रूप तक पहुँच चुका था, जब जापानी सार्वभौम राज पश्चिमी सभ्यता के आघात से समय से पहले चकनाचूर हो गया । सन् १८६७–६८ की क्रान्ति के समय जब जापान ने नयी नीति अपनायी कि पश्चिमी राष्ट्रीय ढंग पर अपने को आधुनिक बनाकर अर्धपश्चिमीकृत महान् समाज में अपनी स्थिति वह ढूँढ़ रखे, तब नव-शिक्षा आन्दोलन उपस्थित हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में उसका निजत्व स्थापित करने की आवश्यकता की इसने पूर्ति की । नये शासन ने धर्म के सम्बन्ध में पहला काम यह किया कि धर्म को राज्य-धर्म बनाया । और एक समय ऐसा जान पड़ा कि बौद्ध धर्म जबरदस्ती समाप्त कर दिया जायगा । किन्तु सदा की भाँति इतिहास में 'ऊँचे धर्म' के बैरियों ने देखा कि कितनी जबरदस्त शक्ति उसमें है । बौद्ध धर्म और शिन्तो धर्म को एक-दूसरे को सहन करना पड़ा ।

यदि पूर्ण असफलता नहीं तो असफलता का वातावरण या निरर्थकता पुरातनवाद के चारों ओर व्याप्त रहती है । यह ऊपर के उदाहरणों में हमने देखा । इसका कारण ढूँढने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं है । पुरातनवादी के लक्ष्य का ढंग ही ऐसा है कि उसे प्राचीन और नवीन के साथ समन्वय करने की चेष्टा करनी पड़ती है । और दोनों के अपने-अपने अधिकारों में असंगति होती है यही जीवन में पुरातनवाद की दुर्बलता है । पुरातनवादी दुविधा के सींगों के बीच होता है, जिस ओर वह घूमा सींग उसमें घुसा । यदि वह वर्तमान को ध्यान में रखे बिना प्राचीन की स्थापना करना चाहता है तो जीवन की, जो सदा अग्रगामी है, शक्ति उसकी भंगुर

---

[1] डब्ल्यू-वार्ड-फाउलर : द रिलिजस एक्सपीरिएन्सेज आव द रोमन पीपुल, पृ० ४२८-२९ ।

संरचना को चकनाचूर कर देगी। और यदि वह वर्तमान को कार्य रूप में लाना चाहता है और प्राचीन के पुनर्जीवन को वर्तमान के अधीनस्थ रखता है, तब उसका पुरातनवाद झूठा हो जाता है। दोनों परिस्थितियों में, अपने कार्य के अन्त में पुरातनवादी को पता चलेगा कि मैं भविष्यवाद (फ्युचरिज्म) का खेल खेल रहा हूँ। समय के विपरीत वस्तु को स्थायी बनाने की चेष्टा में वास्तव में वह किसी ऐसी क्रूर नवीनता के लिए दरवाजा खोल रहा है, जो घुसने का अवसर पाने के लिए ताक में बैठी है।

(८) भविष्यवाद

भविष्यवाद और पुरातनवाद दोनों दुखदायी वर्तमान से अलग होने की चेष्टाएँ हैं। पृथ्वी पर के सांसारिक जीवन को छोड़े बिना दूसरी समय की सरिता में उछल कर कूदने की ये चेष्टाएँ हैं। ये दोनों प्रयत्न वर्तमान से बचने के हैं, किन्तु समय के आयाम से बच नहीं सकते। इन दोनों की असाधारण शक्तियाँ समान हैं, किन्तु परीक्षा के पश्चात् दोनों टूटी हुई आशाएँ ही हैं। इन दोनों का अन्तर केवल दिशाओं का है। नदी के बहाव की ओर या उसके विपरीत। ये दोनों वर्तमान क्लेश से ऊबकर समय की सरिता में निराश होकर समान रूप से गोता लगाते हैं। साथ ही भविष्यवाद पुरातनवाद से अधिक मानव-प्रकृति के विरुद्ध है। यह तो मनुष्य का स्वभाव है कि जब वह वर्तमान से ऊबे, तो प्राचीन की ओर शरण ले। किन्तु वह अप्रिय वर्तमान से चिपका रहना अधिक पसन्द करेगा, क्योंकि वह ज्ञात है इसके बजाय कि अज्ञात भविष्य की ओर जाय। इसलिए पुरातनवाद की अपेक्षा भविष्यवाद की मनोवैज्ञानिक शक्ति का स्वर अधिक ऊँचा होता है। और जिन लोगों ने पुरातनवाद लाने की चेष्टा की और विफल रहे उनकी आत्मा पर भविष्यवाद की धड़कन की प्रतिक्रिया होती है। भविष्यवाद से इसी प्रबल तर्क के अनुसार निराशा भी उत्पन्न होती है। कभी-कभी भविष्यवाद का कुछ परिणाम दूसरा होता है। भविष्यवाद कभी-कभी अपने से ऊपर उठकर किसी दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाता है।

पुरातनवाद की दुर्घटना की उपमा यदि हम उस मोटरकार से दें जो सड़क पर अपनी राह पर फिसल कर पीछे मुड़ जाती है और विपरीत दिशा में जाकर टकरा जाती है तो भविष्यवाद के आनन्ददायी अनुभव की उपमा उस यात्री से दी जा सकती है जो मोटर से चालित गाड़ी पर सवार है और समझता है कि धरती पर गाड़ी चली जा रही है, किन्तु यह देखकर भयभीत हो जाता है कि जिस धरती पर गाड़ी जा रही है वह अधिकाधिक ऊबड़-खाबड़ होती जा रही है और जब वह समझता है कि अब दुर्घटना अवश्यम्भावी है, गाड़ी एकाएक ऊपर उठ जाती है और खोह-कन्दराओं से उठकर अपने हवा में चली जाती है।

पुरातनवाद की भाँति भविष्यवाद भी वर्तमान से अलग होना चाहता है। इसका हम अनेक सामाजिक क्षेत्रों के कार्यों में अध्ययन कर सकते हैं। सामाजिक आचार के क्षेत्र में भविष्यवदी का बहुधा वेश के सम्बन्ध में परिवर्तन होता है। परम्परागत पोशाक को छोड़कर विदेशी पहनावा धारण करते हैं और यद्यपि सतही ढंग से, फिर भी पश्चिमी समाज में व्यापक रूप से हम देखते हैं कि बहुत-से अ-पश्चिमी समाजों ने अपने पुश्तैनी और विशिष्ट पहनावे को छोड़कर अनाकर्षक विदेशी पश्चिमी वेश-भूषा को अपना लिया है। जो इस बात का बाहरी

चिह्न है कि उन्होंने जान में या अनजान में पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा के साथ अपने को कर लिया है।

जबरदस्ती बाहरी पश्चिमीकरण का सबसे विख्यात और सम्भवतः सबसे पुराना उदाहरण वह है जब पीटर महान् की आज्ञा से रूसियों की दाढ़ी मूढ़ दी गयी और उन्हें कफतान (जामा) पहनने को मना कर दिया गया। वेश-भूषा की इस रूसी क्रान्ति का अनुगमन उन्नीसवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश में जापान ने किया और ऐसी ही अवस्था में इसी प्रकार की जबरदस्ती १९१४–१८ ई० पू० के युद्ध के बाद अनेक अपश्चिमी देशों ने की है। उदाहरण के लिए १९२५ का तुर्की का कानून है जिसमें यह आवश्यक कर दिया गया कि तुर्की का प्रत्येक पुरुष किनारेदार (ब्रिमवाली) हैट पहने और इसी प्रकार की आज्ञा ईरान के रजाशाह पहलवी ने निकाली और सन् १९२८ में अफगानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला थे।

केवल बीसवीं शती के इस्लामी देश ही नहीं हैं जिन्होंने किनारेदार हैट को संघर्षवादी भविष्यवाद का विशिष्ट चिह्न बनाया। १७०–१६० ई० पू० के सीरियाई संसार में यहूदियों के हेलेनीकरण के दल के नेता उच्च पुरोहित जेशुआ ने अपना नाम बदल कर जेसन रख दिया जो उसके कार्यक्रम का शाब्दिक संकेत था। किन्तु इसी से उसे सन्तोष नहीं हुआ। जिस विशेष कार्य की मक्काबियों में प्रतिक्रिया हुई वह यह था कि युवक पुरोहितों ने चौड़े किनारे की फेल्ट हैट अपने पहनने के लिए चुना। अकामीनियाई साम्राज्य के हेलेनी उत्तराधिकारियों के मूर्तिपूजक शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का सिर का विशेष पहनावा था। भविष्यवाद के इस यहूदी प्रयास का अन्तिम परिणाम पीटर महान् की विजय के समान नहीं था, बल्कि अमानुल्ला की भाँति हास्यास्पद विफलता हुई। क्योंकि यहूदी धर्म पर सिलियूसिड शक्तियों के स्पष्ट आक्रमण के कारण यहूदियों में हिंसात्मक प्रतिक्रिया हुई जिसका सामना एन्टिओकस एफिफेनीज और उसके उत्तराधिकारी नहीं कर सके। किन्तु भविष्यवाद का यह विशेष प्रयास विफल रहा, इसका अर्थ यह नहीं है कि यह उदाहरण शिक्षाप्रद नहीं है। भविष्यवाद की विशेष प्रकृति अधिनायकवाद है। जो यहूदी यूनानी चौड़ी हैट पहनता है वह यूनानी व्यायामशाला में शीघ्र ही जाना आरम्भ करेगा और अपने धर्म के नियमों को पोंगापन्थी, पुरातन और मूर्खतापूर्ण समझेगा।

राजनीतिक क्षेत्र में भविष्यवाद अपने को भौगोलिक क्षेत्र में इस प्रकार व्यक्त कर सकता है कि जो सीमाएँ और भू-चिह्न हैं उन्हें जान-बूझकर समाप्त कर दे, सामाजिक क्षेत्र में वर्तमान निगमों, दलों, धार्मिक सम्प्रदायों को विघटित कर देता है या सारे समाज को समाप्त कर देता है। भूचिह्नों और सीमाओं को व्यवस्थित ढंग से मिटाने का क्लासिकी उदाहरण यूनान का है, जब जान-बूझकर राजनीतिक अविच्छिन्नता को समाप्त करने के लिए सफल क्रान्तिकारी क्लेइसथिनीज ने ५०७ ई० पू० में अटिका का एक नया नकशा बनाया। क्लेइसथिनीज का उद्देश्य था कि ढीली-ढाली राजनीतिक व्यवस्था को जिसमें समुदाय के स्वत्व के ऊपर वंश का स्वत्व था, समाप्त कर दे और एकात्मक (युनिटरी) राज्य स्थापित हो, जिसमें सब प्रकार की भक्तियाँ गौण हों, नागरिकता का दायित्व सबके ऊपर हो।

उसकी उग्र नीति विशेष रूप से सफल हुई और इस हेलेनी दृष्टान्त का अनुसरण पश्चिमी जगत् में फ्रांस की क्रान्ति के नेताओं ने किया। चाहे जान-बूझकर इस हेलेनी पद्धति का अनुसरण किया अथवा स्वतन्त्र रूप से वैसे ही माध्यम को उन्होंने अपनाया और परिणाम भी वैसा ही हुआ।

जिस प्रकार क्लेइसथिनीज का उद्देश्य अटिका को एक बनाने का था, उसी प्रकार फ्रेंच क्रान्तिकारियों ने पुराने सामन्ती प्रदेशों को समाप्त कर दिया और चुंगी की सीमाओं को हटा दिया, जिससे देशभर एक आर्थिक क्षेत्र बन जाय और उन्हें शासन की सुविधा के लिए देश को तिरासी डिपार्टमेन्टों (प्रदेशों) में विभाजित कर दिया। ये सब बिलकुल एक ढंग के थे और केन्द्र के कठोर रूप से अधीन बना दिये गये थे, जिससे पुरानी स्थानीय विभिन्नताएँ और भक्तियों की स्मृति मिट जाय। जिन बाहर के प्रदेशों को नैपोलियन ने ले लिया था और अस्थायी रूप से नैपोलियनी साम्राज्य में मिला लिया था, उनकी सीमाओं को नये नकशे में मिटा दिया गया। इससे इटली तथा जरमनी के एकात्मकता के राज्य के निर्माण में बहुत सहायता मिली।

हमारे समय में यही अभिव्यक्ति बोलशेविक प्रवृत्ति के भौगोलिक क्षेत्र में दिखाई देती है। इसमें सोवियत संघ के आन्तरिक भागों को फिर से नये रूप में परिवर्तित किया गया है। यदि हम नये शासकीय नकशे को पुराने रूसी साम्राज्य के नकशे के ऊपर रखकर देखें तो इसका पता चल जायगा। एक ही प्रकार के उद्देश्य के अनुसार कार्य करने में स्टालिन ने जिस चालाकी से कार्य किया उसमें वह अग्रगामी है। उसके पहले के लोगों ने अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपने यहाँ के लोगों की स्थानीय राजनिष्ठा को दुर्बल किया, स्टालिन ने इसके विपरीत नीति का प्रयोग किया कि स्थानीय निष्ठा को सन्तुष्ट किया। उसने इस बात को पहले से सोच लिया था कि भूख पेट भर जाने से मर जाती है, भूख रखने से नहीं मरती। इस सम्बन्ध में याद रखने की बात है कि स्टालिन स्वयं जार्जियन है। जब १९१९ में मेनशेविक जार्जियनों का एक शिष्ट मण्डल पेरिस के शान्ति कानफरेन्स में गया और उसने अपने को अरूसी जाति बनाये जाने की माँग की, उन्होंने अपना दावा इस तर्क पर उपस्थित किया कि हमारी भाषा भिन्न है और साथ एक दुभाषिया लाये जिसका काम था कि इस विदेशी स्थानीय भाषा का फ्रेंच में अनुवाद करे। एक अंग्रेजी पत्रकार जिसे जार्जियन नहीं जानते थे, वहाँ उपस्थित था। उसने बताया कि एक अवसर पर जार्जियन और उनका दुभाषिया रूसी में बात कर रहे थे। इससे परिणाम यह निकलता है कि आज का रूसी अपने से और अनजाने अपना राजनीतिक कामकाज रूसी में करेगा, जब तक रूसी जबरदस्ती उन पर लादी न जायगी।

धर्म के अतिरिक्त और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भविष्यवाद की अभिव्यक्ति का प्रतीक पुस्तकों का जलाना है। ऐसा कहा जाता है चीनी संसार के सम्राट् क्रान्तिकारी त्सिन को ह्वांग-टी ने, जो चीनी सार्वभौम राज्य का संस्थापक था, उन दार्शनिकों की पुस्तकें जब्त करके जलवा डालीं, जो चीनी संकट काल में हुए थे। उसे भय था कि उनके भयंकर विचारों से उसके नये समाज के निर्माण का कार्य रुक जायगा। सीरियाई समाज में, खलीफा ऊमर ने, जिसने उस सीरियाई समाज का पुनर्निर्माण किया, जो हेलेनी आक्रमण के बाद एक हजार साल तक सुषुप्त था, एक सेनापति के पत्र का, कहा जाता है, इस प्रकार का उत्तर दिया। सिकन्दरिया का नगर जब पराजित हो गया, इस सेनापति ने लिखा कि पुस्तकालय का क्या किया जाय। खलीफा ने उत्तर दिया :

'यदि यूनानियों की पुस्तकों के विचार ईश्वर की पुस्तक के विचारों से सहमत हैं तो उनकी रक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। और यदि असहमत हैं तो घातक हैं और उन्हें नष्ट कर

देना चाहिए ।' कथा के अनुसार उस पुस्तकालय की पुस्तकें जो नौ सौ वर्षों से एकत्र हो रही थीं सार्वजनिक स्नानागारों में पानी गर्म करने के लिए प्रयोग में लायी गयीं ।

हमारे युग में पुस्तकें जलाने में हिटलर ने भी, जो वह कर सकता था, किया । यद्यपि मुद्रण-कला के आविष्कार हो जाने से इस प्रकार के नृशंस कार्य पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाते । हिटलर के समकालीन मुस्तफा कमाल अतातुर्क ने दूसरी सूक्ष्म पद्धति से कार्य किया । तुर्की अधिनायक का उद्देश्य था कि ईरानी संस्कृति, जो उत्तराधिकार में मिली है, लोगों के मन से जबरदस्ती हटा ले और पश्चिमी संस्कृति के साँचे में वह ढाली जाय । उसने पुस्तकें जलाने के स्थान पर वर्णमाला बदल दी । सन् १९२९ से सारी पुस्तकों और समाचार-पत्रों को तथा कानूनी दस्तावेजों को लैटिन लिपि में छापना आवश्यक हो गया । इस कानून के पास होने से तथा बलपूर्वक उसका प्रयोग होने के कारण तुर्की गाजी को चीनी सम्राट् या अरब के खलीफा का अनुकरण नहीं करना पड़ा । फारसी, अरबी तथा तुर्की के क्लासिक नयी पीढ़ी की पहुँच के बाहर कर दिये गये । पुस्तकों के जलाने की समस्या नहीं रह गयी, जब उनकी लिपि बदल दी गयी जो उनकी कुंजी थी । वे पुस्तकें अलमारियों में सड़ने के लिए रख दी गयीं, इस विश्वास के साथ कि मुठ्ठी भर पुरातत्त्ववेत्ताओं को छोड़कर उन्हें कोई स्पर्श भी न करेगा ।

धर्मेतर संस्कृति में साहित्य और विचार ही ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ वर्तमान में भविष्यत् ने प्राचीन की विरासत पर आक्रमण किया है । दृष्टिपरक तथा श्रवणपरक और भी कलाओं के संसार हैं जिन्हें भविष्यवाद पराजित करना चाहता है । वास्तव में दृष्टिपरक कलाकारों ने ही 'भविष्यवाद' शब्द गढ़ा है जिससे वे अपनी क्रान्तिकारी उच्च कलाओं को पुकारते हैं । किन्तु भविष्यवाद का एक कुख्यात रूप है जो दृष्टिपरक कलाओं के क्षेत्र में व्याप्त है और धर्म में तथा धर्मेतर संस्कृति में समान रूप से पाया जाता है । वह है मूर्तिभंजन (आइकोनोक्लाज्म) । मूर्तिभंजन आधुनिक क्यूबिस्ट चित्रकारी के समर्थकों के समान है, जो परम्परागत कला की शैली को अग्राह्य मानते हैं । उसमें यह विशिष्टता है कि कला के विरोध का सम्बन्ध, धर्म से भी लगा देता है और उसके विरोध की भावना कला विषयक नहीं है, धार्मिक है । ईश्वर के दृश्यमान प्रतिनिधि का विरोध मूर्तिभंजक इसलिए करता है कि ईश्वर का या ईश्वर से नीचे के भी किसी प्राणी की मूर्ति नहीं बननी चाहिए जो मूर्ति-पूजा को प्रोत्साहित कर सके, इस सिद्धान्त को लागू करने में केवल मात्रा का ही अन्तर रहा है । मूर्तिभंजन का सबसे विख्यात समुदाय 'एकात्मवाद' का है जिसका प्रतिनिधि यहूदी धर्म है और उसके अनुकरण में इस्लाम । मूसा की दूसरी आज्ञा में यह कहा गया है :

'तू कोई ऐसी मूर्ति न बनायेगा या उसके समान कोई चीज न बनायेगा जो स्वर्ग में है या जो धरती के नीचे पाताल में है या जो धरती के अन्दर पानी में है ।'[1]

इसके विपरीत ईसाई धर्म में जो मूर्तिभञ्जक आन्दोलन चले वे अन्य इसी प्रकार के आन्दो-

---

१. प्रकृति की वस्तुओं का अनुकरण करने के इस निषेध के कारण कलाकारों ने इस प्रकार की कला उपस्थित की जिसमें किसी का प्रतिनिधित्व नहीं है । इसी के लिए अराबेस्क शब्द का प्रयोग हुआ है ।—अनुवादक

लनों से भिन्न थे और वे ईसाई धर्म के अनुकूल बन गये। यद्यपि आठवीं शती में परम्परावादी ईसाई धर्मतन्त्र में मूर्तिभंजक आन्दोलन चला और सोलहवीं शती में पश्चिमी ईसाई समाज में भी यह आन्दोलन चला, ऐसा जान पड़ता है कि आठवीं शती में इस्लाम के उदाहरण ने प्रभावित किया और सोलहवीं शती में यहूदियों के उदाहरण ने, फिर भी दृश्यपरक कलाओं को पूर्णत: इन्होंने नहीं त्यागा। ईसाइयों ने यह आक्रमण धर्मेतर क्षेत्रों पर नहीं किया। धार्मिक क्षेत्र में भी कट्टर मूर्तिभंजक विचित्र समझौते पर राजी हो गये। तीन आयामों के प्रतिरूपों का उन्होंने इस स्पष्ट शर्त पर निषेध किया कि दो आयामों के प्रतिरूप स्वीकार किये जायेंगे।

(९) भविष्यवाद की निजी अनुभवातीतता (द सेल्फट्रान्सेन्डेन्स आव फ्यूचरिज्म)

सम्भव है कि राजनीतिक क्षेत्र में भविष्यवाद को कभी सफलता मिल जाय, जो लोग इसे जीवन का मार्ग बनाना चाहते हैं उनके लिए यह ऐसा ऊसर है जहाँ जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। यद्यपि खोज व्यर्थ और दुखदाई होगी फिर भी कुछ उसकी उपयोगिता होगी। क्योंकि वह खोज करने वालों के निराशापूर्ण चरणों को शान्ति की राह पर ले जा सकता है। भविष्यवाद अपने स्वाभाविक रूप में निराशा की योजना है, इस पर भी कोई राह न मिलने पर यह एक राह है। क्योंकि जब आत्मा वर्तमान से निराश हो चुकी है और सांसारिक जीवन की उसकी भूख नहीं मिटी है, तब वह पुरातन की समय-सरिता में गोता लगाती है। और जब पुरातन में पलायन की चेष्टा बेकार या असम्भव हो जाती है, तब आत्मा भविष्यत् के कम स्वाभाविक राह को पकड़ती है।

इस पवित्र—और उसी प्रतीक से पवित्र सांसारिक—भविष्यवाद को कुछ उदाहरणों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए दूसरी शती ई० पू० के हेलेनी संसार में हजारों सीरियाइयों और संस्कृत पूर्ववासियों की स्वाधीनता छीन ली गयी, वे देश से निकाल दिये गये, परिवार से अलग कर दिये गये और सिसली तथा इटली में दास के रूप में उन खेतों और चरागाहों में भेज दिये गये जो हैनिबली युद्धों में उजाड़ हो गये थे। इन निर्वासित दासों को, जिन्हें वर्तमान से पलायन की अतीव आवश्यकता थी, प्राचीन में जाने की कोई सम्भावना नहीं थी। इतना ही नहीं कि वे सशरीर अपने देश को नहीं लौट सकते थे; जो कुछ उन्होंने अपने घरों को सुखी बनाने के लिए किया था, नष्ट हो गया। वह पीछे नहीं जा सकते थे, आगे नहीं जा सकते थे, इसलिए जब उन पर अत्याचार असह्य हो गया, वे विद्रोह करने के लिए विवश हो गये। इन दासों के बड़े-बड़े विद्रोह उल्टा रोमन राष्ट्रमण्डल स्थापित करने के हताश प्रयत्न थे, जिनमें सम्प्रति दास स्वामी हो जायँ और स्वामी दास हो जायँ।

सीरियाई इतिहास के और पहले के अध्याय में इसी प्रकार यहूदियों की प्रतिक्रिया हुई थी, जब जूडा का स्वतन्त्र राज्य नष्ट हो गया था। जब नव-बैबिलोनी और अकेमीनियाई साम्राज्यों ने उन्हें निगल लिया और अधर्मियों (अयहूदियों) में वे तितर-बितर हो गये, उन्हें यह आशा और विश्वास नहीं था कि हम फिर उस पुरानी अवस्था में पहुँचेंगे जिस स्थानीय स्वाधीनता में हम रहते थे। उन्हें ऐसी विश्वासजनक आशा नहीं हो सकती थी कि जो अवस्था बीत गयी वह लौट आयेगी, और ऐसी परिस्थिति भी उनके अनुकूल नहीं थी, फिर भी वे इस आशा को नहीं त्याग

सकते थे कि इस दुरवस्था से हम निकल जायेंगे। ये निर्वासित यहूदी यह कल्पना करने लगे कि भविष्य में ऐसा दाऊदी (यहूदी) राज्य स्थापित होगा जैसा यहूदियों के राजनीतिक प्राचीन इतिहास में कोई उदाहरण नहीं था। और ऐसे राज्य की कल्पना साम्राज्यों के युग में ही की जा सकती है। यदि नया दाऊद अपने शासन में सब यहूदियों को संयोजित कर ले—और इसके अतिरिक्त उसका क्या मिशन हो सकता है—तो सम्प्रति शासक से साम्राज्य की प्रभुता छीन कर वह कल जेरूसलेम को संसार का केन्द्र बनाये जैसे बैबिलोन या सूसा उस समय था। जेरुब-बबेल को भी विश्व पर शासन करने का वैसा ही अवसर क्यों न मिले जो दारा को था, या जूडास मक्काबियस भी एंटिओकस के समान और बार-कोकाबा हैड्रियन के समान क्यों न राज करे।

इसी प्रकार का सपना किसी समय रूस के 'प्राचीन पंथियों' ने देखा था। इन रासकोलनिकियों की दृष्टि में जार पीटर का परम्परावाद हेय था। साथ-ही-साथ यह कल्पना भी असम्भव थी कि धर्मेतर व्यवस्था के सामने, जो इस समय सर्वशक्तिशाली हो रही थी, और (पुरातन पंथियों की दृष्टि में) शैतानी की, पुरानी धार्मिक व्यवस्था विजयी हो सके। इस कारण रासकोलनिकियों ने ऐसी बात पर आशा लगायी जो कभी हुई ही नहीं थी। वे सोचते थे कि किसी ऐसे जार-मसीहा का अवतरण हो जो परम्परावादी धर्म को प्राचीन पवित्रता के साथ प्रतिष्ठापित करे।

विशुद्ध भविष्यवाद के इन उदाहरणों में एक समान गुण यह है कि जिन आशाओं का आश्रय इनके आन्दोलनकारियों ने लिया है वे सब वास्तविक तथा साधारण लौकिक रूप में हो सकते हैं। यह बात यहूदियों के भविष्यवाद में स्पष्ट है जिसका पर्याप्त लिखित प्रमाण इतिहास में मिलता है। नेबुकदनजार के राज्य के विनाश के बाद जब-जब उन्होंने देखा कि सार्वभौम राजनीतिक परिस्थिति के कारण ऐसा अवसर है कि नया यहूदी राज्य स्थापित हो सके, बार-बार उन्होंने अपनी सम्पत्ति का उपयोग किया। कैम्बाइसिस की मृत्यु और दारा के आगमन के बीच अकामीनियाई साम्राज्य में थोड़े काल के लिए अराजकता थी। उस बीच (सम्भवत: ५२२ ई० पू०) में जेरुब बबेलने यहूदी राज्य स्थापित करने की चेष्टा की। इतिहास के बाद के अध्याय में जब सेल्युकिड शक्तियों के ह्रास और लेवांट में रोमन सेनाओं के आगमन के बीच का अन्त:काल था, यहूदियों ने समझा कि मेकाबियों की विजय है, फिलस्तीन के यहूदी इस लौकिक विजय की मृगतृष्णा से इतने प्रभावित हो गये कि वे इस पवित्र परम्परा को त्याग देने के लिए तैयार हो गये थे कि नये राज्य का संस्थापक कोई दाऊद का वंशज ही होगा, जैसा ड्युटेरोसाया ने चार सौ साल पहले सोचा था।

दुर्बल सिल्युकिडों के विरुद्ध जो भी चाहे हो सकता था, किन्तु यहूदी रोम का सामना कैसे कर सकते जब वह अपनी यौवनावस्था में था। इसका उत्तर इड्युमिया के अधिनायक हेरोर को दिन के समान स्पष्ट था। वह यह नहीं भूला था कि रोम की कृपा से फिलस्तीन का शासक है और जब तक वह राज करता था, उसने अपनी प्रजाओं को उनकी मूर्खता के प्रतिशोध से रक्षा करने की तरकीब निकाल ली थी। परन्तु इसके विपरीत कि प्रजा कल्याणप्रद राजनीतिक शिक्षा देने के लिए अनुगृहीत होती, उन्होंने उसे क्षमा नहीं किया और ज्योंही उसका बलशाली हाथ हटा, वे अपनी विपत्ति की ओर दौड़ पड़े। फिर भी रोम का केवल एक प्रदर्शन पर्याप्त नहीं

हुआ। सन् ६६–६७ के भीषण अनुभव से फिर विपत्ति को बुलाने में ११५–१७ में वे नहीं चूके और फिर १३२–५ ई० में विनाश का आवाहन किया। छ सौ वर्षों में यहूदियों ने सीखा कि इस प्रकार का भविष्यवाद सफल नहीं हो सकता।

यदि यहूदियों की केवल इतनी कथा होती तो इसमें कोई रस नहीं था। यह केवल आधी कहानी है और भी कम महत्त्व वाली आधी। पूरी कथा यह है कि जहाँ कुछ यहूदियों ने न कुछ सीखा, न कुछ भूले, दूसरे यहूदियों ने बूरबोनों की भाँति, और कुछ पहले वाले यहूदियों की भाँति मनोवृत्ति बदल जाने के कारण अथवा कुछ आत्मिक ज्ञान के कारण जो उन्हें कटु अनुभव के कारण हुआ था, अपनी सम्पत्ति को दूसरे स्थानों में रखा। भविष्यवाद के खोखलेपन की अनुभूति के साथ-साथ उन्हें महान् ज्ञान यह भी हुआ कि ईश्वर के राज्य का अस्तित्व है। और शतियों से उनको यह दोनों अनुभव साथ-साथ हो रहे हैं—एक नकारात्मक और दूसरा स्वीकारात्मक। उन्होंने कल्पना की थी कि नये लौकिक राष्ट्र का संस्थापक शरीरी राजा होगा और वह ऐसा होगा जिसका वंश चलेगा। परन्तु इस राज्य संस्थापक के लिए जिस पदवी की भविष्यवाणी की गयी थी, और जेरूब-बबेल से लेकर बार-कोकाबा तक प्रत्येक दावेदार को जिस पदवी से घोषित किया गया वह मालिक (राजा) नहीं था, मसीहा था–अर्थात् 'ईश्वर से दैवी अधिकार प्राप्त।' इस प्रकार यहूदियों का देवता आरम्भ से यहूदियों की आशा से संबद्ध था, चाहे यह आशा परोक्ष में ही क्यों न रही हो। और लौकिक रूप निर्दयतापूर्वक लोप हो गया और सारे अन्तरिक्ष में ईश्वरी रूप व्याप्त हो गया।

किसी देवता को अपनी सहायता के लिए बुलाना कोई असाधारण बात नहीं है। यह धर्म के ही समान पुरानी प्रथा है कि किसी दुर्जेय कार्य के आरम्भ करने के पहले रक्षक देवता का आवाहन किया जाता है। नया मोड़ 'मसीहा' की पदवी के अर्थ में जो व्यक्त होता है नहीं था, कि जनता के मानवी सहायक को देवता का बल प्राप्त है। जो नयी बात थी और महत्त्व की, वह संरक्षक देवता के कार्य और शक्ति की प्रकृति में थी। विशेष दृष्टि से येहोवा तो यहूदियों का अपना देवता था ही, एक-दूसरे और विस्तृत रूप में वह ईश्वर का अधिकारी चित्रित किया गया। उत्तर-बन्दी युग के यहूदी भविष्यवादी साधारण राजनीतिक प्रयास में नहीं लगे थे। उन्होंने ऐसा कार्य करना ठाना था जो मनुष्य के लिए सम्भव नहीं था, क्योंकि वे अपनी छोटी स्थानीय स्वतन्त्रता को भी अक्षुण्ण नहीं रख सके, वे विश्व के स्वामी कैसे हो सकते थे? इस महान् कार्य में सफल होने के लिए कोई साधारण स्थानीय देवता उनका दैवी रक्षक नहीं हो सकता था, ऐसा देवता चाहिए था कि जो उनकी आकांक्षाओं के अनुकूल हो।

एक बार इसकी अनुभूति हो गयी तो अभी तक जो नाटक धर्मों के इतिहास में 'साधारण ढंग' का था, आत्मिक आयाम में उसका उत्कर्ष हो जाता है। मानवी सहायक की भूमिका गौण हो जाती है और दृश्य में ईश्वर का प्रभुत्व हो जाता है। मानवी मसीहा पर्याप्त नहीं होता। ईश्वर को स्वयं रक्षक की भूमिका में उतरना होगा। उसके जन का सहायक धरती पर स्वयं ईश्वर का पुत्र होगा।

यदि कोई आधुनिक पश्चिमी मनोविश्लेषक ऊपर की पंक्तियों को पढ़ता रहा होगा तो अपनी भौंहों को सिकोड़ेगा और कहेगा—'आपने जिसे उदात्त आध्यात्मिक अन्वेषण बताया है, वह और कुछ नहीं है, केवल शिशुओं की वास्तविकता से पलायन करने की इच्छा के प्रति समर्पण है, जो

मनुष्य के मन का सदा से प्रलोभन रहा है। आपने यह बताया है कि किस प्रकार कुछ दुखी लोग, जो मूर्खतावश ऐसी वस्तुओं को पाने का लक्ष्य बनाते हैं जो उन्हें कभी मिल नहीं सकती, अपने असम्भव कार्य के असह्य बोझ को दूसरे स्थानापन्न लोगों के कन्धे पर रख देते हैं। पहले वे किसी मानवी सहायक को चुनते हैं और जब उससे काम नहीं चलता, तब ऐसा कोई मानवी सहायक, जिसे काल्पनिक दैवी शक्ति का सहारा होता है और अन्त में ये मूर्ख हताश होकर अपनी रक्षा के लिए किसी काल्पनिक देवता का आवाहन करते हैं जो स्वयं इनका कार्य कर देगा। जो मनोविज्ञान से अभिज्ञ. हैं उसके लिए ऐसी मूर्ख की पलायनवादी कथा परिचित और दुखदायी है।'

इस आलोचना के उत्तर में हम इस बात से सहमत हैं कि उन सांसारिक कार्यों को करने के लिए, जिनको हमने चुना है और नहीं कर सके, दैवी शक्ति का आवाहन करना बच्चों का-सा काम है। यह प्रार्थना कि मेरी इच्छा पूर्ण हो, स्वयं इसकी निरर्थकता का प्रमाण है। इस विषय में यहूदियों की जो बात है, ऐसे यहूदी भविष्यवादियों का दल था, उन्हें यह विश्वास था कि येहोवा अपने उपासकों के स्वयं निर्धारित सांसारिक कार्यों को अपने ऊपर ले लेगा, और जैसा हमने देखा इन यहूदी भविष्यवादियों का दुखद अन्त हुआ। उन उत्साहियों की नाटकीय ढंग से आत्म-हत्या हो गयी जिन्होंने अपार सेना का सामना इस भ्रम से किया कि युद्ध के दिन समूह का स्वामी स्वयं समूह के बराबर होगा। इसी के साथ विरागी दल था, जो इसी भ्रमपूर्ण आधार पर विरोध में तर्क कर रहा था। उनका कहना था कि हमें किसी भी ऐसी बात में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जिसका वारा-न्यारा हमने ईश्वर के सुपुर्द कर दिया है कि यह उसका कार्य है। किन्तु दूसरी दिशाओं से दूसरे रूप में प्रतिक्रिया हुई। जोहन बेन एक्काई के दल की प्रतिक्रिया और ईसाई धर्म की प्रतिक्रिया। ये दोनों प्रतिक्रियाएँ नकारात्मक बात में तो विरागियों के समान थीं क्योंकि अहिंसावादी थीं, किन्तु विरागियों और उत्साहवादियों—दोनों से इनमें भेद था। महत्त्वपूर्ण निश्चयात्मक रूप में यह अन्तर था कि इन्होंने भविष्यवाद के पुराने सांसारिक स्वार्थों की ओर से मुँह मोड़ लिया था और अपनी संपदा को ऐसे ध्येय के लिए रखा जो मनुष्य नहीं ईश्वर के लिए है। और उसके लिए आत्मिक क्षेत्र में ही कार्य किया जा सकता है जिसमें ईश्वर सहायक नहीं, कार्यों का निदेशक होता है।

यह बात महत्त्व की है। क्योंकि मनोविश्लेषक की उस आलोचना का उत्तर इसमें मिल जाता है जो उसने विरागियों और उत्साहियों दोनों के विरुद्ध की है। ईश्वर के आवाहनकी, शैशव का पलायन कहकर भर्त्सना नहीं की जा सकती यदि मानवी अभिनेता अपनी शक्ति को (लिबिडो) सांसारिक ध्येय से हटा लेता है। इसके विपरीत यदि आवाहन से इतना महान् और इतना सुन्दर आध्यात्मिक परिणाम निकलता है जैसा कि वह आत्मा, जो आवाहन करती है, चाहती है, तो यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि जिस शक्ति को विश्वास करके पुकारा जाता है वह विश्वास केवल कपोल-कल्पना नहीं है। हम इस बात को मान लेंगे कि यह आध्यात्मिक पुनर्निर्धारण एक सच्चे ईश्वर का आविष्कार था। और मनुष्य ने सांसारिक भविष्य के सम्बन्ध की जो कल्पना की थी उसका स्थान दूसरे संसार की ईश्वरीय अभिव्यक्ति ने ले ली है। सांसारिक आशा जब भग्न हो गयी, तब हमें ऐसी वास्तविकता का ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ जो मनुष्य के बनाये रंगमंच के दृश्यों के पीछे सदा से रहा। मन्दिर का पर्दा दो टुकड़ों में फट गया।

अब हम इस महान् आध्यात्मिक पुर्ननिर्धारण की उपलब्धि में जो क्रम हैं उन पर कुछ विचार करेंगे। उसका मूल यह है कि जो सांसारिक दृश्य पहले मानवी अभिनेताओं का मंच समझा जाता था, जिसमें ईश्वर सहायक था या नहीं, वह अब ईश्वर के राज के क्रमशः आत्मज्ञान का क्षेत्र हो गया। जैसा कि समझा जा सकता है, पहले यह नया विचार पुरानी भविष्यवादी संकल्पना से प्राप्त आवरण से ढका रहता है। इस पृष्ठभूमि के विपरीत 'ड्युटेरो-इसाया' ईश्वर के राज्य का चित्र बनाता है, जो स्वर्गिम तो है किन्तु उसके साथ लौकिक राज्य की कल्पना भी है, एक अकेमीनियाई साम्राज्य की कल्पना जिसमें उसके रक्षक-नायक ने मूसा को छोड़कर जरूशलेम को अपनी राजधानी बनाया है और जो परशियन यहूदी का राजकुल है। क्योंकि येहोवा ने उसे यह आत्मज्ञान दिया है कि (अहूर-मजदा नहीं) मैंने खुसरों (साइरस) को संसार के विजय करने में सहायता दी है। इस दिवा-स्वप्न में 'ड्युटेरो-इसाया', मनोविश्लेषक की आलोचना के सम्मुख उग्र रूप में उपस्थित होता है। इस पैगम्बर की संकल्पना सांसारिक भविष्यवादी के विचारों से इस बात में आगे बढ़ जाती है कि मनुष्य तथा प्रकृति दोनों चमत्कारी परमानन्द का अनुभव कर रहे हैं। उसका ईश्वर का राज और कुछ नहीं है लौकिक स्वर्ग है, एडेन उद्यान जो अद्यतन बना दिया गया है।

दूसरा क्रम आता है जब यह लौकिक स्वर्ग केवल अस्थायी दशा समझी जाती है, जो शायद एक हजार साल[1] तक (मिलेनियम) रहे किन्तु निर्धारित समय के बाद संसार के साथ-साथ उसका बीत जाना निश्चित है। किन्तु यदि यह संसार समाप्त होने वाला है और उसके स्थान पर आगे का संसार आने वाला है, तब ईश्वर का राज्य उसी दूसरे संसार में होगा और जो राजा इस एक हजार साल तक शासन करेगा, वह ईश्वर नहीं होगा केवल उसका प्रतिनिधि या मसीहा होगा। यह भी स्पष्ट है कि दूसरे संसार के आविर्भूत होने के पहले इस संसार में चमत्कारी मिलेनियम की संकल्पना, उन विचारों में समझौता करने का असम्भव प्रयत्न है, जो एक दूसरे से भिन्न ही नहीं, एक दूसरे के विरोधी हैं। इनमें पहला विचार ड्युटेरो-इसाया का है जो कहता है कि भविष्यवादी लौकिक राज्य में चत्मकारी 'सुधार' होंगे। दूसरा विचार यह है कि ईश्वर का राज्य समय से परे है और विभिन्न आध्यात्मिक आयामों में है। वह हमारे लौकिक जीवन में प्रवेश करता है और उसमें परिवर्तन कर सकता है। भविष्यवाद की मृगतृष्णा से रूप-परिवर्तन के दृश्य की ओर कठोर आध्यात्मिक चढ़ाई करने के लिए मिलेनियम की प्रलय वाली योजना आवश्यक मानसिक सीढ़ी हो सकती है, किन्तु जब ऊँचाई पर पहुँच गये तब सीढ़ी गिरा दी जा सकती है।

'फरीसी धर्मात्माओं ने हैसमोनियनों के शासन में इस संसार से स्वर्ग की ओर और भविष्य की ओर देखना सीख लिया था, और हेरोद के शासन में, विगत पीढ़ियों में जो कुछ राष्ट्रीय भावनाओं की धाराएँ थीं वे बड़ी शक्ति से अन्धी दीवार से टकरा रही थीं और उन्हें जाने के लिए फरीसियों को दिखाये हुए मार्ग के अतिरिक्त कोई रास्ता न था। उसी जाति में जो कठोर

---

[1] इसी कारण साधारणतः 'मिलेनियम' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अभिप्राय है 'स्वर्ण युग।'

आवश्यकता के बोझ से दवी हुई थी, यह अलौकिक विश्वास, मसीहाई आशाएँ जिनका पोषण फरीसी लोगों में हुआ था; नयी शक्ति से प्रसारित और प्रचारित हुई। फरीसी धर्म की जो पुस्तकें उपलब्ध हैं—एनक, द साम्स आव सालोमन, दि अजम्तशन आव मोजेज—हमें बताती हैं कि इनके लेखकों के मन में क्या विचार थे। किन्तु वे उन बातों को नहीं बता सकती थीं जो हम अपने धर्म-ग्रन्थों में पाते हैं। अर्थात् किस प्रकार ये विचार लोगों में अच्छी तरह घुल-मिल गये। किस प्रकार आने वाले सम्राट्, 'अभिषिक्त सम्राट्,' 'दाऊद के पुत्र', किस प्रकार पुनर्जीवन की संकल्पना, दूसरा संसार, उन साधारण जातियों की साधारण मानसिक फरनिचर के अंग थे जिन पर सम्राट् के शब्द टँगे हुए थे····किन्तु····जिस ईसा को ईसाई पूजते थे इनमें से किसी रूप का अंग नहीं था जो इन भविष्यत् के विचारों में उदय हुआ था। उसमें सारे पुराने आदर्श, सारी पुरानी आशा मिल-जुलकर एक हो गयी थीं।”

(१०) विराग और रूपान्तरण (डिटेचमेन्ट एण्ड ट्रान्सफिगरेशन)

भविष्यवाद और पुरातनवाद की समीक्षा से हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि दोनों असफल हो जाते हैं क्योंकि वे सांसारिक समय-सरिता के ऊपर उठे बिना वर्तमान से पलायन करने की चेष्टा करते हैं। हमने देखा है कि भविष्यवाद के दिवालियेपन से उस रहस्य का आभास मिल जाता है जिसे हम रूपान्तरण कहते हैं, एक महान् ऐतिहासिक उदाहरण इस प्रकार का है भी। पुरातनवाद की विफलता द्वारा भी आध्यात्मिक आविष्कार सफलतापूर्वक हो सकता है। सम्भव है कि इस वात की सच्चाई का ज्ञान कि पुरातनवाद पर्याप्त नहीं है, ऐसी चुनौती हो सकती है कि विफल पुरातनवादी विपरीत दिशा में भविष्यवाद की ढाल पर फिसल जाय। इसके विकल्प में ऐसा भी हो सकता है कि किसी नयी आध्यात्मिक दिशा में मुड़कर वह इस चुनौती का सामना स्वीकार करे। और उसकी सबसे कम श्रम-साध्य चेष्टा यह हो सकती है कि वह अपनी कुदान को, जो विनाश की ओर ले जा रही है, ऐसी दिशा में बदल दे कि धरती पर गिरने की समस्या ही समाप्त हो जाय और वह सदा के लिए धरती को त्याग ही दे। यही विराग का दर्शन है, जिसे हमने विशेष टिप्पणी के बिना यहूदी विरागियों के उदाहरण में बताया है।

पश्चिमी अनुसन्धानकर्ताओं के लिए इस दर्शन की सबसे परिचित व्याख्या 'लीव्ज फ्राम एस्टोइक फिलासोफर्स नोट बुक' से प्राप्त होती है जो एपिक्टिटस तथा मारकस आरीलियस से हमें मिली है। किन्तु यदि हम विराग के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहें तो हमें हेलेनी को छोड़कर भारतीय मार्गदर्शन की ओर जल्दी या देर में जाना पड़ेगा। जीनोकके शिष्य बहुत दूर तक इस विषय में गये हैं किन्तु गौतम के शिष्यों को यह साहस हुआ कि विराग के अन्तिम तर्कसम्मत परिणाम आत्मोत्सर्ग तक ये पहुँचे। बौद्धिक उपलब्धि की दृष्टि से यह प्रभावशाली है, नैतिक उपलब्धि की दृष्टि से यह दुर्दम्य है। किन्तु इसका नैतिक परिणाम विकल कर देने वाला है, क्योंकि पूर्ण विराग दया को समाप्त कर देता है और इस कारण प्रेम को भी, उसी निष्ठुरता से जिस प्रकार वह सब अशिव आवेगों को त्याग देता है।

---

१. ई० बिवान : जेरुसलेम अंडर हाई प्रीस्ट्स, पृ० १५८ तथा १६२।

'उस मनुष्य को जिसकी गति भी प्रेम और इच्छा से रिक्त है, जिसके कर्म ज्ञान की अग्नि में भस्म हो गये हैं, उसी को बुद्धिमान् लोग विद्वान् कहते हैं। विद्वान् उनके लिए शोक नहीं करते जो मर गये हैं न उनके लिए जो जीवित हैं।'[1]

भारतीय ऋषियों के मन में हृदय की यही विरक्ति दर्शन का कठोर मर्म है। हेलेनी दार्शनिक भी स्वतन्त्र रूप से इसी परिणाम पर पहुँचे थे। एपिक्टिटस अपने शिष्यों को चेतनावनी देता है : 'यदि तुम अपने बच्चे को चूमते हो···तो इस कार्य में अपनी कल्पना को बिना प्रतिबन्ध के मत व्यवहार में लाओ और अपने आवेग को निरंकुश मत छोड़ दो। सच तो यह है कि इसमें कोई हानि नहीं है यदि जब चूमते हो तो बच्चे के कान में कह दो 'कल तुम मर जाओगे'[2] और सेनेका भी यह कहने में संकोच नहीं करता कि—'दया मानसिक बीमारी है जो दूसरों के दुखों का दृश्य देखकर उमड़ती है, दूसरे शब्दों में उसकी परिभाषा यह कर सकते हैं कि यह निम्न-कोटि की आत्माओं का संक्रामक रोग है जो दूसरों को दुख में देखकर पकड़ लेता है, जब रोगी यह समझता है कि यह दुख उसे नहीं होना चाहिए। बुद्धिमान् लोग इस प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रसित नहीं होते।'[3]

तार्किक दृष्टि से यह परिणाम अनिवार्य है किन्तु साथ-ही-साथ नैतिक दृष्टि से असह्य है। विराग का दर्शन अपने ही कारण पराजित हो जाता है क्योंकि वह हममें जुगुप्सा उत्पन्न करता है। जिस समस्या का समाधान करने वह चलता है, उसका समाधान वह कर नहीं पाता क्योंकि वह केवल मस्तिष्क से परामर्श करता है और हृदय का त्याग कर देता है, इस प्रकार इन दोनों को अलग कर देता है जिन्हें ईश्वर ने साथ रखा है। विराग का यह दर्शन रूपान्तरण के रहस्य से ढाँकना होगा।

जब हम विघटन की उन्मुक्त राह के चौथे और अन्तिम मोड़ पर चलने को कमर कसते हैं, अस्वीकृति और उपहास की चिल्लाहट हमारे कानों में आती है। किन्तु हमें भयभीत नहीं होना चाहिए। क्योंकि ये ऐसे दार्शनिकों तथा भविष्यवादियों की ओर से आती हैं जो विराग की 'बौद्धिक दृष्टि' से विचार करने वाले हैं या राजनीतिक और आर्थिक भौतिकवाद के उत्साही लोग हैं, और हम पहले ही देख चुके हैं कि जो कोई भी सत्य हो, ये मिथ्या हैं।

'ईश्वर ने बुद्धिमानों को भ्रम में डालने के लिए मूर्खतापूर्ण वस्तुएँ संसार में बनायी हैं, और ईश्वर ने शक्तिशाली वस्तुओं को भ्रान्तिजनक बनाने के लिए दुर्बल वस्तुओं को बनाया है।'[4]

जो सत्यता हम व्यावहारिक ज्ञान से प्राप्त कर सकते हैं, उसे अन्तर्ज्ञान से भी प्राप्त कर सकते हैं। और उसके प्रकाश में तथा उसकी शक्ति से हम भविष्यवादियों तथा दार्शनिकों की अस्वीकृति का, ऐसे पथ-प्रदर्शकों के चरण चिह्नों से हटकर, वीरतापूर्वक सामना कर सकते हैं जो न ब्रार कोकाबा हैं न, गौतम हैं।

---

[1] भगवद्गीता, ४,१९ तथा २,११—(वारनट का अनुवाद)

[2] एपिक्टिटस : डिज़रटेशन्स, पुस्तक ३, अध्याय २४, ८५–८।

[3] सेनेका : डी० क्लेमेन्शिया, पुस्तक २, अध्याय ५, ४–५।

[4] कोर—१, २७।

'यहूदियों को एक चिह्न की आवश्यकता है और यूनानी बुद्धिवादी चाहते हैं, किन्तु हम शूली पर चढ़े ईसा का उपदेश करते हैं, जो यहूदियों के लिए रोड़ा है और यूनानियों के लिए मूर्खता।'[१]

शूली पर चढ़े हुए ईसा भविष्यवादियों के लिए क्यों उलझन है, जो अपने लौकिक कार्यों के लिए ईश्वरीय सहायता का कोई भी चिह्न प्राप्त करने में सफल नहीं हुए ? और क्यों वह उन दार्शनिकों के लिए मूर्खता है, जिन्होंने कभी वह बुद्धिमत्ता नहीं पायी जिसे वे खोजते हैं ?

शूली पर चढ़े ईसा दार्शनिक को इसलिए मूर्ख हैं क्योंकि दार्शनिक का उद्देश्य विराग है और वे इस बात को नहीं समझते कि कोई समझदार आदमी जब एक बार उस अवरुद्ध लक्ष्य पर पहुँच गया, तब इतना पतित कैसे हो सकता है कि उसे छोड़ दे जिसे इतने कठोर परिश्रम से उसने प्राप्त किया था। इसमें कौन बुद्धिमानी है कि पुनरागमन के लिए अलग हो जाय। और प्रबलतर युक्ति से—ऐसे ईश्वर की कल्पना से भ्रमित हो जायगा, जिसे इस असन्तोषजनक संसार से अलग हो जाने के लिए स्वयं कष्ट भी नहीं करना पड़ा क्योंकि वह अपने ईश्वरत्व के गुण के कारण उससे पूर्णतः स्वतन्त्र है फिर भी वह जान-बूझकर संसार में आता है और उन लोगों के लिए, जो उसकी ईश्वरीय प्रकृति में बहुत निम्नकोटि के हैं, अधिक-से-अधिक उस यातना को सहता है, जो ईश्वर या मनुष्य भोग सकता है। 'ईश्वर संसार को इतना प्यार करता है कि उसने अपने पैदा किये एक ही लड़के को उसे दे दिया।' विराग ढूंढने वाले के विचार से यह मूर्खता की पराकाष्ठा है।

'यदि पूर्ण अन्त में शान्ति है तो बुद्धिमान् मनुष्य का हृदय भय और इच्छाओं से स्वतन्त्र करने से क्या लाभ है, जिनके कारण वह बाहरी बातों पर निर्भर रहता है, यदि सैकड़ों रास्ते तुरत खोल दिये जायँ जिनके द्वारा प्रेम और दया से उत्पन्न पीड़ा और अशान्ति उसके हृदय में प्रवाहित हो और इस प्रकार उसका हृदय चारों ओर के मनुष्यों के पीड़ित हृदयों से सम्बन्ध स्थापित कर ले तो क्या लाभ होगा। सैकड़ों रास्ते ? एक छेद सारी पीड़ा की धारा से हृदय को भर देने के लिए पर्याप्त है। किसी जहाज में एक छेद छोड़ दीजिए, सारा सागर उसमें भर जायगा। मैं समझता हूँ कि स्टोइक दार्शनिक ने पूरी सत्यता का अनुभव किया था जब उन्होंने कहा कि यदि थोड़ा भी प्रेम और करुणा को हृदय में जाने दिया तो ऐसी वस्तु का प्रवेश कराते हो जिसकी मात्रा पर नियन्त्रण नहीं हो सकता और आन्तरिक शान्ति की आशा फिर छोड़ देनी होगी'··'ईसाइयों के आदर्श व्यक्ति को स्टोइक कभी बुद्धिमान् मनुष्य का उदाहरण नहीं मानेंगे।'[२]

भविष्यवाद की राह में शूली की घटना बड़ी अड़चन है क्योंकि शूली पर की मृत्यु ईसा के इस कथन की पुष्टि करती है कि मेरा राज्य इस संसार का नहीं है। भविष्यवादी को जिस चिह्न की आवश्यकता है वह ऐसे राज्य की घोषणा है जिसमें सांसारिक सफलता होनी चाहिए, नहीं तो वह बेकार है। उसके हिसाब से मसीहा का काम वह होना चाहिए जो ड्युटेरो-इसाया ने खुसरो को सौंपा था और बाद के यहूदी भविष्यवादियों ने उस समय जूडास या थ्युडास को

---

[१] कोर—१, २२–३।

[२] ई० आर० बेवन : स्टोइक्स एण्ड स्केप्टिक्स, पृ० ६९–७०।

सौंपा था, कोई जेरूब-बबेल या साइमन मक्काबियस या साइमन बार-कोकावा को जों सौंपा गया था ।

'ईश्वर खुसुरो से, जो उसका अभिषिक्त सम्राट् है और जिसका दाहिना हाथ उसने पकड़ा है, कहता है, 'मैं तुम्हारे सामने जाऊँगा और टेढ़े स्थानों को सीधा करूँगा । मैं पीतल के फाटकों को तोड़ डालूंगा, और लोहे के छड़ों को काट डालूंगा, अन्धकार में जो खजाने रखे हैं तुम्हें मैं उनको दूंगा और छिपी सम्पत्ति मैं तुम्हारे हवाले करूँगा ।'[१]

मसीहा की यह प्रामाणिक भविष्यवादी संकल्पना का, उस वन्दी के शब्दों से कैसे मेल बैठ सकता है जिसने पाइलट से कहा था, 'तुम कहते हो कि मैं सम्राट् हूँ' और तब अपने उस राजकीय मिशन का विलक्षण विवरण बताया जिसके लिए उसका दावा था कि ईश्वर ने मुझे भेजा है । 'इसलिए पैदा हुआ था, और इस बात के लिए मैं संसार में आया कि सचाई की बात कहूँ ।'

इन व्यग्र कर देने वाली बातों पर सम्भवतः ध्यान न दिया जाय परन्तु अपराधी की मृत्यु का निराकरण नहीं हो सकता और न उसे संशोधित किया जा सकता है और पीटर की कठोर परीक्षा से पता चलता है कि यह अड़चन कितनी दारुण थी ।

ईश्वर का राज्य, ईसा जिसका सम्राट् है, किसी ऐसे राज्य से नहीं नापा जा सकता जिसे ऐसे मसीहा ने संस्थापित किया हो जिसकी कल्पना अकामीनियाई विश्व विजेता ने की हो जो यहूदी बन गया हो और भविष्य में जिसकी कल्पना की हो । जहाँ तक यह महान् देवता समय-आयाम के अन्दर आता है, वह भविष्य का स्वप्न नहीं है, आध्यात्मिक वास्तविकता है जो वर्तमान में व्याप्त है । यदि हम पूछें कि पृथ्वी पर किस प्रकार उसकी इच्छा की पूर्ति होती है, जैसे स्वर्ग में होती है, तो उत्तर धर्मशास्त्र की तकनीकी भाषा में दिया गया है । वह यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक है, इसलिए इस संसार में और उसमें रहने वाली प्रत्येक आत्मा में वह व्याप्त हो सकता है और स्वर्ग में भी उसका अनुभवातीत अस्तित्व है । ईसाई धर्म की ईश्वर की संकल्पना में उसका अनुभवातीत रूप ईश्वर-पिता का है, और उसका व्याप्त रूप पवित्र आत्मा का है, किन्तु ईसाई धर्म का सबसे विशिष्ट और प्रामाणिक लक्षण यह है कि ईश्वर द्वैत नहीं है, त्रिगुट में एक है । और उसके 'ईश्वर-पुत्र' के रूप में एक व्यक्ति में दोनों रूप मिले हुए हैं । और इस रहस्य के कारण मनुष्य का हृदय उसके निकट पहुँच जाता है किन्तु मनुष्य की बुद्धि से वह परे है । ईसामसीह के व्यक्ति के रूप में—जो ईश्वर भी है और मानव भी, ईश्वरी समाज और सांसारिक समाज में वह समान सदस्य है, जो इस संसार में सर्वहारा की कोटि में जन्म लेता है, अपराधी की मौत मरता है, जब कि दूसरे संसार में वह ईश्वर के राज्य का सम्राट् है, वह सम्राट् जो स्वयं ईश्वर है ।

किन्तु ये दोनों प्रकृतियाँ—एक ईश्वरीय और दूसरी मानवी—एक व्यक्ति में रह सकती है ? ईसाई धर्म पिताओं ने हेलेनी दार्शनिकों की तकनीकी भाषा में इसका उत्तर विभिन्न मतों को बताकर दिया है । किन्तु केवल यही दार्शनिक ढंग इसका उत्तर पाने का नहीं है । हम दूसरी अभिधारणा से आरम्भ कर सकते हैं कि ईश्वरीय प्रकृति जहाँ तक वह हमारे लिए ग्राह्य

---

[१] इसाया, १४, १–३ ।

है, कुछ-कुछ हमारी अपनी प्रकृति से मिलती हो। और यदि हम एक विशेष आध्यात्मिक शक्ति की ओर देखें, जिसे हम जानते हैं कि हममें है और जिसे हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि ईश्वर में भी है—क्योंकि यदि यह शक्ति ईश्वर में न होती और हममें होती, तो ईश्वर हमसे हीन होता—तो वह पहली शक्ति जिसे हम मनुष्य और ईश्वर में समान रूप से पाते हैं, और जिसे दार्शनिक नष्ट करना चाहते हैं, प्रेम की शक्ति है। यह पत्थर जिसका जीनो और गौतम ने तिरस्कार कर दिया नयी बाइबिल के मन्दिर की कोण-शिला का शीर्ष है।

(११) पुनर्जन्म—पुनरागमन

हमने जीवन के चार प्रयोगात्मक ढंगों का सर्वेक्षण पूरा किया है जो ऐसे प्रयत्न हो सकते हैं जो किसी विकासोन्मुख सभ्यता को साधारण और सरल जीवन के व्यावहारिक विकल्प भी हो सकते हैं। जब सरल जीवन की यह राह निर्दयतापूर्वक सामाजिक पतन के उथल-पुथल के कारण बन्द हो जाती है, तब इन राहों में इधर-उधर गलियाँ मिलती हैं जिनकी ओर समाज मुड़ सकता है। हमने यह भी देखा कि इनमें तीन बन्द गलियाँ हैं और केवल एक जिसे हमने रूपान्तरण कहा है और ईसाई धर्म के उदाहरण द्वारा बताया है, वही आगे ले जा सकती है। अब हम उस संकल्पना की ओर लौटते हैं जिसका प्रयोग हमने इस अध्ययन के आरम्भ में किया था। उसके अनुसार हम कह सकते हैं कि भविष्यवाद और पुरातनवाद दोनों के विपरीत रूपान्तर और विराग दोनों कार्यक्षेत्र के स्थानान्तरण के उदाहरण हैं, सम्पूर्ण से सूक्ष्म की ओर जो 'अलौकिकता' (इथीरियलाइजेशन) के आध्यात्मिक स्वरूप में प्रकट होता है। यदि हमारा विश्वास ठीक है कि रूपान्तरता और अलौकिकता विकास के चिह्न हैं और मानवी विकास का प्रत्येक उदाहरण में सामाजिक और वैयक्तिक पक्ष होगा और यदि हमें यह मानने को भी बाध्य होना पड़े कि जिस समाज में विराग और रूपान्तर की क्रिया होती है वह उन समाजों में नहीं हैं जिन्हें हमने सभ्य समाज कहा है—यह विचार करके कि उस प्रकार का पतनोन्मुख समाज विनाश का नगर है, जहाँ ये दोनों क्रियाएँ पलायन के प्रयत्न हैं—हम इसी परिणाम पर पहुँच सकते हैं विराग और रूपान्तर के आन्दोलन—किसी दूसरे समाज या समाजों में पाये जाते हैं।

उस समाज का वर्णन करने में जिसमें ये दोनों क्रियाएँ चलती हैं हम 'एक' का प्रयोग करें कि 'दो' का? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हम दूसरा प्रश्न पूछेंगे। सामाजिक विकास के शब्दों में विराग और रूपान्तर में क्या अन्तर है? इसका उत्तर स्पष्ट है कि विराग अलग हो जाने की क्रिया है और रूपान्तर अलगाव और पुनरागमन की संयुक्त क्रिया है। इस संयुक्त क्रिया का उदाहरण ईसा की जीवनी है जो गैलिली में धर्म प्रचार के पहले अन्तर्धान हो गये थे, सन्त पाल के जीवन का भी उदाहरण है, जो अपने महत्त्वपूर्ण यात्रा के पहले जिसमें वे प्रादेशिक सीरियाई जन्मभूमि से हेलेनी संसार के केन्द्र में नया धर्म ले गये, तीन साल तक अरब में रहे। यदि ईसाई धर्म के संस्थापक और उसके मिशनरी शिष्य विराग के दर्शन को मानने वाले होते तो इस संसार के अपने शेष जीवन को जंगल में ही बिताते। विराग के दर्शन की सीमा इस बात में है कि वह यह नहीं देखता कि निर्वाण आत्मा की यात्रा का अन्त नहीं है, बल्कि वह रास्ते का एक स्टेशन है। अन्त ईश्वर का राज्य है और यह सर्वव्यापी चाहता है कि उसके नागरिक यहाँ इस संसार में उसकी सेवा करें।

चीनी शब्दों में, जिनका प्रयोग हमने इस अध्ययन के आरम्भ में प्रयोग किया था, किसी

सभ्यता के विघटन का पूरा चक्र यिन और यांग के एक दूसरे के बाद आवागमन से होता है। पहली लय में विनाशकार यांग क्रिया (विघटन) से यिन अवस्था (विराग) आती है। किन्तु लय यहाँ शान्त नहीं हो जाती। वह फिर सर्जनात्मक यांग क्रिया (रूपान्तर) की ओर चलती है। इस विशेष रूप में यिन और यांग की यह दोहरी गति अलगाव और पुनरागमन की साधारण क्रिया है जिसे हमने इस अध्ययन के आरम्भ में प्रयोग किया था। और उस समय हमने इसे भेद और पुर्नजन्म कहा था।

पुनर्जन्म के लिए यूनानी शब्द 'पैलिजेनेशिया' है। इसका अर्थ है 'बार-बार जन्म होना, और इस शब्द में अनेकार्थता है। क्या इसका अभिप्राय यह है कि ऐसी वस्तु का फिर से जन्म जिसका पहले जन्म हो चुका है : जैसे किसी असाध्य विनष्ट सभ्यता के स्थान पर उसी जाति की दूसरी सभ्यता का आगमन ? हमारा यह अभिप्राय नहीं हो सकता क्योंकि यह रूपान्तर का उद्देश्य नहीं है। यह उस क्रिया का उद्देश्य है जो समय-सरिता में सीमित है। वह न पुरातनवाद है न भविष्यवाद, जिस रूप में हम इन शब्दों का प्रयोग करते आये हैं वह क्रिया एक ही श्रृंखला की है। इस अर्थ में पुनर्जन्म अस्तित्व का चक्र होगा, जिसे बौद्ध दर्शन स्वीकार करता है और अलग होकर निर्वाण को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। परन्तु पुनर्जन्म का अर्थ निर्वाण प्राप्त करना नहीं हो सकता क्योंकि जिस प्रक्रिया से यह नकारात्मक स्थिति आती है उसे हम 'जन्म' नहीं कह सकते।

किन्तु यदि पुनर्जन्म का अर्थ निर्वाण नहीं है तो उसका यही अर्थ हो सकता है कि एक पारलौकिक स्थिति प्राप्त हो जिसे जन्म का रूपक दिया जा सकता है, क्योंकि यह जीवन की निश्चित स्थिति है, यद्यपि इस संसार के जीवन से उसका आध्यात्मिक आयाम ऊँचा है। यही वह पुनर्जन्म है जिसके बारे में ईसा ने निकोडेमस से कहा था :

'जबतक कि मनुष्य फिर से पैदा न हो, ईश्वर का राज्य वह नहीं देख सकता।'

और जिसके सम्बन्ध में दूसरे स्थान पर अपने शारीरिक जन्म में कहता है—'मैं इसलिए आया हूँ कि लोगों को जीवन प्राप्त हो, और उन्हें प्रचुर मात्रा में मिले।'

जिस देवगीत को एक बार कविता की देवी ने एसक्रा के चरवाहे हेसिओद को सुनाया था, जब हेलेनी सभ्यता का फूल खिल रहा था, उसकी प्रतिध्वनि दूसरे दैवी गीत में सुनायी पड़ी जिसे देवदूतों ने बैतलहम के चरवाहों को सुनाया था जब पतनोन्मुख हेलेनी सभ्यता अपने संकटकाल में अन्तिम पीड़ा झेल रही थी और जब उस पर सार्वभौम राज्य की मूर्छा आ रही थी। जिस जन्म का गीत देवदूत उस समय गा रहे थे वह यूनान के पुनर्जन्म का नहीं था, और न हेलेनी जाति के दूसरे समाजों के जन्म का। वह ईश्वर के राज्य के सम्राट् के स-शरीर जन्म का गीत था।

२०. विघटन होने वाले समाज और व्यक्तियों का सम्बन्ध

(१) सर्जनात्मक प्रतिभा त्राता के रूप में

सभ्यताओं और व्यक्तियों के सम्बन्ध की समस्या पर हमने इस अध्ययन में पहले विचार किया है और हम इस परिणाम पर पहुँचे कि जिस संस्था को हम समाज कहते हैं वह अनेक व्यक्तियों के समान कार्यों का क्षेत्र है, और यह भी, कि कार्य का स्रोत सदा व्यक्ति है जो एक दृष्टि से प्रतिभा-सम्पन्न अतिमानव है, कि प्रतिभा वाला व्यक्ति दूसरी जीवित आत्माओं की भाँति उन कार्यों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करता है जिसका प्रभाव उसके साथियों पर पड़ता है, कि किसी समाज में सर्जनात्मक व्यक्ति थोड़े अल्पसंख्यक होते हैं, प्रतिभाओं का कार्य साधारण आत्माओं को कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित करता है किन्तु साधारणतः दूसरे प्रकार से जो सामाजिक अभ्यास होता है और जिसमें अनुकरण करने की शक्ति का प्रयोग होता है। ये असर्जनात्मक साधारण जन होते हैं और 'यन्त्रवत्' विकासोन्मुख होते हैं। यह विकास वे अपनी प्रेरणा से नहीं कर सकते थे। इन परिणामों पर हम विकास का विश्लेषण करते हुए पहुँचे और साधारणतः किसी समाज की सब स्थितियों में समाज तथा व्यक्ति की यह क्रिया-प्रतिक्रिया ठीक-ठीक उतरती है। इन पारस्परिक क्रियाओं के ब्योरे में क्या अन्तर हमें मिलेगा जब हम उस समाज पर विचार करेंगे जिसका पतन हो चुका है और विघटन हो रहा है ?

वह सर्जनात्मक अल्पसंख्या जिसमें से विकास की स्थिति में सर्जनात्मक व्यक्तियों का आविर्भाव हुआ था, अब सर्जनात्मक नहीं रह जाती और 'सुषुप्त' हो जाती है किन्तु सर्वहारा का समाज-विच्छेद जो विघटन का प्रमुख चिह्न है, सर्जनात्मक व्यक्तियों द्वारा पूरा हो गया। इन सर्जनात्मक व्यक्तियों के लिए विरोध के संगठन को छोड़कर कोई कार्य करने की गुंजाइश नहीं रह जाती और यह असर्जनात्मक शक्तियों के लिए दुःस्वप्न की भाँति डरावना होता है। इस प्रकार विकास से विघटन के काल में सर्जनात्मक चिनगारी बुझ नहीं जाती। सर्जनात्मक व्यक्तियों का उदय होता रहता है और अपनी सर्जनात्मक शक्ति के गुणों से वे नेतृत्व ग्रहण किया करते हैं। किन्तु अब वे (विघटन के समय) अपना पुराना कार्य नये विशेषाधिकार से करते हैं। विकासोन्मुख सभ्यता में सर्जक को विजयी की भूमिका अदा करनी पड़ती है जो चुनौती का सामना विजेता बनकर करती है, विघटित होने वाली सभ्यता में उसे त्राता की भूमिका सम्पन्न करनी पड़ती है, जो उस समाज की रक्षा के लिए आता है जो चुनौती का सामना करने में असमर्थ रहा, क्योंकि अल्पसंख्या सर्जनशील नहीं रह गयी, और चुनौती ने उसकी स्थिति और भी बदतर कर दी।

ऐसे त्राता उतने ढंग के होंगे जितने प्रकार के उपायों का वे सामाजिक रोग को दूर करने में प्रयोग करेंगे। कुछ विघटित होने वाले समाज के ऐसे त्राता होंगे जो वर्तमान से निराश नहीं होंगे और ऐसी चेष्टा करेंगे कि दीन निराशापूर्ण लोगों को आगे ले चलें और पराजय को विजय

में बदलें। ये भावी त्राता शक्तिशाली अल्पसंख्यक लोग होंगे और उन सबकी विशेषता यह होगी कि अन्त में वे रक्षा करने में विफल होंगे। ऐसे भी त्राता होंगे जो विघटन वाले समाज 'में से' होंगे जो उन चार सम्भावित राहों में पलायन करके, जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं, रक्षा का मार्ग खोजेंगे। जो त्राता इन चार राहों पर चलकर समाज की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे वे आपस में इस बात पर सहमत होंगे कि वर्तमान परिस्थिति की रक्षा नहीं हो सकती। पुरातनवादी त्राता काल्पनिक प्राचीन की फिर से रचना करेगा। भविष्यवादी त्राता काल्पनिक भविष्य में कूदने का प्रयत्न करेगा। जो त्राता विराग की राह बतायेगा राजा के आवरण में दार्शनिक होकर आयेगा, और जो त्राता रूपान्तरवाद की राह दिखायेगा वह मनुष्य के रूप में देवता का अवतार बनकर प्रकट होगा।

(२) तलवार से सज्जित त्राता

विघटित होने वाले समाज 'का' भावी त्राता निश्चय रूप से तलवार से सज्जित होगा। तलवार खींची हुई हो या म्यान में हो। वह अपने चारों ओर लोगों को तलवार के घाट उतारता रहा हो या उसने तलवार को म्यान में रखकर कहीं भीतर रख दिया हो, वह राज करता हो और उसने वैरियों का पूर्ण रूप से दमन कर दिया हो। वह कोई हरकुलीज़ हो, कोई ज़ीयूस हो, कोई दाऊद हो या कोई सोलोमन हो। और यद्यपि कोई दाऊद या हरकुलीज़, जो अपने श्रम को छोड़कर कभी आराम नहीं करता और कार्य में रत होता हुआ गत होता है, वैभवपूर्ण सोलोमन और प्रतापी ज़ीयूस से अधिक रोमान्टिक देख पड़ता हो, हरकुलीज़ के परिश्रम और दाऊद के युद्ध बेकार के परिश्रम होंगे यदि ज़ीयूस की शान्ति और सोलोमन की समृद्धि उनका उद्देश्य न हो। तलवार का प्रयोग इस आशा से किया जाता है कि उससे भला होगा और भविष्य में इसकी आवश्यकता न होगी किन्तु यह आशा छलना है। 'जो लोग तलवार उठाते हैं, सब तलवार के साथ नष्ट हो जायेंगे' और उस त्राता के, जिसने उस राज्य की घोषणा की जो इस संसार का नहीं है, मत का खेदजनक समर्थन उन्नीसवीं शती के पश्चिमी राजमर्मज्ञों में से एक बड़े मानव द्वेषी यथार्थवादी ने किया। बाइबिल को अपने समय और देश की भाषा में अनुवाद करते हुए उसने कहा, 'संगीनों से एक काम आप नहीं कर सकते, उन पर बैठ नहीं सकते' अहिंसावादी सच्चे दिल से अपनी हिंसा पर खेद भी प्रकट करे और उससे लाभ भी उठाये, दोनों नहीं सम्भव है।

तलवार द्वारा रक्षा करने वाले वे सैनिक या राजा रहे हैं जिन्होंने सार्वभौम राज्यों को संस्थापित करने की चेष्टा की है अथवा संस्थापित करने में सफल हुए हैं या उन्हें पुनः प्रतिष्ठित करने में सफल हुए हैं और चूंकि संकटकाल से सार्वभौम राज्य की स्थापना में जितना समय लगता है उसमें इतनी अधिक तात्कालिक शांति मिल जाती है कि ऐसे राज्यों के संस्थापक देवता की भाँति पूजे गये हैं। किन्तु सार्वभौम राज, जो भी हो, अस्थायी हैं और यदि असाधारण शक्ति से वे अपने स्वाभाविक समय से अधिक जीवित भी रहे तो इस अस्वाभाविक दीर्घ जीवन का बदला उन्हें इस प्रकार चुकाना पड़ता है कि वे सामाजिक पाप बन जाते हैं और इस रूप में वे वैसे ही अनिष्टकारी हो जाते हैं जितना उनके पहले का संकट का काल या वह अन्तःकाल जो पतन के बाद होता है।

सच्ची बात यह है कि जिस तलवार ने एक बार रक्तपान कर लिया है उसे पुनः रक्तपान से रोका नहीं जा सकता, जिस प्रकार शेर जब एक बार मनुष्य का मांस चख लेता है वह मनुष्य-भक्षी हो जाता है। मनुष्य-भक्षी शेर एक दिन मरेगा, यदि गोली से बच गया तो खाल के रोग से मरेगा। किन्तु यदि शेर अपने विनाश को पहले से जान भी ले तब भी वह अपनी हत्याकारी भूख को रोक नहीं सकता। इसी प्रकार वह समाज है जो अपनी मुक्ति तलवार के माध्यम से खोजता है। उसके नेता अपने हत्याकारी कार्यों के लिए दुख प्रकट कर सकते हैं, सीजर की भाँति अपने वैरियों पर दया दिखा सकते हैं, आगस्टस की भाँति अपनी सेना को विघटित कर सकते हैं और जब दुखपूर्वक अपनी तलवार को अलग छिपाकर रख देते हैं, पूरी नेकनीयती से निश्चय करते हैं कि फिर कभी हम उसे न उठायेंगे। केवल निश्चित कल्याण के लिए और उन अपराधियों को शमन करने के लिए हाथ में लेंगे जो अब भी सीमा पर स्वतन्त्रतापूर्वक घूम रहे हैं या उन बर्बरों के विरुद्ध जो बाहर अन्धकार में अनुशासनहीन बने बैठे हैं। यद्यपि यह देखने में सुन्दर सार्वजनिक शान्ति, गड़ी हुई तलवारों की क्रूर नींव। पर सौ-दो सौ साल तक चले, कन्तु शीघ्र या विलम्ब से समय उनका विनाश कर देगा।

क्या सार्वभौम राज्य का दैवी शासक अधिक-से-अधिक विजय की अतृप्त लालसा को शान्त कर सकता है, जो खुसरू के लिए घातक थी? और यदि वह इस लालच पर नियन्त्रण नहीं कर सकता तो क्या वह वरजिल के उपदेश के अनुसार कार्य कर सकता है? जब हम इन दोनों प्रकारों से उसके कार्यों की परीक्षा करते हैं तब वह बहुत दिनों तक अपने निश्चयों पर डटे रहने में असफल हो जाता है।

यदि पहले हम उस संघर्ष पर विचार करें जो सार्वभौम राज्य तथा उसकी सीमा के बाहर के लोगों के प्रति विस्तार की नीति और अनाक्रमण की नीति के विकल्प में होती है तो हमें चीनी उदाहरण से आरम्भ करना चाहिए। क्योंकि तलवार को म्यान में रखने का सबसे प्रभावकारी उदाहरण त्सिन शे हांग टी का है, जिसने यूरेशियन स्टेप की सीमा पर महान् दीवार बनवायी। किन्तु उसका सुन्दर निश्चय कि यूरेशियन बर्रे के छत्ते को न छेड़ा जाय उसकी मृत्यु के सौ साल के पहले ही टूट गया, जब उसके हैन उत्तराधिकारी वूती ने 'आगे बढ़ने वाली नीति' अपनायी। हेलेनी सार्वभौम राज्य में आगस्टस की स्थापित नर्मी की नीति को ट्राजन ने तोड़ा, जब उसने पारथियन साम्राज्य को विजय करने की चेष्टा की। फरात से लेकर जेगरोस पहाड़ तक और फारस की खाड़ी के सिरे तक के अस्थायी बढ़ाव का मूल्य यह हुआ कि रोमन साम्राज्य के साधनों पर बड़ा बोझ पड़ गया और ट्राजन की तलवार ने जो विरासत अपने उत्तराधिकारी हैड्रियन को छोड़ी थी उसे चुकाने में उसकी अपनी सारी बुद्धि और योग्यता का प्रयोग करना पड़ा। हैड्रियन ने अपने पूर्वज के सारे विजयी प्रदेशों को खाली कर दिया, किन्तु वह केवल धरती को युद्ध के पहले की स्थिति में ला सका। राजनीतिक स्थिति वह न आ सकी।

उसमानिया साम्राज्य के इतिहास में मुहम्मद द कांकरर (१४५१–८१ ई०) ने सार्वभौम इस्लामी राज्य की लिप्सा ऐतिहासिक परम्परावादी ईसाई राज्य की सीमा तक रखी, किन्तु रूस को उसमें नहीं मिलाया और पड़ोसी पश्चिमी ईसाई राज्य को तथा ईरान को अपने राज्य में मिलाने के लालच का संवरण किया। किन्तु उसके उत्तराधिकारी सलीम द ग्रिम (१५१२–२० ई०) ने मुहम्मद के एशिया के त्याग की नीति को छोड़ दिया और इसका उत्तराधिकारी सुलेमान

(१५२०-६६ ई०) और आगे बढ़ा और उस नीति को तोड़कर यूरोप की ओर बढ़कर उसने भयंकर भूल की । परिणाम यह हुआ कि इस समय से उसमानिया शक्ति दो सीमाओं पर युद्ध की चक्की में पिसने लगी । उसे ऐसे बैरियों का सामना करना पड़ा जिन्हें उसमानली के वंशज रणक्षेत्र में तो हरा सकते थे, किन्तु शान्त नहीं कर सकते थे । यह विकृति उसमानी राजनीति में इतनी गहरी घुस गयी थी कि सुलेमान की मृत्यु के बाद के पतन पर भी मुहम्मद की संयम की नीति की ओर ये लोग नहीं घूमे । उसमानिया साम्राज्य की बिखरी शक्ति को कोप्रोल्यूस ने एकत्र ही किया था कि क़ारा मुस्तफा ने उसे फ्रैंकों से नया युद्ध करके नष्ट कर दिया । उसका उद्देश्य उसमानिया साम्राज्य की सीमा को राइन तक बढ़ाना था । यद्यपि वह इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सका, क़ारा मुस्तफा ने वियना पर घेरा डालकर सुलेमान के असाधारण कार्य की नकल की । किन्तु सन् १५२९ के समान सन् १६८२–३ में भी पश्चिमी ईसाई समाज के डैन्यूबी कवच के स्वामी लोहे के चने हो गये जिन्हें उसमानिया सेना चबा नहीं सकी । इस दूसरी बार उसमानली के वंशज वियना से सुरक्षित होकर नहीं लौटे । इस दूसरे आक्रमण के परिणामस्वरूप पश्चिम से बदले में बराबर १६८३ से १९२२ तक आक्रमण होते रहे जिन्हें रोकने की कोई वास्तविक चेष्टा नहीं की गयी और इस अन्तिम तारीख तक उसमानलियों का सारा साम्राज्य छिन गया और एक बार फिर वे अपने निवास केवल अनातोलिया में रह गये ।

इस प्रकार पश्चिमी ईसाई जगत् के बर्रे के छत्ते को मूर्खता से छेड़कर अपने पूर्वज सुलेमान के समान क़ारा मुस्तफा ने वही क्लासिकी भूल की जो ज़रक्सीज़ ने की थी जब उसने यूरोपीय महाद्वीप में यूनान पर आक्रमण किया और इस प्रकार हेलेनियों को जवाबी आक्रमण के लिए उत्तेजित किया जिन्होंने अकामीनियाई साम्राज्य से एशिया के उसके यूनानी अंश को छीन लिया और जिससे उस साम्राज्य का भी विनाश हो गया । थेमिस्टोक्लीज के आरम्भ किये हुए इस विनाश के कार्य को सिकन्दर महान् ने पूरा किया । हिन्दू संसार के इतिहास में औरंगजेब के रूप में (१६५९–१७०७) ज़रक्सीज़ उत्पन्न हुआ जिसने सेना के बलपर महाराष्ट्रों पर अपना अधिकार बढ़ाना चाहा, जिसने महाराष्ट्रों को जवाबी आक्रमण करने के लिए विवश किया । उसके परिणामस्वरूप औरंगजेब के उत्तराधिकारियों का अधिकार हिन्दुस्तान के मैदान में क्षीण हो गया ।

तलवार को म्यान में रखने की क्षमता की दो परीक्षाओं को हमने देखा कि सार्वभौम राज्य के शासक का कार्य-कौशल सुन्दर नहीं है । अब हम सीमा के बाहर के लोगों के प्रति अनाक्रमण की नीति को छोड़कर दूसरी परीक्षा पर विचार करें जो देश के अन्दर के लोगों पर उदारता की नीति है । हम देखें कि इस दूसरी परीक्षा में भी ऐसे शासक सफल नहीं होते ।

उदाहरण के लिए रोमन साम्राज्य की सरकार ने यहूदियों के प्रति उदारता दिखाने का विचार किया और यहूदी छेड़-छाड़ पर भी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे, किन्तु यह उदारता उस अधिक कठोर नैतिक कार्य के बराबर नहीं थी कि यहूदी अपधर्म (हेरेसी) के प्रति भी सहिष्णुता दिखायी जाय, जिस अपधर्म में वे हेलेनी संसार को परिवर्तित कर रहे थे । ईसाई समाज में जो बात रोमन शासन को असह्य थी वह यह कि वह शासन के इस अधिकार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था कि वे अपनी प्रजा को अपनी आत्मा के विरुद्ध करने को भी विवश कर सकते हैं । ईसाई लोग तलवार की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे और

अन्त में ईसाई शहीदों की आत्मा ने रोमन तलवार पर विजय पायी जिस पर टरटूलियन ने विजयपूर्ण गर्व से कहा था कि ईसाई रक्त ईसाइयों का बीज है ।

रोमनों के समान आकेमीनियाइयों ने प्रजा के मतानुसार शासन करने का सिद्धान्त बनाया और अपनी नीति में केवल अंशतः सफल रहे । फोइनीशियनों और यहूदियों की आस्था प्राप्त करने में तो वे सफल हुए किन्तु मिस्री या बैबिलोनियों को वे सन्तुष्ट न कर सके । उसमानलियों को भी उनकी रिआया को सन्तुष्ट करने में सफलता नहीं प्राप्त हुई । यद्यपि उन्होंने मिल्लत प्रणाली में बहुत सांस्कृतिक तथा नागरिक स्वतन्त्रता भी दे रखी थी । इस सैद्धान्तिक स्वतन्त्रता को उस उद्दण्डता ने नष्ट कर दिया जिससे उसका प्रयोग होता था । ज्योंही उसमानिया साम्राज्य की कहीं-कहीं पराजय हुई, रिआया ने अपना विरोध आरम्भ कर दिया और यही कारण था कि सलीम द ग्रिम के उत्तराधिकारियों ने कहा (यदि यह कहानी सच है) कि दुख है कि सलीम को उसके प्रधान मन्त्री तथा शेखुलइस्लाम ने प्रजा के बहुसंख्यक परम्परावादी ईसाइयों को नष्ट करने से रोक दिया, जैसा कि उसने इमामी शियाई समुदाय को सचमुच नष्ट कर दिया था । भारत में मुगल राज के इतिहास में हिन्दू धर्म के प्रति अकबर ने जो उदारता की नीति साम्राज्यवाद के रहस्य के रूप में अपने वंशजों को दी थी उसे औरंगजेब ने त्याग दिया । इस प्रवृत्ति के कारण साम्राज्य का विनाश हुआ ।

इन उदाहरणों से हमारा परिणाम और दृढ़ होता है कि तलवार को साथ लिये त्राता रक्षा नहीं कर सकता ।

(३) समय-मशीन के लिए त्राता

'द टाइम मशीन' एच० जी० वेल्स की एक अर्ध-वैज्ञानिक पुस्तक का नाम है । उस समय इस बात की जानकारी हो गयी थी कि काल चौथा आयाम है । श्री वेल्स के उपन्यास का नायक एक ऐसी मोटरकार—उन दिनों यह भी नयी चीज थी—का आविष्कार करता है जो इच्छानुसार देश-काल में आगे और पीछे जा सकती है । इस आविष्कृत गाड़ी पर संसार के इतिहास के गत कई कालों में वह क्रम से यात्रा करता है और सबसे अन्तिम को छोड़कर वह लौटकर आता है और यात्रा की कथा बताता है । वेल्स की यह काल्पनिक कहानी उन ऐतिहासिक असाधारण शक्तियों का रूपक है जो समाज की वर्तमान अवस्था और रुग्ण स्थिति को असाध्य समझकर आदर्श प्राचीन में लौटकर अथवा आदर्श भविष्य में जाकर उद्धार करना चाहते हैं । हम इस परिस्थिति पर अधिक विचार नहीं करना चाहते, क्योंकि हम इसका विश्लेषण कर चुके हैं और पुरातनवाद तथा भविष्यवाद दोनों की निरर्थकता सिद्ध कर चुके हैं । एक शब्द में ये टाइम-मशीनें—वेल्स की कार के रूप में नहीं, जिसमें एक यात्री जाता है, बल्कि सारे समाज के सर्ववाहन (आम्नीबस) के रूप में—कार्य नहीं कर सकतीं और इस विफलता के कारण भावी त्राता अपने टाइम-मशीन को अलग छोड़ देता है और तलवार लेता है और अपने को तिरस्कृत करके निराशा में, समर्पित कर देता है, जो चुपचाप बैठा रहता है कि तलवार वाले त्राता को वशीभूत कर ले, जिनके बारे में हम अध्ययन कर चुके हैं ।

पश्चिमी जगत् में ईसा की अठारहवीं शती में पुरातनवाद के सिद्धान्त को रूसो ने अपनी पुस्तक 'सोशल कंट्रेक्ट' के पहले वाक्य में रख दिया है : 'मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है, किन्तु बराबर जंजीर में बँधा रहता है ।' रूसो का सबसे विख्यात शिष्य रोब्सपीयर था, जो कहा जाता

है, सन् १७९३–४ में 'भीषण राज्य' का मुख्य नेता था । सरल सनकी प्रोफेसरों ने जिन्होंने ईसा की उन्नीसवीं शती को मूर्तिपूजक 'नारडिक' प्रजाति को आदर्श बनाने का प्रचार किया वे हमारे समय की नाज़ी विभीषिका के उत्तरदायित्व से अलग नहीं हो सकते । हमने देखा है कि पुरातनवादी आन्दोलन का शान्तिप्रिय नेता किस प्रकार हिंसक आक्रमणकारी के लिए रास्ता बनाकर अपने ही उद्देश्यों को विफल कर देता है, जैसे टाइबीरयस ग्रैकस ने अपने भाई गेयस का आवाहन किया और जिससे क्रान्ति की शती आ गयी ।

पुरातनवाद और भविष्यवाद का अन्तर उतना ही स्पष्ट मालूम पड़ता है जो भूत कल और आगामी कल में । किन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि किसी आन्दोलन को या त्राता को किस श्रेणी में रखा जाय क्योंकि पुरातनवाद की पद्धति है कि वह इस भ्रम में कि इतिहास में प्राचीनता आ सकती है, भविष्यवाद में कूद पड़ता है । परन्तु स्पष्टत: ऐसा हो नहीं सकता । क्योंकि यदि आप आगे बढ़ जायं और लौट आयें—यदि आप लौट आ सकते हैं—तो जिस स्थान पर आप लौट कर आते हैं वह भिन्न स्थान मिलेगा । रूसो के शिष्य 'प्रकृति की अवस्था' को आदर्श मानकर, या 'भद्र जंगली' की सराहना करके, या 'कला और विज्ञान' की भर्त्सना करके क्रान्ति लाने में शीघ्रता ला सकते हैं किन्तु प्रबुद्ध भविष्यवादी क्रान्तिकारी, जैसे कोन्डोरसेट, जिन्हें 'प्रगति' के सिद्धान्तों से प्रेरणा मिली थी, निश्चय ही अधिक दूरदर्शी थे । पुरातनवादी आन्दोलन का परिणाम सदा नया प्रयाण होगा । पुरातनवाद के सभी आन्दोलन भविष्यवाद की गोली (दवा वाली) के ऊपर के आवरण हैं । चाहे वह 'अभिलाषी विचार वालों' की सरल कामना हो अथवा प्रचारवादियों की चतुराई हो । जो कुछ भी हो, गोली पर जब आवरण होता है तब सरलता से वह निगल ली जाती है, क्योंकि भविष्य में अज्ञात भीषणता होती है और पुरातन खोया हुआ सुखद घर होता है जहाँ से पतनोन्मुख समाज भटकता हुआ वर्तमान में आ गया है । जैसे दोनों (यूरोपीय) युद्धों के बीच के वर्षों में एक प्रकार के समाजवाद के समर्थक मध्ययुग को आदर्श मानने वाले पुरातनवादी प्रकट हुए और उन्होंने अपना कार्यक्रम श्रेणी समाजवाद (गिल्ड-सोशलिज्म) के नाम से उपस्थित किया और उनका यह सुझाव था कि इस समय मध्ययुगीन श्रेणी प्रणाली को फिर से स्थापित करने की आवश्यकता है । किन्तु हमें विश्वास है कि यदि इस प्रणाली को काम में लाया गया होता तो पश्चिमी ईसाई जगत् का तेरहवीं शती का कोई टाइम-मशीन का यात्री देखकर भौचक्का हो जाता ।

यह स्पष्ट है कि पुरातनवादी-भविष्यवादी त्राता समाज की रक्षा में उसी प्रकार असफल हो जाते हैं, जिस प्रकार तलवार वाले त्राता लौकिक क्रान्तिकारी आदर्शवाद (यूटोपिया) में उसी प्रकार त्राण नहीं ला सकता जैसे सार्वभौम राज्यों में ।

(४) राजा के आवरण में दार्शनिक

ऐसे त्राण की कल्पना, जिसमें न 'टाइम-मशीन' की आवश्यकता है न तलवार की, हेलेनी संकट-काल की पहली पीढ़ी में विराग की कला में सबसे कुशल और सबसे महान् हेलेनी द्वारा प्रचारित की गयी थी ।

'राज्यों (यूनान के) की बुराई कम होने की कोई आशा नहीं है और मेरी सम्मति में मानव मात्र की । यह केवल तभी सम्भव है जब राजनीतिक शक्ति और दर्शन में सहयोग हो । और उन साधारण लोगों को जबरदस्ती अयोग्य कर दिया जाय जो इनमें से किसी एक में कार्य

करते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ हों। यह सहयोग मेरी सम्मति में दो प्रकार सम्भव है। या तो दार्शनिक लोग हमारे राज्यों के राजा हो जायँ या आज जो राजा और अधिपति कहे जाते हैं वे वास्तविक और पूर्ण ढंग से दार्शनिक हो जायँ।'[१]

इस औषधि का प्रस्ताव करते हुए अफलातून परिश्रम के साथ इसकी आलोचना का उत्तर देता है। क्योंकि वह समझता था कि उसकी आलोचना होगी। उसका प्रस्ताव विरोधाभास के समान है और अदार्शनिक इसकी हँसी उड़ायेंगे। किन्तु यदि अफलातून के उपचार को समझना साधारण आदमियों के लिए कठिन है—चाहे वे राजा हों या सामान्य जन—दार्शनिकों के लिए इसका समझना और कठिन है। क्या दार्शनिक का लक्ष्य जीवन से विराग नहीं है और क्या व्यक्तिगत विराग और सामाजिक त्राण एक-दूसरे से इस सीमा तक असंगत नहीं हैं, कि एक दूसरे के निषेधक हों। कोई कैसे विनाश होने वाले नगर की रक्षा कर सकता है जब वह उसमें स्वयं अपनी रक्षा करने के लिए प्रयत्न कर रहा है।

दार्शनिक की दृष्टि में आत्म-त्याग का अवतार—शूली पाया हुआ ईसा—मूर्खता का प्रतीक है। किन्तु बहुत कम दार्शनिकों को यह साहस हुआ कि इस विश्वास को प्रकट करें और उससे भी कम उनका जो इसके अनुसार कार्य करें। विराग की कला में कुशल व्यक्ति को जीवन ऐसे आरम्भ करना होगा कि वह सामान्य मानवी भावनाओं से पूर्ण है। यदि उसका पड़ोसी कष्ट में है, जिसकी उसके हृदय में भी अनुभूति होती है, तो वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, न वह इस बात की उपेक्षा कर सकता है, जिस अनुभूति से उसे त्राण मिला है उसी से उसके पड़ोसी का भी उद्धार होगा, यदि उसको बल दिया जाय। तो क्या यदि हमारा दार्शनिक अपने पड़ोसी की सहायता करता है तो अपनी हानि होती है? इस नैतिक द्विविधा में उसका इस भारतीय सिद्धान्त की शरण में जाना कि दया और प्रेम पाप है, बेकार है और अफलातून के इस सिद्धान्त का आश्रय लेना कि 'क्रिया ध्यान का दुर्बल रूप है' निरर्थक है। और न वह इस बौद्धिक और नैतिक असंगति के विश्वास पर चल सकता है, जिसका दोषी प्लूटार्क स्टोइकों को ठहराता है। और जो उद्धरण देता है जिसमें क्रिसिप्पस एक ही पुस्तक में एक वाक्य में शैक्षिक विश्रान्ति (अकाडमिक लेज़र) की भर्त्सना करता है और दूसरे वाक्य में उसकी अनुशंसा करता है।[२] अफलातून ने स्वयं फतवा दिया है कि जो विराग की कला में पक्के हो गये हैं उन्हें फिर जीवन में कभी उस प्रकाश में जाने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए जिसमें से प्रयत्न करके वे बाहर निकले हैं। बहुत दुखी होकर उसने अपने दार्शनिकों को पुनः उस कन्दरा में उतरने का दण्ड दिया कि वे अपने अभागे साथी मानवों की सहायता करें जो दुख और यातना में बँधे पड़े हैं। और यह बात हृदय-स्पर्शी है कि अफलातून की इस आज्ञा का एपिक्युरियस ने अच्छी तरह पालन किया।

जिस हेलेनी दार्शनिक का आदर्श, पूर्ण अविचलता था वह नजारेथ के पहले एक ही व्यक्ति था जिसे यूनानियों ने त्राता का नाम दिया था। यह सम्मान साधारणतः राजनीतिक तथा सैनिक सेवकों का एकाधिकार था। एपिक्युरियस को यह अभूतपूर्व विशेषता प्रदान की गयी

---

[१] प्लेटो: रिपब्लिक, ४७३ डी०।

[२] प्लूटार्क: डी स्टोइकोरम रिपगनैनटिआइस, अध्याय २ तथा २०।

उसका कारण उसको अपने हृदय की अनिवार्य पुकार थी जिसकी आज्ञा का पालन उसने आनन्दपूर्वक किया। जिस कृतज्ञता के उत्साह से एपिक्युरियस के त्राण के कार्य की प्रशंसा ल्युक्रीशियस ने अपनी कविता में की है उससे स्पष्ट है कि कम-से-कम इस सम्बन्ध में यह पदवी केवल औपचारिक नहीं थी। यह गम्भीर तथा सजीव भावना की अभिव्यक्ति थी। यह भावना एपिक्युरियस के समकालीन लोगों द्वारा परम्पराबद्ध लैटिन कवि तक पहुँची होगी।

एपिक्युरियस का विरोधाभासपूर्ण इतिहास स्पष्ट कर देता है कि दार्शनिकों को अपने कंधों पर कितना दुखमय बोझ उठाना पड़ता होगा, यदि वे अफलातून के उपचार के इस विकल्प को अपनाते रहें होंगे कि दार्शनिक को राजा होना चाहिए। इसलिए आश्चर्य की बात नहीं है कि अफलातून के नुसखे का दूसरा विकल्प—राजाओं को दार्शनिक वनाने का—प्रत्येक दार्शनिक को जिसमें सामाजिक चेतना थी, जिसमें अफलातून भी था, बहुत आकर्षणपूर्ण लगा। कम-से-कम तीन बार अफलातून अपने मन से, अपने ऐटिक आश्रम से निकलकर सागर पार कर साइराक्यूज़ गया कि सिसिली के एक निरंकुश शासक को अपनी कल्पना के अनुसार राजा का कर्तव्य पालन करने वाला राजा बनाये। इसका परिणाम हेलेनी इतिहास में विचित्र, किन्तु महत्त्वहीन है। ऐसे अनेक ऐतिहासिक राजा हुए हैं जिन्होंने अपने फालतू समय में दार्शनिकों से कम या अधिक गम्भीरता से, परामर्श किया है। इतिहास के पश्चिम के विद्यार्थी को इनमें सबसे प्रसिद्ध पश्चिमी जगत् में अठारहवीं शती के 'प्रबुद्ध निरंकुश शासक' मिलेंगे जो अनेक फ्रांसीसी दार्शनिकों के साथ, वालटेयर तथा उसके बाद औरों से कभी मुहब्बत करके, कभी उनसे लड़कर, अपना मनोरंजन करते थे। किन्तु हमें प्रशा के फ्रेडरिक द्वितीय या रूस की कैथरीन द्वितीय समुचित त्राता के रूप में नहीं मिलेंगी।

ऐसे भी विख्यात शासक मिलेंगे जिन्होंने वास्तविक दार्शनिक शिक्षा उन गुरुओं से प्राप्त की है जो उनसे पहले गुज़र चुके हैं। मारकस आरीलियस का कहना है कि हमने अपने गुरुओं, रसटिकस तथा सेक्सटस से शिक्षा ग्रहण की है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन अज्ञात शिक्षकों ने प्राचीन महान् स्टोइकों के ज्ञान का केवल माध्यम का काम किया, विशेषतः पेनेटियस के ज्ञान का, जो मारकस से तीन सौ साल ईसा के पूर्व दूसरी शती में हुआ था। भारत में अशोक बुद्ध का शिष्य था जो अशोक के शासक होने के दो सौ साल पहले मर चुके थे। अशोक का शासन भारत में और मारकस का शासन हेलेनी जगत् में अफलातून के इस तर्क को प्रमाणित करते हैं कि सामाजिक सबसे सुखी और सामंजस्यपूर्ण होता है जब शासक की यह इच्छा नहीं होती कि शासक बनूं। किन्तु इन शासकों की उपलब्धियाँ उन्हीं के साथ चली गयीं। मारकस का सारा दार्शनिक श्रम लुप्त हो गया क्योंकि उसने अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी चुना, जो वैधानिक प्रथा के प्रतिकूल थी। वैधानिक प्रथा यह थी कि उत्तराधिकारी चुना जाता था और यह प्रथा सौ वर्षों तक सफलतापूर्वक चल रही थी। अशोक निजी रूप से पवित्र था। परन्तु यह पावनता कुछ न काम आयी और दूसरी पीढ़ी में पुष्यमित्र के एक ही प्रहार से राज्य नष्ट हो गया।

इस प्रकार दार्शनिक शासक पतनोन्मुख समाज के जहाज पर से अपने साथियों की रक्षा करने में असमर्थ रहता है। जो तथ्य हैं वे सामने हैं। किन्तु हम यह देखेंगे कि उन तथ्यों से ही इसका स्पष्टीकरण होता है। यदि हम आगे और देखेंगे तो पता चलेगा कि हाँ, होता है।

अफलातून के रिपब्लिक में एक स्थान पर इसका संकेत किया गया है। जिसमें वह एक

राजा का वर्णन करता है जो जन्मजात दार्शनिक है। पहले वह यह अभिधारणा उपस्थित करता है कि किसी समय किसी स्थान पर ऐसा राजा जन्म लेगा और वह अपने पिता की गद्दी पर बैठेगा और तब वह अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देगा। इसके बाद अफलातून इस निर्णय पर पहुँचता है कि 'एक भी ऐसा शासक पर्याप्त होगा, यदि अपनी प्रजा का समर्थन वह प्राप्त कर सके—तो वह अपने सारे कार्यक्रम को पूरा कर सकेगा जो वर्तमान परिस्थिति में असम्भव जान पड़ता है।' आगे इस तर्क का उपस्थित करने वाला बताता है कि आशावाद का कारण क्या है। आगे चलकर वह कहता है—'यदि मान लिया जाय कि हमारा शासक आदर्श कानूनों को बनाता है और आदर्श सामाजिक परम्पराओं की स्थापना करता है तो यह बात सम्भावना की सीमा के बाहर नहीं है कि शासक की आज्ञाओं के अनुकूल ही उसकी प्रजा कार्य करेगी।'[१]

अफलातून की योजना की सफलता के लिए ये अन्तिम प्रस्ताव स्पष्टतः आवश्यक हैं किन्तु वे अनुकरण की मनःशक्ति पर भी निर्भर हैं। और हम पहले ही देख चुके हैं कि इस प्रकार का सामाजिक अभ्यास एक प्रकार का संक्षिप्त उपाय है जिसके कारण अपने उद्देश्य पर शीघ्र पहुँचने के वजाय विनाश की ओर पहुँच जाते हैं। दार्शनिक शासक की नीति की किसी प्रकार की जबरदस्ती चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, उसे असफलता प्रदान कर देगी और जिस त्राण के लिए वह चेष्टा करता है वह प्राप्त न होगा। और इस दृष्टि से हम उसकी नीति की परीक्षा करें तो हमें पता चलेगा कि उसकी जबरदस्ती विचित्र ढंग से स्पष्ट है। क्योंकि यद्यपि अफलातून कहता है कि दार्शनिक शासक के शासन में प्रजा की सहमति आवश्यक है, यह स्पष्ट है कि शासक दार्शनिक हो भी जाय तो उसे निरंकुश राजा होने के कारण उसकी दार्शनिकता बेकार हो जायगी जब तक वह शारीरिक शक्ति की तैयारी न किये रहे क्योंकि पता नहीं कब उसकी आवश्यकता पड़ जाय। जिस प्रकार यह तर्क समझने में स्पष्ट है उसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि यह परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है।

'लोगों का स्वभाव अस्थिर होता है, किसी बात को करने के लिए उसे राजी कर लिया जा सकता है, परन्तु उसी बात पर दृढ़ रखना कठिन है। इसलिए यह उचित है कि इस प्रकार तैयार रहना चाहिए कि इतनी शक्ति हो कि जब लोगों का विश्वास हट जाय तो जबरदस्ती उनको मनवाया जा सके।'[२]

इस क्रूर कथन में मैंकियावली ने दार्शनिक राजा के कार्य-कौशल में ऐसी कुटिल बात कही है जिसे अफलातून ने जान-बूझकर गोपनीय रखा। यदि दार्शनिक राजा समझता है कि प्रेम से मेरा काम नहीं हो सकता तो वह अपने दर्शन का तिरस्कार करके तलवार से काम लेगा। मारकस आरीलियस ने भी ईसाइयों के प्रति ऐसा ही किया। एक बार फिर हम भीषण दृश्य देखते हैं, ओरफ्यूज़ ड्रिल सारजंट बन गया। सच बात तो यह है कि दार्शनिक-राजा निश्चय ही असफल होगा क्योंकि वह दो विरोधी प्रकृतियों का एक ही व्यक्ति में समावेश करना चाहता

---

[१] **अफलातून : रिपब्लिक, ५०२ अ–ब।**

[२] **मैंकियावली : द प्रिंस, अध्याय ६।**

है। दार्शनिक, राजा के जबरदस्ती के क्षेत्र को अपनाकर अपने को प्रभावशील बना देता है, और राजा दार्शनिक के आवेगहीन चिन्तन के क्षेत्र में प्रवेश करके अपने को प्रभावहीन कर देता है। जिस प्रकार 'टाइम-मशीन' वाला त्राता अपने शुद्ध रूप में राजनीतिक आदर्शवादी है, उसी प्रकार दार्शनिक-राजा अपनी असफलता प्रकट करता है, जब वह अस्त्र उठाता है और अपने को 'प्रच्छन्न रूप से त्राता' प्रकट करता है।

(५) मानव में ईश्वरत्व

हमने सर्जनात्मक प्रतिभा के तीन अतिमानवों की परीक्षा की, जिन्होंने पतनोन्मुख समाज में जन्म लिया और जिन्होंने अपने बल और तेज को सामाजिक विघटन की चुनौती का सामना करने में लगाया, और प्रत्येक में देखा कि उसके त्राण के उपाय से शीघ्रता या विलम्ब से विनाश ही हुआ। उस भ्रम-निवृत्ति से हम किस परिणाम पर पहुँचते हैं? क्या इसका यह अर्थ है कि पतनोन्मुख समाज के त्राण का प्रत्येक प्रयत्न विफल हो जायगा यदि उसका त्राता मनुष्य है? हमें उस क्लासिक कथन को स्मरण करना चाहिए जिसकी सत्यता अनुभव के आधार पर हम प्रमाणित करते चले आ रहे हैं अर्थात् 'वे सब लोग जो तलवार उठाते हैं, तलवार के साथ नष्ट हो जायेंगे।' ये शब्द उस त्राता के हैं जिसने इसी कारण अपने एक अनुचर को फिर से तलवार को म्यान में रखने की आज्ञा दी जिसने तलवार खींची थी और उसका प्रयोग भी किया था। नज़ारेथ के ईसा ने पहले उस घाव को भरा जो पीटर की तलवार द्वारा हुआ था और फिर अपने शरीर को गहनतम अपमान और पीड़ा को झेलने के लिए समर्पित कर दिया। और यह भी स्मरण रखने की बात है कि उसका तलवार न उठाना इस कारण नहीं था कि इस विशेष अवस्था में उसकी शक्ति उसके वैरियों से कम थी। उसका विश्वास था, जैसा कि उसने जजों से कहा था कि यदि मैं तलवार उठाता तो अपने 'देवदूतों की बारह अक्षौहिणियों' से निश्चय ही वह विजय प्राप्त करता जो तलवार चलाने की कला से प्राप्त हो सकती है। यह विश्वास होते हुए उसने अस्त्र के प्रयोग से इनकार कर दिया। तलवार से विजय प्राप्त करने की अपेक्षा सूली पर चढ़ना उसने अधिक उत्तम समझा।

संकट के समय इस विकल्प के चुनने में ईसू ने उस परम्परा को तोड़ा जिसका उपयोग अन्य त्राताओं ने किया था, जिनके सम्बन्ध में हमने अध्ययन किया है। इस महान् नयी विरोधी प्रवृत्ति की प्रेरणा ईसा को कैसे मिली? इसका उत्तर हमें एक दूसरे प्रश्न से मिलता है कि इसमें तथा अन्य त्राताओं में क्या अन्तर है, जिन्होंने अपने दावों को छोड़ दिया और तलवार उठायी? इसका उत्तर यह है कि दूसरे जानते थे कि हम मनुष्य हैं और ईसा वह मनुष्य था जिसे विश्वास था कि मैं ईश्वर का पुत्र हूँ। क्या हम स्तोत्रकार डैविड के शब्दों में 'त्राण ईश्वर के हाथों में होता है'—इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जब तक मानवता को त्राण पहुँचाने वाले में किसी अर्थ में कुछ ईश्वरत्व न हो, वह त्राता अपने मिशन को पूरा करने में अशक्त रहेगा। हमने उस पाखण्डी त्राताओं की परीक्षा की और देखा कि वे असफल रहे, जो केवल मनुष्य रहे। अन्त में हम उन लोगों के सम्बन्ध में विचार करें जो देवता के रूप में हमारे सामने आये।

त्राता-देवताओं के जलूस की आलोचना करना और इसका मूल्यांकन करना कि जो होने का या करने का उनका दावा है वह कहाँ तक ठीक है, हमारे अध्ययन के ढंग के अनुकूल नहीं है और अभूतपूर्व दुस्साहस जान पड़ेगा। किन्तु प्रयोग में कोई कठिनाई न होगी। क्योंकि हम

देखेंगे इन त्राताओं के जलूस में एक व्यक्ति को छोड़कर शेष में देवता बनने का जो भी दावा रहा है, मनुष्य बनने का दावा संदिग्ध है । हम छाया और कल्पनाओं में बर्कले की अयथार्थता में अपने को घूमता पायेंगे जिनका अस्तित्व अनुभव मात्र है । वे ऐसे व्यक्ति हैं जिनके सम्बन्ध में वही कहा जा सकता है जो आधुनिक खोज ने 'स्पार्टा के सम्राट् लाइकरगस' के, जिनका अस्तित्व हमारे पूर्वज, एथेन्स के सोलन के समान ठोस और निश्चित समझते थे, सम्बन्ध में कहा है कि वह 'मनुष्य नहीं था, देवता था ।' जो भी हो, हम आगे बढ़ें । हम सीढ़ी के सबसे नीचे के डण्डे से, जहाँ देवता अकस्मात् सहायता के लिए आता है सीढ़ी के सबसे ऊँचे डण्डे तक चलेंगे जहाँ देवता को शूली दी जाती है । यदि शूली पर चढ़ना वह अन्तिम सीमा है जहाँ तक मनुष्य इस बात को प्रमाणित करने के लिए जा सकता है कि उसमें ईश्वरत्व है, तो मंच पर प्रत्यक्ष होकर यह प्रकट करना कि मैं देवता हूँ जो संसार का त्राण करेगा सबसे कम कष्टदायक कार्य है ।

उस शती में जब हेलेनी सभ्यता का पतन हो रहा था, ऐटिक रंगमंच पर आकस्मिक देवता का प्रकट होना असमंजस में पड़े नाटककारों के लिए सामयिक सहायता हो जाती थी, क्योंकि ऐसे प्रबुद्ध काल में भी उन्हें अपने नाटक की कथा-वस्तु परम्परागत हेलेनी पुराणों से लेनी पड़ती थी । स्वाभाविक समाप्ति के पहले यदि नाटक में नैतिक दोष या व्यावहारिक असम्भावनाओं के कारण कुछ ऐसी उलझनें, कला की परम्परा को निर्वाह करने के कारण हो जाती थीं, जिनमें से निकलना कठिन हो जाता था, तो लेखक कला की दूसरी परम्परा का सहारा लेता था । वह उलझन को दूर करने के लिए 'मशीन द्वारा' ऊपर से लटका कर मंच पर देवता को ला सकता था या पहिये द्वारा मंच पर ला सकता था । ऐटिक नाटककारों का यह कौशल विद्वानों के विवाद की अच्छी सामग्री बन गयी है । क्योंकि इन ओलिम्पियाई देवताओं द्वारा मानवी समस्याओं के हल करने की क्रिया से न तो मनुष्य की बुद्धि को सन्तोष होता है, न मनुष्य के हृदय को । उस विषय में यूरिपिडीज सबसे अधिक दोषी है । एक पश्चिमी विद्वान् ने संकेत किया है कि यूरिपिडीज जब मशीन द्वारा देवता को प्रकट करता है व्यंग्य में बोलता है । वेरल के अनुसार तर्कवादी (ऐसा ही वह उसे कहता है) यूरिपिडीज ने यह परम्परावादी कौशल अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किया था क्योंकि इन व्यंग्यों और आक्रमणों की बौछार को उसने आवरण बना लिया था । वह खुले हुए ढंग से इनका व्यवहार उस युग में करने का साहस नहीं कर सकता था । इस प्रकार का आवरण आदर्श है क्योंकि साधारण विरोधी जनता, इसे समझकर नाटककार पर विरोध का तीर नहीं चला सकती थी और बुद्धिमान् सन्देहवादियों के लिए बात स्पष्ट थी । 'यह कहना ठीक होगा कि युरिपिडीज ने रंगमंच पर देवताओं से जो कहलाया है, साधारणत: वह अविश्वसनीय है । लेखक की ओर से वह आपत्तिजनक है और झूठ है । देवताओं को लाकर उसने मनुष्यों को यह विश्वास दिलाना चाहा कि उनका अस्तित्व नहीं है ।'[१]

मनुष्य के दुख और वैभव से दूर और सराहना के अधिक उपयुक्त उपदेवता (डेमीगाड) हैं जिनकी माताएँ मानवी हैं और पिता अतिमानव । जैसे यूनानी उदाहरण हरक्युलीज़ या

---

१. ए० डब्ल्यू० वेरल : यूरिपिडीज़ द रेशनलिस्ट, पृ० १३८ । अन्तिम वाक्य इस अवतरण में अरिस्टोफेनीज के एक अवतरण से लिया गया है—थेस्मोफोरियाजूसी—११.४५०–१ ।

एसक्लेपियोस या ओरफ्यूज़ । ये अर्ध-देवता मानव शरीर धारण किये रहते हैं और मनुष्य के दुख को हरने के लिए अनेक परिश्रम के कार्य करते हैं । ईर्ष्यालु देवता उन्हें दण्ड देते हैं और मानव शरीर धारण करने के कारण वे दण्डों को सहते हैं । यह उनका गौरव है कि वे मनुष्य की भाँति मृत्यु को प्राप्त होते हैं और इस उपदेवता की मृत्यु के पीछे देवता का स्वरूप होता है जो संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से मरता है—मिनोई संसार में जगरियूस के नाम से, सुमेरी संसार में तम्मूज़ के नाम से, हिताइत जगत् में अत्तीस के नाम से, स्कैंडिनेवाई जगत् में. बाल्डर के नाम से, सीरियाई संसार में अडोनीस के नाम से, शियाई संसार में हुसेन के नाम से और ईसाई जगत् में ईसा के नाम से ।

यह कौन देवता है जो विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट होता है, किन्तु आवेग एक है ? यद्यपि वह संसार में विभिन्न वेशों में प्रकट होता है किन्तु उसका वास्तविक रूप उस समय दिखाई देता है जब अभिनय का दुखद अन्त होता है और वह मृत्युदण्ड का भागी होता है । यदि हम मानव-विज्ञानी की खोज की प्रणाली को ग्रहण करें तो इस शाश्वत नाटक को इतिहास के आरम्भ में पायेंगे । 'वह उसके सामने कोमल पौधे के समान उगेगा, और जैसे सूखी धरती में से जड़ निकलती है ।'[१] मरता हुआ देवता पहले-पहल वनस्पति की आत्मा में हमें प्रकट होता है जो वसन्त में मनुष्य के लिए पैदा होती है और शरद में मनुष्य के लिए मर जाती है । मनुष्य इस प्रकृति के देवता की मृत्यु से लाभान्वित होता है और वह सदा मनुष्य के लिए मरता न रहे तो मनुष्य का विनाश हो जाय ।'[२] 'हमारे पापों के कारण वह आहत हुआ, हमारे अन्यायों के कारण उसे चोट लगी, हमारी शान्ति के लिए उसने दण्ड भोगा और उस पर बेतों की जो चोटें लगीं उससे हमारे घाव भरे ।[३] किन्तु कोई बाहरी उपलब्धि चाहे कितनी भी शानदार हो और उसके लिए चाहे कितना भी मूल्य चुकाना पड़े दुख के हृदय के भीतर के रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सकती । यदि हम रहस्य जानना चाहें तो हमें लाभ प्राप्त करने वाले मानव और कष्ट प्राप्त करने वाले देवता के भी आगे देखना चाहिए । देवता की मृत्यु और मनुष्य का लाभ कथा को समाप्त नहीं कर देते । हम नाटक को मुख्य अभिनेता की परिस्थिति, भावना और उद्देश्यों को समझे बिना, समझ नहीं सकते । मरने वाला देवता जबरदस्ती मारा जाता है कि अपने से मरता है ? उदारता के साथ मरता है कि कटुता के साथ ? प्रेम के साथ कि निराशा से ? जब तक हम इन प्रश्नों का उत्तर न समझ लें हम यह नहीं जान सकते कि देवता के कष्ट द्वारा प्राप्त यह त्राण मनुष्य के केवल लाभ के लिए है या वह एक आत्मिक सम्पर्क होगा जिसमें मनुष्य वह दैवी प्रेम और करुणा प्राप्त करके, (जैसे दीपक बड़ी लौ से प्रकाश प्राप्त करता है[४]) जिसे ईश्वर ने विशुद्ध आत्म-त्याग करके दिया है, उसे लौटायेगा ।

---

१. इसाया—५३–२ ।

२. सच बात तो यह है कि मनुष्य स्वयं उसे मार डालता है जिससे वह अपना अस्तित्व कायम रख सके । वनस्पति की आत्मा की उपासना राबर्ट बर्न्स की कविता 'जान बारली कार्न' में बहुत सुन्दर बतायी गयी है । अंग्रेजी साहित्य में ऐसी सुन्दरता से कहीं नहीं लिखा गया है ।

३. इसाया—५३, ५ ।

४. प्लेटो के पत्र—७,३४१–सी०–डी० ।

देवता किस भावना से मृत्यु को स्वीकार करता है ? इस प्रश्न को ध्यान में रखते हुए यदि हम इन दुखदायी नाटकों पर एक बार फिर विचार करें तो हम देखेंगे कि किस प्रकार अपूर्ण बलिदान से पूर्ण अलग रहता है । ओरफ़्यूज़ की मृत्यु पर जब कैलियोप बहुत सुन्दर ढंग से विलाप करती है तब उसमें कटुता का स्वर है जो ईसाई कानों को खटकता है ।

'हम मानव अपने पुत्रों की मृत्यु पर क्यों शोक करते हैं जब हम जानते हैं कि देवताओं में भी यह शक्ति नहीं है कि अपने पुत्रों को मरने से रोक सकें ।'[१]

मरते हुए देवता की कथा का विचित्र निष्कर्ष है । जान पड़ता है कि ओरफ़्यूज़ की माता अपने पुत्र को कभी मरने न देती यदि उसका वश चलता । जैसे बादल सूर्य को छिपा लेता है, यूनानी कवि के वर्णन ने ओरफ़्यूज़ की मृत्यु से प्रकाश को छीन लिया। किन्तु एंटिपेटर की कविता का उत्तर दूसरी महान् कृति ने दिया है :

'ईश्वर संसार से इतना प्रेम करता था कि उसने अपना एकमात्र पुत्र संसार के लिए दे दिया कि जो उसमें विश्वास रखता है वह नष्ट नहीं होगा, सदा जीवित रहेगा ।'

धर्म पुस्तक ने इस प्रकार शोक-गान का उत्तर दिया है, और इस उत्तर में उसने भविष्यवाणी की है । 'एक रहता है, अनेक परिवर्तित होते रहते हैं और चले जाते हैं ।'[२] और त्राताओं के सर्वेक्षण का यह हमारा अन्तिम परिणाम है । जब हम अपनी खोज में चले तो हमें महान् संख्या मिली, किन्तु ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़े दौड़ में हमारे साथी एक के बाद दूसरे पीछे रहते गये । पहले जो पराजित हुए वे तलवार वाले थे, दूसरे पुरातनवादी और भविष्यवादी थे, उसके बाद दार्शनिक, केवल देवता दौड़ते रह गये । अन्त में मृत्यु की कठिन परीक्षा में, इन त्राता-देवताओं में भी कुछ ही रह गये जिन्होंने मृत्यु की सरिता में कूद कर त्राता होने की पदवी की रक्षा की है । और जब हम खड़े होकर सागर के उस परा क्षितिज पर देखते हैं तब जल में से एक रूप उभरता हुआ दिखाई देता है जो सारे अन्तरिक्ष में फैल जाता है । यही हमारा त्राता है, 'ईश्वर की इच्छा उसके हाथों पूरी होगी, वह अपनी आत्मा को देखेगा और उसे सन्तोष होगा ।'[३]

---

१. ओरफ़्यूज़ की मृत्यु पर एंटि प्लेटर का शोकगीत (सम्भवतः ९० ई० पू०)
२. शेली—अडोनेस, ५२ ।
३. इसाया—५३, १०–११ ।

२१. विघटन का लयात्मक रूप

इसके पहले के अध्याय में हमने खोजा और एक समानता पायी—जिसमें स्वभावतः विरोध भी था—जो विकासोन्मुख और विघटनोन्मुख समाजों के सर्जनात्मक व्यक्तियों का गुण है। इसी ढंग पर हम अपने विषय की दूसरी बात की आगे खोज करेंगे और देखेंगे लयात्मक विकास और लयात्मक विघटन में कोई समानता है और सम्भवतः विरोध भी। प्रत्येक स्थिति में हमारा फारमूला वही है जिसका अनुसरण हम अभी तक करते आये हैं, वह चुनौती और उसका सामना करने का फारमूला। विकासोन्मुख सभ्यता में एक चुनौती उपस्थित होती है और सफलतापूर्वक उसका सामना होता है जिसके परिणाम में नयी चुनौती सामने आती है और इसका भी सफलता से सामना होता है। इस विकास की प्रक्रिया का अन्त नहीं होता जब, तक कि ऐसी चुनौती नहीं आती जिसका सामना करने में सभ्यता असफल हो जाती है, तब विकास रुक जाता है जिसे हमने पतन का नाम दिया है। यहाँ से सहसम्बन्धी लय आरम्भ होती है; चुनौती का सामना नहीं हो सका फिर भी चुनौती आती रहती है। संक्षोभ के साथ चुनौती का सामना करने के लिए दूसरा प्रयत्न किया जाता है, और यदि इसमें सफलता मिली तो विकास होता रहेगा। किन्तु हम यह मान कर चलेंगे कि थोड़ी अस्थायी सफलता के बाद यह सामना भी विफल हो जाता है। तब रोगाक्रमण फिर होगा, और सम्भवतः कुछ समय के बाद चुनौती का सामना करने की चेष्टा होगी और कुछ समय में उसी कठोर चुनौती का सामना करके थोड़ी और अस्थायी सफलता प्राप्त होगी। इसके बाद फिर असफलता मिलेगी जो अन्तिम रूप से समाज का विनाश करे या न करे। सैनिक भाषा में इसे पराजय-जमाव-पराजय-जमाव (रूट एण्ड रैली, रूट एण्ड रैली) कह सकते हैं।

यदि हम उन तकनीकी शब्दों की शरण लें जिन्हें हमने इस अध्ययन के आरम्भ में सोच निकाला था और जिनका प्रयोग हम करते आये हैं तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि पतन के बाद का संकटकाल पराजय है, सार्वभौम राज्य की स्थापना जमाव है। सार्वभौम राज्य के पतन के बाद जो अन्तःकाल होता है वह अन्तिम पराजय है। किन्तु हमने एक सार्वभौम हेलेनी राज्य के इतिहास में देखा कि मारकस आरीलियस की मृत्यु के बाद अराजकता हो गयी और डायोक्लीशियन के समय फिर पुनरुज्जीवन आ गया। किसी सार्वभौम राज्य के इतिहास में एक बार से अधिक रोगाक्रमण और पुनरुज्जीवन हो सकता है। ऐसे आक्रमणों और पुनरुज्जीवन की संख्या उस लेंस की शक्ति पर निर्भर करती है जिसमें से देखकर हम परीक्षा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए थोड़े समय के लिए किन्तु चकित कर देने वाला रोगाक्रमण ६९ में हुआ जिसे 'चार सम्राटों का वर्ष' कहते हैं। किन्तु हम प्रमुख घटनाओं पर ही विचार करेंगे। संकटकाल के बीच भी पुनरुज्जीवन का समय आ सकता है। यदि हम संकट के काल में एक विशेष पुनरुज्जीवन तथा सार्वभौम राज के जीवन काल में एक रोगाक्रमण मान लें तो हमें फारमूला मिल जायगा :

पराजय-जमाव-पराजय-जमाव-पराजय-जमाव-पराजय जिसे हम कह सकते हैं कि पराजय-जमाव के लय का साढ़े तीन विस्पन्दन है। स्पष्टतः साढ़े तीन संख्या में कोई विशेष गुण नहीं है। विघटन के विशेष उदाहरण में ढाई या साढ़े चार या साढ़े पाँच विस्पन्दन हो सकते हैं किन्तु विघटन की प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं होगा। किन्तु साढ़े तीन विस्पन्दन की संख्या साधारणतः अनेक विघटनोन्मुख समाजों के इतिहास में मिलती है। उदाहरण के लिए उनमें से कुछ का वर्णन हम करेंगे।

हेलेनी समाज के पतन की ठीक-ठीक तारीख ४३१ ई० पू० है और चार सौ साल बाद ३१ ई० पू० में आगस्टस ने सार्वभौम राज्य स्थापित किया। क्या हम इन चार सौ वर्षों में जमाव-पुनःपतन की क्रिया को पाते हैं? निश्चय ही हम पाते हैं। उसका एक चिह्न एकता के सामाजिक धर्म का प्रचार था जिसका साइरांक्यूज़ में टिमोलिओन ने प्रचार किया था और अधिक विस्तृत क्षेत्र में सिकन्दर महान् ने इसी एकता का प्रयत्न किया था। ये दोनों चेष्टाएँ चौथी शती ईसापूर्व के अन्तिम अर्धांश में हुई थीं। दूसरा चिह्न विश्व राष्ट्रमण्डल की संकल्पना है जिसका ज़ीनो तथा एपिक्यूरियस ऐसे दार्शनिकों ने तथा उनके शिष्यों ने प्रचार किया था। तीसरा चिह्न अनेक वैधानिक प्रयोगों का है—सेल्यूकस का साम्राज्य, एकियन तथा एइटोलियन संघ तथा रोमन लोकतन्त्र। ये सब ऐसे प्रयत्न थे कि नगर-राज्य की प्रभुसत्ता के ऊपर एक प्रभुसत्ता की स्थापना हो। और चिह्न बताये जा सकते हैं किन्तु जिस पुनरुज्जीवन का संकेत किया गया है उसके ज्ञान के लिए ये पर्याप्त हैं, और इनसे समय का भी ज्ञान हो जाता है। पुनरुज्जीवन के ये प्रयत्न असफल हुए। इसका कारण मुख्यतः यह था कि यद्यपि ये बड़ी-बड़ी राजनीतिक इकाइयाँ अलग-अलग नगर-राज्यों से आगे बढ़ गयी थीं फिर भी आपसी सम्बन्ध में एक-दूसरे के प्रति उनमें अनुदारता और असहयोग था जैसा कि पाँचवीं शती ई० पू० के यूनान के राज्यों में, था जब उन्होंने एकेनो-पेलोपोनेशियाई युद्ध का आरम्भ करके हेलेनी सभ्यता का पतन आरम्भ किया। यह दूसरा रोगाक्रमण अथवा (जो एक ही बात है) असफलता उस पुनरुज्जीवन की है जो २१८ ई० पू० में हैनिबली युद्ध के आरम्भ में हुआ। हमने पहले रोमन साम्राज्य के इतिहास में एक सौ साल की लम्बी अवधि के रोगाक्रमण का वर्णन किया है और उसके बाद के पुनरुज्जीवन का। इससे साढ़े तीन विस्पन्दन का पता चलता है।

यदि हम चीनी समाज के विघटन पर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि पतन उस समय से आरम्भ हुआ, जब ६३४ ई० पू० में त्सिन और चू में विनाशकारी संघर्ष आरम्भ हुआ और जब २२१ ई० पू० में त्सिन ने त्सी को पराजित किया और चीन ने चीनी शान्तिमय राज्य की स्थापना की। चीनी संकटकाल की यदि ये दोनों आरम्भिक और अन्तिम तिथियाँ हैं, तो क्या हमें इस बीच पुनरुज्जीवन तथा रोगाक्रमण की क्रियाएँ मिलती हैं? इसका उत्तर 'हाँ' है। क्योंकि चीनी संकटकाल में कनफूशियस (सम्भवतः ५५१–४७९ ई० पू०) की पीढ़ी के समय पुनरुज्जीवन का आन्दोलन-दिखाई देता है जब निशस्त्रीकरण सम्मेलन ५४६ ई० पू० में हुआ था जो अन्त में असफल हुआ। आगे चलकर यदि हम चीनी सार्वभौम राज्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो पहली तथा पीछे वाली इनकी पीढ़ी में, अर्थात् ईसवी सन् की पहली शती के आरम्भ में, जब इनका अन्तःकाल था, रोगाक्रमण और पुनरुज्जीवन की कुख्यात क्रियाएँ हुईं। यहाँ भी हमें

साढ़े तीन विस्पन्दन मिलते हैं। ये विस्पन्दन हेलेनी विस्पन्दन से दो सौ साल पहले समगति होकर मिलते हैं।

सुमेरी इतिहास में हमें वही बात मिलती है। सुमेरी संकटकाल में जमाव-पराजय का विस्पन्दन स्पष्ट है। सुमेरी सार्वभौम राज्य में पराजय-जमाव का विपरीत-विस्पन्दन बहुत स्पष्ट दिखाई देता है। यदि हम सुमेरी संकट का काल सैन्यवादी एरेच के लुगालज़ग्गीसी (सम्भवतः २६७७–२६५३ ई० पू०) के जीवन से और उसका अन्त सुमेरी सार्वभौम राज्य की स्थापना से मानें, जिसे अर के अर-एनगूर ने (सम्भवतः २२९८–२२८१ ई० पू०) स्थापित किया था, तो कम-से-कम इस बीच के काल में पुनरुज्जीवन का एक चिह्न हमें चाक्षुष-कला में मिलता है जो नरमसीन के समय में सम्पन्न हुई थी। सुमेरी शान्तिपूर्ण राज्य का समय अर-एनगूर के गद्दी पर बैठने से हम्मूरबी की मृत्यु लगभग (१९०५ ई०पू०) तक है, किन्तु ध्यान से देखने पर पता चलता है कि यह शान्ति केवल हल्का आंवरण था, अन्दर-अन्दर अराजकता व्याप्त थी। अर-एनगूर के गद्दी पर बैठने के सौ साल बाद उसका 'चारो दिशाओं का साम्राज्य' टुकड़े-टुकड़े हो गया और इन्हीं टुकड़ों में ही सौ साल तक रहा, जब हम्मूरबी ने उसे फिर से सार्वभौम रूप में निर्मित किया जिसके बाद ही उसका विनाश हुआ।

यही परिचित नकशा हमें परम्परावादी ईसाई समाज के मूल शरीर के विघटन के इतिहास में दिखाई देता है। हम पहले बता चुके हैं कि इस सभ्यता का पतन रोमानो-बुलगेरियन युद्ध ९७७–१०१९ ई० से आरम्भ हुआ और शान्तिमय धार्मिक सार्वभौम राज्य १३७१–७२ की पुनःस्थापना से आरम्भ होता है जब उसमानियों ने पैसिडीनिया पर विजय प्राप्त की। इन दोनों तारीखों के बीच, जब परम्परावादी ईसाइयों का संकटकाल था, हम पुनरुज्जीवन की स्थापना की घटना देख सकते हैं जिसका नेता पूर्वी रोमन सम्राट् एलेक्सियस केमनेनस (१०८१–१११८) था। यह क्रिया सौ साल तक चली। इसके बाद का शान्तिमय धार्मिक सार्वभौम राज्य का, सन् १७६८–७४ के रूसी-तुर्की युद्ध की पराजय के कारण, पतन हो गया। इस पतन से उसमानिया शासन का पूर्णतः अन्त हो गया। उसमानिया इतिहास से पता चलता है कि इसके पहले रोगाक्रमण हो चुका था, जिसके बाद फिर से पुनरुज्जीवन हुआ। रोगाक्रमण उस समय हुआ जब बादशाह के दासों के परिवार का शीघ्रता से विनाश होने लगा, जब सुलेमान महान् की सन् १५६६ में मृत्यु हुई। पुनरुज्जीवन का आरम्भ उस समय से होता है जब बादशाह ने परम्परावादी ईसाई रिआया को स्वतन्त्र मुसलमानों के साथ, जिन्होंने शक्ति की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी—शासन में लेने का प्रयोग किया। अब वह इस बात पर जोर नहीं देता था कि शासन में सहयोग करने के लिए उन्हें धर्म-परिवर्तन करना पड़ेगा। इस क्रान्तिकारी नवीनता ने, जो कोपरुलू वज़ीरों का कार्य था, उसमानिया साम्राज्य को साँस लेने का समय दिया, जिसे बाद के उसमानली 'ट्यूलिप काल' कहते हैं।

हिन्दू समाज के विघटन के इतिहास में अभी आधे विस्पन्दन का समय नहीं आया है। क्योंकि हिन्दू सार्वभौम राज्य की, जिसे ब्रिटिश शासन ने स्थापित किया था, दूसरी किस्त का समय अभी पूरा नहीं हुआ है। इसके विपरीत पराजय—और पुनरुज्जीवन के पहले तीन विस्पन्दन का लेखा मौजूद है। तीसरा रोगाक्रमण उस समय हुआ जब मुगल साम्राज्य के पतन और ब्रिटिश राज्य के आगमन के बीच की अराजकता का समय था। पुनरुज्जीवन का

दूसरा विस्पन्दन उस समय स्पष्ट है जब अकबर (१५६६–१६०२) ने मुगल राज्य की स्थापना की। इसके पहले की पराजय का आघात स्पष्ट नहीं है, किन्तु यदि हम हिन्दू इतिहास के संकटकाल को देखें, जो ईसाई संवत् की बारहवीं शती के अन्तिम भाग में आरम्भ होता है जब हिन्दुओं के स्थानीय राज्यों में आपसी युद्ध हो रहे थे, तब हमें पता चलेगा कि हिन्दू शासकों और मुसलिम आक्रमणकारियों द्वारा बारहवीं और तेरहवीं शती में और बाद के मुसलिम आक्रमणकारियों ने, जिनमें अकबर के पूर्वज भी थे, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शती में जो विपत्ति ढायी उसके बीच अलाउद्दीन और फीरोज के शासन में चौदहवीं शती में कुछ शान्ति थी।

हम दूसरी सभ्यताओं के विघटन का भी विश्लेषण कर सकते हैं जहाँ हमें इतनी सामग्री मिलती है कि अध्ययन से हम परिणाम निकाल सकते हैं। किसी-किसी स्थिति में हम देखेंगे कि 'विस्पन्दन' की पूरी संख्या नहीं मिलती, क्योंकि उस सभ्यता को उसकी स्वाभाविक मृत्यु के पहले ही उसका पड़ोसी निगल गया। फिर भी हमें विघटन के लय का इतना प्रमाण मिल गया है कि हम इस लय के उदाहरण को अपनी पश्चिमी सभ्यता पर लगा कर देखें कि क्या वह उस प्रश्न का कुछ उत्तर दे सकती है, जिसे हमने कई बार पूछा कि जिसका अभी तक सन्तोषजनक उत्तर हम नहीं दे सके। प्रश्न यह है कि क्या हमारी पश्चिमी सभ्यता का भी पतन हुआ है ? यदि हाँ, तो विघटन की किस परिस्थिति में वह पहुँची है ?

एक बात तो स्पष्ट है, हमारे यहाँ अभी सार्वभौम राज्य की स्थापना नहीं हुई है यद्यपि इस दिशा में दो दुस्साहसपूर्ण प्रयत्न इस शती के पहले अर्धांश में जरमनी द्वारा हुए और उसी प्रकार का दुस्साहसपूर्ण प्रयत्न सौ साल पहले नैपोलियन के फ्रांस ने किया था। एक बात और स्पष्ट है। हम लोगों में हार्दिक और गम्भीर अभिलाषा है कि एक संस्था की स्थापना हो जो सार्वभौम राज्य नहीं हो, किन्तु जिसके द्वारा विश्व की ऐसी व्यवस्था हो, जिस ढंग की एकता की संस्था स्थापित करने का प्रयत्न हेलेनी संकटकाल में वहाँ के राजमर्मज्ञों और दार्शनिकों ने किया था किन्तु निष्फल रहे। वह ऐसी संस्था होगी जिसमें सार्वभौम राज्य के वरदान तो सब आ जायेंगे, अभिशाप न आयेगा। सार्वभौम राज्य का अभिशाप यह है कि एक दल का व्यक्ति दूसरे दलों को सैनिक शक्ति से मार गिराता है। वह 'तलवार के द्वारा त्राण' का परिणाम है, जिसके बारे में हमने देखा है कि वह त्राण बिलकुल नहीं है। हम चाहते हैं कि स्वतन्त्र लोग स्वतन्त्र सहमति से एक साथ रहें और बिना जबरदस्ती के सब प्रकार की बड़ी-से-बड़ी सुविधाएँ प्राप्त करें, और बड़े-से-बड़ा सामंजस्य स्थापित करें, जिसके बिना यह आदर्श व्यवहार में नहीं आ सकता। नवम्बर १९१८ के युद्ध-विराम के कुछ मास पहले अमरीकी राष्ट्रपति विलसन को जो प्रतिष्ठा यूरोप में प्राप्त हुई—यद्यपि अपने देश में नहीं—उसमें हमारी आशाएँ निहित थीं। राष्ट्रपति विलसन का सम्मान गद्य द्वारा व्यक्त किया गया था, आगस्टस के सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध है वह वरजिल या होरेस का पद्य है। चाहे गद्य हो या पद्य, दोनों में जो विश्वास, आशा और धन्यवाद की भावनाएँ हैं वे प्राय: एक-सी हैं। परन्तु परिणाम भिन्न है। आगस्टस अपने संसार को सार्वभौम राज्य बनाने में सफल हुआ, विलसन अपने संसार को और अच्छा बनाने में असफल रहा—

छोटा आदमी एक-एक जोड़ता है,
जल्दी ही वह सौ तक एकत्र कर लेता है

बड़े आदमी की अभिलाषा लाखों की होती है,
वह एक भी एकत्र नहीं कर पाता ![1]

इन विचारों और तुलना से पता चलता है कि हम अपने संकटकाल में बहुत आगे बढ़ गये हैं और यदि हम पूछें कि निकट भूत में सबसे स्पष्ट और विशिष्ट क्या विपत्ति हमारे सामने उपस्थित हुई है, जो उत्तर स्पष्ट है—राष्ट्रवादी परस्पर विनाशकारी युद्ध, जिसे लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद द्वारा निर्मुक्त शक्तियों से बल मिला है, जैसा कि इस अध्ययन में पहले हमने बताया है। इस भीषणता का आरम्भ अठारहवीं शती के अन्त के फ्रांस के क्रान्तिकारी युद्ध से होता है। पहले जब हम इस विषय पर विचार कर रहे थे, तब पश्चिम के इतिहास के आधुनिक इतिहास में हमें पता चला कि इस प्रकार का हिंसात्मक संघर्ष पहला नहीं, दूसरा था। पहला संघर्ष वह था जिसमें तथाकथित धार्मिक युद्ध हुए थे, जिसने सोलहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक पश्चिमी ईसाई जगत् को तहस-नहस कर डाला और हमने देखा कि इन दोनों हिंसात्मक युद्धों के बीच सौ साल ऐसे बीते जिनमें युद्ध अपेक्षया हल्का रोग था, जिसमें राजाओं का खेल होता रहा, जिसमें न तो धार्मिक उन्माद था, न सांप्रदायिकता, न लोकतन्त्रीय राष्ट्रवाद। इस प्रकार अपने इतिहास में भी हमें संकटकाल का प्रतिरूपी (टिपिकल) उदाहरण मिलता है : पतन, पुनरुज्जीवन और दूसरा रोगाक्रमण।

हम देख सकते हैं कि संकटकाल में अठारहवीं शती का पुनरुज्जीवन क्यों अकाल प्रसूत और अस्थायी हुआ। उसका कारण यह था कि जो सदाशयता 'प्रबुद्धता' के कारण प्रयोग में लायी गयी वह विश्वास, आशा और उदारता के ईसाई गुणों पर आधारित नहीं थी, बल्कि निराशा, भय और मानवता के प्रति घृणा के पैशाचिक रोगों के कारण प्रयोग की गयी। यह धार्मिक उत्साह की उपलब्धि नहीं थी, उसकी कमी का सरल उपजात (बाई प्राडक्ट) था।

क्या हम उस दूसरे और अधिक हिंसात्मक युद्ध के परिणाम को, किसी भी दशा में, देख सकते हैं जिसमें हमारा पश्चिमी समाज अठारहवीं शती वाली प्रबुद्धता की आध्यात्मिक अपर्याप्तता के कारण फँस गया है ? यदि हम भविष्य की ओर देखने का प्रयत्न करें तो हमें पहले यह स्मरण कर लेना चाहिए कि जितनी भी सभ्यताओं का इतिहास में वर्णन हुआ है वे चाहे मर गयी हों या मर रही हों, जन्तु के शरीर के समान नहीं हैं, जिनके लिए पहले से ही निश्चित है कि जीवन की एक अवधि समाप्त करके समाप्ति पर पहुँचेंगे। यदि आज तक जितनी सभ्यताएँ हुई हैं, उन्होंने इस प्रथा का अनुगमन किया है, तो भी, ऐतिहासिक नियतिवाद का कोई ऐसा नियम नहीं है जो हमें विवश कर सके कि संकटकाल की असह्य कड़ाही में से सार्वभौम की धीमी और स्थिर अग्नि में अपने को फेंक दें जिसमें धीरे-धीरे जलकर हम धूल और राख हो जायेंगे। साथ ही यदि दूसरी सभ्यताओं का इतिहास और प्रकृति के जीवन को हम देखेंगे और अपनी वर्तमान स्थिति के अमंगल प्रकाश में निरीक्षण करेंगे तो ऐसा होना निश्चित जान पड़ता है। यह अध्याय १९३९–४५ के विश्वयुद्ध के आरम्भ में उन पाठकों के लिए लिखा गया था जिन्होंने १९१४–१८ का महाभारत देखा था। और इस दूसरे युद्ध की समाप्ति के बाद प्रकाशन के लिए इसे फिर से

---

[1] आर० ब्राउनिंग : एग्रामेरियन्स फ्युनरल।

लिखा गया। यह दूसरा युद्ध हमारे जीवन में ही ऐसे बम के आविष्कार तथा प्रयोग से समाप्त किया गया जिसमें एटमिक शक्ति को विमुक्त करने का नया ढंग निकाला गया जिससे मनुष्य ने मनुष्य के जीवन तथा उसकी निर्मित वस्तुओं को नष्ट कर दिया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इन विनाशकारी घटनाओं का शीघ्र-शीघ्र होना और बढ़ता ही जाना भविष्य के अन्धकार का द्योतक है, इस अनिश्चयता के कारण, ऐसे समय जब हमारी आध्यात्मिक शक्तियों की नितान्त आवश्यकता है, हमारी आशा और विश्वास के टूट जाने की आशंका है। यहाँ वह चुनौती है जिसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते और हमारा भविष्य हमारा सामना करने पर निर्भर है।

"मैंने स्वप्न देखा, और मैंने देखा कि एक मनुष्य चिथड़ों मे लिपटा एक स्थान पर खड़ा है। उसके मुँह उसके घर के उलटे है, उसके हाथ में एक पुस्तक है और पीठ पर बड़ा बोझ है। मैंने देखा कि उसने पुस्तक खोली और पढ़ा, वह पढ़ता रहा और रोता रहा और काँपता रहा। जब वह अपने को नहीं रोक सका, फूट-फूटकर रोने लगा और दुख से चिल्ला उठा, 'मैं क्या करूँ' ?"

बुनयन का ईसाई बिना कारण ही इतना दुखी नहीं हुआ 'मुझे निश्चित रूप से बताया गया है (उसने कहा) कि हमारा यह नगर आकाश से बरसती आग से जल जायगा, जिसमें मैं, मेरी पत्नी और मेरे सुन्दर बच्चे भस्म हो जायेंगे जब तक कि कोई ऐसी राह न निकले (जो अभी मुझे दिखाई नहीं देती) जिससे मेरी रक्षा हो सके।'

इस चुनौती का सामना ईसाई किस प्रकार करने जा रहा है ? क्या वह इधर-उधर देखेगा कि किस ओर दौड़ूँ और फिर भी खड़ा रहेगा, क्योंकि उसे पता नहीं कि किस ओर जाना चाहिए? या वह प्रकाश पुंज की ओर देखते हुए और दूर फाटक की ओर पाँव मोड़ते हुए 'जीवन, जीवन, शाश्वत जीवन' चिल्लाते हुए दौड़ेगा ? यदि इस प्रश्न का उत्तर और कहीं कोई नहीं देगा, केवल ईसाई को देना होगा, तो हमारा मानवी प्रकृति की समानता का ज्ञान बताता है कि हम यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि ईसाई की मृत्यु विनाश के नगर में हो जायगी। किन्तु इस कथा के क्लासिक संस्करण में हमें बताया गया है कि मानव नायक कठिन समय में अपने ही साधनों पर नहीं छोड़ दिया गया था। बुनयन के अनुसार ईसाई को धर्मप्रचारक ने बचाया था। और यह मानकर ईश्वर की प्रकृति मनुष्य की प्रकृति से स्थिर नहीं होती। हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारे समाज को एक बार जो क्षमा ईश्वर ने प्रदान की उसे दूसरी बार वह इनकार नहीं कर सकता यदि हम प्रायश्चित्तपूर्ण हृदय से प्रार्थना करेंगे।

२२. विघटन द्वारा मानकीकरण

सभ्यताओं के विघटन की प्रक्रिया की खोज की समाप्ति पर हम पहुँच गये हैं, किन्तु समाप्ति के पहले एक प्रश्न पर और विचार करना है। जिन बातों पर हम अभी तक विचार करते आये हैं उनमें यह देखना है कि कोई प्रमुख-प्रवृत्ति तो नहीं काम कर रही है। और हम निश्चय रूप से देखते हैं कि मानकीकरण और एकरूपता की प्रवृत्ति (विघटन में) काम करती है, जिस प्रकार सभ्यताओं के विकास की स्थिति में इसके विपरीत विशिष्टीकरण और विभिन्नता की प्रवृत्ति होती है। ऊपर सतही दृष्टि से हमने देखा है कि विघटन में साढ़े तीन विस्पन्दन बराबर लय के ढंग पर होता है। इससे और महत्त्वपूर्ण एकरूपता का चिह्न यह है कि विघटनोन्मुख समाज में तीन स्पष्ट वर्गों में विभाजन का भेद हो जाता है और उनमें प्रत्येक एक ढंग का सर्जनात्मक कार्य करता है। हमने देखा है कि शक्तिशाली अल्पसंख्यक समान ढंग से दार्शनिक कार्य करते हैं और सार्वभौम राज्य स्थापित करते हैं, आन्तरिक सर्वहारा समान रूप से 'महान् धर्मों' का आविष्कार करते हैं जो सार्वभौम धर्मतन्त्र में अपने को व्यक्त करना चाहते हैं और बाहरी सर्वहारा सेना को एकत्र करते हैं और ऐसा कार्य करते हैं कि उस युग को 'वीर काल' कहा जाता है। ये संस्थाएँ समान रूप से उत्पन्न होती हैं और वे इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि जिस ढंग से विघटन की यह प्रक्रिया होती रहती है उसी ढंग से हमने इस अध्याय के अन्त में इसे सारणी के रूप में अङ्कित किया है। इससे भी अधिक व्यवहार, भावना और जीवन की समानता है और आत्मा के भेद के अध्ययन से प्रकट होता है।

पेनिलोप के जाला के दृष्टान्त तथा ऐसे ही समान उदाहरणों पर विचार करने से वही विषमता हमें मिलती है जो विकास में विभिन्नता और विघटन में एकरूपता में है। जब अनुपस्थित ओडीसियस की सती पत्नी ने अपने अनेक हठी प्रेमियों को वचन दिया कि ज्योंही मैं वृद्ध लेअरटेज़ (ओडीसियस के पिता) के लिए यह कफन बीनना समाप्त कर लूँगी, तुममें से किसी से विवाह कर लूँगी। तो वह अपने करघे पर प्रतिदिन कपड़ा बीनती थी और दिन में जितना बीनती थी, उतना रात में उधेड़ डालती थी। जब वह प्रातःकाल बीनना आरम्भ करती थी, उसके सम्मुख अनेक नमूने थे, और यदि वह चाहती तो प्रतिदिन नये नमूने के कपड़े बुनती। किन्तु रात का काम एकरस था, क्योंकि उधेड़ने में कोई भी नमूना हो, कोई अन्तर नहीं हो सकता था। दिन में चाहे उसकी गति कितनी भी जटिल होती रही हो, रात में तो केवल तागा निकालने का काम था।

रात के इस अनिवार्य नीरसता के लिए पेनिलोप पर दया आती है। यदि यह नीरसता उद्देश्यहीन होती तो यह श्रम असह्य होता। उसे जिससे प्रेरणा मिलती थी वह उसकी आत्मा के अन्दर एक गीत था—'उससे मेरा मिलन होगा।' वह आशा पर जीवित थी और काम कर रही थी, और वह निराश नहीं हुई। नायक लौटकर आया, नायिका उसी की रही, अन्त में दोनों का मिलन हो गया।

यदि पेनिलोप का धागा निकालना निरर्थक नहीं हुआ तो उस महान् बुनकर का कैसे होगा जिसके कार्य का हम अध्ययन कर रहे हैं, और जिसका गीत गोएटे की कविता में अभिव्यक्त है—

जीवन की धारा में, गति की झंझा में
कार्य के उत्साह में, अग्नि में, तूफान में
यहाँ और वहाँ
ऊपर और नीचे
मैं चलता हूँ और घूमता हूँ
जन्म और मरण
असीम सागर
जहाँ विक्षुब्ध तरंगें
सदा उठती हैं
उनके उत्तेजित संघर्ष के
नीचे और ऊपर
उभरती हैं और बुनती हैं
जीवन के परिवर्तन ।
समय के चलते करघे में निर्भय होकर
मैं ईश्वर के लिए वस्त्र बुनता हूँ ।[1]

धरती की आत्मा का यह कार्य, समय के करघे पर बुनना और फिर तागे का उधेड़ना, मनुष्य का लौकिक इतिहास है । यह मानव-समाज की उत्पत्ति, विकास और पतन तथा विघटन में व्यक्त होता है । जीवन के इस असमंजस में और कर्म के तूफान में तात्त्विक लय का विस्पन्दन हमें सुनाई देता है, जिसकी विभिन्नता हमने इन रूपों में जाना है—चुनौती और सामना, विलगाव और वापसी, पराजय और जमाव, विभाजित होना और सम्बन्धित होना, भेद और पुनर्जन्म । यह तात्त्विक लय हमें प्रत्यावर्ती यिन और यांग के विस्पन्दन में मिलता है । इसके सुनने में हमने यह जान लिया है कि चाहे (ग्रीक नृत्य के) गायन का उत्तर विपरीत गायन[2] हो, जय के बाद पराजय हो, रचना के बाद विनाश हो, जन्म के बाद मरण हो, इस लय के विस्पन्दन की गति न तो अनिर्णीत युद्ध की अस्थिरता है, न मशीन के पहिये के चक्र का आवर्तन है । पहिये का बराबर घूमना बेकार नहीं है, यदि प्रत्येक परिक्रमा में वह लक्ष्य के निकट पहुँचता है और यदि पुनर्जन्म का अभिप्राय कोई नवीन जन्म है, और केवल किसी ऐसी वस्तु का पुनर्जन्म नहीं जो मर चुकी है, तब जीवन का चक्र केवल पैशाचिक यन्त्र नहीं है, जो इक्सिमान को शाश्वत दण्ड देने के लिए बना है । इस प्रमाण से यिन और यांग के संगीत के विस्पन्दन की लय सर्जन का गीत है और यदि हम उसे सुनकर उसमें यह पायें कि रचना के स्वर

---

[1] गोएटे : फाउस्ट २, ५०१–६ (आर० एन्सटेल का अनुवाद)

[2] ग्रीक नृत्य में एक गायन होता है, फिर घूमने पर दूसरा गायन होता है—जिसे स्ट्रोफी और एंटीस्ट्रोफी कहते हैं ।— अनुवादक

के बाद विनाश का स्वर है, तो हम पथ-भ्रष्ट नहीं होंगे। इस कारण यह गीत पैशाचिक कपट नहीं है, दोनों स्वर वास्तविकता के प्रमाण हैं। यदि हम अच्छी तरह सुनें तो हम देखेंगे कि जब दो स्वर टकराते हैं, तब विस्वरता नहीं सहस्वरता उत्पन्न होती है। रचना रचनात्मक न होती, यदि अपने विरोधी को भी वह निगल न जाती।

किन्तु उस सजीव वस्त्र का क्या जो धरती की आत्मा बुनती है? क्या वह ज्योंही बुना जाता है स्वर्ग में रख दिया जाता है या हम पृथ्वी पर भी उस अलौकिक बुनावट के कुछ टुकड़े देख सकते हैं? हम उन तन्तुओं का क्या समझें जो वस्त्र उधेड़ते समय करघे के पास पड़े रह जाते हैं? सभ्यताओं के विघटन में हमने देखा कि उसकी यात्रा चाहे सारहीन हो, अपने पीछे भग्नावशेष छोड़े, वह समाप्त नहीं होती। जब सभ्यताओं का विनाश होता है तब अपने पीछे वे सार्वभौम राज्यों, सार्वभौम धर्मतन्त्रों और बर्बर सेना-दलों का अवशेष छोड़ जाती हैं। हम इन पदार्थों को क्या करें? क्या ये केवल उच्छिष्ट पदार्थ हैं, या यदि हम इन कचरों को चुन लें तो बुनकर की कला के नये उत्कृष्ट नमूने उनसे तैयार होंगे, जिसे उस खड़खड़ाते करघे के बजाय, जिस पर अभी तक उसका सारा ध्यान था, किसी अज्ञात करों के कौशल ने बुना है?

इस प्रश्न पर विचार करते हुए यदि हम अपने पहले के अनुसंधानों के परिणाम पर ध्यान दें तो हम यह विश्वास कर सकेंगे कि ये अध्ययन की सामग्रियाँ सामाजिक विघटन की केवल उच्छिष्ट पदार्थ नहीं हैं। इससे कुछ अधिक हैं। क्योंकि पहले वे हमें विभाजन और सम्बन्ध के रूप में मिलती हैं, और यही एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता का सम्बन्ध है। स्पष्टतः इन तीनों संस्थाओं की व्याख्या किसी एक सभ्यता के इतिहास के माध्यम से नहीं हो सकती। उनके अस्तित्व के कारण एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता का सम्बन्ध है, इसलिए इनका अध्ययन अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से होना चाहिए। किन्तु उनकी यह स्वतन्त्रता उन्हें कितनी दूर तक ले जायेगी। सार्वभौम राज्यों पर विचार करते हुए हमने देखा कि जो शान्ति उन्होंने स्थापित की वह प्रभावोत्पादक होने के साथ ही अस्थायी थी और बर्बर सेना-दलों के सम्बन्ध में विचार करते हमने देखा कि मृत सभ्यता के शव के ये कीड़े उससे अधिक नहीं जी सकते, जब तक यह सड़ती लाश गलकर अपने तत्त्वों में न मिल जाय।

फिर भी यद्यपि सैन्य दल एकिलीज़ की अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, बर्बर के अल्प-जीवन की प्रतिध्वनि उन महाकाव्यों में सुरक्षित रहती है जो वीर काल में रचे जाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि हम सम्प्रति इस नये प्रश्न का उत्तर तुरत नहीं दे सकते, यह भी स्पष्ट है कि हम उसकी अवहेलना भी नहीं कर सकते, क्योंकि इसी प्रश्न में बुनकर के कार्य का अभिप्राय निहित है। हमारा अध्ययन अभी पूरा नहीं हुआ है, परन्तु हम अपने अनुसन्धान के क्षेत्र के किनारे पहुँच गये हैं।

सम्पादक का नोट

पहली चार सारणियाँ वही हैं जो श्री ट्वायनबी की मूल पुस्तक में हैं। ये उस महान् कार्य को बताती हैं जो सामाजिक विघटन के परिणाम हैं। पाँचवीं सारणी थियालोजी आव टुडे, खण्ड पहला, अंक ३ से सम्पादक डॉक्टर जॉन ए० मेके तथा डॉक्टर उडवर्ड डी० मायर्स की कृपा से ली गयी हैं। डॉक्टर मायर्स ने उसमें एक लेख लिखा था 'समलीडिंग आइडियाज़ फ्राम ट्वायनबीज़ ए स्टडी आव हिस्ट्री' उसी के समझाने के लिए यह सारणी उन्होंने बनायी थी। इस सारणी से ट्वायनबी के पहले छ खण्डों के सारे क्षेत्र का सिंहावलोकन हो जाता है।

पाठक को इस संक्षिप्त संस्करण में अनेक नाम तथा तथ्य ऐसे मिलेंगे जिनसे वह अपरिचित है। उसका कारण यह है कि इस संक्षिप्त संस्करण के सम्पादक ने बहुत-से नाम तथा उदाहरण जान-बूझकर छोड़ दिये हैं। और बहुत-सा ब्योरा छाँट दिया है। इसलिए ये सारणियाँ यही नहीं कि लेखक के अध्ययन के बहुत-से परिणामों को स्पष्ट करेंगी, किन्तु यह भी स्मरण दिलायेंगी कि इस संक्षिप्त संस्करण में पाठकों को कितनी बातें नहीं मिल सकीं।

पहली सारणी

सार्वभौम राज्य

सभ्यता	संकटकाल	सार्वभौम राज्य	विश्व-शान्ति	साम्राज्य-निर्माताओं का उद्गम
सुमेरी	सं० २५२२–२१४३ या २४५८–२०७९ ई० पू०	सुमेर और अक्काद का साम्राज्य चार दिशाओंका राज्य	सं० २१४३–१७५० या २०७९–१६८६ ई० पू०	निर्माता उरके नागरिक पुनःस्थापितकर्ता अमोराइट सीमानिवासी।
बैबिलोनी	–६१० ई० पू०	नव-बैबिलोनी साम्राज्य	६१०–५३९ ई० पू०	निर्माता नागरिक(?)[1] (कालडियन उत्तराधिकारी बर्बर) अकामिनीडीः और विदेशी सेल्युकेडी।
भारती	–३२२ ई० पू०	मौर्य साम्राज्य गुप्त साम्राज्य	३२२–१८५ ई० पू० सन् ३९०–४७५सं०	निर्माता नागरिक (?)[2] मगध से " "
चीनी	६३४–२२१ ई० पू०	त्सिन और हैन साम्राज्य	२२१ई०पू०–सं० सन्१७२	निर्माता त्सिन की सीमा से उत्तराधिकारी पहले तथा बाद के हैन।
हेलेनी	४३१–३१ ई० पू०	रोमन साम्राज्य	३१ ई० पू० से सन् ३७८	निर्माता सीमावाले(रोमन) पुनःस्थापितकर्ता सीमावाले, इलीरियन।
मिस्री	सं० २४२५–२०५० ई० पू०	मध्य साम्राज्य नया साम्राज्य	सं० २०५०–१६७५ ई० पू० सं० १५८०–११७५ ई० पू०	थीबीस की सीमावाले। " "
परम्परावादी ईसाई (रूस में)	सं० सन् १०७५–१४७८ ई०	मसकोवाइट साम्राज्य	सन् १४७८–१८८१	मास्को के सीमावाले।
सुदूर पूर्व (जापान में)	सन् ११८५–१५९७	हिदेयोशी अधिनायक तथा तोकुगावा शोगुनेत	सन् १५९७–१८६८	क्वान्तो की सीमावाले।
पश्चिमी (मध्ययुगीन नगर-राज्यों का समूह)	सं० सन् १३७८–१७९७	नैपोलियन का साम्राज्य	सन् १७९७–१८१४	फ्रान्स के सीमावाले।
पश्चिमी (उसमानलियों के विरुद्ध कवच)	सं० ११२८[3]–१५२६ ई०	डैन्यूबका हैप्सबुर्ग राज्य	सन् १५२६–१९१८	आस्ट्रिया की सीमावाले।

ऐंडियाई	सं० सन् १४३०	इनका साम्राज्य (चारो दिशाओं का राज्य)	सं० सन् १४३०–१५३३	निर्माता क्यूज़को की सीमावाले उत्तराधिकारी (स्पेनी)
सीरियाई	सं० ९३७–५२५ ई० पू०	अकिमीनियाई साम्राज्य	सं० ५२५–३३२ ई० पू०	बारबारो सीमाप्रान्ती (ईरानी से)।
		अरब खलीफा	सं० सन् ६४०–९६९	वर्बर अरब से ।
सुदूर पूर्व (मुख्य अंग)	सन् ८७८–१२८०	मंगोल साम्राज्य	सन् १२८०–१३५१	बारबारो विदेशी मंगोल ।
		मंचू साम्राज्य	सन् १६४४–१८५३[४]	बारबारो सीमाप्रान्ती (मंचू) ।
मध्य अमरीकी	सन् १५२१	नये स्पेन के वायसराय	सन् १५२१–१८२१	अग्रगामी बारबारो सीमा-प्रान्ती (एजटेक) निर्माता विदेशी (स्पेनी)
परंपरावादी ईसाई (मुख्य अंग)	सन् ९७७–१३७२	उसमानिया साम्राज्य	सन् १३७२–१७६८	विदेशी (उसमानली लोग)
हिन्दू	सं० सन् ११७५–१५७२	मुगल राज्य	सं० सन् १५७२–१७०७	विदेशी मुगल
		ब्रिटिश राज्य	सं० सन् १८१८–१९४७	विदेशी ब्रिटिश
मिनोई	सं०—१७५० ई० पू०	मिनोइयों का सागरी राज्य	सं० १७५०–१४०० ई० पू०	प्रमाण नहीं

नोट– सं० = सम्भवतः ।

१. बैबिलोनिया के कालडियन सीमाप्रान्ती भी कहे जा सकते हैं, नागरिक भी ।

२. मगध को पूर्व मौर्यकाल तथा मौर्यकाल के भारत का आन्तरिक भाग कह सकते हैं या उस काल के भारत का सीमाप्रान्त ।

३. पूर्वी रोमन अग्रगामी उसमानलियों तथा हंगरी के युद्ध के आरम्भ की तारीख ।

४. ताईपिंग आक्रामकों द्वारा नानकिंग लेने की तिथि ।

दूसरी सारणी

दर्शन

सभ्यताएँ	दर्शन
मिस्री	एटोनवाद (अकाल प्रसूत)
एंडियाई	विराकोकेईवाद (अकाल प्रसूत)
चीनी	कनफ्युशियनवाद
	मोवाद
	टाओवाद
सीरियाई	ज़रवानवाद (अकाल प्रसूत)
भारतीय	हीनयान बौद्ध
	जैन
पश्चिमी	कारटेसियनवाद
	हीगलवाद[1]
हेलेनी	प्लेटोवाद
	स्टोइकवाद
	एपिक्युरियनवाद
	पिर्रहनवाद
बैबिलोनी	ज्योतिष

---

[1] हीग़लवाद सामाजिक कार्यों तक सीमित = मार्क्सवाद; मार्क्सवाद पश्चिम से रूस में लाया गया = लेनिनवाद

तीसरी सारणी

ऊँचे धर्म

सभ्यताएँ	ऊँचे धर्म	प्रेरणा का स्रोत
सुमेरी	तम्मुज़की पूजा	देशी
मिस्री	ओसाइरीसकी पूजा	विदेशी (सुमेरी) ?
चीनी	महायान	विदेशी (भारतीय हेलेनी-सीरियाई)
भारतीय	हिन्दू धर्म	देशी
सीरियाई	इस्लाम	देशी
हेलेनी	ईसाई	विदेशी (सीरियाई)
	मिथ्रवाद	विदेशी (सीरियाई)
	मानिकेइज्ज्म	विदेशी (सीरियाई)
	महायान	विदेशी (भारतीय)
	आइसिस-उपासना	विदेशी (मिस्री)
	साइबेले-उपासना	विदेशी (मिस्री)
	नव-प्लेटोवाद	देशी (सी देवान्त दर्शन)
बैबिलोनी	यहूदी	विदेशी (सीरियाई)
	पारसी	विदेशी (सिरियाई)
पश्चिमी	बहाईवाद	विदेशी (ईरानी)
	अहमदिया	विदेशी (ईरानी)
परम्परावादी ईसाई	इमामी शिया	विदेशी (ईरानी)
(मुख्य भाग)	बद्रुद्दीनवाद	अर्ध-विदेशी (ईरानी मिलावट)
परम्परावादी ईसाई	सम्प्रदायवाद (सेकेरियनिज्म)	देशी
(रूस में)	पुनर्जागरणवादी (रिवाइवलिस्ट)	विदेशी (पश्चिमी)
	प्रोटेस्टेंट धर्म	
सुदूर पूर्व	कैथोलिकवाद	विदेशी (पश्चिमी)
(मुख्य भाग)	ताइपिंग	अर्धविदेशी (पश्चिमी मिलावट)
सुदूर पूर्व (जापान में)	जोडो	अर्ध-विदेशी (सुदूर पूर्वी मुख्य भाग से)
	जोडो शिनशू	देशी (जोडो से)
	निकेरीवाद	देशी
	ज़ेन	अर्धविदेशी (सुदूर पूर्व मुख्य भाग से)
हिन्दू	कबीर और सिक्ख	अर्धविदेशी (इस्लामी मिलावट)
	ब्रह्म समाज	अर्धविदेशी (विदेशी मिलावट)

		उत्तर-पश्चिम	लीबियन		येहोवा की पूजा
		पूरब	हिब्रू तथा आरमियाई		
		उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश सरमेशियन तथा हूण		सेतकी पूजा
		दक्षिण-पश्चिम	अरब	होमरी महाकाव्य	ओलिम्पियाई
		दक्षिण-पश्चिम	बर्बर		बहुदेवता पूजा ।
		पूर्व	हिब्रू और आरामियाई		येहोवा की पूजा ।
परम्परावादी ईसाई (रूस में)	मसकोवाइट साम्राज्य	दक्षिण-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (तातारी तथा तोरगुट कालमुक)		इस्लाम लामा वाला महायान बौद्ध धर्म ।
सुदूर पूर्व	तोकुगावा शोगूनेत	उत्तर-पूर्व	ऐनू		
पश्चिमी	(यूरोप में)	उत्तर-पश्चिम	द्वीपवाले केल्ट	आयरिश महाकाव्य	सुदूरपूर्व पश्चिमी ईसाई
		उत्तर	स्कैंडिनेवियाई	आइसलैंडी सागा	स्कैंडिनेवियाई बहुदेवता
		उत्तर-पूर्व	महाद्वीपी सैक्सन वैन्ड लिथुएनियन		
		पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (मगयर)		
		दक्षिण पूर्व	बोसनियक	मुसलिम जुगोस्लैव वीर काव्य	पहले बोगोमिलिवाद फिर इस्लाम
इन्डियाई	उत्तरी अमरीका में इनका साम्राज्य	पश्चिम	रेड इंडियन		अहिंसावादी जेलटवाद
		पूर्व-दक्षिण	अमेजोनियन अरोकेनियन		
सीरियाई	अकेमीनियाई साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	मैसेडोनियन	सिकन्दरी रोमान्स	
		उत्तर-पूर्व	पारथियन शक	ईरानी महाकाव्य	
	अरब खिलाफत	उत्तर-पश्चिम	फ्रैंक	फ्रेंच महाकाव्य	कैथोलिक धर्म

चौथी सारणी

वर्बर युद्ध-दल

सभ्यता	सार्वभौम राज्य	सीमा	वर्बर	काव्य	धर्म
सुमेरी	सुमेर तथा अक्काद का साम्राज्य	उत्तर-पूर्व	गेटुइयन यूरेशियाई खानाबदोश (आर्य) कस्साइत	संस्कृत महाकाव्य	वैदिक बहुदेवता
		उत्तर-पश्चिम	हिताइत		हिताइत बहुदेवता
बैबिलोनी	नव-बैबिलोनी साम्राज्य	उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (सीथियाई) मीड तथा परशियन		जरथूष्ट्र
भारती	मौर्य साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	शक	संस्कृत महाकाव्य पुनः निर्मित	
	गुप्त साम्राज्य	"	हूण, गुर्जर		
चीनी	त्सिन तथा हैन साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	यूरेशियाई खानाबदोश हियोगनू, तोपा, जुआन जुआन		
		उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (सिएनपी) ?		
हेलेनी	रोमन साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	द्वीप के केल्ट	आयरिश महाकाव्य	सुदूर पश्चिम के ईसा
		उत्तर	महाद्वीपी टयूटोन	ट्यूटोनी महाकाव्य	पहले महाद्वीपी टयूटनी बहुदेवता वाद फिर एरियनवाद ।
मिस्री	मध्य साम्राज्य	दक्षिण	न्यूबियन	पूर्व इस्लामी अरबी काव्य	इस्लाम
	नया साम्राज्य	उत्तर-पूर्व-	हाइक्सो		
		उत्तर	एकियाई		

सभ्यता	सार्वभौम राज्य	सीमा	बर्बर	काव्य	धर्म
			पूर्व रोमन सीमावाले	बाइजैन्तियाई महा काव्य	परम्परावादी ईसाई
		दक्षिण पश्चिम	बर्बर		इसमाइली शीवाद
		दक्षिण पूर्व	अरब		,, ,,
		उत्तर	यूरेशियाई खानाबदोश खजार		जूडावाद
		उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (मंगोल, तुर्क)		मीकेईवाद, नैस्टोरीवाद
सुदूर पूर्वी (मुख्य अंग)	संकट काल	उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश खोतान, किन मंगोल		
	मंचू साम्राज्य	उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (मंगोल)		
		उत्तर-पश्चिम	यूरेशियाई खानावदोश (जुंगर), कालमुक		लामा वाला महायानी बौद्ध धर्म
मध्य अमरीकी	नये स्पेन का वायसराय	उत्तर	चिचिमेक		
परम्परावादी ईसाई (मुख्य अंग)	उसमानिया साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	सर्ब	परम्परावादी ईसाई जूगोस्लाव के काव्य	
			अलबेनियाई	अलबेनियाई वीर काव्य	बेक़्ताशी सुन्नी
			रूमेलियोट यूनानी	रोमेलियोट यूनानी आरमेटोल तथा क्लेपटिक वीर काव्य	
		उत्तर-पूर्व	लेज़ कुर्द		
		दक्षिण-पूर्व	अरब		नजदी वहाबी कोरदोफानी
		दक्षिण	अरब		

हिन्दू	मुगल राज	उत्तर-पश्चिम	उजबक, अफगान		महदीवाद
	ब्रिटिश राज	उत्तर-पश्चिम	अफगान		
मिनोई	मिनोसका सागरतन्त्र	उत्तर	एकियाई	होमरी महाकाव्य	ओलिंसपयाई बहुदेवतावाद
		पूरब	हिब्रू तथा आरमियाई		येहोवा की पूजा
ईरानी	संकट का काल	उत्तर-पूर्व	उजबक अफगान		
हिताइत		उत्तर-पूर्व	गैसगा		
		उत्तर-पश्चिम	फ्रिजियाई		
		दक्षिण-पश्चिम	एकियाई	होमरी महाकाव्य	ओलिम्पियाई बहुदेवतावाद
यूरेशियाई खानाबदोश	शाही सीथियन दल	उत्तर			
		पश्चिम	बैसतरनी		
		पूरब	सरमाशियन		
	खजार दल	पश्चिम	वरान्जियन	रूसी वीर काव्य गीत	परम्परावादी उत्तर ईसाई
		पूरब	पेचेनेग		
	सुनहरा दल	उत्तर-पश्चिम	कजाक	किरगिज कजाक के गीत	
		उत्तर-पूर्व	किरगिज कजाक		

पाँचवीं सारणी

सभ्यता		सम्बन्ध	उद्गम का देश तथा समय
१. मिस्री		किसी से सम्बन्ध नहीं	नील नदी की घाटी, ४००० ई० पू० से पहले
२. ऐंडियाई		किसी से सम्बन्ध नहीं	ऐंडियाई तट तथा पठार। ईसाई संवत् के आरम्भ के समय से
३. चीनी		पहले किसी से सम्बन्ध नहीं। सुदूर पूर्वी से प्रजनित	हांगहो नदी की निचली घाटी। सम्भवतः १५००ई०पू०
४. मिनोई		पहले किसी से सम्बन्ध नहीं। हेलेनी तथा सीरियाई से (अदृढ़) प्रजनित	एजियन द्वीप—३००० ई० पू० से पहले
५. सुमेरी		पहले से सम्बन्ध नहीं? बैबिलोनी तथा हेलेनी से प्रजनित	दजला तथा फरात की निचली घाटी सम्भवतः ३५०० ई० पू०
६. माया		पहले से सम्बन्ध नहीं—यूकेटी तथा मैक्सीकी से प्रजनित	दक्षिण अमरीकी उष्ण कटिबन्ध सम्भवतः ५०० ई०पू० से पहले
७. यकेटी	मिलकर मध्य अमरीकी निर्मित	माया से संबद्ध	यूकेटियाई प्रायःद्वीप के जलहीन, वृक्षविहीन, चूना-पत्थर की पट्टी
८. मैक्सीकी			
९. हितायती		सुमेरी से अदृढ़ रूप से सम्बन्धित किन्तु धर्म अ-सुमेरी	सुमेरी सीमा से आगे कैपेडोशिया में १५०० ई० पू० से पहले
१०. सीरियाई		मिनोई से अदृढ़ सम्बन्ध ईरानी तथा अरबी से प्रजनित	सीरिया : ११०० ई०पू० से पहले
११. बैबिलोनी		सुमेरी से निकट सम्बन्ध	इराक : १५०० ई०पू० से पहले
१२. ईरानी	मिलकर इस्लामी	दोनों सीरियाई से सम्बन्धित और सन् १५१६ के बाद मिलकर इस्लामी समाज वना	अनातोलिया, ईरान, आक्सस-जैक्सार्टीज सन् १३०० के पहले
१३. अरबी			अरब, इराक, सीरिया, उत्तरी अफ्रीका सन् १३०० के पहले
१४. सुदूर पूर्वी, मुख्य अंग		चीनी से सम्बन्धित, एक शाखा जापान में	सन् ५०० के पहले
१५. सुदूर पूर्वी, जापानी शाखा		सुदूर पूर्वी के मुख्य अंग की शाखा	जापानी द्वीप समूह सन् ५०० के वाद
१६. भारतीय		पहले के किसी से सम्बन्ध नहीं, हिन्दू से प्रजनित	सिन्ध तथा गंगा नदी की घाटी सम्भवतः १५००ई०पू०

१७. हिन्दू	भारतीय से सम्बन्धित	उत्तरी भारत, सन् ८०० से पहले
१८. हेलेनी	मिनोई से अदृढ़ सम्बन्धित, पश्चिमी तथा परम्परावादी ईसाई से प्रजनित	एजियन का तट तथा द्वीप, ११०० ई० पू०
१९. परम्परावादी ईसाई, मुख्य अंग	हेलेनी से सम्बन्धित, एक शाखा रूस में	अनातोलिया सन् ७०० से पहले ११वीं शती में
२०. परम्परावादी ईसाई, रूसी शाखा	परम्परावादी ईसाई के मुख्य अंग की शाखा	रूस, ईसाई संवत् की १० वीं शती
२१. पश्चिमी	हेलेनी से सम्बन्धित	पश्चिमी यूरोप, सन् ७०० के पहले

चुनौती	संकट-काल	सार्वभौम राज्य
१. भौतिक : सूखा पड़ना	सं० २४२४–२०५२ ई०पू०	मध्य साम्राज्य नया साम्राज्य
२. भौतिक : तट की मरुभूमि मिट्टीविहीन पठार, जलवायु कठोर	सं० १४३० ”	इनका साम्राज्य आयरलैण्ड के बाद पेरू के स्पेनी वायसराय
३. भौतिक : दलदल, बाढ़, तापक्रम की पराकाष्ठा	सं० ६३४–२२१ ई० पू०	त्सिन तथा हैन साम्राज्य
४. भौतिक : सागर	?—१७५० ई० पू०	मिनोइयों का सागर तंत्र
५. भौतिक : सूखा पड़ना	सं० २६७७–२२९८ ई० पू०	सुमेर और अक्काद का साम्राज्य
६. भौतिक : उष्ण कटिबन्ध के जंगल। घने जंगल	?—३०० ईस्वी	माया का साम्राज्य
७. भौतिक : उजाड़ प्रायद्वीप' सामाजिक	?—१५२१ ईस्वी	नये स्पेन के वायसराय। एजटेक सार्वभौम राज्य बनानेवाले ही थे कि स्पेनवाले आ गये।
८. पतनोन्मुख माया समाज		
९. सामाजिक : पतनोन्मुख सुमेरी समाज	पन्द्रहवीं शती ई० पू० तक	अपने संसार में प्रमुख, १३५२ ई० के बाद मिस्र से
१०. सामाजिक : पतनोन्मुख मिनोई समाज	सं० ९३७–५२५ ई० पू०	अकिमीनियाई साम्राज्य, अरब के खलीफा
११. सामाजिक : पतनोन्मुख सुमेरी समाज	?—६१० ई० पू०	नव बैबिलोनी समाज

१२. सामाजिक : पतनोन्मुखसीरियाई समाज		
१३. सामाजिक : पतन्नोन्मुख सीरियाई समाज		
१४. सामाजिक : पतनोन्मुख चीनी समाज		
१५. भौतिक : नयी धरती	८७८–१२८० ई०	मंगोल साम्राज्य मंचू, साम्राज्य
सामाजिक : मुख्यअंग से सम्पर्क	११८५—१५९७ ई०	हिन्दोयशी का अतिनायकवाद और कोकुगावा शकेगुनेट
१६. भौतिक : उष्ण कटिबन्ध के घने जंगल		
१७. सामाजिक : भारतीय समाज का विघटन	?—३२२ ई० पू०	मौर्य साम्राज्य , गुप्त साम्राज्य
१८. भौतिक : उजाड़ धरती और सागर	सं० ११७५–१५७२ ईस्वी	मुगल राज, ब्रिटिश राज
सामाजिक : मिनोई समाज का विघटन	४३१–३१ ई० पू०	रोमन साम्राज्य
१९. सामाजिक : हेलेनी समाज का विघटन		
२०. भौतिक : नयी धरती	९७७–१३७२ ई०	उसमानिया साम्राज्य
सामाजिक : मुख्य अंग से सम्पर्क		मसकोवी साम्राज्य
२१. भौतिक : नयी धरती	१०७५—१४७८ ई०	
सामाजिक : हेलेनी समाज का विघटन		

सार्वभौम शान्ति	दर्शन	धर्म	धर्म की प्रेरणा का स्रोत
१. सं० २०५२–१६०० ई०पू०	एटनवाद अकाल प्रसूत	ओसाइरिस की उपासना	विदेशी ?—सुमेर ?
सं० १५८०–११७५ ई०पू०		एटनवाद	
२. १४३०–१५३३ ई०	विराकोकेईवाद अकाल प्रसूत		
३. २२१ ई०पू० से १७२ ई०	पोवा, ताओवाद कन्फ्यूशियनवाद	महायान बौद्ध धर्म नव ताओ वाद	विदेशी भारतीय–हेलेनी-सीरियाई देशी किन्तु नकल
४. सं० १७५०–१४०० ई०पू०			
५. सं० २२९८–१९०५ ई०पू०	तम्बूज की पूजा—किन्तु सुमेरी समाज ने कोई ऐसी नयी कृति नहीं दी जो नया धर्म कहा जा सके ।		
६. सं० ३००–६९० ई०	माया, हितायती, बैबिलोनी तथा भारतीय समाज विघटन के साथ आदिम मानव की विशेषता की ओर लौटते जान पड़ते हैं । अपने धर्म के काम-प्रवृत्ति तथा अपने दर्शन के अतिशय त्याग के बीच का, भावना के प्रति वे उदासीन हो जाते हैं, जब वे प्राचीन सामाजिक संरचना को ढहते हुए देखते हैं, पाप की भावना का अनुभव करते हैं ।		
७. १५२१–१८२१ ई०			
८.			
९.			
१०. सं० ५२५–३७२ ई०पू०	जरवनवाद अकाल प्रसूत	इस्लाम	देशी
सं० ६४०–९६९ ई०पू०			देशी
११. ६१०–५३९ ई०पू०	ज्योतिष	जूडावाद	विदेशी सीरियाई
		जोरास्टरवाद	विदेशी सीरियाई
१२.			
१३.			
१४. १२८०–१३५१ ई०		कैथोलिकवाद	विदेशी पश्चिमी
१६४४–१८५३ ई०		ताईपिंग	अर्ध-विदेशी पश्चिमी अंश
१५. १५९७–१८६३ ई०		जोडो	अर्द्ध-विदेशी मूल अंग से
		जोड़ो शिन्श	देशी
		निचिरेनवाद	देशी
		जेन	अर्द्धविदेशी मूल अंग से
१६. ३२२–१८५ ई०पू०	हीनयान बुद्ध धर्म, जैन धर्म	हिन्दू	देशी
३००–४७५ ई० सं०			देशी

१७. सं० १५७२–१७०७ ई०		कबीरपंथ, सिक्ख ब्रह्मसमाज	अर्द्ध-विदेशी—इस्लामी
सं० १८१८ ई०			अर्द्ध-विदेशी—विदेशी अंश
१८. ३१ ई०पू० ३७८ ई०	प्लेटोवाद	ईसाई	विदेशी-सीरियाई
	स्टोइकवाद	मिथ्रवाद	विदेशी-सीरियाई
	एपिक्यूरियनवाद	मनिकेईवाद	विदेशी-सीरियाई
	पाइरसीनवाद	आइसिस पूजा	विदेशी-मिस्री
		महायान बुद्ध धर्म	विदेशी-भारतीय
		सिबिले की पूजा	विदेशी–हितायती
		नव प्लेटोवाद	देशी
१९. १३७२–१७६८ ई०		इमापी शिया	विदेशी-ईरानी
		बदरुद्दीनवाद	अर्द्धविदेशी-ईरानी अंश
२०. १४७८–१८८१ ई०		सम्प्रदायवाद	देशी
		पुनर्जीवित प्रोटेस्टेंटवाद	विदेशी-पश्चिमी
२१.			

भोजपुरी प्रकाशन मण्डल

दण्डी स्वामी विमलानन्द सरस्वती
संरक्षक

३✓
३०
३१
३✓
१३✓
२६
२०
५५

① राजगुरुमठ, शिवालाघाट, वाराणसी में संपूर्णानंद संस्कृतविश्वविद्यालय के कुलपति डा० रामकरण शर्मा के अभिनंदन समारोह पर लिया गया चित्र। बायें से डा० रघुनाथ सिंह, डा० रामकरण शर्मा डा० शौनक ब्रह्मचारी, सर्वदर्शनाचार्य, एवं दंडी स्वामी विमलानंद सरस्वती,

② संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति डा० राम करण शर्मा एवं बौद्ध-साहित्य-मर्मज्ञ पं० जगन्नाथ उपाध्याय को समारोह में माल्यार्पण करते हुए दंडी स्वामी विमलानन्द सरस्वती। बायें पार्श्व में पत्रकार नरहरि विष्णु बापट जी।

~~कुलपति~~ डा० राम करण शर्मा, ~~का अभिनंदन~~ का राजगुरुमठ शिवाला घाट में अभिनंदन.

प्रधान कार्यालय– बी० ३/१७५, राजगुरू मठ, शिवालाघाट, वाराणसी।

“सोशल ऐण्ड मिलिट्री पोजीशन
ऑफ द रूलिंग कास्ट इन
ऐन्शयेन्ट इण्डिया।”
ई. W. हॉपकिन्स

मौर्य साम्राज्य का इतिहास
सत्यकेतु विद्यालंकार

वृहत्तर भारत का इतिहास
सत्यकेतु विद्यालंकार

अकाल-प्रसूत सभ्यताएँ––ये सभ्यताएँ जन्म से ही मृत थीं क्योंकि इन्हें अति कठोर चुनौती का सामना करना पड़ा। अकाल-प्रसूत सभ्यताएँ ये हैं––सुदूर पश्चिमी ईसाई सभ्यता, सुदूर पूर्वी ईसाई और स्कैंडिनेवियाई।

सुदूर पश्चिमी ईसाई सभ्यता––केल्टी किनारे पर आरम्भ हुई। मुख्यतः आयरलैंड में, सम्भवतः सन् ३७५ में। यह उस चुनौती का फल थी जो भौतिक थी तथा दोहरी सामाजिक चुनौती के कारण उत्पन्न हुई जो पतनोन्मुख हेलेनी समाज से तथा नवजात पश्चिमी समाज से हुई। अलगाव का काल सम्भवतः सन् ४५० से ६०० तक था। केल्टो ने ईसाइयत को अपने बर्बर सामाजिक परम्परा के अनुसार ढाला। छठीं शती तक आयरलैंड पश्चिम में ईसाइयत का केन्द्र था। इसकी मौलिकता धर्म के संगठन तथा साहित्य और कला में वर्तमान है। इस सभ्यता पर अन्तिम प्रहार नवीं से ग्यारहवीं शती के बीच वाइकिंगों द्वारा हुआ और रोम की धार्मिक शक्तियों ने तथा इंग्लैंड की राजनीतिक शक्तियों ने बारहवीं शती में किया।

सुदूर पूर्वी की ईसाई सभ्यता––यह सभ्यता नेस्टोरी ईसाई धर्म के बीज से आक्सस-जैक्सार्टिज़ बेसिन में उत्पन्न हुई और जब अरबों ने ७३७–४१ ई० में इस प्रदेश को ले लिया, तब वह नष्ट हो गयी जिस समय वह लगभग नौ शतियों तक शेष सीरियाई संसार से अलग हो गयी थी। यह शिशु सभ्यता मध्य एशियाई इतिहास के नौ शतियों का परिणाम थी, जिनमें यह बेसिन में अपना निजी जीवन व्यतीत कर रही थी। उसकी विशेषता यह थी कि इसके द्वारा नये व्यापारिक मार्गों का निर्माण हुआ और बड़ी संख्या में इसके द्वारा यूनानी उपनिवेशक उत्पन्न हुए।

स्कैंडिनेवियाई सभ्यता–जब रोमन सभ्यता का विघटन हुआ, उस समय हेलेनी बाहरी सर्वहारा से यह सभ्यता निकली। मूर्तिपूजक स्लावों के बीच में आ जाने के कारण स्कैंडिनेवियाई लोग रोमन ईसाई जगत से छठीं शती की समाप्ति तक अलग रहे। जब पश्चिम से फिर से सम्पर्क स्थापित हुआ, तब से इनकी अपनी सभ्यता का विकास होने लगा। और जब आइसलैंडवाले ईसाई धर्म को अपनाने लगे इनकी सभ्यता का विनाश होने लगा। इनकी सभ्यता की विशेषता सौन्दर्य-भावना लिये हुए थी और यूनानी संस्कृति से बहुत मिलती है।

अविकसित सभ्यताएँ––इनमें पोलीनेशियाई, एसकिमो, खानाबदोश, स्पार्टन तथा उसमानली वर्ग हैं। इनका विघटन इस कारण हुआ कि इन्होंने असाधारण शक्ति अर्जित करने का प्रयास किया और उसे अर्जित किया। ये ऐसी चुनौती के परिणाम थीं और उस सीमा पर हैं जहाँ कुछ प्रेरणा मिलती है और उस स्थान पर पहुँचती हैं जब क्रमागत ह्रास होने लगता है। स्पार्टनों तथा उसमानलियों के सम्बन्ध में यह चुनौती मानवी थी, और लोगों के सम्मुख चुनौती भौतिक थी। इन सबकी दो विशेषताएँ हैं––जातिवाद तथा विशिष्टीकरण। इन सबने मानवी इच्छा-शक्ति का चमत्कार तथा विचक्षणता दिखायी, किन्तु उसका मूल्य चुकाना पड़ा मानवता के उस गुण से, जिसमें मनुष्य के सर्वतोमुखी होने की विशेषता होती है। इन सबने मानवता से पशुता की ओर अपना पाँव रखा।

एसकिमो––आर्थिक लाभ की प्रेरणा ने इन्हें असाधारण शक्ति दी, जिससे ये समुद्रतट पर अथवा समुद्र पर जो सदा बर्फ से ढँका रहता है जाड़े में भी रहने लगे और सील मछली का शिकार करने लगे। इसमें इनकी शक्ति व्यय होती है कि और किसी प्रकार की उन्नति के लिए शेष नहीं

रह जाती। आर्कटिक जल-वायु के चक्र के अनुकूल रहने के कारण इन्हें अविकसित होने का दण्ड भुगतना पड़ता है।

उसमानली—खानाबदोश समुदाय से विदेशी वातावरण में जाने की भौगोलिक चुनौती का सामना इन्हें करना पड़ा जिससे इन्हें विदेशी मानवी समुदाय पर, पशुओं के स्थान पर शासन करना पड़ा। उनकी सबसे बड़ी शक्ति उसमानिया दास-परिवार की प्रथा थी। अर्थात् मानव को कुत्ते के स्थान पर बादशाह के रिआया पर रक्षा करने तथा वश में करने के लिए ये काम में लाये। अपनी मानवोचित प्रकृति को दूर करके जहाँ तक सम्भव था, इन्होंने सफलता प्राप्त की और पाशव प्रकृति को ग्रहण किया। तथा सहज प्रवृत्ति की एकता की राह को त्याग दिया।

खानाबदोश—जिस प्रकार मिस्री तथा सुमेरी सभ्यताओं को सूखा का सामना करना पड़ा, उसी प्रकार इन्हें भी स्टेप पर सूखे का सामना करना पड़ा। स्टैप को वश में करने में इतनी शक्ति व्यय हो जाती है कि कुछ शेष नहीं रह जाता। खानाबदोशी कृषि से कई बातों में उत्कृष्ट हैं। पशुओं के पालने में तथा आर्थिक तकनीक के विकास में यह कृषि से बढ़कर है। उद्योगवाद के समान है। इसलिए खानावदोशी में ऊँचे चरित्र तथा व्यवहार की आवश्यकता होती है। 'अच्छा गड़ेरिया' ईसाई धर्म का प्रतीक है।

स्पार्टन—ईसा के पहले आठवीं शती में सारे शेलेनी संसार में अति जनसंख्या की समस्या हो गयी थी और स्पार्टनों ने इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया कि ऐसी शक्ति अर्जित की कि सारी आबादी को—उसमानिया संसार की भाँति—सैनिक-शिक्षा केवल दी। मानव भावना का तनिक भी विचार नहीं किया। यह भी एकाकी राह थी। स्पार्टा की प्रथा में तथा उसमानिया प्रथा में अनेक समानताएँ हैं। इसका कारण यह है कि दोनों ने, एक-दूसरे से विभिन्न समुदायों ने स्वतन्त्र रूप से तथा एक-दूसरे के जाने बिना एक ही ढंग अपनाया।

पोलेनेशियाई—इनको सागर की चुनौती का सामना करना पड़ा और इन्होंने सागर-यात्रा करने की महान् शक्ति अर्जित की। उनका कौशल साधारण कमजोर नौकाओं में महासागरों में यात्रा करने में था। इसका उन्हें दण्ड यह मिला कि प्रशान्त महासागर में ही ये रह गये। यह इस सागर को आर-पार करते रहे, किन्तु आत्मविश्वास तथा विश्रान्ति का अभाव था। अन्त में इस तनाव के कारण ये शिथिल हो गये। ईस्टर द्वीप की पत्थर की मूर्तियाँ इस बात की प्रमाण हैं कि इनके निर्माता भूतकाल में महान् रहे होंगे। क्योंकि यह कला इनके पूर्वज अग्रगामी लाये होंगे जिसे उनके वंशजों ने भुला दिया, जिस प्रकार नाविक-विद्या को इन्होंने भुला दिया।

अनुक्रमणिका

१. विषय-प्रवेश

१. ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई

ऐतिहासिक अध्ययन की समझ में आनेवाली इकाइयाँ राष्ट्र अथवा काल नहीं हैं, 'समाज' हैं। सिलसिले से इंग्लैंड के इतिहास की परीक्षा से पता चलता है कि वह केवल अपने में ही समझ में नहीं आ सकता, वह एक बड़े पूर्ण का टुकड़ा है। इस पूर्ण में अनेक भाग हैं (जैसे इंग्लैंड, फ्रान्स, नेदरलैंड्स), जिन्हें उन्हीं प्रेरणाओं अथवा चुनौती का सामना करना पड़ा है किन्तु उनकी प्रतिक्रिया अलग-अलग हुई है। इसके करने के लिए हेलेनी इतिहास से एक उदाहरण लिया गया। जिस 'पूर्ण' या 'समाज' में इंग्लैंड सम्मिलित है उसे पश्चिमी ईसाई संसार कहा जाता है, समय तथा काल के अनुसार उसका विस्तार नापा गया है और समय के अनुसार उसका आरम्भ। वह अपने से उत्पन्न समाजों से पुराना है, किन्तु कुछ ही। उसके आरम्भ के पता लगाने से मालूम हुआ है कि एक और समाज था जो नाश हो गया जिसे ग्रीको-रोमन अथवा हेलेनी समाज कहते हैं उसी से हमारा समाज सम्बद्ध है। यह भी स्पष्ट है कि और भी अनेक जीवित समाज हैं जैसे परम्परावादी ईसाई समाज, इस्लामी, हिन्दू तथा सुदूरपूर्व समाजों और ऐसे जीवाश्मित समाजों के चिह्न, जिनके बारे में जानकारी नहीं है, जैसे यहूदी तथा पारसी।

२. सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन

इस अध्याय का अभिप्राय यह है कि सब समाजों अर्थात् सभ्यताओं का निरूपण किया जाय, उनका गुण बताया जाय और उनका नाम बताया जाय, जिनका जन्म आज तक हो चुका है और उनमें आदिम अर्थात् असभ्य समाज भी हैं। पहली प्रणाली यह होगी कि हम उन सभ्यताओं को लेंगे जो मौजूद हैं और जिनका निरूपण हो चुका है, उनके आरम्भ का अध्ययन करेंगे कि किसी लुप्त सभ्यता से तो ये सम्बद्ध नहीं रही हैं जैसे हेलेनी सभ्यता से पश्चिमी सभ्यता सम्बद्ध है। इस सम्बद्धता के लक्षण ये हैं——(क) सार्वभौम राज्य (जैसे रोमन साम्राज्य) (ख) अन्त:काल जिसमें (ग) धर्मतन्त्र और (घ) वीरकाल में जनरेला दृष्टिगोचर होते हैं। धर्मतन्त्र तथा जनरेला विनाशोन्मुख सभ्यता के बाहरी तथा आन्तरिक सर्वहारा परिणाम हैं। इन संकेतों के सहारे हम देखते हैं कि परम्परावादी ईसाई समाज हमारे पश्चिमी समाज की भाँति हेलेनी समाज से सम्बद्ध है। इस्लामी समाज के मूल का पता लगाते हुए हम देखते हैं कि मूल में यह दो विभिन्न समाजों——ईरानी तथा अरबी का——मिश्रण है। इनका भी मूल जब हम देखते हैं तब पता चलता है कि हेलेनी प्रवेश के एक हजार साल पहले एक लुप्त समाज इनका मूल है जिसे सीरियाई समाज कहा जाता है।

हिन्दू-समाज के पीछे भारतीय समाज था।

सुदूर पूर्वी समाज के पीछे चीनी समाज था।

जीवाश्म समाज उन एक अथवा अनेक लुप्त समाजों के अवशेष हैं।

हेलेनी समाज के पूर्वज मिनोई समाज है किन्तु हम देखते हैं कि दूसरे समाजों के समान, जिनका हम निरूपण कर चुके हैं, हेलेनी समाज ने अपने पूर्वजों के आन्तरिक सर्वहारा द्वारा आविष्कृत धर्म को नहीं अपनाया। इसलिए कहा जा सकता है कि इनसे उनका वास्तविक सम्बन्ध नहीं था।

भारतीय समाज के पीछे सुमेरी समाज था।

भारतीय समाज के अतिरिक्त सुमेरी समाज के दो और वंशज थे, हिताइती तथा बैबिलोनी।

मिस्री समाज का कोई पूर्वज नहीं था, न उत्तराधिकारी।

नयी दुनिया में हम चार समाजों का पता पाते हैं---एंडियाई, यूकेटी, मेक्सिकी तथा माया।

इस प्रकार कुल उन्नीस सभ्यताओं के नमूने हमें मिलते हैं। और यदि हम परम्परावादी ईसाई समाज का विभाजन करते हैं तो दो हैं—परम्परावादी वाइज़ेन्टाइनी (अनातोलिया और बालकन) और परम्परावादी रूसी समाज और सुदूर पूर्व के दो भाग चीनी तथा जापानी-कोरियाई। इस प्रकार इक्कीस समाज हैं।

३. समाजों की तुलना

(१) सभ्यताएँ और आदिम समाज

सभ्यताओं में एक बात समान है कि वे आदिम समाज में से भिन्न वर्ग हैं। इन अन्तिम वालों की संख्या बहुत अधिक है, प्रत्येक बहुत छोटी है।

(२) सभ्यता की अन्विति का भ्रम

यह भ्रम कि सभ्यता केवल एक है और वह हमारी, इसकी परीक्षा की गयी और अमान्य कर दी गयी। और यह भ्रमपूर्ण सिद्धान्त भी अमान्य कर दिया गया कि सब सभ्यताओं का स्रोत मिस्री है।

(३) सभ्यताओं के सादृश्य का दावा

तुलनात्मक दृष्टि से सभ्यताएँ नूतन स्थितियाँ हैं, उनमें सबसे पुरानी का जन्म छ हजार वर्ष हुए हुआ। यह विचार है कि उन पर एक ही जाति के दार्शनिक समकालिक सदस्यों की भाँति विचार किया जाय। इस बात की आलोचना की गयी है कि अर्ध-सत्य कि 'इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होती' कोई समुचित कारण नहीं है और जो प्रणाली अपनायी गयी है उसके विरोध में उचित तर्क नहीं है।

(४) इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य

अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए तीन प्रणालियाँ हैं जिनमें एक मानव-जीवन का रूप भी है। इन तीनों तकनीकों का अन्तर विचारा गया है और इतिहास के विषय को प्रस्तुत करने के लिए विज्ञान तथा कल्पना-साहित्य के प्रयोग पर विचार किया गया है।

२. सभ्यताओं की उत्पत्ति

४. समस्या और उसका न सुलझाना

(१) समस्याका रूप

२१ सभ्य समाजों में १५ पुरानी सभ्यताओं से सम्बद्ध हैं किन्तु ६ सीधे आदिम समाजों से निकली हैं। आज जो पुराने समाज हैं वे स्थैतिक हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि वे पहले गत्यात्मक तथा प्रगतिशील रहे होंगे। सामाजिक जीवन मानव प्रजाति से पुराना है, कीड़ों तथा पशुओं में भी वह पाया जाता है, इन्हीं आदिम समाजों से अवमानव मानव के स्तर पर आया होगा—ऐसी प्रगति किसी सभ्यता ने नहीं की। फिर भी जहाँ तक ज्ञान है आदिम समाज स्थैतिक हैं। समस्या यह है कि आदिम से कैसे उन्नति हुई।

(२) प्रजाति

जिस तथ्य की हम खोज कर रहे हैं वह यह है कि मानव में जिन्होंने सभ्यता का आरम्भ किया, कोई विशेष गुण रहा होगा या उस वातावरण में कोई विशेषता रही होगी जब दोनों का सामना हुआ होगा। पहला विचार कि एक-एक उत्कृष्ट प्रजाति जैसे नार्डिक (प्रजाति) संसार में थी जिसने सभ्यता का आरम्भ किया, परखा गया और त्याग दिया गया।

(३) वातावरण

इस विचार की परीक्षा की गयी कि कुछ वातावरण ऐसे होते हैं जो सुविधापूर्ण होते हैं जिस कारण सभ्यता का विकास होता है और यह सिद्धान्त भी गलत निकला।

५. चुनौती और उसका सामना

(१) पौराणिक संकेत

जिन दो विचारों की परीक्षा की गयी और त्याग दिया गया उनमें भ्रम है। वे भौतिक विज्ञान, जैसे जीव-विज्ञान तथा भू-विज्ञान का आधार लेते हैं। समस्या वास्तव में आध्यात्मिक है। मानव-प्रजाति की पौराणिक कथाओं में जिनमें मानवता की बुद्धि सुरक्षित है पता चलता है कि सभ्यता विशेष भौगोलिक अथवा जीव-वैज्ञानिक परिस्थितियों के कारण नहीं विकसित होती, इस कारण विकसित होती है कि मानव के सामने कठिनाई उपस्थित होती है और उसका सामना करने में उसमें प्रेरणा उत्पन्न होती है।

(२) पौराणिक आधार पर समस्या

सभ्यता के आरम्भ के पहले अफ्रेशियन रेगिस्तान (सहारा और अरब के रेगिस्तान) जलयुक्त घास के मैदान थे। धीरे-धीरे ये सूखने लगे। इस चुनौती का सामना विभिन्न ढंग से वहाँ के निवासियों ने किया। कुछ वहीं रह गये और उन्होंने अपनी आदत बदल दी और खाना-बदोशी जीवन बिताने लगे। कुछ दक्षिण की ओर चले गये जिस ओर घास के मैदान खिसक रहे थे और उष्ण कटिबन्ध में आ गये। उन्होंने अपना पुराना जीवन ज्यों-का-त्यों रखा और आज तक उसी प्रकार रहते हैं। दूसरे नील नदी के डेल्टा में चले गये जहाँ उन्होंने दलदलों तथा जंगलों की चुनौती का सामना किया, उन्हें साफ किया और मिस्री सभ्यता की नींव डाली।

इसी प्रकार तथा इन्हीं कारणों से सुमेरी सभ्यता का दजला-फरात के डेल्टा में आविर्भाव हुआ।

इसी प्रकार हांगहो नदी की घाटी में चीनी सभ्यता का आरम्भ हुआ। यहाँ किस प्रकार की चुनौती का सामना करना पड़ा अज्ञात है, किन्तु वह सरल नहीं, कठोर रही होगी।

माया सभ्यता का आरम्भ उष्ण कटिबन्धीय जंगलों की चुनौती से आरम्भ हुआ, ऐंडियाई सभ्यता का उजाड़ पठार से।

मिनोई सभ्यता सागर की चुनौती से आरम्भ हुई। उसके निर्माता अफ्रीका के सूखते तट से भागे थे, उन्होंने सागर का आश्रय लिया, क्रीट तथा पास के टापुओं में बस गये। पहले-पहल वे एशिया या यूरोप की मुख्य भूमि से नहीं आये।

सम्बद्ध सभ्यताएँ भौगोलिक कारणों से पहले नहीं जन्मीं। मानवी वातावरण उनका कारण था। वे उस शक्तिशाली अल्पसंख्या से निकलीं जिस समाज से उनका सम्बन्ध था। शक्तिशाली अल्पसंख्या की परिभाषा है—वह शासक-वर्ग जिसका नेतृत्व समाप्त हो गया है और जो उत्पीड़क बन गयी है। इस पतनोन्मुख सभ्यता के आन्तरिक तथा बाहरी सर्वहारा उनसे अलग हो जाते हैं और नयी सभ्यता की नींव रखते हैं।

६. विपत्ति के गुण

अन्तिम अध्याय में सभ्यताओं के जन्म का जो कारण बताया गया है वह इस परिकल्पना के आधार पर है कि सरल नहीं, कठोर परिस्थितियों के कारण सभ्यताओं का जन्म होता है। इस परिकल्पना के लिए उन स्थलों से प्रमाण दिये गये हैं जहाँ किसी काल में सभ्यताएँ थीं, परन्तु उनका लोप हो गया और फिर वे पुरानी स्थिति में लौट गयीं।

जहाँ कभी माया सभ्यता थी वहाँ आज उष्ण कटिबन्ध का जंगल है।

भारतीय सभ्यता लंका के उस आधे भाग में थी, जहाँ पानी नहीं बरसता। आज वह प्रदेश फिर सूखा है। भारतीय सिंचाई के अवशेष बताते हैं कि यहाँ कभी सभ्यता थी।

पेटरा और पालमिरा के खँडहर अरबी रेगिस्तान के एक नखलिस्तान में हैं।

पैसिफिक सागर के सुदूर द्वीप में ईस्टर की मूर्तियाँ बताती हैं कि वहाँ कभी पोलिनेशियाई सभ्यता का केन्द्र रहा होगा।

न्यू इंग्लैंड, जहाँ के यूरोपियन उपनिवेशकों ने उत्तरी अमरीका के इतिहास में बहुत कार्य किया है, उस महाद्वीप का बहुत ही निर्जन और उजाड़ प्रदेश है।

रोमन कैंपेगना के लैटिन नगरों ने, जो कुछ दिन पहले मलेरिया से पूर्ण उजाड़ थे, रोमन शक्ति के विकास में बहुत सहायता की। उसकी तुलना कैंपुआ के सरल स्थिति किन्तु अनुपयुक्त परिणाम से कीजिए। हेरोडोटस, ओडेसी तथा एक्सोडस की पुस्तकों से भी उदाहरण दिये गये हैं।

न्यासालैंड के निवासी जहाँ जीवन के साधन सरल हैं उस समय तक असभ्य थे जब सुदूर यूरोप के लोगों ने आक्रमण किया।

७. वातावरण की चुनौती

(१) कठोर देशों की प्रेरणा

दो सटे हुए अनेक प्रदेशों की परीक्षा की गयी है। प्रत्येक में पहले वाला कठोर है और किसी-न-किसी सभ्यता का वहाँ जन्म हुआ है। हांगहो नदी तथा यांगत्सी नदी की घाटी, अटिका

और बेओशिया, बाइजैन्तिया तथा कालचिडोन, इसरायल, फोएनीशिया और फिलस्तीन, ब्रान्डेन्बुर्ग और राइनलैंड, स्काटलैंड और इंग्लैंड, और उत्तरी अमरीका के अनेक उपनिवेश ।

(२) नयी भूमि द्वारा प्रेरणा

हम देखते हैं कि अक्षत भूमि की चुनौती अधिक श्रेयस्कर होती है बजाय उस भूमि के जो जोती जा चुकी है और जो पहले के सभ्य लोगों द्वारा सरल बना दी गयी है । इस प्रकार प्रत्येक सम्बद्ध सभ्यता के निरीक्षण से पता चलता है कि उस सभ्यता ने उन स्थानों में अधिक उन्नति दिखायी है जो उनके पूर्वजों के क्षेत्र के बाहर थे । यदि नये क्षेत्र में समुद्र द्वारा आगमन हुआ तो अधिक विकास हुआ है । इसका कारण बताया गया है और यह भी बताया गया है कि नाटक का विकास स्वदेश में होता है और महाकाव्य का समुद्र पार नये उपनिवेश में ।

(३) आघात से प्रेरणा

हेलेनी तथा पश्चिम के इतिहास से अनेक उदाहरण दिये गये हैं । अचानक पूर्ण पराजय से पराजित दल अपने प्रदेश को व्यवस्थित करता है और विजयी बन जाता है ।

(४) दबाव द्वारा प्रेरणा

अनेक उदाहरणों द्वारा बताया गया है कि जो लोग सीमा पर रहते हैं और जिन्हें सदा आक्रमण का सामना करना होता है वे उन लोगों से अधिक विकास करते हैं जो सुरक्षित स्थान में रहते हैं । जैसे उसमानली,जो रोमन साम्राज्य की सीमा पर थे अधिक उन्नति कर सके बजाय क़रमानलियों के जो उनके पूरब थे । बैवेरिया से अधिक उन्नति आस्ट्रिया ने की, क्योंकि इन्हें तुर्कों के हमलों का सदा सामना करना पड़ा । रोम के पतन तथा नारमन विजय के बीच के काल के ब्रिटेन का इस दृष्टि से अध्ययन किया गया है । -

(५) दण्डात्मक दबाव की प्रेरणा

अनेक वर्गों तथा प्रजातियों को उन वर्गों तथा प्रजातियों द्वारा शतियों तक दण्ड भोगना पड़ा । दण्डित वर्गों तथा प्रजातियों ने इस चुनौती को इस प्रकार स्वीकार किया कि उन बातों में उन्होंने बहुत प्रगति की जो उनके लिए छोड़ दी गयी थीं क्योंकि बहुत-सी सम्भावनाएँ उनसे छीन ली गयी थीं । सबसे कठोर दण्ड दासता का है । ईसा के पूर्व अन्तिम दो शतियों में पूर्वी भू-मध्यसागर से जो दास इटली में लाये गये थे, वे ऐसे स्वतन्त्र वर्ग हो गये जो भयानक रूप से शक्तिशाली हो गये ।

इस दास-जगत् से आन्तरिक सर्वहारा का नया धर्म उत्पन्न हुआ, जिनमें ईसाई धर्म भी है ।

इस दृष्टि से उसमानलियों के शासन में पराजित ईसाइयों का भी अध्ययन किया गया है, विशेषत: फनारियोटो का । इस उदाहरण तथा यहूदियों के उदाहरण से प्रमाणित किया गया कि जिन्हें हम प्रजातिगत लक्षण कहते हैं, वे प्रजातिगत नहीं हैं,उस समुदाय की ऐतिहासिक अनुभूतियों के परिणाम हैं ।

८. सुनहला मध्यम मार्ग

(१) पर्याप्त और आवश्यकता से अधिक

क्या हम यह कह सकते हैं कि जितनी ही कठोर चुनौती होगी उतना ही बढ़िया सामना होगा ? या यह भी हो सकता है कि चुनौती इतनी कठोर हो कि सामना हो ही न सके ? ऐसा अवश्य

हुआ है कि कुछ चुनौतियों का सामना अनेक समाज नहीं कर सके, किन्तु अन्त में एक दल ने सफलतापूर्वक उसका सामना किया। उदाहरण के लिए बढ़ते हुए हेलेनीवाद का सामना केल्ट नहीं कर सके, किन्तु ट्यूटनों ने सफलता से उसका सामना किया। सीरियाई संसार में 'हेलेनी प्रवेश' का सामना सीरियाई जगत् ने—जो राष्ट्रियनों, यहूदियों (मकाबियन), नैस्टोरियनों तथा मोनोफाइसाइटों ने असफलता से किया, किन्तु पाँचवाँ सामना इस्लाम ने सफलतापूर्वक किया।

(२) तीन पदों (टर्म्स) में तुलना

फिर भी यह प्रमाणित किया जा सकता है कि चुनौतियाँ बहुत कठोर हो सकती हैं। श्रेष्ठतम चुनौती से सदा अधिकतम परिणाम नहीं निकलता। नारवे के वाइकिंग प्रवासियों ने आइसलैंड की चुनौती का सफलता से सामना किया, किन्तु उससे कठोर चुनौती ग्रीनलैंड की वे बरदाश्त नहीं कर सके। यूरोपियन उपनिवेशकों ने डिक्सी से कठोर चुनौती का मसाचसेट में सफलता से सामना किया, किन्तु उससे भी कठोर चुनौती में लैबरेडर में वे असफल रहे। दूसरे उदाहरण भी हैं। प्रहार यदि अधिक दिनों तक रहे तो बहुत कठोर हो जाता है। जैसे इटली में हैनिवली युद्ध का। चीनी लोग जब मलय में गये, तब उन्होंने सफलता से सामना किया, परन्तु गोरे चमड़े वालों के देश कैलिफोरनियाँ में वे असफल रहे। अन्त में पड़ोस के बर्बरों पर सभ्यताओं की चुनौतियों का अवलोकन किया गया है।

(३) दो अकाल-प्रसूत सभ्यताएँ

इस अंश में अन्तिम उदाहरण के विषय को और बढ़ाया गया है। पश्चिमी ईसाई जगत् के इतिहास के पहले अध्याय में जो दो बर्बर दल ईसाई जगत् की सीमा पर थे इतने उत्प्रेरित हुए कि उन्होंने प्रतिद्वन्द्वी सभ्यता का विकास आरम्भ किया, किन्तु जन्मते ही उनका विनाश कर दिया गया। ये दो बर्बर दल थे—सुदूर पश्चिम के केल्टिक ईसाई (आयरलैंड और आयोवा) तथा स्कैंडिनेवियाई। इन पर विचार किया गया है कि यदि ये दोनों प्रतिद्वन्द्वी रोम तथा राइनलैंड से चली ईसाई सभ्यता द्वारा समाप्त न कर दिये गये होते तो परिणाम क्या होता।

(४) ईसाई जगत् पर इस्लाम का आघात

पश्चिमी ईसाई जगत् पर इस प्रहार का परिणाम अच्छा हुआ। मध्ययुग में पश्चिमी सभ्यता मुसलिम आइबीरिया की बहुत ऋणी है। बाइजेन्ती ईसाई जगत् पर यह प्रहार बहुत कठोर था इस कारण सीरियाई लीओ के नेतृत्व में रोमन साम्राज्य का फिर से उदय हुआ। मुसलिम संसार से घिरे किले के भीतर ईसाई अश्मित अबीसीनया की भी परीक्षा की गयी है।

३. सभ्यताओं का विकास

९. अविकसित सभ्यताएँ

(१) पोलिनेशियाई, एसकिमो और खानाबदोश

ऐसा समझा जा सकता है कि एक बार किसी सभ्यता का जन्म हो गया तो वह विकसित होती चलेगी, किन्तु ऐसा नहीं होता। अनेक सभ्यताओं के उदाहरण दिये गये हैं जिनका जन्म तो हो गया, किन्तु उनका विकास नहीं हो सका। ऐसी अविकसित सभ्यताओं का कारण यह है कि वे कठोर चुनौती तथा कठोरतम चुनौती के बीच पड़ गयीं जिनसे वे असफल हो गयीं। ऐसे तीन

उदाहरण हैं जिन्हें इस प्रकार के कठोर भौतिक वातावरण का सामना करना पड़ा । इनमें सामना करने वालों को अपनी सारी शक्ति सामना करने में लगा देनी पड़ी और आगे के विकास के लिए उनके पास शक्ति बच नहीं रह सकी ।

पोलिनेशियनों को अपनी सारी शक्ति पैसिफिक सागर के अनेक द्वीपों में आने-जाने में खर्च हो गयी । अन्त में वे पराजित हो गये और अनेक अलग-अलग द्वीपों में वे आदिम जीवन बिताने लगे ।

एसकिमो ने आर्कटिक सागर के तट पर के वार्षिक जलवायु के चक्र के अनुसार विशेष क्षमता प्राप्त कर ली ।

इसी प्रकार खानाबदोशों ने स्टेप के अर्ध-रेगिस्तान में वार्षिक-चक्र के अनुसार जीवन बिताने की दक्षता प्राप्त की । सूखा के समय के खानाबदोश के जीवन के विकास का विश्लेषण किया गया है । यह बताया गया है कि शिकारी लोग खानाबदोश होने के पहले खेतिहर हो गये थे । केन ओ एबेल खेतिहर तथा खानाबदोश के प्रतीक हैं । खानाबदोश लोग या तो सूखा बढ़ने के कारण स्टेप के आगे सभ्यता के क्षेत्र में घुसते हैं या किसी सभ्यता के पतन के कारण जो शून्यक उत्पन्न हो जाता है उसमें जनरेला के साथ घुसते हैं ।

(२) उसमानली वंश

जिस चुनौती का परिणाम उसमानिया व्यवस्था थी वह खानाबदोश समुदाय का ऐसे समुदाय पर शासन करना था जो स्थावर थी । उन्होंने समस्या को इस प्रकार सुलझाया कि अपनी नयी प्रजा को भेड़-बकरी समझा और दासों को शासक और सैनिक बनाकर उन्हें कुत्तों के समान भेड़-बकरियों का रक्षक बनाया । ऐसे ही अन्य खानाबदोश साम्राज्यों का जिक्र किया गया है । जैसे मामलूक, किन्तु उसमानिया व्यवस्था सबसे दक्ष तथा टिकाऊ थी । किन्तु खानाबदोशों के समान इसमें भी कठोरता आ गयी थी ।

(३) स्पार्टन

स्पार्टनों को अधिक आबादी की चुनौती का सामना करना पड़ा । उन्होंने ऐसी महान् शक्ति का विकास किया जो अनेक दृष्टियों से उसमानलियों की व्यवस्था के समान थी । अन्तर यह था कि स्पार्टा की सैनिक जाति स्पार्टा की धनिक वर्ग ही थी । ये भी एक प्रकार के दास थे जिन्होंने अपने ऊपर साथी यूनानियों पर शासन करने का कार्य ले रखा था ।

(४) साधारण विशेषताएँ

एसकिमो और खानाबदोशों में, उसमानलियों और स्पार्टनों में एक बात समान है । पहले दोनों में कुत्ते, बारहसिंघे, घोड़े, गाय-बैल उसमानलियों के दासों के दासों की जगह रहते हैं । इन सब समाजों में मानव को केवल, घुड़सवार या सिपाही बनाकर अवमानव के स्तर पर गिरा दिया जाता है । सर्वगुण सम्पन्न मानव नहीं रह जाते, जैसा पेरिक्लीज़ ने अन्त्येष्टि के भाषण में कहा था कि ऐसा ही मनुष्य सभ्यता का विकास कर सकता है । ये अविकसित समाज मक्खियों तथा चींटियों के समाज के समान हैं जो सृष्टि के आरम्भ से आज तक वैसे ही हैं । ये उस समाज के समान भी हैं जिनका चित्रण यूटोपिया में किया गया है । यूटोपिया के सम्बन्ध में विचार किया गया है और बताया गया है कि जब सभ्यता पतनोन्मुख होती है, तब ऐसी कल्पना

की जाती है। उसका अभिप्राय यह होता है कि पतन को रोका जाय और उसी स्तर पर कायम रखा जाय जिस स्तर पर सभ्यता उस समय है।

१०. सभ्यताओं के विकास की प्रकृति

(१) दो भ्रामक संकेत

विकास उस समय होता है, जब किसी विशेष चुनौती का सामना ही नहीं होता, बल्कि उस सफलता से नयी चुनौती उपस्थित होती है और फिर उस पर विजय प्राप्त होती है। इस विकास को हम कैसे नाप सकते हैं। क्या हम इससे नाप सकते हैं कि समाज ने बाहरी वातावरण पर कितना नियन्त्रण प्राप्त कर रखा है? इस प्रकार के नियन्त्रण की वृद्धि दो प्रकार की होती है—या तो मानवी वातावरण पर नियन्त्रण हो जिसका अर्थ है पड़ोसी लोगों पर विजय प्राप्त की जाय या भौतिक वातावरण पर विजय प्राप्त हो, जिसका अर्थ है तकनीकी उन्नति। फिर उदाहरण दिये गये हैं कि न तो सैनिक और राजनीतिक विस्तार और न तकनीकी विकास वास्तविक उन्नति की कसौटी है। सैनिक विस्तार सैनिकवाद का परिणाम है जो पतन का चिह्न है। तकनीकी उन्नति चाहे कृषि की हो चाहे औद्योगिक हो वास्तविक विकास की परिचायक नहीं है। वास्तविकता यह हो सकती है कि तकनीकी उन्नति ऐसे समय हो रही है, जब सभ्यता पतनोन्मुख है, इसके विपरीत भी हो सकता है।

(२) आत्मनिर्णय की ओर प्रगति

वास्तविक प्रगति अलौकिकीकरण की प्रक्रिया में पायी गयी, जिसमें भौतिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की गयी, जिससे वह शक्ति बच रही जिससे बाहरी की अपेक्षा आन्तरिक चुनौती का सामना समाज कर सका, भौतिक चुनौती नहीं, आध्यात्मिक चुनौती। इस प्रकार के अलौकिकीकरण का उदाहरण हेलेनी तथा आधुनिक पश्चिमी समाजों से दिया गया है।

११. विकास का विश्लेषण

(१) समाज और व्यक्ति

समाज तथा व्यक्ति के सम्बन्ध के बारे में दो मत प्रचलित हैं—एक यह कि समाज व्यक्तियों के परमाणुओं का समूह है, दूसरा यह कि समाज जीवित संगठन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का उस समाज के बिना कोई अस्तित्व नहीं है। बताया गया है कि ये दोनों विचार भ्रामक हैं। वास्तविक बात यह है कि समाज व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध की व्यवस्था है। मानव प्राणी बिना एक-दूसरे के सम्बन्ध के मानव नहीं रह जाता और समाज ही इनके आपसी सम्बन्ध का क्षेत्र है। किन्तु क्रिया का स्रोत व्यक्ति है। सारा विकास क्रियाशील व्यक्तियों अथवा अल्पसंख्यकों द्वारा आरम्भ होता है। इनका कार्य दोहरा होता है। पहला यह कि वह अपनी खोज अथवा प्रेरणा की उपलब्धि करते हैं और दूसरा यह कि अपने समाज को इस नये जीवन के अनुसार बनाते हैं। सिद्धान्ततः (यह परिवर्तन दो में से एक ढंग से होता है) या तो जनता भी उसी अनुभूति को प्राप्त करे जो व्यक्ति ने प्राप्त की या उसके बाहरी रूप की नकल करे अर्थात् अनुकरण। व्यवहार में थोड़े अल्पसंख्यक को छोड़कर यही दूसरा ढंग अपनाया जाता है। अनुकरण सरल रास्ता है। इसी राह से जनता अपने नेताओं का अनुसरण कर सकती है।

(२) अलग होना और लौटना : व्यक्ति

क्रियाशील व्यक्ति का कार्य अलग होने और लौटने का दोतरफा रास्ता है—अलग होते हैं अपने व्यक्तिगत प्रबुद्धता के लिए, लौटते हैं अपने समाज को प्रबुद्ध बनाने के लिए। इसके लिए प्लेटो की गुफा का, सन्त पाल के बीज का, बाइबिल से तथा और स्थलों से उदाहरण दिये गये हैं। और फिर सन्त पाल, सन्त बेनेडिक्ट, सन्त ग्रेगरी महान्, बुद्ध, मुहम्मद, मकियावली तथा दान्ते के व्यावहारिक जीवन से उदाहरण दिये गये हैं।

(३) अलग होना तथा तथा लौटना : सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग

अलग होना तथा लौटना अव-समाजों का भी लक्षण है जिनके द्वारा मुख्यतः समाज बना है। जिस काल में ये अव-समाज अपने समाजों के विकास का कार्य करते हैं उसके पहले वे समाज के कार्य-क्षेत्र से अलग हो जाते हैं। उदाहरण के लिए हेलेनी समाज के विकास के दूसरे अध्याय में एथेन्स, पश्चिमी समाज के विकास के दूसरे अध्याय में इटली और अपने तीसरे अध्याय में इंग्लैंड। सम्भव है रूस भी अपने विकास के चौथे अध्याय में ऐसा ही करे।

१२. वृद्धि द्वारा भिन्नता

जिस विकास का वर्णन ऊपर किया गया है वह विकासोन्मुख समाज के विभिन्न अलग-अलग अंगों की विभिन्नता है। प्रत्येक मंजिल पर कुछ तो मौलिक कार्य करके सामना करेंगे, कुछ उनका अनुकरण करेंगे तथा कुछ न तो मौलिक कोई कार्य करेंगे, न अनुकरण करेंगे और समाप्त हो जायेंगे। विभिन्न समाजों के इतिहास में भी विभिन्नता होगी, स्पष्टतः विभिन्न समाजों की अलग-अलग विशेषताएँ होंगी। कुछ कला में उत्कृष्ट होंगे, कुछ धर्म में और कुछ औद्योगिक आविष्कारों में। किन्तु सब सभ्यताओं के मूल आधार को नहीं भूलना चाहिए। प्रत्येक बीज का अपना भविष्य होता है, किन्तु सब बीज एक प्रकार के होते हैं। बोने वाला एक है और एक प्रकार के फस्ल की आशा वह करता है।

४. सभ्यताओं का विनाश

१३. समस्या का रूप

जिन २६ सभ्यताओं का वर्णन किया गया है (अविकसित सभ्यताओं को मिलाकर) सोलह मर चुकी हैं। शेष दस—हमारी सभ्यता को छोड़कर—सबका पतन हो चुका है। पतन का प्रकार तीन बातों में बताया जा सकता है। सर्जनात्मक अल्पसंख्या में सर्जनशील शक्ति की असफलता, जिसके कारण वह केवल शक्तिशाली अल्पसंख्या रह जाती है, बहुसंख्या अपनी निष्ठा और अनुकरण करना छोड़ देती है, और समाज में एकना नहीं रह जाती। हमारा दूसरा कार्य है यह जानना कि ऐसे पतनों का कारण क्या है।

१४. नियतिवादी समाधान (डिटरमिनिस्टिक सोल्युशन)

कुछ विचारकों का मत है कि सभ्यताओं का पतन ऐसे कारणों से होता है, जिन पर मनुष्य का वश नहीं है।

(१) हेलेनी सभ्यता के पतन के समय ईसाई तथा गैर-ईसाई लेखकों ने बताया कि उनके समाज का पतन 'विश्व की जरावस्था' के कारण है। किन्तु आधुनिक भौतिक विज्ञानियों ने बताया है कि विश्व की जरावस्था कहीं अज्ञात सुदूर है और हमारी सभ्यता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

(२) स्पेंगलर का कहना है कि समाज जीव के समान है और स्वभावतः यौवन, जरा तथा मृत्यु को प्राप्त होगा। किन्तु समाज जीव या प्राणी नहीं है।

(३) कुछ का कहना है कि मानव की सभ्यता के जन्म में कुछ ऐसी बातें हैं कि कुछ दिनों के बाद प्रजाति की सभ्यता तभी जीवित रह सकती है,जब उसमें बर्बर के नये रक्त का संचार किया जाय। इस पर विचार किया गया और यह विचार त्याग दिया गया।

(४) अब रह जाता है चक्र वाला सिद्धान्त, जिसका वर्णन प्लेटो के टिमियस में वर्जिल के चौथे गोपगीत में अथवा और पुस्तकों में लिखा है। यह विचार शायद उस समय आया, जब काल्डियनों ने सौर्यमण्डल की जानकारी प्राप्त की। किन्तु वर्तमान ज्योतिष के आविष्कारों ने इस सिद्धान्त को अमान्य कर दिया। सिद्धान्त के पक्ष में कुछ नहीं है, विपक्ष में वहुत।

१५. वातावरण से नियन्त्रण का लोप होना

इस अध्याय का विषय अध्याय १० (१) का उलटा है। जहाँ यह कहा गया था कि भौतिक वातावरण पर नियन्त्रण की वृद्धि से, जिसे हम तकनीकी उन्नति से नाप सकते हैं और मानवी वातावरण पर नियन्त्रण की वृद्धि से, जिसे हम भौगोलिक विस्तार से या सैनिक विजय से नाप सकते हैं वे उन्नति के कारण या कसौटी नहीं हैं। यहाँ बताया गया है कि तकनीकी अवनति या सैनिक आक्रमण से सीमा का संकुचित होना पतन के कारण नहीं हैं।

(१) भौतिक वातावरण

अनेक उदाहरणों द्वारा दिखाया गया है कि तकनीकी अवनति पतन का कारण नहीं, परिणाम है। रोमन सड़कों का त्यागना और मेसापोटामिया की सिंचाई-व्यवस्था का त्यागना इनसे सम्बन्धित सभ्यताओं के विनाश के कारण हुआ, वे विनाश का कारण नहीं थे। मलेरिया का प्रकोप सभ्यता के विनाश का कारण कहा जाता है, किन्तु बताया गया है कि पतन के कारण मलेरिया का प्रकोप हुआ।

(२) मानवी वातावरण

गिबन का मन्तव्य कि रोम का पतन और विनाश बर्बरता और धर्म (अर्थात् ईसाइयत) के कारण हुआ देखा गया और अस्वीकार कर दिया गया। बाहरी तथा भीतरी सर्वहारा की ये अभिव्यक्तियाँ हेलनी समाज के पतन का परिणाम थीं, जो हो चुका था। गिबन और पीछे का इतिहास नहीं देखता। वह अन्टोनाइन युग को स्वर्ण युग समझता है जबकि वह केवल 'भारतीय ग्रीष्म' था। सभ्यताओं के विरुद्ध अनेक सफल आक्रमणों के उदाहरण देकर बताया गया है कि प्रत्येक में सफल आक्रमण पतन के बाद हुआ है।

(३) नकारात्मक अभिमत

उन्नति करते हुए समाज पर जब आक्रमण होता है, तब उससे उन्नति में अधिक उत्तेजना प्राप्त होती है। ऐसा भी सम्भव है कि समाज यदि पतित हो चुका है तो आक्रमण उसे स्फुरण प्रदान करता है। (सम्पादक का नोट है कि 'पतन' (विनास) शब्द विशेष अर्थ में इस पुस्तक में प्रयुक्त हुआ है)।

१६. आत्मनिर्णय की असफलता

(१) अनुकरण की यांत्रिकता

असर्जनशील बहुसंख्या सर्जनशील नेताओं का अनुकरण करके ही उनका अनुसरण कर सकती

है। यह अनुकरण केवल यान्त्रिक ढंग का अभ्यास है। इस सरल राह में खतरे हैं। नेताओं में उनके अनुगामियों की यान्त्रिकता आ सकती है। परिणामस्वरूप सभ्यता अविकसित रह जायगी। यह भी हो सकता है कि नेता प्रेम मार्ग को छोड़कर दण्ड देने वाला मार्ग काम में लायें। इस परिस्थिति में सर्जनशील अल्पसंख्या शक्तिशाली अल्पसंख्या हो जायगी और अनुगामी सब मजबूरी से सर्वहारा हो जायेंगे।

जब ऐसा होता है, समाज विघटन की राह पर चला जाता है। उसकी आत्मनिर्णय की शक्ति जाती रहती है। नीचे के उदाहरण बतायेंगे कि ऐसा किस प्रकार होता है।

(२) पुरानी बोतल में नयी शराब

आदर्श यह है कि सर्जनशील अल्पसंख्यक द्वारा जो नयी शक्ति उत्पन्न होती है उससे नयी संस्थाओं का जन्म होना चाहिए जिनमें वह कार्य करे। वास्तव में वह पुरानी संस्थाओं द्वारा कार्य करता है जो दूसरे कामों के लिए बनी हैं। किन्तु पुरानी उसके लिए अनुपयुक्त होती हैं। दो में से एक परिणाम होता है—या तो संस्थाएँ विघटित हो जाती हैं (क्रान्ति) या वह जीवित रहती हैं और नयी शक्तियों की विकृति हो जाती है (दुष्टता)। क्रान्ति की परिभाषा यह है कि वह अनुकरण के विलम्ब से उत्पन्न विस्फोट है, दुष्टता या भीषणता अनुकरण की कुण्ठा है। यदि शक्तियों का संस्थाओं से सामंजस्य है तो विकास होता रहेगा, यदि क्रान्ति होगी तो विकास संकटमय हो जायगा, यदि दुष्टता होगी तो विघटन होगा। इसके बाद अनेक ऐसे उदाहरण दिये गये हैं जिनमें पुरानी संस्थाओं पर नयी शक्तियों का संघात हुआ है। पहले वर्ग में आधुनिक पश्चिमी समाज में दो नयी शक्तियों का संघात दिखाया गया है।

दास-प्रथा पर उद्योगवाद का संघात—संयुक्त-राज्य अमरीका के दक्षिणी राज्यों में युद्ध पर लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद का प्रभाव—फ्रान्स की क्रान्ति के बाद युद्ध की तीव्रता संकुचित स्थानीय राज्यों पर लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद का संघात जिसमें राष्ट्रीयतावाद की अतिवृद्धि होती है और मुक्त-व्यापार विफल होता है।

निजी सम्पत्ति पर उद्योगवाद का संघात जैसा पूँजीवाद तथा समाजवाद के उदय से प्रकट होता है।

शिक्षा पर लोकतन्त्र का संघात जैसा रोमांचकारी पत्रकारिता तथा फासिस्ट अधिनायकवाद से प्रकट होता है।

इटालियाई दक्षता का आल्पस पार के राज्यों पर प्रभाव जैसा इंग्लैंड को छोड़कर अन्य निरंकुश शासन के उदय से प्रकट होता है।

सोलोनी क्रान्ति का हेलेनी नगर-राज्यों पर संघात जैसा निरंकुशता, अवरोध तथा सरदारी से प्रकट होता है।

पश्चिमी ईसाई तन्त्र पर स्थानीयता का प्रभाव जैसा प्रोटेस्टेन्ट क्रान्ति, राजाओं का ईश्वरीय अधिकार और देशप्रेम से ईसाइयत का मन्द होना प्रकट होता है।

धर्म पर एकता की भावना का संघात जैसा धार्मिक उन्माद तथा उत्पीड़न से प्रकट होता है।

जाति पर धर्म का प्रभाव जैसा हिन्दू-सभ्यता से प्रकट होता है।

श्रमविभाजन पर सभ्यता का संघात जिससे नेताओं में रहस्यवाद और अनुगामियों में एकांगी-

पन हो जाता है । अन्तिम दोष उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों से प्रकट होता है जैसे यहूदी और आधुनिक क्रीड़ा व्यवस्था से प्रकट होता है ।

अनुकरण पर सभ्यता का संघात, जो प्राचीन काल की भाँति कबीलों की परम्परा पर नहीं है, अग्रगामियों पर है ।

अधिकांश जो अग्रगामी अनुकरण के लिए चुने जाते हैं वे सर्जनशील नेता नहीं होते वे शोषक होते हैं या राजनीतिक आन्दोलक होते हैं ।

(३) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी अपनत्व की भक्ति

इतिहास का प्रमाण है कि जो वर्ग एक चुनौती का सामना करता है वह दूसरी चुनौती का सामना शायद ही कर पाता हो । अनेक उदाहरण दिये गये हैं और बताया गया है कि यूनानी तथा हिब्रू विचारों से इसका समर्थन होता है । जो एक चुनौती का सामना करने में सफल हो जाते हैं वे आराम करने लगते हैं । यहूदियों ने पुरानी बाइबिल का सामना किया, किन्तु नयी बाइबिल का करने में असफल रहे । पेरिक्लीज़ का एथेन्स सन्त पाल के एथेन्स में सिकुड़ जाता है । इटालियाई पुनरुत्थान में जिन केन्द्रों ने सहयोग किया वे पुनर्जागरण में विफल रहे । पीडमान्ट ऐसे नगरों ने नेतृत्व ग्रहण किया जिनका इटालियाई अभ्युदय में कुछ भी हाथ न था । उन्नीसवीं शती के प्रथम तथा द्वितीय चतुर्थांश में दक्षिण केरोलिना और बरजिनिया अमेरिका के संयुक्त राज्यों में प्रमुख थे, किन्तु घरेलू युद्ध के पश्चात् वे नहीं बढ़ सके; उत्तरी कैरोलिना बढ़ गया ।

(४) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी संस्था की भक्ति

हेलेनी इतिहास के अन्तिम दिनों में नगर-राज्यों की भक्ति के जाल में यूनानी फँस गये, रोमन नहीं । रोमन साम्राज्य के भूत ने परम्परावादी ईसाई समाज का विनाश किया । ऐसे उदाहरण भी दिये गये हैं कि राजा, संसद, शासक, जातियों ने प्रगति को अवरुद्ध किया है । चाहे नौकरशाही रही हो या पुरोहितशाही ।

(५) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी तकनीक की भक्ति

जीव-विज्ञान के विकास के उदाहरण से पता चलता है कि वातावरण पर पूर्ण विजय पाने वाले जीव विकास में पिछड़ जाते हैं और जो समय के साथ चलते हैं वे आगे बढ़ते हैं । मछलियों से जलस्थलीय जीव अधिक प्रगतिशील रहे, बृहदाकार सरिसृप से मानवों के चूहे के समान पूर्वज विकास में अधिक सफल हुए । औद्योगिक क्षेत्र में किसी समुदाय ने नयी तकनीक में पहले कुछ सफलता प्राप्त की जैसे पैडल से चलने वाले स्टीमर के आविष्कारकों ने, किन्तु स्क्रू से चलने वाले स्टीमरों के आविष्कारकों के पीछे वे रह गये । डैविड और गोलियथ से लेकर आजतक के युद्ध की तकनीक पर विचार किया गया है । एक आविष्कार वाले आराम करते हैं और उनके बैरी दूसरा आविष्कार कर लेते हैं ।

(६) सैनिकवाद की आत्मघाती प्रवृत्ति

ऊपर के तीन अंशों में आराम करनेवालों के उदाहरण दिये गये हैं । जिससे वे सर्जनशीलता के प्रतिशोध के शिकार हो जाते हैं । अब हम विपथन के रूप बताते हैं जो यूनानी सूत्र 'कोरोस, यूबरीस, ऐथ' से व्यक्त होता है । (बहुत अधिक, अत्याचारी व्यवहार तथा विनाश) । सैनिकवाद स्पष्ट उदाहरण है । असीरियनों का विनाश इसलिए नहीं हुआ कि वे आराम कर

रहे थे, जैसा पहले अध्यायों और विजेताओं के बारे में बताया गया है। ये बराबर सैनिकता में उन्नति कर रहे थे। इनका विनाश इसलिए हुआ कि उनकी लड़ाकू प्रवृत्ति थी। और उनके पड़ोसियों के लिए वे असह्य हो गये थे। असीरियन का उदाहरण ऐसा है जिन्होंने अपने आन्तरिक पड़ोसी पर आक्रमण किया। ऐसा ही आस्ट्रेशियाई फ्रैंकों ने तथा तैमूर लंगने ने किया। और उदाहरण भी दिये गये हैं।

(७) विजय का मद

ऊपर के पैराग्राफ के समान ही अ-सैनिक क्षेत्र से एक उदाहरण दिया गया है। हिल्ड ब्रैन्ड पोप का जो विकसित होने के बाद अपने को ऊँचाई पर न ले जा सका। इसकी असफलता इसलिए हुई कि विजय के मद में अपने राजनीतिक शस्त्रों का व्यवहार पापात्मक कार्यों में उसने किया। इसी दृष्टि से अभिषेक संस्कार की परीक्षा की गयी है।

५. सभ्यताओं का विघटन

१७. विघटन का स्वरूप

(१) साधारण सर्वेक्षण

क्या पतनों के बाद विघटन होना आवश्यक है? मिस्री तथा सुदूर पूर्व के समाजों से पता चलता है कि एक और विकल्प है। अर्थात् जड़ीभूत हो जाना। जो हेलेनी सभ्यता का परिणाम हुआ और हमारी सभ्यता का भी हो सकता है। विघटन की मुख्य कसौटी है सामाजिक शरीर का तीन अंगों में विभाजन—शक्तिशाली अल्पसंख्या, आन्तरिक सर्वहारा तथा बाहरी सर्वहारा। पहले जो कहा जा चुका है वह दुहराया गया और आगे के अध्यायों का आयोजन बताया गया।

(२) भेद और पुनर्जीवन

कार्ल मार्क्स का इलहामी दर्शन कहता है कि सर्वहारा के अधिनायकवाद के बाद वर्ग-युद्ध होगा—एक नये समाज द्वारा। मार्क्स के सिद्धान्त के अतिरिक्त जब समाज ऊपर के बताये तीन टुकड़ों में विभाजित हो जाता है तब यही होता है। प्रत्येक टुकड़ा एक नयी सृष्टि करता है—शक्तिशाली अल्पसंख्या सार्वभौम राज्य का निर्माण करती है, आन्तरिक सर्वहारा सार्वभौम धर्मतन्त्र बनाता है और बाहरी सर्वहारा बर्बर लड़ाकू दल।

१८. सामाजिक जीवन में भेद

(१) शक्तिशाली अल्पसंख्यक

यद्यपि शक्तिशाली अल्पसंख्या में शोषक और सैनिक मुख्य हैं, भले लोग भी पाये जाते हैं। जैसे कानूनदां और शासक जो सार्वभौम राज्य का संचालन करते हैं, दार्शनिक जो पतनोन्मुख समाज़ों को अपना दर्शन-ज्ञान देते हैं, उदाहरण के लिए सुकरात से लेकर प्लोटिनस तक दार्शनिकों की लम्बी शृंखला। दूसरी सभ्यताओं से उदाहरण दिये गये हैं।

(२) आन्तरिक सर्वहारा

हेलेनी समाज का इतिहास बताता है कि तीन स्रोतों से ये आये—आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से ध्वस्त तथा उनके उत्तराधिकारी हेलेनी राज्यों के नागरिक, पराजित लोग, दास-व्यापार के शिकार ये सब सर्वहारा हैं, समाज में किन्तु समाज के नहीं। पहले इनकी प्रतिक्रिया

तीव्र होती है परन्तु धीरे-धीरे ये शान्त हो जाते हैं और ऊँचे धर्म जैसे ईसाई धर्म का आविष्कार करते हैं। यह धर्म मिथ्रवाद तथा दूसरे प्रतिद्वन्द्वी धर्मों के समान ऐसे 'सभ्य' समाज से उत्पन्न हुआ जिसे हेलेनी शक्ति ने जीत लिया था। दूसरे समाजों के आन्तरिक सर्वहारा की भी परीक्षा की गयी और वही परिणाम निकला जैसे बैबिलोनी समाज से उत्पन्न जूडावाद तथा जरथूष्ट्रवाद वैसे ही थे जैसे हेलेनी समाज से उत्पन्न ईसाई धर्म और मिथ्रवाद यद्यपि उनका वाद का विकास विभिन्न था जैसा बताया गया है। बौद्ध दर्शन महायान के रूप में परिवर्तित हो गया और चीनी आन्तरिक सर्वहारा के लिए धर्म मिला।

(३) पश्चिमी संसार के आन्तरिक सर्वहारा

यहाँ भी आन्तरिक सर्वहारा के होने का पर्याप्त प्रमाण दिया जा सकता है। उनमें एक हैं सर्वहारा से एकत्र किये गये बौद्धिक लोग जो शक्तिशाली अल्पसंख्या के एजेन्ट का काम करते हैं। बौद्धिक लोगों की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। किन्तु आधुनिक पश्चिमी समाज के आन्तरिक सर्वहारा नये 'उच्चतर धर्म' के उत्पन्न करने में असफल रहे। यह संकेत किया गया है कि इसका कारण यह था कि ईसाई धर्मतन्त्र जिसे पश्चिमी ईसाई समाज की उत्पत्ति हुई है बराबर सजीव रहा है।

(४) बाहरी सर्वहारा

जब तक किसी सभ्यता का विकास होता रहता है, उसका प्रभाव उसके आदिम पड़ोसियों के पास बहुत दूर तक पहुँचता रहता है। वे 'असर्जनशील बहुसंख्या' के अंग हो जाते हैं और ये सर्जनशील अल्पसंख्या के नेतृत्व में चलने लगते हैं। किन्तु जब किसी सभ्यता का पतन हो जाता है तब यह जादू नहीं चल पाता। बर्बर विरोधी हो जाते हैं और सीमा पर सैनिक दल स्थापित हो जाता है जो आगे बढ़ता है किन्तु बाद में अचल हो जाता है। जब यह अवस्था पहुँच जाती है तब समय बर्बरों का साथ देता है। हेलेनी इतिहास से इसका उदाहरण दिया गया है। बाहरी सर्वहारा का जोरदार और कोमल सामना दिखाया गया है। विरोधी सभ्यता का दबाव बाहरी सर्वहारा के आदिम धर्मों को ओलिम्पियाई 'दैवी युद्ध दल' बदल देता है। बाहरी सर्वहारा की विजय का फल महाकाव्य होता है।

(५) पश्चिमी संसार के बाहरी सर्वहारा

उनके इतिहास का पुनरावलोकन किया गया और बाहरी सर्वहारा के जोरदार और कोमल सामना के उदाहरण दिये गये हैं। आधुनिक पश्चिमी समाज की भौतिक दक्षता के आधिक्य के कारण ऐतिहासिक ढंग की बर्बरता लोप हो गयी। उसके दो गढ़ रह गये। अफगानिस्तान और साऊदी अरब जहाँ के शासक पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण कर रहे हैं। किन्तु पश्चिमी ईसाई जगत् के पुराने केन्द्रों में ही भीषण बर्बरता उत्पन्न हो रही है।

(६) विदेशी और देशी प्रेरणाएँ

शक्तिशाली अल्पसंख्या तथा बाहरी सर्वहारा को यदि विदेशी प्रेरणा मिले तो उन्हें रुकावट होती है। जैसे विदेशी शक्तिशाली अल्पसंख्या यदि सार्वभौम राज्य बनाये (जैसे भारत में अंग्रेजों ने) तो वे कम सफल होते हैं, देशी सार्वभौम राज्य के निर्माण की तुलना में जैसे रोमन साम्राज्य। बर्बर युद्ध-दलों का बहुत कठोर और जोरदार विरोध होता है यदि बर्बरों में विदेशी सभ्यता का कुछ प्रभाव होता है जैसे मिस्र में हाइक्सों का और चीन में मंगोलों का। इसके विपरीत

न्तरिक सर्वहारा द्वारा जो 'उच्चतर धर्म' उत्पन्न होता है उसका आकर्षण इसलिए होता है कि समें विदेशी प्रेरणा होती है । सभी 'उच्चतर धर्म' यही बताते हैं ।

यह तथ्य कि 'उच्चतर धर्म' का इतिहास तब तक समझ में नहीं आ सकता, जब तक दो सभ्य-ओं का अध्ययन न किया जाय. . . .एक वह सभ्यता जिससे प्रेरणा प्राप्त हुई है और दूसरी जिसने प्त की है—यह बताता है कि जिस आधार पर यह अध्ययन किया गया है—यह आधार क अलग-अलग सभ्यताएँ अध्ययन के उचित क्षेत्र नहीं हैं—इस स्थान पर समाप्त हो जाती हैं ।

१९. सामाजिक जीवन में आत्मा का भेद

१) आचरण, भावना और जीवन का विकल्प

जब किसी समाज का पतन आरम्भ होने लगता है तब विकास के काल में व्यक्तियों के ाचरण, भावना तथा जीवन की जो विशेषताएँ रहती हैं उनका स्थान दूसरी बातें ले लेती हैं । क (पहले वाला एक जोड़ा) निष्क्रिय और दूसरा (बाद वाला) सक्रिय ।

सर्जनात्मकता के दो विकल्प हैं, (समर्पण और आत्मनिग्रह) अनुकरण की शिष्यता के लिए चलन और आत्मोत्सर्ग ।

विकास में जो सजीवता रहती है उसके विकल्प, विचलन और पाप की भावना होती है । कास के साथ जो वस्तुपरक प्रक्रिया का भेद होता है उसकी आत्मपरक भावना में जो व्यवस्था रूप होता है उसके स्थान पर असामंजस्य तथा एकता की भावना आ जाती है । जीवन के तर पर कार्य के क्षेत्र में जाने पर दो विकल्प मिलते हैं । महान् की ओर से सूक्ष्म की ओर जाना अलौकिकीकरण की प्रक्रिया में निहित है । इसमें पहले दो विकल्प—पुरातनवाद तथा भविष्य-द—परिवर्तन नहीं ला सकते और इनका अन्त हिंसा होती है । पुरातनवाद घड़ी को पीछे लाना है, भविष्यवाद संसार में असम्भव युग लाने का प्रयत्न है । दूसरा विकल्प अलगाव र रूपान्तरण परिवर्तन लाने में सफल होते हैं और उनमें अहिंसा होती है । अलगाव पुरातनवाद अध्यात्मीकरण है, आत्मा के गढ़ में जाकर संसार का त्याग करना है । रूपान्तरण भविष्य-द का अध्यात्मीकरण है उससे 'उच्चतर धर्म' की उत्पत्ति होती है । जीवन के चारों ढंग था उनके आपस के सम्बन्ध बताये गये हैं । अन्त में यह दिखाया गया है कि इनमें से जीवन की छ भावनाएँ शक्तिशाली अल्पसंख्या की आत्माओं की विशेषता हैं और कुछ सर्वहारा की त्माओं की ।

(२) त्याग और आत्मनिग्रह की परिभाषा की गयी है, उदाहरण दिये गये हैं ।

(३) पलायन और प्राणोत्सर्ग की परिभाषा की गयी है और उदाहरण दिये गये हैं ।

(४) विचलन का भाव तथा पाप का भाव ।

विचलन का भाव इस कारण होता है कि संसार का शासन संयोग से होता है या आवश्यकता । बताया गया है कि ये दोनों एक हैं । इसके उदाहरण दिये गये हैं । कुछ नियतिवादी धर्म से कालविनवाद बहुत शक्तिशाली हैं और विश्वास उत्पन्न करते हैं । इस विचित्रता का कारण ताया गया है ।

जहाँ विचलन की भावना नशा है वहाँ पाप की भावना प्रेरणा है । कर्म के तथा 'मूल पाप' (जिसमें पाप तथा नियतिवाद मिला हुआ है) सिद्धान्त पर विचार किया गया है । हिब्रू देवदूत

पाप को ही राष्ट्रीय दुर्भाग्य का कारण बताते हैं यद्यपि वह स्पष्ट नहीं दिखाई देता । इन देव-दूतों की शिक्षा ईसाइयों ने ली और उनसे हेलेनी संसार ने जो उसे लेने के लिए शतियों से तैयारी कर रहा था ।

(५) असामंजस्य की भावना

यह सभ्यता के विकास की व्यवस्था में एक निष्क्रिय विकल्प है । यह अनेक रूपों में प्रकट होता है । (अ) **व्यवहार में अभद्रता और बर्बरता**—शक्तिशाली अल्पसंख्या सर्वहारा की ओर झुकती जाती है । आन्तरिक सर्वहारा की अभद्रता और बाहरी सर्वहारा की वर्बरता को वह अपनाती है । और विघटन की अन्तिम अवस्था में उसका जीवन और इन दोनों का जीवन बिना अन्तर का हो जाता है । (ब) **कला में अभद्रता तथा बर्बरता**–विघटनोन्मुख सभ्यता अपनी कला के विस्तार का यही मूल्य चुकाती है । (स) **सामान्य भाषा**—जातियों के मिलने से अस्तव्यस्तता होती है और भाषा के लिए आपस में होड़ होती है । उनमें से कुछ सामान्य भाषा वन जाती है और उनका अपकर्ष होता है । अनेक उदाहरण दिये गये हैं । (द) **धर्म में संहतिवाद**–तीन आन्दोलनों का अन्तर समझना चाहिए । विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों का मिलन, विभिन्न धर्मों का मिलन जैसे इसरायल के धर्म का पड़ोसी मतों से मिलन जिसका सफलतापूर्वक हिब्रू पैगम्बरों ने विरोध किया था, और दर्शन तथा धर्मों की एक-दूसरे से संहति । चूँकि दर्शन शक्तिशाली अल्पसंख्या की उपलब्धि है और 'उच्चतर धर्म' आन्तरिक सर्वहारा की उपलब्धि है, उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया की तुलना की गयी है उस उदाहरण से जो ऊपर (अ) में दिये गये हैं । जैसे वहाँ, यहाँ भी यद्यपि सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्या की ओर बढ़ता है, शक्तिशाली अल्पसंख्या आन्तरिक सर्वहारा की ओर वहुत अधिक बढ़ता है । उदाहरण के लिए ईसाई धर्म अपने धार्मिक व्याख्या के लिए हेलेनी दर्शन का प्रयोग करता है । किन्तु यह उसकी तुलना में वहुत कम है जो परिवर्तन प्लेटो और जूलियन के बीच यूनानी दर्शन में हुआ । (च) **शासक धर्म का निर्णय करता है ?**—इस अंश में हम कुछ विषय से अलग हो गये हैं । उस पर विचार करते हुए जो इसके पहले के अध्याय में दार्शनिक सम्राट् जूलियन के सम्बन्ध में विचार किया गया है । क्या शक्तिशाली अल्पसंख्या उस आध्यात्मिक कमी को राजनीतिक दबाव से अपना दर्शन या धर्म लादकर पूरी कर सकती है ? इसका उत्तर है कि कुछ अपवाद को छोड़कर यह नहीं हो सकता और जो धर्म राजनीति का समर्थन चाहता है, हानि उठायेगा । एक अपवाद है इस्लाम । इस पर विचार किया और यह ऐसा अपवाद नहीं है जैसा समझा जाता है । इसका उलटा सूत्र कि प्रजा का धर्म शासक का धर्म होता, अधिक सत्य है ।

(६) एकता की भावना

असामंजस्य की निष्क्रिय भावना के विपरीत यह सक्रिय भावना है । इसका परिणाम सार्वभौम राज्य होता है और इसी भावना से सर्वशक्तिशाली कानून की कल्पना अथवा सर्वशक्तिमान् ईश्वर की कल्पना होती है जो विश्व पर शासन करता है । इन दो विचारों की परीक्षा की गयी और उदाहरण दिया गया है । इस संदर्भ में हिब्रुओं के 'ईर्ष्यालु देवता' जेहोव को आरम्भ के काल से देखा गया है जब वह ज्वालामुखी सीनिया पर्वत पर 'जिन' था और एक सच्चे ईश्वर में रूपान्तरित हो गया । और ईसाई धर्म में भी उसी भाँति आज पूजा जाता

इसकी व्याख्या की गयी है कि कैसे वह अपने प्रतिवन्दियों पर विजयी हो गया ।

७) पुरातनवाद

यह वह चेष्टा है कि पतनोन्मुख समाज अपनी असहनीय परिस्थिति से ऊब कर पीछे के युग में जाना चाहता है । प्राचीन तथा आधुनिक उदाहरण दिये गये हैं । आधुनिक उदाहरण में गोथिक तथा कृत्रिम पुनरुत्थान भी दिया गया है, राष्ट्रीय कारणों से और अनेक अप्रचलित भाषाओं के । पुरातनवादी आन्दोलन या तो मृत हो जाते हैं या अपने विरोधी आन्दोलन में परिणत हो जाते हैं जैसे——

(८) भविष्यवाद

यह ऐसा प्रयत्न है कि वर्तमान से बचने के लिए अँधेरे में कूदा जाता है जिसका भविष्य ज्ञात है । वह प्राचीन को लेकर परम्परा से शृंखला बाँधना चाहता है । कला में मूर्ति-भंजन काम होता है ।

९) भविष्यवाद में आत्मोत्कृष्टता

जिस प्रकार पुरातनवाद के भविष्यवाद के गर्त में गिर जाने का भय होता है उसी प्रकार विष्यवाद रूपान्तरवाद की ऊँचाई पर जा सकता है । दूसरे शब्दों में वह संसार में असम्भव टोपिया पाने का प्रयत्न त्याग दे और आत्मा में अपना जीवन पाने की चेष्टा करे । इस दृष्टि न्दी होने के वाद के यहूदियों का इतिहास देखा गया । भविष्यवाद के कारण यहूदियों ने ा पर अनेक साम्राज्य स्थापित करने का आत्मघाती प्रयत्न किया—ज़ेरुववबेल से वार काबा तक और रूपान्तर ईसाई धर्म में ।

१०) विराग और रूपान्तरण

विराग वह मनोवृत्ति है जिसकी बहुत उच्च तथा अटल अभिव्यक्ति बुद्ध की शिक्षा में हुई । उसका तर्कपूर्ण परिणाग आत्महत्या है, क्योंकि पूर्ण विराग ईश्वर के लिए ही सम्भव है । सके विपरीत ईसाई धर्म ऐसे ईश्वर को वताता है जो जान-बूझकर विराग को त्याग देता है से वह अपनी शक्ति से कर सकता है । "ईश्वर संसार को इतना प्यार करता है ।"

११) पुनर्जन्म या पुनरागमन

जीवन के जो चार रूपों की परीक्षा की गयी है उसमें रूपान्तर ही सबसे स्पष्ट है । और वह म्पूर्ण से सूक्ष्म की ओर कार्य करता है । विराग के लिए भी यही सत्य है, किन्तु विराग केवल लगाव है और रूपान्तर विराग के बाद फिर लौटना है । यह पुनर्जन्म पुराने ढंग का पुनर्जन्म हीं है । इस पुनर्जन्म से नये समाज का जन्म होता है ।

२०. विघटन होने वाले समाज और व्यक्तियों का सम्बन्ध

१) सर्जनात्मक प्रतिभा त्राता के रूप में

विकास के काल में सर्जनात्मक व्यक्ति वरावर चुनौतियों का सफलता से सामना करते हैं । न के काल में वे पतनोन्मुख समाज के अथवा वहाँ से त्राता बनते हैं ।

२) तलवार से सज्जित त्राता

ये लोग सार्वभौम राज्य के निर्माता तथा रक्षक होते हैं । परन्तु तलवार के सारे कार्य स्थायी होते हैं ।

(३) समय-मशीन के लिए त्राता

ये पुरातनवादी तथा भविष्यवादी होते हैं। अन्त में ये भी तलवार को तलवार वालों के समान ही अन्त होता है।

(४) राजा के आवरण में दार्शनिक

यह प्लेटो की विख्यात औषधि है। यह असफल हो जाती है क्योंकि दार्शनि तथा राजनीतिक शासकों के बलप्रयोग का सामंजस्य नहीं होता।

(५) मानव में ईश्वरत्व

इस गुण के अनेक लोग असफल होते हैं, केवल ईसू ही सफल होता है।

२१. विघटन का लयात्मक रूप

विघटन एक सिलसिले से नहीं होता। वह पराजय-जमाव के लय से होता है : के लिए संकटकाल की पराजय के बाद सार्वभौम राज्य जमाव है। सार्वभौम राज्‍ पूर्ण पराजय है। साधारणतः संकटकाल के समय एक जमाव पराजय के बाद होता भौम राज्य के समय एक पराजय के बाद जमाव होता है, यह लय ज़ान पड़ती है—पर पराजय-जमाव-पराजय-जमाव-पराजय—कुल साढ़े तीन विस्पन्दन। अनेक विलु के इतिहास से इसका उदाहरण दिया गया है। और अपने पश्चिमी ईसाई संसार लागू किया गया यह देखने के लिए कि हमारा समाज विकास के किस स्थान पर पहुँचा।

२२. विघटन द्वारा मानकीकरण

जिस प्रकार विभिन्नता विकास का लक्षण है, उसी प्रकार विघटन का लक्षण मान है। यहाँ अध्याय समाप्त होता है एवं अगले खण्डों में और अध्ययन की बात बतायी